



गुरुमण्डलग्रन्थमालायाश्चतुर्दशपुष्पम्

की संद. : भ-  
मनसुखर

# ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

( श्रीकृष्णजन्मखण्डात्मकम् )



तस्य  
द्वितीयो भागः

मीनाधादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयस्मैरघम्,  
सेखौघं षट्कत्रयं पदयुगं दूतीकमं मण्डलम् ।  
वीरानन्दपद्यचतुष्कपष्टिनयकं धीराधलीपञ्चकम्,  
मन्मालिनिमन्त्रराजसहितं घन्दै गुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो  
कलकत्ता

प्रथमं संस्करणम्  
५०००

द्विस्ताब्द  
१९५५





Gurumandal Series No. XIV.

# Brahma Vaivartta Puranam

(Containing Shri Krishna Janma Khanda)



**Volume II**

**5, Clive Row,  
Calcutta.**

Sram Era.  
2012

First Edition  
5000

Christian Era.  
1955





॥ श्रीगणेश

## अथ चतुर्थं श्रीवृ

अध्यायः

वि

५५

१

### श्रीकृष्णपादपद्मप्राप्तिसोपानम्

५२

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्

देवर्षि नारद का भगवान् नारायण से पुराणविषयक प्रश्न नारदजी ने भगवान् नारायण से पूछा कि हे ब्रह्मन् प्रथम ब्रह्मखण्ड ब्रह्माचारविन्द से श्रवण किया । तत्पश्चात् उनकी आज्ञा से शीघ्र ही आपके पास कर अमृतखण्ड से भी परम श्रेष्ठ प्रकृतिखण्ड को सुना फिर जन्म-मरण के जाल छुड़ानेवाले गणपतिखण्ड को सुना परन्तु मेरा मन वृत्त नहीं हुआ क्योंकि मैं भी विशेष सुनने की इच्छा रखता हूँ । अतः मनुष्यों के जन्मादि को खण्डन करनेवाला, सम्पूर्ण तत्त्वों का प्रदीप, कर्मों को नष्ट करनेवाला, तत्काल वैराग्य करनेवाला, भवरोग से छुड़ानेवाला, मुक्ति का कारण, संसाररूपी समुद्र से लगानेवाला, कर्म के उपभोग रोगों को नष्ट करने में रसायनरूप भगवान् गण के कमलरूपी चरणों की प्राप्ति में सोपान (सीढ़ी) रूप वैष्णवों का जीवन-और संसार को परम पवित्र करनेवाला श्रीकृष्णजन्मखण्ड शरण में आये हुए शिष्य को विस्तारपूर्वक कहिये कि किसकी प्रार्थना से पूर्णकला से युक्त स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इस महीतल (पृथ्वी) पर, किस युग में, किस कारण कहां अवतरित हुए ? भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वासुदेवजी कौन थे माता देवकी कौन थी, भगवान् का जन्म किस कुल में हुआ ? कीदंतुल्य

कंस से भगवान् को भय कैसे हुआ तथा कंस के भय से सूतिकागृह से गोकुल गये कैसे ? भगवान् हरि ने गोप वैप से गोकुल में क्या किया एवं गोपियों के साथ कहाँ विहार किया ? कौन गोप थे कौन गोपियाँ थीं, कौन यशोदा थीं कौन नन्द थे तथा उन्होंने क्या पुण्य किया था ? गोलोकयासिनी पुण्यवती राधा व्रज में व्रजकन्या होकर भगवान् हरि की प्रियतमा कैसे हुई ? गोपियों ने दुराराध्य भगवान् ईश्वर को कैसे प्राप्त किया एवं भगवान् कृष्ण उनको छोड़कर पुनः मथुरा क्यों गये ? पृथ्वी का भार हरण कर क्यों कर अपनेघाम को प्रस्थान किया ? हे महाभाग ! ऐसे उत्तम श्लोक भगवान् का गुणानुवाद वर्णन कीजिये । हरि भगवान् की कथा संसाररूपी समुद्र से पार लगानेवाली नौका है तथा भोगरूपी वेदियों के क्लेश को छेदन करनेवाली कैंची है एवं पापरूपी इन्धन ( लकड़ी ) को जलाने में जलती हुई अग्नि की ज्वाला है और सुननेवाले पुरुषों के करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट करनेवाली है । हे कृपानिधे ! मुझ भक्त शिष्य को ज्ञान दीजिये ।

पिताजी द्वारा प्रेषित ज्ञानप्राप्ति के निमित्त आपके पास आया हूँ ।

नारदजी के प्रश्न को सुनकर भगवान् नारायण ने कहा कि हे नारद ! तुम धन्य हो, मैंने जान लिया है कि तुम पुण्यराशि की ज्वलन्त मूर्ति हो तथा संसार को पवित्र करने के लिये ही भ्रमण करते हो । तुम जीवन्मुक्त हो एवं भगवान् गदाधर के शुद्ध भक्त हो । सम्पूर्ण वसुन्धरा को अपने चरणों की रज से पवित्र करते हो । इसी कारण से तुम्हारी निर्मल बुद्धि हरि भगवान् की सुमाङ्गलिक कथा के सुनने में उत्सुक है । जहाँपर हरिभगवान् की कथा होती है वहाँ सब देवता रहते हैं एवं सब ऋषि-मुनि तथा अखिल तीर्थ निवास करते हैं । कथा सुनने के उपरान्त वे निरापद स्थान को चले जाते हैं तथा जहाँपर कृष्णकथा होती है वह स्थान तीर्थ होजाता है । भगवान् कृष्ण की कथा कहनेवाला अपने सैकड़ों पुरुषों (पीढ़ियों) का उद्धार कर सुननेवाले के सम्पूर्ण कुल का उद्धार करता है । पूछनेवाला तो प्रश्नमात्र से ही अपने कुल को तथा स्वयं को पवित्र करता है एवं

श्रोता श्रवणमात्र से अपनेको और अपने वान्धवों को पवित्र कर देता है। जन्म के तप से पवित्र हो मनुष्य भारतवर्ष में जन्म लेता है फिर यहाँ हरिभगवान् की कथारूपी अमृत को पानकर जन्म को सफल बनाता है। भक्ति की पूजा, वन्दना, मन्त्रजप, भगवान् के चरणारविन्दों का सेवन, स्मरण, कान्ति निरन्तर भगवद् गुणानुवाद का श्रवण, सम्पूर्ण कमों को प्रभु में निवेदन और दास्य भाव ये भक्ति के नौ लक्षण हैं। इस तरह जो भगवान् में लगे हो जाता है उसको किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता तथा उसके घर (यम) नहीं आता है; जैसे, गरुड़ के पास सर्प नहीं आते हैं। जो मनुष्य भगवान् की कथा श्रवण करता है उसको सम्पूर्ण अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं तथा उस पुरुष के चारों तरफ भगवान् का सुदर्शनचक्र रात-दिन भगवान् की कथा श्रवण करती रहती है। भगवद् भक्तों की श्रवण से उसकी रक्षा के लिये चक्र दिया करता है। भगवद् भक्तों के समीप में यमराज के दूत स्वर्ग में भी नहीं आते हैं; जैसे, जलती हुई अग्नि नहीं छूटकर शलभ (टिट्ठियाँ) पास नहीं जाती हैं। इस प्रकार हरिकथा की महत्ता को कहुकर भगवान् नारायण ने महर्षि नारदजी से श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन प्रारम्भ किया।

२

### श्रीदामा-राधाकलहवर्णनम्

५२७

भगवान् नारायण ने नारदजी से कहा कि हे देवर्षे ! भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना से इस भूमण्डल पर आये एवं जो-जो कार्य कर अपने धाम को पृथ्वी के भार उतारने का उपाय एवं दुष्टों के बध का सफल प्रयत्न अच्छी तरह पूर्णतया तुम्हें कहूँगा। जिस समय गोप वेप से भगवान् श्रीकृष्ण का गोकुल में आगमन गोपालिका (ग्यालिनी) राधा के निमित्त हुआ वह तुमसे कहता हूँ सुनो। दामा और राधा की कलह। राधा के शाप से श्रीदामा का शङ्खचूड़ होना एवं दामा के शाप से राधा का मानवीय थोनि में प्रव्र में प्रजाङ्गना रूप में जन्म

लेना । श्रीदामा के शाप से भयभीत हुई राधा का भगवान् श्रीकृष्ण से कहना कि मुझे श्रीदामा के शाप से गोपीरूप बनना होगा । हँ भयभङ्गन ! मैं क्या उपाय करूँ, कहिये । मैं आपके बिना जीवन को कैसे धारण करूँगी । आपके बिना एक क्षण भी सौ युग के समान है । हे नाथ ! मैं तो रात-दिन चञ्चुचक्रीरों से आपके अमृतपूर्ण मुख को पीती रहती हूँ । आप ही मेरी आत्मा हो, प्राण हो, जीवन हो एवं परम धन हो । मैं आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती । भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा के घचन सुनकर कहा कि मैं वाराह कल्प में महीतल ( पृथ्वी ) पर अवतरित होऊँगा तब तुम्हें हृदयेश्वरी बनाकर निर्भय कर दूँगा । मैंने अपने साथ मैं पृथ्वी पर तुम्हारा जन्म भी निरूपित किया है । ब्रज में जाकर वन में विचरण करो, मेरे रहते तुम्हें क्या भय है ? ऐसा कहकर भगवान् हरि ने राधा को सान्त्वना दी । इस कारण भगवान् जगन्नाथ गोकुल में नन्दजी के यहाँ गये नहीं तो उन्हें क्या भय था वे तो स्वयं भय का अन्त करनेवाले हैं । माया और भय-के छल से राधा के पास भगवान् का जाना एवं गोपवेप धारण कर उनके साथ विचरण करना गोपाङ्गनाओं के साथ प्रतिज्ञा पालन करने के लिये ब्रह्माजी की प्रार्थना से महीतल पर अवतार लेना तथा पृथ्वी का भार-हरण कर अपने धाम को प्रस्थान करना । तदनन्तर नारद का भगवान् से प्रश्न कि राधा के साथ श्रीदामा की कलह क्यों हुई सो संक्षेप से कहिये । भगवान् नारायण ने नारद को उत्तर दिया कि एक समय गोलोक में भगवान् हरि राधा के साथ रासमण्डल में विहार कर उसको अतृप्त ही छोड़कर अन्य विरजानामक गोपी के यहाँ शृङ्गारार्थ चले गये । वृन्दारण्य में विरजा नामक गोपी जो रूपलावण्य में राधिका के समान थी एवं उसकी अवस्था की सुन्दर रूपवाली शतकोटि गोपियाँ थी । उस विरजा गोपी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर राधिका की सखियों ने जाकर राधा से सारी बातें कही कि श्रीकृष्ण तो विरजा नामक गोपी के साथ हैं । ऐसा सुनते ही राधिका क्रोधित हो बोली यदि तुम लोग सत्य कहती हो तो मेरे

साथ चलो। राधिका के ऐसे वचन सुनकर मद से युक्त गोपियों ने कहा कि हम आपको विरजा सहित प्रभु को दिखा देंगी। तत्पश्चात् त्रिपट्टिशतकोटि गोपियों के साथ जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण उस गोपी वहाँ गई एवं शीघ्र ही रथ से उतरकर सहसा उस रत्नमण्डप में गई। लक्ष गोपों से परिवृत द्वारपाल को देखा जो श्रीकृष्ण का प्रिय श्रीदामा गोप था। जिसे देखते ही भगवती राधिका ने क्रोधित हो कहा कि तुम्हारा लम्पट हो दूर हटो। तुम्हारा प्रभु एकान्त में किस सुन्दरी के साथ है उसे राधिका के ये वचन सुनकर निःशङ्क उस वेत्रपाणिवाले द्वारपाल ने बलपूर्वक को रोका। उनके कोलाहल शब्द को सुनकर राधा को क्रोधित जान श्रीकृष्ण अन्तर्द्धान हो गये। उधर उस विरजा नामक गोपी ने भी के शब्द से भगवान् को अलक्षित देख स्वयं राधा के भय से आर्त्त हो प्राणों को त्याग दिया तथा तत्काल ही नदीरूपा हो गई।

३ सप्तसमुद्रोत्पत्तिः राधाश्रीदाम्नोः शापः

राधिका ने उस मण्डप में जाकर भगवान् श्रीकृष्ण को अलक्षित देखा विरजा को नदीरूप में देखकर पुनः घर प्रस्थान किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने विरजा नदीरूप में देखकर उसके तीर पर उच्चस्वर से रुदन करने लगे एवं कहा कि तुम की अधिष्ठात्री देवी मूर्तिमती बन मेरे आशीर्वाद से स्त्रियों में श्रेष्ठ रूपवाली तथा पहिलेवाले रूप से भी अधिक रूपवती होओ। भगवान् श्रीकृष्ण के कहते ही उसने जल से उठकर नवीन शरीर धारण कर भगवान् हरि के साक्षात् राधा का सा रूप बना लिया। भगवान् ने उसको रूपवती देखकर प्रेमाधि से आलिङ्गन किया। तदनन्तर विरजा ने रजोयुक्त हो भगवान् के अमोघ व को धारण कर गर्भवती हुई। उसने सात सुन्दर भगवान् हरि विरजा के साथ

एक सम  
कनिष्ठ पु

प्राकर माता की गोद में बैठ गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण द्वारा विरजा का त्याग एवं राधागृह गमन। श्रीकृष्ण वियोग में विरजा का विलाप एवं अपने पुत्र को ताप कि तुम लवण समुद्र बनोगे तथा तुम्हारा जल कोई भी प्राणी नहीं पयेगा। उत्पश्चात् अन्य छहों पुत्रों को भी महीतल पर समुद्र होने का शाप दिया एवं कहा कि तुम्हारी एक जगह स्थिति नहीं होगी। इनके जल से सृष्टि में अन्न होगा एवं सातों के नाम—लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध, और जल ये सातों समुद्र समुद्रीपंक्ती पृथ्वी पर व्याप्त हैं तथा उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने हैं। राधा और कृष्ण का संवाद। कुपित राधा का कृष्ण से कहना कि तुम्हें तो विरजा ही प्रिय है जो नदीरूप हो गई है अतः तुम भी नद रूप होने के होग्य हो। अपनी-अपनी जाति में ही विशेष प्रेम होता है जैसे—

नदस्य नद्या साद्भ्रुव सक्रमो गुणवान्भवेत् ।

स्वजातौ परमा प्रीतिः शयने भोजने सुखात् ॥

राधा और श्रीदामा का संवाद ।

४	नारीणां रक्षकरूपणम्	५३७
	मन्त्रादिमङ्गलवस्तूनां भूमिस्थापननिषेधः	५३९
	ब्रह्मादिकृत भगवत्स्तुतिः	५४१
	गोलोकवर्णनम्	५४३

नारदजी का भगवान् नारायण से पुनः प्रश्न कि हे वेदविदांबरः (वेद के जाननेवालों में श्रेष्ठ) भगवान् कृष्ण किसकी प्रार्थना से एवं किस हेतु पृथ्वी, पर आये यह वर्णन कीजिये। तब भगवान् नारायण ने नारद से कहा कि पहिले धाराई कल्प में वसुन्धरा पापियों के भार से दुःखित हो ब्रह्माजी की शरण में गई एवं साथ में असुरों से संतप्त देवता भी ब्रह्म की सभा में गये। श्रुति, मुनि और सिद्धगणों से

सेवित कृष्ण नाम को स्मरण करते हुए ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ब्रह्म  
भक्तियुक्त देवताओं सहित वसुन्धरा ने प्रणाम कर अपना स  
किया। उसको अश्रुपूर्ण देखकर जगद्धाता ब्रह्माजी ने कहा कि तु  
में हो एवं क्यों स्तुति करती हो ? हे भद्रे ! तुम्हारे आने का  
कल्याण होगा। तुम सुखिर हो जाओ मेरे रहते तुम्हें क्या भ  
पृथ्वी को आरवासन देकर ब्रह्माजी ने आदरपूर्वक देवताओं  
पास आने का क्या कारण है कहो ? तब देवताओं ने ब्रह्मा  
(पृथ्वी) भार से व्याकुल है एवं हमलोगों को दैत्यों ने तङ्ग कर  
संसार के रचयिता हो अतः हमारी शीघ्र ही इस दुःख से निष्कृति  
वचनों को सुनकर ब्रह्माजी ने पृथ्वी से पूछा कि हे पद्मविलोचने  
भार को वहन करने में असक्त हो यह बताओ तुम्हारा कल्या  
के वचन को सुनकर भगवती पृथ्वी ने कहा कि हे तात !  
व्यथा आपसे कहती हूँ। बिना विश्वासी बन्धु के अपना दु  
नहीं हूँ क्योंकि स्त्रीजाति अथला है एवं निरन्तर अपने बन्  
के रक्षक जनक, ( पिता ) स्वामी और पुत्र हैं। आप तो संस  
आपको कहने में कोई भी लज्जा नहीं है। अब मैं जिन  
आप सुनिये—

कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तनिन्दकाः । येषां महापातकिन  
स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः । आद्वहीनाश्च वेदेषु ते  
पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः । ये न कुर्वन्ति तेषां च न  
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविहीनकाः । निन्दका गुरुदेवानां  
मित्रद्रोही कृतप्रश्न मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः । विश्वासप्रः स्वाप्यहा  
कल्याणयुक्तनामानि हरेर्नामैकमङ्गलम् । कुर्वन्ति विक्रयं ये वै ते  
जीवघाती गुरुद्रोही मामयाजी च लुब्धकः । शबदाही शूद्रभोज



जायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च । ये ये मूढा निहन्तास्तेषां भारेण पीडिता  
 दा द्विपन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् । हरिं हरिकथाभक्तिं तेषां भारेण पीडिता  
 च्छूडस्य भारेण पीडिताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां देव्यानां भारेण परिपीडिता

जो कृष्णभक्ति से विमुख तथा भगवद्भक्तों का निन्दक है उन महापापियों  
 के भार को सहन करने में असमर्थ हूँ । जो अपने धर्म और आचार से हीन  
 एवं नित्यकर्मों से विवर्जित हैं तथा वेदों में जिनकी श्रद्धा नहीं है उनके भार से  
 पीड़ित हूँ । जो पुरुष पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र एवं अपने आश्रितवर्ग का  
 पोषण नहीं करते हैं तथा जो मिथ्यावादी हैं, दया और मृत्यु से रहित हैं, गुरु  
 और देवताओं के निन्दक हैं उनके भार से पीड़ित हूँ । मित्र द्रोही, कृतघ्न, मिथ्या  
 साक्षी देनेवाला, विश्वासघाती एवं धरोहर को पचानेवालों के भार से पीड़ित हूँ ।  
 हरिभगवान् के कल्याणयुक्त नामों के विक्रय करनेवालों के भार से पीड़ित हूँ ।  
 जीव को मारनेवाले, गुरुद्रोही प्रामयाजी (भित्तारी), लुब्धक, शवदाही (श्मशान में)  
 शूद्रभोजी, पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत और नियमों को भंग करनेवालों के भार से  
 पीड़ित हूँ । जो मनुष्य गो, विप्र देवता और भगवद्भक्तों से सदा ही द्वेष करते  
 हैं एवं जिनकी भगवान् हरि में तथा भागवती कथा में भक्ति नहीं है मैं उनके भार से  
 पीड़ित हूँ । ऐसा कहकर वसुधा धारम्बार रुदन करने लगी । उसके रुदन वं  
 सुनकर ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारा भार दूर कर दूँगा । हे वसुन्धरे ! कार्यसिं

यन्त्रं मङ्गलकुम्भश्च शिवलिङ्गश्च कुङ्कुमम् । मधुमाण्डं चन्दनञ्च कस्तूरी तीर्थमृत्तिका  
 त्रह्मगण्डकरहृग्श्च स्फटिकं पद्मरागकम् । इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रुद्राक्षं कुशमूलकम्

शालग्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमाजलम् ।

शङ्खप्रदीपमालाश्च शिलामर्चयाश्च घण्टिकाम् ॥

॥ निर्माल्यध्वजं नैवेद्यं हरिद्वर्णमणिन्तथा । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम्  
 ॥ गारोपनाश्च मुक्ताश्च शुक्तिं माणिक्यमेव च । पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा

जतं काञ्चनञ्चैव प्रवालरत्नमेव च । कुराद्विजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम् ॥

त्वयि ये स्थापयिष्यन्ति मूढारश्चैतानि सुन्दरि ।

तिष्ठन्ति कालसूत्रे वै वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥

हे सुन्दरि ! देवयन्त्र, मङ्गलकलश, शिवलिङ्ग, कुङ्कुम ( रोली ), मधु, काष्ठ, चन्दन, कस्तूरी, तीर्थ की मृत्तिका, खड्ग ( तलवार ), गौण्डे की खड्ग, स्फटिकमणि, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, सूर्यमणि, रुद्राक्ष, कुशमूल, शालग्राम भगवान् की मूर्ति, शङ्ख, तुलसीपत्र, भगवान् का चरणोदक, दीपक, माला, घण्टिका ( टाली, ) भगवान् के चढ़ाया हुआ नैवेद्य, हरितवर्ण की मणि, मन्थियुक्त यज्ञसूत्र, दर्पण, श्वेत चामर, गोरोचन, मोती, सीप, माणिक्य, पुराण, वेद, अग्नि, कर्पूर, परशु, चाँदी, स्वर्ण, मूंगा, रत्न, कुरा, द्विज, तीर्थ का जल, गव्य ( दूध, दही, एवं घृत ), गोमूत्र, गोबर इन वस्तुओं को जो मूढ़ तुम्हारे पर स्थापित करता है वह निश्चय दश हजार वर्ष तक कालसूत्र नरक में वास करता है । इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी देवता और पृथ्वी के साथ जगत् को धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर के यहाँ कैलाश

की सुन्दरता का वर्णन । वहाँपर अक्षयवट की

१) सती की अस्त्रियों के बने आभूषणों को

अपने पाँचों मुखों से माङ्गलिक

२) शंकर को देखकर देवताओं

३) सुनाया । इसे सुनकर

उनको आश्वासन देकर

४) ले भगवान् शंकर

५) सब

पूजायज्ञोपधामानां प्रतानां नियमस्य च । ये ये गूढा निहन्नास्तेषां भारेण पीडिता  
सदा द्विपन्ति ये पापा गोविप्रगुरवैष्णवान् । हरिं हरिकथाभक्तिं तेषां भारेण पीडिता  
राक्षचूडस्य भारेण पीडिताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेण परिपीडिता

जो कृष्णभक्ति से विमुख तथा भगवद्भक्तों का निन्दक है उन महापापियों  
के भार को सहन करने में असमर्थ है । जो अपने धर्म और आचार से हीन है  
एवं नित्यकर्मों से विचर्जित है तथा वेदों में जिनकी श्रद्धा नहीं है उनके भार से  
पीड़ित है । जो पुरुष पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र एवं अपने आश्रितवर्ग का  
पोषण नहीं करते हैं तथा जो मिथ्यावादी हैं, दया और सत्य से रहित हैं, गुरु  
और देवताओं के निन्दक हैं उनके भार से पीड़ित है । मित्र द्रोही, कृतघ्न, मिथ्या  
साक्षी देनेवाला, विश्वासघाती एवं धरोहर को पचानेवालों के भार से पीड़ित है ।  
हरिभगवान् के कल्याणयुक्त नामों के विक्रय करनेवालों के भार से पीड़ित है ।  
जीव को मारनेवाले, गुरुद्रोही ग्रामयाजी (भिखारी), लुब्धक, शवदाही (श्मशान में)  
शूद्रभोजी, पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत और नियमों को भंग करनेवालों के भार से  
पीड़ित है । जो मनुष्य गो, विप्र देवता और भगवद्भक्तों से सदा ही द्वेष करते  
हैं एवं जिनकी भगवान् हरि में तथा भागवती कथा में भक्ति नहीं है उनके भार से  
पीड़ित है । ऐसा कहकर बसुधा बारम्बार रुदन करने लगी । उसके रुदन को  
सुनकर ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारा भार दूर कर दूँगा । हे बसुन्धरे ! कार्यसिद्धि  
उपायों से होती है तुम्हारा भार भगवान् दूर करेंगे ।

यन्त्रं मङ्गलकुम्भश्च शिबलिङ्गश्च कुङ्कुमम् । मधुकाष्ठं चन्दनञ्च कस्तूरी तीर्थमृत्तिकाम्  
खड्गंगण्डकखड्गश्च स्फटिकं पद्मरागकम् । इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रुद्रार्धं कुशमूलकम् ॥

शास्त्रप्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमाजलम् ।

शङ्खं प्रदीपमालाञ्च शिलामन्त्र्याञ्च घण्टिकाम् ॥

निर्माल्यञ्चैव नैवेद्यं हरिद्वर्णमणितथा । मन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम् ॥  
गोरोचनाञ्च मुक्ताञ्च शुक्तिं माणिक्यमेव च । पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा ॥

... २३ नयालरत्रमव च । कुशद्विजं तीर्थतीर्थं गल्यं गोमूत्रगोमयम् ॥

स्वयि धे स्थापयिष्यन्ति मूढारचैतानि सुन्दरि ।

तिष्ठन्ति कालसूत्रे वै वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥

सुन्दरि ! देवयन्त्र, मङ्गलकलश, शिवलिङ्ग, कुङ्कुम ( रोली ), मधु, :

नूरी, तीर्थ की मृत्तिका, खड्ग ( तलवार ), गण्डे की खड्ग, स्फटिका

द्रुतीलमणि, सूर्यमणि, रुद्राक्ष, कुशमूल, शालग्राम भगवान् की :

पत्र, भगवान् का चरणोदक, दीपक, माला, घण्टिका (टाली,) भगवान्

आ नैवेद्य, हरितवर्ण की मणि, ग्रन्थियुक्त यज्ञसूत्र, दर्पण, श्वेत चामर,

ती, सीप, माणिक्य, पुराण, वेद, अग्नि, कर्पूर, परशु, चाँदी, स्वर्ण,

शा, द्विज, तीर्थ का जल, गन्ध ( दूध, दही, एवं घृत ), गोमूत्र, गोबर

को जो मूढ तुम्हारे पर स्थापित करता है वह निश्चय दश हजार वर्ष

नरक में वास करता है । इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर

7 और पृथ्वी के साथ जगत् को धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर के

में गये । कैलाश की सुन्दरता का वर्णन । वहाँपर अक्षयपट की

वर्म को धारण कर दक्षकन्या सती की अस्त्रियों के चने आभूषणों को

सिद्ध योगियों से सेवित एवं अपने पाँवों मुलों से माङ्गलिक

का उच्चारण करते हुए आशुतोष भगवान् शंकर को देखकर देवताओं

ने प्रणाम किया तथा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया । इसे सुनकर

व भगवान् शंकर दुःखित हुए । तत्पश्चात् उनको आश्वासन देकर

देवताओं सहित कैलाश में छोड़ ब्रह्माजी को साथ ले भगवान् शंकर

राज के मन्दिर में गये वहाँ से धर्मराज को साथ लिया तथा वे सब

के पास बैकुण्ठ में गये । वहाँ रत्नसिंहासन पर स्थित रत्नालङ्कार से

धारण किये हुए परमानन्दरूप भगवान् विष्णु को देख सबने भक्ति से

10 र ब्रह्माजी, शङ्कर तथा धर्म ने बहुत सुन्दर रूप में भगवान् की ।



६

ब्रह्मादिकृतलक्ष्मीनारायणस्तुति	५५४
भगवद्भक्तभक्तवर्णनम्	५५७
देवानां भूषणस्तुति	५५८
शङ्करपार्वतीसम्बन्धितस्तुति	५६३
श्रीकृष्णराधिकासम्बन्धितस्तुति	५६५

ब्रह्मा, शंकर और धर्मराज द्वारा लक्ष्मीनारायण भगवान् की स्तुति। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा कि हे देवगण ! मेरे रहते हुए आपलोगों को कोई भी चिन्ता नहीं है। आपलोगों के अभिप्राय को मैं जानता हूँ। संसार में जितने भी शुभ, अशुभ छोटे और बड़े कार्य समय से ही होते हैं "समय एव करोति बलाबलम्" अपने समय पर ही बृक्ष फल देते हैं। इस पृथ्वी पर बहुत-से राजा, मनु, इन्द्रादि देवता सब अपनी-अपनी कीर्ति एवं पाप, पुण्य, यश को लेशमात्र छोड़कर कालकवलित हो गये। हे देवतो ! "ब्रह्मादि वृण पर्यन्तं सर्वेषामहमीधरः" ब्रह्मा से वृण पर्यन्त सब जगत् का मैं स्वामी हूँ। मैं ही संसार की रचना करता हूँ तथा पालन एवं संहार भी मैं ही करता हूँ। लेकिन भगवद्भक्तों के संहार करने में समर्थ नहीं हूँ क्योंकि भक्त मेरे अनुगामी हैं तथा मेरे पदारचन में तत्पर हैं और मैं उनकी रक्षा के लिये निरन्तर उनके पास रहता हूँ। संसार में बारम्बार सम्पूर्ण चीजें उत्पन्न होती हैं परन्तु मेरे भक्त कभी भी नष्ट नहीं होते हैं। जैसे—

सर्वेषामपि संहर्ता क्षष्टा पाताऽहमेव च । नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारो नित्यदेहिनाम्  
भक्ता ममानुगा नित्यं मत्पादारचनतत्पराः । अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणहेतवे ।

सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभयन्ति पुनः पुनः ।

न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः ॥

भक्तगण अपने स्त्री, पुत्र एवं अपने मित्रों को छोड़ दिन-रात मेरे को भजते हैं

और मैं भी आप लोगों को छोड़कर उनको अहर्निश भजता हूँ। इसलिये हे देवता! आप लोग अपने-अपने अंशों से शीघ्र पृथिवी पर अवतरित होइये और मैं भी शीघ्र ही पृथ्वी पर आऊँगा। तदनन्तर देवताओं का पृथ्वी पर जन्मप्रद शङ्कर और पार्वती का पृथ्वी पर अवतरित होने में संवाद जिसमें शंकर ने कहा हे पार्वति ! तुम जाम्बवान् के घर जन्म लो। तदुपरान्त पार्वती को अभय दान। श्रीकृष्ण और राधा का संवाद कथन।

७

श्रीकृष्णजन्मपूर्वोपक्रमवर्णनम्

५७१

श्रीकृष्णजन्मवर्णनम्

५७१

ब्रह्मादिकृतश्रीकृष्णस्तवनम्

५७३

श्रीकृष्णस्य वरप्रदानम्

५७५

महर्षि नारद का भगवान् नारायण से यह प्रश्न कि महत्पुण्य को देनेवाला जन्म, मृत्यु और जरा को दूर करनेवाला भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म बताइये। वसुदेवजी किसके पुत्र थे एवं देवकी किसकी कन्या थी ? वसुदेव तथा देवकी हीन थी एवं उनके विवाह का वृत्तान्त कहिये। कंस ने देवकी के छै पुत्रों को क्यों मारा एवं भगवान् हरि का जन्म किस दिन हुआ मुझे कहिये। वसुदेवजी और देवकी ने पूर्वजन्म के पुण्य फल से ही श्रीहरि को पुत्ररूप में प्राप्त किया। देवमीढ़ के मारिषा नाम की स्त्री में वसुदेवजी उत्पन्न हुए जिनके जन्मसमय देवताओं ने दुन्दुभियां बनाईं जिससे वसुदेवजी का नाम आनकदुन्दुभि हुआ। यदुवंशी धातुक के ज्ञानसिन्धु देवक हुआ एवं देवक के देवकी नाम की कन्या हुई। यदुकुलाचार्य गर्गजी ने शास्त्र विधि से देवकी का सम्बन्ध वसुदेवजी से करवा दिया। विवाह के दहेज में देवक ने सहस्रों घोड़े, स्वर्णपात्र, अलंकार, सैकड़ों दासी एवं नानाप्रकार के द्रव्य, मणि रत्नादि दिये, उनको ग्रहण कर रथ में

बैठ विदा हुए उस समय कंस को सम्बोधित कर आकाशवाणी हुई कि हे राजेन्द्र ! तुम क्या प्रसन्न हो रहे हो हितकारक सत्य वचन सुनो । देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा । उन देववाक्यों के भय से क्रोधित हुआ पापी कंस तलवार हाथ में लेकर देवकी को मारने के लिये तैयार हुआ । बहिन को मारने के लिये उद्यत हुए कंस को नीतिशास्त्र में विशारद नीतिज्ञ वसुदेवजी ने कहा कि तुम राजनीति को नहीं जानते हो, मेरी हितकर बातें सुनो जो दोषों को नष्ट करनेवाली, यश को देनेवाली एवं शास्त्रोक्त हैं । हे राजन् ! इसके आठवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु है तब इसे मारकर दुष्कीर्ति एवं नरक की प्राप्ति क्यों करते हो ? धुद्र जन्तुओं एवं हिंसकों को मारने से मृत्युकाल में एक कर्मापण ( ८० रत्ती ताम्र ) देने से छुटकारा हो सकता है और अहिंसक को मारने से तो सौ गुना प्रायश्चित्त बतलाया है तथा मनु ने विशिष्ट जन्तुओं एवं पशुओं को कालविशेष में मारने पर सौगुना पाप कहा है । म्लेच्छ जाति के मनुष्यों को मारने से, सौ गुना पाप होता है । सौ म्लेच्छों को मारने से जो पाप होता है एक श्रेष्ठ शूद्र को मारने से होता है । इसी प्रकार नाना पापों को बतलाकर कहा कि जितना पाप ब्रह्महत्या से होता है उतना ही पाप स्त्री के वध में होता है । सौ स्त्रियों के वध से जो पाप होता है उतना ही बहिन के वध से होता है । इसलिये हे कुलदीपक ! इसे छोड़ दो ! इसके गर्भ से जो संतान होगी वह आपको दे दिया करूँगा । तदुपरान्त कंस ने देवकी के छः पुत्रों को क्रमशः मार दिया । देवकी के सप्तम गर्भ को माया ने आकर्षण कर रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया तब रक्षकों ने कंस से कहा कि देवकी के गर्भस्त्राव हो गया है । इस कारण से उस बालक का नाम सङ्घर्षण हुआ । देवकी के आठवें गर्भ में भगवान् का प्रवेश । गर्भगत भगवान् की जगद्योनि इत्यादि ४२ नामों से देवताओं द्वारा स्तुति । भगवान् का भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय रोहिणी नक्षत्र जयन्ती योग में जन्म हुआ यहाँ पर भगवान् ने अपना अति सुन्दर रूप नवीन मेघों के समान श्याम पीताम्बर



पारंग विषे हृत् मन्त्रिभ्य आदि के भूतों में विभूति की श्रुति में उग्राह  
 विरोर भयभावात् शान्त शक्त दिग्गता । त्रिमे देवस्य परममन्त्रिमे नामनाह  
 हो वसुदेव तथा देवकी ने गर्भ हो भगवान की श्रुति की । वसुदेवजी की प्रार्थना  
 से प्रसन्न हो भगवान् ने कहा कि तुम्हारी तपस्या का ही फल है जो मैं तुम्हारे  
 पुत्ररूप में प्राप्त हुआ हूँ । तुम पहिले तपस्वियों में भंग्य सुतना नामक प्रतापति के  
 उम समय तुमने पत्नी में मुक्त हो मुझे तपस्या से प्रसन्न कर मेरे समान पुत्र की  
 याचना की तब मैंने तुम्हें पर दिया कि तुम्हारे मेरे जेगा पुत्र होगा । वरदान  
 के अनन्तर मैंने सोपा प्रियोक्ती में मेरे समान कोई नहीं है इम हेतु मैं ही पुत्ररूप  
 में प्राप्त हुआ हूँ । मुझे तुम पुत्रभाव से भक्तों चाहे ब्रह्मभाव से अन्न में मुझे  
 प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाओगे । अब तुम शीघ्र ही मुझे व्रत के यशोदामवन  
 में स्थापित कर यहाँ से माया को यहाँ लाकर स्थापित करो । ऐसा कहकर  
 भगवान् हरि बालरूप हो गये । तदनन्तर वसुदेवजी बालक को लेकर नन्दजी के  
 यहाँ गये जहाँ लतिकागृह में सोई हुई यशोदा को देग्य यहाँ पर स्थित कन्या को  
 उठाकर भगवान् को वही छोड़ वापस कारागृह में आगये । पद्मान् उस कन्या को  
 ग्रहण कर कंस मारने को उद्यत हुआ उस समय वसुदेव एवं देवकी ने कहा कि हे  
 कंस तुम नीतिशास्त्र में विरारद हो अतः हमारे नीतियुक्त सत्य वचन सुनो । तुमने  
 हमारे छः पुत्रों को मारा है हेतात ! तुमको जरा भी दया नहीं आई । अब यह आठवीं  
 कन्या है इसे मारकर क्या तुम पृथ्वी पर मईश्वर्य प्राप्त करोगे ऐसा कहकर वसुदेव  
 देवकी कंस के सामने रोने लग गये । तब कंस ने कठोरतापूर्वक कहा मेरे वचनों  
 को सुनो । भाग्य से तृण भी पर्वत को नष्ट कर सकता है, मच्छर हाथी को और  
 छोटा कीड़ा सिंह को मार सकता है इत्यादि कहकर कंस ने बालिका को मारने की  
 इच्छा की । तब वसुदेव ने कहा इस निरपराध बालिका को क्यों मारते हो तदनन्तर  
 कंस ने उसको छोड़ दिया । एवं वसुदेव देवकी ने उसको ग्रहण कर ब्राह्मण को उस  
 बालिका के निमित्त धन दिया । वह भगवान् कृष्ण की बहिन हुई जिसका रुक्मिणी के

विवाह के समय में दुर्वासाजी के साथ पाणिप्रहण हुआ । यह भगवान् कृष्ण का जन्मचरित्र वर्णन जन्म, मृत्यु, जरा के विघ्न को नष्ट करनेवाला और पुण्य को देनेवाला है ।

८	जन्माष्टमीव्रतमाहान्म्यवर्णनम्	५७७
	सपोडशोपचारं हरिपूजाविधानवर्णनम्	५७६
	जन्माष्टमीव्रते पारणनिर्णयवर्णनम्	५८१

नारदजी का भगवान् नारायण से प्रश्न हे प्रभो ! व्रतों में उत्तम व्रत जन्माष्टमी व्रत का फल तथा जयन्ती योग का मामान्यतया फल कहिये । इस व्रत को न करने से क्या दोष होता है ? एवं जयन्ती में उपवास करने से क्या फल मिलता है एवं व्रत का पूजाविधान, यम नियम, उपवास और पारण का विधान क्या है ? उत्तर में भगवान् नारायण ने कहा कि भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को सावधान होकर हविष्यान्न भोजन करे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानादि नित्यकर्म कर व्रतोपवास का सङ्कल्प करे । मन्वादि दिवस की प्राप्ति में स्नान पूजादि का जो फल होता है उससे करोड़गुना फल भाद्रपद की कृष्णाष्टमी का होता है । जन्माष्टमी को जो अपने पितरों के लिये जलमात्र भी देता है उसके सौ वर्ष तक गयाश्राद्ध करने का फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है । नित्यक्रिय के अनन्तर सूतिकागृह का निर्माण; खड्ग से युक्त रक्षकों की नियुक्ति, बहुविध द्रव्य, घाल छेदन की कैची एवं यज्ञपूर्वक धात्री स्वरूपा नारी की नियुक्ति करे पश्चात् पादप्रक्षालन कर स्वच्छ घस्र पहिन आसन पर स्थित हो स्वस्तिवाचनपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करे तथा यमुदेव देवकी, यशोदानन्द, रोहिण्यलदेव, पत्नीदेवी, यमुन्धरा, ब्राह्मणी, अष्टमी, श्याम देवता एवं अश्वत्थामा सहित सप्तधिरंजीवों का आवाहन कर भगवान् हरि का ध्यान करे । फिर भगवान् कपोडशोपचार से पूजा करे । पूजनोपरान्त भक्तिभावयुक्त हो भगवान् के जन्मचरित्र की कथा सुने तथा रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल आङ्घ्रिक कर्म करे ।

भीहरि की पूजा करे मनुष्यमान् प्राद्वर्गों को भोजन कराये। पुनः प्रवहान्  
 व्यवस्था पर नारदजी का प्रश्न। भगवान् नारायण का उत्तर कि अर्ध रात्रि में  
 यदि एक पाद भी अष्टमी हो तो यही मुख्यकाल है एवं उगी में भगवान् हरि का  
 जन्म है। वेदविदों से सम्मन यही प्रधानकाल है; मगमी मद्रिन यदि अष्टमी  
 नक्षत्रयुक्त हो तब भी मगमी मद्रिन अष्टमी वर्जनीय है। व्रत करनेवाला रोहिणी  
 नक्षत्र के बाद पारण करे। सम्पूर्ण उपवासों में दिन में पारण करना ही भेयस्कर  
 है अन्यथा फल हानि होती है। रोहिणी व्रत को छोड़ किमी भी व्रत का पारण  
 रात्रि में नहीं करे। पारण के विषय में विशेष बात यह है :-

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यान् पारणं युयः। हन्यात् पूर्णं पुण्यमुपयामार्जिवं फलम्  
 तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं चतुर्गुणम्। तस्मात् प्रयत्नः कुर्यात् तिथिभान्ते च पारणम्  
 महानिशायां प्राप्तायां तिथिभान्तं यदा भवेत्। तृतीयेऽद्विमुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते प्री-  
 षण्मुहूर्ते ज्यतीते तु रात्रावेव महानिशा। लभते प्रहृष्ट्याश्च तत्र भुक्त्वा च नारद ॥

शुद्ध जन्माष्टमी व्रत करनेवाले मनुष्य को अभ्रमेध यज्ञ का फल मिलता है  
 एवं सप्त जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

६	यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम्	५८२
	वलदेवस्य जन्माख्यानवर्णनम्	५८५

नारदजी ने भगवान् नारायण से पूछा कि हे प्रभो ! भगवान् श्रीकृष्ण को  
 यशोदा मन्दिर में स्थापित कर घसुदेवजी के जाने पर नन्दजी ने पुत्रोत्सव के  
 सम्यन्ध में क्या किया ? गोकुल में भगवान् ने क्या किया तथा वहाँ पर  
 कितने वर्ष तक स्थित रहे ? भगवान् की रासक्रीड़ा और जलक्रीड़ा का विस्तार-  
 पूर्वक वर्णन कीजिये। नन्दजी, यशोदा और रोहिणी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त एवं  
 वलदेवजी का जन्म कहां हुआ ? इसका वर्णन कीजिये। भगवान् नारायण का  
 नारदजी को उत्तर—पूर्वजन्म में नन्दजी द्रोण नामक घसु थे और यशोदा धरा

उनकी पत्नी थी। रोहिणी सर्पमाता कद्रू थी उनका जन्मचरित्र तुम्हारे  
 हताई मुनो। एक बार पत्नी सहित द्रोण ने गीतमाधम के निकट गन्ध-  
 र्वन पर दस हजार वर्ष तक कृष्ण दर्शनार्थ तप किया परन्तु उनकी भगवान्  
 दर्शन नहीं हुए। तब वे हताश हो अमिडुण्ड बना प्रवेश करने को उद्यत  
 सी काल में आकाशवाणी हुई कि तुम गोकुल में श्रीहरि को पुत्ररूप में  
 तदनन्तर धरा और द्रोण का अपने घर के लिये प्रस्थान एवं भारतवर्ष  
 । अब देवताओं से भी मुणोप्य रोहिणीचरित्र मुनो। एक बार देवमाता  
 रजोदर्शन के बाद रति की इच्छा से अपने पति कर्यपजी को बाद  
 कामवाण से पीड़ित हुई पति के आगमन की प्रतीक्षा में घर में स्थित  
 तब उसने मुना कि कर्यपजी तो सर्पमाता कद्रू के घर हैं तब उसने  
 को शाप दिया कि तुम देवस्थान के योग्य नहीं हो अतः मानवीय योनि  
 जाओ। कद्रू ने जय देवमाता का शाप मुना तब उसने भी घड़ले में  
 योनि में जाने का शाप दिया। तत्पश्चात् कर्यपजी का अदिति के पास  
 उसकी वाञ्छापूर्ण करना। फिर अदिति को देवकीरूप में, सर्पमाता  
 हिणीरूप में एवं कर्यपजी का वसुदेवरूप में अवतरित होना। अब  
 त आलयान मुनो। रोहिणी, वसुदेवजी की प्रिय भायां थी एवं वसुदेवजी  
 रं कंस से डरी हुई सद्दर्पण की रक्षा के लिये गोकुल में चली गई। उपर  
 म गर्भ का माया द्वारा आकर्षण एवं रोहिणी के गर्भ में स्थापना।  
 त् प्रसूतेज से युक्त वलदेवजी का जन्म। प्रसन्न हुए नन्दजी द्वारा  
 त्त एवं गोपियों द्वारा जयजयकार। अब गोकुल में भगवान् श्रीकृष्ण  
 रेत्र मुनो। भगवान् श्रीकृष्ण को गोकुल में नन्दजी के घर में स्थापित  
 ती के जानेपर जयजयकार से युक्त मूनिहागार में नवीन नैष के  
 षाले अतीव सुन्दर नमः गृह के शिखर को देखते हुए पुत्र को देख  
 । हर्षित हुए। पशुधारी द्वारा शीतलजल से शालक को स्नान

श्रीहरि की पूजा करे तदुपरान्त शास्त्रों को मोक्षन करावे । पुनः प्राक्क  
 व्यवस्था पर नारदजी का प्रश्न । भगवान् नारायण का उत्तर कि आँ रात्रि  
 यदि एक पाद भी अष्टमी हो तो वही मुख्यकाल है एवं उमी में भगवान् हरि  
 जन्म है । वेदविदों से सम्मत यही प्रधानकाल है ; सप्तमी गतिन यदि अष्ट  
 नक्षत्रयुक्त हो तब भी सप्तमी गतिन अष्टमी यत्ननीय है । व्रत करनेवाला रोहि  
 नक्षत्र के बाद पारण करे । सम्पूर्ण उपवासों में दिन में पारण करना ही प्रेम  
 है अन्यथा फल हानि होती है । रोहिणी व्रत का छोड़ किमी भी व्रत का पार  
 रात्रि में नहीं करे । पारण के विषय में विशेष बात यह है : -

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात् पारणं युधः । हन्यात् पूर्णं पुण्यमुपयासाजितं क  
 तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रश्च चतुर्गुणम् । तस्मान् प्रयत्नः कुर्यात् तिथिभान्ते च पार  
 महानिशायां प्राप्तायां तिथिभान्तं यदा भवेत् । तृतीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते  
 पण्मुहूर्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा । लभते ब्रह्महत्याश्च तत्र भुक्त्या च नारद

शुद्ध जन्माष्टमी व्रत करनेवाले मनुष्य को अभिमेध यज्ञ का फल मिलता  
 एवं सप्त जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ।

६

यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम्

बलदेवस्य जन्माख्यानवर्णनम्

से प्रणाम किया तथा बुराल्लोम पूछ कहा कि क्या तुम साक्षात् ईश्वरी भगवती हो ? तुम्हारा स्थान कहाँ है क्या नाम है, यहाँ पर क्या काम है ? कही। तोपियों के बचनों को सुन पूतना ने कहा मैं मथुरा की रहनेवाली विप्रपत्नी हूँ। नन्दकुमार को देखने तथा आशीर्वाद देने आई हूँ। इस प्रकार उसके बचन सुन यशोदा का अपने पुत्र को उसकी गोद में देना। शिशु को गोद में लेकर पूतना का धारम्भार चुम्बन करना तथा भगवान् हरि को स्नान पान कराना और यशोदा से कहना कि हे गोपमुन्दरि यह तुम्हारा धालक अद्भुत है तथा गुणों में नारायण के समान है। भगवान् श्रीकृष्ण का विषयुक्त दुग्ध का अमृत की तरह प्राणों के साथ पान करना एवं पूतना का प्राण छोड़कर पृथ्वी पर गिरना तथा उसका स्थूल देह को छोड़कर सूक्ष्म देह में प्रवेश कर दिव्य रत्नसार से निमित्त रथ पर आरूढ़ हो पार्यद प्रवरों से वेष्टित दिव्य रूप धारण कर गोलोक में जाना। पूतना मोक्ष को देख नारदजी का नारायण से प्रश्न कि यह पुण्यवती सती राक्षसी रूप को क्यों प्राप्त हुई तथा किस पुण्य से भगवान् के दर्शन कर श्रीकृष्ण मन्दिर को गई ? तब भगवान् ने नारद से कहा कि बलि के यज्ञ में भगवान् धामन के मुन्दर रूप को देख बलिकन्या रत्नमाला ने उसपर पुत्रनेह किया तथा मन में कहा कि इसके सदृश मेरे पुत्र हो और मैं उसे स्नान देकर अपने बक्षःस्थल पर रखूँ। हरि भगवान् ने उसके मनकी बात जान कर इस जन्म में उसके स्नान पान कर मातृगति प्रदान की।

११ श्रीकृष्णबाललीलानिरूपणम्

५६०

तृणावर्तमोक्षवर्णनम्

न लिये

एक बार नन्दगोहिनी यशोदा गृहकर्म में आसन्नकालक को आवागमन हुए थी। सर्वान्तरयामी प्रभुका बाल्यरूप तन् श्रीकृष्ण को त्वाग कर जानकर भारयुक्त होना। भाराकान् शयन कराना तदनन्तर असुर

अष्टावक्र, भागुरि, सुमन्तु, धरत, जावालि, याज्ञवल्क्य, वैशम्पायन, यति, हंस, पेप्पलाद, मैत्रेय, करुप, उपमन्यु, गौरमुख, अरुणि, और्व, कक्षिवान्, भरद्वाज, वेदशिरा, शङ्खकर्ण और शौनक इन महानुभावों में से कौन हैं ? इसपर मुनि ने कहा कि मैं यादवों का चिर पुरोहित गर्ग हूँ तथा श्रीकृष्ण के नामकरण के लिये आया हूँ। पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण के नामों का वर्णन। राधा के नामों का वर्णन। राधा और श्रीकृष्ण का विवाह वृन्दावन में होगा तदनन्तर श्रीकृष्ण के भूत, भविष्यत् और वर्तमान में होनेवाले कार्यों का विवरण किया पुनः गर्गजी ने अन्नप्रासन संस्कार कराकर तन्निमित्त बहुतसा दान करवाया। पुनः गर्गजी का प्रस्थान।

१४	श्रीकृष्णबालचरित्रवर्णनम्	६०६
	नलकूचरमोक्षवर्णनम्	६११

एक समय यशोदा यमुना स्नान करने गई। आकर घर में क्या देखती है कि दधि, दुग्ध, घृत, तक्र (छाल) मक्खन के भाण्ड फूटे हुए हैं। तब बालकों से पूछा कि यह अद्भुत कर्म किसका है। तब बालकों ने कहा कि ये सब तुम्हारे ही पुत्र के कार्य हैं। बालकों का वचन सुन यशोदा हाथ में बेंत ले श्रीकृष्ण को मारने के लिये दौड़ी। श्रीकृष्ण भी आगेर दौड़ने लगे। माता को परिभ्रम से व्याकुल देख भगवान् ठहर गये। तब यशोदा ने बख से श्रीकृष्ण को बांध दिया। श्रीकृष्ण एक वृक्ष के मूल में लपके हो गये। उनके स्पर्श होते ही वृक्ष गिरपड़ा और दिव्य पुरुष हो गया। पुनः दिव्यरथ में बैठ अपने स्थान को चला गया। वृक्ष के शब्द को सुन यशोदा का कृष्ण को गोद में लेना। गोपों ने यशोदा को बहुत डांटा और नन्द का आगमन। नन्द ने यशोदा से कहा कि मैं आज ही बालक को लेकर तीर्थ जाऊँगा अथवा तुम यहाँ से चली जाओ। जैसे कहा है कि—

।। शतबापी ममं सरः । भरः शताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः॥

गोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम् । सुखप्रदोऽपि सत्युत्र इदं च परत्र च ॥  
पुत्रादपि परोबन्धुर्न भूतो न भविष्यति ।

इतना कहकर नन्दजी अपने घर में रहने लगे । नारदजी ने नारायण से पूछा कि वृक्षरूप से जो सुन्दर पुरुष हो गया वह कौन था और किस कारण से सुख की प्राप्ति हुई ? नारायण ने कहा कुबेर का पुत्र नलकूबर रम्भा के साथ वृन्दवन में क्रीड़ा के लिये गया वहाँपर मुनि देवल आ गये । मुनि ने रम्भा को नम्र देखकर दोनों को शाप दिया कि हे पापिष्ठ ! तुम वृक्ष होजाओ तथा रम्भे ! तुम मानुषी योनि को प्राप्त कर जन्मेजय की पत्नी बनो । मुनि ने कहा कि तुम श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श से पुनः अपने रूप को प्राप्त करोगे तथा रम्भे ! तुम इन्द्र के संयोग से फिर स्वर्ग में जाओगी । रम्भा के आख्यान पर नन्दजी का घर्षण । रम्भा का सुचन्द्र के घर में जन्म । पुनः जन्मेजय के साथ विवाह । जन्मेजय का अश्वमेध यज्ञारम्भ । यज्ञ के घोड़े को देखने के लिये जन्मेजय की पत्नी का आगमन । इन्द्र द्वारा उसका अपहरण । पश्चात् संभोगमात्र से रानी का देहत्याग यज्ञ की समाप्ति ।

१५	राधास्वरूपवर्णनम्	६१२
	राधाकृष्णसम्मेलनवर्णनम्	६१५
	ब्रह्मकृतराधाकृष्णस्तोत्रम्	६१७
	राधाकृष्णविवाहवर्णनम्	६१९

नन्दजी का श्रीकृष्ण को साथ ले वृन्दवन में गमन । श्रीकृष्ण की माया से आकाश मेघों से आच्छन्न हो गया एवं वर्षा बरसने लगी । यह देख श्रीकृष्ण का रुदन पुनः राधा का आगमन । राधा द्वारा श्रीकृष्ण को ले जाना । भगवान् के स्वरूप को देख राधा को मोह प्राप्ति । श्रीकृष्ण ने राधासे कहा कि हे राधिके !



तुम्हारे में और मेरे में कोई भी भेद नहीं है जैसे दुग्ध में घबलना, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध दे उगी तरह हम दोनों में कोई भेद नहीं है। जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घट को बनाने में समर्थ नहीं तथा स्वर्णकार सुवर्ण के बिना कुण्डल नहीं बना सकता। उसी तरह में तुम्हारे बिना सृष्टि रचना में समर्थ नहीं हूँ और हे राधे "सृष्टेराधारभूता त्वं धीजरूपोऽहमच्युतः" तुम्हारे बिना मुझे कृष्ण नाम से पुकारते हैं और तुम्हारे रहने से श्रीकृष्ण नाम से। जो कोई राधा और कृष्ण में भेद समझते हैं तथा निन्दा करते हैं उनको नरक की प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी ने राधाकृष्ण की स्तुति करते समय कहा कि—

पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः । आत्मना देहरूपा त्वमस्याधारस्त्वमेव हि  
अस्यानुप्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः ॥

ब्रह्माजी को राधा का घरदान। राधा और श्रीकृष्णका वेदमन्त्रोच्चारण-पूर्वक विवाह। श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा एवं श्रीकृष्ण का अन्तर्धान और राधा का विरह। श्रीकृष्ण का यशोदा के पास गमन।

१६	वकप्रलम्बकेशीनामुद्धारवर्णनम्	६२२
	वकादीनां पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम्	६२५
	त्रैमासिकव्रतवर्णनम्	६२७
	गोपानां वृन्दापनगमनम्	६३१

एक समय श्रीकृष्ण अन्य बालक एवं बलराम को साथ लेकर श्रीवन में क्रीड़ा करने गये वहाँ से मधुवन पहुँचे। वहाँ एक दैत्य वक के आकारवाला आया और श्रीकृष्ण को निगल गया जैसे अगस्त्यजी ने घातापी को निगल लिया था। यह देखकर सब हाहाकार करने लगे। इन्द्र ने वक के ऊपर मुनि के अस्थि से बना हुआ बस छोड़ा जिससे उसका एक पक्ष जल गया। चन्द्रमा ने वक पर शीतल छेदने से शीतल हो गया। यमराज ने यमदण्ड,

आयु ने वायव्यास, धरुण ने शिलावृष्टि, अग्नि ने अग्न्यस्र और ईशान ने त्रिशूल का प्रयोग किया तथापि असुर मरा नहीं। पुनः असुर के सब अङ्गों को जलाकर श्रीकृष्ण का निकलना। वृषरूप धारण कर प्रलम्बासुर का आगमन एवं बलराम द्वारा उसकी मृत्यु। केशी दानव का धोड़े के रूप में आना। श्रीकृष्ण को मस्तक पर रख आकाश में प्रस्थान पुनः भगवान् के तेज से उसकी मृत्यु। बक, प्रलम्ब, और केशी के पूर्वजन्म का वर्णन। गन्धवाह नाम गन्धर्व के चार पुत्र थे। वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक इनमें बड़ा वसुदेव तो दुर्वासा का शिष्य था एवं अविवाहित ही ब्रह्मतेज से शरीर त्याग श्रीकृष्ण का पार्षद होगया। सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक तीनों ही परम वैष्णव एवं भगवद्भक्त थे। एक दिन वे कमलों को लाने के लिये चित्रसरोवर पर गये वहाँ शङ्कर के गण उनको पकड़कर शङ्करजी के पास ले गये। शङ्करजी ने पूछा तुम कमलों को हरण करनेवाले कौन हो ? पार्वतीजी त्रैमासिक व्रत में सहस्र कमल से भगवान् का नित्य पूजन करती हैं इसलिये कमलों की रक्षा एक लाख यक्ष करते हैं। गन्धर्वों ने कहा कि हम गन्धवाह के पुत्र हैं भगवान् को नित्य कमल देकर जल पीते हैं। हम यह जानते हैं कि यह सरोवर पार्वती के लिये रक्षित है इसलिये आप हमारे कमलों को लेकर हमारा मनोरथ पूर्ण कीजिये। शङ्करजी ने कहा कि मेरे वैष्णव परम प्रिय हैं किन्तु मेरी स्त्रीकृति मिथ्या न होगी। जो पार्वती के व्रत में कमलों का हरण करेंगे वे आसुरी योनि को पावेंगे। श्रीकृष्ण के भक्तों का कभी भी अनिष्ट नहीं होता है "नहि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्" श्रीकृष्ण के दर्शन से दिव्यरूप की प्राप्ति होगी। त्रैमासिक व्रत का विधान जिसमें भगवान् का पूजन सहस्र कमलों से प्रतिदिन करे तथा राधा सहित श्रीकृष्ण के लिये घृतयुक्त तिलों की १०८ आहुति दे इस तरह तीन मास करे। अन्त में असंख्य ब्राह्मणों को भोजन करा दक्षिणा दान करे। इतने उपातों को देखकर सम्पूर्ण गोपों का वृन्दावन गमन।

गुहारे में और मेरे में कोई भी भेद नहीं है जैसे दूध में मक्खना, जमि में दाहिका शक्ति और पूण्यी में गन्ध है वही तरह हम दोनों में कोई भेद नहीं है जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घट को बनाने में समर्थ नहीं गया स्वर्णकार सुवर्ण के बिना गुण्डल नहीं बना सकता। उसी तरह मैं गुहारे बिना सृष्टि रचना में समर्थ नहीं हूँ और हे राधे "गृष्टेराधारभूता त्वं पीत्ररूपोऽममपुनः" गुहारे बिना मुझे कृष्ण नाम से पुकारते हैं और गुहारे रहने से भीकृष्ण नाम से। जो कौं राधा और कृष्ण में भेद समझते हैं तथा निन्दा करते हैं उनको नरक की प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी ने राधाकृष्ण की स्तुति करते समय कहा कि—

पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निरितिलाः स्त्रियः । आत्मना देहरूपा त्वमयाधारस्त्वमेव हि  
अस्यानुप्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः ॥

ब्रह्माजी को राधा का घरदान। राधा और श्रीकृष्णका वेदमन्त्रीधारण-पूर्वक विवाह। श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा एवं श्रीकृष्ण का अन्नधान और राधा का विरह। श्रीकृष्ण का यशोदा के पास गमन।

१६	वकप्रलम्बकेशीनामुद्धारवर्णनम्	६२२
	वकादीनां पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम्	६२५
	त्रैमासिकव्रतवर्णनम्	६२७
	गोपानां वृन्दावनगमनम्	६३१

एक समय श्रीकृष्ण अन्य बालक एवं बलराम को साथ लेकर श्रीवन में क्रीड़ा करने गये वहाँ से मधुवन पहुंचे। वहाँ एक दैत्य वक के आकारवाला आया और श्रीकृष्ण को निगल गया जैसे अगस्त्यजी ने वातापी को निगल लिया था। यह देखकर सब हाहाकार करने लगे। इन्द्र ने वक के ऊपर मुनि के अस्थि से बना हुआ वज्र छोड़ा जिससे उसका एक पक्ष जल गया। चन्द्रमा ने वक पर शीताम्ब छोड़ा उससे शीतार्त हो गया। यमराज ने यमदण्ड,

वायु ने वायव्यास, वरुण ने शिलावृष्टि, अग्नि ने अग्न्यस्र और ईशान ने त्रिशूल का प्रयोग किया तथापि असुर मरा नहीं। पुनः असुर के सब अङ्गों को जलाकर श्रीकृष्ण का निकलना। वृषरूप धारण कर प्रलम्बासुर का आगमन एवं बलराम द्वारा उसकी मृत्यु। केशी दानव का घोड़े के रूप में आना। श्रीकृष्ण को मस्तक पर रख आकाश में प्रस्थान पुनः भगवान् के तेज से उसकी मृत्यु। वक, प्रलम्ब, और केशी के पूर्वजन्म का वर्णन। गन्धवाह नाम गन्धर्व के चार पुत्र थे। वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक इनमें बड़ा वसुदेव तो दुर्वासो का शिष्य था एवं अविवाहित ही ब्रह्मतेज से शरीर त्याग श्रीकृष्ण का पार्षद होगया। सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक तीनों ही परम वैष्णव एवं भगवद्भक्त थे। एक दिन वे कमलों को लाने के लिये चित्रसरोवर पर गये वहाँ शङ्कर के गण उनको पकड़कर शङ्करजी के पास ले गये। शङ्करजी ने पूछा तुम कमलों को हरण करनेवाले कौन हो ? पार्वतीजी त्रैमासिक व्रत में सहस्र कमल से भगवान् का नित्य पूजन करती हैं इसलिये कमलों की रक्षा एक लाख यक्ष करते हैं। गन्धर्वा ने कहा कि हम गन्धवाह के पुत्र हैं भगवान् को नित्य कमल देकर जल पीते हैं। हम यह जानते हैं कि यह सरोवर पार्वती के लिये रक्षित है इसलिये आप हमारे कमलों को लेकर हमारा मनोरथ पूर्ण कीजिये। शङ्करजी ने कहा कि मेरे वैष्णव परम प्रिय हैं किन्तु मेरी स्त्रीकृति मिथ्या न होगी। जो पार्वती के व्रत में कमलों का हरण करेंगे वे आसुरी योनि को पायेंगे। श्रीकृष्ण के भक्तों का कभी भी अनिष्ट नहीं होता है "नहि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्" श्रीकृष्ण के दर्शन से दिव्यरूप की प्राप्ति होगी। त्रैमासिक व्रत का विधान जिसमें भगवान् का पूजन सहस्र कमलों से प्रतिदिन करे तथा राधा सहित श्रीकृष्ण के लिये घृतमुक्त तिलों की १०८ आहुति दे इस तरह तीन मास करे। अन्त में असंख्य ब्राह्मणों को भोजन करा दक्षिणा दान करे। इतने उत्पातों को देखकर सम्पूर्ण गोपों का घृन्दावन गमन।

१७	नगरनिर्माणवर्णनम्	६३३
	कलावत्युपाख्यानवर्णनम्	६३५
	पतिमहत्त्ववर्णनम्	६३७
	वृन्दावननगरनिर्माणवर्णनम्	६४१
	राधायाः षोडशनामवर्णनम्	६४५
	वृन्दावननगरवर्णनम्	६४७

नन्दादिकों के शयन करने पर कुबेर के किङ्करोँ द्वारा नगर बनाने के लिये सामग्री का लाना एवं विश्वकर्मा द्वारा नगर का निर्माण । सम्पूर्ण गोपों के लिये यथोचित स्थानों का निर्माण कर वृषभानु के गृह का निर्माण किया बहूपर कलावती का अपने पति के साथ निवास । नारदजी का कलावती विषयक नारायण से प्रश्न कि कलावती कौन थी जिसके लिये इतने सुन्दर स्थान की रचना विश्वकर्मा ने की ? नारायण ने कहा—कलावती पितरेश्वरों की मानसी कन्या एवं लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न और वृषभानु की स्त्री तथा राधा की माता थी । जिस राधिका की चरणरज से सम्पूर्ण पृथ्वीतल पवित्र हो गया । सद्भक्त उसकी सुदृढ़ भक्ति की इच्छा करते हैं । पितरेश्वरों से तीन मानसी पुत्रियों की उत्पत्ति जिनका नाम कलावती, रत्नमाला और मेनका था । रत्नमाला ने जनक को और मेनका ने पर्वतराज हिमालय को धरण किया । रत्नमाला की अयोनिसम्भवा सीता नाम की लड़की थी जिसका विवाह श्रीराम के साथ हुआ और मेनका की अयोनिसम्भवा पार्वती जिसका विवाह शङ्करजी से हुआ । कलावती का विवाह मनुवंश में उत्पन्न होनेवाले सुचन्द्र के साथ हुआ । कलावती ने सुचन्द्र को अपने मनोनुषूख अतिसुन्दर गुणवान् रूपवान् मान उसके साथ दिव्यरथ पर आरूढ़ हो पर्वतों की कन्दराओं में, द्वीपों में एवं एकान्तस्थानों में रमण करते हुए नवसहस्रके

संयाग से उन्हें दिन-रात की भी सुध नहीं रही। इस प्रकार हजार वर्ष मुहूर्तवत् व्यतीत हो गये। पश्चात् सुचन्द्र का विषयों से वैराग्य एवं कलावती के साथ तप के लिये विन्ध्याचल को प्रस्थान। सुचन्द्र को ब्रह्माजी का वरदान कि तुम्हारी मोक्ष होगी। इतना सुन कलावती ने कहा मेरे स्वामी को मुक्ति देते हो तो मेरी क्या गति होगी ? क्योंकि पतिव्रता स्त्रियों के एकमात्र पति ही देव हैं। जो स्त्री पतिभक्ता नहीं होती है उसे नानाविध नरकों की प्राप्ति होती है। स्वामी का वियोग बन्धु एवं पुत्रादिकों के वियोग से भी अधिक है। सन्त श्रीतुलसीदासजी ने भी अपने रामचरितमानस बालकाण्ड में जब श्रीराम ने सीताजी को अयोध्या में ही रहने को कहा तब सीताजी कहती हैं कि—

“जिय यितु देह नदी बिन बारी। तैसे ही नाथ पुरुष बिन नारी ॥”

साध्वी स्त्री के लिये पति से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं है।

नहि कान्तात्परोधनुर्न हि कान्तात्परः प्रियः ।

नहि कान्तात्परोदैवो नहि कान्तात्परो गुरुः ॥

नहि कान्तात्परोधर्मो नहि कान्तात्परं धनम् ।

नहि कान्तात्पराः प्राणा न कः कान्तात्परः स्त्रियः ॥

इसलिये हे ब्रह्मन् मैं आपको शाप दूंगी जिससे आपको स्त्रीवध का पाप लगेगा। तदनन्तर ब्रह्माजी ने कहा कि तुम दोनों की एक साथ ही मुक्ति होगी। कुछ स्वर्गभोगों को भोगकर फिर भारत में जन्म होगा और तुम्हारे राधा नाम की पुत्री होगी। सुचन्द्र का वृषभानु रूप में तथा कलावती का सुनन्दन की पुत्री रूप में उत्पन्न होना। वृषभानु एवं कलावती का विवाह। वृन्दावन नगर के निर्माण का वर्णन। वृन्दावन की व्युत्पत्ति कई तरह से बताई जाती है—केदार नामक एक राजा था जो सम्पूर्ण पृथ्वी का पाटक एवं धार्मिक था। वह अपने पुत्रों को राज्य दे अपनी रानी सहित तप करने चला गया। उसके वृन्दा नाम की पुत्री थी। उसने साठ हजार वर्ष तक तपस्या की और भगवान् कृष्ण

अंत नये घास को गाकर विष मुक्त जल पीने लगी जिम्मे उनही मृत्यु हो गई।  
 भगवान् ने योगसे उनको जीवदान दिया फिर कालिय के ग्यान पर गये। श्रीकृष्ण  
 द्वारा कालिय का दमन। सुरमा नामक नागपत्नी द्वारा भगवान् की मृति।  
 नागपत्नी को धरदान देकर कहा कि तुम मेरी धर्मपुत्री हो यह नाग मेरा तैवर्ष  
 है अब तुमको गरुड़ से भय नहीं है। मेरे चरणों के निहों को देव गरुड़ भी  
 प्रणाम करेगा। नागराज कालिय द्वारा श्रीकृष्ण की मृति करना। श्रीकृष्ण ने  
 नागराज को धरदान देकर कहा कि रमणक द्वीप में जाओ। नागराज के जाने  
 के बाद यमुना का जल निर्घिप हो गया। नारदजी ने पूछा कि कालिय अपने  
 पूर्व स्थान को छोड़ यमुना में क्यों रहने लगा। नारायण ने कहा कि नागराज  
 शेष की आज्ञा से नागगण प्रतिवर्ष फार्तिक की पूर्णिमा को पुष्करराज में पुष्प,  
 धूप, दीप, नैवेद्य और बलिदान से गरुड़ की पूजन करते हैं। अभिमानी कालिय  
 ने गरुड़ की पूजा नहीं की और पूजा की सामग्री को स्वयं ही भक्षण कर  
 गया। नागेन्द्र और गरुड़ का युद्ध। पराजित नागेन्द्र का यमुनाजल में प्रवेश।  
 यहांपर गरुड़जी नहीं जा सकते थे क्योंकि गरुड़जी को ऋषि सौभरि का शाप था।  
 ऋषि सौभरि ने यहां दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या की। गरुड़जी द्वारा जल से  
 मत्स्यों को पकड़ना। दुःखित हुए एक मच्छ ने ऋषि की शरण ली। मुनि ने  
 कहा हे गरुड़ तुम्हारी क्या योग्यता है और क्या मेरे सामने से इस जीव को  
 ले जा सकते हो ? यहां से चले जाओ। तुमको यह घमण्ड होगा कि मैं भगवान्  
 का पार्षद हूँ, किन्तु यह ध्यान रखना कि तुम्हारे जैसे वाहन भगवान् अनेक बना  
 सकते हैं इसलिये आज से कभी यहां नहीं आना। कालिय की मोक्ष। वन में  
 अग्नि का लगना। भगवान् के द्वारा दावाग्नि पान एवं गोपों की रक्षा।

२०	ब्रह्मणा गोवत्सादिहरणम्	६६७
	ब्रह्मकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम्	६६६

श्रीकृष्ण का क्रीड़ा निमित्त गोकुल गमन । ब्रह्मा का गौ के बत्सों एवं बालकों का हरण करना । भगवान् द्वारा अन्य बत्सादिकों का निर्माण । इस तरह एक वर्ष तक यमुनातट के पास क्रीड़ा करते रहे । ब्रह्माजी ने भगवान् के प्रभाव को जानकर स्तुति की । ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । जो भक्ति पूर्वक ब्रह्मकृत स्तोत्र को पढ़ता है वह इस लोक में सुख भोग अन्त में हरिपद को प्राप्त होता है । श्रीकृष्ण का बालकों की साथ लेकर अपने स्थान पर जाना ।

२१	इन्द्रयागवर्णनम्	६७०
	ब्राह्मणपूजनादौ गुणाः	६७३
	गोब्राह्मणमहत्त्ववर्णनम्	६७५
	इन्द्रमखमहानन्तरं गोवर्धनपूजावर्णनम्	६७७
	इन्द्रपराजयवर्णनम्	६७६
	नन्दकृत कृष्णस्तववर्णनम्	६८१

इन्द्रयाग का वर्णन । नन्दजी ने गोपियों को आज्ञा दी कि दही, दूध, घृत, मखन, गुड़ और मधु से इन्द्र की पूजन करो । गर्गादि मुनियों का आगमन । नन्दजी द्वारा मुनियों का सरकार । इन्द्रयाग के निमित्त धाजे बजाने लगे एवं अप्सरायें नाचने लगी । नाना तरह के पक्षान्न, फल एवं अनेक तरह के सुवर्ण और चाँदी के पात्र तथा बख सजाये गये । श्रीकृष्ण का क्रीड़ास्थान से घर आना । श्रीकृष्ण ने नन्दजी से कहा कि हे नन्द आप किसकी पूजा करते हैं । इसके करने से क्या फल होता है एवं प्रसन्न होने से देव क्या देता है ? जो पूजा



वेदविहित मही के यह दहनकारक है। ब्राह्मणों की पूजा मनुष्यों को देनेवाली है। ब्राह्मण के प्रसन्न होने में मनु देवता प्रसन्न होते हैं। देवता को नीच देकर ब्राह्मण को मही देता है उसकी पूजन की हुई निरर्थक होती है। भगवान् को नीचा न देकर जो भोजन करना है वह अन्न विद्या है एवं तब मृत के समान है। यह नियम सभी जगों के जिने समान रूप में लागू है।

अन्नं विद्या जयं मृतं मन्त्रिणोऽनिवेदिष्यम् ।

सर्वेषांश्च प्रमथिदं ब्राह्मणानां विरोधम् ॥

इसलिये ब्राह्मणों की पूजा बहुत बल देनेवाली है। ब्राह्मण के शरीर में महापापी भी प्रविष्ट हो जाते हैं। विद्या ही या मृत हो ब्राह्मण विष्णु का शरीर है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा कि "अविद्यो वा मविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनु" इसलिये हे नन्दजी अगर यह द्रव्य ब्राह्मणों को नहीं देंगे तो सब कार्य निष्फल हो जायेंगे। गौरी वृद्ध की जड़ सीपने में शाक्याय हरी-भरी हो जाती हैं उसी तरह भगवान् की पूजन करने में मनु देवताओं की पूजन हो जाती है। अथवा गोवर्धन की पूजा करो जो नित्य गडभों को बढ़ाना है तथा उनके चरने के लिए कोमल घास देता है। जिनका पुण्य मनु प्रत, दान और तप करने से तथा पृथ्वी की परिक्रमा करने से मिलता है उतना ही पुण्य गौओं को घास खिलाने से मिलता है। घास चरती हुई गौ को जो रोदता है वह ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण एवं गौ के अङ्गों को ताड़ना देता है उसको ब्रह्महत्या के समान पाप होता है और उसको कालसूत्र नरक की प्राप्ति होती है। इतना सुन नन्दजी ने कहा कि इन्द्र की पूजा परम्परा से होती आई है इससे अच्छी श्रुति और अन्नादि पैदा होते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन की पूजा करवाना। इन्द्रयाग भङ्ग होने से ध्वज पर इन्द्र का प्रकोप एवं मूसलाधार बर्षा का आरम्भ। नन्द द्वारा इन्द्र की स्तुति। श्रीकृष्ण का गोवर्धन धारण करना। प्रजवासियों की बर्षा से रक्षा। इन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। इन्द्रकृत स्तोत्र को जो

दना है उसको भक्ति की प्राप्ति होती है एवं जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और दुःखों से मुक्त जाता है यह श्रम में भी यमराज के पास नहीं जाता है। नन्द द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। गोवर्धन आख्यान के श्रवण तथा पठन का फल कथन।

२२	धेनुकागुरोपाख्यानवर्णनम्	६८३
	धेनुकवधवर्णनम्	६८७

श्रीकृष्ण का अन्व घालकों के साथ तालवन में प्रवेश। तालवन का रक्षक स्वरूपी धेनुक था। तालवन के फलों को भक्षण करने के लिये घालकों ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर कहा कि हे कृष्ण ! हम धेनुक से डरते हैं। तब श्रीकृष्ण ने कहा दैत्य से कोई भी भय नहीं है तुमलोग स्वच्छन्दता से फल खाओ। घालकों का फल तोड़ना एवं धेनुक का आगमन। राक्षस को देख घालकों का भयभीत होना। घालकों द्वारा राक्षस से रक्षा के लिये श्रीकृष्ण से प्रार्थना। श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा यह दानव बलि का पुत्र है। दुर्यास के शाप से गर्दभ योनि को प्राप्त हुआ है। इसलिए हे भ्रातः ! आप घालकों की रक्षा करें मैं इसको मारूँगा। इतना कह श्रीकृष्ण का दानव के पास जाना। दानव ने कहा तुम मेरे पिता के यज्ञ के भिक्षुक तथा राज्य हरण करनेवाले हो। मुनि दुर्यास के शाप से मैं गर्दभ योनि को प्राप्त हुआ हूँ तथा आपके चक्र से मेरी मुक्ति घटाई है तदनन्तर धेनुक द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति। धेनुकवृत्त स्तुति का जो पठन करता है उसको विद्या, लक्ष्मी, मुरुविता का ज्ञान, सालोक्यादिमुक्ति, यश और पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति होती है। धेनुक एवं श्रीकृष्ण का युद्ध तथा धेनुक की मृत्यु। श्रीकृष्ण का घालकों को साथ ले अपने घर पर जाना।

दुर्वाससः शापेन बलिन्दनस्य गर्दभन्वम्	६८६
साहसिकतिलोत्तमासंवाद्बर्णनम्	६६१
तिलोत्तमाबलिपुत्रयोर्दुर्वाससः शापः	६६७

नारदजी ने नारायण से पूछा कि बलिपुत्र को गर्दभ योनि की प्राप्ति कैसे हुआ ? इसपर नारायण ने कहा कि जिस कल्प में तुम उपवर्हण नामक गन्धर्व थे तुम्हारे ५० स्त्रियां थीं फिर ब्रह्माजी के शाप से तुम दासी पुत्र हुए। उस समय गव ब्राह्मणों के उच्छिष्ट भक्षण करने से ब्रह्मपुत्र नारद हुए थे उस कल्प की घाती हुई कहता हूँ। एक समय बलिपुत्र साहसिक सब देवों को जीतकर चन्द्रमादन पर्वत पर रहने लगा। तिलोत्तमा का चन्द्रलोक में जाने की इच्छा उसी तरफ से जाना। साहसिक और तिलोत्तमा का संवाद। साहसिक ने कहा हे तिलोत्तमे ! मैं तुम से गुप्त बात पूछना चाहता हूँ कि देव, दानव, गन्धर्व और राजाओं में तुम्हें कौन प्रिय हैं ? तिलोत्तमा ने कहा कि हे साहसिक ! मैं तुम्हें गुप्त बात कहती हूँ। विद्वान् पुरुष वेद, वेदाङ्ग एवं अन्य शास्त्रों के अन्त को जान सकता है लेकिन दिशा, स्वर्ग और स्त्रियों के अन्त को नहीं जान सकता है। स्त्रियों के युवा पुरुष यदि सर्वस्व हरण करनेवाला हो तथापि सदा प्रिय है परन्तु वृद्ध पुरुष विप से भी बढ़कर अप्रिय है; जैसे—

विपादप्यप्रियो वृद्धो रत्नादपि च योपिताम् ।

युवा सर्वस्वहर्ता चेत्राणेभ्योऽपि परः प्रियः ॥

इस प्रकार बुल्लटाओं के चरित्र का वर्णन कर उसने कहा कि मेरे देवताओं तथा गन्धर्वादिकों में बहुत से प्रिय हैं परन्तु चन्द्रमा में मेरा विशेष प्रेम है। चन्द्रस्थान से वापिस आपके पाम आऊंगी। इतना सुन हँसकर साहसिक ने कहा—“कामिनी! बलात्कारो न घमों धर्मिणा प्रिये”। तिलोत्तमाने कहा कि मैं आपको क्रोधित कर चला पाम नहीं आऊंगी। जो पुरुष स्त्री का सम्मान रखता है उसको पद-पद पर हुए

प्राप्ति होती है। तिलोत्तमा एवं साहसिक का प्रेम मिलन। अत्यधिक कामासक्त होने से मुनि दुर्वासा का ध्यानभङ्ग। मुनि ने कहा कि हे गर्दभाकार ! बड़ी अपनी-अपनी जाति से लज्जा करते हैं केवल पशु ही लज्जा नहीं करते। सलिये हे दैत्य ! तुम्हें दानवी योनि की प्राप्ति होगी। पुनः दानव की प्रार्थना पर दुर्वासा ने कहा तालवन में गर्दभ योनि से श्रीकृष्ण द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी। तिलोत्तमा से कहा कि तुम बाणपुत्री उपा होओगी।

२४	कन्दलीदुर्वाससोः परिणयः	६६८
	कन्दलीं प्रति दुर्वाससः शापः	७०१

तिलोत्तमा और साहसिक के शृङ्गार को देख मुनि दुर्वासा को कामोत्पत्ति। "संसर्गं जा दोषगुणा भवन्ति" वसी तरह जितेन्द्रिय होते हुए भी मुनि अपने मनोद्वेष को न रोक सके। और के कन्दली नाम की पुत्री थी वह अयोनिजा थी तथा दुर्वासा से दूसरे को पति नहीं चरण करती थी। कलहप्रिय एवं कदु-भाषिणी थी। उसे देख मुनि दुर्वासा को मोह। दुर्वासा ने कहा—  
नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधकम् । व्यवधानं तपस्यायाः सततं मोहकारणम् ॥  
कारागारे च संसारे दुर्वहं निगडं परम् । अच्छेद्यं ज्ञानखड्गैश्च महद्भिः शङ्करादिभिः  
संसार में नारीरूप मुक्ति मार्ग का रोधक है एवं तपस्या को खण्डित करने-  
वाला है परन्तु श्रेष्ठ स्त्री का सङ्ग ही उत्तम है।

मतिश्चैवावशीलान्ता मुस्त्री जन्मनि जन्मनि ।

यावज्जीवी च मुस्त्रीको न तावज्जन्मखण्डनम् ॥

लेकिन भगवान् का स्मरण सब कार्यों से उत्तम है। इतना कहकर मुनि ने कहा कि मैं तुम्हारी कन्या की सौ कटूक्तियों को क्षमा करूँगा। पश्चात् इसको फल मिलेगा। मुनि दुर्वासा एवं कन्दली का बेदोक्त रीति से विवाह एवं और

का कन्या वियोग में दिग्दह । और ने अपनी कन्या से पारिव्राज्य धर्म का उद्देश्य कर कहा—“पनिमोषा परो धर्मः सर्वमाश्रयं पृथगे” पति मोषा स्त्री के निने मरणे उत्तम धर्म एवं कर्म है । कन्दली द्वारा आकारण ही मुनि से कन्द । वननाट मुनि ने सौ कट्टितियों को भ्रमा कर कहा गुप्त भाग ही जाओगी वध्या कन्दली का भ्रम होना । आकारा में विन कन्दली के तीन द्वारा दुर्वासा में प्रार्थना । इतना मुन मुनि को मूर्छा । शिशुभर जनार्दन का मुनिका ज्ञानोपदेश । मुनि का तपस्या में रत होना । कन्दली का कन्दली जानि में प्रकट होना । माहमिहरीय का तालयन में गर्भरूप में तथा गिलोत्तमा का पात्रपुरी उपा के रूप में जन्मवर्धन ।

२५	दुर्वागमं प्रति और्यग्रावः	७०३
	अम्बरीषोपाख्यानम्	७०४
	दुर्वाससो मोक्षणार्थं सूर्यदेवानां भगवन्स्तुतिस्मरणम्	७११

सरस्वती नदी के तट पर तपस्या करते हुए और्य का धीतयस्त्र ( पोती ) वायु से धारण किया गया पृथ्वी पर गिर पड़ा । यस्त्र के गिरने से मुनि ने ध्यान से देखा तो कन्या का वृत्तान्त मालूम हुआ । दुःखी और्य का दुर्वासा के पास गमन । कुपित और्य की दुर्वासा के प्रति उक्ति कि आप कमलाशा अनमूया अत्रि के अंश से भगवान् शङ्कर की कृपा से उत्पन्न हुए हो । मेरी पुत्री को स्वल्पापराध के निमित्त भस्म किया है अतः आपका भी महान् पराभव होगा । इस पर नारदजी ने नारायण से दुर्वासा का पराभव किसने किया ? यह पूछा । तब नारायण ने कहा कि सूर्यवंश में अम्बरीष नाम का राजा महान् प्रतापी एवं विष्णुभक्त था । उसकी रक्षा भगवान् का चक्र दिन-रात करता था । राजा एकादशी का व्रत कर द्वादशी को ब्राह्मणभोजन कराकर स्वयं भोजन करने के लिये तैयार हुआ । तब मुनि दुर्वासा का आगमन हुआ । दुर्वासा द्वारा भोजन की याचना करना । मुनि का अधमर्षण जप करने के लिये जाना । ऋषि वशिष्ठ का राजा के पास

माना । राजा ने कहा दुर्वासाजी भोजन के लिये कहकर गये हैं और द्वादशी अतिथि समाप्त हो रही है इस विषय में मुझे क्या करना चाहिये ? वशिष्ठ ने कहा जो मनुष्य द्वादशी बीतने पर त्रयोदशी में पारण करता है उसका उपवास का फल नष्ट हो जाता है तथा स्वर्ग भी नष्ट हो जाता है । भक्ष्य द्रव्य से मदिरा के समान तथा ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है । जो मनुष्य अतिथि को भोजन नहीं कराता है वह कुम्भीपाक नरक में जाता है उसे सौ वर्ष तक चाण्डाल योनि मिलती है । इसलिये श्रीकृष्ण भगवान् का चरणामृत पीकर पारण करो यही एकमात्र उपाय है । तत्पश्चात् मुनि का आगमन तथा हत्या की उत्पत्ति । भगवान् का चक्र छूटा को जलाकर मुनि का पीड़ा करने लगा । चक्र से दुःखित हुए दुर्वासा ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु की शरण में गये परन्तु कोई भी रक्षा न कर सके पुनः विष्णु ने कहा—

अहंप्राणा वैष्णवानां मम प्राणाश्च वैष्णवाः । तानेव द्वेष्टि यो मूढो ममासूनाश्च हिंसकः ।

इसलिये हे महामुने ! अम्बरीष की शरण जाओ वही तुम्हारी रक्षा करेगा । पुनः मुनि की रक्षा के लिये ब्रह्मादि देवों ने भगवान् विष्णु की स्तुति की । प्रसन्न हुए भगवान् ने कहा कि मैं मुनि की रक्षा तो अवश्य करूँगा परन्तु अम्बरीषके घर पारण करने से ही रक्षा होगी । इसके बाद मुनि का अम्बरीष गृह गमन एवं भोजन करना ।

२६

एकादशीव्रतविधानवर्णनम्

७१३

एकादशीव्रतनिरूपणम्

७१७

एकादशी व्रत का माहात्म्य एवं विधान बहुत ही सुन्दर है । जैसे पृथ्वी में गणेश, विद्वानों में सरस्वती, शास्त्रों में वेद, नदियों में गङ्गा, प्राणियों में वैष्णव, मित्रों में गुराड, वृक्षों में पीपल, पुष्पों में तुलसी, महीनों में मार्गशीर्ष, ऋतुओं में वसन्त, आदित्यों में सूर्य, एकादश रुद्रों में शङ्कर, आठ बसुओं में भीष्म, राजाओं

श्रीराम, सिद्धों में कपिल और मुन्दरियों में रम्भा उत्तम है उसी तरह व्रतों में एकादशी व्रत है। एकादशी के दिन जो मनुष्य अन्न खाता है उसको नरकों की प्राप्ति होती है। दशमी को एक समय भोजन कर एकादशी को उपवास तथा द्वादशी को पारण करना चाहिये। जो मनुष्य कलामात्र दशमी के दिन लङ्घन (उपवास) करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती है तथा वंश की हानि होती है। द्वादशी को उपवास कर त्रयोदशी को पारण करने में दोष नहीं है। जिसदिन सम्पूर्ण एकादशी हो तथा दूसरे दिन प्रभात में किञ्चिन्मात्र हो तो उसी दिन (दूसरे दिन) व्रत करना चाहिये। दशमी, एकादशी और द्वादशी यदि साठ घटी हो तो गृहस्थों को पूर्व दिन उपवास तथा यतियों को दूसरे दिन करना चाहिये। वैष्णव, यति विधवा, सन्यासी, भिक्षु और ब्रह्मचारियों को सभी एकादशी उपोष्य हैं। स्मार्त मतवाले गृहस्थी शुद्धा एकादशी ही करते हैं उनको कृष्णा के उल्लंघन में दोष नहीं है। हरिश्चयनी एवं हरिप्रबोधिनी के बीचवाली कृष्णपक्ष की एकादशी गृहस्थ करे और नहीं।

शयनीबोधनीमप्ये या कृष्णैकादशीभवेत्। सर्वोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन  
व्रत के दिन भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा विधान से करे तथा रात्रि में जागरण करे।

२७	गोपीवस्त्रापहरणे जपदुर्गाव्रतकथनम्	६१८
	ब्रह्मकृतजपदुर्गास्तोत्रम्	७२६
	गोपीवस्त्रापहरणम्	७२१
	गौरीव्रतवर्णनम्	७२५
	गौरीव्रतकथावर्णनम्	७२७
	राधायै पार्वत्या वरः	७२६
	राधाकृष्णमंवादावर्णनम्	७३१

हेमन्त के प्रथम महीने में गोपिकाएँ यमुना नदी के किनारे मिट्टी की पार्वती

बनाकर कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये "ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्न-  
विनाशिन्यै नमः" इस मन्त्र से पूजन करने लगी। मधुकैटभ से पीड़ित ब्रह्मा ने  
जय दुर्गा की स्तुति की। प्रसन्न हुई दुर्गा द्वारा ब्रह्मा को कवच दान। ब्रह्मा ने  
इस स्तोत्र को महेश को दिया जिससे शङ्करजी ने त्रिपुरासुर की जीत लिया। उसी  
स्तोत्र के प्रभाव से गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त किया। गोपकन्याकृत  
स्तोत्र सम्पूर्ण वाञ्छित फलों को देनेवाला है। इसको शैव, शाक्त, एवं वैष्णव यदि  
भक्तियुक्त पढ़ते हैं तो दुःख से छूट जाते हैं। इस तरह प्रत करती हुई गोपियों  
प्रतान्त के दिन नम्र हो जल में स्नान करने गईं। नम्र स्नान शास्त्रों में निषिद्ध है  
इसलिये कृष्ण द्वारा गोपिकाओं के वस्त्रों का अपहरण। गोपियों का भगवान् से  
वस्त्र मांगना भगवान् ने कहा कहा है गोपिकाओं सुनो।

प्रते तु नम्रा या स्नाति तां स्यो वरुणः स्वयम्। वरुणानुचरावासश्चक्रुर्वस्तुविनिर्हृतिम्॥

नम्र स्नान करना निषिद्ध है अतः यह वरुण का प्रकोप है। राधा की  
आज्ञा से नम्र गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के पास वस्त्र लाने के लिये जाना। राधा  
द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। इस स्तोत्र को जो कुमारी एक वर्ष तक सुनती है  
उसे श्रीकृष्ण के समान पति प्राप्त होता है। राधाकृत स्तोत्र को विपत्ति में पड़ने  
से सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा बहुत दिन से गया हुआ धन फिर मिल जाता है।  
इसके पाठ से पतिभेद, पुत्रभेद, मित्रभेद एवं सङ्कट में पड़ने से सब बाधा दूर हो  
इष्ट वस्तु की प्राप्ति होनी कही गई है। श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के वस्त्र दान। गौरी प्रत  
का विधान जिसमें पूर्व दिन उपवास कर दूसरे दिन मार्गशीर्ष की संक्रान्ति में शुद्ध  
वस्त्र धारण कर गणेश, सूर्य, बलि, नारायण, शिव और दुर्गा की पूजन करे। पुनः  
बालुका की गौरी बना पाद्यादि षोडशोपचार से पूजन करे। इस प्रत को कुशध्वज  
की पुत्री वेदवती ने किया जिसके फलस्वरूप समाप्ति के दिन साक्षात् पार्वती  
प्रसन्न हो वरदान देने के लिये प्रगट हुई। पार्वती ने कहा कि प्रेतायुग में अयोध्या  
नगरी में दशरथ के घर रामावतार होगा और तुम मिथिला में जनकपुत्री बनोगी



मही श्रीराम सुन्दरी के प्रति होगी) विधिवत्पूर्ति में मेरी कान्हे हुए राजा नन्द के हस्त के अग्रभाग द्वारा कान्हे में शीता की वर्णन। राधा द्वारा पार्वती की स्तुति करना। राधा को पार्वती का वन्दन—

यथा श्रीभाग्यगुणार्द्रं हस्त्य भीरुविरिण्णे ।

तथा श्रीभाग्यगुणा न्वं भव कृष्णाय मुन्दरि ॥

राधा और भीकृष्ण का सम्वाद वर्णन ।

२८	रागक्रीड़ाप्रमोदवर्णनम्	७३२
	रागक्रीड़ायां गोपनाभारनम्	७३३
	रागक्रीड़ावर्णनम्	७३४

भीकृष्ण का वृन्दावन में रामक्रीड़ा प्रारम्भ करना। गुरली के शब्द में राधा को मोह। जागृत होकर राधा का सुरलीशब्द ३३ मणियों का कृष्ण के पास जाना। सुरलीला के सङ्ग से और भी १६ हजार मणियों का आगमन। दशहजार सखियों के साथ वृन्ती गोपी का आगमन। कदम्बमाला का १३ हजार सखियों के साथ, यमुना के साथ १४ हजार, जाह्नवी के साथ ६ हजार, पद्मसुती के साथ ६ हजार, सावित्री का १६ हजार सखियों के साथ, स्वयं प्रभा का सात हजार सखियों के साथ रामक्रीड़ा में आगमन; मुधामुखी के साथ १४ हजार गोपिकाएँ, शुभा नामक गोपी के साथ भी १४ हजार, पद्मा के साथ १४ हजार, सर्वमङ्गला के साथ १६ हजार, गौरी एवं पद्मा के साथ १४ हजार, काठिका, कमला एवं दुर्गा के साथ १६ हजार गोपियों का आगमन। सरस्वती के साथ १३ हजार, भारती के साथ १० हजार, अपर्णा के साथ १४ हजार, रति के साथ १४ हजार, गङ्गा के साथ १४ हजार, अम्बिका के साथ १६ हजार, सती के साथ १३ हजार, नन्दिनी के साथ दश हजार: सुन्दरी के साथ १३ हजार,

कृष्णप्रिया और मधुमती के साथ १६ हजार, चम्पा के साथ १३ हजार और चन्दना का १६ हजार सखियों के साथ रासक्रीडार्थ आगमन। इस प्रकार रात्रि में भाण्डीर, श्रीवन, कदम्बकानन, नारिकेलवन, पूगवन, कदलीवन, निम्बारण्य, मधुवन, जम्बीर कानन, तुलसी कानन, कुन्दवन, चम्पक कानन, बदरी कानन, बिल्ववन, नारिकेल कानन, अश्वत्थ कानन, वंशवन, दाडिम कानन और मन्दर कानन इत्यादि ३३ वनों में गोपिकाओं के साथ रासक्रीड़ा महोत्सव का वर्णन।

२६	रासक्रीड़ावर्णनम्	७४२
	अष्टावक्रस्य कृष्णसमीपेगमनम्	७४३

गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के साथ रासक्रीड़ा का वर्णन। ऋषि अष्टावक्र का श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आगमन। अष्टावक्र को देखकर राधा का हँसना तथा श्रीकृष्ण का राधा को हास्य से रोकना। अष्टावक्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना स्तुति के पश्चात् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रकार योग से शरीर का त्याग। अष्टावक्र के द्वारा किये गये स्तोत्र को जो पढ़ता है उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

३०	श्रीराधाकृष्णसंवादवर्णनम्	७४५
	असितकृतशिवस्तोत्रम्	७४७
	देवलरत्नावल्योः परिणयः	७४६

राधा और श्रीकृष्ण का संवाद वर्णन। मुनि अष्टावक्र के मरने के बाद श्रीकृष्ण का दाहक्रिया करना। देव विमान का आगमन। मुनि का गोलोचन गमन। राधा का अष्टावक्र के रहस्य को पूछना तथा श्रीकृष्ण का राधा को उत्तर देना। मैं तुझे अष्टावक्र का आन्यान कहता हूँ जिसके सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा के मन से सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार क

तपस्वि । ब्रह्माजी ने उनको सृष्टि रचने के लिये आदेश दिया लेकिन वे तप करने ही  
 चले गये तपश्चात् अग्नि आदि ऋषियों की उत्पत्ति । वे सप्त गृह्यधर्म में प्रवृत्त हो  
 गये । मुनि असित का पुत्र की प्राप्ति के लिये पत्नी महित दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या  
 करना । पुत्र प्राप्ति न होने से ऋषि का प्राण त्यागने के लिये उद्यत होना । मुनि को  
 आकाशवाणी हुई कि क्यों प्राण त्यागते हो शङ्कर के पास जाकर उनसे मन्त्रपद  
 कर सिद्ध करो । मुनि का शिष्य के पास जाकर स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न  
 हो शङ्कर ने कहा कि मेरे समान ही मेरे अंश से तुम्हारे पुत्र होगा । असित के  
 देवल नामक पुत्र की प्राप्ति । देवल का सुयज्ञ राजा की कन्या रत्नावली के  
 साथ विवाह । पश्चात् सम्पूर्ण सुखों का परित्याग कर रात्रि में शयन करती हुई  
 गृहिणी को छोड़ देवल का तप के लिये गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान । रत्नमाला  
 का स्वामी विरह में देह त्याग । जितेन्द्रिय देवल की दिव्य हजार वर्ष तक  
 तपश्चर्या एवं त्रिलोकी के चित्त को मोहन करनेवाला वेप घनाकर अप्सरा रम्भा  
 का आगमन । रम्भा द्वारा देवल से रति की याचना । देवल का रम्भा को उत्तर-  
 धर्मोऽयं मुक्तकाले च स्वयोपिति रतोद्विजः । सर्वत्रपूजितः शश्वदिह लोके परत्र च ॥  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोपिति । याति तस्यापूजितस्य रुष्टालक्ष्मीर्गृहादपि  
 श्हातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु । परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत् ॥  
 ऐसे-ऐसे सुन्दर वेद के सारभूत वाक्यों का कहना । रम्भा का क्रोधित होकर  
 शाप देना । शाप के प्रभाव से देवल का विकृतरूप होना एवं उसके आठ अङ्ग  
 टेंढे देखकर भगवान् द्वारा अष्टावक्र नाम रखना । तदनन्तर मलयाचल पर्वत पर  
 साठ हजार वर्ष तक परम तप कर प्रभु में लीन होना ।

भगवान् श्रीकृष्ण से राधिका का प्रश्न कि जो तीनों लोकों का रचनेवाला तथा तप के फल को देनेवाला विधाता है वह कुलटा के शाप से कैसे अपूर्ण हुआ ? तब भगवान् ने कहा कि रैवत मन्वन्तर में तपस्वी, वैष्णवश्रेष्ठ, ज्ञान एवं परमधार्मिक सुचन्द्र नाम का राजा हुआ । उसने मलयाचल में एक सहस्र वर्ष तक दुश्चर तप किया । जिसे देखकर कृपालु ब्रह्माजी उस तपःस्थान में घर देने लिये आये एवं कमण्डलु के जल से सिञ्चन कर वर दिया । तत्पश्चात् आकाश दिव्यरथ का आगमन तथा राजा का पार्षदरूप हो भगवद्लोक में गमन ब्रह्मलोक में जाते हुए ब्रह्माजी को देख मोहिनी का मोहित होना । जितेन्द्रि ब्रह्माजी उसकी मोहित अवस्था देखकर भी बिकार को प्राप्त नहीं हुए और अपलोक में चले गये । मोहिनी का दिन-रात ब्रह्माजी को चिन्तन करना । मोहिनी एवं रम्भा का संवाद । रम्भा द्वारा मोहिनी को उपाय बताना । मोहिनी के पुण्ड्र में कामार्थ तपस्या करना । कामदेव का आगमन एवं मोहिनी के सा ब्रह्मलोक में गमन । मोहिनी का नाच-गान से ब्रह्माजी को मोहित करना । का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः । विज्ञाय ब्रह्मा तद्द्वारं नतवक्त्रो बभूव ह हतोद्यमा मोहिनी का कामदेव की स्तुति करना । यह स्तोत्र मोहिनी के गन्धमादन पर्वत पर दुर्वासा ने दिया था । कामी मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक पढ़े उसको अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति एवं साध्वी पत्नी की प्राप्ति होती है ।

उत्पत्ति । ब्रह्माजी ने उनको गृष्टि रगने के लिये आदेश दिया लेकिन वे तप करने  
 चले गये तत्पश्चात् अग्नि आदि ऋषियों की उत्पत्ति । वे गय गृह्यधर्म में प्रवृत्त  
 गये । मुनि असित का पुत्र की प्राप्ति के लिये पत्नी महिष दिव्य हजार वर्ष तक तप  
 करना । पुत्र प्राप्ति न होने से ऋषि का प्राण त्यागने के लिये उत्थान होना । मुनि  
 आकाशवाणी हुई कि क्यों प्राण त्यागते हो शङ्कर के पास जाकर उनसे मन्त्र  
 कर सिद्ध करो । मुनि का शिव के पास जाकर स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न  
 हो शङ्कर ने कहा कि मेरे समान ही मेरे अंश से तुम्हारे पुत्र होगा । असित के  
 देवल नामक पुत्र की प्राप्ति । देवल का सुयज्ञ राजा की कन्या रत्नावती के  
 साथ विवाह । पश्चात् सम्पूर्ण सुखों का परित्याग कर रात्रि में शयन करती हुई  
 गृहिणी को छोड़ देवल का तप के लिये गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान । रत्नावती  
 का स्वामी विरह में देह त्याग । जितेन्द्रिय देवल की दिव्य हजार वर्ष तक  
 तपश्चर्या एवं त्रिलोकी के चित्त को मोहन करनेवाला वेप घनाकर अप्सरा रम्भा  
 का आगमन । रम्भा द्वारा देवल से रति की याचना । देवल का रम्भा को उत्तर-  
 धर्मोऽयं मुक्तकाले च स्वयोपिति रतोद्विजः । सर्वत्र पूजितः शश्वदिह लोके परत्र च ।  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोपिति । याति तस्यापूजितस्य रुष्टालक्ष्मीर्गृह्णाति  
 इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु । परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षात् बसेत्  
 ऐसे-ऐसे सुन्दर वेद के सारभूत वाक्यों का कहना । रम्भा का क्रोधित होना  
 शाप देना । शाप के प्रभाव से देवल का विकृतरूप होना एवं उसके आठ हा  
 टेढ़े देखकर भगवान् द्वारा अष्टावक्र नाम रखना । तदनन्तर मलयाचल पर्वत प  
 साठ हजार वर्ष तक परम तप कर प्रभु में लीन होना ।

भगवान् श्रीकृष्ण से राधिका का प्रश्न कि जो तीनों लोकों का रचनेवाला था तप के फल को देनेवाला विधाता है वह कुलटा के शाप से कैसे अपूर्ण हुआ ? तब भगवान् ने कहा कि रैवत मन्वन्तर में तपस्वी, वैष्णवश्रेष्ठ, ज्ञान एवं परमधार्मिक सुचन्द्र नाम का राजा हुआ । उसने मलयाचल में एक सहस्र वर्ष तक दुश्चर तप किया । जिसे देखकर कृपालु ब्रह्माजी उस तपःस्थान में घर देने लिये आये एवं कमण्डलु के जल से सिञ्चन कर घर दिया । तत्पश्चात् आकाश दिव्यरथ का आगमन तथा राजा का पार्षदरूप हो भगवद्लोक में गमन ब्रह्मलोक में जाते हुए ब्रह्माजी को देख मोहिनी का मोहित होना । जितेन्द्र ब्रह्माजी उसकी मोहित अवस्था देखकर भी विकार को प्राप्त नहीं हुए और अप्स लोक में चले गये । मोहिनी का दिन-रात ब्रह्माजी को चिन्तन करना । मोहिनी एवं रम्भा का संवाद । रम्भा द्वारा मोहिनी को उपाय बताना । मोहिनी का पुष्कर में कामार्थ तपस्या करना । कामदेव का आगमन एवं मोहिनी के साथ ब्रह्मलोक में गमन । मोहिनी का नाच-गान से ब्रह्माजी को मोहित करना । का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः । विहाय ब्रह्मा तद्भावं नतवक्त्रो बभूव ह । हतोद्यमा मोहिनी का कामदेव की स्तुति करना । यह स्तोत्र मोहिनी का गन्धमादन पर्वत पर हुवांसा ने दिया था । कामी मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक पढ़े उसको अभीष्ट यस्तु की प्राप्ति एवं साध्वी पत्नी की प्राप्ति होती है ।

मोहिनी के स्तुति करने पर कामदेव प्रमत्त हो गये और अपने पिता ब्रह्माजी को कामाक्ष से चञ्चल बना दिया। श्रीहृदि को स्मरण करते हुए ब्रह्माजी ने काम की चेष्टा को जान क्रोधयुक्त हो शाप दिया कि हे यौवनोन्मत्त कामदेव ! मेरी अवहेलना करने से तुम्हारा दपे भङ्ग होगा। कामदेव का स्वस्थान गमन। ब्रह्माजी ने मदनातुरा मोहिनी से कहा हे मातः ! तुम अपने ध्यान पर जाओ मैं इस कार्य के योग्य नहीं हूँ। वेद में जो निन्दनीय कर्म है मैं उसको करने में असमर्थ हूँ कारण मैं स्वयं वेदकर्ता हूँ तथा संसार का व्यवस्थापक हूँ। भगवान् हरि वेदोक्त कर्म करनेवाले पर ही दिन-रात प्रसन्न रहते हैं कारण—“हरौ तुष्टे जगत्पुं तस्मिन् रुष्टे भवोरिपुः” अर्थात् भगवान् की प्रसन्नता ही संसार की प्रसन्नता है ऐसा कहकर ब्रह्माजी चुप हो गये। तब मोहिनी ने ब्रह्माजी से कहा कि आपके नीतियुक्त वाक्यों से मेरा मन स्थिर नहीं हुआ है। आपके त्यागने से मेरा सम्पूर्ण शरीर जड़ हो गया है। अतः हे कृपासिन्धो ! आप मेरे पर कृपा कीजिये आप मुझे हतारा करने योग्य नहीं हैं। आपके आश्लेषमात्र से मैं विज्वर हो जाऊँगी। ऐसा कहकर मोहिनी ने फिर ब्रह्माजी को तिरछी नजर से देखा जिससे सर्वज्ञ सर्वयोगवित् कामदेव ने प्रगट होकर पाँच वाण छोड़े। कामदेव के अस्त्र से हत चित्त एवं मनको रोकने में असमर्थ ब्रह्माजी द्वारा भगवान् की स्तुति करना।

ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति कर उनके समीप स्थित हो गये। काम विह्वल मोहिनी ने फिर ब्रह्माजी का यत्न पकड़कर खींचा। तब ब्रह्माजी ने भय से आतुर कि हे मोहिनि ! तुम स्त्रीजाति को संसार में निर्लज्ज मत

करो ऐसा कहते हुए ब्रह्माजी को काम से हत चित्तवाली मोहिनी ने छेड़ा व उनके वस्त्र को फिर खींचा। इतने में ब्रह्मतेज से देदीप्यमान मुनियों के समूह का आगमन। मुनियों ने ब्रह्माजी से पूछा कि स्वर्ग की वेश्याओं में प्रवरा मोहिनी का आपके पास आगमन कैसे हुआ? तब ब्रह्माजी ने मुनियों से कहा - "यह नृत्य-गीत से थकी हुई जैसे कन्या पिता के पास रहती है वैसे ही मेरे पास खड़ी है।" ऐसा कहकर मुनियों के मध्य में ब्रह्म हैंसे तथा सर्वज्ञ मुनिसमाज भी इस बात को सुनकर हैंसने लगे। तदनन्तर मोहिनी का ब्रह्माजी को शाप।

दासीतुल्यांविनीताश्च दैवेन शरणागताम् । यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाचिरम्  
तवैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति योनरः सदा । भविता तस्य विप्रश्च स यास्यत्युपहास्यताम् ॥

मोहिनी का मदनालय को प्रस्थानः। ब्रह्माजी को भगवान् की शरण में जाने के लिये मुनियों का कहना। हतप्रभ ब्रह्माजी का भगवान् की शरण में जाना एवं स्तुति करना। भगवान् नारायण द्वारा ब्रह्माजी को आश्वासन। तत्पश्चात् नारायण के समीप दशमुख, शतमुख और सहस्रमुख ब्रह्माओं का आगमन। उनको देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा का दर्पभंग कारण "आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य दर्पतः"। तदनन्तर सर्वान्तर्यामी भगवान् का शाप निवारणार्थ उपाय कहना।

३४

जाह्नव्या जन्मवृत्तान्तः

७६४

भगवान् नारायण के स्थान में वृषारूढ़, व्याघ्रचर्माम्बरधर, सर्प की यज्ञोपवीत एवं भूरि जटाओं को धारण किये अर्धचन्द्र से युक्त भगवान् आशुतोष शङ्कर का आगमन। ऋषि-मुनियों एवं सम्पूर्ण इन्द्रादि देवता, आदित्य, धनु और सिद्ध चरणा का भी वहीं आगमन। नतकन्धर सम्पूर्ण देवताओं का शंकर को प्रणाम। तदनन्तर शंकर का स्वरतालयुक्त संगीत। जिससे सम्पूर्ण वैकुण्ठ जलपूर्ण हो गया। जलाधिष्ठात्री देवी गङ्गा का आगमन। गङ्गा के नामों की पृथक्-पृथक्



मोहिनी के स्तुति करने पर कामदेव प्रसन्न हो गये और अपने ब्रह्माजी को कामासुर से चञ्चल बना दिया। श्रीहरि को स्मरण करते हुए ब्रह्म ने काम की चेष्टा को जान क्रोधयुक्त हो शाप दिया कि हे यौवनोन्मत्त कामदे मेरी अवहेलना करने से तुम्हारा दण्ड भङ्ग होगा। कामदेव का स्वस्थान गम ब्रह्माजी ने मदनानुरा मोहिनी से कहा हे मातः ! तुम अपने स्थान पर जाओ इस कार्य के योग्य नहीं हूँ। वेद में जो निन्दनीय कर्म हैं मैं उसको करने असमर्थ हूँ कारण मैं स्वयं वेदकर्ता हूँ तथा संसार का व्यवस्थापक हूँ। भगवान् वेदोक्त कर्म करनेवाले पर ही दिन-रात प्रसन्न रहते हैं कारण—“हरौ तुस्ते जगत्समिन् रुष्टे भवोरिषुः” अर्थात् भगवान् की प्रसन्नता ही संसार की !

ब्रह्मा ने कामदेव को सम्मोहन आदि ५ बाण दिये । स्त्री और पुरुष को प्रसन्न करने में तत्पर रहो तथा सब का मोहन करो । जब ब्रह्माजी अपनी पुत्री को बरदान देने गये तब कामदेव ने अपने बाणों की परीक्षा करने के लिये उन्हें ब्रह्माजी पर छोड़ा । अति वृद्ध महायोगी ब्रह्मा उनसे मोहित हो गये । क्षणभर के बाद जब चेतना प्राप्त हुई तो वह अपनी पुत्री से सम्भोग करने को उद्यत हुए, तब कन्या दौड़ी और अपने भाइयों की शरण में गई । ऋषियों ने पिता से कहा यह क्या नीच कार्य कर रहे हैं ? आप वेद को जानने वाले हैं कन्या मातृवर्गों में मान गई है ।

गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नी च या सती ।

पत्नी च भ्रातृसुतयो मिश्रपत्नी च तत्प्रसूः ॥

प्रसूः पित्रोस्त्राया भ्रातुः पत्नीश्चश्रूः स्वकन्यकाः ।

जननी तत्सपत्नी च भगिनी सुरभी तथा ॥

स्वामीष्टसुरपत्नी च धात्रिकालप्रदायिका ।

गर्मधात्री खनाम्ना च भयात्रातुश्च कामिनी ॥

एतावेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः ।

एतास्वपि च सर्वासु न्यूनता नास्तिकासु च ॥

कन्या देनेवाला, अन्न देनेवाला, ज्ञान देनेवाला, अभय देनेवाला, जन्म देनेवाला, मन्त्र देनेवाला और ज्येष्ठ भ्राता ये पिता बताये गये हैं इनका जो अपमान करते हैं वे नरक को प्राप्त करते हैं । ब्रह्माजी का ब्रह्म में लीन होना । कन्या पिता को मृत देख रोदन करने लगी । पुनः श्रीनारायण द्वारा ब्रह्मा को जीवित करना । ब्रह्मा द्वारा भगवान् की प्रार्थना । नारायण द्वारा ब्रह्मा को सत्कर्मों का उपदेश । हे ब्रह्मन् ! कुमार्ग में जानेवाले को कृपिकर्मवाले भी निन्दा करते हैं । आज से तुम्हारा मन कभी भी परस्त्री एवं परवस्तु में नहीं रहेगा । यह कन्या कामदेव की कामिनी होगी ।

हरदर्पभङ्गवर्णनम्

७७४

पार्वतीदर्पभङ्गप्रसंगवर्णनम्

७७७

शंकरप्रशंसावर्णनम्

७७६

राधा एवं श्रीकृष्ण के संवाद में राधा ने पूछा कि ब्रह्मा कुलटा के शाप से अपुन्य कैसे हुए एवं उनका दर्पभङ्ग कैसे हुआ ? उत्तर में भगवान् ने कहा ब्रह्मा को चिरकाल तक तपस्या करने पर जब मैंने वरदान दिया तो उन्हें मैं सर्व संसार का ईश्वर हूँ ऐसा महागर्व हुआ। ब्रह्माण्ड में गर्वपर्यन्त ही उन्नति है ऐसा विचारकर ब्रह्मा का गर्व दूर किया गया। प्रथम ब्रह्मा का गर्व चूर्ण कर अब शङ्कर, पार्वती, चन्द्र, रवि, बह्मि, दुर्वासा, धन्वन्तरि और अन्य क्षुद्र एवं बड़ों का जो गर्व नाश किया वह तुम्हें कहता हूँ। वृकासुर की शङ्कर की तपस्या करना उससे शङ्कर का प्रसन्न होना। वृक ने वरदान माँगा कि जिसके शिर पर मैं हाथ रखूँ वही भस्म हो जाय। शङ्कर ने तथास्तु कह दिया। वृकासुर का पार्वती की अभिलाषा से शिव के मस्तक पर हाथ रखने के लिये दौड़ना। पुनः भगवान् द्वारा संकटापन्न शङ्कर की रक्षा एवं वृकासुर का भस्म होना। एक समय त्रिपुरासुर को मारने के लिये मेरे दिये त्रिशूल एवं कवच को छोड़ रुद्र युद्ध में गये। दोनों का एक वर्षपर्यन्त युद्ध हुआ पहले पृथ्वी में युद्ध कर एक मास पर्यन्त आकाश में युद्ध हुआ। राक्षसने अपनों वार्षिकों से शङ्कर के रथ एवं वार्षिकों को तोड़ दिया। शङ्कर ने दानव पर मुष्टिप्रहा किया जिससे उसको एक क्षण मूर्छा हुई। चेतना प्राप्त कर दैत्य ने सोये हुए शङ्कर को रथ सहित नीचे गिरा दिया। देवताओं में हाहाकर मच गया। शङ्कर ने भी शीघ्र ही मेरी सहायता की। तब मैंने विप्ररूप धारण कर सोये हुए शङ्कर को सीनों से उठाया और त्रिशूल दिया। पार्वती के दर्पभङ्ग प्रसंग का वर्णन। शङ्कर भी पशुवक्

शिवनिर्माल्य के शाप का वर्णन - एक समय वैकुण्ठ में भोजन करते हुए सनत्कुमार ने गुप्त स्तोत्रों से स्तुति की। प्रसन्न हुए भगवान् ने सनत्कुमार अन्न देकर कहा कुछ अपने बन्धुओं के लिये रखना। उसे सनत्कुमार ने शङ्कर को दिया। उस अन्न को भक्षण करने से नाचते-गाते हुए उद्यत हुए इसी बीच पार्वती का आगमन। पार्वती ने सनत्कुमार से शङ्कर वस्था का कारण पूछा। सनत्कुमार ने सब यथावत् वर्णन किया। शङ्कर शाप देने के लिये उद्यत होना एवं शङ्कर द्वारा स्तुति। पार्वती ने कहा कि कित्करी हूँ आपने नारायण का प्रसाद मुझे नहीं दिया विष्णु का नैवेद्य म होता है। जो विष्णु का नैवेद्य भक्षण करता है उसे साठ हजार वर्ष तपस्या का फल मिलता है। इसलिये हे महेश्वर ! आपने विष्णु के मुझे वञ्चित रक्खा है उसका फल यह है कि—

ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव । ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते ॥

तुम्हारे निर्माल्य को ग्रहण करेंगे वे एक जन्म तक श्वान योनि को प्राप्त की का रोदन करना। शङ्कर के कण्ठ पर रोती हुई पार्वती का दृष्टिपात कण्ठ हो गये। शङ्कर द्वारा पार्वती की स्तुति।

दुर्गादर्पविमोचनम्

७८३

हिमालयकृत शिवस्तोत्रम्

७८७

शिव की कृष्ण का भगवती राधिका से कहना कि हे देवि ! तुमने का दर्पभङ्ग सुना अब मेरे द्वारा दुर्गा का दर्पभङ्ग सुनो। जगत् की का सम्पूर्ण देवताओं के तेज से प्रगट होना एवं समस्त दानवेन्द्रों का कुल की रक्षा करना। तदनन्तर उनका प्रजापति —

सतीरूप में जन्म लेना । देवताओं के कामगमावन के लिये विनाशपूर्ण शरणा-  
 शङ्कर द्वारा सती का पाणिप्रदण । देवयोग में देवमथा में दस का गिर के मा-  
 मानसिक अभिवादन को गेह मनुमुदाय । दश का यज्ञ करना जिसमें शरुण व  
 छोड़ सबको निमन्त्रण भेजना । देवताओं का स्त्रियों मदिन व्रतगत में आना  
 व्रतपुरी सती का भगवान शरुण को विना के यज्ञ में चरने के लिये करना  
 शंकर के निमन्त्रण न देने से मना करने पर भी सती का विना के प-  
 आना । शंकर के शाप से सती का दुर्गम होना । यज्ञ में गई हुई सती का  
 पिता ने वचनमात्र से भी त्याग नही दिया । यद्यपि अपनी पति की निन्द-  
 मुनकर सती ने वेद त्याग दिया । सती का पार्वती रूप में हिमालय के प-  
 जन्म । पार्वती को यह आकाशवाणी हुई कि शिव को कठोर तप करनेसे ही प्रा-  
 करोगी । पार्वती ने यौवन से वरित हो संसार में भेरे से अधिक सुन्दर कौन  
 शंकरजी मुझे विना तपस्या के ही ग्रहण करेंगे, ऐसा विचार कर तप नई  
 किया । दूत का हिमालय के पास आना । दूत ने कहा कि अश्रयवट के पास  
 शंकरजी विराजमान हैं उनका पूजन करो । शंकर के स्वरूप को देव हिमालय  
 का स्तुति करना ।

३६

मेनकया पूर्वशिवरूपदर्शनम्  
 शिवसमीपे पार्वतीगमनम्

६८८

७८६

हिमालय द्वारा शंकर की पूजा । मेनका का स्त्रियों के साथ महादेव  
 के दर्शनार्थ आगमन । शिव के रूप को देख मेनका का प्रसन्न होना । काम  
 स्त्रियों का मोहित होना । स्त्रियों का शंकर के विषय में नाना तरह की व  
 करना । पार्वती का शंकर के पास जाना । पार्वती ने शंकर को सात प्रदक्षि  
 की तब शरुण ने कहा हे सुन्दरि ! तुमको सुन्दर पति की प्राप्ति होगी  
 के समान गुणवाला पुत्र होगा और तुम्हारी संसार में पूजा होगी

हे सुन्दरि ! तीर्थ, कान्त, अभीष्टदेव, गुरु, मन्त्र और औषध में जैसी भावना होती है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। शङ्कर का ध्यानमग्न होना। इन्द्र की आज्ञा से शंकर के तपोभङ्ग के लिये कामदेव का आना। कामदेव का शंकर र धाण छोड़ना। क्रोधित महादेव के कपालस्थित तीसरे नेत्र से अग्नि का निकलना। अग्नि द्वारा महादेव की स्तुति। क्रोधाग्नि से कामदेव का भस्म होना एवं रति का बलाप। रतिबलाप को देख पार्वती को मूर्छा तथा पार्वती का दर्प भङ्ग। देवों द्वारा रति को आम्हासन। पार्वती की कृपा से रति की तपस्या। शङ्कर ही कामदेव की प्राप्ति।

४०	राधिकाकृष्णसंवादवर्णनम्	७६१
	पार्वतीसमीपे शिवस्य गमनम्	७६३
	पार्वतीप्रति शिववाक्यम्	७६५
	मेनकाशैलयोः शिवरूपदर्शनम्	७६७
	देवान् प्रति बृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम्	७६६

राधा और श्रीकृष्ण के संवाद में राधा ने पूछा कि पार्वती ने क्या कठोर तप किया तथा किस प्रकार से रति ने कामदेव को जीवित किया ? साथ ही पार्वती और शिव के विवाह का वर्णन कीजिये। श्रीकृष्ण ने कहा कि माता-पिता के द्वारा रोकने पर भी पार्वती तप करने के लिये चली गई। एक वर्ष तक निराहार रहकर, भीष्म श्रृणु में चारों तरफ अग्नि जलाकर, वर्षा में श्मशान में योगासन लगाकर और शीतकाल में जल में खड़ी होकर वह मन्त्र अपने लगी। इतनी कठोर तपस्या करने पर भी शंकरजी प्रत्यक्ष नहीं हुए तब अग्निकुण्ड में प्रवेश करने को यत्न हुई। तपस्या से क्रुरा तथा अग्नि में गिरती हुई पार्वती का देखकर कृपा-शुश्रूषु शंकर बालकरूप धारण कर उसके पास गये। बालकरूप शंकर का पार्वती

त साथ वार्तालाप । शंकरजी का पार्वती से कहना कि हे भद्रे ! तुम कल्याण शिव को पतिरूप में वरण करने की इच्छा रखती हो । जो तुम संहारकर्ता पति बनाने की इच्छा रखती हो ऐसी कौन स्त्री है जो सबका संहार करने पति की इच्छा करे । हे सुन्दरि ! यदि तुम उस सर्वलोक भयंकर संहार की इच्छा रखती हो तो वह तुम्हें मिलेगा । उस अभीष्टदेव को सेवन क से तुम्हारी मोक्ष नहीं होगी । भगवान् हरि की स्मृति ही अमोघ एवं सप्त मङ्गलों को देनेवाली है । अब तुम शीघ्र ही पिता के घर जाओ वहाँपर शंकर के दर्शन होंगे ऐसा कहकर शंकर का अन्तर्धान होना । पार्वती का पिता के जाना । एकदिन हिमालय का तप करने को जाना एवं प्राङ्गण में सुखपूर्वक बं हुई मेनका और पार्वती के पास गाते हुए भिक्षुक का सहसा आगमन । भिक्षु के गायन को सुनकर नगरके नरनारी, बालक और युवा सभी मोहित हो गये पार्वती ने भी मूर्च्छित अवस्था में हृदय में शङ्कर को देख मन-ही-मन प्रणाम कर मांगा कि आप मेरे पतियोग्य हैं । फिर शंकर को हृदय में न देख पार्व को चेतना प्राप्त हुई । मेनका द्वारा भिक्षुक को नानाविध आभरणों का दान भिक्षुक ने कहा पार्वती के बिना आप से भिक्षा नहीं लेंगे । भिक्षुक के भिक्षा लेने पर मेनका का तिरस्कार । हिमालय का आगमन । हिमालय को शंकर के नानाविध रूपों के दर्शन । भिक्षुक का अन्तर्धान । मेनका और हिमालय को ज्ञान प्राप्ति । देवताओं की परस्पर मन्त्रणा । पुनः बृहस्पति के साथ विचार बृहस्पति द्वारा देयों को समझाना ।



देवताओं का ब्रह्माजी के साथ वार्तालाप । देवों ने कहा हे ब्रह्मन् !

हिमालय रत्नों की खान है अगर अपनी पुत्री शंकरजी को देंगे तो हिमालय की

भी मोक्ष हो जायगी तथा पृथ्वी भी रत्नगर्भा नहीं रहेगी । अतः आप हिमालय

के पास जाकर शंकरजी की निन्दा करें । ब्रह्मा ने कहा हे देवो ! मैं शंकर की

निन्दा करने में समर्थ नहीं हूँ । शंकर को ही भेजिये वही अपनी निन्दा करेंगे ।

देवताओं का शंकर की स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न हो देवों को आश्वसना

देकर विप्ररूपधारण कर शिवजी का हिमालय के पर जाना । पार्वती ने विप्ररूप

शंकरजी को प्रणाम किया तथा विप्र ने आशीर्वाद दिया विप्र एवं हिमालय का

वार्तालाप । विप्र ने कहा मैंने सुना है कि आप शंकरजी को अपनी लड़की देना

चाहते हो परन्तु श्मशानवासी सर्प आभूषणवाले शंकरजी को न देकर ज्ञानिये

में श्रेष्ठ नारायण पार्वती के योग्य है । इस विषय में पार्वती को छोड़ अन्य

बान्धवों से मन्त्रणा करो । क्योंकि रोगी को औषध अच्छी नहीं लगती कुपधर

रुचिकर होता है । विप्ररूप शंकरजी का अपने स्थान जाना । मेनका ने कहा

हे शैलेन्द्र ! मैं शंकर को अपनी लड़की नहीं दूँगी, विप्रभक्षण करूँगी अथवा वन में

जाऊँगी । इस प्रकार घातचीत करती हुई मेनका पृथ्वी पर सो गई । पश्चात्

सप्तर्षि एवं अरुन्धती का आगमन । अरुन्धती का मेनका के साथ वार्तालाप तथा

हिमालय का वशिष्ठ से । हिमालय ने कहा—शंकरजी के न कोई आग्रह है न

बान्धव ऐसे अयोग्य घर के लिये कन्या देनेवाला पिता नरकगामी होता है

वशिष्ठ ने कहा—हे शैलेन्द्र ! लोक में तथा वेद में तीन तरह के वचन कहे हैं—



के साथ वातावरण । शंकरजी का पार्वती से कहना कि हे माँ ! तुम शिव को पतिरूप में ग्रहण करने की इच्छा रखती हो । तो तुम भी पति बनाने की इच्छा रखती हो तभी कौन सी है जो गणका संसार पति की इच्छा करे । हे सुन्दरि ! यदि तुम उम सरसोक भयंकर की इच्छा रखती हो तो यह तुम्हें मिलेगा । उम अभीष्टदेव की से तुम्हारी मोक्ष नहीं होगी । मगधान दरि की स्मृति ही असोच ० महलों को देनेवाली है । अब तुम शीघ्र ही पिना के घर जाओ वहाँ के दर्शन होंगे ऐसा कहकर शंकर का अन्तर्धान होना । पार्वती का पि जाना । एकदिन हिमालय का तप करने को जाना एवं प्राङ्गण में सुन हुई मेनका और पार्वती के पास गाते हुए भिक्षुक का महत्ता आगमन के गायन को सुनकर नगरके नरनारी, बालक और युवा सभी मोहि पार्वती ने भी मूर्च्छित अवस्था में हृदय में शङ्कर को देव मन-ही-मन घर माँगा कि आप मेरे पतियोग्य हैं । फिर शंकर को हृदय में न दे को चेतना प्राप्त हुई । मेनका द्वारा भिक्षुक को नानाविध आभरणों । भिक्षुक ने कहा पार्वती के बिना आप से भिक्षा नहीं लेंगे । भिक्षुक के लेने पर मेनका का तिरस्कार । हिमालय का आगमन । हिमालय को के नानाविध रूपों के दर्शन । भिक्षुक का अन्तर्धान । मेनका और को ज्ञान प्राप्ति । देवताओं की परस्पर मन्त्रणा । पुनः बृहस्पति के साथ बृहस्पति द्वारा देवों को समझाना ।

४१	देवब्रह्मसंवादवर्णनम्	८००
	विप्ररूपेण शिवस्य हिमालयसमीपेगमनम्	८०१
	हिमालयवशिष्ट संवादवर्णनम्	८०३
	अनारण्यकन्यकोपाख्यानम्	८०७

देवताओं का ब्रह्माजी के साथ वार्तालाप । देवों ने कहा हे ब्रह्मन् ! हेमालय रत्नों की खान है अगर अपनी पुत्री शंकरजी को देंगे तो हिमालय की भी मोक्ष हो जायगी तथा पृथ्वी भी रत्नगर्भा नहीं रहेगी । अतः आप हिमालय के पास जाकर शंकरजी की निन्दा करें । ब्रह्मा ने कहा हे देवो ! मैं शंकर की निन्दा करने में समर्थ नहीं हूँ । शंकर को ही भोजिये वही अपनी निन्दा करेंगे । देवताओं का शंकर की स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न हो देवों को आश्वासन देकर विप्ररूपधारण कर शिवजी का हिमालय के घर जाना । पार्वती ने विप्ररूप शंकरजी को प्रणाम किया तथा विप्र ने आशीर्वाद दिया विप्र एवं हिमालय का वार्तालाप । विप्र ने कहा मैंने सुना है कि आप शंकरजी को अपनी लड़की देना चाहते हो परन्तु श्मशानवासी सर्प आभूषणवाले शंकरजी को न देकर शान्तियों में श्रेष्ठ नारायण पार्वती के योग्य हैं । इस विषय में पार्वती को छोड़ अन्य बान्धवों से मन्त्रणा करो । क्योंकि रोगी को औषध अच्छी नहीं लगती कुपथ्य रुचिकर होता है । विप्ररूप शंकरजी का अपने स्थान जाना । मेनका ने कहा हे शैलेन्द्र ! मैं शंकर को अपनी लड़की नहीं दूँगी, विप्रभक्षण करूँगी अथवा वन में जाऊँगी । इस प्रकार यातचीत करती हुई मेनका पृथ्वी पर सो गई । पश्चात् सप्तर्षि एवं अरुन्धती का आगमन । अरुन्धती का मेनका के साथ वार्तालाप तथा हिमालय का वशिष्ठ से । हिमालय ने कहा—शंकरजी के न कोई आश्रम है बान्धव ऐसे अयोग्य घर के लिये कन्या देनेवाला पिता नरकगामी होता है वशिष्ठ ने कहा—हे शैलेन्द्र ! लोक में तथा वेद में तीन तरह के वचन कहे हैं—

अमृत्यमर्हितं पद्मान् रामप्रणम भुक्तिमुन्दरम् । सुपुटं शत्रुं रति न हिनन् कदापि  
 आपातभीतिजनकं परिणामगुणायहम् । दयासुर्मित्रीलभ्य बोधयन्नेव शान्पत्न  
 भुक्तिमात्रालुधातुल्यं गर्वकाळे सुगायहम् । गन्धमासं हिनकरं वनमा जेमुमीपिमाप

शंकरजी सब तरह से योग्य हैं यही गंगा के नामों, पानक एवं मंदाकिनी  
 हे शैल! पार्वती पूर्वजन्म में दश के घर में जनमी थी उस समय इसका नाम मानी  
 था यही मेना के गर्भ से उत्पन्न हुई है इसलिये पार्वती को शंकरजी के लिये प्रा  
 कीजिये । शंकरजी तो योगिराज हैं और विवाह करने को कसूर भी नहीं  
 परन्तु देवताओं की प्रार्थना से तथा भद्राजी के कहने से विवाह स्वीकार  
 है । अगर शंकर के साथ पार्वती का विवाह नहीं करोगे तो विवाह मापी व  
 अवश्य शंकरजी के साथ होगा ही, क्योंकि शंकर ने द्विज रूप से पार्वती को व  
 दिया है । शंकरजी, नारायण तथा अन्य देवों को माय ले तुमसे पुट कर प  
 की ले जायेंगे । एक पुत्री के लिये मय मम्पत्ति नष्ट करवाना उचित  
 देखो, अनारण्य ने अपनी लड़की को ब्राह्मण को दे विप्रशाप से मुक्त हो  
 मनुवंश के महल्लारण्य नामक मनु तपस्वी एवं ज्ञानी हुआ । मन्तान न है  
 वह पुष्कर में तप करने चला गया । पुनः शंकरजी की कृपा से अनारण्य नाम  
 पुत्र की प्राप्ति हुई । उसके पद्मा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई । एक समय मर्दि  
 पिप्पलाद ने बिरों में रत गन्धर्व को देखा । मुनि पुष्पभद्रा में ग्नात करने जा  
 थे तब पद्मा नजर आई । मुनि ने पूछा यह किसकी कन्या है । मनुष्यों ने इस  
 यह अनारण्य की कन्या पद्मा है । मुनि अनारण्य की सभा में गये । राजा  
 पूजा की तब मुनि ने कहा तुम अपनी कन्या मुझे दो । राजा मुनि के व  
 मनकर चुप हो गया तब मुनि बोले मुझे अपनी कन्या देदो नहीं तो मैं  
 । राजा ने अपनी रानी से सलाह कर अपनी पुत्री महर्षि को देदी

## सतीदेहत्यागवर्णनम्

वशिष्ठ ने कहा हे शैलराज ! अनारण्य कन्या मन, वचन और कर्म से मुनि की सेवा करने लगी । एक समय गङ्गा में स्नान करने के लिये जाती हुई पद्मा की नृपवेशधारी धर्म ने देखा और कहा हे सुन्दरि ! तुम जरातुर वृद्ध मुनि के पास शोभा नहीं देती हो । अतः इसको छोड़ सहस्र सुन्दरियों के पति और कामशास्त्र में पण्डित मुझे अङ्गीकार करो । इतना कह यह रथ से उतर पद्मा का हाथ पकड़ने के लिये तैयार हुआ तब पद्मा ने कहा—हे पापिष्ठ ! दूर जाओ यदि कामभाष से मुझे देखोगे तो भस्म हो जाओगे । पिप्पलाद् मुनि को छोड़ स्त्रीजित एवं रतिलम्पट के पासकभी भी नहीं जाऊँगी क्योंकि—“स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सत् पुण्यं प्रणश्यति” । तुमने जो माता को स्त्रीभाव से वचन कहा है अतः तुम्हारा नाश हो जायगा । सती का शाप मुनकर धर्मराज ने नृपरूप त्यागकर अपना रूप धारण किया और सती से प्रार्थना की । पद्मा ने कहा हे धर्मराज ! सती का शाप अन्यथा नहीं होगा परन्तु तुम्हारा शय श्रैतायुग में एक पद तथा द्वापर में दो पाद कलियुग में तृतीयपाद तथा शैव कलि में चतुर्थ पुनः सत्ययुग में पूर्ण हो जायगा । तुम्हारा रहने का स्थान, वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिप्रदा, बुद्धिमान, दानप्रस्थ, भिक्षुक, धर्मशील राजा, एवं सद्बैतत्यजाति में रहेगा । देवगुरु ब्राह्मण की निन्दा करनेवालों में, मुरापान कलह स्थानों में, कन्या विक्रय करनेवालों में तथा पति की निन्दा करनेवाली स्त्रियों में तुम्हारा स्थान नहीं रहेगा । धर्मराज ने पद्मा को वरदान दिया कि तुम्हारा पति युवा हो तथा मातृण्डेय से अधिक धिरजीवी हो और तुम दश पुत्रों की माता बनो यही लारीर्षादे है इसलिये पार्वती को शङ्करजी के लिये दानकर वृत्तार्थ हो जाओ । यह पूर्वजन्म का

श्री गती थी तथा कलह के कारण योगामि ने गङ्गा तट पर शरीर त्याग किया  
या । सती का देहत्याग मुनकर शंकर का देवी-शरीर के पाम जाना ।

४३ .

सतीदेहत्यागानन्तरं शङ्करविलापवर्णनम्

८१

शङ्करं प्रति विष्णोः प्रबोधवाक्यम्

८१

शङ्करकृतप्रकृतिस्तांत्रम्

८१

जाह्नवी के तटपर सती के शरीर को देव शंकरजी मूर्छित हो गये  
स्त्री का विरह बलवान् है जो योगिराजों के गुरु शंकर को भी याथा करता है ।  
शंकरजी ने विलाप करते हुए कहा—हे सति ! उठो मैं तुम्हारा स्वामी हूँ तुम्हारे  
बिना मैं शक्तुल्य हूँ ।

शक्तोऽहञ्च त्वया साद्धं सर्वशक्तिस्वरूपया । शक्तिहीनः शबरामो निरन्धेष्टः सर्वकर्मनु  
सती के विरह में उद्विग्न हुए महादेव सती को वक्षःस्थल पर रख पागल की तट  
बलने करने लगे और बारम्बार हे सति ! हे माध्वि !! कहकर नेत्रों से आँसू  
गिराने लगे । जिनसे दो योजन में फैला हुआ एक तालाब हो गया वहाँपर  
स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता तथा सौ जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं ।  
के अङ्गों से जगद्-जगद् सिद्धपीठ हो गये । महादेव ने अवशिष्ट अङ्गों से

कर अस्थिमाला बना कण्ठभूषण बना लिया । शंकर सती के भस्म के  
शरीर में धारण कर हे सति ! हे प्राणेश्वरि !! कह फिर मूर्छित हो गये । पश्चात्  
शार्पदों सहित नारायण तथा ब्रह्मा, शेष, धर्म और देवों का शंकरजी के पा  
बना । भगवान् नारायण ने शंकर को चेतना देकर समझाया । नारायण  
कण्व शाखोक्त दिव्यस्तोत्र से जगन्माता की स्तुति करो उससे तुम्ह  
जायगा । महादेव का प्रकृति की स्तुति करना । स्तुति  
आकाश में रत्नसार रथ में बैठी हुई देवी को देख पुनः

करने लगे। प्रकृति ने प्रसन्न हो कहा—हे महादेव! आप मेरे प्राणों से प्रिय हो और जन्म-जन्म में मेरे पतिदेव हो। मैं पर्वराज हिमालय के घर जन्म ले आपकी पत्नी बनूंगी। आप विरह ज्वर को छोड़ दीजिये। इतना कहकर देवी का अन्तर्धान होना। देवों का अपने-अपने स्थान पर जाना। इस शिवकृत स्तोत्र का पाठ करने-वाले को जन्मजन्मान्तर में भी स्त्रीविरह नहीं होता है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

४४	पार्वतीपरिणयवर्णनम्	८२०
	हिमालयकृतशिवस्तोत्रम्	८२३

वशिष्ठजी का वचन सुन मेना चकित हो गईं एवं पार्वतीजी हँसी। अरुन्धती ने मेना को प्रबोधित कर शोक दूर किया। हिमालय ने वशिष्ठ की आज्ञा से कई स्थानों पर पत्र भेज शिवजी के पास मङ्गल पत्रिका भेजी। हिमालय ने मङ्गल दिन देख वैवाहिक कार्य आरम्भ कर दिया। भगवान् नारायण का पार्षदों सहित हिमालय के यहाँ जाना। ब्रह्माजी का देवताओं के साथ आगमन। शंकर को देखने के लिये नगरवासी स्त्रियों का आगमन। शंकर के स्वरूप को देख कई स्त्रियाँ मोहित हो गईं और कई एक कहने लगीं कि ऐसा घर आज तक नहीं देखा पार्वती भाग्यवती है। हिमालय ने वस्त्र, चन्दन एवं आभूषणों से विधानपूर्वक वेदमन्त्रों से शंकरजी को पार्वती के अर्पण कर दिया। दहेज में दास-दासी, रत्न एवं वस्त्र दिये तदनन्तर हिमालय ने शंकरजी की स्तुति की। हिमालयकृत स्तोत्र का पठन करने से वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है।

पार्वतीपरिणये नानादेवस्त्रीणामागमनम्

८२४

देवस्त्रीणां शङ्करेण सह हास्यालापः

८२७

शङ्करविवाहवर्णनम्

८२६

शंकरजी का पार्वती के साथ वेदविधान से विवाह होने पर ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर मङ्गलकार्य कर हिमालय के अन्तर्वास में जाना; वहाँ सपूर्ण देवस्त्रियों सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, रति, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा, संज्ञा और देवकन्या, नागकन्या, मुनिकन्या आदि शंकरजी से हास्यालाप करने लगीं। उनके हास्यों को मुन शंकरजी बोलें हे देवियों ! तुम सय जगन् की माताएं हो पुत्र के साथ चपलता का व्यवहार नहीं करना चाहिये। तब देवियों चित्रलित्वित पुत्रलियों की तरह चुप हो गईं प्रातःकाल नानाबायों के साथ सय चलने की तैयारी करने लगे। तब धर्मराज महादेव से कहा अब यात्रा का शुभमुहूर्त है, मिट्ट कीजिये। यात्रा के समय मेना न महादेवजी से प्रार्थना की कि मेरी पुत्री के शोषों को क्षमा कर उसका पालन करना। मेना का पार्वती से मिलन। शंकर पार्वती का खेलारा गमन। यहाँ मङ्गल साज सजाकर वायुपत्नी, बुधेरपत्नी, शुक की श्री तारा आदि असंख्य स्त्रियों ने उनको वासाधान पर पशुवा दिया। शिवजी का पार्वती को पूर्ववृत्तान्त का स्मरण करवाना। देवों का अपने-अपने स्थानों में गमन। नारायण एवं ब्रह्माजी भी अपने स्थान को चले गये। मेनका का पार्वती को लाने के लिये मेनाक को भेजना। पार्वती का आगमन तथा माना में मिलन पुनः शंकर पार्वती का हिमालय

राधा ने श्रीकृष्ण से पूछा कि रति ने चिरकाल से मृत पति को शंकर पुनः प्राप्त कर क्या किया ? क्योंकि स्त्रियों को पति का वियोग मरण से भी दुःख है और फिर मिलना तो परम दुर्लभ सुख है । बहुत दिन से सती के वियोग व्याकुल शंकर ने पार्वती को प्राप्त कर क्या किया ? क्योंकि स्त्री का विरह पुंठपों अत्यन्त दुःखकर है तथा फिर मिलना प्राणदान से भी अधिक सुखकर है । श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! रति ने मृत पति को प्राप्त कर अपना तथा पति का सुन्दर बनाकर रत्नयुक्त विमान में बैठकर नाना स्थानों में विहार किया । शंकर भी शक्ति को प्राप्त कर रत्नयान से नाना स्थानों में घूमते हुए क्रीड़ा करने लगे शिवशक्ति का क्रीड़ा विहार देखकर पृथ्वी भाराक्रान्त हो गई उस भार से तथा शेष के भार से कच्छप तथा उसके भार से सम्पूर्ण वायु और वायु भयभीत देवताओं ने नारायण से कहा । नारायण ने ब्रह्मा से कहा कि हे विं श्रीराद्धरजी का संभोग कोई भी भेद नहीं कर सकता वह एक हजार वर्ष बाद विराम को प्राप्त होगा । जो कोई स्त्री-पुरुष का रति विच्छेद करता है उस जन्मजन्मान्तर तक स्त्री पुंठप में भेद हो जाता है अन्त में कालसूत्र नरक में जा है । उदाहरण जैसे—रम्भायुक्त इन्द्र का भेद दुर्वासा ने किया तो उसको स्त्रीविच्छेद हुआ । अन्त में शंकर को कृपा से दिव्य हजार वर्ष के बाद दूसरी पत्नी मित्र रोहिणी सहित चन्द्रमा का रति वियोग महर्षि गौतम ने किया तो उसे स्त्रीविच्छेद हुआ । पुनः शिवजी के कृपा से दिव्य हजार वर्ष बाद अहल्या को प्राप्त किया इसी तरह बहुतसे उदाहरण पाये जाते हैं । अज्ञामिल जो कृपटी के साथ था उसको किसी भी देवता ने विच्छेद नहीं किया ।



मुक्ति मिली। यह मङ्गल वर्णन जो सुनता है उमको कभी भी पुत्र, स्त्री एवं  
 न्युविच्छेद नहीं होता।

### इन्द्रदर्पमङ्गलवर्णनम्

८३४

श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! इन्द्र के दर्पभङ्ग को सुनो। इन्द्र सब  
 देवताओं का मालिक वन तपस्या से सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त कर गम्पति से मुड़  
 हुआ ब्रह्मस्वरूप को नहीं मानता था। प्रकृति ने उसे शाप दिया। उमके शाप  
 से हतबुद्धि इन्द्र ने सभा में आये हुए अपने गुरु को प्रणाम नहीं किया। गुरुजी  
 रुष्ट हो तप करने चले गये। इन्द्र ने गुरुपत्नी से प्रार्थना की तब तारा ने कहा  
 हे इन्द्र ! सुदिन दुर्दिन, सुख दुःख के कारण है। इन्द्र का गङ्गातट पर गमन  
 वहाँ पर अहल्या का दर्शन। कामासुर इन्द्र का गौतमपत्नी के साथ व्यभिचार  
 करना। इन्द्र को गौतम का शाप कि तुम वेद को जानकर योनिलुब्ध हो गये हो  
 अतः तुमको सहस्र योनियाँ होंगी पुनः सूर्य की आराधना करने से योनि नेत्र  
 हो जायेंगे और मेरी प्राणेश्वरी को तुमने दूषित किया है अतः मेरे शाप से तथा गुरु  
 के क्रोध से भ्रष्टश्री होजाओगे। अहल्या को शाप दिया कि तुम पत्थरकी होजाओगी  
 पुनः श्रीराम के चरणस्पर्श से शुद्ध बनोगी। प्रकृतिदेवी की अवहेलना से इन्द्र को  
 वृत्रासुर के मारने से ब्रह्महत्या की प्राप्ति। इन्द्र का ब्रह्महत्या से भयभीतहो मानस  
 सरोवर में कमलनाल में प्रवेश होना। नहुष को इन्द्रपद की प्राप्ति। नहुष का  
 इन्द्राणी की याचना करना दुःखित इन्द्राणी का तारा के पास गमन। तारा के  
 कहने से गुरु का इन्द्र को लाने के लिये जाना। इन्द्र की बृहस्पति से प्रार्थना।  
 संसारविजयनामक कवच का दान। अमरावती का निर्माणकथन।  
 भगवान् का इन्द्र के पास गमन। बालक और इन्द्र का संवाद।  
 द्वारा इन्द्र को आध्यात्मिक उपदेश। इसी बीच अतिवृद्ध योगिराज का  
 इन्द्र ने ब्राह्मण को देख प्रणाम किया और पूजन की। बालकरूप

भगवान् ने विप्र से पूछा हे ब्राह्मण ! आपका क्या नाम है ? तथा कहाँ से आये हैं ? आपके मस्तक पर चटाई क्यों है ? मुनि ने कहा मैंने अल्पायु में गृहस्थ स्वीकार नहीं किया । मेरा लोमशा नाम है वर्षादि की शान्ति के लिये यह चटाई है । मेरे शरीर में जितने रोम हैं उतनी ही मेरी आयु है । एक लोम गिरने से एक इन्द्र की आयु शेष होती है । ब्रह्मा के दूसरे प्रहर में मेरी मृत्यु है । असंख्य ब्रह्म चले गये हैं और चलेजायेंगे मैं भगवान् का स्मरण करता हूँ मुझे पुत्र कलत्रादि की इच्छा नहीं । इसके बाद शिशुरूपी भगवान् का अन्तधान होना । इन्द्र ने विश्वकर्मा को रत्न दे विदा किया पुनः अपने पुत्र को राज्य देकर भगवान् की शरण जाने लगे तब इन्द्राणी ने गुरु बृहस्पति से कहकर इन्द्र को नीति पाठ पढ़वाया और इन्द्र फिर राज्य करने लगे ।

४८

रवेर्दर्पभङ्गवर्णनम्

८४३

राधिका का भगवान् श्रीकृष्ण से रवि के दर्पभंग विषयक प्रश्न । भगवान् श्रीकृष्ण का उत्तर कि एक दिन सूर्य भगवान् उदय होकर अस्त हुए उसी समय शंकरजी के घर से महासम्पन्न मदीन्मत्त माली और सुमाली नामक दैत्येन्द्र रात्रि को दिन करने के लिये तैयार हुए । उसके प्रभाव से रात्रि दिन में बदल गई । जिससे सूर्य ने रुष्ट हो अपनी शूल से उन दोनों दैत्यों को मारा । सूर्य की शूल के प्रहार से ये भूल्लित हो पृथ्वी पर गिर गये । तब भगवान् शंकर ने अपने भक्तों को दुःखित देख उनको जीवदान दिया । इसपर भगवान् शंकरजी मोहित हो सूर्य को मारने के लिये दौड़े । तब भागा हुआ सूर्य ब्रह्माजी के शरण में गया । ब्रह्माजी ने भगवान् शंकरजी को रुष्ट देखकर बेदोष स्तोत्र से स्तुति की जिससे प्रसन्न हो शंकरजी ने सूर्य को आधीर्वाह देकर स्वस्थान को प्रस्थान किया ।

एक समय अग्निदेव शतताल प्रमाणवाली भयानक शिखा कर भृगुजी के शाप से क्रोधित होकर अपनेको तेजस्वी मान त्रैलोक्य को भस्म करने को उद्यत हुए। भगवान् ने अग्नि की सम्पूर्ण दाहिका शक्ति का संहार कर लिया पुनः शिशु रूप हो अग्नि से बोले—हे भगवन् ! आप क्यों क्रोधित हो इसका कारण कहो ? निरर्थक त्रिलोकी को क्यों भस्म करते हो। भृगु ने आपको शाप दिया है तो भृगु का ही दमन करिये। एक के अपराध से सब का भस्म करना उचित नहीं। इस संसार का कर्ता ब्रह्मा तथा पालक विष्णु एवं संहारकर्ता शंकरजी हैं। इतना कहकर ब्राह्मण घटुक शुष्क इन्धन ले अग्नि को जलाने के लिये कहा किन्तु अग्निदेव उस शुष्क पत्र एवं शिशु के बाल को भी जला न सके एवं लज्जायुक्त हो शिशु के आगे चुपचाप खड़े हो गये। इस तरह अग्नि का दर्पभङ्ग कर भगवान् का अन्तर्धान होना।

दुर्वासा के दर्पभङ्ग का वर्णन—एक समय अम्बरीष राजा एकादशी का व्रत कर एकादशी को पारण करनेको नियारथे। उस समय दुर्वासा आ पहुँचे उन्होंने कहा मैं भूखा हूँ मुझे भोजन दो। राजाने उत्तम अन्न भोजन के रूपमें दिया ऋषि। केशवपुत्र पापम हो देव राजा को शाप देने को उद्यत हुए और जटा से सप्तताल प्रमाण-वाला पुण्य निच्छदा घट राजा को क्रोध से मारने के लिये चला। राजाने भगवान् का स्मरण किया। स्मरण करने ही भगवान् ने चक्रवर्त्या पुरुष को भेजा और ऋषि का पीड़ा करने लगा। ऋषि मय लोकों में घूमता हुआ महालोक, कैलाश एवं वैकुण्ठ में गये वही नारायण ने अभय दान देकर कहा कि राजा के पाप क्षामो भगवान् को प्राज्ञा से राजा के पाप जाकर भोजन किया एवं राजा को

आशीर्वाद दिया तब राजा ने पारण किया। श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! मेरा भक्त प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। सम्पूर्ण देव मेरे प्राण हैं और भक्तगण मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं।

५१ धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गवर्णनम्

८४७

नारायणांश भगवान् धन्वन्तरि की उत्पत्ति समुद्र से अमृत मथन करते समय बताई गई है। एक समय धन्वन्तरि शिष्यों सहित कैलाश पर्वत पर आरहे थे मार्ग में उन्होंने भयानक तक्षक को भक्षण करने के लिये आते हुए देखा। धन्वन्तरि के शिष्य ने उसे निर्दोष कर उसकी मणि निकाल ली। क्रोधित वासुकि द्वारा सम्पूर्ण नागों को धन्वन्तरि के पास भोजना। नागों के श्वास से धन्वन्तरि के सम्पूर्ण शिष्य मृतप्राय हो गये तब धन्वन्तरि ने अमृत चर्पा कर उनको जिलाया तथा सर्पों को निश्चेष्ट बना दिया। वासुकि ने अपनी बहिन मनसा का स्मरण किया और कहा कि नागों की रक्षा करो इससे संसार में तुम्हारी पूजा होगी। मनसा ने कहा हे नागेन्द्र ! शुभाशुभ कार्य होगा वह भाग्याधीन है किन्तु मैं यथोचित कार्य करूँगी। इतना कहकर मनसा का धन्वन्तरि के पास जाना। धन्वन्तरि एवं मनसा का परस्पर युद्ध। जब धन्वन्तरि को मनसा ने नागपाश से बाँध दिया तब धन्वन्तरि ने गरुड़ का स्मरण किया। गरुड़ ने नागास्त्र को नष्ट कर दिया। पुनः मनसा ने मन्त्रों से पवित्र भस्ममुष्टि का प्रयोग किया। उसको भी विफल देख शिव से दी हुई अमोघ त्रिशूल का प्रयोग किया तब ब्रह्मा एवं शम्भु का आगमन। ब्रह्मा द्वारा धन्वन्तरि को समझाना कि मनसा के साथ युद्ध उचित नहीं है यह त्रिलोकी को भस्म कर सकती है इसलिये मनसा का पूजन करो। धन्वन्तरि द्वारा मनसा की पूजा एवं स्तुति। देवी द्वारा धन्वन्तरि को धरदान। इस स्तोत्र का पठन करने से नागों से भय नहीं होता है।

श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! चढ़ो एवं झोटीं को दाम्भङ्ग देने गुमते करा  
 घृन्दावन में जाओ मैं भी विरहव्याकुल गोपियों को देगा। कृष्ण का वचन  
 राधा ने कहा मेरे को भी ले चलो मैं जाने में समर्थ नहीं हूँ। तब कृष्ण बने  
 मेरे ऊपर चढ़ो इतना कह कृष्ण अन्तर्धान हो गये। कृष्ण विरह में राधा का  
 विलाप। चन्दन वन में कृष्ण का राधा से मिलन। अन्य गोपियों को कृष्ण  
 का दर्शन। राधा माधव की रागक्रीड़ा का वर्णन। नारद ने नारायण से पूछा  
 कि पहले राधा शब्द का उच्चारण कर पीछे कृष्ण शब्द का उच्चारण करते हैं इसके  
 कारण क्या है ? तब नारायण बोले इसके तीन कारण हैं प्रकृति जगत् की माता है  
 तथा पुरुष संसार का पिता है। त्रिलोकी में पिता से मौजुनी माता को  
 बलवती कहा है। राधाकृष्ण एवं गौरीशङ्कर शब्द ही वेद में मुने गये हैं, कृष्णराग  
 और शिवगौरी नहीं। सामवेद कौथुम में "प्रमीद रोहिणीकान्त संज्ञया सह  
 भास्कर प्रसीद कमलाकान्त" ऐसे शब्द मिलते हैं। पहले पुरुष शब्द का उच्चारण  
 कर पीछे प्रकृति शब्द का उच्चारण करनेवाला मातृधाती होता है।

रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण यमुनाजल में स्नान कर गोपाङ्गनाओं के साथ  
 जलक्रीड़ा कर राधा के माथ भाण्डीर वन में गये। विरह व्याकुल हुई गोपाङ्गना  
 अपने-अपने घर को गईं। भाण्डीरवन में क्रीड़ा करने के बाद वासन्तीवन-  
 चन्दनवन, चम्पकानन इत्यादि स्थानों में क्रीड़ा करते हुए जब राधा को निद्रा  
 आगई तब श्रीकृष्ण स्वयं उनके मुख के पसीने पोंछः शृंगार करने लगे। पुनः नात  
 गोपियों का आगमन श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा का वर्णन।

नारद ने पूछा कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मधुरा क्यों गये और भगवान् के बिना नन्दादिक गोप तथा प्राणेश्वरी राधा ने किस तरह समय बिताया ? श्रीकृष्ण ने मधुरा में जाकर कौन-कौन काम किये ? नारायण ने कहा—कंस ने धनुर्मेघ यज्ञ किया उसमें अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को बुलाया । वहाँपर कृष्ण ने रजक, चाणूर, मुष्टिक, गज और कंस को मारकर माता पिता को बन्धन से छुड़वा कर कौतुकपूर्वक कुन्जा के साथ शृङ्गार किया । मालाकार का उद्धार तथा बद्धव द्वारा गोपियों को आश्वासन । सान्दीपनि गुरु से विद्याग्रहण । पवनेश्वर तथा जरासन्ध को मारना एवं उग्रसेन को राज्य प्रदान । द्वारकापुरी का निर्माण । रुक्मिणी का हरण । कालिन्दी, लक्ष्मणा, सत्या, जाम्बवती, मित्रविन्दा तथा नामजिती का कृष्ण के साथ विवाह । भौमासुर को मारकर सोलह हजार स्त्रियों के साथ विवाह । इन्द्र को जीतकर कल्पवृक्ष का लाना । शङ्करजी को जीतकर बाणासुर की भुजाओं का कुन्तन । तीर्थयात्रा प्रसङ्ग से वसुदेव का दर्शन । सुदामा की शाप मुक्ति के बाद राधा का मिलन । पुनः चौदह वर्ष तक राधा के साथ रास क्रीड़ा । पुनः पृथ्वी का भार हरण तथा श्रीकृष्ण का स्वधामगमन । यशोदा, नन्द, वृषभानु तथा राधामाता कलावती का सामीप्यमोक्ष ।

नारायण बोले भगवान् कृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी हैं, दुराराध्य हैं तथा सब सुख देनेवाले हैं । उनका चरित्र अपार है, जिनके भय से वायु चलता है, कूर्म शेष को धारण करते हैं, शेषजी इस पृथ्वी को धारण करते हैं । जिन महारविष्णु ने ब्रह्मा, शेष, शिव, धर्म, यम, साम्ब, चन्द्र, सूर्य, गरुड़, अग्नि, गुरु, दुर्वासा, जय, विजय, देव, दानव, नारद, काम, इन्द्र, लक्ष्मण, अर्जुन, बाणासुर, भृगु, सुमेरु,

समुद्र, वायु, वरुण, सरस्वती, दुर्गा पद्मा, पृथ्वी, सावित्री, गङ्गा और मनसाक दर्प भङ्ग कर प्राणेश्वरी राधा का भी दर्पभङ्ग किया तो अन्य व्यक्तियों का तो कह ही क्या। सबका दर्पभङ्ग कर सब पर कृपा भी उन्हींने की। उनकी स्तुति करने को शंकर, ब्रह्मा, शेष, महाविराट् तथा सरस्वती भी समर्थ नहीं हो सकती। वेद भी जिनकी महिमा का गुणगान कर पार नहीं पासकते।

५६	महाविष्णोरहंकारभङ्गवर्णनम्	८६।
	देवदानवादीनां दर्पभङ्गवर्णनम्	८६।
	लक्ष्मीस्तोत्रम्	८६।

महाविष्णु के दर्पभङ्ग का वर्णन। महाविष्णु को अहंकार हुआ कि मे रोमों में सम्पूर्ण विरव है तथा मैं सब का मालिक हूँ। तब श्रीकृष्ण ने संहार और का रूप धारण कर सम्पूर्ण शरीर को प्रस लिया केवल शिर अवरोप रहा। श्रीकृष्ण ने उस पर कृपा की। ब्रह्मा को अहंकार हुआ कि मैं त्रिलोकी का स्व धर्ता एवं हर्ता हूँ। तब श्रीकृष्ण ने गोलोक में पञ्चवक्त्र, पङ्कवक्त्र एवं सौ मुख का प्रज्ञा को दिखलाया। फिर समय पर मोहिनी द्वारा अपूज्य बना दिया। स्वर्ग सरस्वती को दिवाकर कामी बनाया। पुनः राष्ट्र से दर्पभङ्ग करवाया त संसार में पूज्य बनाया। विष्णु को गर्व हुआ कि मैं जगत् का पालक हूँ। श्रीकृष्ण ने रामजन्म में आत्मविस्मृति करवाई। हनुमन्नाटक में आता है—“के पद्नाथ नाथ किमिदमित्यादि”। शेषजी को गर्व हुआ कि मैं पृथ्वी को परनेवाला हूँ। एक समय नागों ने गरुड़ की पूजा की। अनन्त ने गर्व पराभूत हो नहीं की तब गरुड़ ने अनन्त को जीत लिया। तब श्रीकृष्ण ने उन मुक्ति करवाई। महाशिव ने अपने दर्प के कारण विवाह नहीं किया तब ने मोह कराकर सती के साथ विवाह करवाया।

विरह में शंकर का नाना स्थानों में भ्रमण पुनः पार्वती के साथ वि  
 त्रिपुरासुर को मारकर त्रिपुरारि बन गये। वृकासुर को वरदान कि जि  
 शिर पर तुम हाथ रखोगे वही भस्म हो जायगा। तब उस दैत्य ने शंकर  
 के शिरपर ही हाथ रखना चाहा। शंकरजी दौड़ने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण  
 बालक का रूप धारण कर उनको बचाया केदार कन्या द्वारा धर्मराज को श  
 जिससे धर्म अत्यन्त कृश हो गये। शापान्त में त्रेतायुग में त्रिपाद तथा द्वापर  
 द्विपाद और कलि में एक पाद एवं कलि के अन्त में नष्ट होनेपर पुनः सत्ययुग  
 पूर्ण पाद की प्राप्ति कही। माण्डव्य के शाप से यमराज को शूद्र योनि की प्राप्ति  
 शम्भु को विमाता के शाप से गलितकुष्ठ की प्राप्ति। चन्द्रमा ने दर्प के वशीभू  
 ते तारा का अपहरण किया तब चन्द्रमा यक्ष्मा का रोगी हो गया। सूर्य क  
 र्पभङ्ग शङ्कर से, वह्नि का भृगुजी से, गुरु का अपनी स्त्री के हरण से, दुर्वासा क  
 ऋषीय से, जय विजय का ब्रह्म शाप से, देवों का दानवों से एवं दानवों का  
 वों से, नारदजी का ब्रह्माजी से, काम देव का शङ्कर से, लक्ष्मण का रावण प्रेरित  
 हर की त्रिशूल से, स्वयं विष्णु का ब्रह्मशाप से, कार्तवीर्यार्जुन का परशुराम से  
 प्रपुत्र के मरण में एवं कृष्ण का स्त्रियों के हरण समय और युद्ध में कर्ण से पार्थ का  
 भङ्ग किया गया। वाणासुर का उपाहरण में, भृगुजीका दक्ष यज्ञ के समय,  
 गुराम का रामविवाह के समय, सुमेरु का वायु द्वारा शृङ्ग भग्न होने से, समुद्रों  
 अगस्त्यजी के पान करने से, और कलह से गङ्गा एवं सरस्वती का दर्पभङ्ग हुआ।  
 एक पार्वती का शंकर द्वारा त्याग पुनः कामदेव का भस्म एवं पार्वती का  
 रङ्ग। दर्पयुक्त महालक्ष्मी को एक समय वैकुण्ठ जाते समय द्वारपालों ने रोक  
 ।। अपने तिरस्कार को देख अपमानित हुई लक्ष्मी अपने शरीर को त्याग  
 को तैयार हुई तब ब्रह्मादि देवताओं द्वारा लक्ष्मी की स्तुति। यह लक्ष्मी  
 सम्पूर्ण मङ्गल कामनाओं का देनेवाला है।





५६	विस्तरेण इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम्	८६६
	नहुषोपाख्यानम्	८७१
	शुचीकृत गुरुस्तोत्रम्	८७६

मदीन्मत्त हुए इन्द्र ने सभा में आये हुए अपने गुरु ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति को ब्रह्मसिंहासन से उठ प्रणाम नहीं किया। गुरुदेव रष्ट हो अपने स्थान को चले गये किन्तु इन्द्र को शाप नहीं दिया। बिना शाप ही इन्द्र का दर्पभङ्ग हुआ कि उसको ब्रह्महत्या की प्राप्ति हुई। ब्रह्महत्या से भयभीत हो इन्द्र का पद्मनाल में प्रवेश तदनन्तर नहुष का स्वर्ग में राज्य करना। नहुष ने सुन्दरी इन्द्राणी को देखकर कहा विधाता की गति बड़ी बलवान् है कि ऐसी सुन्दरी स्त्री होते हुए भी इन्द्र परस्त्री में लम्पट है। इसके समान रम्भा और तिलोत्तमा एवं उर्वशी भी नहीं हैं। हमारी स्त्री तो इसके सामने दासीतुल्य है। हे सुन्दरि ! मेरी सेवा करो जैसे गोलोक में राधा कृष्ण के वक्षःस्थल पर विराजमान है, ब्रह्मा के वक्षःस्थल पर ब्रह्माणी, एवं वैकुण्ठनाथ के पास लक्ष्मी, उसी तरह तुम मेरे यहां रहो। मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ति कर दूंगा इत्यादि बहुतसे वचन कहने पर इन्द्राणी श्रीगुरुदेव एवं हरि का शरण कर थोड़ी, हे वत्स हे महाराज ! राजा सब प्रजा का पालक होता है तथा भय से रक्षा करता है। महोन्द्र आज भ्रष्टश्री हो गये हैं तथा आप स्वर्ग के राजा हैं अतः वही राजा कहा जाता है जो प्रजा का पालन निश्चित रूप से करता है।

भयत्राता च राजा च सर्वेषां पालकः पिता ।

भ्रष्टश्रीश्च महन्द्रोऽपत्यश्च स्वर्गे नृपोऽनुना ॥

यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम् ।

गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः ॥

सागर बबोरबन । दुःखित इन्द्राणी का अपने गुरु गृहगति के घर पर जाना  
 बभर गुरु की मुक्ति । हे गुरो ! मेरी रक्षा करो गुरु के गमान कोई प्रिय एवं  
 पर्य्य नहीं है । गुरु के गृह होनेपर कोई रक्षा नहीं कर सकता है ।  
 गुरुविनिर्गुणं वा गुरुर्विषोमहेभरः । गुरुर्गमां गुरुः ज्ञेयः मयात्मा निर्गुणो गुरुः ॥  
 ज्ञोमोददेवे कष्टे च गुरुः शक्तो हि रक्षितुम् । गुरो कष्टेऽभीष्टदेवो नहि शक्तश्च रक्षितुम्

जाना कहकर इन्द्राणी ऊंचे स्वर से रोने लगी । उसका रोदन सुन तारा  
 भी रोने लगी । तब गुरु ने कहा हे तारे ! इन्द्राणी का कल्याण होगा जबदी ही  
 इन्द्र की प्राप्ति होगी । इन्द्राणी को तारा का उपदेश । शचीवृत्त गुरु स्तोत्र को  
 पूजा समय पढ़ने से गुरुदेव प्रसन्न होते हैं तथा अन्य सम्पूर्ण मनोयन्त्रित फलों की  
 प्राप्ति होती है ।

६०

शचीम्प्रति गृहस्पतेः प्रबाधवाक्यम्

८८१

नहुपोपाख्यानम्

८८१

शक्रमोक्षकथनम्

८८३

शची का स्तोत्र सुन गुरुजी प्रसन्न हो बोले—हे पुत्रि ! जैसे मेरे लिये कच व  
 पत्नी पुत्री समान है वैसे ही तुम हो अतः तुम्हें कोई भी भय नहीं है पुत्र और शिष्य  
 में कोई अन्तर नहीं । पिता, माता, गुरु, स्त्री, शिशु, अनाथ एवं वान्धवों को सब  
 ही पुष्ट रखना ( पालन करना ) चाहिये । जो माता, पिता तथा गुरु में अन्  
 मनुष्यों के समान बुद्धि रखता है उसकी पद-पद पर अपकीर्ति होती है । सर्वा  
 से मदीन्मत्त हुआ पुरुष यदि गुरु का अपमान करता तो उसका जबदी ही ना  
 है । मैं इन्द्र की मोक्ष एवं तुम्हारी रक्षा करूँगा । कहा है—

शासितुं रक्षितुं शक्तः स एव गुरुरुच्यते ।

नहुप के दूत ने इन्द्राणी के पास जाकर कहा देवि ! नहुप के पास चलो तब गुरु ने कहा नहुप से जाकर कहो कि इन्द्राणी को यदि भोगना चाहते हो तो सप्तर्षियों से ढोई गई पालकी में बैठकर आओ । दूत ने राजा से सारी बातें कही तब नहुप ने तुरन्त सप्तर्षियों को बुलवाया । सप्तर्षियों ने कायर राजा से कहा हे पुत्र ! तुम्हारी जो इच्छा हो सो बर मांगो । तब नहुप ने कहा यदि आप सब कुल्ल देसकते तो मुझे इन्द्राणी का दान दो । इन्द्राणी सप्तर्षियों का वाहन चाहती है अतः आप सब मेरी पालकी को वहन करो । राजा का वचन ऋषियों ने स्वीकार किया, वे वाहक हो गये । राजा ने उनको देर करते देखकर डाँटा तब क्रोधित हो दुर्वासा ने कहा कि तुम महान् अजगर होओगे । पुनः धर्मपुत्र के दर्शन से तुम्हारी मोक्ष होगी पश्चात् वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी । राजा का सर्परूप होकर पृथ्वी पर गिरना । गुरु का इन्द्र को लाने के लिये जाना । इन्द्राणी को इन्द्र की प्राप्ति सोमयाग का विधान ।

६१

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम्

८७४

इन्द्रस्य अहल्याम्प्रतिगमनम्

८८४

नारायण धोले—इन्द्रदर्पभङ्ग का दूसरा वृत्तान्त मुनी । समुद्रमथन के समय दैत्यों को जीतकर इन्द्र बहुत गर्वित हो गया । तब श्रीकृष्ण ने बलि द्वारा इन्द्र का मद नष्ट करवाया । फिर अदिति के व्रत से तथा गुरु की स्तुति से राजा की प्राप्ति । कल्पान्तर में दुर्वासा द्वारा इन्द्र की लक्ष्मी नष्ट होना पुनः कृपालु मुनि द्वारा लक्ष्मी की प्राप्ति । लक्ष्मी के मद से मत्त हुए इन्द्र ने गौतमपत्नी अहल्या का अपहरण किया । पुनः गौतम के शाप से इन्द्र के शरीर में भग के से चिह्न हो गये । उसको देखकर ऋषिमुनि हैंसे तथा देवता लज्जित हुए एवं बृहस्पति सूतसुत

धामें हो गईं। नारदजी ने नारायण से इस विषय में प्रश्न किया वर  
 नारायण बोले—पुनर्र में तीर्थयात्रा के समय मन्दाकिनी गङ्ग पर स्नान करती हुईं  
 अहल्या को इन्द्र ने देखा। कामी इन्द्र ने अहल्या के पास जाकर मञ्जुश्याजी से  
 कहा—जितना कामराश्र को मैं जानता हूँ उतना गौतमजी नहीं जानते। तुम  
 मेरे पास रहो इन्द्राणी को तुम्हारी दामी बना दूंगा। यह इतना कह अहल्या के  
 चरणों में गिर पड़ा। तब अहल्या ने कहा जिन पुण्यों का मन परस्त्री में मग्न है  
 उसका सब काम व्यर्थ है। परस्त्री का रोषन इस लोक में अपकीर्ति करनेवाला एवं  
 परलोक में नरक प्राप्ति का कारण होता है। गौतमस्त्री ने परपर जाकर अपने पति  
 से सब समाचार कहे। मुनि हँसे और इन्द्र की निन्दा की। इन्द्र का समय पाकर  
 गौतमरूप से अहल्या के पास जाना। इन्द्र एवं अहल्या को गौतम का शाप। इन्द्र  
 को उन्हीं भगाइ होने का शाप तथा अहल्या को महायन में पत्थर की मूर्ति होने  
 का शाप दे अहल्या से कहा कि व्रता में रामचन्द्रजी के पैर की अङ्गुली स्पर्श करने  
 - केर फिर तुम मुझे प्राप्त करोगी।

संक्षेपेण श्रीरामचरित्रं अहल्यामोक्षणञ्च

८८७

रामलक्ष्मणसमीपे शूर्पणखागमनम्

८८६

हनुमन्तं दृष्ट्वा सीतायाः कथोपकथनम्

८८१

- ८

राम-लक्ष्मण का सीता के पाणिग्रहण निमित्त मिथिला गमन । मार्ग में पापाकामिनी को देख रामचन्द्रजी का विश्वामित्रजी से उसका कारण पूछकर विश्वामित्रजी से सम्पूर्ण रहस्य जानकर भगवान् राम का पैर की अङ्गुली का स्पर्श करना जिससे तत्क्षण ही उसका दिव्यरूप हो भगवान् को आशीर्वाद दे पान्द्रिर में प्रस्थान करना । तदनन्तर राम का मिथिला जाकर धनुष तोड़ना त सीता से पाणिग्रहण । विवाहोपरान्त परशुरामजी का दर्पभङ्ग कर अयोध्या आना । राजा दशरथ द्वारा पुत्र श्रीराम को राज्याभिषिक्त करने का उद्योग जिसे देख भरत की माता कँकैयी का पहिले माँगे हुए राजा से दो वर लेने पहिले से राम को वनवास, दूसरे से भरत को राज्य मिलना । प्रेम में मोहित पित को देख श्रीरामचन्द्रजी द्वारा समझाना ।

तडागसतदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते वापीदानेन निश्चितम् ॥  
 दशावापीप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः ॥  
 दशरुन्याप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते यज्ञैकेन नराधिपः ॥  
 दशरथहोनेन यत्पुण्यं लभते पुण्यकृज्जनः । ततोऽधिकञ्च लभते पुत्रास्यदर्शनेन च ॥  
 दर्शने शतपुत्राणां यत्पुण्यं लभते नरः । तत्पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान् सत्यपालनात् ॥

नहि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।

नहि गह्नासमं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥

नास्ति धर्मात्परो बन्धुनास्ति धर्मात् परं धनम् ।

धर्मात्प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यन्नतः ॥

स्वधर्मं रक्षिते तात शश्वन् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम् ॥  
 धनुर्दशानन्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुरं भ्रमन् । वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते

श्रीराम का बल्लल धनुष धारण कर सीता और लक्ष्मण सहित वन के लिये प्रस्थान । पुत्र विरह में राजा का प्राणत्याग । समय पाकर रावण की पहिले शूर्पणखा का राम के पास आना; भगवान् राम के रूप पर मोहित

शूर्पणखा का विवाह के लिये प्रयास करना । भगवान का उगली उगरी  
 हे मातः ! मैं गणपतीक हूँ मेरा छोटा भाई लक्ष्मण अगलीक है अनः उगल प  
 जाओ । राम के वचनों को सुन शूर्पणखा का लक्ष्मण के पास विवाहार्थ जा  
 एवं मनोरथ कहना । तब लक्ष्मण ने कहा हे मूठे ! भगवान श्रीराम को छोड़  
 जैसे दाम की इच्छा करती हो मेरी पत्नी होने पर तुम्हें गीगा की दासी बन  
 पड़ेगा । इसलिये सीता की ही राक्षसी बनो मैं तो तुम्हारी पुररूप से सेवा करूँ  
 तत्पश्चात् निराश हुई राक्षसी का दोनों को शाप । जो तुम काम से पीड़ित  
 स्वयं उपस्थित स्त्री का त्याग करते हो इसलिए दोनों पर विपत्ति आवेगी  
 जैसे मोहिनी के शाप से ब्रह्मा, रम्भा के शाप से दक्ष, उरशी के शाप से अश्वि  
 कुमार, मेना के शाप से कुबेर, घृणाची के शाप से कामदेव, मद्रालसा के शाप  
 यली और मिश्रकेशी के शाप से बृहस्पति की मित्रता अपहृता हुईं वैसे ही मेरे शा  
 से राम की भार्या का अपहरण होगा । शूर्पणखा के वचन सुन लक्ष्मण ने उम  
 नाक-कान काट लिये । खरदूषण का लक्ष्मण के साथ युद्ध एवं चौदह हजार  
 राक्षसों के साथ खरदूषण को मृत्यु । शूर्पणखा का सम्पूर्ण वृत्तान्त रावण व  
 कह पुष्कर में तप करने के लिये जाना । तप से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ने उस  
 कहा कि तुमने जो राम को विना प्राप्त किये इतना दुष्कर तप किया है अब  
 जन्मान्तर में उसे पतिरूप में प्राप्त करोगी । ऐसा कहकर ब्रह्माजी का अर्प  
 स्नान पर जाना एवं शूर्पणखा का अग्नि में शरीर त्यागकर कुञ्जारूप में जन्म ।  
 रावण द्वारा सीता का हरण । रामचन्द्रजी द्वारा सीता की खोज एवं बाली का  
 वध कर सुग्रीव के साथ मित्रता करना । सुग्रीव द्वारा सीता की खोज के लिये  
 सर्वत्र दूतों को भेजना एवं राम-लक्ष्मण का सुग्रीव के यहां निवास करना ।  
 को वरदान देकर एवं रमणीय अंगूठी दे सीता की खोज के लिये  
 भेजना । हनुमान्जी का अशोकवाटिका में शोकाकुल दुर्बल सीता को देखना ।  
 अतिक्रम निरन्तर भक्तिपूर्वक राम-राम जपती हुई जटाभार से उ

दिन-रात श्रीराम के चरणारविन्दों का ध्यान करती हुई सीता को देख प्रणाम कर वायुनन्दन हनुमान् ने हर्षयुक्त हो भगवान् रामचन्द्रजी की अंगूठी उनको दी। हनुमान् एवं सीता का वार्तालाप। श्रीरामचन्द्र के कुशल वृत्तान्त को सीता से कहकर हनुमान् द्वारा लंकादहन। हनुमान्जी का रामचन्द्रजी को सब वृत्तान्त कहना। सीता के समाचार की श्रवण कर राम-लक्ष्मण एवं सुग्रीव का शोकाकुल होना। रामचन्द्र द्वारा समुद्र पर सेतु बंधवाकर युद्ध में रावण को मार देना। पुष्पक विमान से राम, लक्ष्मण, सीता का अयोध्या आना। सीता में कुश, लव दो पुत्रों की उत्पत्ति।

६३

कंसपञ्चकथनम्

८६३

एक समय रात्रि के दुःस्वप्नों को देख भयभीत कंस ने सभा में पुत्र, मित्र, बन्धुगण, बान्धव एवं पुरोहित से कहा कि मैंने अर्द्धरात्रि में एक वृद्धा रक्तपुष्पों की माला धारण किये एवं लालचन्दन, लाल यज्ञ, तीक्ष्ण तलवार एवं खप्पर को लिये मेरे नगर में नाचते देखा। विकृत आकारवाला, रुक्ष केशोंवाला म्लेच्छ, पति-पुत्रवाली दिव्य स्त्री को महारुष्ट, पूर्ण कुम्भ का भङ्ग होना, क्षण में अङ्गारवृष्टि, क्षण में भस्मवृष्टि, क्षण में रक्तवृष्टि, वानर, वायस, वृकर, भालु, शूकर, और खर का भयङ्कर शब्द सुना और पीतवस्त्र एवं शुक्ल चन्दन से पूजित तथा रत्नआभूषणों से भूषित, सिन्दूर विन्दु से शोभित स्त्री मुझे शाप देकर मेरे घर से निकल जाती है। मुक्त केशोंवाली नग्ननारी, छिन्न नासिकावाली विधवा का देखना। दिगम्बरी महाशूत्री मुझे तैल से अभ्यङ्ग करती है। दिशाओं का भस्मपूर्ण होना, नृत्य-गीत एवं विवाह का देखना, चन्द्र-सूर्य का ग्रहण, उल्कापात, भूकम्प का होना एवं नतमस्तक हुए बान्धव इत्यादि स्वप्न के महान् कथाओं का वर्णन।



कंससत्यकयोः परस्परं परामर्शः

८६५

कंसयज्ञकथनम्

८६७

सत्यक पुरोहित ने कंस से विचार कर कहा कि भय त्यागकर इन दुःखर्तों के निमित्त धनुर्मखनामक यज्ञ जो सब अरिष्टों का नाश करनेवाला एवं शत्रु तथा दुःखर्तों का नाशक है करो। याग की समाप्ति में साक्षात् शङ्कर सय सम्पत्ति को देते हैं। इस यज्ञ को वाणासुर, नन्दी, परशुराम एवं बलवान् भद्र (जाम्बवान्) ने किया था। इस धनुष को शङ्कर ने नन्दीश्वर को दिया था नन्दीश्वर ने यज्ञ कर वाणासुर को दिया। वाणासुर ने धनुर्मख कर परशुराम को पुष्कर में दिया। परशुराम ने तुम्हें दिया। इसको नारायण के बिना कोई भङ्ग नहीं कर सकता। इस विषय में शङ्कर का पूजन कर सबका निमन्त्रण करो। धनुष भङ्ग होने से यज्ञमान का विनाश अवश्यम्भावी है। कंस ने सत्यक का घपन सुनकर सबसे कहा यमुदेव के घर में उत्पन्न हुआ और नन्द के घर में बढ़ता है यह मेरा शत्रु है। उसने मेरी यहिन पूतना को मारा है। गोवर्धन को धारण कर इन्द्र का परामर्श किया है उसके सिया अन्य कोई शत्रु नहीं है। उसे मारकर मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी बनूंगा। सूर्य, चन्द्र, बरुण, यम, कुबेर, एवं वायु को भी अवरय पराजित करूंगा। फिर कंस ने सत्यक से कहा कि तुम नन्द, कृष्ण एवं बलराम को प्रज्ञ से लाओ। सत्यक ने कंस से नीतियुक्त घपन कहा कि अक्रूर, षट्प, या यमुदेव को भेजिये। कंस ने यमुदेव को श्रीकृष्ण को छाने के लिये कहा। तब यमुदेव बोटे मेरा जाना उचित नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण के यह आने आपका विरोध होगा। उसमें आपकी अथवा श्रीकृष्ण की मृत्यु होने से मुझे दोषी ठहरायेगा और मृत्यु दोनों में से एक की अवरय होगी। कंस पर बलवार बलाना एवं वप्रसेन द्वारा रोकना। कंस के दूतों से धनुष-

पया सुन अनेक देशों के राजा, देवगण, सनकादि ऋषिगण अ  
ल आदि ऋषियों और शिपाल आदि राजाओं का आना ।

### अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनम्

८६.

कंस के वचन सुन अक्रूर ने उद्वेग से अपने हर्ष का वर्णन किया । आजक  
ड़ी सुन्दर है । गुरु विप्र एवं देव मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं । कोटि जन्म  
आज उपस्थित हुआ है जो मैं ब्रजराज श्रीकृष्ण को लाने के लिये जाऊँगा ।  
चरणारविन्द का ध्यान ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर करते हैं लक्ष्मीजी  
दासी हैं और त्रिभुवनपावनी गङ्गा जिनके चरणों से निकली है  
नके पादपद्मों का ध्यान करती है तथा जिस भगवान् के निमित्त पाद्मकल्प  
ने हजार मन्वन्तर तक तप किया । फिर भी ब्रह्मा को यह आदेश हुआ  
तपस्या करो पुनः ब्रह्माजी को दर्शन हुआ । जिनके निमित्त शङ्कर ने  
नी फिर गोलोक में भगवान् के दर्शन हुए । बड़ी आश्चर्यजनक वार्ता है ।  
निमित्तेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यथ तमुद्वेग ! ॥  
ने भगवान् के शुभ दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा । इतना कहकर  
प्रेम मिलकर अक्रूर का अपने घर जाना ।

### श्रीराधाशोकोपनोदनम्

६०१

शश्वरी राधा के साथ श्रीकृष्ण का शयन । राधा ने रात्रि में दुःखन  
वान् से कहा—मुझे स्वप्न में ऐसे चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि रूष्ट हुआ  
राध से रत्नद्वत्र ले रहा है तथा मैं आपसे रक्षा करनेको कह रही हूँ ।  
सूर्यमण्डल का गिरकर चार खण्ड होना तथा एक काल में चन्द्र-सूर्य  
क्षणभर में दीप्तिमान् ब्राह्मण द्वारा मेरी गोद में से सुधाकुम्भ का  
वर्ण की प्रतिमा का आलिङ्गन होना, प्राणाधिदेवपुरुषों का यों

कहना कि हे राधिके ! मुझे विदा करो । इस तरह के महाग दुःखनों को देखकर मेरे दिलने अंग शृङ्गण करने हैं तथा मेरा मन शोक में व्याप्त हो रहा है । इतना कहकर राधा का भगवान् के चरणों में गिरना । तन्नामान श्रीकृष्ण द्वारा राधा को अध्यात्म ज्ञान का उपदेश पर दुःख दूर करना ।

६७

आध्यात्मिकयोगकथनम्

६०६

विरहव्याकुल राधा को देख श्रीकृष्ण का राधा सहित क्रीड़ा-मरोवर प-जाना । राधा ने कहा हे नाथ ! मैं आपके रहने से प्रसुद्धि न हूँ तथा नहीं रहने से मरी हुई तथा म्लान (कुम्हलाई हुई) हूँ । जैसे सूर्योदय होने से महीपति म्लान हो जाती है । हे रासेश ! राम एवं वृन्दायन की शोभा भी आपसे ही है । आपके बिना नन्द एवं यशोदा भी शोकसागर में निमग्न हैं । इतना कहकर राधा का श्रीचरणों में गिरना तथा श्रीकृष्ण द्वारा अध्यात्मयोग का उपदेश करना । नारदजीके पूछने पर नारायण द्वारा आध्यात्मिकयोग का कहना । आध्यात्मिकयोग महायोग है इसे ज्ञानी भी नहीं जानसकते हैं । कुछ अध्यात्मयोग का उपदेश गोलोक में श्रीकृष्ण ने त्रिपुरारि शङ्कर से किया था तथा कुछ-कुछ कपिल, दुर्वासा, भृगु और प्रह्लाद को भी । श्रीकृष्ण बोले हे राधिके ! सम्पूर्ण गोलोक का वृत्तान्त एवं एवं आत्मा का स्मरण करो । सुदामा के शाप से कुछ दिन तुम्हारा मेरे से विच्छेद होगा तथा फिर अपने दोनों का मिलन होगा । हे राधिके ! तुम्हारे में एवं मेरे में कुछ भी भेद नहीं है । ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव सब मेरे अंश हैं तथा महालक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, सावित्री आदि सब प्रकृति रूप तुम्हारी अंशभूता हैं । यथा त्वञ्च तथाऽहञ्च समौ प्रकृतिपूरुषौ । नहि सृष्टिर्भवेद्देवि ! द्वयोरेकतरं विना । इतना कह श्रीकृष्ण का राधा के साथ रासक्रीड़ा ।

श्रीकृष्ण द्वारा निद्रित राधा का बोधन करना । श्रीकृष्ण ने राधा से कहा हे रासेश्वरि ! क्षणभर रासक्रीड़ा में ठहरो । क्योंकि तुम रास की अधिष्ठातृदेवी हो । हे राधिके ! तुम्हारे में मेरा मन दिन-रात लगा हुआ है तुम्हारे से अन्य कोई मुझे प्रिय नहीं है । मेरे प्राण साक्षात् शङ्करजी हैं किन्तु तुम प्राणों से भी बढ़कर हो । इतना कहकर अक्रूर के आगमन को जानकर श्रीकृष्ण का जाने के लिये उद्यत होना । तदनन्तर राधा का श्रीकृष्ण से प्रार्थना करना कि हे भगवन् ! आप मुझे छोड़ कहाँ जा रहे हैं ? यदि आप जायेंगे तो आपके पुत्र-पौत्र ब्रह्मशाप रूपी अग्नि से नष्ट हो जायेंगे । इतना कहकर राधा का क्रोध से मूर्छित हो पृथ्वी पर गिरना । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा राधा को सान्त्वना देना ।

६६	रासप्रीड़ावर्णनम्	६०६
	ब्रह्मकृतस्तोत्रम्	६११
	श्रीकृष्णस्य गमनम्	६१३

श्रीकृष्ण का राधा के साथ रासक्रीड़ा करना । श्रीकृष्ण का शयन करना । ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति । ब्रह्मा ने कहा हे देव ! उठो भक्त मुदामा के शाप का स्मरण कर सौ वर्ष तक राधा का बन्धन छोड़ो । फिर गोलोक में मुझे प्राप्त हो जाओगी, अब घर पर अपने पाचा अक्रूर को देखो, पीछे शङ्कर का धनुष तोड़ना, कंस को मारना इत्यादि बहुतसे काम करने हैं । इतना कहकर देवों सहित ब्रह्मा का अपने स्थान पर जाना । पुनः आकाशवाणी हुई कि कंस को मारकर अपने माता-पिता को बन्धन से छुड़ाओ । इतना सुन सोई हुई राधा को छोड़ श्रीकृष्ण का व्रज में जाना । कृष्ण विरह में राधा का बिलाप । रत्नमाला एवं

श्रीकृष्ण का वार्तालाप । रत्नमाला ने कहा हे भगवन् ! मेरी सखी आपके विरह में प्राण त्याग कर देगी इसलिये आपका जाना उचित नहीं । श्रीकृष्ण ने नीतियुक्त वचन रत्नमाला से कहा—

ईतोवद्यपिशकोऽहं निषेयं खण्डितुं प्रिये । तथापि न क्षमो रत्ने नियतेर्न करोम्यहम् ॥

ब्रह्माण्ड में सम्पूर्ण मर्यादा मेरी ही बनाई हुई है । उसीके अनुसार देव, मनुष्यादि कर्म करते हैं अतः हम दोनों का फिर मिलन होगा । ऐसा कहकर भगवान् का नन्दजी के घर जाना ।

७०

अक्रूरस्य कृष्ण समीपेगमनम्

६१५

अक्रूरजी उद्धवजी से बातचीत कर अपने घर में सो गये । उन्हें रात्रिकेशोर में सुखर्णों का दर्शन हुआ, जिनमें सर्वप्रथम किशोर अवस्थावाले, मुरली धारण करनेवाले, पीताम्बर पहने द्विज शिशु का दर्शन । पतिपुत्रवाली साध्वी स्त्री, शुभाशीर्वाद करता हुआ ब्राह्मण, श्वेतकमल, राजहंस, अरव, सरोवर एवं आम्र-नीम, नारिकेल और कदली को पुष्पित एवं फलित, काटता हुआ श्वेतसर्प, अपनेको पर्वत, वृक्ष, गज; नौका और घोड़े पर स्थित, दही एवं क्षीर से युक्त आम्र, सबरसा गौ, पार्वती की प्रतिमा, शिव की प्रतिमा, शिवलिङ्ग का दर्शन, विप्र की लड़की, देवस्थान, मिह, व्याघ्र, गुरु, देव, मणि, मुयर्ण, चाँदी, मुक्ता माणिक्य, सारस, हंस, ताम्बूल, कृमि एवं विद्या सहित अंग और रक्त इत्यादि बहुतसे सुखर्ण देव उद्धवजी की आज्ञा पाकर अक्रूर की मंत्र के लिये यात्रा करना । यात्रा के समय शुभमङ्गलों का दर्शन—बायेओर शय ( मुदा ), शृगाली, पूर्णकुम्भ, नकुल, चात-पति-पुत्रवाली दिव्य धामूपगों से युक्त स्त्री, शुठतुण्य, माण्य, धान्य, खड्गन पशु तथा द्वादिने तरफ जलरी हुई अग्नि, विप्र, वृषभ, हाथी, बद्धे सहित गौ, सधेरे, राजहंस, बैराग, पुण्यमाला, श्वजा, दही, स्त्री, मणि, मुयर्ण, चाँदी, नौ मांम, चन्दन, माणिक्य ( मदिरा ) घृत, हरिण, फल, चायल, सिद्धा-

दर्पण, विचित्रित विमान, देदीप्यमान प्रतिमा, शुद्ध कमल, कमलयन, शङ्खचिह्न ( सफेद चील ), चक्रवा, विलाव, मेघ, पर्वत, मोर, शुक, सारस, शंख, कोयल एवं बाघों की ध्वनि और कृष्णनामों से युक्त श्रीकृष्ण का कीर्तन ऐसे शुभमङ्गलों को देख प्रज में प्रवेश। अक्रूर के आगमन को देख बेश्या, पूर्णकुम्भ, गजेन्द्र एवं शुद्धवान्य को आगे कर धालकों सहित नन्द का अक्रूरजी के पूजनार्थ आगमन। श्रीकृष्ण के अद्भुत रूपों को देखकर अक्रूर का स्तुति करना। पुनः कुराल वृत्तान्त पढ़ने के बाद मिष्टान्न भोजन कर सब प्रजवासियों का अपने-अपने स्थानों में शयन।

७१

## यात्रामङ्गलवर्णनम्

६२०

राधिका एवं अन्य गोपियों के शयन करने के बाद रात्रि के तीसरे प्रहर में शुभ अश्रु एवं चन्द्रमा के योग में यशोदा से मङ्गलाशासन करा बन्धुओं को आश्वासन दे श्रीकृष्ण का मथुरा यात्रा करना। उस समय पादप्रक्षालन कर शुद्ध वस्त्र पहनकर चन्दन लगा जाते हुए बाईं तरफ पूर्णकुम्भ एवं दक्षिण में अग्नि, विप्र, पतिपुत्रवाली स्त्री इत्यादि शुभशकुनों को देखकर दक्षिण पैर को आगे रख मध्यमा से नासिका के वाम भाग को रोक दक्षिण मार्ग से वायु का त्याग कर और माता-पिता एवं अन्य बान्धवों से मिलकर वह मथुरा को यात्रार्थ चले।

७२

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम्

६२१

कुम्भोद्धारवर्णनम्

६२३

कंसदुःस्वप्नकथनम्

६२५

कंसवधवर्णनम्

६२७

श्रीकृष्ण गुरु को प्रणाम कर सुन्दर मथुरापुरी को चले। मार्ग में

भीकृष्ण का वार्तालाप । रत्नमाला ने कहा हे भगवान ! मेरी मग्गी आपके विरह में प्राण त्याग कर देगी इगलिये आपका जाना उभिन नहीं । भीकृष्ण ने नीतिगुण वचन रत्नमाला से कहा—

ईतोयद्यपिशक्तोऽहं निवेद्यं गण्डिद्वन्द्वं प्रिये । तथापि न श्रमां रत्ने नियतेन करोग्यहम् ॥

ब्रह्माण्ड में सम्पूर्ण मर्त्यादा मेरी ही बनाई हुई है । उम्मीके अनुसार देव-मनुष्यादि कर्म करते हैं अतः हम दोनों का किर मिलन होगा । ऐसा कहकर भगवान् का नन्दजी के घर जाना ।

७०

अक्रूरस्य कृष्ण ममीपिंगमनम्

६१५

अक्रूरजी उद्वबजी से बातचीत कर अपने घर में मो गये । उन्हें रात्रिकेटी में सुखनों का दर्शन हुआ, जिनमें सर्वप्रथम किशोर अवस्थावाले, मुरली धारण करनेवाले, पीताम्बर पहने द्विज शिशु का दर्शन । पतिपुत्रवाली साष्वी स्त्री, शुभाशीर्वाद करता हुआ ब्राह्मण, श्वेतकमल, राजहंस, अश्व, सरोवर एवं आब-नीम, नारिकेल और कदली को पुष्टिपत एवं फलित, काटता हुआ श्वेतसर्प, अपनेको पर्वत, वृक्ष, गज; नौका और घोड़े पर स्थित, दही एवं क्षीर से युक्त अन्न-सवरसा गौ, पार्वती की प्रतिमा, शिव की प्रतिमा, शिवलिङ्ग का दर्शन, विप्र की लड़कई-देवस्थान, सिंह, व्याघ्र, गुरु, देव, मणि, सुवर्ण, चाँदी, मुक्ता माणिक्य, सारस-हंस, ताम्बूल, कृमि एवं विष्ठा सहित अंग और रक्त इत्यादि बहुतसे सुखन देव उद्वबजी की आज्ञा पाकर अक्रूर की भ्रज के लिये यात्रा करना । यात्रा के समय शुभमङ्गलों का दर्शन—बायेओर शव ( मुर्दा ), शृगाली, पूर्णकुम्भ, नकुल, चास, पति-पुत्रवाली दिव्य आभूषणों से युक्त स्त्री, शुद्धपुष्प, माल्य, धान्य, खड्गन पक्षी तथा दाहिने तरफ जलती हुई अग्नि, विप्र, वृषभ, हाथी, चक्रे सहित गौ, सफेद घोड़ा, राजहंस, वेश्या, पुष्पमाला, ध्वजा, दही, खीर, मणि, सुवर्ण, चाँदी, उसी का मांस, चन्दन, माष्वीक ( मदिरा ) घृत, हरिण, फल, चावल, सिद्धाङ्ग

दर्पण, विचित्रित विमान, देदीप्यमान प्रतिमा, शुद्ध कमल, कमलवन, शङ्खचिह्न (सकृद् चील), चक्रवा, विलाय, मैथ, पर्वत, मोर, शुरु, सारस, शंख, कोयल एवं बाघों की ध्वनि और कृष्णनामों से युक्त श्रीकृष्ण का कीर्तन ऐसे शुभमङ्गलों को देख व्रज में प्रवेश। अक्रूर के आगमन को देख वेश्या, पूर्णकुम्भ, गजेन्द्र एवं शुकुघान्य को आगे कर बालकों सहित नन्द का अक्रूरजी के पूजनार्थ आगमन। श्रीकृष्ण के अद्भुत रूपों को देखकर अक्रूर का स्तुति करना। पुनः कुशल वृत्तान्त पूछने के बाद मिष्टान्न भोजन कर सब व्रजवासियों का अपने-अपने स्थानों में शयन।

७१

यात्रामङ्गलवर्णनम्

६२०

राधिका एवं अन्य गोपियों के शयन करने के बाद रात्रि के तीसरे प्रहर में शुभ नक्षत्र एवं चन्द्रमा के योग में यशोदा से मङ्गलाशासन करा बन्धुओं को आश्वासन दे श्रीकृष्ण का मथुरा यात्रा करना। उस समय पादप्रक्षालन कर शुद्ध वस्त्र पहनकर चन्दन लगा जाते हुए दाईं तरफ पूर्णकुम्भ एवं दक्षिण में अग्नि, विप्र, पतिपुत्रवाली स्त्री इत्यादि शुभशक्तियों को देखकर दक्षिण पैर को आगे रख मध्यमा से नासिका के वाम भाग को रोक दक्षिण मार्ग से वायु का त्याग कर और माता-पिता एवं अन्य बान्धवों से मिलकर वह मथुरा की यात्रार्थ चले।

७२

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम्

६२१

कुञ्जोद्धारवर्णनम्

६२३

कंसदुःस्वप्नफयनम्

६२५

कंसवधवर्णनम्

६२७

श्रीकृष्ण गुरु को प्रणाम कर सुन्दर मथुरापुरी को चले। मार्ग में अत्यन्त



वृद्धा एवं हाथ में लट्टी छी हुई कुञ्जा को देखा। उसने श्रीकृष्ण का चन्दन पुत्र से  
 सत्कार किया जिससे कुञ्जा का सुन्दर रूप हो गया। भगवान् ने उसे आरवामन  
 देकर आगे मालाकार ( माली ) को देखा। उसने भी श्रीकृष्ण को माला देकर  
 यरदान प्राप्त किया। श्रीकृष्ण की रजक में भेंट। भगवान् ने उससे वस्त्र मंगे।  
 रजक ने कहा हे मूढ़ ! ये राजोचित वस्त्र है तुम्हारे योग्य नहीं है। इतना मुन  
 श्रीकृष्ण ने उसको थप्पड़ से मार दिया तथा वस्त्र छे लिये। अक्रूर का अपने घर  
 को जाना एवं नन्दादिकों का वैष्णव कुविन्द के यहाँ रात्रि में घाम। श्रीकृष्ण का  
 कुञ्जा के साथ प्रेममिलन तथा कुञ्जा का उद्धार कर्म को मृत्युसूचक दुःखानों का  
 दर्शन। कंस को खन में, विधवा, शूद्रपत्नी, गदहा, भैमा, शूकर, भालू, गीव,  
 हड्डियो का समूह, कपास, श्मशान इत्यादि बहुतसे अनुमसूचक वस्तुओं का दर्शन।  
 श्रीकृष्ण ने धनुष को तोड़कर एवं महलों को मारकर कंस को लीला मात्र से ही स्वर्ग-  
 घाम पहुँचा दिया। श्रीकृष्ण का रूप सबको अलग-अलग तरह से दिखाई दिया  
 जैसे राजाओं को राजेन्द्ररूप में, माता-पिता को बालक रूप में, कंस को कालरूप में  
 इत्यादि ऐसे ही श्रीमद्भागवत में आया है "महानामरानिर्नृणानरवरः" रामायण  
 में भी "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूर्ति देखी तिन तैसी"। कंस का दिव्य रूप  
 धारण कर परमधाम में जाना। कंस की माता एवं भाई बन्धुगण आदि का  
 विलाप। श्रीकृष्ण द्वारा अपने माता-पिता का बन्धन तोड़ना। श्रीकृष्ण बलराम  
 का अपने माता-पिता को प्रणामकर प्रार्थना करना। इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों  
 को भोजन से वृत्त कर द्रव्य दान किया।

नन्दायज्ञानकथनम्

६२८

पुत्र के वियोग में नन्दजी का रुदन। श्रीकृष्ण का नन्दजी को ज्ञान देना  
 दुःख छोड़िये एवं शान्ति को प्राप्त कीजिये। इस संसार में कर्मों  
 एवं माता-पिता नहीं है। सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार

हल भोगते हैं। मेरी माया से ही सब देवादि अपने-अपने कार्यों में लगे हैं। मेरी प्राणाधिष्ठात्री देवी राधा के साथ सौ वर्ष तक वियोग होगा फिर उसके गोलोक में जाऊँगा तथा आप लोगों को भी गोलोक में भेज दूँगा। जैसे आत्मा और जीव का सम्बन्ध है उसी तरह राधा का और मेरा है। अतः राधा में गोपिका बुद्धि एवं मेरे में पुत्र भावना का त्याग करें। इतना कहकर श्रीकृष्ण का नन्दजी के प्रति विभूतियोग का वर्णन। विभूति योग को सुनने के बाद नन्दजी का सामवेदोक्त स्तोत्र से कृष्ण की स्तुति करना। पुत्र के आगे चारम्बार रुदन करना।

७४

भगवन्नन्दसंवादवर्णनम्

६३३

नन्दजी की स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् बोले—हे नन्दजी ! अब दुःख को छोड़ ब्रज में जाइये मैं आपको वही ज्ञान देता हूँ जो पहले ब्रह्मा, गणेश तथा शङ्कर को दिया था। कौन किस का पुत्र है कौन किसकी माता है सब इसी तरह संसार में आते हैं तथा जाते हैं। अपने-अपने कर्मों से मनुष्य नाना तरह की योनियों में जन्म लेते हैं। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त संसार में जन्म लेते हैं। मेरे मन्त्र की उपासना करनेवाला इस शरीर को छोड़ गोलोक की जाता है। मेरे भक्तों का कभी भी अशुभ नहीं होता। मेरा भक्त मेरे से बलवान् है। इतना सुन नन्दजी बोले—भुंके सांसारिक ज्ञान का उपदेश करो। पुनः श्रीकृष्ण द्वारा दिनचर्या का वर्णन करना।

७५

आह्निकवर्णनम्

६३५

श्रीकृष्णप्रोक्त आह्निकाचारः

६३७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे नन्दजी ! वेद एवं पुराणों का गोपनीय ज्ञान आप से कहा है। स्त्रियों का कभी भी विश्वास न करे। प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर

श्रीवादि से निवृत्त हो निमल जल में स्नान कर शालग्राम, मणि, चन्द्र और प्रतिमा का पूजन करे। सर्वप्रथम विघ्न दूर करने के लिये गंगोत्तरी की पूजन करे। विघ्ना, गुरु, लिङ्ग और योनि को नहीं दें। विघ्नों के स्नान, कटाक्ष एवं हास्य को न दें। अस्त्रकाल में सूर्य एवं चन्द्र को न दें। इनसे व्याधि की प्राप्ति होती है। जल में सूर्य एवं चन्द्र को देवने से दुःख की प्राप्ति होती है। पर मैथुन देरने से यन्त्रियों का विच्छेद होता है। मादक, गी, वैष्णव एवं अन्य किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। किसीका धन हरण न करे यह सर्वनाश का कारण है। शुद्ध यजुर्वेद में आया है "मा गृधः कश्यश्चिद्भनम्"। अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई मद्यवृत्ति का हरण करने से ६० हजार वर्ष तक विघ्ना में कृमि होता है। फोटि वर्ष गीघ, सौ जन्म मूक और सौ जन्म व्याघ्र इत्यादि कष्टप्रद योनियों को प्राप्त होता है। कर्म कराकर दक्षिणा तत्काश नहीं देने से एक रात्रि व्यतीत होने पर दुगुनी होजाती है। एक मास धीतने पर सौगुनी, दो मास धीतने से हजारगुनी तथा एक वर्ष धीतने से दाता नरक को जाता है। देनेवाला अगर नहीं देता है तथा लेनेवाला नहीं मांगता है वे दोनों ही नरक में जाते हैं एवं दाता व्याधियुक्त होता है। जो मूर्ख स्त्री अपने पति को हरि रूप में नहीं देखती है, वह कुम्भीपाक नरक में जाती है। जो मनुष्य शिव, दुर्गा, गणपति, सूर्य, विघ्न और विष्णु की निन्दा करता है उसे महारौरव नरक की प्राप्ति होती है। माता, पिता, पुत्र, सती स्त्री, गुरु, अनाथ, भगिनी और कन्या की निन्दा करने से नरक की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों की भक्ति से होन एवं हरिभक्ति से विहीन नरक को जाता है। एकादशी एवं जन्माष्टमी के व्रत करने से सौ जन्म तक के पाप नष्ट होते हैं। कूपमाण्ड का घात करनेवाली स्त्री एवं दीप को बुझानेवाला पुरुष सात जन्म तक रोगी एवं जन्मजन्मान्तर में दक्षिण होता है। दीप, शिवलिङ्ग, शालग्राम, मणि, प्रतिमा, यज्ञोपवीत, सुवर्ण, शङ्ख, नीरा, मोती, गोमूत्र, गोमय, घृत एवं भगवान् के पादोदक को भूमि पर रखने से

अधः ( नरक ) को जाता है । दिन में तथा सन्ध्या के समय निद्रा एवं स्त्री सम्भोग करने से सात जन्म तक दरिद्री एवं सात जन्म तक रोगी होता है । शिवपूजा करने से विप्र जीवन्मुक्त एवं शिवपूजन न करने से नरक को जाता है । ब्राह्मण मुझे सबसे प्रिय हैं तथा ब्राह्मणों से अधिक प्रिय लक्ष्मी, लक्ष्मी से अधिक राधा उससे अधिक भक्त एवं भक्त से अधिक शङ्करजी प्रिय हैं । मैं सदा महादेव के नामोच्चारण करनेवालों के पास ही रहता हूँ । नारायणी शक्ति भगवती से ही सब कार्य कराता हूँ वह शक्ति सब जगद् विराजमान है ।

७६

शुभाशुभदर्शनफलम्

६४२

नानाविधदानफलम्

६४५

श्रीनन्दजी ने शुभाशुभ दर्शन के विषय में पूजा तब श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण, तीर्थ, वैष्णव एवं देवप्रतिमा को देखने से तीर्थस्नान के समान पुण्य होता है । सूर्य, सती स्त्री, सन्यासी, ब्रह्मचारी, गौ, अग्नि, गुरु, हाथी, सिंह, सफेद घोड़ा, शुक, कौयल, हंस, खंजन, मयूर, चातक, सफेद पक्षी, सवत्सा गौ, पीपल, पति पुत्रवाली स्त्री, तीर्थ जानेवाले मनुष्य, दीप, सुवर्ण, मणि मुक्ता, हीरा, भाणिक, तुलसी, सफेद पुष्प, सफेद धान्य, घृत, दही, शहद, पूर्णकूम्भ, तण्डुल, सफेदपुष्पों की माला, गोरौवन, कपूर, चांदी, तालाब, पुष्पों से युक्त बगीचा, शुद्धपक्ष के चन्द्रमा, अमृत, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम, एवं पुराण पुस्तक आदि को देखने से पाप नष्ट होते हैं तथा पुण्य की प्राप्ति होती है । आठ वर्ष की कुमारी को ब्राह्मण को देने से दुर्गा दान के समान फल होता है । अनाथ विप्र का विवाह कराने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । भूमिदान, गोदान, गजदान एवं सफेद घोड़े का दान—का वर्णन कर अन्नदान की बहुत प्रशंसा गाई है । अन्नदान के समान कोई दान नहीं है । वृद्ध गौतम स्मृति में भी अन्नदान के माहात्म्य का बहुत वर्णन किया है ।

सुख्ण के दर्शन से गङ्गा स्नान के समान पुण्य एवं धन, पुत्र, स्त्री, भूमि एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

७७

### सुख्णदर्शनफलम्

६४६

नन्दजी ने पूछा कि कौनसे स्वप्न से क्या पुण्य होता है तथा कौन-कौनसा स्वप्न अच्छा है ? तब भगवान् बोले कि स्वप्नाध्याय का वर्णन करता हूँ। रात्रि के प्रथम प्रहर का स्वप्न एक एक वर्ष में, दूसरे प्रहर का ८ मास में, तीसरे प्रहर का ३ मास में, चतुर्थ प्रहर का १५ दिन में, अरुणोदय के समय १० दिन में एवं प्रातःकाल का स्वप्न यदि उसी क्षण जग जाय तब तत्काल फल देता है। व्याधियुक्त, नम्र, मूत्र एवं पुरीष से पीड़ित मनुष्य को स्वप्न का फल नहीं होता है। स्वप्न में गौ, हाथी, घोड़ा, महल, वृक्ष, एवं पहाड़ों पर चढ़ने से धन की प्राप्ति होती है। हाथी, राजा, सुवर्ण, कन्या आदि को देखने से विपुल लक्ष्मी आती है। देवता, ब्राह्मण, गौ, पितर एवं सन्यासी को स्वप्न में जैसा देखते हैं वह शीघ्र ही वैसा ही फलीभूत होता है। भस्म, हड्डी एवं रुई को छोड़ अन्य सम्पूर्ण सफेद वस्तु उत्तम है। गौ, हाथी घोड़ा, ब्राह्मण एवं देव को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण कृष्ण वस्तु निन्दनीय है। रत्न के आभूषणों से युक्त दिव्य स्त्री जिसके घर में आती है उसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होती है। आठ वर्ष की कुमारी कन्या स्वप्न में जिसपर प्रसन्न होती है वह कवि पण्डित होता है तथा जिसको वह पुस्तक देती है वह विश्वविख्यात फकीर होता है। स्वप्न में ब्राह्मण तथवा ब्राह्मणी किसीको महामन्त्र देवे तो वह विद्वान्, धनवान् एवं गुणवान् होता है। स्वप्न में सरोवर, समुद्र, नदी, नद, मफेद सर्प और मफेद पहाड़ को देखने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। दिव्य स्त्री त्रिगको स्वप्न में कहती है कि आप मेरे स्वामी हो और वह देवकर यदि जागता है तो निश्चय से राजा होता है।

श्रीकृष्ण द्वारा नन्दजी को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश । यह योग वेद एवं शास्त्रों में गुप्त रूप से घताया है जिसके अभ्यास से जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि नहीं होती है । यह संसार जलबुदबुद की तरह है तथा मोह करनेवाला है । श्रीकृष्ण ने नन्दजी को गूढ़ महामन्त्र का उपदेश कर कहा इसे काशी मणिकर्णिका में जपना चाहिये, दुःखान्न, पाप का कारण एवं विघ्न हरनेवाला है । गौ को मारनेवाले, कृतघ्न आदि नीच पुरुषों का देखना पाप है । चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण को देखना निषिद्ध है । भाद्रशुक्ल चतुर्थी को चन्द्र का दर्शन नहीं करना चाहिए । यदि दर्शन हो जाय तो “सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक ! मा रोदीत्ववह्येपः स्यमन्तकः ॥” इस मन्त्र से जल को पवित्र कर पीने से उत्तम बताया है ।

नन्दजी ने सूर्य एवं चन्द्रमा के ग्रहण के विषय में पूछा तब भगवान् बोले इस आरूपात्म को श्रवण करने से पाप नष्ट होते हैं । एक समय जमदग्नि रेणुका के साथ नर्मदातट पर विहार कर रहे थे । तब सूर्य ने कहा हे ऋषे ! आप ब्रह्मा के प्रपौत्र हैं, वेदों को जाननेवाले हैं, आपके शास्त्रों से सब मनुष्य कार्य करते हैं आप धर्म का त्याग कर रहे हैं वेद में दिन में मैथुन का दोष कहा है । मैं धर्म का साक्षी हूँ इसलिये आप से कहता हूँ । सूर्य के वचन सुन जमदग्नि ने मैथुन को त्याग कर क्रोधित हो सूर्य से कहा तुम पण्डितमानी कौन हो मैं सब शास्त्रों का ज्ञाता हूँ, हम वैष्णवों पर भगवान् के बिना कोई आज्ञा देनेवाला नहीं है । आज तुमने हमारा रास भङ्ग किया अतः राहुमत्त होओगे । जो बादल तुम्हारे को देखने आयेंगे वे दूर हो जायेंगे तथा वायु से प्रेरित हुए मेघ तुम्हें आच्छन्न करेंगे तथा

मर्त्य से हत हो जाओगे। जमदग्नि के वचन सुनकर मातरर योनि—हे गिन्वत! ब्राह्मण हमारे पूजनीय हैं लेकिन वीर्यवर्षों को कोथिन नहीं होना चाहिये। आने से मुझे शापित किया अतः मैं भी आपको शाप देना ही नहीं तो मुझे मनुष्य निर्लेप कहेंगे। क्षत्रिय के अस्त्र से आपका मरण होगा। सूर्य के वचन सुन जमदग्नि ने कहा तुम शम्भु से पराजय को प्राप्त होओगे। दोनों का कलह देव ब्रह्माजी के आगमन। ब्रह्मा ने सूर्य से कहा तुम कोई दिन क्षणभर घनाच्छन्न होकर पुन मुक्त हो जाओगे। न्यून एवं अधिक वर्ष में राहुमस्त होओगे वह प्रहण ही दिखाई पड़ेगा कहीं नहीं अन्यथा पूर्ण ही दिगाई दोगे और भायों के निन्दित श्वसुर एवं साले से तुम्हारा तेज मलिन होगा। माली एवं सुमाली के युद्ध में शम्भु से पराजित होओगे। फिर जमदग्नि से कहा हे विप्र! तुम्हारी मृत्यु कार्तवीर्यसे से होगी। पुनः तुम्हारा पुत्र २१ बार पृथ्वी को बिना क्षत्रियों की करेगा। इतना कहकर ब्रह्मा का स्वस्थान गमन। तथा सूर्य एवं जमदग्नि का भी अपने-अपने स्थान पर जाना। अब चन्द्रग्रहण के आख्यान को सुनो।

८०

### चन्द्रग्रहणारख्यानवर्णनम्

६५६

चन्द्र द्वारा भाद्रशुद्ध चतुर्थी को मन्दाकिनी नदी पर स्नान करती हुई गुरुपत्नी तारा का हरण। तारा ने कहा—पतिव्रता ब्राह्मणी गुरुपत्नी को छोड़ो! गुरुपत्नी गमन से सौ ब्रह्महत्या का पाप होता है। तुम मेरे पुत्र हो तथा मैं तुम्हारी माता हूँ अपने धर्म की रक्षा करो। जब तारा के वचनों का अनादर कर उसे भोगने को उद्यत हुआ तो तारा ने शाप दिया कि तुम कलंकी, यक्ष्मा से पीड़ित तथा राहुमस्त होओगे। चन्द्रमा ने रोती हुई तारा को गोदी में बिठाकर नाना नदी, नद तथा पहाड़ों में रमण किया। चन्द्रमा ने असुर गुरु शुक्राचार्य को बलि के घर से आते देखा और उसकी शरण ली। शुक्र ने कहा—हे चन्द्र! गुरुपत्नी का त्याग करो इससे हजारों ब्रह्महत्या का पाप होता है।

८१ ताराऽऽनयनार्थं शुक्रसमीपे देवानां गमनम्

शुक्रशम्भुसंवादवर्णनम्

चन्द्रग्रहणारुख्यानम्

६६२

६६३

६६४

श्रीकृष्ण बोले—शुक्र ने चन्द्रमा को समझाते समय ही महती देवसेना को देवताओं के साथ आते देखा। रत्नमाला नदी के किनारे पुण्याश्रम में सुरसैन्य से आये हुए शङ्करजी को देखकर प्रणाम किया तदनन्तर शङ्कर का आशीर्वाद पुनः ब्रह्माजी ने शुक्र से नीतियुक्त वचन कहे। हे शुक्र ! चन्द्रमा की यह महती दुर्नीति है जो गुरुपत्नी से बलात्कार कर तुम्हारे शरण आया है। इसको लेने के लिये देव सेना आरही है उसीके निमित्त मैं तथा शङ्कर तुम्हारे पास आये हैं। शङ्कर ने कहा—हे विप्र यदि अपना कल्याण चाहते हो तो चन्द्र को लाओ मैं उस पापी का शिर त्रिशूल से नष्ट करूँगा। मेरे क्रोधित होने से दैत्यों का रक्षक कोई नहीं होगा। उत्थय के शाप से बृहस्पति की स्त्री का हरण हुआ है। शरणागत की रक्षा न करने से चौदह इन्द्र भोगने के समय तक नरक में पड़ता है। पापी जिसकी शरण जाता है तो वह शरण में देनेवाला भी पापी ही माना जाता है। शुक्र को शङ्कर से प्रार्थना। चन्द्रमा का शङ्कर की शरण में जाना। उसको क्षीरोद में स्नान कराकर पवित्र कर दिया। योगीन्द्र शङ्कर ने उसके दो खण्ड कर आघे को अपने मस्तक पर और आघे को ब्रह्मा के सामने छोड़ दिया। लज्जित चन्द्रमा का क्षीरसमुद्र में देह त्याग। पुत्र वियोग से अत्रि के नेत्रों से समुद्र में जल गिरना। चन्द्रमा का निष्पाप हो समुद्र से प्रगट होना। महादेव ने कहा—हे चन्द्र ! अपने स्थान पर जाओ तारा के शाप से तुम्हें यश्मारोग की प्राप्ति होगी क्योंकि पतिव्रता का शाप व्यर्थ नहीं जाता है किन्तु मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा प्रतिकार हो जायगा। तुमने भाद्रशुद्ध चतुर्थी को गुरुपत्नी को क्षन किया है अतः उस दिन तुम्हें देखने से पापी होगा। शुभाशुभ कर्म बिना भोगने से क्षय नहीं



होता है तारा के अपहरण से चन्द्रमण्डल में कलङ्क एवं मृगाकृति युग-युग में होगी तारा से कहा है तारे ! किसका गर्भ है सत्य कहो इसे त्यागकर शुद्ध हो पर पर से बलात्कार एवं अकाम से स्त्री दूषित नहीं है और सकाम भाव से जब त सूर्य चन्द्र है तब तक नरक में रहती है । तारा ने चन्द्रमा का पुत्र है ऐसा कहा तारा का वृहस्पति के साथ गमन । पुत्र पैदा होने से चन्द्र को पुत्र प्राप्ति । देवताओं का स्वस्थान गमन । इसको मुनने से मनुष्य निष्पाप एवं निष्कलङ्क होता है ।

८२

दुःस्वप्नवर्णनम्

६६७

नन्दजी ने दुःस्वप्न के विषय में पूछा तब भगवान् बोले—जो मनुष्य स्वप्न में हँसता है एवं विवाह, नाच, गीत देखता है उसे विपत्ति आती है । तैल में अम्पङ्कित हो दक्षिण दिशा में जाने से, तथा खर, महिष एवं ऊँट पर चढ़ने से मृत्यु की प्राप्ति होती है । कापांस, (कपास) कौड़ी एवं रक्तपुष्प को देखने से दुःख होता है । देवता का नाचना तथा हँसना, श्मशान, शुष्क काष्ठ, घृण लोह, अन्धकार योनि एवं लिङ्ग देगने से विपत्ति आती है । रक्त अङ्गारे एवं भस्मवृष्टि देखने से दुःख की प्राप्ति होती है । स्वप्न में ज्योतिषी, ब्राह्मण, ब्राह्मणी एवं गुरु जिसके शाप देते हैं उसे विपत्ति आती है । विरोधी, काक, मुर्गा, भालू जिसके शरीर पर गिरते हैं बमकी मृत्यु होती है । इनकी शान्ति के लिये लालचन्दन के काष्ठों का स्मरण करने से तथा धर्म, लक्ष्मी, राधा एवं सरस्वती का स्मरण करने से दुःस्वप्न शुभ हो जाता है ।

विप्रादीनां धर्मकथनम्

६७०

सन्यासधर्मकथनम्

६७५

पतिव्रताधर्मवर्णनम्

६७७

नन्दजी ने पूछा—हे पुत्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, सती, सन्यासी, विधवा स्त्री, पतिव्रता स्त्री, गृहस्थ का धर्म तथा शिष्य, पुत्र एवं कन्या का माता-पिता के कर्तव्य, भक्त कितने प्रकार के होते हैं एवं स्त्री जाति कितनी प्रकार की है इनके साथ ब्रह्माण्ड का वर्णन कीजिये । श्रीकृष्ण बोले—मेरी पूजा करनेवाला, सन्यास करनेवाला, गुरु सेवा करनेवाला ब्राह्मण सदा पवित्र है । शिष्य को गुरु की तथा पुत्र कोमाता-पिता की सेवा करना कहा है—

सर्वेषामपि बन्धानां पिता चैव महान् गुरुः । पितुः शतगुणं माता मातुः शतगुणैः सुरः  
मन्त्रदस्तन्त्रदश्चैव सुराणाञ्च चतुर्गुणः । नारायणश्च भगवान् गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वरः ॥

गुरु की सेवा सबसे उत्तम है गुरु में सम्पूर्ण देव विराजमान हैं—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव स्वयं शिवः । गुरौ च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा ॥

गुरु के प्रसन्न होने से साक्षात् हरि प्रसन्न होते हैं । यदि गुरु शिष्यों में पुत्र के समान स्नेह नहीं करेगा तो उसे ब्रह्महत्या की प्राप्ति होगी । वृष पर चढ़नेवाला, शूद्रों के यहाँ रसोई बनानेवाला, देवल, सन्यासी, दिन में सोनेवाला, शूद्र के आन्न में भोजन करनेवाला, और शूद्रों के मुँहें जलानेवाला जो ब्राह्मण है वह शूद्र के समान ही कहा गया है । जो नित्य त्रिकाल सन्यास, भगवान् का पूजन करने वाला, एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी तथा शिवरात्रि को भोजन न करनेवाला ब्राह्मण है वह जीवन्मुक्त कहा गया है । ब्राह्मण के पैर में सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान हैं । विप्रों के चरणोदक पीने से तीर्थस्नान के समान फल होता है । तेजस्वी गुरु से ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये । अवस्था, ज्ञान, विद्या और जातिहीन गुरु से मन्त्र ग्रहण न करे । मूर्ख, आधमहीन, पिता, सन्यासी, रोगी, धरहीन तथा भार्या-

हीन में मन्त्रग्रहण न करे। यगोहीन में मन्त्र लेने में अल्पायु, ज्ञानहीन में अज्ञानी, विद्याहीन में मूढ़ और जातिहीन से लेने पर विनाश होगा है। मूर्ख में मूर्ख, आश्रयहीन से दुःखी, पिता से यश की हानि गया मन्वामी में मन्त्र लेने में मृत्यु होती है। ब्राह्म के दिन हविष्यारी रहना हुआ मंगमपूर्वक यात्रा, गुट करना, नदी के तीर पर जाना दुबारा भोजन और मैथुन न करें। कन्या विक्रय करनेवाले को मव से विरोध पातकी कहा है। जो मूल्य ग्रहण कर कन्या देता है वह महारौरव नरक में जाता है तथा कन्या के शरीर में जितने रोम हों उतने वर्षों तक पितरों के साथ कुम्भीपाक में पचता है। क्षत्रियों का धर्म है कि ब्राह्मणों की एवं नारायण की पूजा, राज्य की पालना, रण में निभेयता, नित्य दान, शरणागत की रक्षा, पुत्रवत् प्रजा की रक्षा, शास्त्रास्य में निपुणता, नीतिरास्य के जाननेवाले की रक्षा एवं उसको सभा में नियुक्त करना चाहिये। वैश्यों का धर्म है याणिज्य में वतुः, विप्र एवं देवताओं की पूजा, दान, तप एवं धन का सेवन करे। शूद्रों का धर्म है कि विप्रों की सेवा करे। सन्यासी का धर्म है "दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्" दण्डग्रहणमात्र से नर नारायण हो जाता है। अतः उसके पदस्पर्श से पृथ्वी एवं तीर्थ मनुष्यादि सब पवित्र होते हैं। सन्यासी को भोजन कराने से अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। विधवा का धर्म है कि वह सदा निष्काम रहें व एक समय भोजन हविष्यान्न करे। दिव्य वस्त्र, गन्ध, तेल, पुष्पमाला, चन्दन, सिन्दूर को धारण न करे। परपुरुष को पुत्रवत् देखती हुई नारायण में अनन्य भक्ति करे। एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी और शिवरात्रि आदि व्रतों में उपवास करें। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और सन्यासियों को ताम्बूल भक्षण एवं गोमांस मदिरा के समान बतलाया है। पतिव्रता के धर्म—पति की भक्तिपूर्वक सेवा बन्दना, पति में नारायण का भाव रखना एवं उसकी आज्ञा का पालन करना बताया है।

परपुरुष के मुख का अचलोकन, यात्रा, महोत्सव, नृत्य, गायन एवं परकीड़ा न करे। पति का संग एक क्षण भी न छोड़े। पति पर पुत्रों से भी सौगुना प्रेम

करे। यथा—“पतिर्वन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलपोषितः” सती स्त्री हजार पुरुषों को उद्धार करती है एवं पतिव्रताओं का पति सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। सती के चरणों में सम्पूर्ण तीर्थ तथा सम्पूर्ण देव मुनियों का तेज विराजमान है। स्वयं भगवान् नारायण, ब्रह्मा, शङ्कर और समस्त देव मुनिगण सती स्त्रियों से निरन्तर भयभीत रहते हैं। सती की चरणरज से पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है एवं मनुष्य पतिव्रता को नमस्कार कर सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। पतिव्रता के तेज से त्रिलोकी क्षणभर में भस्म हो सकती है। सती स्त्री प्रातःकाल उठकर अपने पति को प्रणाम करे पश्चात् सम्पूर्ण गृहकार्य कर शुद्ध वस्त्र पहन अपने पति का षोडशोपचार विधि से पूजन “ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा” इस मन्त्र से करे। पति स्तोत्र का पठन करे। पतिव्रता को पति स्तोत्र का पठन करने से सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है।

८४	गृहिणां धर्मवर्णनम्	६७८
	त्रिविधभक्तानां लक्षणं फलञ्च	६८१
	कृष्णस्य वामभागाद्भगवत्या उत्पत्तिः	६८३
	ब्रह्माण्डवर्णनम्	६८५

श्रीकृष्ण बोले—गृहस्थ को चाहिये कि द्विज, देवों का पूजन एवं स्वधर्म का आचरण नित्य करे। गृहस्थियों की सम्पूर्ण देवादिक आशा करते हैं। कर्मकाल में पितर एवं तिथिकाल में देवता गृहस्थी के घर आते हैं। अतिथि की पूजा अवश्य करनी चाहिये। जिसके घर से अतिथि निराश होकर चला जाता है उसके यहाँ से पितर, देव, अग्नि निराश होकर चले जाते हैं।

अभ्यागतंपरिभ्रान्तं सायहं योऽभिधीक्षते ।

तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः ॥

( ब्रह्मपुराण अ० १६३ श्लोक २१ )

हीन से मन्त्रग्रहण न करे। ययोहीन से मन्त्र लेने से अल्पायु, ज्ञानहीन से अज्ञानी, विद्याहीन से मूढ़ और जातिहीन से लंने पर विनारा होता है। मूर्ख से मूर्ख, आश्रमहीन से दुःखी, पिता से यश की हानि तथा सन्यासी में मन्त्र लेने से मृत्यु होती है। श्राद्ध के दिन हविष्याशी रहता हुआ संयमपूर्वक यात्रा, युद्ध करना, नदी के तीर पर जाना दुवारा भोजन और मैथुन न करें। कन्या विक्रय करनेवाले को सब से विशेष पातकी कहा है। जो मूल्य ग्रहण कर कन्या देता है वह महारौरव नरक में जाता है तथा कन्या के शरीर में जितने रोम हों उतने बयों तक पितरों के साथ कुम्भीपाक में पचता है। क्षत्रियों का धर्म है कि ब्राह्मणों की एवं नारायण की पूजा, राज्य की पालना, रण में निभेयता, नित्य दान, शरणागत की रक्षा, पुत्रवत् प्रजा की रक्षा, शस्त्रास्त्र में निपुणता, नीतिशास्त्र के जाननेवाले की रक्षा एवं उसको सभा में नियुक्त करना चाहिये। वैश्यों का धर्म है वाणिज्य में चतुर, विप्र एवं देवताओं की पूजा, दान, तप एवं व्रत का सेवन करे। शूद्रों का धर्म है कि विप्रों की सेवा करे। सन्यासी का धर्म है “दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्” दण्डग्रहणमात्र से नर नारायण हो जाता है। अतः उसके पदस्पर्श से पृथ्वी एवं तीर्थ मनुष्यादि सब पवित्र होते हैं। सन्यासी को भोजन कराने से अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। विधवा का धर्म है कि वह सदा निष्काम रहे व एक समय भोजन हविष्यान्न करे। दिव्य वस्त्र, गन्ध, तैल, पुष्पमाला, चन्दन, सिन्दूर को धारण न करे। परपुरुष को पुत्रवत् देखती हुई नारायण में अनन्य भक्ति करे। एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी और शिवरात्रि आदि व्रतों में उपवास करें। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और सन्यासियों को ताम्बूल भक्षण एवं गोमांस मदिरा के समान बतलाया है। पतिव्रता के धर्म—पति की भक्तिपूर्वक सेवा बन्दना, पति में नारायण का भाव रखना एवं उसकी आज्ञा का पालन करना बताया है। स्त्री परपुरुष के मुख का अबलोकन, यात्रा, महोत्सव, नृत्य, गायन एवं परकीड़ा न खे। पति का संग एक क्षण भी न छोड़े। पति पर पुत्रों से भी सौगुना प्रेम

करे। यथा—“पतिर्वन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलयोपितः” सती स्त्री हजार पुरुषों द्वारा करती है एवं पतिव्रताओं का पति सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। सती चरणों में सम्पूर्ण तीर्थ तथा सम्पूर्ण देव मुनियों का तेज विराजमान है। स्व भगवान् नारायण, ब्रह्मा, शङ्कर और समस्त देव मुनिगण सती स्त्रियों से निरन्तर भयभीत रहते हैं। सती की चरणरज से पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है एवं मनुष्य पतिव्रता को नमस्कार कर सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। पतिव्रता के तेज से त्रिलोकी क्षणभर में भ्रम हो सकती है। सती स्त्री प्रातःकाल उठकर अपने पति को प्रणाम करे पश्चात् सम्पूर्ण गृहकार्य कर शुद्ध वस्त्र पहन अपने पति का पौडशोपचार विधि से पूजन “ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाध्याय स्वाहा” इस मन्त्र से करे। पति स्तोत्र का पठन करे। पतिव्रता को पति स्तोत्र का पठन करने से सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है।

८४

गृहिणां धर्मवर्णनम्

६७८

त्रिविधभक्तानां लक्षणं फलञ्च

६८१

कृष्णस्य वामभागाद्भ्रगवत्या उत्पत्तिः

६८३

ब्रह्माण्डवर्णनम्

६८५

श्रीकृष्ण बोले—गृहस्थ को चाहिये कि द्विज, देवाँ का पूजन एवं स्वधर्म का आचरण नित्य करे। गृहस्थियों की सम्पूर्ण देवादिक आशा करते हैं। कर्मकाल में पितर एवं तिथिकाल में देवता गृहस्थी के घर आते हैं। अतिथि की पूजा अवश्य करनी चाहिये। जिसके घर से अतिथि निराश होकर चला जाता है उसके यहाँ से पितर, देव, अग्नि निराश होकर चले जाते हैं।

अभ्यागतं परिधान्तं सावशं योऽभिवीक्षते ।  
तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः ॥

( ब्रह्मपुराण अ० १६३ श्लोक २१ )

पोष्यवर्गों का भरण पोषण कर गृहस्त्री स्वयं भोजन करे। जिस पुरुष के माता नहीं हैं और पत्नी कुलटा अथवा मर गई हो उसे घन में चला जाना चाहिये। उसके लिये वन से भी अधिक दुःखदायक घर है। गृहिणी पतिभक्ता एवं देव, ब्राह्मणों की पूजन करनेवाली होनी चाहिये। गृहवृत्त्य से निवृत्त हो स्नान कर पतिदेव और ब्राह्मण की पूजन कर पतिपुत्रादिकों को स्नान करा अतिथि सत्कार कर स्वयं भोजन करे। पुत्र एवं शिष्य, पिता तथा गुरु को आज्ञा न दे तथा धनमें साधारण मनुष्य के समान भाव न रखे। पिता, माता, गुरु स्त्री, शिष्य, पुत्र, सदा क्षमा चाहनेवाला, अनाथ भगिनी, कन्या और गुरुपत्नी सदा ही पोष्य कहे हैं। पतिप्रता स्त्री सदा ही शुद्ध है। केदार कन्या के शाप से जय धर्मराज नष्ट हो गये तब क्रोधित ब्रह्मा ने तीन प्रकार की स्त्री जाति का निर्माण किया। जैसे उत्तमा, मध्यमा, और अधमा। उत्तम स्त्री धर्मपुष्पा एवं पतिभक्ता होती है तथा प्रागान्त ( अत्यन्त कष्ट ) में भी पर पुरुष की सेवा नहीं करती है। मध्यम स्त्री बड़े पुरुषों से रक्षा की गई तथा डर से अन्य पुरुष की सेवा नहीं करती है। अधम स्त्री अत्यन्त दुष्ट, अधर्म करनेवाली तथा पतिसेवा न करनेवाली एवं कलह करनेवाली होती है। तीन प्रकार के भक्तों को लग्न एवं फल का वर्णन। ब्रह्माण्ड की रचना को भक्त जानते हैं। मुनि, देव और मन्त्र कष्ट से जानते हैं सम्पूर्ण संसार के अर्थ को मैं जानता हूँ। ब्रह्मा, अनन्त, महेश्वर, धर्म, सनत्कुमार, नर, नारायण, कविल, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वेद, वेदमाता एवं सर्वहारा का विश्व के अर्थ को जानते हैं अन्य नहीं। गोलोक में भगवान् के घाम अङ्ग से मोलह वर्ण की घालिका की रचना हुई वही वेदमाता मावित्री, गायत्री आदि मार्मा से बिरुदान हुई। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना का वर्णन।

चतुर्णां वर्णानां भक्ष्याभक्ष्यवर्णनम्  
कर्मविपाकवर्णनम्

६८६

६८६

नन्दजी द्वारा पूछे गये चारों वर्ण के भक्ष्याभक्ष्य एवं कर्मविपाक के उत्तर में भगवान् ने कहा—ताम्बे और लोहे के वर्तन में दूध, नारियल का जल, लवण-युक्त दूध, जला हुआ अन्न, मधु से मिला हुआ घृत, तैल एवं गुड़ और पीने के बाद बचा हुआ जल अभक्ष्य एवं अपेय कहा है। सन्ध्या समय व दिन में दो बार भोजन निषेध कहा है। जल, दूध, चूर्ण, घृत, लवण, स्वस्तिक, ( जलैवी ) गुड़, क्षीर ( खीर ), तक्र ( छाछ ) और मधु अपने हाथ से दूसरे के हाथ में देना गोमांस के समान बताया है। चाँदी के पात्र में रक्खा हुआ कपूर भी अभक्ष्य है। भोजन के समय परोसनेवाला यदि खानेवाले को स्पर्श कर जाय तो यह अन्न सबके लिये अभक्ष्य है। नेबला, गैड़ा, महिष, पक्षी, सर्प, शूकर, गर्दभ, विलाव, व्याघ्र, सिंहादि पशु, जलजन्तु मकरादि, गौ, हाथी घोड़े आदि मच्छर मक्षिकादि और यानर आदि को मारना एवं उनका मांस भक्षण करना मनुष्यमात्र के लिये निषिद्ध है। भैंस व अजादि का दूध, दही व घृत का भक्षण नहीं करना चाहिये। विष्णुस्मृति में आया है—“न भक्ष्ये अजामहिपीक्षीरे।” हे नन्दजी! शुभ व अशुभ कर्म भोगने से ही क्षय होता है अन्यथा नहीं। अच्छे कर्म करने से स्वर्ग प्राप्ति व दुष्कर्म करने से नरक प्राप्ति होती है। गोहत्या करनेवाला गौ के लोम के तने वर्ष पर्यन्त विच्छू की योनि को प्राप्त हो पश्चात् अन्यान्य योनि में जाता है। गधहत्या करनेवाला विष्णु का कौड़ा होता है व स्त्री हत्या करनेवाला अति बुरा कर्मात्मा है तथा कालमूत्र नरक में जाता है। खजाना, फल व माया धन हरण करनेवाला यक्ष हो सौ वर्ष तक थाप पक्षी होता है। पुनः रतवर्ष में कृष्णवर्ण शूद्र वन दूसरे जन्म में अधिक अङ्गवाला ब्राह्मण होता है। भ्रान् ब्राह्मणरूप में पुनः प्रगट हो ब्राह्मणों को भोजन करवाने से मुक्त होता है।



वंशाहीन मनुष्य को एक लाख ब्राह्मणभोजन कराने से पुत्र प्राप्ति हो सकती है। कोधी मनुष्य सात जन्म पर्यन्त गदहा और कलहकारी सात जन्मतक कौड होता है। आचारहीन मनुष्य, यवन, हिंसा करनेवाला, गङ्गा, अदीक्षित बह्म दुष्ट दृष्टि से देखनेवाला-काना, अहंकारी-कर्णहीन, वेद का निन्दा करनेवाला बहिरा, वाक्म हरण करनेवाला-गूंगा, हिंसक-केशहीन, मिथ्या बोलनेवाला मूर्ख हीन और पुस्तक चोरी करनेवाला मूर्ख होता है। अकेला मिष्टान्न खाने वाला कालसूत्र नरक भोगकर पुनः नाना योनियों में जाता है। मनुष्यों में सुनार, स्वर्गवणिक् (कोई जाति विशेष होती है) कायस्थ ये धूर्त एवं कृपाहीन होते हैं। इनका हृदय छूरे की धार के समान एवं आदरभाव भी इनमें नहीं होता है। सौ में कोई एक कायस्थ सज्जन होता है। उपरोक्त दो नहीं होते अतः बुद्धिमान् मनुष्य इनमें विश्वास कम कर। प्रातःकाल शयन करनेवाला, संध्या ष दिन में सोनेवाला, यज्ञोपवीत का हरण करनेवाला, त्रिकाल संध्या से हीन, अशुद्ध संध्या करनेवाला और वेदवेदाङ्ग की निन्दा करनेवाला व्यक्ति तीन जन्म में पतित हो जाता है तथा स्वर्गमार्ग उसे नहीं मिलता है। एकादशी, शिवरात्रि, रामनवमी ष जन्माष्टमी को भोजन करने से चाण्डाल योनि में जाता है। उपवास करने में असमर्थ हो तो हविष्यान्न भक्षण करे। जो मनुष्य ब्राह्मण और देवता को नमस्कार नहीं करता है वह जीवनपर्यन्त अशुचि व यवन कह गया है। जो आये हुए ब्राह्मण को प्रणाम नहीं करता है वह ब्रह्मघाती कहा गया है। शास्त्र जाननेवाला ज्योतिषी लोभ के बशीभूत हो भूठ कहता है वह सात जन्म तक बड़ा धानर होता है। नदियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, नगरियों में कारी, ज्ञानियों में शङ्कर, शास्त्रों में वेद, वृक्षों में अरवत्य, तपस्याओं में भगवान्, पूजा और जातियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति है। अभ्याय का फल सभी है कि वाचक को मुषर्ण, रीत्य, वस्त्र, और ताम्बूल दान किया जाय।

## केदारकन्या विवरणम्

नन्दजी के द्वारा केदार कन्या का विवरण पूछने पर श्रीकृष्ण बोले—स्वयम्भुव मनु के प्रियव्रत व उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के धुव उसके नन्दसावर्णि और उसके केदार नामक पुत्र हुआ। वह राजा पूर्ण दानी व सदाचारी तथा ब्राह्मणों का भक्त था। कमला की कला से उत्पन्न हुई तथा यज्ञकुण्ड से पैदा हुई कन्या की उसे प्राप्ति हुई। कन्या ने कहा मैं तुम्हारी पुत्री हूँ। राजा ने उसे भक्तिपूर्वक अपनी पत्नी को अर्पण किया। केदार कन्या कृष्ण के लिये तप करने लगी। ब्रह्मा ने वरदान दिया कि तुम्हें बाद में कृष्ण की प्राप्ति होगी। एक समय नदी तट पर बैठी हुई कन्या की परीक्षा लेने धर्म आया। कन्या ने युवायस्थावाले सुन्दर पुरुष को देखकर पूजन किया और कहा—आप साक्षात् विप्ररूपी भगवान् हैं। धर्म ने कहा—तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा क्या नाम है? किस निमित्त मैंने तप किया है? जो इच्छा हो सो वर मांगो। वृन्दा ने कहा हे विप्र! मैं केदार कन्या हूँ, वृन्दा मेरा नाम है तथा भगवान् कृष्ण को पतिरूप में पाने के लिये तप करती हूँ यदि आप देने में समर्थ हैं तो मुझे यही वर दीजिये। तब वरराज ने कहा—श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं उनको लक्ष्मी एवं सरस्वती के रूप में आप वा अन्य कौन पासकता है। ब्रह्मस्वरूपा राधा उनकी स्त्री हैं। सम्पूर्ण देव, तब भगवान् की स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण विभूति उन्हीं की है। गोलोक में ही भगवान् की सेवा कर सकती है अन्य नहीं। अतः तुम मुझे वरण करो तब ही भगवान् का स्वामी हूँ मेरे पास आने से तुम्हें सम्पूर्ण संसार के भोग प्राप्त होंगे। श्रीवृन्दा ने कह—हे महाभाग! ब्राह्मणों के लिये तप, सत्य एवं धर्म ही उत्तम कहा है। परस्त्री से सम्भोग करना अधर्मियों का कार्य है। धर्म करने से अमङ्गल कार्य का फल देखता है। उसे साक्षात् यमराज दण्ड देते हैं।

वंशहीन मनुष्य को एक लाग ब्राह्मणभोजन कराने से पुत्र प्राप्ति हो सकती है।  
 क्रोधी मनुष्य सात जन्म पर्यन्त गरहा और कलहकारी मात जन्म तक कौशा  
 होता है। आचारहीन मनुष्य, यवन, हिंसा करनेवाला, गश्ता, अदीक्षित बद्ध,  
 दुष्ट दृष्टि से देखनेवाला-काना, अहंकारी-कर्णहीन, वेद का निन्दा करनेवाला-  
 बहरा, वाक्य हरण करनेवाला-गूंगा, हिंसक-केराहीन, मिथ्या बोलनेवाला-  
 मूर्ख हीन और पुस्तक प्योरी करनेवाला मूर्ख होता है। अकेला मिश्राप्त खाने-  
 वाला कालसूत्र नरक भोगकर पुनः नाना योनियों में जाता है। मनुष्यों में  
 सुनार, स्वर्गवणिक ( कोई जाति विरोध होती है ) कायस्थ ये धर्म एवं कृपाहीन  
 होते हैं। इनका हृदय छूरे की धार के समान एवं आदरभाव भी इनमें नहीं  
 होता है। सौ में कोई एक कायस्थ सज्जन होता है। उपरोक्त दो नहीं होते  
 अतः बुद्धिमान् मनुष्य इनमें विश्वास कम कर। प्रातःकाल शयन करनेवाले  
 संध्या च दिन में सोनेवाला, यज्ञोपवीत का हरण करनेवाला, त्रिकाल संध्या  
 हीन, अशुद्ध संध्या करनेवाला और वेदवेदाङ्ग की निन्दा करनेवाला व्यक्ति तीन जन्म  
 में पतित हो जाता है तथा स्वर्गमार्ग उसे नहीं मिलता है। एकादशी, शिवरात्रि  
 रामनवमी व जन्माष्टमी को भोजन करने से पाण्डाल योनि में जाता है  
 उपवास करने में असमर्थ हो तो हविष्यान्न भक्षण करे। जो मनुष्य ब्राह्मण  
 और देवता को नमस्कार नहीं करता है वह जीवनपर्यन्त अशुचि व यवन कह  
 गया है। जो आये हुए ब्राह्मण को प्रणाम नहीं करता है वह ब्रह्मघाती कहा गया  
 है। शास्त्र जाननेवाला ज्योतिषी लोभ के बशीभूत हो भूठ कहलाता है वह सात  
 जन्म तक बड़ा वानर होता है। नदियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, नगरियों में  
 काशी, ज्ञानियों में शङ्कर, शास्त्रों में वेद, वृक्षों में अरवस्थ, तपस्याओं में भगवान्  
 की पूजा और जातियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति है। अध्याय का फल तभी है कि  
 वाचक को सुवर्ण, रौप्य, बस्त्र, और ताम्बूल दान किया जाय।

## केदारकन्या विवरणम्

नन्दजी के द्वारा केदार कन्या का विवरण पूछने पर श्रीकृष्ण बोले—स्वयम्भुव मनु के प्रियव्रत व उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के ध्रुव उसके नन्दसार्षणि और उसके केदार नामक पुत्र हुआ। वह राजा पूर्ण दानी व सदाचारी तथा ब्राह्मणों का भक्त था। कमला की कला से उत्पन्न हुई तथा यज्ञकुण्ड से पैदा हुई कन्या की उसे प्राप्ति हुई। कन्या ने कहा मैं तुम्हारी पुत्री हूँ। राजा ने उसे भक्तिपूर्वक अपनी पत्नी को अर्पण किया। केदार कन्या कृष्ण के लिये तप करने लगी। ब्रह्मा ने वरदान दिया कि तुम्हें बाद में कृष्ण की प्राप्ति होगी। एक समय नदी तट पर बैठी हुई कन्या की परीक्षा लेने धर्म आया। कन्या ने युवावस्थावाले सुन्दर पुरुष को देखकर पूजन किया और कहा - आप साक्षात् विप्ररूपी भगवान् हैं। धर्म ने कहा—तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा क्या नाम है? किस निमित्त तप करने लगी? जो इच्छा हो सो वर मांगो। वृन्दा ने कहा हे विप्र! मैं केदार कन्या हूँ, वृन्दा मेरा नाम है तथा भगवान् कृष्ण को पतिरूप में पाने के लिये तप करती हूँ यदि आप देने में समर्थ हैं तो मुझे यही वर दीजिये। तब परमराज ने कहा—श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं उनको लक्ष्मी एवं सरस्वती के रूप में वा अन्य कौन पासकता है। ब्रह्मस्वरूपा राधा उनकी स्त्री हैं। सम्पूर्ण देव, तपस्वी भगवान् की स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण विभूति उन्हीं की है। गोलोक में ही भगवान् की सेवा कर सकती है अन्य नहीं। अतः तुम मुझे वरण करो तब राजाओं का स्वामी हूँ मेरे पास आने से तुम्हें सम्पूर्ण संसार के भोग प्राप्त होंगे। श्रीवृन्दा ने कह—हे महाभाग! ब्राह्मणों के लिये तप, सत्य एवं धर्म ही उत्तम कहा है। परस्त्री से सम्भोग करना अधर्मियों का कार्य है। धर्म करने से अमङ्गल कार्य का फल देखता है। उसे साक्षात् यमराज दण्ड देते हैं।

! मैं तुम्हें धाम का गवनी हूँ किन्तु "अव्ययस्य त्रितयः" त्रितय  
 रहे हैं। कृष्ण द्वारा व्यापित किया गया धर्म मेरी श्वा काया है।  
 शिखा हंगा: शुक्रास्य हरिणीहना:। मन्त्राभिहितो येन म मे श्वा कर्मिणी  
 तन्मन्त्रा धर्म को शाय कि तुम्हारा शय होगा। जब धर्मराज शाय देते  
 व श्वा में रोका। तन्मन्त्रा मन्त्रादि देवों में धर्मराज के त्रीवृत्त के त्रिविध  
 की। तब श्वा ने कहा—मैं विपत्नी धर्मराज की नहीं जानगयी अतः  
 त हो शाय दिया है। यदि मेरा तन, तन, शाय और विष्णुवृत्तन शाय है  
 ह मन्त्राज जीवित हो जाय। पुनः कन्धार्य धर्मराज की श्वा ने गोर में  
 ता। धर्मपत्नी मूर्ति में भगवान् में प्रार्थना की हे महाराज! मेरे पति को  
 शान हो पतिहीन स्त्री संसार में पापिनी करी जानी है। तब भगवान् ने  
 से कहा—हे देवि! त्रिगनी मन्त्रा की आयु है यह तुमने तन कर प्राप्त  
 है अतः यह आयु धर्म को देकर गोलोक में जाओ पीछे वृषभानु की पुत्री  
 होगी तब मुझे प्राप्त करोगी। श्वा ने कहा—हे देवगन! मेरे वचन निष्ठा  
 हो सकते। मेरे मुग से तीन पार शय होने का वचन निष्ठा है अतः  
 एकुग में पूर्ण पाद, त्रेता में त्रिपाद, द्वापर में द्विपाद और कलियुग में एकपाद  
 पुनः पूर्ण हो जायगा। इतना कह श्वा का गोलोक में गयन।

७	सनत्कुमारादिभिः सह कृष्णस्य समागमः	१००६
	आत्मयाथाभ्यवर्णनम्	१०११
	दक्षकालनिर्णयवर्णनम्	१०१३

नन्दजी ने पूछा कि हे कृष्ण तुम्हें वेद, देव, मन्त्रा, ईश, शेष और मुनि  
 सेद्दादिक नहीं जान पाते हैं अतः तुम्हारे यथार्थ स्वरूप का वर्णन करो। इसके  
 बाद सनक, सनातन आदि ऋषियों का कृष्ण के पास आगमन। सनत्कुमार का

श्रीकृष्ण का परब्रह्म के विषय में विचार। श्रीकृष्ण बोले—हे सनत्कुमारजी ! मैं ही यज्ञ, व्रत और तपस्याओं का दक्षिणा के साथ फल देनेवाला हूँ। पुनः ब्रह्मा एवं पार्वती सहित शङ्कर व अन्य देवादिकों का आगमन। सनत्कुमार बोले—मैंने गोलोक में भगवान् को नहीं पाया तब मैं वैकुण्ठ में गया। उसके बाद क्षीरोद के पास वहाँ मैंने थकावट को दूर करने के लिये स्नान किया पुनः सौ योजन में फैले हुए कच्छप को बालुका में देखा। राघवमत्स्य ने उसका उद्धार किया। तब मैंने कहा—हे भक्त ! तुम धन्य हो। उसने कहा—मेरे से धन्य क्षीरसागर है। क्षीरोद ने कहा मेरे से धन्य पृथ्वी है। पृथ्वी ने कहा—मेरे से धन्य शेष है। इस तरह उत्तरोत्तर धन्य कहते हुए दक्षिणा को सबसे अधिक धन्य कहा है। भगवान् दक्षिणा से फल देते हैं बिना दक्षिणा के यज्ञ फल नहीं देता। तब तना सुन नन्द आश्चर्य चकित हो गये तथा उन्हें मूर्खां आ गई। पश्चात् भगवान् द्वारा उनको चेतना की प्राप्ति हुई।

कृष्णस्य शक्तिदर्शने नन्दस्य मोहः

शिवकृतं भगवतीस्तोत्रम्

दुर्गाया वरप्रदानम्

१०१४

१०१५

१०१७

श्रीकृष्ण बोले—हे तात ! चेतना प्राप्त कर उठो। यह संसार जलबुदबुद की तरह है। मोह को छोड़ो ब्रह्मस्वरूप पाकर भगवती की स्तुति करो। जिस व्रत को पढ़कर शम्भु ने त्रिपुरासुर को मारा वह तुम्हें कहता हूँ। कृष्ण ने कहा—रण में दुःखित शङ्कर को देखकर ब्रह्मा ने कहा—दुर्गा की स्तुति करो शक्ति की सहायता के बिना कोई भी किसी को नहीं जीत सकता। मेरे वचनों को सुनकर रणप्रसन्न शङ्कर द्वारा दुर्गा की स्तुति की गई। शङ्कर ने कहा—हे महामाये ! मेरे ऊपर दया कर शत्रु का संहार करो। तब दुर्गा ने कहा—माया शक्ति से असुर का संहार करो। पुनः भगवती ने कहा—वर मांगो।

राष्ट्र ने कहा—रैत्य नष्ट हो यही वरदान कीजिये। भगवती ने कहा—श्रि का स्मरण करो। राष्ट्र का भगवान् का स्मरण करना एवं वृषरूप भगवान् द्वारा चापी पान व राष्ट्र द्वारा त्रिपुर का गंदार। इस क्षीत्र राज को पढ़ने से महा बन्ध्या भी पुत्र पैदा कर सकती है। यह क्षत्रराज हर एक व्यक्ति को नहीं देना चाहिये यह परम गोपनीय है। दुर्गा का अपने ध्यान को गमन।

८६

नन्दम्प्रति श्रीकृष्णवाक्यम्

१०१६

श्रीकृष्ण ने कहा—हे प्रजराज ! आपने सब तन्त्र जान लिया है प्रज्ञ में जाइये। मेरे बालभाय के अपराधों को क्षमा कीजिये। यशोदा के साथ यहाँ के सुख भोग रोहिणी, गोपिका, राधा की माता कलावती एवं राधा के साथ गोलोक में जावेंगे। गोलोक से अमूल्य रत्नों से युक्त एक कोटि रथ आयें तो आप यह शरीर छोड़ दिव्य रूप धारण कर गोलोक में जावेंगे। नन्दजी ने कहा—हे कृष्ण ! चारों युग के धर्म विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। कलेशेष में पृथिवी, धर्म एवं प्राणियों की क्या गति होगी ? तत्पश्चात् कृष्ण द्वारा मधुर कथा का कथन।

६०

चतुर्युगाणां धर्मादिकथनम्

१०२१

कलिधर्मादिकथनम्

१०२४

श्रीकृष्ण ने कहा—सत्ययुग में सम्पूर्ण मनुष्य धार्मिक थे तथा धर्म, सत्य व दया पूर्ण रूप से विराजमान थे। वेद, वेदाङ्ग, इतिहास, पुराण, संहिता, पञ्चरात्र और धर्मशास्त्र पूर्ण रूप में थे। ब्राह्मण वेदों के जाननेवाले व भगवान् के परम भक्त थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वैष्णव थे। शूद्र ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले, राजा लोग धार्मिक, शिष्य गुरुभक्त, पुत्र पितृभक्त, स्त्रियाँ पति-भक्ता व पतिव्रता थीं। ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था। सब शत्रु-कालाभिगामी थे एवं कोई भी स्त्रीलोभी, लम्पट न थे। वृक्ष पूर्णफल देनेवाले और

गौरव पूर्ण दूध देनेवाली तथा मनुष्य सब बलवान् तथा सुन्दर थे उनमें कईएक पुरुष लक्ष वर्षकी आयु प्राप्त करते थे। सब स्त्री-पुरुष पण्डित थे। कोई भी रोगी, धूर्त, पापी और पाखण्डी नहीं थे। त्रेता में धर्म तीन पाद, द्वापर में दो पाद तथा कलियुग में एक चरण से विराजमान है। जबतक पृथ्वी पर देव एवं शास्त्रों की पूजन है तबतक सत्य एवं धर्म का अंश रहेगा। नन्दजी ने कहा तीर्थ, साधु, प्राम्यदेव और शास्त्र पृथ्वी पर कबतक रहेंगे ? श्रीकृष्ण बोले— कलियुग में १० हजार वर्ष पर्यन्त भगवान् पृथ्वी पर रहेंगे। देवताओं की प्रतिमा, शास्त्र एवं पुराणों की पूजा भी उतने ही वर्ष तक तथा गङ्गा नदी तीर्थ ५ हजार वर्ष पर्यन्त रहेंगे। पूर्ण अधर्म होने से चारों वर्णों का एक ही वर्ण बन जायगा। मन्त्रयुक्त विवाह, सत्य, क्षमा आदि न रहेंगे। सभी अभक्ष्य भक्षण करकेवाले, लोभी एवं सन्ध्या व शास्त्रों से विहीन हो जायेंगे। नारियों में कोई भी सती न होगी। वे घर-घर में कुलटा और कलहकारिणी होंगी। पुत्र द्वारा पिता का तिरस्कार व शिष्य द्वारा गुरु का तिरस्कार होगा। निर्धन मनुष्य, भूमि धान्यहीन, दूध हीन गौ, शौचसन्ध्याहीन ब्राह्मण सब स्वच्छन्द विचरनेवाले, शिश्नोदर परायण, जातिहीन गुरु, म्लेच्छ राजा लोग, यवन एवं धर्म की निन्दा करनेवाले होंगे। नदी, नद, कन्दरा, तालाव और सरोवर सारे ही जल एवं पश्यों से हीन होंगे। मनुष्य कटु बोलनेवाले व निर्दय होंगे। कलियुग के बाद सत्ययुग की प्रवृत्ति होगी। हे नन्दजी ! काल सम्पूर्ण कार्य करता है। वही सृष्टि की रचना करनेवाला, पालक, संहारकर्ता, विरोध, विच्छेद व प्रीति करता है। नन्दजी ने हा—हे कृष्ण प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा का स्मरण कैसे नहीं करते हो ? ६ बार कुल दिन के लिये गोकुल चलो। इतना कह नन्द द्वारा नेत्रों के जल से कृष्ण को सिंचन करना।



६१

गोकुले उद्धवस्यप्रपणम्

१

श्रीभगवान् बोले—मेरे आने-जाने का कारण शीघ्र ही उद्धवजी का वसुदेव, देवकी, बलदेव, अक्रूर और उद्धव का आगमन। वसुदेवजी ने कहा— हे नन्द ! आप पूर्ण ज्ञानी हैं तथा मेरे मित्र हैं। महोरसच में पुत्र का दर्शन करा देंगे। देवकी ने कहा—जैसे यह हम दोनों का पुत्र है वैसे आपका भी है। साथ मथुरा में कुछ समय ठहरिये। भगवान् ने कहा— हे उद्धव ! व्रज में प्रजवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान दे नन्दजी की रहने की स्थिति व मेरी माता से कह देना। इतना सुन उद्धवजी का घुन्दावन गमन।

६२

गोकुलं गत्वा तच्छोभादिदर्शनम्

१०

गोकुलशोभावलोकनम्

१०

उद्धवकृतं राधास्तोगम्

१०

नारायण बोले—श्रीकृष्ण की आज्ञा से उद्धवजी श्रीगणेश को प्रणाम कर नारायण, शंभु, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और महेश का स्मरण कर मङ्गलस्त्र प्राप्तियों को देखते हुए जाना। उद्धवजी का यशोदा व रोहिणी के साथ वार्तालाप यशोदा का घुन्दारण्य की देवता भवानी का पूजन करना। उद्धव का गोकुली शोभा का देखना। सुन्दर रासमण्डल का देखना तथा गोकुल व घुन्दावन की शोभा का वर्णन। उद्धव द्वारा राधा की स्तुति। उद्धवकृत स्तोत्र पढ़ना। अन्धबिष्टेद, रोग व शोक नहीं होते हैं।

६३

राधाद्धव संवादकथनम्

१०३

उद्धव की स्तुति को सुन राधा ने फाले रंग के मनुष्य को देखकर पूछा— आप कौन हैं ? आपका क्या नाम है ? और क्यों आये हैं ? कृष्णाकृति होने

मैं आपको कृष्ण का पार्षद मानती हूँ। कृष्ण और बलराम की कुशल कहिये। नन्द क्या कारण से वहाँ ठहरे हैं। श्रीकृष्ण जब वृन्दावन को आयेंगे तब मैं उनके साथ रासक्रीड़ा करूँगी। उद्धव ने कहा—हे वरानने ! मैं उद्धव नाम का कृष्ण का पार्षद हूँ। श्रीकृष्ण का शुभसंदेश देने आया हूँ। नन्द, बलराम और श्रीकृष्ण कुशल से हैं। श्रीराधा ने कहा—यहां सम्पूर्ण शोभाशाली वैभव विराजमान है किन्तु मेरा प्राणनाथ नहीं है। हा कृष्ण ! हा रमानाथ !! कहकर राधा का मूर्छित होना। उद्धव का चकित होना एवं राधा की सात सखियों द्वारा सेवा करना। उद्धव ने कहा—हे देवि ! तुम सब देव, सिद्ध योगियों की स्वामिनी हो। कृष्ण, बलराम, व नन्दजी सहित जल्दी ही यहाँ आयेंगे। तुम शान्ति धारण करो। इतना सुन राधा द्वारा उद्धवजी को रत्नयुक्त अंगूठी का देना। श्रीराधा और उद्धव का परस्पर कथोपकथन। श्रीराधा ने कहा—उद्धवजी नारियों के मन की बात कोई भी विद्वान् नहीं जान सकता। कुछ शास्त्र के अनुसार वर्णन किया जाता है वेद भी जिसको कहने में समर्थ नहीं है शास्त्र क्या कह सकते हैं। मैं आपको सम्पूर्ण कहूँगी और आप कृष्ण को कह दीजियेगा। मैं कुछ, लज्जा और भय को त्याग श्रीकृष्ण का चिन्तन करती हूँ। इतना कहकर श्रीकृष्ण का यान् कर राधा का मूर्छित होना।

मूर्च्छितां राधां दृष्ट्वा उद्धवकृतसान्त्वनम्

गोपीकृतराधासान्त्वनम्

उद्धवगोपीसंवादवर्णनम्

१०३८

१०४१

१०४३

श्रीनारायण बोले—राधा को मूर्च्छित देख उद्धव ने चेतना कराकर कहा जगन्मातः ! जागो मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके चरणकमल की रज विध पवित्र होता है सब आपको ही भजते हैं। माधवी एवं मालती राधा को सान्त्वना। मालती ने कहा हे राधिके ! कौन किसका पिय है

य कौन अप्रिय है मन्त्रन लोग समय के अनुसार कार्य करते हैं। पद्मावती ने कहा—अरसिक की नारियों को सुग का अनुभव नहीं होना है।

विष्णु उवाच—अथैवेत्याम्यलानां प्रीतिरेव च। न नीतिनां निरात्म्येषु सुखिरयामः सद्येषु च

तुम निरन्तर कृष्ण का ध्यान करती हो। कृष्ण मथुरा में और तुम कर्ली घन में, यदि तुम प्राणों का त्याग करदोगी तो भी श्रीकृष्ण प्रकट नहीं होंगे। चन्द्रगुली शशिकला, गुशीला, रत्नमाला, पारिजाता और माधवी की बातें सुन उद्धव का मूर्छित होना। पुनः उद्धव ने कहा—यद् गोपियों के चरणारविन्दों की रज से पवित्र भारतवर्ष धन्य है। भारतवर्ष की स्त्रियों में गोपियां धन्य हैं। कृष्ण की भक्ति को योगीन्द्र महेश्वर, राधा, गोपियां, य गोलोकवासी जानते हैं कुछ सनत्कुमार, ब्रह्मा और सिद्ध भक्त जानते हैं। मैं भी गोपिकाओं का सेवक बन भगवान् का कीर्तन करूँगा। गोपियों से बढ़कर कोई भक्त नहीं है। कलावती ने कहा—पितरों की मानसी कन्या धन्या, मेना और कलावती विष्णु को देखने क्षीरसागर पर गईं वहाँ सनत्कुमार को प्रणाम न करने से उसने शाप दिया कि तुम्हारा जन्म भूमि पर होगा। कालिका ने कहा उद्धव सम्पूर्ण नर-नारी, देव, सिद्ध श्रीकृष्ण को जानते हैं। इस समय किसी युक्ति से राधा को प्रबोधित करो। उद्धव ने राधा से कहा—हे जगन्मातः! मैं श्रीकृष्ण भक्तों के सेवक का सेवक हूँ उठो मेरे ऊपर कृपा करो मैं फिर मथुरा जाऊँगा।

६५

राधोद्धवसंवादवर्णनम्

१०४५

श्रीनारायण बोले—उद्धव के वचनों को सुनकर राधा ने कहा हे वत्स! मथुरा में श्रीकृष्ण के प्रति मेरे सम्पूर्ण वचनों को कहकर श्रीकृष्ण को यहाँ लेआओ। मेरे समान कौन दुःखिनी होगी जो श्रीकृष्ण जैसे पति के होने पर भी विरहयुक्त रो रही हूँ। राधा के समान कोई भी स्त्री दुःखित नहीं है। मैं निर्दयी विधाता से वञ्चित की गई हूँ। उस श्रीकृष्ण को कभी भी मूढ़

नहीं सकती। काल की गति बलवान् है मेरे को बोधित कराने में सावित्र सरस्वती, वेद, वेदान्त, सन्त, देवता, अनन्त, शम्भु, गणेश, विधाता या कोई समर्थ नहीं हैं।

स्थितेर्गतिश्चिन्तनीया मार्गशून्ये कुतो गतिः ।

कालसाध्यश्च सर्वश्च सुखंदुःखं शुभाशुभम् ॥

हे उद्धव मधुरा जाओ और श्रीकृष्ण का मुख देखो। राधा का वचन सुनकर उद्धवजी का रोदन करना।

६६

राधोद्धवसंवादवर्णनम्

कालवर्णनम्

१०४८

१०५१

श्रीनारायण बोले—राधा के चरणों में नतमस्तक एवं रोते हुए उद्धव को माधवी ने कहा—हे उद्धव! क्षण भर ठहरकर राधा से गुप्त ज्ञान की प्राप्ति करो। उद्धव ने श्री राधा से कहा कि प्राणी अकेला ही पृथ्वी पर आता है और अकेला ही जाता है। कर्मों के अनुसार पैदा होता और कर्मों के अनुसार ही जाता है। हे देवि! जो आपने मुझे रत्नादि दिये हैं वे मेरे साथ जायेंगे नहीं उनसे मेरा क्या प्रयोजन है इस लिये मुझे संसार समुद्र से पार होने का उपाय कहिये। उद्धव के वचन सुन हँसकर राधा ने कहा हे उद्धव! माधवी के वचन से तुमने प्रश्न किया है किन्तु मैं स्त्री जाति हूँ क्या ज्ञान देसकती हूँ। शुद्ध काल की गति भगवान् जानते हैं किन्तु गोलोक के रासमण्डल में कालगति देखी है वह तुम्हें कहती है। मनुष्य सम्पूर्ण संसार के स्वामी कालरूपी भगवान् को सेवन करने से पार हो सकता है। वही भगवान् रविरूप से पुण्यात्मा एवं शुद्ध भक्तगण तथा सब की आयु हरण करते हैं। हे उद्धव! विधाता के मानसिक पुत्र सनकादिकों को देखो जो शानियों को भी गुरु एवं अवस्था में पाँच वर्ष के हैं। इनका स्मरण करने से हरि की भक्ति व तीर्थ स्नान का फल मिलता है। मार्कण्डेय को देखो जो

भगवान् की सेवा से चिरायु (लम्बी उम्रवाला) हो गया है। परशुराम, बलि, हनुमान् व्यास, अश्वत्थामा, विभीषण, कृपाचार्य, जाम्बवान् तथा अन्य सिद्धेन्द्र व नरेन्द्रों में, नरों में एवं दैत्यों में प्रह्लाद को भगवान् की सेवा करने से ही दीर्घायु प्राप्त हुई है। जो हरि की सेवा नहीं करते हैं, वे मूर्ख हैं। हे वत्स ! मैं तुम्हें कालगति का वर्णन कहती हूँ। सम्पूर्ण आधारों का स्थान महान् विराट् है उसके रोमों में असंख्य विश्व विराजमान हैं। सबसे परम सूक्ष्म परमाणु है दो परमाणु से एक अणु, तीन अणु से एकत्रसरेणु, तीन त्रसरेणु से एक त्रुटि, सौ त्रुटियों से एक वेध, तीन वेध से एक लव, तीन लव से एक निमेष तीन निमेष से एक क्षण, पांच क्षण से एक काष्ठा, दश काष्ठा से एक लघु, पन्द्रह लघु से एक दण्ड, दो दण्डों से एक मुहूर्त्त और साठ दण्डों की एक तिथि होती है। साठ दण्डों का आठवाँ हिस्सा एक प्रहर, चार प्रहर की रात्रि व चार प्रहर का दिन होता है। पन्द्रह तिथि से एक पक्ष तथा दो पक्षों से एक मास, दो मास से एक ऋतु तथा छै ऋतुओं से एक वर्ष होता है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर छः ऋतुएँ होती हैं। वैशाख, ज्येष्ठ आदि धारद् मास, छः मास का दक्षिणायन और छः मास का उत्तरायण होता है। प्रतिपदादि तिथि, अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र, पिण्डुम्भ आदि योग और षव, बालव आदि करण कहे गये हैं। सरयुग, श्रेता, द्वापर और कलि ये युग कहे गये हैं। यही कालसंस्था का निर्णय बताया है।

६७	राधोद्धवसंवादवर्णनम्	१०५४
	उद्धवाय ज्ञानप्रदानम्	२०५५
	उद्धवस्य मयुराम्प्रतिगमनम्	

श्रीनारायण बोले—जाते हुए उद्धव को देख राधा द्वारा शुभाशीर्वाद एवं राधुनों का दिखाना।

शुभंभवतुमार्गस्ते कल्याणमस्तु सन्ततम् । ज्ञानं लभ हरेः स्थानात् कृष्णस्य सुप्रियो भ  
 राधा ने कहा जो कर्म श्रीकृष्ण के निमित्त किये जाते हैं वे ही उत्तम क  
 गये हैं । वेद के कौथुभि शाखा में नन्दनंदन नाम से हजार नाम बताये हैं ज  
 विघ्नो को दूर करनेवाले हैं । उद्धव का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मूर्छित होना पुन  
 चेतना प्राप्त कर वह बोले भारतवर्ष में घृन्दावन धन्य है और राधा के चरणों से  
 पवित्र पृथ्वी भी धन्य है । सन्तगण राधिका की नित्य सेवा करते हैं । जो पापी  
 राधा की निन्दा करते हैं उन्हें सैकड़ों ब्रह्महत्याओं का पाप लगता है । वह उसी  
 पाप से कुम्भीपाक व रौरव नरक में जाता है । तप्त तैल में चौदह इन्द्रों पर्यन्त  
 सात पितरों के साथ रहता है । राधा के आदेश से उद्धव का मथुरा गमन ।

६८

### कृष्णोद्धव संवादवर्णनम्

१०४८

यशोदा को प्रणाम कर उद्धव का खजूर वन के वाम भाग से होकर यमुना-  
 तट गमन । श्रीकृष्ण और उद्धव का परस्पर वार्तालाप । हे उद्धव ! गोकुल में  
 यमुनानदी के किनारे घृन्दावन, क्रीडासरोवर, भाण्डीरवट, गोस्थान देखा होगा  
 तथा राधा व अन्य गोपियों ने क्या कहा है । बलदेव की माता रोहिणी, मेरी  
 माता यशोदा, और प्रेम से विकल हुई राधा मेरा स्मरण करती होगी ।  
 उद्धव ने कहा हे कृष्ण ! आपके कथनानुसार सम्पूर्ण वस्तुय मैंने देखी । राधा की  
 आपमें अनन्य भक्ति है उनको छोड़ना उचित नहीं । मैंने राधा से कह दिया  
 है कि श्रीकृष्ण तुम्हारे पास जल्दी ही आयेंगे । उद्धव के वचन सुन श्रीकृष्ण  
 का हंसना और उद्धव का खगृह गमन । श्रीकृष्ण का स्वप्न में गोकुल गमन ।  
 प्रजवासियों को प्रसन्न कर पुनः मथुरा आगमन ।

श्रीनारायण बोले—वसुदेव के घर गर्ग मुनि का आगमन । वसुदेव और देवकी ने गर्गजी की पूजा कर प्रणाम किया । गर्ग ने कहा—हे वसुदेव ! बलराम और श्रीकृष्ण यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हो गये हैं अतः शुभमुहूर्त में यह संस्कार होना चाहिये । श्रीकृष्ण द्वारा इस संस्कार के निमित्त सम्पूर्ण मुनीन्द्र व सिद्धों का स्मरण करना । शुभ दिन में मुनीन्द्र, वान्धव, राजा लोग देव, देवकन्या, नागकन्या, ब्राह्मण, भिक्षुक, सन्यासी, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, युधिष्ठिरादि पाँचों भाई, नाना देशों के राजा, अग्नि आदि ऋषि, ब्रह्मा, पार्वती सहित शंकर, नन्दी आदि गण, गणेश, धर्म, चन्द्र और कुबेरादि देवों का वसुदेव के स्थान पर आगमन । सर्व प्रथम गणेश का पूजन कर वसुदेव द्वारा आये हुए समग्र नर-नारियों का सत्कार व पूजा करना । वसुदेव द्वारा पार्वती पुत्र गणेश की प्रार्थना ।

१००

भगवदुपनयनवर्णनम्

१०६४

श्रीनारायण बोले—देवकी द्वारा सम्पूर्ण नारियों का सत्कार । पार्वती का पूजन कर मुनिकन्या, मुनिपत्नी और धन्धु कन्याओं का पूजन । गायन एवं वाद्ययन्त्रों के साथ मयुरा ग्राम की देवता भैरवी व महलचण्डी का पूजन, ब्राह्मणों का पूजन तथा उनको भोजन कराया गया । बलराम और श्रीकृष्ण का शुद्ध गङ्गाजल से स्नान कर तथा सुन्दर वस्त्र पहनकर मभा में आगमन । चराचर के मालिक श्रीकृष्ण को देव विधाता, शंकर, शेष, धर्म, सूर्य, देव, मुनि, कार्तिकेय और गणेश द्वारा अलग-अलग स्तुति करना । इस स्तोत्र को पूजाकाल में पढ़नेवाला सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर रत्नयान में बैठकर गोलोक में जाना है ।

श्रीनारायण बोले—बलराम और श्रीकृष्ण ने शुभलग्न व शुभमुहूर्त में स्वस्तिवाचन कर ब्राह्मणां को सुवर्ण दान दे गणेश, सूर्य, चन्द्र, शंकर और पार्वती की पौडशोपचार से पूजन कर नवग्रह व पौडश मातृकाओं का पूजन किया तदनन्तर मुनि गर्ग ने वृद्धि धाढ़ कराकर बलदेव और श्रीकृष्ण को गायत्री मन्त्र का उपदेश किया। प्रथम दोनों का पार्वती से भिक्षा लाना फिर यशोदा, रोहिणी आदि सम्पूर्ण त्रिव्यंसे भिक्षा लाना। सभी ने मणि रत्नादिकों की भिक्षा दी। उन्होंने उस भिक्षा को लेकर कुछ गर्ग के लिये और कुछ अपने गुरु को दिया। वैदिक कर्म समाप्त होनेपर गर्गजी को दक्षिणा दी गई। जो महोत्सव में आये थे वे दोनों को शुभारशीर्वाद देकर अपने-अपने घर चले गये। नन्द-यशोदा का रोदन करना तथा श्रीकृष्ण का उन दोनों को समझाना। वसुदेव द्वारा यशोपवीत के उपलक्ष्य में ब्राह्मणभोजन।

१०२ विद्यापठनार्थं सान्दीपिनिगुरुसमीपे श्रीकृष्णगमनम् १०६६

मुनिपत्नीस्तोत्रम् १०७१

श्रीनारायण बोले - बलराम और श्रीकृष्ण ने गुरु के घर जाकर गुरुपत्नी व गुरुजी को प्रणाम कर उनसे शुभारशीर्वाद ग्रहण कर मणि व रत्नों की भेंट देते हुए कहा—आपसे पाण्डित्य विद्या ग्रहण करूँगे। हमें शुभमुहूर्त में विद्यारम्भ कराइये। गुरु ने स्वीकार कर मिष्टान्न, वस्त्र चन्दनादि से पूजा एवं स्तुति की। गुरुपत्नी ने कहा - आज मेरा जन्म और पातिग्रहण सफल हुआ। तुम्हारे चरणरज से मेरा आंगन पवित्र हो गया। इतना कहकर श्रीकृष्ण को गोदी में बैठाकर देवकी के समान प्रेम से अपना स्नान पान करवाया और स्तुति करने लगी। श्रीकृष्ण ने कहा हे मातः ! मैं दूधपुत्रा बचा हूँ मेरी क्या स्तुति करती है। अपने पति के साथ



गोलोक को जाये। मान्दीनिनि से चारों तरफ एक काम में गढ़कर कने द्रवि-  
पूर्वक उनके मृत पुत्र को धरंग कर द्वाकांदि मूर्त्त देया। इस मोक्ष को पा-  
ने से मूर्त्त भी पण्डित होगा है।

१०३ द्वाकानिमांगवर्णनम् १०३१

द्वाकानिमांगे शुभानुभववर्णनम् १०३२

श्रीनारायण बोले—यद्यपि मदिन श्रीकृष्ण का मयुग में आना। मोक्ष-  
को छोड़कर नृपवैरा को भाषण कर गरुड, यज्ञ व विरचकमां का स्मरण कर।  
श्रीकृष्ण ने समुद्र से कहा—हे महाभाग। मुझे नगरनिमांग के लिये १३३ बंगल  
स्थान दो उसे तुम्हें पाद में दे दिया जायगा। विरचकमां को आदेश दिया कि मुद्र  
नगर का निर्माण करो। श्रीकृष्ण द्वारा उपमेन का राज्याभिषेक। निगम  
का श्रीकृष्ण से शुभानुभव वृत्तों के लिये पूजना। श्री भगवान् बोले—मूर्त्त  
के आश्रम में नारिकेल ( नारियल ) का वृक्ष धनप्रद होता है शिविर के लिये  
में पुत्रप्रद होता है। बिल्व, पनस, जम्बीर, और बदरी (बोर) पूर्वभाग में प्रजापति  
बाला और दक्षिण में धन देनेवाले कहे गये हैं। शिविर में यद्युक्त निर्मा  
कर्याकि उससे चोर का भय होता है। नगर में प्रसिद्ध वृक्षके दरान से पुत्रप्रा  
है। इसली का वृक्ष निषिद्ध है। द्वारकापुरी के निर्माण में अन्य बहुतसे शुभवृ  
वृक्षों का वर्णन।

१०४ द्वारकादर्शनार्थ देवादीनामागमनम् १०३३

यादवैः सह श्रीकृष्णस्य द्वारकाप्रवेशः

द्वाकायामुग्रसेनाभिषेकवर्णनम्

श्रीनारायण ने नारद से कहा कि रत्नों से परिष्कृत देदीप्यमान द्वारका के  
देखने के लिये ब्रह्माजी, भवानी सहित भगवान् शंकर, अनन्त, धर्मराज, भारत

कुबेर, वरुण, पवन, यम, महेन्द्र, चन्द्र, एकादश रुद्र, अन्य मुनिगण,  
 षाठवसु, द्वादश आदित्य, दैत्य, गन्धर्व और किन्नर आये। वहाँ घटवृक्ष  
 में भगवान् पुरुषोत्तम को देखकर सम्पूर्ण देवताओं ने स्तुति की।  
 युक्ता माणिक्य हीरे और रत्नों की पंक्ति से सुशोभित उस द्वारकापुरी  
 जिसका सौ योजन में विस्तार, गम्भीर सप्त परिखाओं से वेष्टित,  
 र से युक्त, लक्ष क्रीड़ा सरोवर, प्रफुल्लित तीन लाख पुष्पोद्यान, और  
 र के वृक्ष तथा असंख्य मन्दिरों से युक्त पुरी को देखकर देवगण विस्मय  
 र। तदनन्तर बलदेव के स्मरण करने से उमसेनादि सहित सम्पूर्ण यदुवंशी,  
 त माता कुन्ती, बालगोपालों सहित नन्द व यशोदा, गन्धर्व, किन्नर,  
 त विद्याधर, नर्तकी, गायक, भिक्षुक, विदूषक (भाण्ड), भट्ट, ज्योतिषी,  
 के राजा लोग, वैद्य, यति, सन्यासी, अवधूत, प्रह्वचारी, शिष्यों सहित  
 गण, सनक, सनन्दन, सनातन, साढ़े तीन कोटि सहित ज्ञानियों के  
 नन्दकुमार, तीन-तीन लाख शिष्यों सहित दुर्वासा व वाल्मीकि,  
 ष्यों सहित करयप, गौतम, भरद्वाज, कोटि शिष्यों सहित बृहस्पति,  
 टि शिष्यों सहित शुक्र और अङ्गिरा, कोटि-कोटि शिष्यों से युक्त प्रचेता  
 न्य असंख्य शिष्यों सहित महर्षिगण, अश्वत्थामा, द्रोण, कृपाचार्य,  
 शकुनि, भाइयों सहित राजा दुर्योधन आदि राजाओं का आगमन।  
 और उमसेन का धार्तालाप—श्रीकृष्ण ने कहा शुभकर्म होने के  
 मा, देव, मुनि सब अपने स्थानों में जायेंगे। माहेन्द्रभ्रम में आप  
 के साथ द्वारका में प्रवेश कीजिये। अन्य यादवादि मथुरा में  
 यचनों को मुनकर भयभीत उमसेन ने कहा—हे यामुदेव! मैं  
 षापिस नहीं जाऊँगा। जन्मभूमि में घोया हुआ घोड़ और  
 दुई हवि अथर्व फलीभूत होती है।  
 षाद' देवानामपि पूजनम् । किञ्चित्कृत्यप्रदं चैव सम्पूर्णं पितृवैश्वदे ॥  
 प्राणोभयः प्रेरणी मदा । दुर्लभा पितृकीर्तुनिः पितुर्नातुर्गरीयसी ॥

१०६

रुक्मिण्युद्धाहवर्णनम्

१०६

कृष्णान मह पार्वत्यादीनां हास्यालापः

१०६

श्रीनारायण बोले—पतिपुत्रवाली साध्वी स्त्रियों के साथ रुक्मिणी व माता ने वर और कन्या को मङ्गलपूर्वक वस्त्रभूषणों से सुसज्जित किया। श्रीकृष्ण ने दुर्गा, सरस्वती, रति, रोहिणी, देवपत्नी, राजपत्नी और पतिव्रता मुनिपत्नियों को देखा। रानी ने वर कन्या को भोजन करा कर्पूर सहित ताम्बूल अर्पण किया। दुर्गा ने श्रीकृष्ण को मङ्गल पत्रिका दी। सम्पूर्ण देवियों ने श्रीकृष्ण को पत्रिका पढ़ने के लिये कहा। श्रीकृष्ण ने देवियों की समा में उठ पढ़ा कि लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधिका, तुलसी, पृथ्वी, गङ्गा अरुन्धती, यमुना, अदिति, शतरूपा, सीता, देवहृति और मेनका सभी वरवधूक मङ्गल कार्य करें ऐसा पढ़ने से देवियां हंसी पुनः पार्वती, सरस्वती आदि देवियों का श्रीकृष्ण के साथ हास्यालाप करना। प्रातःकाल उपसेन व वसुदेव की आज्ञा से श्रीकृष्ण व रुक्मिणी का प्रस्थान। तब रानी सुभद्रा ने अपनी पुत्री से कहा— हे पुत्रि ! मुझे छोड़ कहां जा रही हो मैं तुम्हारे बिना कैसे जीऊंगी ? इतना कह नेत्रजल से रुक्मिणी का सिंचन करना। माया से श्रीकृष्ण रुक्मिणी का रोदन करना। राजा भीष्मक ने हाथी, घोड़े, रथ, दास, दासी, रत्न, सुवर्ण, मणि आदि बहुतसे समान दहेज में दिया। श्रीकृष्ण व रुक्मिणी का द्वारकापुरी गमन। वहां आये हुए सम्पूर्ण मनुष्यों का सत्कार व ब्राह्मणभोजन और सब का अपने-अपने स्थानों को गमन तथा यशोदा का मङ्गल कार्य करना।

११०

राधा यशोदासंवादवर्णनम्

१०६६

श्रीनारायण ने कहा—मङ्गलकार्य निवृत्त होने के बाद नन्द और यशोदा का श्रीकृष्ण के पास जाना। यशोदा ने कहा हे माधव ! आपने पिताजी को तो

ज्ञान दे दिया है तथा मुझे भी ज्ञान देकर सम्पूर्ण संसार-समुद्र से उद्धार कीजिए संसार-समुद्र में मायामयी नौका को पार करने के लिये आप ही कर्णधार। यशोदा के वचन सुनकर भगवान् हँसे और बोले—सिद्ध्यात्मक, योगात्मक विषयात्मक मोक्षात्मक और भक्त्यात्मक महास्यकरण ये पांच तरह के ज्ञान बतलाये हैं। क्षुत्पिपासादिकों का खण्डन, अन्तःकरण की शुद्धि, नाड़ियों का शोधन और शक्तिकुण्डलिनी सहित ईश्वर का ध्यान यह योगात्मक ज्ञान मूर्ख पुरुष और स्त्रियों को प्राप्त नहीं हो सकता। सिद्ध्यात्मक ज्ञान जो ३४ सिद्धों से सिद्ध किया गया और संसार को बोध करानेवाला है। विषयात्मक ज्ञान जो मेरी इच्छा से सबका अपने-अपने विषयों में होता है। मोक्षात्मक ज्ञान नेवृत्तिमार्गपरक है उसको भक्त नहीं जानते हैं। भक्त्यात्मक ज्ञान तुम्हें राधा कहेगी जो ज्ञान नन्दजी को उसने दिया था वही तुम्हें दे दिया। इतना सुन श्रीकृष्ण की आज्ञा से दोनों का कदलीवन में राधा के पास जाना। नन्द और यशोदा ने सात दरवाजों से युक्त आंगन में सौ कोटि गोपियों से रक्षा की गई राधा को देखकर आश्चर्य चकित हो प्रणाम किया। चेतना प्राप्त कर राधा ने कहा— तुम कौन हो यहाँ क्यों आये हो ? मेरे पास विषयज्ञान नहीं है। मैं जल, स्थल, रात्रि, दिन, स्त्री, पुरुष और नपुंसक में भेद नहीं मानती हूँ। यशोदा ने कहा— हे राधे ! चेतन करो शुभ दिन में श्रीकृष्ण का दर्शन करोगी तुम्हारे से सब संसार भिन्न हैं। लोक, वेद, सन्त और पुराण तुम्हारी कीर्ति गावेंगे मैं यशोदा हूँ, नन्दजी हैं, तुम वृषभानु की पुत्री हो। द्वारकापुरी से तुम्हारे पतिदेव की राज्या से यहाँ आई हूँ। शीघ्र ही श्रीकृष्ण तुम्हें मिलेंगे मुझे भक्तिज्ञान का उपदेश करो श्रीदामा के शाप से जल्दी ही छुटोगी। यशोदा के वचनों को सुन राधा द्वारा दोनों को उत्तम भक्ति का उपदेश।

१११

रामादियन्दानां व्युत्पत्तिर्नामोपाध प्रशङ्गा  
 राधायन्दस्य व्युत्पत्तिवर्णनम्

११०२

११०४

राधिका ने कहा हे यशोदे ! श्रीकृष्ण ने ज्ञानात्मक ज्ञान तुमको नहीं दिया और मेरे पास भेजा है उसकी याता तो वेद और मन्त्र भी नहीं जानसकते हैं। मैं अज्ञानयुक्त अथला क्या बोध करूँ तथापि पाँच तरह के ज्ञानों में भक्त्यात्मक ज्ञान कहती हूँ। श्रीकृष्ण में पुत्रवृद्धि का त्यागकर उन्हें ब्रह्मरूप जानो। तीनों काल यमुनाजल में स्नान कर गर्ग के द्वारा कहे हुए ध्यान से शुद्ध मन हो परमानन्द की पूजन कर आनन्दपूर्वक उसके पद को प्राप्त करो। भक्त-अग्नि की ज्वाला, पिंजरे में रहना, फाँटों में रहना और विपभक्षण अच्छा समझता है किन्तु हरि-भक्ति से हीन मनुष्यों का संग अच्छा नहीं मानता। जो राम, नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसारि, हरि, वैकुण्ठ और वामन इन एकादश(११) नाम को पढ़ें और पढ़ावें वह कोटि जन्मों के पापों से छूट जाता है। 'रा' शब्द विश्व का वाचक है और 'म' शब्द ईश्वरवाचक है। सम्पूर्ण संसार का ईश्वर होने से राम कहा गया है। विष्णुसहस्रनाम स्मरण से जो फल होता है वही फल राम शब्द के उच्चारण से होता है। इसी तरह नारायण आदि शब्दों के अर्थ का वर्णन। हे यशोदे ! तुम्हारी इच्छा हो वही वर मांगो तब यशोदा ने हरि में निश्चल भक्ति एवं दासत्व का वर मांग राधा शब्द की व्युत्पत्ति पूरी। राधिका ने कहा मेरे वर से तुम्हें निश्चल भक्ति प्राप्त होगी 'रा' शब्द महाविष्णु है जिसके रोम-रोम में विश्व विराजमान है 'धा' शब्द धारण करनेवाली का बोधक है। सम्पूर्ण संसार को धारण करनेवाली को राधा कहा गया है। मुझे सुदामा के शाप से श्रीकृष्ण से सौ वर्ष का विरह हुआ है। तुम अपने स्वामी के साथ व्रज में जाओ मेरा भगवत् ध्यान करने का समय हो गया है। ध्यान भङ्ग होने से महान् दोष होता है।

प्रद्युम्नाख्यानम्  
कृष्णदुर्वाससोः संवादवर्णनम्

११०

११०

श्रीनारायण बोले—द्वारका में श्रीकृष्ण के अंश से शुभ समय में शंकर भस्मीभूत कामदेव का रुक्मिणी के गर्भ से जन्म । उसने शंवरामुर को मार रति को, जो मायावती नाम से प्रसिद्ध थी प्राप्त किया । नारद ने पूछा—हे भगवन् शंवर को कामदेव ने कैसे नष्ट किया ? नारायण बोले—सूतिकागृह में रुक्मिणी के सात दिन बीतने पर दैत्य ने बालक का अपहरण कर मायावती को दे दिया । दैत्य के सन्तान न होने से वह इसे बहुत प्रेम करता था । सरस्वती ने एकान्त में मायावती से कहा शिव के क्रोध से भस्म हुआ यह तुम्हारा पति है । रुक्मिणी ने गर्भ से इसका जन्म हुआ है माया से दैत्य ने इसका अपहरण किया है सलिये यह तुम्हारा पति है पुत्र नहीं है । पुनः कामदेव से कहा यह माया तुम्हारी स्त्री रति है । तुम्हारी माता तुम्हारे बिना रो रही है । इतना कहकर सरस्वती का स्वस्थान गमन । एक समय शंवर का रति और कामदेव का क्रीडा कौतुक देखना । क्रोधित शंवर का प्रद्युम्न के साथ युद्ध । युद्ध में दैत्य ने उसे त्रिशूल से मारा तब पवन ने प्रद्युम्न के काम में कहा दुर्गा का स्मरण करो । दुर्गा का स्मरण करने से वह शूल माल्य हो गया । तत्पश्चात् ब्रह्माक्षसे दैत्य की मृत्यु और रति सहित प्रद्युम्न का द्वारकापुरी में गमन । कालिन्दी, सत्यभामा, सत्या, नामजिती, मित्रविन्दा, जाम्बवती और लक्ष्मणा का कृष्ण के साथ विवाह एवं भौमासुर को मार १६ हजार स्त्रियों के साथ विवाह । श्रीकृष्ण के प्रत्येक स्त्री के गर्भ से दश पुत्र और एक कन्या की उत्पत्ति । दुर्वासा का त्रिकोटि शिष्यों के साथ द्वारका में आगमन । दुर्वासा का पूजन उन्हें मुक्ता व हीरों के साथ एक कन्या का अर्पण । भगवान् को सब स्त्रियों के साथ रहते देख दुर्वासा चकित हो स्तुति करने लगे । श्रीकृष्ण ने कहा हे विप्र मत डरो मैं सबकी

१११ रामादिशब्दानां व्युत्पत्तिर्नाम प्रशङ्गा ११०२  
 राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिवर्णनम् ११०४

राधिका ने कहा हे यशोदे ! श्रीकृष्ण ने ज्ञानात्मक ज्ञान तुमको नहीं दिया और मेरे पाग भेजा है उसकी याता तो वेद और मन्त्र भी नहीं जानमछते हैं। मैं अज्ञानयुक्त अपलाषया बोध करूँ तथापि पांच तरह के ज्ञानों में भक्त्यात्मक ज्ञान कहती हूँ। श्रीकृष्ण में पुत्रवृद्धिका त्यागकर उन्हें मग्नरूप जानो। तीनों काज यमुनाजल में स्नान कर गर्ग के द्वारा कहे हुए ध्यान से शुद्ध मन हो परमानन्द की पूजन कर आनन्दपूर्वक उसके पद को प्राप्त करो। भक्त-अग्नि की ज्वाला, पित्रे में रहना, कांटों में रहना और विपभक्षण अच्छा समझता है किन्तु हरि-भक्ति से हीन मनुष्यों का संग अच्छा नहीं मानता। जो राम, नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केराव, कंसारि, हरि, वैकुण्ठ और वामन इन एकादश (११) राम को पदे और पढ़ावे वह कोटि जन्मों के पापों से छूट जाता है। 'रा' शब्द वेश्वर का वाचक है और 'म' शब्द ईश्वरवाचक है। सम्पूर्ण संसार का ईश्वर होने से राम कहा गया है। विष्णुसहस्रनाम स्मरण से जो फल होता है वही फल राम शब्द के उच्चारण से होता है। इसी तरह नारायण आदि शब्दों के अर्थ का वर्णन। हे यशोदे ! तुम्हारी इच्छा हो वही वर मांगो तब यशोदा ने हरि में निश्चल भक्ति एवं दासत्व का वर मांग राधा शब्द की व्युत्पत्ति पूछी। राधिका ने कहा मेरे वर से तुम्हें निश्चल भक्ति प्राप्त होगी 'रा' शब्द महाविष्णु है जिसके रोम-रोम में विश्व विराजमान है 'धा' शब्द धारण करनेवाली का बोधक है। सम्पूर्ण संसार को धारण करनेवाली को राधा कहा गया है। मुझे सुदामा के शाप से श्रीकृष्ण से सौ वर्ष का विरह हुआ है। तुम अपने स्वामी के साथ व्रज में जाओ मेरा भगवत् ध्यान करने का समय हो गया है। ध्यान भङ्ग होने से महान् दोष होता है।

प्रद्युम्नाख्यानम्  
कृष्णदुर्वाससोः संवादवर्णनम्

११०६

११०६

श्रीनारायण बोले—द्वारका में श्रीकृष्ण के अंश से शुभ समय में शंकर से भस्मीभूत कामदेव का रुक्मिणी के गर्भ से जन्म । उसने शंवरामुर को मार रति को, जो मायावती नाम से प्रसिद्ध थी प्राप्त किया । नारद ने पूछा—हे भगवन् ! शंवर को कामदेव ने कैसे नष्ट किया ? नारायण बोले—सूतिकागृह में रुक्मिणी के सात दिन बीतने पर दैत्य ने बालक का अपहरण कर मायावती को दे दिया । दैत्य के सन्तान न होने से वह इसे बहुत प्रेम करता था । सरस्वती ने एकान्त में मायावती से कहा शिव के क्रोध से भस्म हुआ यह तुम्हारा पति है । रुक्मिणी के गर्भ से इसका जन्म हुआ है माया से दैत्य ने इसका अपहरण किया है इसलिये यह तुम्हारा पति है पुत्र नहीं है । पुनः कामदेव से कहा यह माया तुम्हारी स्त्री रति है । तुम्हारी माता तुम्हारे विना रो रही है । इतना कहकर सरस्वती का स्वस्थान गमन । एक समय शंवर का रति और कामदेव का क्रीडा कौतुक देखना । क्रोधित शंवर का प्रद्युम्न के साथ युद्ध । युद्ध में दैत्य ने उसे त्रिशूल से मारा तब पवन ने प्रद्युम्न के काम में कहा दुर्गा का स्मरण करो । दुर्गा का स्मरण करने से वह शूल माल्य हो गया । तत्पश्चात् ब्रह्मास्त्रसे दैत्य की मर्या, नाप्रजित्ती, मित्रविन्दा, जाम्बवती और लक्ष्मणा का कृष्ण के साथ विवाह एवं भौमासुर को मार १६ हजार स्त्रियों के साथ विवाह । श्रीकृष्ण के लिये एक स्त्री के गर्भ से दश पुत्र और एक कन्या की उत्पत्ति । दुर्वासा का त्रिकोटि नामों के साथ द्वारका में आगमन । दुर्वासा का पूजन उन्हें मुक्ता व हीरों के साथ एक कन्या का अर्पण । भगवान् को सब स्त्रियों के साथ रहते देख दुर्वासा चकित हो स्तुति करने लगे । श्रीकृष्ण ने कहा हे विप्र मत डरो मैं सबकी





बिना सन्तान की स्त्री, युवती, श्रेष्ठ कुलवाली एवं पतिव्रता स्त्री को त्यागकर सन्यासी, ब्रह्मचारी तथा यति हो जाय या वाणिज्यार्थ अथवा बहुत दिन तक दूर चला जाता है तथा तीर्थ में या तप के लिये अथवा जन्म-मरण से छुटकार पाने के लिये मोक्षार्थ चला जाता है उस पुरुष की मोक्ष नहीं होती है परन्तु निश्चयपूर्वक उसका धर्मस्खलन हो जाता है। भार्या के शाप से नरकों की प्राप्ति एवं इस लोक में यश का नाश होता है। अतः हे विप्र ! पुनः द्वारका को जाओ और अपने धर्म की रक्षा करो। जिसका गुणानुवाद भगवान् शङ्कर एवं सनकादि मुनीश्वर गाते हैं ऐसे उस प्रभु श्रीकृष्ण को छोड़कर कहाँ जाते हो। हे मुने ! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का स्मरण स्वप्न में भी करता है उसके सौ जन्म के किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है। अतः तुम तप करने क्यों जाते हो ? तप का फल तो श्रीकृष्ण के स्मरण से ही प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार पावती के वचनों को सुनकर प्रेमविह्वल भगवान् शंकरजी ने पार्वती की प्रशंसा की। दुर्वासाजी तदनन्तर शंकरजी एवं पार्वती को नमस्कार कर भगवान् श्रीकृष्ण से चरणों का स्मरण करते हुए पुनः द्वारका को चले गये। वहाँ जाकर भगवान् को नमस्कार कर पुनः घर चले गये। भगवान् कृष्ण भी युधिष्ठिर के ध्यान से हस्तिनापुर चले गये। वहाँ जाकर कुन्ती से वार्तालाप किया एवं उपाय से जरासंध और शाल्व को मरा कर राजसूय यज्ञ करवाया जिसमें शिशुपाल तथा दन्तवक्र को मार दिया। उसी यज्ञ सभा में देवता और राजाओं के देखते-देखते शिशुपाल का हरिपद में प्राप्त हो भगवती की स्तुति करना एवं पुनः जय, विजय रूप हो बैकुण्ठ में द्वारपाल शौना। पृथ्वी का भार हरण करने के लिये भेद से कौरव-पाण्डव का युद्ध करवा पुनः द्वारका आना। वहाँ ब्राह्मण के मृत पुत्रों को मृतस्थान से लाकर उनकी माता को वापिस देना। इसको देख माता देवकी का अपने मृत पुत्रों की याचना करना माता के वचनों सुन सहोदर भाइयों की भी मृतस्थान से लाकर

आत्मा हूँ मेरे बिना सब गृहगुण्य है । श्रीराम के शपथ से राधा इस समय मुझे नहीं प्राप्त कर सकती । रविसुखी के भवन में मेरा अंश है तथा अन्य स्त्रियों के मन्दिर में कलामात्र है । इतना कहकर श्रीकृष्ण का मगूह गमन और दुर्वासा का पत्नी को त्याग तप के लिये गमन ।

११३

अकारणान्पत्नीन्यागदोषः

१११०

दुर्वासमो द्वारकाम्प्रतिगमनम्

११११

कुष्ठान्मुक्तिकामेन माम्बेन सूर्यपूजनम्

१११४

दुर्वासा का शिष्यों सहित द्वारकापुरी छोड़कर भगवान् शंकरजी के दर्शनार्थ कैलाश गमन । वहाँ जाकर मुनिका शिष्यों सहित भगवान् शंकरजी तथा पार्वतीजी को नमस्कार कर भक्तिपूर्वक अपना और हरि भगवान् का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना एवं अपने तप का कारण तथा चित्त का वैराग्य भी प्रकट करना । मुनि के वचनों को सुनकर सती पार्वती ने हँसते हुए भगवान् शंकर की सन्निधि में उसके लिये हितकारक एवं सत्यवचन कहे । भगवती पार्वती ने कहा तुम धर्मतत्त्व को नहीं जानते हुए अपने को धर्मिष्ठ मानते हो तथा निःसन्तान स्त्री को त्यागकर तप करने के लिये क्यों जाते हो । देखो शास्त्रकार इस विषय में क्या कहते हैं यथा—

अनपत्याश्च युवती कुलजाश्च पतिव्रताम् ।

त्यक्त्वा भवेयुः सन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा ॥

वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः ।

तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्मखण्डितुम् ॥७॥

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्वलनं ध्रुवम् ।

अभिरापेन भार्याया नरकश्च परत्र च ॥

इदं च यशोनाश इत्याह कमलोल्लसः ।

बिना सन्तान की स्त्री, युवती, श्रेष्ठ कुलवाली एवं पतिव्रता स्त्री को त्यागकर  
 सन्यासी, ब्रह्मचारी तथा यति हो जाय या वाणिज्यार्थ अथवा बहुत दिन तक  
 दूर चला जाता है तथा तीर्थ में या तप के लिये अथवा जन्म-मरण से छुटकार  
 पाने के लिये मोक्षार्थ चला जाता है उस पुरुष की मोक्ष नहीं होती है परन्तु  
 निश्चयपूर्वक उसका धर्मस्खलन हो जाता है। भार्या के शाप से नरकों की  
 प्राप्ति एवं इस लोक में यश का नाश होता है। अतः हे विप्र ! पुनः द्वारका को  
 जाओ और अपने धर्म की रक्षा करो। जिसका गुणानुवाद भगवान् शङ्कर  
 एवं सनकादि मुनीश्वर गाते हैं ऐसे उस प्रभु श्रीकृष्ण को छोड़कर कहा जाते हो।  
 हे मुने ! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का स्मरण स्वप्न में भी  
 करता है उसके सौ जन्म के किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं  
 है। अतः तुम तप करने क्यों जाते हो ? तप का फल तो श्रीकृष्ण के स्मरण से ही  
 प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार पावती के वचनों को सुनकर प्रेमविह्वल भगवान्  
 शंकरजी ने पार्वती की प्रशंसा की। दुर्वासाजी तदनन्तर शंकरजी एवं पार्वती  
 को नमस्कार कर भगवान् श्रीकृष्ण से चरणों का स्मरण करते हुए पुनः द्वारका  
 को चले गये। वहाँ जाकर भगवान् को नमस्कार कर पुनः घर चले गये।  
 भगवान् कृष्ण भी युधिष्ठिर के ध्यान से हस्तिनापुर चले गये। वहाँ जाकर  
 कुन्ती से वार्तालाप किया एवं उपाय से जरासंध और शाल्व को मरा कर  
 राजसूय यज्ञ करवाया जिसमें शिशुपाल तथा दन्तवक्र को मार दिया। उसी  
 यज्ञ सभा में देवता और राजाओं के देखते-देखते शिशुपाल का हरिपद में प्राप्त  
 हो भगवती की स्तुति करना एवं पुनः जय, विजय रूप हो वैकुण्ठ में द्वारपाल  
 होना। पृथ्वी का भार हरण करने के लिये भेद से कौरव-पाण्डव का युद्ध  
 करवा पुनः द्वारका आना। वहाँ ब्राह्मण के मृत पुत्रों को मृतस्थान से लाकर  
 उनकी माता को वापिस देना। इसको देख माता देवकी का अपने मृत पुत्रों की  
 प्राप्ति करना माता के वचनों सुन सहोदर भाइयों की भी मृतस्थान से लाकर

माता को अर्पण करना । मुदामा नामक माहण का अपने घर पर आकर निम्नल लक्ष्मी देना एवं पापलों की किणकी ( कण ) ग्राह्य भगवत्पद दिसा निम्नल हरिभक्ति देकर अपना उत्तम पद दिया । पारिजात वृक्ष को कर इन्द्र के अहङ्कार को पूर्ण किया एवं गरयभामा को मनदग्धित प्रन करय जिसमें माहणों को भोजन करया यद्दुन से रत्नादि दान में दिये तथा उद्दय आध्यात्मिक ज्ञान दिया । रण में अर्जुन को गीताशास्त्र कहकर पृथ्वी निष्कण्टक किया । युधिष्ठिर को पृथ्वी एवं राज्यलक्ष्मी देकर भगवती वैष्णव दुर्गा को प्रामाधिष्ठात्री बना दिया । भगवती पार्वती की प्रीति के लिये रम्य रैवत पर्वत पर कोटि होमान्वित यज्ञ करवाया एवं माहणभोजन करवाया सुखाहु लड्डुओं से और तिलों से विघ्ननाशक गणेशजी का पूजन किया तथा साम्ब की कुष्ठक्षय के लिये सूर्य की पूजा की एवं प्रसन्न हो स्वयं भगवान् भास्व ने साम्ब को घर एवं स्तोत्र दिया ।

११४

अनिरुद्धोपाख्यानम्

१११

उपाख्यानदर्शनम्

१११

उपानिरुद्धसंवादकथनम्

१११

श्रीनारायण बोले—कृष्णपुत्र प्रद्युम्न के अनिरुद्ध नाम बालक ब्रह्माजी वंश से हुआ । अनिरुद्ध ने स्वप्न में सम्पूर्ण आभूषण व वेशभूषाओं से युक्त स्त्री को देखा और कहा तुम देवी हो अथवा गान्धर्वी, किसकी स्त्री हो व किसकी कन्या हो तथा क्या चाहती हो ? मैं श्रीकृष्णका पौत्र हूँ । तुम मेरी सेवा करो तदनन्तर कामिनी ने कहा—आप कामपुत्र हो तथा काम से व्याकुल हो त्रिलोकीनाथ के पौत्र हो तथा स्वयं योग्य होकर विवाह क्यों नहीं करते हो विवाहित स्त्री ही सदा सज्जिनी होती है । असाधु एवं कुर्वश में उत्पन्न हुआ मैं

परनारी के पास जाता है वह सात पितरों के साथ घोर नरक में जाता है असाधुश्च कुबंशश्च परनारी प्रयाति चेत् । स याति नरकं घोरं पितृभिः सप्तभिः सह ।  
 मैं शङ्कर के सेवक बाणामुर की लड़की उपा हूँ । कामिनी स्वतन्त्र नहीं होती है पराधीन होती है । नीचकुल में पैदा हुई ही स्वतन्त्र होती है । कन्या वर की याचना नहीं करती पिता ही योग्य वर के लिये दान करता है ।

पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च वराय च ।

कन्या वरं न याचेत धर्म एषः सनातनः ॥

तुम अगर मेरी इच्छा करते हो तो बाणामुर अथवा शम्भु व पार्वती से प्रार्थना करो । इतना कह सुन्दरी का अन्तर्धान । चेतनावस्था को प्राप्त हो अनिरुद्ध का व्याकुल होना । रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ ने अनिरुद्ध के विषय में कहा—तत्र भगवान् हँसकर बोले—काम से व्याकुल उपा ने इसे व्याकुल बनाया है मैं भी उपा को प्रमत्त बना दूँगा । इतना कह श्रीकृष्ण ने बाणपुत्री को स्वप्न में सुन्दर पुरुष को दिखाया । उपा ने कहा हे कामुक मेरे साथ गन्धर्व विवाह करो अष्ट प्रकार के विवाहों में गान्धर्व विवाह सुलभ बताया है । अनुरक्त प्रिया को जो कपटी पुरुष त्याग देता है उसको महालक्ष्मी शाप देकर चली जाती है । पुरुष ने कहा—मैं श्रीकृष्ण का पौत्र एवं कामदेव का पुत्र हूँ उनकी अनुमति के बिना तुम्हें कैसे ग्रहण करूँ इनना कहकर पुरुष का अन्तर्धान । उपा का सखियों के बीच दुःखित होना । चित्रलेखा ने कहा—तुम क्यों हर रही हो चेतना प्राप्त करो । शिव और शिवा तुम्हारे नगर में विराजमान हैं, शिव के स्मरणमात्र से ही सम्पूर्ण अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं ।

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं फलायते । शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः ॥

ध्यानाद् दुर्गतिनाशिन्याः सर्वदुर्गं विनश्यति ।

ददाति मद्गलं तस्मै सर्वमद्गलमद्गला ॥

चित्रलेखा के वचन सुन उपाने बहुत रुदन किया और बाणामुर का भी शङ्कर

गोकुल में वैश्य पुत्र से बिलयात हैं। जिसने पूतना को मार दिया वह नारी-पाती अधार्मिक है इसने मथुरा में कुन्जा को मार दिया। दुर्बल नरकासुर को मारकर स्त्रीसमूह को ग्रहण कर लिया। भीष्मक को जीतकर रुक्मिणी को ग्रहण किया, सूर्यसेवक सत्राजित् को अनेक उपाय से मारकर मणि व कन्या को ग्रहण किया। कृष्ण के पिता की वहिन कुन्ती चार पुरुषों की स्त्री तथा द्रौपदी पांच पुरुषों की स्त्री है। बलदेव मदिरा पीता है, अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण किया इत्यादि बहुत से कटुवचन सुनकर अकिरुद्ध ने कहा मेरे पिता ब्रह्मपुत्र है जिनके अस्त्र से तीनों लोक बरसा में रहते हैं। शिव के क्रोध से भस्म हो भीकृष्ण से प्रद्युम्न रूप में वैदा हुआ है। मेरी माता पतिव्रता है जो शंकरजी के घर अपनी धर्म की रक्षा करती रही। वासुदेव को चारों वेद भी नहीं जान सकते तुम क्या जान सकते हो। तुम शंकर के सेवक हो। शंकर से पूछो भीकृष्ण के सेवक बलिके तुम पुत्र हो। कुन्जा पूर्वजन्म में रावण की वहिन शूर्पणखा थी उस समय लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काटने पर तपस्या की थी उसी पुण्य से कुन्जा रूप में भीकृष्ण से मोक्ष प्राप्त की। इस प्रकार बहुतसे वचनों का प्रत्युत्तर कर कहा कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा से धर्म, पवन और इन्द्र से पुत्र वैदा किये हैं।

बली निषिद्धं त्रिपुगे प्रमिद्धं पलपैतृकम् । अश्वमेधं गयालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ॥

देवरेण सुनोत्पतिः बली पञ्च विवर्जयेत् ॥

बलिपुत्र में अश्वमेध, गोमेध, गन्यास, और पलपैतृक तथा देवरे मे पुत्रोत्पति निषिद्ध बताई है। द्रौपदी के पांच पति शङ्कर के घरदान से हुए हैं। दक्षिणात्य पतिपाटी से मामा की लड़की सुभद्रा को कृष्ण ने अर्जुन को अर्पण किया अन्य देशों में द्रोप है ऐमा ब्रह्माजी का आदेश है।

वाणासुर ने कहा—हे अनिरुद्ध ! तुम बुद्धिमान् हो तुम्हारा वचन ही ऐसा ही शिवजी ने भी कहा था । तुमने शङ्कर के वरदान से द्रौपदी पति बतलाये उसका विशदरूप से वर्णन करो । तुम्हारी माता रति का कैसे अपहरण किया देवों ने उसे कैसे दिया और शंकर ने देवताओं पराजित किया । अनिरुद्ध ने कहा—एक समय रघुनाथजी पञ्चवटी के तीता और लक्ष्मण के साथ स्नान कर सुन्दर जल, अन्न, व्यञ्जन तथा पकड़ा कर सीता को देकर लक्ष्मण को दिया पीछे स्वयं भोजन करने लक्ष्मण मेघनाद को मारने तथा सीता का उद्धार करने के लिये फल नहीं खाते थे मेघनाद को यह वरदान था कि जो चौदह वर्ष अन्न और छोड़ेगा उसी योगीराज के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी । द्विजरूपी श्रीराम के पास आगमन । अग्नि ने कहा—सीता को द्विपाओ सात रावण पूर्वजन्म के कारण इसका अपहरण करेगा विधाता का लेख बं मिटा सकता । श्रीराम ने कहा—सीता को लेकर आप चले जाइये और प्रतिकृति छाया को यहाँ छोड़ दीजिये । उस छाया का अपहरण किया । रामचन्द्र ने रावण को मार छाया का उद्धार किया । यष्टि में के समय अग्निदेव ने छाया की रक्षा कर जानकी को अर्पण कर दिया छाया ने दिव्य सौ धरों तक नारायण सरोवर के पास शङ्कर की तपस शङ्कर ने उसे वरदान मांगने के लिये कहा । पति दुःख से दुःखित । पांच बार “पति देहि” कहा । श्रीमहादेव ने कहा तुमने क्याकुछता से प



शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व  
 शिव, गणेश और कार्तिक प्रिय हैं व

११६	शिवपार्वतीसंवादवर्णनम्	११३६
	चलितशुद्धरसम्बन्धवर्णनम्	११३६
	चलितकृतकृष्णस्तोत्रम्	११३७

श्रीनारायण ने कहा—पार्वती के वचनों की गणेश, शिव, कार्तिकेय  
 और काली ने प्रशंसा की। श्रीमहादेव ने कहा—हे देवि ! परमात्मा के साथ  
 युद्ध करना अयुक्त है। वाणासुर कन्या देवे तो बहुत अच्छी बात है परन्तु वह  
 देता नहीं है वह लड़ने के लिये जायगा तो हम उसके पीछे रहेंगे। मैंने कन्या  
 देने को कहा था लेकिन वह देता नहीं। उसने दुर्गा के वचनों को भी नहीं स्वीकार  
 किया। वैष्णव प्रमुख महाधर्मात्मा का सात लक्ष दैत्यों के साथ आमनन।  
 उसने शिव, शिवा, गणेश, और कार्तिक को प्रणाम किया। बलि को देखकर राक्ष  
 को छोड़ सब खड़े हो गये। श्री महादेव ने कहा आप चतुर हैं, परम वैष्णव हैं,  
 वैष्णव के स्पर्शमात्र से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। सब यणों में ब्राह्मण  
 शुद्ध हैं परन्तु उससे भी वैष्णव ब्राह्मण शुद्ध हैं वह अग्नि और पवन से भी पवित्र  
 हैं उनके शरीर में पाप नहीं रहते हैं। बलि ने कहा—हे महादेव ! मैं आपका  
 हूँ मेरी प्रशंसा क्यों करते हैं मुझे आपने ही सुदुर्लभ ऐश्वर्य प्रदान किया है।

आपने वामनरूप धारण कर इन्द्र को ऐश्वर्य प्रदान किया। वाणासुर से कहिये कि परमात्मा के साथ युद्ध करना अतिनिन्दित कार्य है। इतना कहकर शङ्कर को प्रणाम कर सामवेदोक्त स्तोत्र से श्रीकृष्ण की स्तुति की। अदिति की प्रार्थना से वामन रूप धारण कर मुझे वञ्चित किया। सम्पद्रूपा महालक्ष्मी भक्त को प्रदान की। इस समय मेरा पुत्र वाणासुर शंकर का सेवक है। पार्वती अपने पुत्र की तरह पालन करती है। उसकी लड़की बलवान् अनिरुद्ध ने ग्रहण की है। अनिरुद्ध वाण को मारने के लिये तैयार हुआ तब स्वामी कार्तिकेय ने रक्षा की है। अब आप पौत्र के विषय में दमन करने आये हो आपके मारने से संसार में रक्षा करनेवाला कौन है। इस तरह बहुत प्रकार से स्तुति की। श्री भगवान् ने कहा बरस ! मत डरो मेरे वर से तुम्हारा पुत्र अजर अमर है किन्तु उसका दर्प नष्ट होगा। प्रह्लाद को वरदान दे दिया था कि तुम्हारे वंश में होनेवाले को नहीं हूँगा। तुम्हारे पुत्र को ज्ञान दूँगा। इस स्तोत्र का पठन करने से कोटि जन्मों पापों से मनुष्य छूट जाता है। यह स्तोत्र विपत्तियों को खण्डन करनेवाला, पत्ति को देनेवाला, दुःखों को दूर करनेवाला, गर्भवास, जरा, मृत्यु, रोग और मरण को खण्डन करनेवाला है। एक लक्ष पठन करने से स्तोत्र सिद्ध होता है। इस स्तोत्र का पठन करने से सर्वसिद्धि मिलती है।

वाणासुरयुद्धवर्णनम्  
यादवशैवयोर्युद्धवर्णनम्

श्रीनारायण ने कहा—श्रीकृष्ण ने बलराम और उद्धव के साथ मन्त्रणा कर जहाँ गणपति, शङ्कर, दुर्गा, कार्तिकेय, भद्रकाली, उग्रचण्डा और कोटरीधे वहाँ दूतने सबको प्रणाम कर कहा कि श्रीकृष्ण ने वाणासुर को संप्राम करने को है अथवा उपा सहित अनिरुद्ध को लेकर उनकी शरण में जाओ। निमन्त्रित हुआ यदि भय से लड़ने नहीं जाता है वह सात पितरों के साथ नरक में

गोकुल में वैश्य पुत्र से बिलयात हैं। जिसने पूतना को मार दिया वह नाघाती अधार्मिक है इसने मथुरा में कुब्जा को मार दिया। दुर्बल नरकासुर मारकर स्त्रीसमूह को ग्रहण कर लिया। भीष्मक को जीतकर रुक्मिणी को प्रकिया, सूर्यसेवक सत्राजित् को अनेक उपाय से मारकर मणि व कन्या ग्रहण किया। कृष्ण के पिता की बहिन कुन्ती चार पुरुषों की स्त्री तथा द्रौपदी पांच पुरुषों की स्त्री है। बलदेव मदिरा पीता है, अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण किया इत्यादि बहुत से कटुवचन सुनकर अकिरुद्ध ने कहा मेरे पिता ब्रह्मपुत्र जिनके अस्त्र से तीनों लोक बरा में रहते हैं। शिव के क्रोध से भस्म हो श्रीकृष्ण से प्रचुम्न रूप में पैदा हुआ है। मेरी माता पतिव्रता है जो शंकरजी के धर्म अपनी धर्म की रक्षा करती रही। वासुदेव को चारों वेद भी नहीं पढ़ सकते तुम क्या जान सकते हो। तुम शंकर के सेवक हो। शंकर से पूछो श्रीकृष्ण के सेवक बलिके तुम पुत्र हो। कुब्जा पूर्वजन्म में रावण की बहिन शूर्पणखा उस समय लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काटने पर तपस्या की थी उसी पुण्य कुब्जा रूप में श्रीकृष्ण से मोक्ष प्राप्त की। इस प्रकार बहुतसे वचनों का प्रत्युत्तर कर कहा कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा से धर्म, पवन और इन्द्र से शिशु पैदा किये हैं।

कलौ निपिटं त्रियगे प्रसिद्धं पलपैठकम् । अश्वमेधं गयालम्भं संन्यासं पलपैठकम् ।

वाणानिरुद्धमंवादवर्णनम्

११२७

वाणानिरुद्धयुद्धवर्णनम्

११२६

वाणामुर ने कहा—हे अनिरुद्ध ! तुम बुद्धिमान् हो तुम्हारा वचन सत्य  
 ऐसा ही शिवजी ने भी कहा था । तुमने शङ्कर के वरदान से द्रौपदी के पांच  
 रति बतलाये उसका विशदरूप से वर्णन करो । तुम्हारी माता रति का शंवर ने  
 से अपहरण किया देवों ने उसे कैसे दिया और शंवर ने देवताओं को कैसे  
 राविव किया । अनिरुद्ध ने कहा—एक समय रघुनाथजी पश्ववटी के तटपर  
 और लक्ष्मण के साथ स्नान कर सुन्दर जल, अन्न, व्यञ्जन तथा फलों को  
 कर सीता को देकर लक्ष्मण को दिया पीछे स्वयं भोजन करने लगे ।  
 मेघनाद को मारने तथा सीता का उद्धार करने के लिये फल और जल  
 साते वे मेघनाद को यह वरदान था कि जो चौदह वर्ष अन्न और निद्रा को  
 गा उसी योगीराज के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी । द्विजरूपी अग्नि का  
 के पास आगमन । अग्नि ने कहा—सीता को छिपाओ सात दिन में  
 पूर्वजन्म के कारण इसका अपहरण करेगा विधाता का लेख कोई नहीं  
 सकता । श्रीराम ने कहा—सीता को लेकर आप चले जाइये और उसकी  
 ति छाया को यहां छोड़ दीजिये । उस छाया का अपहरण रावण ने  
 । रामचन्द्र ने रावण को मार छाया का उद्धार किया । वहि में परीक्षा  
 य अग्निदेव ने छाया की रक्षा कर जानकी को अर्पण कर दिया । उस  
 ने दिव्य सौ वर्षों तक नारायण सरोवर के पास शङ्कर की तपस्या की ।  
 उसे वरदान मांगने के लिये कहा । पति दुःख से दुःखित छाया ने  
 र “पति देहि” कहा । श्रीमहादेव ने कहा तुमने व्याकुलता से पांच वार  
 जिये यह कहा है इसलिये पांच इन्द्र तुम्हारे पति होंगे ।  
 से द्रौपदी रूप में प्रगट हुई । कृतयुग ॐ

११२६

और द्वापर में द्रौपदी इसलिये कृष्णा को त्रिहायणी कहते हैं। राजा द्रुपद ने उसके अर्जुन के लिये दे दिया। अर्जुन ने माता कुन्ती से कहा मेरे को वस्तु मिली है माता ने आज्ञा दी कि भाइयों के साथ ग्रहण करो। शङ्कर के वरदान से और माता की आज्ञा से पांच इन्द्र पांच पांडवों के रूप में द्रौपदी के स्वामी हुए। रति को शङ्कर का शाप था कि तुम्हारा पति मेरी क्रोधाग्नि से भस्म होगा। शंवरामुर इन्द्रादि देवताओं को जीतकर तुम्हारा हरण करेगा इस समय तुम दैत्य के पास रहो। इतना कहकर फिर उसे वरदान दिया कि तुम्हारा सर्तिल नष्ट नहीं होगा जबतक तुम्हारा पति पैदा न हो तबतक छायारूप में उसके पर रहो यह देवताओं का गुप्त चरित्र तुम्हें बतलाया है। बाणामुर के सेनापति कुम्भाण्ड के भाई सुमद्र के साथ अनिरुद्ध का युद्ध। बाणामुर और अनिरुद्ध का युद्ध। युद्ध में बाणामुर को निद्रास्त से निद्रित कर जब अनिरुद्ध तलवार से मारने चला तब स्वामी कार्तिकेय ने रोक दिया। स्वामी कार्तिकेय और अनिरुद्ध का युद्ध इस वृत्तान्त को वर्णन करने के लिये शङ्कर के पास गणेशजी का गमन।

११७

शिवलम्बोदरसंवादवर्णनम्

११३

श्रीनारायण ने कहा—गणेशजी ने शिवस्थान पर सम्पूर्ण युद्ध के वृत्ता को वृषक्-वृषक् वर्णन किया। श्रीमहादेव ने हंसकर कहा हे गणेश! नीतियु एवं परिणामों का मुग्धकर वचन मुनो। सम्पूर्ण विश्व का सह अनिरुद्ध में श्रीकृष्ण उन मय का कारण है। प्रज्ञादि तृण पर्यन्त का कारण श्रीकृष्ण ही है गोलोक में दो मुञ्जा धारण करते हैं यहा शिशुरूप में वृन्दावन में तथा अस्थानों में राग करते हैं। सम्पूर्ण वमी की अंशकलाएँ हैं “सर्वेषांशकलाः पुं कृष्णस्य भगवान् स्वयम्” वमी का पौत्र बलरालो अनिरुद्ध है। मीने युद्ध के कि स्कन्द, आठ भैरवों व एकादश शत्रुओं को भेजा है। मृग बाणामुर की स्कन्द ने रथ की है ऐद्विन अनिरुद्ध को कोई नहीं जीत सकता। अनिरुद्ध स्वयं प्रज्ञा।

प्रद्युम्न कामदेव है। बलदेव स्वयं शेष और श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा है हे गणेश ! वाण की रक्षा करो तुम विघ्नो को नाश करनेवाले हो। हरि सुदर्शन-चक्र लेकर जल्दी ही आयेंगे।

११८

वाणासुरयुद्धवर्णनम्  
शिवपार्वतीसंवादनवर्णनम्

११३२

११३३

श्रीनारायण ने कहा - गणेश को समझाकर शंकर का अन्तःपुर में गमन।

हां पर दुर्गा, भैरवी, भद्रकाली, उग्रचंडा और कोटरी ने शंकर को प्रणाम किया हीपर गणेश, कार्तिकेय, वाण, वीरभद्र तथा नन्दी आदि गणों का आगमन।

गिभद्र ने कहा "असंख्य यादवों की सेना सहित बलराम, प्रद्युम्न, साम्ब, अत्यकि, उपसेन, भीम, अर्जुन, अक्रूर, उद्धव, जयन्त और श्रीकृष्ण अस्त्रशस्त्रों सहित आगये हैं। बलराम ने लाख महलों को मारकर तीन लक्ष बगीचों का उत्पादन कर दिया है। द्वारपाल को मारकर महाद्वार में प्रवेश कर गये हैं"।

इतना सुनकर महादेव ने पार्वती, भद्रकाली, स्कन्द, गणेश, आठ भैरव, एकादश भद्र, वीरभद्र, महाकाल, और नन्दी से कहा श्रीकृष्ण एकक्षण में सम्पूर्ण विश्व को धर कर सकते हैं नगर का तो कहना ही क्या। परन्तु सब उपायों से वाणासुर की रक्षा करो। वाणासुर लम्बोदर का स्मरण कर युद्ध के लिये जाये वाण के क्षिण में स्कन्द आगे गणेश बाईं तरफ भैरव उर स्वयं नन्दी रहे। पार्वती से कहा महामाये ! सुदर्शन चक्र से वाणासुर की रक्षा करो मुझे गणेश और कार्तिक भी कहीं अधिक वाणासुर प्रिय है। वाणासुर के मत्तक पर हाथ रखो।

हर के वचन सुनकर दुर्गा ने हँसकर कहा—हे वाण ! सब आभूषणों सहित तू को अनिरुद्ध के लिये दे राज्य करो। मैं शक्ति हूँ मन ब्रह्मा है शिव ज्ञानस्वरूप तू को छोड़ने से वह शिव के समान होता है। हे शिव ! संग्राम में सुदर्शनचक्र तू के सामने कौन ठहर सकता है। अपनी आत्मा के साथ युद्ध करने में पराजय

तेती है कृष्ण साक्षात् परमात्मा हैं। मुझे गणेश और कार्तिक प्रिय है।  
 ती अधिक आप हैं। किङ्करी में बाण प्रिय है किन्तु कृष्ण से परम प्रिय कोई  
 है। मैं वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, गोलोक में रागिका, शिखलोक में शिवा  
 महालोक में सरस्वती हूँ। मैं दैत्यों को मारकर दक्ष के घर जन्मी थी और  
 आपकी निन्दा से शरीर त्यागकर मेना के घर जन्म लिया है। रत्नवी  
 युद्ध में कालीस्वरूप था। वेदमाता सावित्री एवं जनक कन्या सीता मैं  
 द्वारका में रुक्मिणी और वृन्दावन में राधा हूँ। आप तो सब जानते हैं मैं  
 कहूँ क्या करना चाहिये।

११६	शिवपार्वतीसंवादवर्णनम्	११
	बलिशङ्करसम्वादवर्णनम्	११
	बलिकृतकृष्णस्तोत्रम्	११

श्रीनारायण ने कहा—पार्वती के वचनों की गणेश, शिव, कार्तिक  
 और काली ने प्रशंसा की। श्रीमहादेव ने कहा—हे देवि ! परमात्मा के  
 युद्ध करना अयुक्त है। बाणासुर कन्या देदे तो बहुत अच्छी घात है परन्तु  
 देता नहीं है वह लड़ने के लिये जायगा तो हम उसके पीछे रहेंगे। मैंने क  
 देने को कहा था लेकिन वह देता नहीं। उसने दुर्गा के वचनों को भी नहीं स्वी  
 किया। वैष्णव प्रमुख महाधर्मात्मा का सात लक्ष दैत्यों के साथ आगम  
 उसने शिव, शिवा, गणेश, और कार्तिक को प्रणाम किया। बलि को देखकर श  
 को छोड़ सब खड़े हो गये। श्री महादेव ने कहा आप चतुर हैं, परम वैष्णव  
 वैष्णव के स्पर्शमात्र से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। सब घणों में ब्रह्म  
 शुद्ध हैं परन्तु उससे भी वैष्णव ब्राह्मण शुद्ध हैं वह अग्नि और पवन से भी पवि  
 हैं उनके शरीर में पाप नहीं रहते हैं। बलि ने कहा—हे महादेव ! मैं आप  
 सेवक हूँ मेरी प्रशंसा क्यों करते हैं मुझे आपने ही सुदुर्लभ ऐश्वर्य प्रदान किया है।

आपने वामनरूप धारण कर इन्द्र को ऐश्वर्य प्रदान किया। वाणासुर कि परमात्मा के साथ युद्ध करना अतिनिन्दित कार्य है। इतना कहकर प्रणाम कर सामवेदीक्त स्तोत्र से श्रीकृष्ण की स्तुति की। अदिति की वामन रूप धारण कर मुझे वञ्चित किया। सम्पद्रूपा महालक्ष्मी भक्त की। इस समय मेरा पुत्र वाणासुर शंकर का सेवक है। पार्वती अपने तरह पालन करती है। उसकी लड़की चलवान् अनिरुद्ध ने प्रहण अनिरुद्ध बाण को मारने के लिये तैयार हुआ तब स्वामी कार्तिकेय ने रथ अब आप पौत्र के विषय में दमन करने आये हो आपके मारने से संस करनेवाला कौन है। इस तरह बहुत प्रकार से स्तुति की। श्री भगवा हे वत्स ! मत डरो मेरे घर से तुम्हारा पुत्र अजर अमर है किन्तु उसका कहूँगा। प्रह्लाद को घरदान दे दिया था कि तुम्हारे वंश में होनेवाला मारूँगा। तुम्हारे पुत्र को ज्ञान दूँगा। इस स्तोत्र का पठन करने से क के पापों से मनुष्य छूट जाता है। यह स्तोत्र विपत्तियों को खण्डन व सम्पत्ति को देनेवाला, दुःखों को दूर करनेवाला, गर्भवास, जरा, मृत्यु, बन्धन को खण्डन करनेवाला है। एक लक्ष पठन करने से स्तोत्र सिद्ध सिद्ध स्तोत्र का पठन करने से सर्वसिद्धि मिलती है।

१२०

वाणासुरयुद्धवर्णनम्  
यादवशैवयोर्युद्धवर्णनम्

श्रीनारायण ने कहा—श्रीकृष्ण ने बलराम और उद्धव के साथ म दूत को जहाँ गणपति, शङ्कर, दुर्गा, कार्तिकेय, भद्रकाली, उग्रचण्डा और को भेजा। दूतने सबको प्रणाम कर कहा कि श्रीकृष्ण ने वाणासुर को संभाव । वाणासुर है अथवा वाणासुरिक अतिरुद्धकी बेकाबू बलवती शक्ति में आने



जाता है। पार्वती ने दूत के बचन सुनकर शङ्कर के मामने वाणामूर से कहा हे वाण ! इहेज के साथ कन्या को लेकर श्रीकृष्ण की शरण में चले जाओ। किन्तु क्रोधी वाणामूर योद्धाओं के साथ लेकर लड़ने चला। वाण की रक्षा के लिये भगवान् रुद्र एकादश रुद्रों के साथ तथा आठ नायिका, आठ शक्तियाँ और स्कन्द चले परन्तु पार्वती और गणेश नहीं गये। वाणामूर और सात्यकि का युद्ध वान तथा सात्यकि ने नाना अस्त्रों का प्रयोग किया। पुनः वाण ने नारायणास्त्र छोड़ा जिससे सात्यकि दण्डवत् पृथ्वी पर गिर गये। वाणामूर ने माहेश्वर अस्त्र छोड़ा तब सात्यकि ने वैष्णवास्त्र से उसका संहार कर दिया। ब्रह्मास्त्र का प्रतिकार ब्रह्मास्त्र से कर दिया। नागास्त्र को गरुडास्त्र से संहार किया। स्वामी कार्तिकेय और प्रद्युम्न का युद्ध। वाणामूर के रथ को हल से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मुण्ड से सारथि व घोड़ों को मार दिया। जब बलरामजी वाणामूर को मारने चले तब कालाम्नि रुद्र भगवान् ने रोक दिया। बलवान् बलदेव ने कालाम्नि रुद्र भगवान् के रथ को तोड़ सारथि व घोड़ों को मार दिया। क्रोधित रुद्र ने ज्वर का प्रयोग किया। श्रीकृष्ण को छोड़ सब यादव ज्वर से पीड़ित हो गये। श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर का प्रयोग किया तब दोनों ज्वरों का परस्पर युद्ध। दुःखित हुणशैव ज्वर ने श्रीकृष्ण की शरण में जाकर उनकी स्तुति की। तब श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर संहार किया। जब वाणामूर ने शक्ति का प्रयोग किया तब अर्जुन ने उसे काट दिया। पुनः हजारों भुजाओं में सहस्रों वाण ले अत्यन्त मयङ्कर पाशुपत अस्त्र का प्रयोग किया तब श्रीकृष्ण ने चक्र छोड़ा जिससे उसकी भुजायें कट गईं ७ पाशुपत शङ्कर के पास आगया और वाणामूर पृथ्वी पर गिर गया। श वाणामूर को अपने बक्षःस्थल पर रखकर रोदन करने लगे जिस से एक सरोवर गया। पुनः चेतना प्राप्त कर वाणामूर को श्रीकृष्ण के पास ले गये और उनकी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण ने अपना हाथ वाणामूर पर रखकर अजर व अमर कर दिया। वाणामूर ने बलिकृत स्तोत्र से स्तुति की। वाणामूर ने अपनी कन्या उषा व

अनेक दास, दासी, मुक्ता, माणिक, घेनु व सुन्दर रेशमी महीन वस्त्रों के साथ श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में अर्पण किया। कृष्ण ने उसे वरदान देकर शंकर की आज्ञा से द्वारका में प्रस्थान कर कन्या को देवकी व रुक्मिणी के लिये दे महोत्सव करवाया पुनः ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें बहुतसा धन दिया।

१२१

शृगालोपाख्यानम्

११४३

शृगालमोक्षणम्

११४४

गणेशपूजावर्णनम्

श्रीनारायण ने कहा—सुधर्मा सभा में रहते हुए कृष्ण के पास ब्रह्मतेजस्वी ब्राह्मण ने आकर विनयपूर्वक कहा—वासुदेव नाम शृगाल राजा ने जो कहा है जो मैं वासुदेव नाम से वैकुण्ठ में विख्यात लक्ष्मी का पति हूँ। ब्रह्मा ने क्र से पृथ्वी का भार दूर करने के लिये प्रार्थना की है इसलिये भारतवर्ष में गया हूँ। वासुदेवपुत्र श्रीकृष्ण अहंकारी है तथा महाधूर्त है। उसीने दुर्योधन और असन्ध को भीमसेन से नष्ट करवाया है। द्रोण, भीष्म, कर्ण और अन्य ताओं को अर्जुन से मरवा दिया है। शिशुपाल, दन्तवक्र और कंसादि को स्वयं ग ने मारा है मैं साक्षात् नारायण हूँ। लज्जा से अथवा कृपा से मैंने क्षमा ... है अब या तो युद्ध करो अथवा मेरी शरण में आओ। श्रीकृष्ण ब्राह्मण से शृगाल के वचन सुनकर प्रातःकाल युद्ध करने चले। श्रीकृष्ण के दर्शन कर शृगाल ने कहा कि चक्र से मेरा शिर काटकर द्वारका को जाओ। यह पापी एवं नश्वर गरीर नष्ट होना ही उचित है। आप जानते हैं मैं आपका सुभद्र नामक द्वारपाल ... लक्ष्मी के शाप से भ्रष्ट हुआ हूँ मेरा समय पूरा हो गया है। श्रीकृष्ण ने ... दे मित्र ! पहले मुझे मारो पीछे मैं युद्ध करूँगा। शृगाल ने दश बाण मारे ... बाण आकाश में चले गये। पुनः गदा छोड़ी वह भी श्रीकृष्ण के अद्भुतस्पर्श से ... हो गई। धनुष और तलवार श्रीकृष्ण के अद्भुतस्पर्श से नष्ट हो गये। श्रीकृष्ण ने

कहा मित्र ! सुतीक्ष्ण अस्त्र लाओ तब शृगाल ने कहा परमात्मा के साथ यु  
करना उचित नहीं आप मेरा उद्धार कीजिये । मित्र के वचन सुनकर श्रीकृ  
रोने लगे । उनके आंसुओं की बून्दों से सरोवर हो गया जिसका जलस्पर्श करने  
सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं । श्रीभगवान् ने कहा हे मित्र ! दूत के मुख  
तो तुमने कैसे कठोर वचन कहलाये । तुम्हारी इतनी निर्मल बुद्धि व निर्मल म  
कैसे हुआ ? नारद ने नारायण से कहा गणेशपूजा का आख्यान ब्रह्मा के मुख से  
सुना था परन्तु विस्तार से सुनना चाहता हूँ । सिद्धाश्रम में देवताओं ने पूजन क  
धी श्रीदाम के शाप से मुक्ति होने पर राधा ने सुरेन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नागेन्द्र  
राजेन्द्र, गन्धर्व और यक्षों को छोड़कर सर्वप्रथम गणेश का पूजन क्यों किया ?  
तब नारायण बोले तीनों लोकों में पृथ्वी सबसे मान्य एवं धन्य है । वहाँ  
भारतवर्ष सब फलों के फल को देनेवाला है सिद्धाश्रम महान् पुण्यक्षेत्र है । जहाँ  
स्वयं ब्रह्मा व सनत्कुमारजी सिद्ध बने हैं । गणेश का अधिष्ठान निरन्तर वही है  
वैशाखी पूर्णिमा को देवगण गणेश की प्रतिमा का पूजन करते हैं । वहाँपर नाग,  
मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र, सनकादि, पार्वती सहित  
राहुर, कार्तिकेय, शेष और स्वयं ब्रह्मा, द्वारकावासियों के साथ श्रीकृष्ण, गोकुल-  
वासियों के साथ नन्द और बलराम तथा मयियों के साथ राधा भी वहाँ आईं ।  
राधा ने श्रीकृष्ण प्राणि के लिये सामवेदोक्त ध्यान से गणेश का ध्यान किया और  
गङ्गाजल से स्नान करवाया । पुनः षोडशोपचार से पूजन की तथा नाना तरह के  
स्वपुत्र व लहूँ आदि के प्रसाद चढ़ाये । अन्त में पुण्याखिल दे "ओं गङ्गी गणपतये  
विप्रविनाशिनै स्वाहा" इम मन्त्र का हजार जप किया फिर स्तुति की ।

सर्वभाग परब्रह्म परेश परमीश्वरम् । विप्रनिप्रदं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तम् ॥  
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्त्रीमि परान्परम् । सूरपुत्रं दिनेशम् गणेशं मङ्गलायनम्  
यद् स्तोत्रं मह्यं पुण्यं को देनेवाला है एवं प्रातःकाल पठने से सब विप्र  
नष्ट हो जाते हैं ।

राधाम्प्रति गणेशोक्तिः  
गोपीभिः सह राधायाः समागमः

राधिकास्तोत्रम्

राधा की पूजा को देखकर गणेशजी ने कहा—हे मातः ! तुम्हारी की हुई पूजा लोकशिक्षा के लिये होगी । सृष्टि में सम्पूर्ण विभूतियाँ तुम्हारी ही हैं । आदि में राधा शब्द का उच्चारण पीछे कृष्ण का उच्चारण करनेवाला मनुष्य योगीलोक में जाता है । व्यतिक्रम करने से ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है । जो मनुष्य राधा की निन्दा करता है उसके वंश की हानि होती है तथा दुःख की प्राप्ति होती है । अन्त में “यावच्चन्द्रदिवाकरौ” नरक में रहता है । तुम दोनों की सेवा करना अरम दुर्लभ है । यह स्तुति एवं कवच सब कामों को देनेवाला है । जो गुरु की [जा वस्त्रालंकार से कवच को धारण करता है वह विष्णुतुल्य कहा गया है । जो वस्तु मुझे अर्पण की है वह मेरी प्रसन्नता के लिये ब्राह्मण को दो तब मैं भोजन करूँगा । जो द्रव्य व दक्षिणा देव को दी जाती है वह सब ब्राह्मण को देने से अनन्त फल होता है । हे मातः ! ब्राह्मणों के मुख देवमुख से भी विशिष्ट फल-दायक है । ब्राह्मणों को भोजन कराने से देवता ही भोजन करते हैं ऐसा जानो । तदनन्तर गणेश प्रीत्यर्थ राधा ने ब्राह्मणभोजन करवाया । ब्रह्मा, ईश और शेष का वटवृक्ष के पास आगमन । शिवदूत ने देव, देवी और श्रीकृष्ण को कहा राधा ने सर्वप्रथम गणेश की पूजन की है मुझे शक्तिशालिनी गोपियों ने रोक दिया मैं तुम्हें क्या कहूँ । जो सर्वप्रथम गणेशपूजन करता है उसे अनन्त फल की प्राप्ति, मध्य में मध्यमफल और शेष में स्वल्प फल की प्राप्ति होती है । दूत के वचन सुनकर सब देवता हँसे तथा मुनि और राजा लोग, देवस्त्रियाँ, रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ, रोहिणी, स्वाहा और मुनि पत्नियाँ इन सब ने श्रीकृष्ण की शुभक्षण में पूजा की । राधा ने पार्वती को देख यथायोग्य सम्भाषण किया तब पार्वती ने कहा

हे राधिके ! तुम्हारे भाग की मुक्ति हो गई तथा तुम्हारे विरह को खाना भी आसान हो गई । मेरे प्राण एवं मन निरन्तर तुम्हारे में ही रहते हैं । मेरे मन तुम्हारी निन्दा और तुम्हारे भक्त मेरी निन्दा करते हैं वन्दे महा वृक्षीणाक नाम की प्राप्ति होकर अन्याय गोत्रियों की प्राप्ति होती है । मुमने सर्वप्रथम मेरे पुत्र का पूजन किया है अतः महा ही सर्वप्रथम वगकी पूजा होगी । हे राधिके ! मेरे वर हैं आज भीष्टा को प्राप्त करोगी । पाषाणों के वनमें मे मोरियों में राधा को सब आभूषण व शृङ्गारों से सुसज्जित कर भीष्टा की माया की सुसज्जित किया । सम्पूर्ण आभय को सुसज्जित देगकर मुनियों में भीष्टा में इगका कारण पूजा सब भगवान् कोले भीष्टा के शाप से राधा का और मेरा भी वर का वियोग था वह अयधि बोल गई है । इतना सुनकर महा, शङ्कर, मन्वादि शीघ्र ही राधा का ध्यान कर उनके दर्शनार्थ चले । वहाँ पर राधा के स्वरूप को देगकर प्रथम ब्रह्मा ने स्तुति की फिर भीमहादेव एवं अनन्त ने स्तुति की । रुक्मिणी आदि विप्रों सब उज्जित हो गई एवं सत्यभामा ने अभिमान को दण्ड दिया ।

१२३	वसुदेवप्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः	११५६
	दक्षिणाकालनिर्णयवर्णनम्	११५६

नारदजी ने कहा कि गणेशपूजन एवं राधास्तोत्र के वाद क्या रहस्य हुआ है वह वर्णन करो । श्रीभगवान् कोले गणेश पूजन के वाद वसुदेव और देवकी ने शंकर, अनन्त, ब्रह्मा एवं मुनियों से पूछा संसार समुद्र में तैरने के लिये उत्तम गति का उपाय वर्णन कीजिये । संसाररूपी नौका को पार करने के लिये आप नाविक हैं । वैष्णवों के रजकणों के स्पर्शमात्र से ही पृथ्वी पवित्र हो जाती है । वासुदेव के वचन सुनकर शङ्कर ने कहा वासुदेव का पिता भी हम से ज्ञान पूछते हैं । अहो महामाया ज्ञानियों को भी मोहित करनेवाली है । हम उसी माया से मोहित

हैं। हे वसुदेव ! सबका मूल कारण श्रीकृष्ण हैं राजसूय यज्ञ में यज्ञ के काम  
श्रीकृष्ण को भजो और विधिविधानसे दक्षिणा देकर संसार समुद्र को पार कर  
शङ्कर के वचन सुनकर वसुदेव ने राजसूय यज्ञ की तैयारी की एवं यज्ञारंभ  
करवाया। पूर्णाहुति देते समय वसुदेव से सनत्कुमार ने कहा सर्वस्व दक्षिण  
लक्ष्मीपति के निमित्त शीघ्र दो। दक्षिणा तत्काल न देने से मुहूर्त्त में दुःख  
हो जाती है। एक दिन बाद चौगुनी, तीन रात बीतने पर छः गुनी, एक पक्ष  
बीतने पर सौगुनी, मासान्त में उससे चारगुनी, छः मास के बाद सहस्रगुनी  
और एकवर्ष में लक्षगुनी हो जाती है। वसुदेव ने सर्वस्व त्यागकर गर्गाचार्य को  
मणि, सुवर्ण, चाँदी और धान्याचलादि दिये। देवों का स्वस्थान गमन और  
यादवों का द्वारकापुरी में जाना।

१२४

राधाकृष्णयोः पुनर्मेलनम्

११६०

कृष्णम्प्रतिराधोक्तिः

११६३

राधाकृष्णसंवादवर्णनम्

११६५

श्रीनारायण ने कहा—गणेशजी की पूजन कर देव, मुनि, एवं देवी रुक्मिणी  
आदि के साथ श्रीकृष्ण का द्वारका गमन। श्रीकृष्ण ने नन्द यशोदा से कहा  
प्रज्ञ में जाओ वहाँ अवशेषकला भोगकर गोकुलवासियों के साथ गोलोक में  
जाओ। मैं तुम्हें गोकुलवासियों के साथ सालोक्य मुक्ति दूँगा। तदनन्तर  
माता-पिता की आज्ञा से श्रीकृष्ण का राधा के पास गमन। राधा ने श्रीकृष्ण  
को देखकर गोपियों के साथ प्रणाम कर स्तुति की। राधा ने कहा आज आपके  
मुखकमल के दर्शन करने से मेरा जीवन सफल हो गया। हे नाथ ! स्त्री-पुरुष  
के वियोग कठोर है। परमात्मा के विच्छेद होने से शक्तियों साथ प्राण खले  
जाते हैं। तदनन्तर राधा ने श्रीकृष्ण की पूजन की और कल्पवृक्ष के पुष्प को  
आगे रखकर राधा ने कहा सय मङ्गलों के देनेवाले को बुराह प्रान पूजना तो

नेपफल है परन्तु लौकिक व्यवहार वेदों से भी बलवान् है अतः कुशल प्रश्न  
 [हूती हूँ। आपने रुक्मिणी, जाम्बवती आदि स्त्रियों के साथ बहुतसे कार्य किये  
 हैं आपको योगी, मुनि, एवं सिद्ध भी नहीं जान सकते तो स्त्रियां क्या जान  
 सकती है। इतनी विपत्ति श्रीदामा के शाप से मिली है। मैंने भी श्रीदामा को  
 शाप दिया। पुनः राधा अन्यान्य वार्ताओं को कहकर ऊँचे स्वर से रुदन  
 करने से मूर्च्छित हो गई। यह देखकर गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा हे कृष्ण !  
 रक्षा करो रक्षा करो। आपने यह क्या किया। राधा को शीघ्र जीवदान दो।  
 तदनन्तर गोपियों के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने राधा को सुधावृष्टि से जीवित  
 किया और कहा हे राधिके ! कार्यकारणरूप मैं हूँ। गोलोक, गोकुल व वृन्दावन में  
 दो भुजा धारण कर राधा का पति हूँ तथा वैकुण्ठ में चतुर्भुजा धारण कर लक्ष्मी  
 का पति हूँ मैं व्यक्ति भेद से नानारूपों को धारण करता हूँ। अर्जुन ने मुझे  
 तपस्या से सारथि बनाया। जैसे तुम गोलोक व गोकुल में राधारूप से, वैकुण्ठ  
 में महालक्ष्मी, मिथिला में सीता और तुम्हारी ही ज्ञाया द्रौपदी है उसी तरह  
 मैं भी नानारूपों को धारण करता हूँ। हे राधे ! मेरे अपराधों को क्षमा करो।  
 श्रीकृष्ण के वचन सुनकर राधा प्रसन्न हुई एवं सन्तुष्ट हो गई। गोपियों ने परमेश्वर  
 को प्रणाम किया।

१२५

राधाकृष्णसंवादवर्णनम्

११६६

श्रीनारायण बोले—श्रीकृष्ण के वचनों से प्रसन्न होकर गोपियां राधा को  
 प्रणाम कर अपने-अपने स्थान में चली गईं तत्पश्चात् राधा और श्रीकृष्ण के शृङ्गार  
 का वर्णन। राधा ने कहा पुण्यस्थान वृन्दावन को चलो वहाँ जल एवं स्थल में  
 ऋद्धि करूँगी फिर मलयचल आऊँगी। श्रीकृष्ण ने प्रातःकृत्य को समाप्त कर  
 गोपी एवं राधा के साथ वृन्दावन प्रस्थान किया। वहाँ सम्पूर्ण वन, उपवन, सुपर्वत  
 और पुण्डोचानादि में शृङ्गार कर जम्बूद्वीप में गमन। राधा को द्वारकापुरी

दिखलाकर पुनः गोकुल गमन । श्रीकृष्ण का यशोदा आदि से मिलन ने मङ्गलाचार कर ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा मुनि एवं गोपियों की । इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को मुक्तहस्त से मुक्ता, माणिक, हीरे, आसन, पात्र, आभूषण, वस्त्र एवं धान्यादि दिये । गोपीगणों को मिष्टान्न नगारे वज्रवाये एवं देवताओं को आनन्पूर्वक भोजन करवाया ।

१२६

कलिधर्मवर्णनम्

श्रीनारायण ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण गोपों को भाण्डीरवट के नीचे निवास किया जहाँपर पहिले उनको ब्राह्मणों से अन्न दिया गया था । उसी जगह भगवान् के दामभाग में राधिका, यशोदा सहित नन्दादि गोप उनके दक्षिण में वृषभानु तथा दाम कलावती । इसी प्रकार अन्य गोप-गोपिकाय भाई-बन्धुओं को भगवान् ने समयोचित यथार्थ वचन कहे । श्रीभगवान् ने नन्द से कहा कि परलोक को देनेवाले, परम पुरुषार्थ को देनेवाले एवं सत्य वचन यशोदा को कहे राधिका ने कहे वे परम सत्य हैं एवं भ्रमरूपी अन्धकार को नष्ट करने में हैं । अब तुम मिथ्या भायाभोह को छोड़कर परम पद का स्मरण व जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि को नष्ट करनेवाले तथा हर्ष को देनेवाले शोक-सन्ताप को नष्ट करनेवाले कर्ममूल को छुड़ानेवाले हैं । मुझे भगवान् सनातन जान ध्यान कर परमपद को प्राप्त करो तथा मेरे में श्रद्धा त्वाग करो । गोकुलवासियों के साथ शीघ्र गोलोक को जाओ यहाँ शीघ्र का आगमन होनेवाला है । जिस कलि में स्त्री-पुरुषों में नियम नहीं आति-पाति का भेद होगा, विप्र सन्ध्यादिकों से हीन हो जायेंगे । और तिलक के सिवा सम्पूर्ण चिह्न निश्चय ही मिट जायेंगे । सभी विपत्त



गै धर्म का नाश हो जायगा। स्त्रियां स्वच्छन्दगामिनी, पति को प्रतिदिन केड़कनेवाली होंगी। पति निरन्तर उनका भक्त हो उनसे तिरमृत होगा। प्रतिथि सेवा कहीं नहीं की जायगी, विष्णु-सेवा, पित्रेश्वरों की पूजा और देवपूजा ने मनुष्य विमुख हो जायेंगे। चारों वर्ष वाममार्गियों के मन्त्रों की उपासना करने लग जायेंगे। विप्र माया से मुँह छोड़ कर वेद को निन्दा करते हुए वाम मन्त्रों को जपेंगे। कलियुग में मेरी पूजा दश हजार वर्ष तक रहेगी, उससे आधे समय तक मुवनपावनी गङ्गाजी रहेंगी एवं इतने काल तक ही तुलसी, विष्णुभक्त और कृद्ध पुराण रहेंगे। सम्पूर्ण मानव एकवर्ण के हो जायेंगे। पृथ्वी अन्नहीन हो जायगी परन्तु पृथ्वी नष्ट नहीं होगी पुनः मत्स्य का प्रादुर्भाव हो जायगा। इतने में ही गोलोक से मनोहर रथ अयतीर्ण हुआ जिसपर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से वे लोग बैठकर उत्तम गोलोक में चले गये। इस प्रकार सम्पूर्ण गोलोकवासी राधिका के साथ नखर शरीरों को छोड़ गोलोक में चले गये।

१२७

श्रीकृष्णस्य गोलोकवर्णनम्

११७२

श्रीनारायण ने कहा भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार तत्काल गोबुल-धामियों की गालोच्य मोक्ष देवकर गोपियों के साथ भाण्डीर धन के यत्न में स्थित सम्पूर्ण गोबुल को व्याकुल देवकर एवं वृन्दावन को रक्षकों से हीन देव अमृत वृष्टि में पुनः वृन्दावन को गोप-गोपिकाओं से परिपूर्ण कर दिया। श्रीभगवान् ने गोपगणों से कहा यहाँ मुख्यपूर्वक रहो। इतने में ही भगवान् श्रीकृष्ण के वाम शंख, बिधाना, भवानी, शङ्ख और सूर्य-चन्द्रादि देवों का आगमन। भगवान् के प्रयाणकाल में ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवताओं की स्तुति। याद्यों का ऐरक (जारा) पुट में बिनाश एवं याद्व त्रिव्यों का बिना में प्रवेश। सुबिडिरादि के साथ अर्जुन का स्वर्ग गमन। प्रयाण काल में भगवान् क कदम्बगुल में निवास कदा व्याघ्र के अश्रु से युक्त देवदत्त ब्रह्मादि देवों द्वारा स्तुति एवं उनको भगवान्

का अभय दान । प्रेमविह्वला रोदन करती हुई पृथ्वी को आश्वासन एवं व्याघ्र को स्वपद में भोजना । बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अयोनिसम्भवा रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती आदि देवियां, साम्भ, वसुदेव, देवकी आदि का अपने-अपने अंशों में प्रवेश । रुक्मिणी मन्दिर को छोड़कर सम्पूर्ण द्वारका का समुद्र में विलय । तदनन्तर समुद्र द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति । गङ्गा, सरस्वती, पद्मावती, यमुना, गोदावरी आदि नदियों ने भगवान् को प्रणाम किया तथा रुदन करती हुई गङ्गा ने भगवान् से कहा कि हे नाथ ! आप तो गोलोक जा रहे हैं हमारी इस कलिकाल में क्या गति होगी ? तब भगवान् ने कहा कलि में तुम पांच हजार वर्षों तक भूतल पर रहो । वहां पापी मनुष्य तुमको स्नान से जो पाप देंगे वह मेरे मन्त्रों के उपासकों के स्पर्श से तत्क्षण ही भस्म हो जायेंगे । जहां भी हरि भगवान् का गुणानुवाद एवं पुराण कथा होती हो वहां उनके साथ जाकर सावधान होकर सुनो इनके श्रवणमात्र से सम्पूर्ण ब्रह्महत्यादि पाप भस्म हो जाते हैं । मेरे भक्तों के चरणों की रज से वसुन्धरा तत्काल पवित्र हो जाती है । कलि में मेरे भक्त दस हजार वर्ष तक पृथ्वी पर रहेंगे । मेरे भक्तों के जाने पर पृथ्वी एकवर्णा हो जायगी । तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से चतुर्भुज स्वरूप का प्रादुर्भाव हो रथ में आरूढ़ होकर क्षीरसागर को प्रस्थान होना । मूर्तिमती हो सिन्धुकन्या का भी साथ में प्रस्थान । जगत को पालन करनेवाले भगवान् विष्णु के श्वेत द्वीप जाने पर शुद्धसत्वस्वरूप भगवान् के दो रूप हो गये । वैकुण्ठनाथ के चलेजाने पर स्वयं राघवेश ने वंशी का शब्द किया जिससे पार्वती को छोड़ सम्पूर्ण देवगण एवं मुनिगण मूर्च्छित हो गये । तब सर्वस्वरूपा भगवती पार्वती ने सनातन भगवान् से कहा कि हे प्रभो ! एक मैं ही राधिकारूप हूँ अतः रासशून्य गोलोक को परिपूर्ण कीजिये । मुक्ता मानिक्य से भूषित रथ पर आरूढ़ हो शीघ्र चलिये, वहां मैं विरहातुर गोपियों के साथ आपके चारों ओर रहूंगी । इस प्रकार पार्वती के वचन सुनकर रसिकेश्वर उस

रक्षयान में सवार हो उत्तम गोन्दोक को गये। वहाँ पर ममीप आते। भगवान् को देखकर गोप और गोपिया ने प्रमत्त हो प्रणाम किया। हे नारद गोलोकारोहण के बाद अब क्या गुनना चाहते हो बोलो।

१२८

नारदाख्यानवर्णनम्

११७

नारद ने कहा मैंने सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्तपुराण सुन लिया अब क्या क आशा दें तो मैं तप करने जाऊँ। नारायण बोले पूर्वजन्म में उपवर्षण गन् ५० खियों के पति थे इस समय ब्रह्म पुत्र हो उनमें एक स्त्री ने शङ्कर की तप की और नारद को पतिरूप में मांगा वह सृञ्जय की कन्या है। उसके स विवाह करो शङ्कर की आज्ञा भूठी नहीं हो सकती। विधाता के लिये मिट नहीं सकते। कर्म बिना भोगे क्षय नहीं होते। सूतजी बोले नारायण वचन सुनकर नारद उन्हें प्रणाम कर दुःखित हृदय से सृञ्जय के घर गये। शौ ने पूछा हे सूत ! ब्रह्मपुत्र नारद के विवाह का अपूर्व रहस्य कहिये तब सूतजी मूढरूपी नारद ने तपस्विनी सृञ्जयकन्या को देखकर ब्रह्मसभा में जाकर वृत्तान्त पिता से कहा। प्रसन्न होकर ब्रह्मा देवताओं के साथ पुत्र को आगे सृञ्जय के घर गये। राजा सृञ्जय ने कन्या को सर्वस्व दक्षिणा के साथ नारद को समर्पित कर दिया। राजा सृञ्जय हे वत्से ! हे वत्से !! कहकर ऊँचे खा रोने लगे हे पुत्रि ! मेरे पर को छोड़कर कहा जाती हो मैं भी वन में जाऊँ कन्या रोती हुई माता-पिता को प्रणाम कर स्वयं रोती हुई विधाता के रा बैठ गई पुत्रवधू के साथ ब्रह्मा का स्वधाम गमन। इस अवसर पर ब्रह्मा ब्राह्मण भोजन। नारदजी सृञ्जय कन्या के साथ रहने लगे। सनत्कुमारजी स्त्रीनों भाइयों के साथ नारद के पास आगमन। सनत्कुमार ने नारद से हे भाई ! क्या कर रहे हो स्त्री-पुरुष का प्रेम सदा ही भगवान् की भक्ति व मोक्ष मा का अवरोधक एवं चिरकालपर्यन्त बन्धन का कारण है। नीच मनुष्य अमृत बुद्धि से

वेप पीता है। ईश्वर को छोड़ सम्पूर्ण देहधारियों में कामभोग व्याप्त है। इस मायामयी स्त्री को छोड़कर तप करने जाओ इतना कहकर "कृष्ण" नाम मन्त्र का उपदेश देना तदनन्तर सनत्कुमारजी का गमन। नारदजी मन्त्र पाकर मायामयी स्त्री को त्यागकर तप करने चले। उन्होंने कृतमाला नदी के किनारे शङ्कर को देख प्रणाम किया तब शङ्कर बोले—मैं तुम्हारे तेज से प्रसन्न हूँ भक्तों का दर्शन ही देहधारियों को लाभदायक है। इस मन्त्र को मैंने गणेश और कार्तिकेय को दिया, गोलोक में श्रीकृष्ण ने मुझे तथा ब्रह्मा एवं धर्म को दिया, धर्मराज ने नारायण को एवं ब्रह्मा ने सनत्कुमार को तथा सनत्कुमार ने तुम्हें दिया। इस का मन्त्रप्रहण करने से मनुष्य नारायण हो जाता है। इस मन्त्र का पाँच लाख जप करने से एक पुरश्चरण होता है। शङ्कर ने नारदजी को सामवेदोक्त ध्यान बताया। शङ्कर का स्वस्थान गमन एवं नारदजी भी शंकर को प्रणाम कर तप करने चले गये। नारदजी ने योग से शरीरजी को त्यागकर भगवान् के चरणों की प्राप्ति की।

१२६

बहिस्रुवर्णयोः उत्पत्तिवर्णनम्

११८२

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! अत्यन्त सुन्दर एवं अपूर्व आख्यान आपसे सुना। भगवान् की कथा परम दुर्लभ है ऐसा सुदिन कब होगा जहाँ वैष्णवों का सङ्ग हो। गर्भवास को छोड़न करनेवाला हरिभक्ति को देनेवाले गणेश, तुलसी व राधा का आख्यान सुना अब स्वर्ण एवं अग्नि की उत्पत्ति सुनना चाहता हूँ। तब सूतजी बोले—सृष्टि की सामग्री जल एवं अग्नि ही है; जैसे, प्रकृति नित्य एवं महान् है; जैसे, दिशा एवं महाकाश तथा सृष्टि गोल है; जैसे, शब्द तन्मात्र है वैसे ही अग्नि है परन्तु उसकी उत्पत्ति कहता हूँ :- एक समय श्वेतद्वीप में विष्णु की देखने ब्रह्मा, अनन्त एवं महेश गये। परस्पर में वार्तालाप होने के बाद सभा में बैठ गये जहाँ विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुई कमला की कटाई विष्णुगाथा



शौनकजी ने ब्रह्मवैवर्तपुराण की अनुक्रमणिका के विषय में पूछा तब लज्जी बोले—हे शौनक ! सावधान होकर सुनो इस अध्याय के सुनने से पुराण विषय का फल मिलता है । ब्रह्माण्ड में परब्रह्म का निरूपण, साकार, निराकार, उगुण, निर्गुण, जिनकी जैसी शक्ति एवं ध्यान, गोलोकादि का वर्णन, अन्य रासङ्गिक आख्यान, जातियों का निर्णय, वर्णसंकरों का वर्णन, राधामाधव की क्रीड़ा, महाविष्णु की उत्पत्ति, सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, ब्रह्मनारद का संवाद, नारद का विवेक, ब्रह्मा की आज्ञा से नारद का नरनारायण आश्रम में गमन, नारायण का दर्शन और नारद तथा नारायण का परस्पर वार्तालाप बताया है ।

प्रकृतिखण्ड में—प्रकृति का लक्षण, प्रकृतियों का वर्णन, उनका उपाख्यान पूजादि, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधिका और सावित्री का चरित्र, महालक्ष्मी का उपाख्यान, सरस्वती का आख्यान, सावित्री का आख्यान, सावित्री संवाद एवं सत्यवान् को जीवनदान, कुण्डों का वर्णन एवं लक्षण, देहधारियों के कर्मों का विपाक एवं भोग निर्णय, अन्य पुराणों में गोपनीय राधा का आख्यान, राजा सुयज्ञ का चरित्र, तुलसी की कथा, महेश एवं शङ्खचूड़ का संवाद और युद्ध, तुलसी एवं श्रीकृष्ण का संवाद तथा संभोग, शङ्खचूड़ की मृत्यु, श्रीदामा का शाप से मोक्षण, गङ्गा, मनसा, खाहा और स्वधा तथा अन्य भी प्रसङ्ग के अनुसार देवियों का आख्यान बताया है ।

गणेशखण्ड में—पार्वती शङ्कर की क्रीड़ा, स्कन्द की उत्पत्ति, शङ्कर पार्वती की क्रीड़ाभङ्ग, पार्वती का तोषण एवं उनका अभिमान भङ्ग, विष्णु का व्रत, देवी का चरित्र एवं भगवान् द्वारा उसे धरदान, अतिथिरूप में हरि का दर्शन, गणेश का आविर्भाव, पार्वती परमेश्वर का पुत्रमुख देखना, शिवजी के घर में उत्सव, देवों द्वारा गणेश के दर्शन, जिनके दर्शन, पूजन एवं प्रणाम से कोटि जन्मों के पाप नष्ट

होते हैं, कार्तिकेय का आख्यान एवं अभिषेक, गणेशपूजन, एवं अभिषेक, जमदग्नि एवं कार्तवीर्यार्जुन का युद्ध, सुरभि का हरण, जमदग्नि की मृत्यु, पतिव्रता रेणुका का चितारोहण, परशुराम की प्रतिज्ञा, परशुराम गणेश संवाद एवं युद्ध, गणेश का दन्तभंग, पार्वती का विलाप एवं परशुराम को शाप, परशुराम के स्मरण करने पर श्रीविष्णु का प्रादुर्भाव, नारायण द्वारा पार्वती को बोध, शिवलोक वर्णन, शङ्कर द्वारा परशुराम को महास्त्र दान, श्रीकृष्ण का मन्त्र, कवच एवं वरदान, परशुराम का इक्कीस चार राजाओं को नष्ट करना और गणेश को तुलसी दान का निषेध कहा है।

श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में—श्रीदामा एवं राधा का कलह एवं परस्पर शाप, ब्रह्मा की प्रार्थना से श्रीकृष्ण का जन्म, कंस के भय से गोकुल गमन, राधा की षालक्रीड़ा का वर्णन, दैत्यादिकों की मृत्यु, गंगाचार्य का अभिमान, पूतना एवं शकटासुर को मारना, श्रीकृष्ण का उत्पल में वन्धन एवं यमलार्जुन का मोक्ष, माता को अपने मुख में तीनों छोकों का दर्शन कराना, गोघत्सादिकों का हरण, ब्रह्मस्तुति, नन्द के साथ वृन्दावन गमन, गोपशालकों के साथ क्रीड़ा, बाह्य पत्नियों द्वारा भोजन करना एवं उनको वरदान, यज्ञों का वर्णन, गोपियों के यज्ञों का हरण, गोपियों को वरदान, पात्यायनी का व्रत, दुर्गा पूजन, पार्वती का वरदान, तालफलों का भक्षण, शकट का विध्वंस, राधा के माथ श्रीकृष्ण का विरह एवं मिलन, गोपियों की रासक्रीड़ा, मोल्ह प्रकार के गृहकार, राधामाधव का संवाद, गोपियों को ज्ञान, अक्रूर का आगमन, गोपियों का विलाप, श्रीकृष्ण का मथुरा में गमन, गोकुलवासियों को श्रीकृष्ण विरह में शोक, राधा का विरह, अक्रूर को यमुनाजल में श्रीकृष्ण मूर्ति का स्नान, मथुरा प्रवेश, राजक की मृत्यु, कुन्ती की मुक्ति, कुविन्द पर कृपा, माली की बोध, घनुषभंग, कुन्तियापीड हाथी की मारना, मभा में प्रवेश, कंस को मारना, कंसके घनुषों का विलाप, हस्तेन को राज्य दिलाना, नन्द का विलाप एवं छोड़े जानेपदेरा, पिता-पुत्र का संवाद, अध्याय ज्ञान का उपदेश, धन्या का आह्वान।

उद्धव का आगमन, राधा उद्धव का संवाद, श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु से विद्याप्रदण, गुरु के मृतपुत्र की प्राप्ति, जरासन्ध एवं कालयवन का मारना, द्वारका का निर्माण एवं प्रवेश, उग्रसेन का विलाप, रुक्मिणी हरण, राजाओं का दमन, जाम्बवती आदि स्त्रियों के साथ विवाह, मायावती की मोक्ष एवं शङ्कर की मृत्यु, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की मुक्ति, दन्तवक्र एवं गाल्व की मृत्यु, मणि का अपहरण, कल्पवृक्ष का स्वर्ग से लाना, कौरव-पाण्डव-युद्ध, उपा का हरण एवं बाणासुर की भुजाओं का काटना, बलिभूत स्तुति, अनिरुद्ध का पराक्रम, राधा यशोदा संवाद, गृगाल की मोक्ष, तीर्थयात्रा प्रसंग से गणेशपूजा का महत्त्व; राधा के साथ रहना एवं तीर्थों में भ्रमण; ब्रह्मशाप से यादवों का संहार; पाण्डवों की मोक्ष; नारद का विवाह और अग्नि एवं सुवर्ण की उत्पत्ति बताई है यह पुराण चारखण्डों में है ।

१३१

पुराणपठन श्रवणादि माहात्म्य

११६०

शौनक ने कहा—आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल होगया । ब्रह्मवैवर्त पुराण का श्रवण निर्विघ्न मोक्ष का कारण है । हे वत्स ! हे तात ! मुझे अभय दान दीजिये तब कुछ निवेदन करूँ । सूतजी बोले—हे महाभाग ! भय त्याग जो इच्छा हो सो प्रश्न करें जो-जो गोपनीय विषय हैं वे आपसे कहूँगा । शौनकजी ने कहा कि मैं पुराणों का लक्षण, संख्या, एवं फल सुनना चाहता हूँ । सूतजी ने कहा—हे शौनक ! पुराण, इतिहास, संहिता, और पञ्चरात्र विस्तार से कहता हूँ । सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित यही पुराण एवं उपपुराण का लक्षण है । महापुराणों में सृष्टि, विसर्ग, स्थिति एवं पालन, कर्मों की घासना, धार्ता, प्रलय वर्णन, मोक्ष निरूपण और हरि एवं देवों का कीर्तन ये दस लक्षण बताये हैं । पुराणों की संख्या में ब्रह्मपुराण के दस हजार श्लोक ( कहीं ठेरह का पाठ भी मिलता है ) । पद्मपुराण में १५ हजार, विष्णुपुराण में २३ हजार,



शिवपुराण में २४ हजार, भीमद्भागवत में १८ हजार, नागपुराण में २१ हजार, भार्गवशंखपुराण में ६ हजार, अग्निपुराण में १४ हजार चार सौ, भविष्य में १४ हजार पांच सौ, ब्रह्मवैवर्त में १८ हजार, यह गय पुराणों का मारुत-लिङ्गपुराण में ११ हजार, वाराहपुराण में २४ हजार, स्कन्दपुराण में ८१ हजार एक सौ, वामनपुराण में दस हजार, कूर्मपुराण में मगरह हजार, मातस्य में १४ हजार, गरुड़पुराण में १६ हजार, और ब्रह्माण्ड में १२ हजार इम तरह पुराणों की श्लोक-संख्या चार लाख होती है। इसी तरह पुराण एवं उपपुराण भी अठारह-अठारह हैं। महाभारत इतिहास है एवं वाल्मिकीय रामायण काव्य है। कृष्णमाहात्म्य से युक्त वाराह, नारदीय, कपिल, गौतमीय और सनत्कुमारीय ये पंचरात्र हैं। ब्रह्म, शिव, ब्रह्माद, गौतम और कुमार ये पांच-संहितायें हैं। यह शास्त्र बहुत विपुल हैं, मुझे किस तरह प्राप्त हुए हैं सो सुनिये। इस पुराण को गोलोक रासमण्डल में श्रीविष्णु ने अपने भक्त ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने धर्म को, धर्म ने नारायण को, नारायण ने नारद को, नारद ने मुझे और मैंने तुम्हें बतलाया। यह ब्रह्मवैवर्तपुराण सुदुर्लभ है ब्रह्म का साक्षिरूप एवं ब्रह्मा का साक्षिरूप एवं ब्रह्मा का विवरण होने से ब्रह्मवैवर्त यथार्थ नाम है। यह पुराण पुण्य एवं मङ्गलप्रद, सुगोप्य, हरिभक्ति देनेवाला, सुख एवं ब्रह्म के ज्ञान को देनेवाला है। जैसे नदियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, पुरियों में काशी, बपों में भारत, शैलों में सुनेह, वृक्षों में कल्पवृक्ष, पुष्पों में पारिजात, पत्रों में तुलसी, व्रतों में एकादशी, देवों में श्रीकृष्ण, ज्ञानियों में महादेव, योगीन्द्रों में गणेश, सिद्धों में कपिल, तेजस्वियों में सूर्य, वैष्णवों में सनत्कुमार, राजाओं में श्रीराम, धनुषधारियों में लक्ष्मण, देवियों में वर्गा, श्रीकृष्ण की प्रियपत्नियों में राधा, ईश्वरियों में लक्ष्मी और पण्डितों में सत्य; फल देनेवाली हैं उसी तरह यह इस लोक और परलोक में सुख देने-संवेदह दूर करनेवाला और हरिदास्य-भक्ति को देनेवाला है। क्योंकि ईश्वर-तीर्थ, तप और पृथ्वी की परिक्रमा का भी फल इसके समान नहीं है।

चारों वेदों के पठन से भी श्रेष्ठ फल होता है। हे शौनक ! जितेन्द्रिय होकर सुनने से पुण्यवान्, विद्वान् एवं वैष्णव पुत्र की प्राप्ति होती है। दुर्भागिनी सुने तो स्वामी के सौभाग्य को प्राप्त करती है। जिसके पुत्र नहीं जाते हों या एक ही सन्तान हो या पुत्री की संतान हो, महावन्ध्या एवं पापिनी इस पुराण के सुनने से चिरंजीवी पुत्र को प्राप्त कर सकती है। इसके पठन और श्रवण अपुत्र को पुत्र प्राप्ति, स्त्री रहित को स्त्री, अविद्ययात की कीर्ति एवं मूर्ख को पण्डित बनाते हैं। रोगी रोग से, बंधा हुआ (कैदी) बंधन से, डरनेवाला डर से और आपत्ति में गिरा आपत्तियों से छूट जाता है। पाप, कुष्ठ, दरिद्रता, रोग एवं शोक नष्ट हो जाते हैं। इसके सुनने से पुण्यवान् होता है एवं विना पुण्यवाला इसे नहीं जान सकता। जितेन्द्रिय होकर आधा श्लोक अथवा एक चरण के सुनने से लक्ष गोदान के समान फल होता है। जो कोई शुद्ध समय में जितेन्द्रिय हो इस पुराण के चारों खण्डों को संकल्प कर सुनता है तथा भक्तिपूर्वक दक्षिणा देता है उसके बाल्य, कौमार, युवा एवं युढ़ापे में किये हुए कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं। वह पुरुष रत्नों से युक्त विमान में श्रीकृष्ण का रूप धारण कर नित्य गोलोक में जाकर श्रीकृष्ण की सेवा को प्राप्त करता है। अर्संख्य ब्रह्मा के गिरने से भी उसका पतन नहीं होता। वह भगवान् के पास पार्यद् रूप धारण कर चिरकाल सेवा करता है। शुद्धस्नान कर जितेन्द्रिय हो ब्रह्मखण्ड सुनकर घाचक को पायस, पिष्टक ( पूआ ) फल और ताम्बूल भोजन देकर सुवर्ण, चन्दन, शुद्ध माला, सूक्ष्म और मनोहर वस्त्र वासुदेव को अर्पण कर देना चाहिये। अमृत के समान प्रकृतिखण्ड को सुनकर दधि एवं अन्न का भोजन कर तथा सुवर्ण एवं सघस्ता गौ को प्रदान करे। जितेन्द्रिय हो विघ्ननाश करने के लिये गणपति-खण्ड का श्रवण कर स्वर्ण यहोपवीत, श्वेताम्ब, श्वेत छत्र, श्वेतमाला, निल के लहङ्गा, स्वस्तिक ( जलेदी ) पके हुए फल घाचक को देवे। भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णजन्मखण्ड श्रवण कर घाचक को रत्नों की अंगूठी, सुन्दर वस्त्र, माला, सुवर्ण के कुण्डल, चरदौला (पालकी), पकी हुई गीर और मर्बल दक्षिणा देकर स्तुति करे। एक सौ

ब्राह्मणों को भोजन कराये। शास्त्र के जाननेवाले, वेदान्त, पण्डित एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण को वाचक बनाये अन्यथा पत्र नहीं मिलता है। श्रीकृष्ण की भक्ति के विमुक्तों को इसका उद्देश्य न करे। श्रीकृष्ण की भक्तियाले पुराण को जो गुनता है उसे भक्ति एवं पुण्य की प्राप्ति होती है तथा पाप नष्ट हो जाते हैं। हे शौनकजी ! गुरुमुख से जो मुना यह निवेदन किया अब मुझे जाने की आज्ञा दें जिससे मैं नारायण के आश्रम में जाऊँ। मैं आप विप्र-गुन्द को देव्य नमस्कार करने आया था। आपकी सेवा में ब्रह्मवैवर्त पुराण मुना दिया पुनः सूतजी ने मय को स्तुति कर प्रणाम किया—

नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यः कृष्णाय परमात्मने ।  
 शिष्याय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः ॥  
 कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिवानिशम् ।  
 भज सत्यं परं ब्रह्म राघेरां त्रिगुणात्परम् ॥  
 नमो देव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरवे नमः ।  
 सर्वविघ्नविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥

हे शौनकजी ! अब आपके पुण्यचरणकमलों को नयनकर जहाँ देवगणेश  
 विराजमान हैं उस सिद्धाश्रम को जाता हूँ ।

॥ शुभम्भूयात् ॥

वैवर्ताख्यपुराणस्य सूचीयं लोकहेतवे । यथामतिकृताऽस्माभिः शोधयन्तु दयालवः ।

विद्वज्जनपादपद्ममधुपाः—

लक्ष्मणगढ़वास्तव्यब्रह्मदत्तत्रिवेदिनबलगढ़वास्तव्यकजोड़ीलालमिश्र-  
 रामनाथदाधीचाः ।

॥ श्रीरस्तु ॥

\* श्रीगणेशायनमः \*

# य चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

## प्रथमोऽध्यायः

श्रीकृष्णपादपद्मप्राप्तिसोपानम् ।

नमस्कृत्य नरञ्चैव नमोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव तनो जयमुदीरयेत् ॥  
नारद उवाच ।

ब्रह्मन् ब्रह्मखण्डं मनोहरम् । ब्रह्मणो घटनाम्भोजात् परमाद्भुतमेव च ॥१॥  
सुपूर्णं समागत्य तवास्तिकम् । श्रुतं प्रकृतिखण्डञ्च सुधाखण्डात् परं परम्

तो गणपतेः खण्डमखण्डजन्मखण्डनम् ।

मे तृप्तं मनो लोलं विशिष्टं श्रोतुमिच्छति ॥३॥

खण्डञ्च जन्मादिरण्डनं नृणाम् । प्रदीपं सर्वतरुघातां कर्मघ्नं हरिभक्तिदम्  
जनकं भयरागनिवृन्तनम् । कारणं मुक्तिर्याजानां भवाग्धितारणं परम् ॥५॥

गानां खण्डने च रसायनम् । श्रीकृष्णचरणाभोजप्राप्तिसोपानकारणम्  
नाञ्च जगतां पावनं परम् । पद विस्तारो भक्तं शिष्यं मां शरणागतम्

ः कृष्ण आजगाम महीतलम् । सर्वां शैरेक पवेशः परिपूर्णतमः स्वयम्  
हेतोः कुत्र धारिष्यभूवह । वसुदेवोऽस्य जनकः कोया काया च देवकी

जन्म मायया सुपिङ्गव्यनम् । विद्वकार समाख्यातं केन रूपेण दाहटि  
कंसमयेन स्तिकागृहात् । कथं कंसात् कीदृत्तुल्यात् भवेशस्य मयं मुने

गोबुले-विद्वकारह । कुतो गोपाङ्गनासाडं विजहार जगत्पतिः ॥  
गोपाङ्गनाः के धा गोपाला धालरूपिणः ।

का वा यशोदा को मन्दः किं वा पुण्यञ्जकाम् ॥२३॥

कथं राधा पुण्यवती देवी गोलोकवासिनी । मजे वा मत्तज्ज्वा सा यभू प्रेयसी  
 कथं गोप्यो दुरागम्यं सम्प्रापुरीभवं परम् । कथं ताञ्च पण्डित्यज्जगाम मधुरां  
 भारावतारणं कृत्या किं विधाय जगाम सः । कथमस्य महामाता पुण्यप्रयत्नकी  
 सुदुर्लभा हरिकथा तरणि भवतारणे । निरेष्य भोगनिगदङ्गैर्गणैर्दनकर्त्तनीम् ॥१॥  
 पापेन्धनानां दहने ज्वलद्ग्निसिधामिष । पुंसां धृतयतां कोटिजन्मकिन्वियन्तामि  
 मुक्तिं कर्णसुधारम्यां शोकसागरनाशिनीम् । मह्यं भक्त्या शिष्याय ज्ञानं देहिदृष्या  
 तपोजपमहादानपृथिवीतीर्थदर्शनान् । धृतिपाटादनशानाद्दुःखतदेवाद्यंतादपि ॥२०॥

दीक्षया सर्वयत्नेषु यत् फलं लभते नरः ।

योऽशीं ज्ञानदानस्य फलां नार्हति तन् फलम् ॥२१॥

पित्राहं प्रेषितो ज्ञानादानाय तव सन्निधिम् ।

सुधासमुद्रं संप्राप्य न को वा पातुमिच्छति ॥२२॥

नारायण उवाच ।

मया ज्ञातोऽसि धन्यस्त्वं पुण्यराशिः सुमूर्त्तिमान् ।

करोषि भ्रमणं लोकान् पावितुं कुलपावन ॥२३॥

जनानां हृदयं सद्यः सुव्यक्तं वचनेन वै ।

शिष्ये कलत्रे कन्यायां दौहित्रे घान्धवेऽपि च ॥२४॥

पुत्रे पीत्रे च वचसि प्रतापे यशसि श्रियाम् । बुद्धीवारिणि विद्यायां ज्ञायते हृदयं नृणाम्

जीवन्मुक्तोऽसि पूतस्त्वं शुद्धभक्तोगदाभृतः । पुनासिपादरजसासर्वाधारां घमुन्धर

पुनासि लोकान् सर्वांश्च स्वयं विप्रहर्शनात् ।

सुमङ्गला हरिकथा तेन तां धोतुमिच्छसि ॥२५॥

यत्र कृष्णकथाः सन्ति तत्रैव सर्वदेवताः । ऋषयो मुनयश्चैव तीर्थानि निखिलानि

कथाः धृत्या तथाप्ते ते यान्ति सन्तो निरापदम् ।

भवन्ति तानि तीर्थानि येषु कृष्णकथाः शुभाः ॥२६॥

प्रथमोऽध्यायः ] \* विष्णुवैष्णवयोगुणप्रशंसावर्णनम् \*

सद्यः कृष्णकथावक्ता स्वस्य पुंसां शतं शतम् । समुद्रधृत्यश्रुतवतांपुनातिनिखिलंकुल  
प्रधातु प्रथमात्रेण पुनाति कुलमात्मनः । श्रोता श्रवणमात्रेण स्वकुलं स्वस्वबान्धवा  
शतजन्मतपःपूतो जन्मेदं भारते लभेत् । करोति सफलं जन्म श्रुत्या हरिकथामृतम् ॥३१॥  
बर्चनं घन्दनं मन्त्रजपं सेवनमेव च । स्मरणं कीर्तनं शब्दगुणश्रवणमीप्सितम् ॥३२॥  
निवेदनं तस्य दास्यं नवधा भक्तिलक्षणम् । करोति चन्म सफलं श्रुत्वैतानि च भारते  
न च विप्रो भवेत्तस्य परमायुर्न नश्यति । न याति तत्पुरःकालो वैनतेयमिचोरगः ॥३३॥  
न जहाति समीपञ्च क्षणं तस्य हरिः स्वयम् । उपतिष्ठन्ति तूर्णं तमणिमादिकसिद्धयः  
सुदर्शनं समत्वेव तस्य पार्श्वे दिवानिशम् । कृष्णाङ्गया च रक्षार्थंकोषार्किकर्तुमीश्वरः

न यान्ति तन् समीपञ्च स्वप्नेऽपि यमकिङ्कराः ।

ज्वलद्गनि यथा दृष्ट्वा शलभा न व्रजन्ति तम् ॥३८॥

व्याधयो विपद्ः शोका विप्राश्च न प्रयान्ति तम् ।

न याति तत्समीपञ्च मृत्युमृत्युभयान् मुने ॥३९॥

एषो मुनयः सिद्धाः सन्तुष्टाः सर्वदेवताः । स च सर्वत्र निःशङ्कःसुखीकृष्णप्रसादतः  
वरुष्णकथायाञ्चरतिरात्यन्तिकीसदा । जनकस्यस्वभावोऽहिजन्मेतिष्टति निश्चितम्  
प्रेन्द्र का प्रशंसेयं जन्म ते प्रह्वमानसे । यस्य यत्र कुले जन्म तन्मतिस्तादृशी भवेत्  
पिता विधाता जगतां कृष्णपादाब्जसेवया ।

नित्यं करोति यः शश्वन्नवधा भक्तिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

कः कृष्णकथायाञ्च यस्याधुपुलकोद्गमः । मनो निमग्नं तत्रैवसभक्तः कथितो बुधैः ॥  
द्वारादिक सर्वं जानाति यो हरैरिव । ध्यात्मना मनसावाचासभक्तः कथितो बुधैः ॥  
अस्ति सर्वजीवेषु सर्वं कृष्णमयं जगत् । यो जानातिमहाज्ञानी सभक्तो वैष्णवोत्तमः  
तने तीर्थसम्पर्केनिःसङ्गा ये मुदान्विताः । ध्यायन्तेचरणाम्भोजंश्रीहरैस्तेचवैष्णवाः  
द्वये नाम गायन्ति गुणमन्त्रंजपन्ति च । कुर्वन्तिश्रवणंगाथाघदन्ति तेऽतिवैष्णवाः  
लब्ध्वा मिथानि घस्तूनि प्रदातुं हरये मुदा । तूर्णं यस्य मनो हृष्टं सभक्तो ज्ञानिनां घरः  
यन्मनो हरिपादाब्जे स्वप्ने ज्ञानं दिवानिशम् ।

पूर्वकर्मोपभोगञ्च बहिर्मुञ्क्तैः स वैष्णवः ॥ ५० ॥

श्वत्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशस्यथ । तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

न् सप्त परान् सप्त सप्तमातामहादिकान् । सोदरामुद्धरेद्भक्तः स्वप्रसूञ्च प्रसूयस्वम् ॥

कलत्रं कन्यकां बन्धुं शिष्यं दौहित्रमात्मतः ।

किङ्करीं किङ्करीं पुत्रमुद्धरेद्वैष्णवः सदा ॥ ५३ ॥

सदा याञ्छन्ति तीर्थानि वैष्णवस्पर्शदर्शने ।

पापिदत्तानि पापानि तेषां नश्यन्ति सङ्गतः ॥ ५४ ॥

दोहनशयं यापद्वयत्र तिष्ठति वैष्णवः । तत्र सर्वाणि तीर्थानिसन्ति तावन्महीतले ॥

पन्तत्रमृतः पापी मुक्तो याति हरेः पदम् । यथैव ज्ञानगङ्गायामन्ते कृष्णस्मृतौ यथा

लसी फानने गोष्ठे श्रीकृष्णमन्दिरे पदे । धुन्दारण्ये हरिद्वारे तीर्थेष्वन्येषु पा यथा ॥

पापानि पापिनां यान्ति तीर्थैस्त्रानाद्यगाहनात् ।

तेषां पापानि नश्यन्ति वैष्णवस्पर्शवायुना ॥ ५८ ॥

नहि स्थानुं शक्यन्त्यन्ति पापान्येव कृतानि च ।

ज्वलद्गमो यथा शिष्यं शुष्काणि हि कृणानि च ॥ ५९ ॥

सतं यत्तमं निषच्छलनं येयेपश्यन्ति मानवाः । सप्तजन्मकृताघानि तेषां नश्यन्ति निश्चितम्

३ निन्दन्ति हर्षकिरां तद्गर्भं पुण्यरूपिणम् । शनजन्मार्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम्

३ पश्यन्ते महापारे कुर्मापाके भयानके । भक्षिताः कीटस्तद्धेन यावच्चन्द्र दिवाकरोः ॥

सन्व दशानमात्रेण पुण्यं नश्यति निश्चितम् ।

गङ्गां स्नात्वा रविं इहा सदा विद्वान् विशुद्ध्यति ॥ ६३ ॥

वैष्णवस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पापकः । तस्य पापं निहन्त्येव स्थान्तःसो मधुसूतः

इत्येवं कथितो यत्र विष्णुवैष्णवयोगुणः । अपुना भोद्धरेऽङ्गम निबोध कथयामि ते

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनाम्नसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

विष्णुवैष्णवयोगुणप्रस्ता नाम प्रथमोऽध्यायः ।

## द्वितीयोऽध्यायः

श्रीदामा-राधाकलहवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । यं यं विधाप भूर्मां स जगामस्यालयं विभुः  
 मारापतरणोपायं दुष्टानाञ्च बध्नीयमम् । सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य्यं विधानतः  
 अधुना गोपवेशञ्च गोकुलागमनं हरे । राधा गोपालिका येन नियोय कथयामि ते ॥  
 शङ्खचूडवधे पूर्वं संक्षेपात् कथितं श्रुतम् । अधुना तत् सुविस्तार्य्यं नियोधकथयामिते  
 श्रीदाम्नः कलहरचैव बभूव राधया सह । श्रीदामा शङ्खचूडञ्च शापात्तस्या बभूव ह ॥

राधो शशाप श्रीदामा याहि योनिञ्च मानवीम् ।

प्रजे प्रजाहूना भूत्वा विचरस्व च भूतले ॥ ६ ॥

भीता श्रीदामशापात् सा श्रीकृष्णं समुवाच ह ।

गौर्यारूपं भविष्यामि श्रीदामा मां शशाप ह ।

किमुपायं करिष्यामि वद मां भयभङ्गन ॥ ७ ॥

त्यया पिना कथमहं धरिष्यामि स्वजीवनम् । क्षणेन मे युगशतकालं नाथ त्ययापिना  
 चभुर्निमेषधिरहाङ्गयेद्दधं मनो मम । शरत्पार्ष्ण्यचन्द्राम सुधाधूर्णाननं तव ॥ ८ ॥  
 नाथ चक्षुधकोराम्यां पिवाम्यहमहर्निशम् । त्वमात्मामे मनः प्राणादेहमाश्रयदास्यहम्

इष्टिरातिश्च चक्षुस्त्वं जीवन्श्चरमं धनम् ॥ ११ ॥

स्वप्ने ज्ञाने त्ययि मनःस्मरामि त्यत्पदाशुभम् ।

तव दास्यं विना नाथ न जीवामिक्षणं विभो । कृष्णस्तद्वचनं धुत्वा योषयामास सुन्दरीम्  
 वृष्टसि प्रेषसीं वृत्वा चकार निर्भयाञ्चताम् । महीतलं गमिष्यामि धारादे च धरानने ॥  
 मया साहं भूगमने जन्मतेऽपि निरूपितम् । प्रजं गत्वा प्रजे देवि पिहरिष्यामि कानने ॥  
 मम प्राणापिकात्पञ्च भयं किन्ते मयि स्थिते । तामित्युनवाहरिस्तत्र धिरराम इगत्यतिः



अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम मन्दगोकुण्डम् ॥ १६ ॥

विद्या तस्य भयं कस्माद्दयान्तकारकस्य न ।

मायाभयच्छन्दैरेव जगाम राधिकागितम् । विजहार तथा सार्द्धं गोपयेनंविधाय स  
सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय न । प्रहणां प्रार्थितः कृष्णःसमागत्यमहीतम् ॥

भारतवतारणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

श्रीदाम्नः कलहश्चैवकथं वा राधया सह । संक्षेपान्कथितं पूर्वं संव्यस्य कथयाधुना  
नारायण उवाच ।

एकदा राधया सार्द्धं गोलोके श्रीहरिः स्वयम् । विजहार महारण्येविजने रासमण्डले ।

राधिका सुखसम्मोगात् युवधे न स्वकं परम् ॥ २१ ॥

कृत्वाविहारंश्रीहृण्णस्तामवृत्तां विहाय च । गोपिकां विरजामन्यांशृङ्गारायै जगाम ह  
वृन्दारण्ये च विरजा सुभगाराधिकासमा । तस्यावयस्याःसुन्दर्यो गोपीनांशतकोट्यः

कृष्णप्राणाधिका गोपी धन्या मान्या च योपिताम् ।

रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श हरिमन्तिके ॥ २४ ॥

ददर्श श्रीहरिस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननाम् । मनोहरां सस्मिताञ्च पश्यन्तीं धनवधुया ॥

सदा षोडशवर्षीयां प्रोद्धिन्ननवयोधनाम् । रत्नालङ्कारशोभाढ्यां भूपितां सूक्ष्मवाससा  
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गीं कामदाणप्रपीडिताम् । दृष्ट्वा तां श्रीहरिस्तूर्णं विजहार तथा सह ॥

पुष्पतल्पे महारण्ये निर्जने रत्नमण्डले । मूर्च्छामवाप विरजा कृष्णशृङ्गारकौतुकात् ॥  
कृत्वा वक्षसि प्राणेशंकोटिकन्दर्पसन्निभम् । तथा सकं श्रीहरिञ्च रत्नमण्डपसंस्थितम्

दृष्ट्वा च राधिकासख्यः चक्रुस्ताञ्च निवेदनम् ॥ २६ ॥

तासाञ्च वचनं ध्रुत्वा सुप्याप च सुफोप च ॥ ३० ॥

भृशं ह्यरोद सा देवी रक्तपङ्कजलोचना । सा उवाच महादेवी मा तं दर्शयितुं क्षमाः ॥

यदि सत्यं प्रूत यूयमयासार्द्धं प्रगच्छत । करिष्यामिफलंगोप्याः कृष्णस्यवयधोचितम्  
को रक्षिताय तस्याश्च मयिशास्ति प्रकुर्वति । शीघ्रमानयतान्याश्च तथासार्द्धंहरिप्रियाः

अन्तर्बकं सस्मितञ्च विपकुम्भं सुधामुखम् ॥ ३४ ॥

मदाश्रयं समागान्तुं यूयं दासं न दास्यथ । तमेव मण्डपं रम्यं यात संरक्षतेश्वरम् ॥

राधिकाघवनं श्रुत्वा काञ्चित् गोप्यो मयान्विताः ।

ताः सर्वाः सम्पुटाङ्गल्यो भक्तिजन्नास्यकन्धराः ॥ ३६ ॥

तामूचुः पुरतः स्थित्वा सर्पा एव प्रियां सतीम् ।

घयं तं दर्शयिष्यामो विरजासहितं प्रभुम् ॥ ३७ ॥

तासाञ्च घवनं श्रुत्वा रथमारुह्य सुन्दरी । जगामस्वाङ्गं गोपीभिस्त्रिपष्टिशतकोटिभिः ॥

खेन्द्रसाररचितं कोटिसूर्यसमप्रभम् । मणीन्द्रसाररचितं कलशानां त्रिकोटिभिः ॥

राजितं चित्रचाजिभिः वैजयन्तीविराजितम् ॥ ३६ ॥

लक्षवक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् । मणिसारविकारैश्च कोटिस्तम्भैः सुशोभितम् ॥

नानाचित्रचित्रैश्च सहितैः सुमनोहरैः । स्निग्धराकारमणिभिर्मध्यदेशे विभूषितैः ॥

रत्नकृत्रिमसंघैश्च रथचक्रोद्ध्वंसस्थितैः ॥ ४२ ॥

चतुर्लक्षपरिमितैः चित्रघण्टासमन्वितैः । चित्रनूपुष्योभाट्यैर्विचित्रैश्च विराजितैः ॥

मणिमन्दिरलक्षैश्च रत्नसारविनिर्मितैः । मणिसारकपाटैश्च शोभितैश्च प्रराजिभिः ॥

मणीन्द्रसारकलसैः शेखरोज्ज्वलितैर्युतम् । भोगद्रव्यसमायुक्तं वेशद्रव्यसमन्वितैः ॥

शोभितं रत्नराज्यामी रत्नपात्रपुटाग्वितम् । हिरण्यमयीनां घेदीनां समूहेन समन्वितम् ॥

शुद्धमाममणीनाञ्च सोपानकोटिमियुतम् । स्पन्दनकैः कौस्तुभैश्च रुचकैः प्रवरैस्तथा ॥

एषकृत्रिमकोटीनां शतकैश्च सुशोभितम् । चित्रकाननवापीभिर्विशिष्टाधारराजितम् ॥

खेन्द्रसाररचितं कलसोज्ज्वलशेखरम् । शतयोजनमूद्ध्वञ्च दशयोजनविम्बुतम् ॥ ४६ ॥

पारिजातप्रसूतानां मालाकोटिपिराजितम् ।

शुन्दानां करपीराणां मूधिकानान्तर्धेय च ॥ ५० ॥

सुवायवम्बकानाञ्च नागेशानां मनोहरैः । महिकानां मालतीनां माधवीनां सुगन्धिनाम्

कदम्बानाञ्च मालानां कदम्बैश्च विराजितम् । सहस्रदलयप्रानां मालापत्रैर्विभूषितम् ॥

चित्रपुष्पोपानसरकाननैश्च विभूषितम् । सर्वेषां स्पन्दनानाञ्च धेष्टुं पायुपहं परम् ॥

अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम नन्दगोकुलम् ॥ १६ ॥

किंवा तस्य भयं कस्माद्भयान्तकारकस्य च ।

मायाभयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् । विजहार तथा साद्धं गोपवेपंविधाय च  
सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय च । ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णःसमागत्यमर्हत्कल्

भारावतारणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

श्रीदाम्नः कलहश्चैवकथं वा राधया सह । संक्षेपात्कथितं पूर्वं संब्यस्य कथयाभूत्

नारायण उवाच ।

एकदा राधया साद्धं गोलोके श्रीहरिः स्वयम् । विजहार महारण्येविजने रासमण्डले

राधिका सुखसम्मोगात् युवुधे न स्वकं परम् ॥ २१ ॥

कृत्वापिहारंश्रीकृष्णस्तामनृनां विहाय च । गोपिकां विरजामन्यांश्रुङ्गात्पथं जगाम  
मृन्दारण्ये च विरजा सुभगाराधिकासमा । तस्यावयवस्याःसुन्दर्यो गोपीनांशतकोट

कृष्णप्राणाधिका गोपी धन्या मान्या च योपिताम् ।

रदासिंहासनस्था सा ददर्श हरिमन्तिके ॥ २४ ॥

ददर्श श्रीहरिस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननाम् । मनोहरां सस्मिताञ्च पश्यन्तीं यकचतुषां

मदा गोइरायर्गोपां प्रोद्धिन्ननययोचनाम् । रदालङ्कारशोभाट्यां भूयितां सुसमपत्तना

पुण्ड्रकाङ्कितसर्वाङ्गी कामयागप्रपीडिताम् । दृष्ट्वा तां श्रीहरिस्तूर्णं विजहार तथा सह

पुण्यतल्पे महारण्ये निजने रतनमण्डले । मूर्च्छामवाप विरजाकृष्णशङ्कारकौतुकात्

कृत्वा यस्सति प्राप्तेर्नाकोटिकन्दर्पसन्निभम् । तथा सक्तं श्रीहरिञ्च रदामण्डपमंरिणम्

दृष्ट्वा च राधिकासम्यः यकुस्ताञ्च निर्यदनम् ॥ २६ ॥

तासाञ्च यचनं धृत्वा सुध्याप च सुकोप च ॥ ३० ॥

भूतां रगोद् वा देयीं रक्तपद्मजलोचना । ता उवाच महादेयी मा तं दर्शयितुं क्षमत् ।

कश्चि स्मर्यं . . . . . । कल्पियामिस्वर्गं गोप्याः कृष्णस्यचपयो विभ  
प्रवृषन्ति । श्रीप्रमानपताम्याश्च तथासाद्धंहरिप्रिय

अन्तर्वक्त्रं सस्मितञ्च विपकुम्भं सुधामुखम् ॥ ३४ ॥

मदाश्रयं समागन्तुं यूयं दासं न दास्यथ । तमेव मण्डपं रम्यं यात संरक्षतेश्वरम् ॥

राधिकाघचनं ध्रुत्वा काञ्चित् गोप्यो भयान्विताः ।

ताः सर्वाः सम्पुटाञ्जल्यो भक्तिप्रदास्यकल्धराः ॥ ३६ ॥

तामूचुः पुस्तः स्थित्वा सर्वा एव प्रियां सतीम् ।

धयं तं दर्शयिष्यामो विरजासहितं प्रभुम् ॥ ३७ ॥

रासाञ्च घचनं ध्रुत्वा रथमादह्य सुन्दरी । जगामसादं गोपीभिस्त्रिषष्टिशतकोटिभिः ॥

रत्नेन्द्रसाररचितं कोटिसूर्यसमप्रभम् । मणीन्द्रसाररचितं कलशानां त्रिकोटिभिः ॥

राजितं चित्रराजिभिः वैजयन्तीविराजितम् ॥ ३९ ॥

लक्ष्मणसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् । मणिसारविकारैश्च कोटिस्तम्भीसुरशोभितम् ॥

नानाचित्रविचित्रैश्च सहितैः सुमनोहरैः । सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यदेशे विभूषितैः ॥

रत्नकृत्रिमसंघैश्च रथचक्रोदूर्ध्वसंस्थितैः ॥ ४२ ॥

चतुर्लक्षपरिमितैः चित्रघण्टासमन्वितैः । चित्रनूपुरशोभाढ्यैर्विचित्रैश्च विराजितैः ॥

मणिमन्दिरलक्षैश्च रत्नसारविनिर्मितैः । मणिसारकपाटैश्च शोभितैश्चित्रराजिभिः ॥

मणीन्द्रसारकलसैः शैलरोड्ज्जलितैर्वृतम् । भोगद्रव्यसमायुक्तं घेशद्रव्यसमन्वितम् ॥

मिन्नं रत्नशय्यामी रत्नपात्रपुटान्वितम् । हिरण्यमयीनां घेदीनां समूहेन समन्वितम् ॥

दुमाममणीनाञ्च सोपानकोटिभिर्वृतम् । स्पन्दनैः कौस्तुभैश्च रत्नैः प्रचरैस्तथा ॥

पट्टत्रिमकोटीनां शतकैश्च सुरशोभितम् । चित्रकाननवापीभिर्विशिष्टाधारराजितम् ॥

नेन्द्रसारचितं कलसोड्ज्जलशोकारम् । शतयोजनमूदूर्ध्वञ्च दशयोजनविन्तुतम् ॥ ४६ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालाकोटिविराजितम् ।

कुन्दानां करवीरानां सूधिकानान्तर्धेय च ॥ ५० ॥

पारिवर्णकानाञ्च नागैरानांमनोहरैः । महिकानां मालतीनां माधवीनां सुगन्धितान् ।

दम्बानाञ्च मालानां चन्द्रयैश्च विराजितम् । सहस्ररत्नप्रदानं मालापट्टैर्विभूषितम् ॥

वेशपुष्पोदानसप्तकानैश्च विभूषितम् । सर्वेषां स्पन्दनानाञ्च धेष्टं पायुषहं परम् ॥

सत्सूक्ष्मवस्त्रसाराणां धरैराच्छादितं धरम् । रत्नदर्पणलक्षणां शतकैश्च समन्वितम् ।  
श्वेतचामरकोटिमि वंज्रमुष्टिमिरन्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रव्यवर्चितैः ॥५॥

पारिजातप्रसूनानां फोटितल्पविराजितम् ।

कोटिघण्टासमायुक्तं पताकाकोटिमिर्पुतम् ॥ ५६ ॥

रत्नशय्याकोटिमिश्च विभ्रद्यस्त्रपरिच्छदैः । चन्दनाह्वैश्चम्पकानां कुंकुमैश्च विवर्चितैः ।  
पुष्पोपधानसंयुक्तशृङ्गारार्हाभिरन्वितम् । अद्भुतैरधुतैर्द्रव्यैः सुन्दरैश्च विभूषितम् ॥५॥  
एवम्भूताद्ग्यात्पूर्णमवच्छा हरिप्रिया । जगाम सहसा देवी तं रत्नमण्डपं मुने ॥ ५६ ॥  
द्वारे नियुक्तं ददर्श द्वारपालं मनोहरम् । लक्षगोपपरिवृतं स्मेराननसरोरुहम् ॥ ६० ॥

गोपं श्रीदामनामानं श्रीहृण्णस्य प्रियङ्करम् ।

तमुवाच स्या देवी रक्तपङ्कजलोचना ॥ ६१ ॥

दूरं गच्छ गच्छ दूरं रतिलम्पटफिङ्कर । कोटिशीं सुरूपां फान्तां द्रश्यामि त्वत्प्रमोदकम् ।  
राधिकाधचनं धृत्या निःशङ्कः पुरतः स्थितः । तामेव न ददौ गन्तुं धेप्रपाणिर्महाबलम् ।  
तूर्णञ्च राधिकान्यञ्च धीदामानं सुकिङ्करम् । यद्येन प्रेरयामासुः कोपेण स्फुरितापाङ्गम् ।

धृत्या फोलादलं शम्भुं गोलोकानां हरिः स्वयम् ।

ज्ञारया च कोपिनां राधामन्तर्ज्ञानं चकार ह ॥ ६५ ॥

विरजा राधिकाशब्दादन्तर्ज्ञानं हरेरपि ।

दृष्ट्वा राधामवासां सा जहौ प्राणांश्च योगतः ॥ ६६ ॥

मण्डलत्र सगिहृषं मच्छरीरं कभूयह । ध्यातञ्च वर्तुलाकारं तथा गोलोकमेव च ॥ ६७ ॥  
कोटिवोजनविस्तीर्णं प्रसंश्रुतिनिग्रमेव च । द्वैष्ये दशगुणं धारुमाना रत्नाकरं परम् ।  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीहृण्णजन्मखण्डे विरजाखण्डे

प्रभाषोनाम द्विगोषोऽध्यायः ।

# तृतीयोऽध्यायः

सप्तसमुद्रोत्पत्तिः ।

नारायण उवाच ।

गृहं गत्वा न ददर्श हरिं मुने ॥ चिरजाञ्च सरिट्टूपां वृष्टा मेहं जगाम सा ॥१॥  
चिरजां वृष्टा सरिट्टूपां प्रियां सतीम् । उच्चैरुरोद चिरजातीरे नीरमनोहरे ॥  
समागच्छ प्रेयसीनां परे परे । त्वया चिनाहं सुभगे कथं जीवामि सुन्दरि ॥  
देवी त्वं भव मूर्त्तिमती सति । ममाशिया रूपयती सुन्दरी योपितांघरा ।  
पूर्वरूपाच्च सौभाग्यादिदानीमधिका भव ॥ ४ ॥  
रन्ते सरिट्टूपमभूत् सति । जलादुत्थाय चागच्छ विधाय नूतनां तनुम् ॥  
रेप्रं साक्षाद्राधैव सुन्दरी । पीतघस्त्रपरिधाना स्मेराननसरोरुहा ॥ ६ ॥  
नाथञ्च पश्यन्ती पद्मवधुषा । नितम्यश्रोणिभारार्त्ता पीनोन्नतपयोधरा ॥  
निनी मानिनीनाञ्च गजेन्द्रमन्दमानिनी ।  
न्दरी सुन्दरीणाञ्च धन्या मान्या च योपिताम् ॥ ८ ॥  
र्गामा पद्मविम्बाधरा घरा । पद्मदाङ्गिमधीजामा दन्तपङ्क्तिमनोहरा ॥९॥  
द्रास्या फुल्लेन्दीवरलोचना । कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुभूषिता ॥  
ाढ्या सुचारकवरीयुता । रत्नकुण्डलगण्डस्था भूषिता रत्नमालया ॥११॥  
मौक्तिकनासाप्रा मुक्ताहारविराजिता ॥ १२ ॥  
चास्त्राङ्गकरोऽगवला । किट्टिणीजालशार्ङ्गादया रत्नमञ्जोरमण्डिता ॥१३॥  
ष्टा प्रेमोद्रेकां जगत्पतिः । चकारालिङ्गनं तूर्णं चुचुम्य च मुहुर्मुहुः ॥१४॥  
रं पिपरीतादिकं विभुः । रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः ॥१५॥  
युक्ता धृत्या पीर्यममोघकम् । सद्यो यभूष तत्रैव धन्या गर्मपती सती  
प दिव्यं धर्मशतञ्च सा । ततः सुपाय तत्रैव पुत्रान् सप्त मनोहरान् ॥

माता सा सप्तपुत्राणां श्रीकृष्णस्य प्रिया रत्नी ।

तन्मौ तत्र सुगासीना सादे पुत्रैश्च रामभिः ॥ १८

एकदा हरिणा सादे वृन्दारण्ये सुनिर्जने । विजहार पुनः सार्ध्या शृङ्गारासु  
प्लवग्निप्रन्तरे तत्र मानुः क्रोडे जगामह । कनिष्ठपुत्रसाम्याश्च भ्रातृभिः पीडित  
भीतं स्पतनयं दृष्ट्वा तत्याजतां ह्यवानिधिः । क्रोडे चकार बालं सा कृष्णो राघव  
प्रयोध्य बालं सा सार्ध्या न ददर्शान्तिके प्रियम् । पिल्लया भृशं तत्र शृङ्गारासु

शशाप म्यसुतं कोपालयणोदो भविष्यसि ।

कदापि ते जलं केचिन् न ग्नादिष्यन्ति जीविनः ॥ २३ ॥

शशाप सर्षान् बालोश्च यान्तु मूढा महीतन्म् ।

गच्छथ्यञ्च मही मूढा जम्बुद्वीपं मनोहरम् ॥ २४ ॥

स्थितिनैकप्रयुष्माकं भविष्यति पृथक् पृथक् । द्वीपे द्वीपे स्थिति रूच्यातिष्ठन्तु सुवि  
द्वीपस्थाभिर्नदीभिश्च सह कीडन्तु निर्जने । कनिष्ठो मातृशापाच्च लवणोदो च  
कनिष्ठः कथयामास मातृशापश्च बालकान् । बाजमुर्दुःविताः सर्वे मातृस्थानञ्च य  
श्रुत्वा विचरणं सर्वे प्रजग्मुर्धरणात्तलम् । दण्ड्य चरणं मातुर्भक्तितप्तमकन्धराः  
सप्तद्वीपे समुद्राश्च सप्त तस्थुर्विभागशः । कनिष्ठात् वृद्धपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं ।  
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः । पतेपाश्च जलं पृथ्व्यां शस्यार्थञ्च भविष्य

व्याताः समुद्राः सप्तैव सप्तद्वीपां घमुन्धराम् ।

रुदुर्यालकाः सर्वे मातृम्रातृशुचान्धिताः ॥ ३१ ॥

रुदो च भृशं सार्ध्या पुत्रविच्छेदकातरा । मूर्च्छामवाप शोकेन पुत्राणां मर्त्तरेव  
तां शोकसागरे मग्नां विज्ञाय राधिकापतिः । आजगाम पुनस्तस्याः स्मेराननसं  
दृष्ट्वा हरिं सा तत्याज शोकं रोदनमेव च । आनन्दसागरे मग्ना दृष्ट्वा कान्तं यभूव  
चकार श्रीहरिं क्रोडे विजहार स्मरातुरा । ताञ्च पुत्रपरित्यक्तां हरिस्तुष्टो बभूव ह

घरं तस्मै दर्शो प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः ।

कान्ते ! नित्यं तव स्वानमागमिष्यामि निश्चितम् ॥ ३६ ॥

यथा राधा तत्समा त्वं भविष्यसि प्रियामम । पुत्राप्रशसि नित्यं त्वं मद्रस्य प्रमाप  
इत्युक्तपन्नं श्रीहृष्णं पसन्नं विरजान्तिके । दृष्ट्वा राधाययस्याश्च कथयामासुरीश्वरी

श्रुत्वा कतोद् सा देवी सुप्याप क्रोधमन्दिरै ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे हृष्णोजगामराधिकान्तिकम् । स तन्ध्यांराधिकाद्वारेधीशोःसाद नारद  
रासेश्वरी हरिं दृष्ट्वा कष्टोवाचाप्रियं तदा ॥ ४० ॥

मत्तो यद्दुतराः कान्ता गोलोके सन्ति ते हरे ! ।  
यादि तासां सन्निधानं मया ते किं प्रयोजनम् ॥ ४१ ॥

रेरजा प्रेयसी कान्ता सरिट्टया यभूयद् । देहं त्यजया मम मयात्तथापि यासि तां प्रति  
उत्तारे मन्दिरं हृत्वा तिष्ठ तिष्ठ च यादि ताम् । नदीवभूय सा त्वञ्च नदो भविनुमर्दसि  
इत्यनया सादंञ्च सद्गमो गुणवान्भयेत् । स्वजातो परमार्थीति शयने भोजने सुखात्

यचूडामणेः क्रीडा नया सादं मयेरितम् । महाजनः स्मेरमुखः श्रुत्वासद्यो भविष्यति  
ये त्वां यदन्ति सर्वेशं ते किं जानन्ति त्यग्मनः ।

मगवान् सर्वभूतात्मा नदीं संम(भो)कुमिच्छति ॥ ४६ ॥

इत्युनवाराधिकादेवीविरराम शयान्विता । नोत्तस्थो भूमिशयनाद्गोपीलक्षसमन्विता ॥  
काञ्चिन्मालाहस्ताश्च काञ्चिन् सूक्ष्मांशुकाधराः ।

काञ्चिन् ताम्बूलहस्ता च काञ्चिन्मालावराकराः ॥ ४८ ॥  
यासितोदकराः काञ्चित् काञ्चिन् पद्मवराकराः ।

काञ्चिन् सिन्दूरहस्ताश्च माल्यहस्ताश्च काञ्चन ॥ ४९ ॥  
रत्नालङ्कारहस्ताश्च काञ्चित् कज्जलवाहिकाः ।

वेणुपीणाकराः काञ्चिन् काञ्चित् कङ्कतिकाकराः ॥ ५० ॥

काञ्चिदावीरहस्ताश्च यन्त्रहस्ताश्च काञ्चन । सुगन्धितैलहस्ताश्च काञ्चन प्रमदोत्तमाः ।  
करतालकराः काञ्चित् गेण्डहस्ताश्च काञ्चन ॥ ५१ ॥

काञ्चिन् मृदङ्गमुज्जमुरलीतालकारिकाः । सङ्गीतनिपुणाः काञ्चित् काञ्चिन्नर्तनतत्पराः  
मृदायस्तुकराः काञ्चिन्मधुहस्ताश्चकाञ्चन । सुधापात्रकराःकाञ्चिद्भ्रिपीठकराःपराः



माता सा सप्तपुत्राणां श्रोतृष्णस्य प्रिया सती ।

तस्यो तत्र सुखासीना सादं पुत्रैश्च सतमिः ॥ १८

एकदा हरिणा सादं वृन्दारण्ये सुनिर्जने । विजहार पुनः साध्वी शृङ्गारासक्तमानस  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मातुः क्रोडं जगामह । कनिष्ठपुत्रस्तस्याश्च मातुमिः पीडितो मिय  
भीतं स्वतनयं दृष्ट्वा कत्याजतां कृपानिधिः । क्रोडे चकार बालं सा कृष्णो राधागृहं यय  
प्रयोध्य बालं सा साध्वी न ददर्शान्तिके प्रियम् । विललाप भृशं तत्र शृङ्गारात्समानस

शशाप स्वसुतं कोपालवणोदो भविष्यसि ।

कदापि ते जलं केचित् न खादिष्यन्ति जीवितः ॥ २३ ॥

शशाप सर्वान् बालान्श्च यान्तु मूढा मर्हातलम् ।

गच्छध्वञ्च महीं मूढा जम्बुद्वीपं मनोहरम् ॥ २४ ॥

स्थितिर्नैकप्रयुष्माकःभविष्यतिपृथक् पृथक् । द्वीपेद्वीपेस्थितिर्दृष्ट्वातिष्ठन्तुसुखिनःसुताः  
द्वीपस्थामिर्नदीमिश्च सह क्रीडन्तु निर्जने । कनिष्ठो मातृशापाच्च लघणोदो यभूषह ।  
कनिष्ठः कल्पयामासमानृगापञ्च बालकान् । भाजग्मुर्दुःखिताःसर्वे मातृस्थानञ्चबालकाः  
ध्रुत्वा विवरणं सर्वे प्रजग्मुर्धरर्णतलम् । इणम्य चरणं मातुर्भक्तितप्रारमकन्धराः ॥२८॥  
सतद्वीपे समुद्राश्च सन तन्धुर्विभागशः । कनिष्ठान् वृक्षपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं मुने ॥  
त्यपेधुगुगसर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः । पतेवाञ्च जलं पृच्छ्यां शस्यार्थञ्च भविष्यति ॥

प्यानाः समुद्राः सन्धेय सतद्वीपां यमुन्धराम् ।

शृदुर्बालकाः सर्वे मातृघ्नान्शुचाम्बिताः ॥ ३१ ॥

ररांश्च न भूरां साध्वी पुत्रविच्छेदकानरा । मूर्च्छामयाप शोकेन पुत्राणां भसरेप च ।  
तां शोकागारे मत्तां विज्ञाप राधिकारतिः । आत्तगाम पुनस्तस्याः स्मेराननसरोरद-  
दृष्ट्वा हरि रता तस्याञ्च शोकं रंद्नमेवय । आनन्दसागरे मत्ता दृष्ट्वा कान्तं यभूष ह ।  
चकार धौदरि क्रोडे विजहार इमगानुरा । ताञ्च पुत्रपरिग्यतां हरिस्तुष्टो यभूष ह ॥

धरं तस्मै ददौ शंभवा प्रसन्नपद्मेशणः ।

कान्ते ! निर्यं तत्र स्यात्तमागमिष्यामि निश्चितम् ॥ ३६ ॥

या राधा हस्तमा त्वं भविष्यसि प्रियामम । पुत्राग्रक्षसि निर्यत्यंमहस्त  
त्युक्तपन्नं श्रीकृष्णं वसन्नं विरजान्तिके । दृष्ट्वा राधावयस्याश्च कथयाम

श्रुत्या करोद् सा देयी सुप्याप क्रोधमन्दिरे ॥ ३८ ॥

तस्मिन्नन्तरे कृष्णोऽगामराधिकान्तिकम् । स तस्योराधिकाद्वारैर्धर्मादाया

रासेऽपरी हरिं दृष्ट्वा कष्टोपायाप्रियं तदा ॥ ४० ॥

मत्तो यद्गुरुराः कान्ता गोलोके सन्ति ते हरे ! ।

याहि तासां सन्निधानं मया तं किं प्रयाजनम् ॥ ४१ ॥

विरजा प्रेयसी कान्ता सरिद्रूपा यभूवह । देहं त्यक्त्वा मम भयात्तथापि या

तर्तारे मन्दिरं वृत्वा तिष्ठ तिष्ठ च याहि ताम् । नदीयभूष सा त्वञ्च नदीः ।

नदम्यनया सादंश्च सद्गमो गुणवान्भवेन् । स्वजातो परमाप्रीति शयने भं

देवचूडामणेः क्रीडा नया सादं मयेरितम् । महाजनः स्मेरमुतः ध्रुत्वासय

ये त्वां वदन्ति सर्वेशं ते किं जानन्ति त्वन्मनः ।

भगवान् सर्वभूतात्मा नदी संम(मो)कुमिच्छति ॥ ४६ ॥

इत्युक्ताराधिकादेर्वाविरराम रुगान्विता । नीतस्थी भूमिशयनाद्गोपीलक्ष

काश्चिन्मालहस्ताश्च काश्चिन् सूक्ष्मांशुकाधराः ।

काश्चिन् ताम्बूलहस्ता च काश्चिन्मालाचराकराः ॥ ४८ ॥

यासितौदकराः काश्चित् काश्चित् पद्मवराकराः ।

काश्चिन् सिन्दूरहस्ताश्च माल्यहस्ताश्च काश्चन ॥ ४९ ॥

रजालङ्कारहस्ताश्च काश्चित् कज्जलवाहिकाः ।

वेणुवीणाकराः काश्चित् काश्चित् कङ्कतिकाकराः ॥ ५० ॥

ताश्चिदावीरहस्ताश्च यन्त्रहस्ताश्च काश्चन । सुरान्धितैलहस्ताश्च काश्चन ॥

करतालकराः काश्चित् रोण्डहस्ताश्च काश्चन ॥ ५१ ॥

काश्चिन् मालाचराकराः काश्चित् कज्जलवाहिकाः । काश्चित् वेणुवीणाकराः काश्चित् कङ्कतिकाकराः ॥ ५२ ॥

देशवरगुकराः काञ्चित् काञ्चिद्यत्नेविकाः ।

पुत्राञ्चलिकराः काञ्चित् काञ्चित् स्तुतिराग वराः ॥ ५५ ॥

एवंकतिविधाः सन्ति राधिकापुरतोमुने । यदिर्देशमिच्छताः काञ्चित्काञ्चिः काञ्चिः  
काञ्चित् द्वारनिपुणाश्चपयभ्यायेप्रधागिकाः । कृष्णमग्नन्तरं गन्तुंननुः द्वारसंस्ति  
पुरः स्थितस्तं प्राणेशं राधा पुनर्याय सा । मानुरुपमग्नकाञ्चमयोग्यमतिवर्तः

राधिकोपान ।

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मापुगतो हरे । कथं दुर्नामि मां लोल रतिर्नासल्लि  
शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम् । अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रदियां प्र-  
हे नदीकान्त देशेशदेवानाञ्च गुरोर्गुणे । मया क्षान्तेऽस्मिन्नग्ने गच्छ गच्छ ममाध-  
शयत्ते मानुषस्येय ध्यवहारश्च लम्पट । लमतां मानुषीं योनिं गोलोकाद्गुप्तं भात

हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि ।

निवाप्यंताञ्च धूर्तोऽयमस्यात्र किं प्रयोजनम् ॥ ६२ ॥

राधिकावचनं श्रुत्वा तमूचुर्गोपिका हरिम् । हितं तप्यञ्च विनयंसारं यत् समयोक्ति  
काञ्चिदूचुरिति हरेगच्छ स्थानान्तरं क्षणम् । राधाकोपापनयने गमयिष्यामहे वप  
काञ्चिदूचुरितिप्रीत्या क्षणंगच्छ गृहान्तरम् । स्वयैव पद्धिता राधा त्वां विनाकञ्चरति  
काञ्चिदूचुरिति प्रेम्णा राधिकाया हरिं मुने । क्षणं वृन्दायनं गच्छ मानापनयनावि

काञ्चिदित्यूचुरीशाञ्च परिहासपरं वधः ।

मानापनयनं भक्त्या कामिन्याः कुरु कामुकः ॥ ६७ ॥

काञ्चिन्नोचुरितीशं तं याहि जायान्तरंतव । लोलुपस्वफलं नाथकरिष्यामोयधोवित्त  
काञ्चिन्नोचुरिति हरिं सस्मितं पुरतःस्थितम् । गत्वा समीपमुत्थाय मानापनयनं कुरु  
काञ्चिन्नोचुरिति प्राणनार्थं गोप्यो दुरक्षरम् ।

फः क्षमः साम्प्रतं द्रष्टुं राधिकामुखपङ्कजम् ॥ ७० ॥

काञ्चिन्नोचुरिति विभुं प्रज स्थानान्तरं हरे । कोपापनयने काले पुनरागमनं तव ॥ ७१ ॥

तं प्रयत्नाः प्रमदोत्तमाः । धवतंवांधावयिष्यामो नचेदुयाहिगृहान्तरं

काञ्चिन्निवारयामाससुग्माध्वं प्रमदोत्तमाः । स्मितधक्त्रञ्चसर्वेशंस्वच्छमकोधमीश्वरम् ॥  
गोपीभिर्वाय्यमाणे च जगत्कारणकारणे । सद्यश्चुकोप श्रीदामा हरी गृहान्तरे गते ॥

कोपादुवाच श्रीदामा राधिकां परमेश्वरीम् ।

रक्तपद्मेक्षणां रष्टां रक्तपङ्कजलोचनः ॥ ५५ ॥

श्रीदामोवाच ।

कथं वदसि मातस्त्वं कटुवाक्यं मदीश्वरम् । विचारणांविनादेविकरोपिभर्त्सनंवृथा ॥  
ब्रह्मानन्तेशधर्मेशं जगत्कारणकारणम् । घाणीपद्मालयामायाप्रकृतीशञ्च निर्गुणम् ॥  
आत्मारामं पूर्णकामं करोषि त्वं विडम्बनम् । देवीनां प्रवरात्वञ्च निबोधयस्य सेवया

यस्य पादार्चनेनैव सर्वेषामीश्वरी परा । तं न जानासि कल्याणि किमहं वक्तुमीश्वरः ॥  
भ्रूभङ्गलीलया कृष्णः स्रष्टुं शक्तश्च त्वद्विधाः ।

कोटिशः कोटिदैव्यस्त्वं न जानासि च निर्गुणम् ॥ ८० ॥

वैकुण्ठे श्रीहरेरस्य चरणाम्बुजमार्जनम् । करोति केशैः शश्वत् श्रीः सेवनं भक्तिपूर्वकम् ॥  
सरस्यती च स्तयनैःकर्णपीयूषसुन्दरैः । सन्ततंस्तौति यं भक्त्या न जानासि तमीश्वरम् ॥  
भीताचप्रकृतिर्मायासर्वेषांजीवरूपिणी । सन्ततंस्तौति यं भक्त्या तं न जानासिमानिनि ॥  
स्तुषन्ति सततं वेदा महिम्नः पौंड्रशीं कलाम् ।

कदापि तं न जानन्ति त्वं न जानासि भामिनि ॥ ८४ ॥

चक्रैश्चतुर्भिर्यद्ब्रह्मावेदानां जनको विभुः । स्तौति नित्यं सेवते च चरणाम्मोजमीश्वरि ॥  
शङ्करः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तौति यं योगिनां गुहः । साश्रुपूर्णःसपुलकःसेवते चरणाम्बुजम् ॥  
शेषःसहस्रपदनैः परमात्मानमीश्वरम् । सततं स्तौति भक्त्या च सेवते चरणाम्बुजम् ॥  
वर्मः पाताच सर्वेषांसाक्षी च जगतांपतिः । भक्त्या च चरणाम्मोजं सेवते सततमुदा ॥  
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुः स्वयं विभुः ।

अस्यांशश्च तथा चायं ध्यायतेऽणुक्षणं परम् ॥ ८६ ॥

रासुरमुनीन्द्राश्च मनघो मानपायुधाः । सेवन्ति नहि पश्यन्ति स्वप्नेऽपि चरणाम्बुजम् ॥  
क्षिप्रं रोधं परित्यज्य भज पादाम्बुजं हरेः ॥ ९० ॥

धूम्रदन्त्रीलामात्रेण सृष्टिः संहर्तुरेव च ॥ ६१ ॥

निमेयमात्रादस्यैव ब्रह्मणः पतनं हरेः । यस्यैव दिवसेऽप्यष्टाविंशतीन्द्राः पतन्त्यपि ।  
पथमष्टोत्तरशतमायुर्यस्य जगद्धिः । त्वं वा कान्याश्च वा राघे मदीश्वरघनेऽपि ।  
श्रीदाम्नो घचनं ध्रुत्वा फेवलं कटुमुन्यणम् । सपश्युकोप सा प्राग्नुत्थाप तमुवाच  
रासेश्वरी यद्दिर्गत्वा तमुपाच ह निन्दुरम् । स्फुरद्गोष्ठां मुक्तकेरीं रक्ताम्भोरुहलोचना  
राधिकोपाच ।

रे रे जाल्म महामूढ शृणु लम्पटकिङ्कर । त्वञ्च जानासि सर्वाद्यं न जानामित्पदोदय  
त्वदीश्वरोहिधीशृष्णोनह्यस्माकं ब्रजाघम । जानामिजनकंस्तौपि सदानिन्दसिमात्र  
यथाऽसुराश्च त्रिदशाभित्वं निन्दन्ति सन्ततम् । तथानिन्दसि मां मूढ तस्मात्त्वमसुरोम  
गोपवजासुरीं योनिं गोलोकाशयहिर्मय । मयायशप्तोमूढस्त्वं कस्त्वां रक्षितुमीश्वर  
रासेश्वरी तमित्युक्त्वा सुध्वाप विरराम च । घयस्याः सेवयामासुध्वामरे रत्नमुष्टिमि  
ध्रुत्वा च घचनं तस्याः कोपेन स्फुरिताधरः ।

शशाप ताञ्च श्रीदामा ब्रज योनिञ्च मानुषीम् ॥ १०१ ॥

मनुष्यश्वकोपस्तेतस्मात् त्वं मानुषी भय । भविष्यसि न सन्देहोमयाशप्ता त्वमन्विके  
छायया कलयया चापि परस्वस्ता कलङ्किनी । मूढरायाणपत्नीं त्वां घश्यन्ति जगतीतले  
रायाणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने घने । भविष्यसि महायोगी राघाशापेन गर्भजः ।  
शोकुले प्राप्य तं कृष्णं विहृत्य घस कानने । भविता ते घर्षशतं विन्देदो हरिणा स  
पुनः प्राप्य तमीशञ्च गोलोकमागमिष्यसि ।

तामित्युक्त्वा च नत्वा च स जगाम हरेः पुरः ॥ १०६ ॥

गत्या प्रणम्य श्रीकृष्णं शापाख्यानमुवाच ह । आनुपूर्वन्तुतत्सर्वं करोद च भृशं व्रजः  
उवाच तं रुदन्तञ्च गच्छ त्वं धरणीतलम् । न जेता ते त्रिभुवने ह्यसुरेन्द्रो भविष्यसि  
काले शङ्करशूलेन देहं त्यक्त्वा ममान्तिकम् । आगमिष्यसि पञ्चाशद्वयुगेऽतीतेमदाशिया  
श्रीकृष्णस्य घचः श्रुत्वा तम्पाच श्चान्वितः । त्वद्भक्तिरहितंमाञ्च कदाचिन्न करिष्यसि  
। पञ्चाज्जगाम सा देवी करोद च पुनःपुनः

तुर्थाऽध्यायः ] १ ]

• नारीणां रक्षकनिरूपणम् •

यासि घत्सेत्युच्चार्य चिललाप भृशं सती । स एव शङ्खचूडश्च बभूव तुलस  
गते श्रीदाम्नि सा देवी जगामेश्वरसन्निधिम् ।

सर्वं निवेदयामास हरिः प्रत्युत्तरं ददां ॥ ११३ ॥

तेकातुराञ्च तां कृष्णो बोधयामास प्रेषसीम् । शङ्खचूडश्च कालेनसम्प्रापपुनर  
ाधा जगाम धरणीं घाटाहे हरिणा सह । घृक(प)भानुपृहे जन्म ललाभ गोकुले  
इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णाख्यानमुत्तमम् ।

सर्वेषां चाञ्जितं सारं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
सप्तसमुद्रजन्मादिराधाश्रीदासोः शापोद्भवो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

## चतुर्थोऽध्यायः

नारीणां रक्षकनिरूपणम् ।

नारद उवाच ।

केन वा प्रार्थितः कृष्णो मदीञ्च केन हेतुना । आजगाम जगन्नाथो चंद्रधेवविशं  
नारायण उवाच ।

पुत्रा घराहकरूपे सा भाराक्रान्ता घसुन्धरा । भृशं बभूव शोकार्ता प्रह्लाणं शरण  
सुरेधासुरसन्ततीर्भृशमुद्दिग्रमानसैः । सादं तैस्तां दुर्गमाञ्च जगाम घेषसः स  
ददां तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मनेत्रसा । अयोन्द्रैश्च मुनोन्द्रैश्च सिद्धेन्द्रैः सेवितं  
अप्सरोगणनृपञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा । गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं ध्रुतवन्तं मनो  
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । भर्तृयानन्दाधुपूर्णं तं पुलकाङ्कितचिग्रह  
भवया सा त्रिदशैः सादं प्रणम्य चतुष्टाननम् । सर्वं निवेदयत्के दैत्यमारदिकं

नामुपायं जगदाना कर्त्तुं स्त्रीषु च रोदिति ॥ ८ ॥

कथमागमनं मर्त्तुं यद् मर्त्तुं भविष्यति । सुखिणा भव वन्द्यानि भयं किल्ले मयिष्यते  
 व्याध्याय्य वृथिर्वीं मत्वा देवान् पप्रच्छ तदादाम् । कथमागमनं देवानुभक्तं ममसन्निधि  
 म्प्रणो यन्नं श्रुत्वा देवा ऊचुः प्रतारत्विम् ।

भाराकान्ता च यमुधा त्रैत्यप्रस्ता ययं प्रमो ॥ ११ ॥

त्वमेव जगतां म्रष्टा गीर्षं नो निवृत्तिं कुत ।

गतिस्त्यमम्या भोग्यन् निवृत्तिं कर्त्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

पीडिता येन भारेण वृथिर्वीयं पितामह । ययं तेनैव दुग्तासांस्तद्भारहरणं कुत ॥ १३ ॥  
 देवानां यचनं श्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः । दूरीकृत्य भयं ममै ममं निशमाम्तिके ॥

केयां भारमशक्ता त्वं सोढुं पप्रविलोचने ॥

यान्नेत्यादि नं मने मर्त्तुं नै भविता

सदा द्विपन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् । हरिहरिकव्याभक्तितेषां भारेण पीडिताः ॥  
शङ्खचूडस्य भारेण पीडिताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेणपरिपीडिताः

इत्येवं कथितं सर्वमनाथाया निवेदनम् ।

त्वया यदि सनाथाहं प्रतीकारं कुर्व प्रभो ॥ ३० ॥

इत्येवमुक्त्वा घसुधा एतौ च मुहुर्मुहुः ।

प्रह्ला तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः ।

भारं स्थापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः ॥ ३१ ॥

उपायतोऽपि कार्प्याणि सिध्यन्त्येव घसुन्दरे । कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः

यन्त्रं मङ्गलकुम्भञ्च शिषलिङ्गञ्च कुङ्कुमम् । मधु काष्ठं चन्दनञ्च कस्तूरीं तीर्थमृत्तिकाम्

तङ्गं गण्डकखड्गञ्च स्फटिकं पद्मरागकम् । इन्द्रनीलं सूर्यमणिं कद्राशं कुशमूलकम् ॥

तालग्रामशिलां शङ्खंनुलसीं प्रतिमाजलम् । शङ्खं प्रदीपमालाञ्चशिलामर्च्याञ्चघण्टिकाम्

माल्यञ्चैव नैवेद्यं हरिहरमणिन्तथा । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं स्वर्णं श्वेतचामरम् ॥ ३६ ॥

मुक्त्वाञ्च शुक्तिं माणिक्यमेव च । पुराणसंहितां धर्म्मि कर्पूरं परशुं तथा ॥

काञ्चनञ्चैव प्रयाग्नममेव च । कुशाद्विजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम् ॥ ३८ ॥

एष्यि ये स्थापयिष्यन्ति मूढाश्चैतानि सुन्दरि ।

तिष्ठन्ति भालक्षत्रे ये घर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ३९ ॥

प्रह्ला पृथ्वीं समाञ्जास्य देवताभिस्तथा सह ।

जगाम जगतां धाता धीलासं शङ्करालयम् ॥ ४० ॥

रायं ददर्श शङ्करं विधिः । पसन्तमक्षयघटमूले च सरितस्तटे ॥ ४१ ॥

दक्षकन्यास्त्रिभूजणम् । त्रिदालपट्टिशधरं पञ्चपत्रं त्रिलोचनम् ॥

योगीन्द्रगणसेवितम् । परितोऽप्सरसां नृत्यं परयन्तं सस्मिन्मुदम् ॥

सङ्गीतं धृतयन्तं कुन्दलाम् ।

प्रीत्या पश्यन्तं वक्रचक्षुषा ॥ ४४ ॥



तामुवाच जगद्धाता कथं स्तौषि च रोदिति ॥ ८ ॥

कथमागमनं भद्रे घद भद्रं भविष्यति । सुखिरा भव कल्याणि भयं क्विन्ते मयिस्थिते ।  
धाश्वास्य पृथिवीं ब्रह्मा देवान् पप्रच्छ सादरम् । कथमागमनं देवायुष्माकं ममसक्तिं

ब्रह्मणो घवनं ध्रुत्वा देवा ऊचुः प्रजापतिम् ।

भाराक्रान्ता च घसुधा दैत्यप्रस्ता घयं प्रभो ॥ ११ ॥

त्वमेव जगतां म्रष्टा शीघ्रं नो निष्कृतिं कुरु ।

गतिस्त्वमस्या मोब्रह्मन् निवृत्तिं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

पीडिता येन भारेण पृथिवीयं पितामह । ययं तेनैव दुखात्तास्तद्गारहरणं कुरु ॥ १३ ॥  
देवानां घवनं ध्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः । दूरीकृत्य भयं घत्से सुखं तिष्ठममान्तिके

केषां भारमशक्ता त्वं सोढुं पप्रथिलोचने ।

धपतेष्यामि तं भद्रे भद्रं ते भविता ध्रुवम् ॥ १५ ॥

तस्य सा घवनं ध्रुत्वा तमुवाच स्वर्षाङ्गनम् । पीडिता येन येनैव प्रसन्नयदनेशना  
शृणुतात्प्रवक्ष्यामिभ्यकोयां मानसीं ध्यायाम् । विनायन्धुंसविश्वासं नाहंकथितुमुत्सं

स्त्रीज्ञानिरयन्ता शयपद्रुक्षणीया स्ययन्धुमिः । जनकरूपामिपुत्रैश्च गर्हितान्यैश्च निश्चिन्ना  
त्वया शृष्टा जगन्नात न लज्जा कथितुं मम । येषां भारैः पीडिताहं ध्रुयतां कथयामिने

हृत्प्लमन्निषिर्हीना ये ये न तद्भक्तनिन्दकाः । येषां महापातकिनामशक्ताभारघादने ॥ २१ ॥  
स्यधर्मांशगर्हीना ये निम्बकृत्पविर्षिताः । धादहीनाश्च ये देवु तेषां भारेणपीडिता ।

पितृमानुगुरस्त्रीणां योयनं पुत्रयोप्यथोः । ये न कुर्यन्ति तेषाश्च न शक्ता भारघादने ।  
ये मिथ्यावादिनस्मान् द्यासस्यविहीनकाः । निन्दका गुरुरदेवानो तेषां भारेण पीडिता ।

मित्रद्रोही हृत्प्लमन्निषिर्षिताः ।

विश्वासप्रः व्याप्यहारी तेषां भारेण पीडिता ॥ २४ ॥

कन्यालपुत्रजामानि हरैर्नामिक्वमूढम् ।

कुर्यन्ति विश्वं ये धे तेषां भारेण पीडिता ॥ २५ ॥

शोकघर्षा गुरुरेही धानवात्री च मुग्धकः । शयपद्री दूद्रमोत्री तेषां भारेण पीडिता ॥ २६ ॥  
ये ये मृदा निन्दकारभ्यो भारेण पीडिता ॥

सदा द्विपन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् । हरिहरिकथाभक्तितेयां भारेण पीडिता ॥  
शङ्खचूडस्य भारेण पीडिताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेणपरिपीडिता

इत्येवं कथितं सर्वमनाघाया निषेदनम् ।

त्वया यदि सनाथाहं प्रतीकारं कुरु प्रभो ॥ ३० ॥

इत्येवमुक्त्वा वसुधा उरोद च मुहुर्मुहुः ।

ब्रह्मा तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः ।

भारं तवापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः ॥ ३१ ॥

उपायतोऽपि कार्याणि सिध्यन्त्येव वसुन्धरे । कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः

यन्त्रं मङ्गलकुम्भञ्च शिषलिङ्गञ्च कुङ्कुमम् । मधु काष्ठं चन्दनञ्च कस्तूरी तीर्थमृत्तिकाम्

एङ्गं गण्डकखड्गञ्च स्फटिकं पद्मरागकम् । इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रत्नाञ्चं कुशमूलकम् ॥

शालग्रामशिलां शङ्खतुलसीं प्रतिमाजलम् । शङ्खं प्रदीपमालाञ्चशिलामर्च्याञ्चघण्टिकाम्

निर्माल्यञ्चैव नैवेद्यं हरिद्वर्णमजिन्तथा । प्रन्धियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम् ॥ ३६ ॥

गौरोचनाञ्च मुक्ताञ्च शुक्तिं माणिक्यमेव च । पुराणसंहितां षड्भिर्कर्पूरं परशुं तथा ॥

रजतं काञ्चनञ्चैव प्रवालशमेव च । कुशद्विजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रयोमयम् ॥ ३८ ॥

एषपि ये स्थापयिष्यन्ति भूडाश्चैतानि सुन्दरि ।

तिष्ठन्ति कालसूत्रे वी घर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा पृथ्वीं समाभवास्य देवताभिस्तथा सह ।

जगाम जगतां धाता कैलासं शङ्करालयम् ॥ ४० ॥

गत्वा तमाधमे रम्यं ददर्श शङ्खं विधिः । वसन्तमक्षयवटमूले च स्मरितस्तटे ॥ ४१ ॥

ध्यायन्नम्रं परीधानं दक्षकन्यास्त्रिभूषणम् । त्रिमूलयद्विहापरं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥

मानासिद्धैः परिपूतं योगीन्द्रगणसेवितम् । परितोऽप्सरसांनूरत्यं परयन्तंसस्मिन्मुद्रा

गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं धृतपन्तं कुन्दलान् ।

पश्यन्तीं पार्यतीं प्रीत्या पश्यन्तं पञ्चकभुजा ॥ ४४ ॥

जपन्तं पञ्चवक्त्रेण हरेर्नामैकमङ्गलम् ।

मन्दाकिनीपद्मबीजमालयाः पुलकाङ्कितम् ॥ ४५ ॥

तस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तस्थाद्यप्रे स धूर्जटेः । पृथिव्या सुरसंघैश्च साह्यं प्रणतकन्धरैः ॥ ४६ ॥

उत्तस्थौ शङ्करः शीघ्रं भक्त्या दृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।

ननाम मूर्ध्ना सम्प्रीत्या लब्धवानाशिपं ततः ४७ ॥

एणेमुर्ध्वताः सर्वाः शङ्करं चन्द्रशेखरम् । प्रणताम धरा भक्त्या चाशिपं युयुजे हृत् ॥

वृत्तान्तं कथयामास पार्यंतोशं प्रजापतिः । श्रुत्वा नतमुखस्त्वृणं शङ्करो भक्तवत्सलः ॥

रक्षापायं समाकर्ण्य पार्यंतीपरमेश्वरौ । यभूयतुस्तौ दुःखार्त्तौ योधयामास तौ विधिः ॥

इतो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंघान् घसुधराम् । गृहं प्रस्थापयामास समाश्वास्य प्रयत्नः ॥

इतो देवेश्वरौ नूर्णमागत्य धर्ममन्दिरम् । सह तेन समालोच्य यजामुर्ध्वनं हरेः ५२

वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ।

धायुना धार्यमाणञ्च प्रह्लाण्डाद्गुर्ध्वमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

कोटिपीठजनमुद्गुर्ध्वंश्च ब्रह्मलोकान् सनातनम् ।

न घणनीयं क्वचिमिषिचित्रं रत्ननिर्मितम् ।

परमार्गैर्गिद्गनीले राजमार्गैर्मूषितम् ॥ ५४ ॥

ते मनोपायिनः सर्वे सम्प्राप्तुम् मनोहरम् । हरेरन्तःपुरं गत्या दृश्यु धोहरिं पुरः ॥ ५१ ॥

रत्नसिंहासतम्यञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् । रत्नकेयूषलपरत्नानूपुरशोभितम् ॥ ५६ ॥

रत्नकुण्डलसुमेत गण्डस्थलविशजितम् । पीतवस्त्रपरीधानं घनमालाविभूषितम् ॥ ५७ ॥

शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीभूषणदायुजम् । कोटिकन्दर्पलीलामं स्मितवक्त्रं यतुर्भुजम् ॥

सुतदन्तददृष्टुर्दुः पार्यंदैवसंघितम् । चन्द्रोक्षितसर्पाङ्गं सारत्नमुकुटोत्तमचलम् ॥ ५८ ॥

परमानन्दरश्मिभक्तानुग्रहकालम् । नं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च मनया प्रह्लादयो मुने ॥ ५९ ॥

परया मनया भक्तिप्रदात्मकन्धराः । परमानन्दमारालाः पुलकाङ्कितविप्रदाः ॥

ब्रह्मोपाय ।

ननामि ब्रह्मलाक्षाभं शान्तं सर्वेशमभ्युत्तम् ।

सर्वं दस्य कटाभेदाः कटांठकलया सुराः ॥ ६२ ॥

मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः ।

कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ॥ ६३ ॥

शङ्कर उवाच ।

त्वामक्षयमक्षरं वा राममव्यक्तमीश्वरम् । अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ॥६४॥

अग्निमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम् । सिद्धिज्ञंसिद्धिदंसिद्धिरूपं कःस्तोतुमीश्वरः

धर्म उवाच ।

वेदेऽनिरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः । वेदेऽनिर्यचनीयं यत्तन्निर्वक्तुञ्च कः क्षमः ॥६६॥

यस्य सम्भावनीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम् । तदतिरिक्तञ्च स्तवनं किमहं स्तोमि निर्गुणम्

ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं पद्मलोकोकं महामुने । पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाच्यितञ्च लभेन्नरः

देवानां स्तवर्न ध्रुत्वा तानुवाच हरिः स्वयम् । गोलोकं यात यूयञ्चकार्यमि पश्चात्धियासह

नरनारायणौ तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनी । एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवीसरस्यती

अनन्तो मम माया च कार्तिकेयो गणाधिपः ।

सा सावित्री वेदमाता पश्चाद् यास्यति निश्चितम् ॥ ७१ ॥

तत्राहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह । तत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ॥

नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासिहृत् । ममैवान्ये कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः

कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः । गोलोकं यात यूयञ्च कार्यंसिद्धिर्भविष्यति ॥

धयं पश्चाद्गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये । इत्युक्तेव सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम् ॥

प्रणम्य देवताः सर्वा जग्मुर्गोलोकमद्भुतम् । विचित्रं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥७६॥

ऊर्ध्वं वैकुण्ठतोऽगम्यं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।

वासुना धार्यमाणञ्च निर्मितं स्वच्छया विभोः ॥ ७७ ॥

तमनिर्वचनीयञ्च देवास्ते गमनोन्मुखाः । ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुर्धिरजातम् ७८

दृष्ट्वा देवाः सरित्तीरं विस्मयं परमं ययुः । शुद्धस्फटिकसङ्काशं सुविस्तीर्णं मनोहरम्

मुक्ताभाणिक्वपराशमणिरत्नाकरान्वितम् । कृष्णशुभ्रहरिद्वक्त्रमणिराजिविराजितम् ॥८०॥

प्रवाहाडरमदभयं कञ्चित् समतोहरम् । परप्राप्यत्यसन्नताकरमणिनिर्गमितम् ॥ ८१ ॥

मन्दाकिनोपमपीत्रमालया पुलकाङ्गितम् ॥ ४५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे प्रजा तन्वाचमे स भृङ्गटेः । पृथिव्या सुरमनीषा सार्द्धं प्रनतकर्णैः ।

उत्तस्थौ शङ्करः शीघ्रं मनया दृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।

ननाम मूर्ध्ना सम्प्रिया लब्धवानाशिरं मनः ४७ ॥

प्रणेमुर्देघताः सर्वाः शङ्करं चन्द्रशेखरम् । प्रणनाम धरा मनया चाशिरं युयुते ह्ये ।

वृत्तान्तं कथयामास पार्वतीशं प्रजापतिः । श्रुत्या नतमुपसृणुषं शङ्करे मनवस्तदा ।

भक्तापायं समाकर्ण्य पार्वतीपरमेश्वरौ । यभूयनुस्नौ दुःखार्त्ता योधयामास तौ विदि ।

ततो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंघान् वसुन्धराम् । गृहं प्रस्थापयामास समाश्यास्य प्रसन्न ।

ततो देवेश्वरौ नूर्णमागत्य धर्म्ममन्दिरम् । सह तेन समालोच्य प्रजामुर्भवन् ह्ये ५१ ॥

वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ।

वायुना धार्यमाणञ्च ब्रह्माण्डाद्गृह्ण्यमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

कोटियोजनमूहूर्ध्वञ्च ब्रह्मलोकात् सनातनम् ।

न घर्णनीयं कविमिर्विचित्रं रत्ननिर्मितम् ।

पद्मरागैरिन्द्रनीलै राजमार्गैर्विभूषितम् ॥ ५३ ॥

ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुस्तं मनोहरम् । हरेरन्तःपुरं गत्वा ददृशुः शोहरि पुरः ५४ ॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् । रत्नकेयूरखलपरत्नानूपुरशोभितम् ॥ ५५ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । पीतवस्त्रपरीधानं घनमालाविभूषितम् ॥ ५६ ॥

शान्तं सरस्यतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् । कोटिकन्दर्पलीलामं स्मितवक्त्रं चतुर्भुजम् ॥ ५७ ॥

सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्यदैरुपसेवितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सरत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ५८ ॥

परमानन्दरूपञ्च भक्तानुग्रहकातरम् । तं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च भक्त्या ब्रह्मादयो मुने ॥ ५९ ॥

नुष्टुबुः परया भक्त्या भक्तिजघ्रात्मकन्धराः । परमानन्दमारार्त्ताः पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥ ६० ॥

ब्रह्मोवाच ।

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम् ।

घयं यस्य फलाभेदाः फलांशकलया सुराः ॥ ६२ ॥

मनघञ्च मुनीन्द्राञ्च मानुषाञ्च चराचराः ।

कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ॥ ६३ ॥

शङ्कर उवाच ।

त्पामक्षयमक्षरं वा राममव्यक्तमीश्वरम् । अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ॥ ६४ ॥

अणिमादिकसिद्धोनां कारणं सर्वकारणम् । सिद्धिज्ञंसिद्धिदंसिद्धिरूपं कःस्तोतुमीश्वरः

धर्म उवाच ।

वेदेऽनिरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः । वेदेऽनिर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुञ्च कः क्षमः ॥ ६६ ॥

यस्य सम्भावनीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम् । तदतिरिक्तञ्च स्तवर्नं किमहं स्तोमि निर्गुणम्

ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं पट्टश्लोकोक्तं महामुने । पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितञ्च लभेन्नरः

देवानां स्तवर्नं श्रुत्वा तानुवाच हरिः स्वयम् । गोलोकं यातपूयञ्चयामि पश्चात्श्रियासह

नरनारायणी तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनौ । एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देधीसरस्वती

अनन्तो मम माया व कार्तिकेयो गणाधिपः ।

सा सावित्री वेदमाता पश्चाद् यास्यति निश्चितम् ॥ ७१ ॥

तत्राहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह । तत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिमिरावृतः ॥

नारायणञ्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत् । ममैवान्ये कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः

कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः । गोलोकं यात यूयञ्च कार्प्यसिद्धिर्नविष्यति ॥

वयं पश्चाद्गामिष्यामः सर्वेयामिष्टसिद्धये । इत्युक्तेव समामध्ये विरराम हरिः स्वयम् ॥

प्रणम्य देवताः सर्वां जम्बुगोलोकमद्भुतम् । विचित्रं परमं धाम जरासूरसुहरं परम् ॥ ७६ ॥

ऊर्ध्वं वैकुण्ठतोऽगम्यं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।

वायुना धार्यमाणञ्च निर्मितं स्वेच्छया विभोः ॥ ७७ ॥

तमनिर्वचनीयञ्च देवास्ते गमनोन्मुखाः । ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुर्विरजातटम् ७८

दृष्ट्वा देवाः सरित्सारं विस्मयं परमं ययुः । शुद्धस्फटिकसङ्काशं सुविस्तीर्णं मनोहरम्

मुक्तामणिक्वपरागणिरत्नाकरान्वितम् । कृष्णशुभ्रहरिद्रकमणिराजिविराजितम् ॥ ८० ॥

प्रवालान्कमुदभूतं कुञ्चित् सुमतोहरम् । परमामूर्यसद्रत्नाकरराजिविभूषितम् ॥ ८१ ॥

वेधेरदृश्यमाध्यर्षं निधिध्रेष्टाकरान्वितम् । पद्मरागेन्द्रनीलानामाकरं कुप्रचिन्मुने ॥८२॥  
 एत्रचिद्य मरकताकरध्रेणीसमन्वितम् । स्वमन्तकाकरं कुप्र कुप्रचिद्व्यकरकम् ॥८३॥  
 ममूल्यपीतयर्षेकमणिध्रेण्याकरान्वितम् । रत्नाकरं कुप्रचिद्य कुप्रचिन् कौस्तुभाकरम् ॥  
 ह्युप्रनिर्वचनीयानां मणीनामाकरं परम् । कुप्रचिन् कुप्रचिद्विद्व्यविहारस्थलमुत्तमम् ८४  
 इत्या तु परमाध्यर्षं जग्मुस्तन्पागर्माश्वराः । दृश्युः पर्यतध्रेष्टं शतशृङ्गं मनोहरम् ॥  
 गरिजाततरुणाञ्च वनराजीविराजितम् । फल्गवृक्षैः परिगृतं वेष्टितं कामधेनुभिः ॥८५॥  
 कोटियोजनमूर्ध्वञ्च वैर्ष्यं दशगुणोत्तरम् । शैलप्रस्थं परिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥  
 प्राकाराकारमस्यैव शिखरे रासमण्डलम् । दशयोजनविस्तीर्णं घसुंलाकारमुत्तमम् ॥  
 पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना । संकुलेन मधुघ्राणां समूहेन समन्वितम् ॥८६॥  
 सुररत्नद्रव्यसंयुक्तं राजितं रतिमन्दिरैः । रत्नमण्डपकोटीनां सहस्रेण समन्वितम् ॥८७॥  
 रत्नसोपानयुक्तेन सद्गन्धफलसेन च । हरिन्मणीनां स्तम्भेन शोभितेन च शोभितम् ॥  
 सिन्दूरवर्णमणिभिः परितः खचितेन च । इन्द्रनीलैर्मध्यभागमण्डितेन मनोहरैः ॥८८॥  
 रत्नप्राकारसंयुक्तं मणिभेदैर्विराजितम् । द्वारैः कवाटसंयुक्तैश्चतुर्भिश्च विराजितम् ॥८९॥  
 घञ्जप्रस्थिसमायुक्तं रसालपल्लवान्वितैः । परितः कदलीस्तम्भसमूहैश्च समन्वितम् ॥९०॥  
 शुक्लधान्यपर्णराजफलदूर्वाकरान्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ ९१ ॥  
 वेष्टितं गोपकन्यानां समूहैः कोटिशो मुने । रत्नालङ्कारसंयुक्तं रत्नमालाविराजितैः ॥  
 रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूपितैः । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः ॥ ९२ ॥  
 रत्नाङ्गुलीपललितैर्हस्ताङ्गुलिविभूपितैः । रत्नपाशकचन्द्रैश्च पदाङ्गुलिविराजितैः ॥ ९३ ॥  
 भूपितैरत्नभूषाभिः सद्गन्धमुकुटोज्ज्वलैः । गजेन्द्रमुक्तालङ्कारैर्नासिकामध्यराजितैः ॥९०॥  
 सिन्दूरचिन्दूना सार्द्धमलङ्कारस्थलोज्ज्वलैः । चारुचम्पकवर्णामैश्वर्यमद्रवचर्चितैः १०१  
 पीतवर्णपरिधानैर्विन्वाधरमनोहरैः । शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रमाजुष्टमुखोज्ज्वलैः ॥१०२॥  
 शरत्प्रभृद्दृग्मानां शोभामोचनलोचनैः । कस्तूरीपत्रिकायुक्तैर्बाहककजलोज्ज्वलैः ॥  
 मधुल्लमालतीमालाजालैः कवरीशोभितैः । मधुल्लमधुघ्राणां समूहैश्चापि संकुलैः ॥  
 गमनेनैव गजखड्गमगञ्जनैः । पद्मप्रभूमङ्गसंयोगस्वल्पस्मितसमन्वितैः ॥१०५॥

वदाङ्गिम्बवीजामदन्तपङ्क्तिविराजितैः । जगेन्द्रचञ्चुशोभाद्व्यनासिकोश्रतभूपितैः ॥

नेन्द्रगण्डयुगमामस्तनभारनतैरिव । नितम्बकठिनश्रोणिपीनभारभरानतैः ॥ १०७ ॥

दर्पशरचेष्टामिर्जर्जरीभूतमानसैः । दर्पणैः पूर्णचन्द्रास्यसौन्दर्यदर्शानोत्सुकैः १०८

धिकाचरणाभ्जो जसेवासक्तमनोरथैः । सुन्दरीणां समूहैश्च रक्षितं राधिकाज्ञया १०९

ीङ्गासरोधराणाञ्च लक्षैश्च परिवेष्टितम् । श्वेतरक्तलोहितैश्च वेष्टितैः पद्मराजितैः ॥

सुकुजद्विर्मधुव्राणां समूहसङ्कुलैः सदा ॥ ११० ॥

प्योरानसहस्रेण पुष्पितेन समन्वितम् । कोटिकुञ्जकुटीरैश्च पुष्पशय्यासमन्वितैः ॥

गोशय्यसकंपूरतामूलवस्त्रसंयुतैः । रत्नप्रदीपैः परितः श्वेतचामरदर्पणैः ॥ ११२ ॥

वेचित्रपुष्पमालामिः शोभितैः शोभितंमुने । तद्रासमण्डलं द्रष्टुं चा जग्मुस्तेपर्वताद्बहिः

तो विलक्षणं रम्यं ददृशुः सुन्दरं वनम् । वनं वृन्दावनं नाम राधाभाघवयोः प्रियम् ॥

तीङ्गास्थानं तपोरैव कल्पवृक्षचयान्वितम् । विरजातीरतीराक्तैः कल्पितं मन्दवायुभिः ॥

मस्तूरीयुक्तपत्राक्तैः सर्वत्र सुरभीकृतम् । नवपल्लवसंयुक्तं परपुष्टतथुतम् ॥ ११६ ॥

कुत्र केलिकदम्बानां कदम्बैः कमनीयकम् । मन्दराणां चन्दनानां चम्पकानां तथैव च ॥

सुगन्धिकुसुमानाञ्च गन्धेन सुरभीकृतम् ॥ ११८ ॥

धाम्नाणां नागरङ्गाणां पनसानां तथैव च । तालानां नारिकेलानां वृन्दैर्वृन्दावनं वनम् ॥

जम्बूनां घदरीणाञ्च खर्जूराणां विशेषतः । गुवाकाघ्रातकानाञ्च जम्बीराणाञ्च नारद ॥

फदलीनां धीफलानां दाङ्गिभ्यानां मनोहरैः । सुषक्वफलसंयुक्तैः समूहैश्च विराजितम्

प्रियालानाञ्च सालानामश्वत्थानां तथैव च ।

निम्बानां शात्मलीनाञ्च तिलिङ्गीनाञ्च शोभनैः ॥ १२२ ॥

अन्येषां तदभेदानां संकुलैः संकुलैः सदा । परितः कल्पवृक्षाणां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्

मल्लिका मालती कुन्दं केतकी माधवीलता । पतासाञ्च समूहैश्च यूधिकाभिः समन्वितम्

चालुकुञ्जकुटीरैस्तीः पञ्चाशत्कोटिभिर्मुने । रत्नप्रदीपदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतैः ॥ १२५ ॥

शृङ्गारद्रव्ययुक्तैश्च घासितैर्गन्धघायुभिः । चन्दनाक्तैः पुष्पतलेर्म्मालाजालसमन्वितैः ॥

मधुलुब्धमधुव्राणां फलशर्दुश्च शब्दितम् । रत्नालङ्कारशोभादर्थगोपीवृन्दैश्च वेष्टितम् ॥



पञ्चाशत्कोटिगोपीभि रक्षितं राधिकाश्रया । द्वात्रिंशत् काननं तत्र रम्यंरम्यं मनोहरम्  
 वृन्दावनाम्यन्तरितं निर्जनस्थानमुत्तमम् । सुपवणमधुरम्यादुपल्लैर्षृन्दावनं मुने ॥१२६॥  
 गोप्टानाञ्च गयानाञ्च समूहैश्च समन्यितम् । पुष्पोद्यानसदृशेण पुष्पिनेन सुगन्धिना ॥  
 मधुलुब्धमधुघ्राणां समूहेन समन्यितम् । पञ्चाशत्कोटिगोपानां विलासैश्च विराजितम्

श्रीकृष्णतुल्यरूपाणां सद्रत्नगठिनैर्वरैः ॥ १२१ ॥

दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं यगुर्गोलोकमीश्वराः ।

परितो पञ्चलाकारं कोटियोजनविस्तृतम् ॥ १२२ ॥

रत्नप्राकारसंयुक्तं चतुर्द्वारान्वितं मुने । गोपानाञ्च समूहैश्च द्वारपालैः समन्यितम् १२३

आश्रमै रत्नखचितैर्नानामोगसमन्वितैः ।

गोपानां कृष्णभृत्यानां पञ्चाशत्कोटिमियुतम् ॥ १२४ ॥

भक्तानां गोपवृन्दानामाश्रमैः शतकोटिभिः । ततोऽधिकसुनिर्माणैः सद्रत्नपटितैर्युतम्

आश्रमैः पार्षदाणाञ्च ततोऽधिकविलक्षणैः । सुमूढ्यै रत्नरचितैः संयुक्तं दशकोटिभिः ॥  
 पार्षदप्रचरणाञ्च श्रीकृष्णरूपधारिणाम् । आश्रमैः कोटिमियुक्तं सद्रत्नेन विनिर्मितैः ॥

राधिकाशुद्धभक्तानां गोपीनामाश्रमैर्वरैः ।

सद्रत्नरचितैर्द्रव्यैर्द्वात्रिंशत्कोटिमियुतम् ॥ १२८ ॥

तासाञ्च किङ्करीणाञ्च भयनैः सुमनोहरैः । मणिरत्नादिरचितैःशोभितं दशकोटिभिः ॥  
 शतजन्मतपःपूता भक्ता ये भारते भुवि । हरिभक्तिपरा ये च कर्मनिर्वाणकारकाः ॥

स्वप्ने हाने हरैर्ध्याने निविष्टमानसा मुने ।

राधा कृष्णेति कृष्णेति प्रजपन्तो दिवानिशम् ॥१४१॥

तेषां श्रीकृष्णभक्तानां निवासैः सुमनोहरैः । सद्रत्नमणिनिर्माणैर्नानामोगसमन्वितैः  
 पुष्पशय्यापुष्पमालाश्वेतचामरशोभितैः । रत्नदर्पणशोभाढ्यैर्हंरिन्मणिसमन्वितैः ॥

अमूल्यरत्नकलससमूहान्वितशोभरैः । सद्भयस्त्राम्यन्तरितैःसंयुक्तं शतकोटिभिः ॥१४३॥  
 देवास्तमद्भुतं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययुर्मुदा । तत्राक्षयवटं रम्यं ददृशुर्जगदीश्वराः ॥ १४५ ॥

पञ्चयोजनविस्तीर्णमूढुर्ध्वं तद्वृद्धिगुणं मुने ॥ १४६ ॥

तद्वस्त्रस्फन्धसंयुक्तं शाखासंख्यसमन्वितम् । रत्नपत्रफलाकीर्णं शोभितं रत्नवेदिभिः

रूपणस्वरूपान् तन्मूले ददृशुः प्रबलान् शिशून् ।

पीतवस्त्रपरीधानान् क्रीडासक्तान् मनोहरान् ॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गान् रत्नभूषणभूषितान् ॥ १४८ ॥

ददृशुस्तत्र देवेशाः पार्षदप्रवरान् हरेः । ततो विदूरे ददृशू राजमार्गं मनोहरम् ॥ १४९ ॥

सिन्दूराकात्मणिभिः परितो रचितं मुने । इन्द्रनीलैः पद्मरागैर्हीरकै रचकैस्तथा ॥

निर्मितैर्वेदिमिर्युक्तं परितो रत्नमण्डपम् । चन्दनगुल्फस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ १५१ ॥

दधिपर्णलाजफलपुष्पदूर्वाङ्कितान्वितैः ॥ १५२ ॥

सूक्ष्मसूत्रप्रन्धियुक्तप्रोक्षण्डपद्मवान्वितैः । रम्भास्तम्भसमूहैश्च कुङ्कुमाक्तैर्विराजितम् ॥

सद्रत्नमङ्गलघटैः फलशाखासमन्वितैः । सिन्दूरकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ॥ १५३ ॥

भूषितैः पुष्पमालाभिः परितो भूषितं परम् । गोपिकानां समूहैश्चक्रीडासक्तैश्च घेष्टितम्

बहुमूलेन रत्नेन रत्नसोपाननिर्मितान् । घट्टिशुद्धांशुकै रभ्यैः श्वेतवामरदर्पणैः ॥ १५६ ॥

रत्नतल्पविचित्रैश्च पुष्पमालैर्विराजितान् । षोडशद्वारसंयुक्तान् द्वारपालैश्च रक्षितान्

परितः परिखायुक्तान् रत्नप्राकारघेष्टितान् ।

चन्दनागुल्फस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितान् । एतान्मनोऽप्यान् इद्वातेदेवा गमनोन्मुखाः ॥ १५८ ॥

जामुः शीघ्रं कियदुदूरं ददृशुः सुन्दरं ततः । आश्रमं राधिकायाश्च राक्षेयव्यांश्च नारद

देवादिदेव्या गोपीनां घरयोश्चारुनिर्मितम् । प्राणाधिकायाः रूपणस्य रम्यंद्रव्यमनोहरम्

सर्वानिर्वचनीयश्च पण्डितैर्न निरूपितम् । सुचाय्यसुंलाकारं पद्मव्यूतिप्रमाणकम् ॥

शतगन्दिरसंयुक्तं उचलितं रत्नतेजसा । अमूल्यरत्नसाराणां घरैर्विरचितं घरम् ॥ १६२ ॥

दुर्लभ्यामिर्गभीराभिः परिखाभिः सुशोभितम् ।

कल्पवृक्षैः परिवृतं पुष्पोद्यानशतान्तरम् ॥ १६३ ॥

सुमूल्यरत्नरचितैः प्राकारैः परिवेष्टितम् ॥ १६४ ॥

सद्रत्नवेदिकायुक्तं युक्तं द्वारैश्च सप्तभिः । संयुक्तं रत्नैश्चित्रैश्च विचित्रैर्वहुलैर्मुने ॥

प्रधानद्वारसप्तम्यः क्रमशः क्रमशो मुने । सर्वतोऽपि ततस्तत्र षोडशद्वारसंयुतम् ॥ १६६ ॥



चन्द्रमुखी पद्ममुखी सावित्री च सुधामुखी ॥ १८६ ॥

सा पद्मा पारिजातागीरी च सर्वमङ्गला । कालिका कमला दुर्गा भारती च सरस्वती ॥  
 क्षामिका मधुमती चम्पापर्णा च सुन्दरी । कृष्णप्रिया सती चैव नन्दनी नन्दनेति च ॥  
 तासां समरूपाणां रदाधानुचिविचित्रितान् । नानाप्रकारचित्रेण चित्रितान् सुमनोहरान्  
 मूल्यरत्नकलससमूहैः शिखरोज्ज्वलान् । सद्गुणरचितान् शुभ्रान् आश्रमानद्दृशुस्तथा  
 प्राण्डालुवहिरुदुर्ध्वञ्चनास्ति लोकस्तदुर्ध्वगः । ऊर्ध्वं शून्यमयंसर्वतदन्तासृष्टिरैव च  
 रसातलेभ्यः सप्तभ्यो नास्त्यथः सृष्टिरैव च ।

दृश्य च जलं ध्वान्तमगन्तव्यमदृश्यकम् । ब्रह्माण्डान्तं तद्दक्षिणं सर्वं मत्तोनिशामय  
 ति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे गोलोकचर्णनं  
 नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

राधाप्रसादवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा देवास्ते हृष्टमानसाः । पुनपजग्मुराधायाः प्रधानद्वारमेव च ॥ १ ॥

सद्गुणमणिनिर्माणं वैदिकाद्वयसंयुतम् । हृष्टिकाकारमणिना घञसंमिश्रितेन च ।

अमूल्यरत्नरचितकपाटेन विभूषितम् ॥ २ ॥

द्वारेऽनियुक्तं दृष्टुशुर्वोत्मानुमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

रत्नसिंहासतस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् । पीतयस्त्रपरीधानं सद्गुणमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ४ ॥

रत्नान्तं द्वारं चित्रञ्च चिविप्रीतमद्भुतम् । सर्वं निवेदयामासुर्देषा दीवारिकं मुदा ॥ ५ ॥

सानुयाच द्वारपालो निःशङ्कस्त्रिदशेभ्वरान् ।

वाहं विनाशया गन्तुं दास्यामि साध्वन्तं सुराः ॥ ६ ॥

किङ्करान् प्रेषयित्वाऽसौ श्रीकृष्णस्थानमेव च । हरेरनुतां सम्प्राप्यददौगन्तुं सुरान्मुनेः ।  
तं सम्भाष्य ययुर्देवा द्वितीयं द्वारमुत्तमम् । ततोऽधिकं विचित्रञ्चसुन्दरं सुमनोहरम् ।  
द्वारे नियुक्तं ददृशुश्चन्द्रभानुश्च नारद । किशोरं श्यामलञ्चारु स्वर्णवेत्रधरं धरम् ॥ ९ ॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ।

गोपानाञ्च समूहेन पञ्चलक्षेण शोभितम् ॥ १० ॥

तं सम्भाष्य ययुर्देवास्त्वृतीयं द्वारमुत्तमम् । ततोऽतिसुन्दरं चित्रं ज्वलितं मणितेजसा ।  
द्वारे नियुक्तं ददृशुः सूर्य्यभानुश्च नारद । द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥

मणिकुण्डलयुग्मेन कपोलस्थेन राजितम् ॥ १३ ॥

रत्नकुण्डलिनं श्रेष्ठं प्रेष्टं राधेशयोः परम् । नघलक्षेण गोपेन वेष्टितञ्च नृपेन्द्रधनुः ॥ १४ ॥

तं सम्भाष्य ययुर्देवाश्चतुर्थं द्वारमेव च । तेभ्यो विलक्षणं रम्यं सुदीप्तं मणितेजसा ।  
अत्यद्भुतविचित्रेण भूषितं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तं ददृशुर्चसुभानुं मजेभ्यरम् ॥ १६ ॥

किशोरं सुन्दरधरं मणिदण्डकरं परम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रम्यभूषणभूषितम् ॥

पद्मविम्बाधरीष्टञ्च सस्मितं सुमनोहरम् ॥ १७ ॥

तं सम्भाष्य ययुर्देवाः पञ्चमं द्वारमेव च । यत्रमितिस्थितैश्चित्रविचित्रैर्यंलितं परम् ॥  
द्वारपालञ्च ददृशुर्देषभानुश्च तत्र ये । चारुसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ १९ ॥

मयूरपुच्छचूडञ्च रत्नमालाविभूषितम् ॥ २० ॥

कर्मवपुष्पगंयुक्तं सद्गणकुण्डलोऽपलम् । चन्द्रनागुरकन्दूरीकुङ्कुमद्रवचरितम् ॥ २१ ॥

नृपेन्द्रधनुर्व्यञ्ज दशरथप्रजात्वितम् । तं येषपाणि सम्भाष्य ययुर्देवा मुदाविताः ।  
विलक्षणं द्वापर्य्यकं विशराजिपिराजितम् । यत्रमिति युग्मयुक्तं पुष्पमालाविभूषितम् ॥

द्वारे नियुक्तं ददृशुः शशभानुं मजेभ्यरम् ॥ २३ ॥

नागालङ्कारयोमाद्यं दशरथप्रजात्वितम् । धीमण्डपपद्मवसनकपोलकुण्डलोऽपलम्  
सम्भाष्य तं युगान्तरं ययुर्द्वारञ्च सप्तमम् । नानाप्रकारविचित्रभूषण्यञ्जातिविलसाम् ॥

द्वारे नियुक्तं ददृशुः शशभानुं हरेः प्रियम् । चन्द्रमोक्षिलसर्पाङ्गं पुष्पमालाविभूषितम् ।  
भूषितं मूरजैः रम्यैर्मणितममोहकैः । गोदेहादशरथैश्च राजेन्द्रमिष राजितम् ॥ २७ ॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च स्मेराननसरोरुहम् । तं क्षेत्रहस्तं सम्भाष्य जग्मुर्देवेश्वरा मुदा ॥  
विचित्रमष्टमं द्वारं सप्तभ्योऽपि विलक्षणम् । दौघारिकं ते ददृशुः सुपादवं सुमनोहरम्  
सस्मितं सुन्दरवरं श्रीवण्डतिलकोज्ज्वलम् । वन्धुजीवाधरोष्ठञ्च रत्नकुण्डलमण्डितम्  
सर्वालङ्कारशोभाढ्यं रत्नदण्डधरं धरम् । गोपैर्द्वादशलक्षैश्च किशोरैश्च समन्वितम् ॥

ततः शीघ्रं ययुर्देवा नवमद्वारमीप्सितम् ॥ ३२ ॥

पञ्चसद्वत्नरचितचतुर्वेदिसमन्वितम् । अपूर्वचित्रयुक्तञ्च मालाजालैर्विराजितम् ॥ ३३ ॥  
द्वारपालञ्च ददृशुः सुवलयं ललिताकृतिम् । नानाभूषणभूषाढ्यं भूषणार्हं मनोहरम् ॥ ३४ ॥  
पञ्चैर्द्वादशलक्षैश्च संयुक्तं सुमनोहम् ।

तं दण्डहस्तं सम्भाष्य सुरा द्वारान्तरं ययुः ॥ ३५ ॥

विशिष्टं दशमद्वारं दृष्ट्वा ते विस्मिताः सुराः ।

सर्वानिर्वचनीयञ्चाप्यदृष्टमधृतं मुने ॥ ३६ ॥

ददृशुर्द्दारपालश्च सुदामानञ्च सुन्दरम् । अनिर्वचनीयरूपञ्च कृष्णतुल्यं मनोहरम् ॥

गोपविशतिलक्षाणां समूहैः परिचारितम् ॥ ३७ ॥

तं दण्डहस्तं दृष्ट्वा जग्मुर्द्दारान्तरं सुराः । द्वारमेकादशाख्यञ्च सुविभ्रमद्रुतञ्च तत् ॥  
द्वारपालञ्च तत्रस्थं श्रीदामानं यज्ञेश्वरम् । राधिकापुत्रतुल्यञ्च पीतवस्त्रेण भूषितम् ॥  
अमूल्यरत्नरचितरम्यसिंहासनस्थितम् । अमूल्यरत्नभूषामिमं पितं सुमनोहरम् ॥ ४० ॥  
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् । गण्डस्यलकपोलार्द्रसद्वत्नकुण्डलोज्ज्वलम् ॥

सद्वत्नश्रेष्ठरचितपिचित्रमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ४१ ॥

प्रफुल्लमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषितम् ।

कोटिशोषैः परिवृतं राजेन्द्राधिकमुज्ज्वलम् ॥ ४३ ॥

तं सम्भाष्य ययुर्द्दारं द्वादशाख्यं सुरा मुदा । अमूल्यरत्नरचितवेदिकाभिः समन्वितम् ॥  
सर्वेषां दुर्लभं चित्रमदृश्यमधृतं मुने । पञ्चमितिस्थितं विभ्रसुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥

द्वारं निष्कृत्वा ददृशुर्देवा गोपाङ्गना धराः । रूपयौघनसम्पन्ना रत्नाभूषणभूषिताः ॥ ४६ ॥

पीतवस्त्रपरीधानाः कवरीभारशोभिताः ।

सुगन्धिमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषिताः ॥ ४७ ॥

रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिता । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताः ॥ ४८ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चिताः । पीनश्रोणिभराः नम्रा नितम्बमारपीडिताः ॥ ४९ ॥

गोपीनां शतकोटीनां श्रेष्ठा श्रेष्ठा हरेरपि । गोपीनां कोटिशो दृष्ट्वा सुरास्तेविस्मयंयुः  
संभाष्य ता मुदा युक्ता ययुर्द्वारान्तरं मुने । ततश्च क्रमशो विप्रः त्रिषु द्वारेषु तत्र वी ॥

गोपाङ्गनानां श्रेष्ठाश्च ददृशुः सुमनोहराः ।

धराणाञ्च धरा रम्या धन्या मान्याश्च शोभनाः ॥ ५२ ॥

सर्वाः सर्वाभ्ययुक्ताश्च राधिकायाः प्रियाः स्मृताः ।

भूषिता भूषणै रम्यैः प्रोद्विग्ननवयोवनाः ॥ ५३ ॥

एवं द्वारत्रयं दृष्ट्वा सुज्ञानाद्ब्रुताश्रयम् ।

अदृश्यमतिरम्यञ्चाप्यनिरूप्यं विचक्षणैः ॥ ५४ ॥

तास्ताः संभाष्य देवास्ते विस्मिता ययुरीश्वराः ।

राधिकाभ्यन्तरं द्वारं पौडशाख्यं मनोहरम् ॥ ५५ ॥

सर्वासाञ्च विधानानां गोप्यं गोपाङ्गनागणैः ।

अयम्प्रिशद्वयम्यानां वयम्यानिकरंमुने ॥ ५६ ॥

वेशानिर्वचनीयैश्च नानागुणसमन्वितैः । रूपयोवनसाम्पन्नेः रत्नालङ्कारभूषितैः ॥ ५७ ॥

रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः । सद्गन्धकिङ्किणीजालैर्मध्यदेशविभूषितैः ॥ ५८ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः । प्रकृतमालतीजालैर्वक्षोमध्यस्थलोग्म्यलैः ॥  
शरत्पार्षणचन्द्राणां प्रभातुष्टमुनेन्दुमिः । पारिजाताप्रसूनानां मालाजालेन वेष्टितैः ॥

सुरम्यकषरीमारैर्भूषणैर्भूषितैर्वरैः ॥ ६० ॥

पद्मविस्थाधरोष्टैश्च स्मेराननसरोरुहैः । पद्मदाङ्गिम्यवीजामैः शोभितैर्दन्तपरकिमिः ॥

न्याय्यम्यकषणांभैर्मध्यस्थलदृशीमुने ॥ ६२ ॥

गजमूर्तिकयुक्तामिनांसिक्तामिधिराजितैः । शगन्त्रचारुवज्रनां शोभातुष्टानिरेष ॥

गजेन्द्रगण्डकटिस्तनमात्मरानतैः । पीनश्रोणिभरासैश्च मुकुन्दपद्मानतैः ॥ ४९ ॥

परहिता देवा द्वारस्था ददृशुश्च ताः । सद्रत्नमणिरत्नैश्च वेदिकायुग्मशोभितम् ॥

हरिन्मणीनां स्तम्भानां समूहैः संयुतं सदा ।

सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यस्थलविराजितैः ॥ ६६ ॥

जातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् । तत्सम्पर्कैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥

तत् परामाश्चर्यं राधिकाभ्यन्तरं सुराः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजदर्शनोत्सुकमानसाः

तंभाष्यययुःशीघ्रं पुलकाङ्कितविग्रहाः । भक्तयुक्तेकादधुपूर्णाः किञ्चिन्नम्रास्यकन्धराः

धारासु ददृशुर्देवा राधिकाभ्यन्तरं वरम् ।

मन्दिराणाञ्च मध्यस्थं चतुःशालं मनोहरम् ॥ ७० ॥

रत्नसाराणां सारेण रचितंपरम् । नानात्नमणिस्तम्भैर्वज्रयुक्तैश्च भूषितम् ॥ ७१ ॥

जातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् । मुक्तासमूहैर्माणिक्यैः श्वेतचामरदर्पणैः ॥

रत्नसाराणां कलसैर्भूषितं मुने । पट्टसूत्रप्रणिययुक्तश्रीलण्डण्डवान्वितैः ॥ ७३ ॥

तम्भसमूहैश्च रम्यप्राङ्गणभूषितम् । बन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रघसंयुतम् ॥ ७४ ॥

न्यशुकुप्यप्रवालफलतण्डुलैः । पूर्णदूर्घाक्षतेलांजैर्निर्ममञ्छनविभूषितम् ॥ ७५ ॥

नैरत्नकुम्भैः सिन्दूरकुङ्कुमान्वितैः । पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तैर्विराजितम् ।

प्रसूनार्कैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥ ७६ ॥

त्वचनीयञ्च यद्द्रव्यमनिरूपितम् । प्रह्लाण्डदुर्लभं यद्द्रव्यद्वस्तुमिस्तैर्विराजितम् ॥ ७७ ॥

रत्नशय्या सुललिता सूक्ष्मवस्त्रपरिच्छदा ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥ ७८ ॥

ते रत्नकुम्भाश्च रत्नपात्राणि नारद । अमूल्यानिच चारुणि तैस्तैरेव विभूषितम्

परवाद्यानां कलनादनितादितम् । स्वरयन्त्रैश्च धोणामिर्गोपीसङ्गीतसुधुतम् ॥

मोहितं घाघशब्दैश्च मृदङ्गानाञ्च नारद ॥ ८१ ॥

कृष्णतुल्यानांसमूहैः परिपारितम् । राधासखीनांगोपीनां घृन्दैर्घृन्दैर्विराजितम्

जगुणीद्रेकपदसङ्गीतसुधुतम् । एवमभ्यन्तरं दृष्ट्वा धमुर्बुर्विस्मिताः सुराः ॥ ८३ ॥

पुरं गीतं ददृशुर्नृत्यमुत्तमम् । तत्र तस्थुः सुराः सर्वे ध्यानैकतानमानसाः ॥ ८४ ॥



रत्नसिंहासनं रम्यं दृग्शुम्भ्रिदशोभराः ।

धनुःशतप्रमाणञ्च परितो मण्डलाहतिम् ॥ ८५ ॥

सप्रनभुदधन्ससमूर्हेष्य समन्वितम् । नित्रपुल्लिकापुत्रनित्रकाननमूर्धितम् ॥ ८६ ॥

तत्र तेजःसमूहञ्च सूर्यफोटिसमप्रभम् । प्रमया उपलिङ्गं धाम्नाध्वर्यं महद्गुणम् ॥ ८७ ॥

सततालप्रमाणं तद् व्याप्तमद्भुतं समन्ततः । तेजोमुष्टञ्च सर्वेषो व्याप्ताध्रमचिराजितम् ॥ ८८ ॥

सर्वेषापि सर्वेषीजं चक्षुषोभकरं परम् । दृष्ट्वा तेजःस्वरूपञ्जनेदेवाध्यानरुपराः ॥ ८९ ॥

प्रणेमुः परया भक्तया भक्तिप्रसास्यकन्धराः । परमानन्दसंयोगाद्भ्रूपूर्णविलोचनाः ।

पुलकाङ्कितसर्पाङ्गा वाञ्छापूर्णमनोरथाः ॥ ९० ॥

नत्वा तेजःस्वरूपञ्च तमीशं त्रिदशोभराः । तत्रोत्थाय ध्यानयुक्ता प्रतस्युस्तेजसः पुटः

ध्यात्वैयं जगतां धाता यभूव सगुटाञ्जलिः । दक्षिणेशङ्करं कृत्वाधामे धम्मञ्च नारद ॥

भक्तयुद्धेकात् प्रनुष्टाव ध्यानैकतानमानसः । परान्परं गुणातीतं परमात्मानमीश्वरम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

घरं घरेण्यं घरदं घरदानाञ्च कारणम् । कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९१ ॥

मङ्गल्यं मङ्गलार्हेञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ।

समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९५ ॥

स्थितंसर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम् । निरीहमवितर्क्यञ्च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९६ ॥

सगुणं निर्गुणं ब्रह्मज्योतीरूपं सनातनम् । साकारञ्च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥

त्वमनिर्वचनीयञ्च व्यक्तमव्यक्तमेककम् । स्वेच्छामयंसर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९८ ॥

गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम् । फलया ते सुराः सर्वे किं जानन्ति ध्रुतेः परम् ॥

सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वबोजमधीजकम् ।

सर्वान्तःकरणन्तश्च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०० ॥

लक्षं यद्गुणरूपञ्च घर्णनीयं विचक्षणैः । किं घर्णयामि लक्षन्ते तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥

अशीरं चिप्रहवदिन्द्रियबद्धतीन्द्रियम् । यदसाक्षि सर्वसाक्षितेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०२ ॥

गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम् । हस्तास्यहीनयद्भोक्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०३ ॥

वेदे निरूपितं घस्तु सन्तः शक्ताश्च घणितुम् ।

वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजीरूपं नमाम्यहम् ॥ १०४ ॥

सर्वेशं यदनीशं यत् सर्वादि यदनादि यत् । सर्वात्मकगनात्मं यत्तेजीरूपं नमाम्यहम् ॥

अहंविधाताजगतांवेदानां जनकःस्ययम् । पाताधर्मोहरोहर्तास्तोतुंशकीनकोऽपियत् ॥

सेवया तव धर्मोऽयं रक्षितारञ्च रक्षति । तदाह्वयाच संहर्ता त्वया काले निरूपिते ॥

निपेकलिपिकर्ताहं त्वत्पादाम्मोजसेवया । कर्मिणां फलदाता च त्वद्दक्षानाञ्च न प्रभुः

ब्रह्माण्डे विभ्वसद्रशा भूत्या विपयिणो घयम् ।

एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः ॥ १०६ ॥

यथानसंख्या रेणूनांतथा तेषामणीयसाम् । सर्वेषांजनकश्वेशोयस्त्वां स्तोतुञ्चकःक्षमः

एकैकलोमविचरे ब्रह्माण्डमेकमेककम् । यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैव सः ॥

ध्यायन्ति योगिनः सर्वे तत्रैतद्रूपमोप्सितम् । नभक्ता दास्यनिरताः सेवन्ते चरणाभ्युजम्

किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कमनीयकम् । मन्त्रध्यानानुरुक्ष दर्शयास्माकमीश्वर ॥ ११३ ॥

नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं परम् ।

द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ॥ ११४ ॥

मयूरपुच्छचूडश्च मालतीजालमण्डितम् । बन्दनागुष्कस्फुरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ ११५ ॥

अमूल्यरत्नसाराणांभूषणैश्चविभूषितम् । अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ११६ ॥

शरत्प्रफुल्लकमलप्रमामोष्यास्वचन्द्रकम् । पद्मविभ्वसमानेन ह्यधरोष्ठेन राजितम् ।

पद्माद्भिभ्रवीजामदन्तपङ्क्तिमनोरमम् ॥ ११७ ॥

केलिकदम्बमूले च स्थितं रासरसोत्सुकम् ।

गोपीवक्त्राणि पश्यन्तं राधाचक्षःस्थलस्थितम् ॥ ११८ ॥

एवं वाञ्छास्ति रूपं ते द्रष्टुं केलिरसोत्सुकम् ॥ ११९ ॥

इत्येवमुत्तया पिश्वसूद् प्रणनाम पुनः पुनः । एवं स्तोत्रेणतुष्टाय धर्मोऽपिशङ्करः स्वपम्

ननाम भूयोभूयश्च साधुपूर्णविलोचनः ॥ १२० ॥

तिष्ठन्तोऽपिपुनःस्तोत्रं प्रचक्षुस्त्रिदशेश्वराः । ध्यातास्तात्रामराःसर्वे धीहृष्यतेजसा मुने

स्तवराजमिमं नित्यं धर्मशत्रुप्रहसिः हृतम् । पूजाकाले हरेरेव भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ॥

सुदुर्लभां हृदां भक्तिं निश्चलां लभते हरेः ॥ १२३ ॥

सुरासुरमुनीन्द्राणां दूर्गमं दास्यमेव च । भणिमादिकसिद्धिश्च सालोक्यादिवनुष्टयम् ॥  
इहैवधिष्णुतुल्यभाविष्यातः पूजितो भूषम् । पापसिद्धिमन्त्रसिद्धिधर्मवेत्सम्यधिनिश्चितम् ॥  
सर्वसौभाग्यमारोग्यं यशसा पूजितं जगत् । पुत्रभ्रायिया कथिना निश्चला कमला तथा ॥

पत्नी पतिप्रता साध्वी सुशीला सुस्थिराः प्रजाः ।

कीर्त्तिश्च चिरकालीनाप्यन्ते कृष्णान्तिकमिधतिः ॥ १२७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

ब्रह्मवृत्त-कृष्णस्तोत्रप्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

## पष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मादिकृत-लक्ष्मीनारायणस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

ध्यात्वा स्तुत्वा च तिष्ठन्तो देवास्ते तेजसः पुरः ।

ददृशुस्तेजसो मध्ये शरीरं कमनीयकम् ॥ १ ॥

सजलाम्भोदवर्णाभं सस्मितं सुमनोहलम् । परमाहादकं रूपं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ॥  
गण्डस्थलकपोलाभ्यां ज्वलन्मकरकुण्डलम् । सद्रत्ननूपुराम्बाञ्च चरणाम्भोजराजिः ॥  
षड्विशुद्धहरिद्रामघन्नामूल्यविराजितम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां स्वेच्छाकौतुकनिर्मितम् ॥  
चिनोदमुरलीयुक्तविम्बाधरमनोहरम् । शुभेक्षणेन पश्यन्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ५ ॥  
सद्रत्नगुटिकायुक्तकवाटोरःस्थलोज्ज्वलम् । कौस्तुभासक्तसद्रत्नप्रदीप्ततेजसोज्ज्वल ॥

अत्र तेजसि चार्चूर्णां ददृशू राधिकाभिधाम् ।

पश्यन्तं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीं षकचक्षुषा ॥ ७ ॥

मुक्तापङ्क्तिविनित्यैकदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ।

ईपद्मास्यप्रसन्नास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥ ८ ॥

शरत्पार्श्वेणचन्द्राभाधिनिन्धास्यमनोहराम् । बभ्रुज्जीवप्रभामोप्याधरौष्टरुचिराम्बराम् ॥

रणन्मञ्जोरयुग्मेन पादाम्बुजधिराजिताम् । मणीन्द्राणां प्रभामोपिनखराजीविराजिताम्

कुङ्कुमाभासमाच्छाद्य पादाधोरागभूपिताम् ।

अमूल्यरत्नसाराणां .पाशकध्रेणिशोभिताम् ॥ ११ ॥

हुताशनचिशुद्धांशुकामूल्यज्वलितोज्ज्वलाम् । महामणीन्द्रसाराणांकिङ्किणीमध्यसंयुताम्

सद्रत्नहारकेयूरकरकङ्कणभूपिताम् । रत्नेन्द्ररचितोत्कृष्टकपोलोज्ज्वलकुण्डलाम् ।

कर्णोपरि मणीन्द्राणां कर्णभूषणभूपिताम् ॥ १३ ॥

खगेन्द्रचञ्चुनासाप्रे गजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् । मालतीमालया घर्कां विभ्रतीं कधरीं तथा

मणीतां कौस्तुभेन्द्राणां घशःस्थलसुशोभिताम् ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालोज्ज्वलां धराम् ॥ १५ ॥

रत्नाङ्गुरीयनिकरैः कराङ्गुलिधिभूपिताम् ॥ १६ ॥

दिव्यशङ्खधिकारैश्च चित्ररागधिभूपितैः । सूक्ष्मसूत्रकृतै रम्यैर्भूपितां शङ्खभूषणैः ॥ १७ ॥

सद्रत्नसारगुटिकारत्नसूत्राक्तशोभिताम् । प्रतप्तस्वर्णघर्णाभामाच्छाद्य चारुविग्रहाम् ॥

नितम्बधोपिललितां स्तनपीनोन्नतां तथा । भूपितां भूषणैः सर्वैस्तत्सौन्दर्येण भूपितैः

विस्मितास्त्रिदशैः सर्वैः दृष्टेशमीश्वरीं धराम् । तुष्टुष्टुस्ते सुराः सर्वे पूर्णसर्वमनोरथाः

ब्रह्मोवाच ।

तव धरणसरोजे मन्मथश्चञ्चरीको भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्तया सरोजे ।

भवनभरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन सुदृढसुपरिपकां देहि भक्तिञ्च दास्यम् ॥ २१ ॥

शङ्कर उवाच ।

मयजलधिनिसर्गं चित्तमनो मदीयो न्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे ।

चिपयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥ २२ ॥

धर्म उवाच ।

तव निजजनसादं सङ्गमो मे सदैव भवतु चिपयकधच्छेदने तीक्ष्णखड्गः ।

तव चरणसरोजस्थानदानकहेतुर्जनुपि जनुपि भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥ २३ ॥

नारायण उवाच ।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा परिपूर्णकमानसाः । कामपूरस्य पुरतस्तस्थुस्ते राधिकापतेः २४॥  
सुराणां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच कृपानिधिः । हितं तथ्यञ्च वचनं स्मेराननसरोरुहः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

स्वागतं स्वागतं नुभ्यं मदीये हि पुटेऽधुना । शिष्याश्रयाणां कुशलं प्रष्टुं युक्तमसाम्प्रतम्

निश्चिन्ता भवतामैव का चिन्ता घो मयि स्थिते ।

स्थितोऽहं सर्वजीविषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै ।

युष्माकं यद्मिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम् ॥ २७ ॥

शुभाशुभञ्च यत् कर्म काले स्वतु भविष्यति । महत् क्षुद्रञ्चयत् कर्मसर्वकालदृढतुष्टम्

स्यस्वकाले च तरयः फलिनः पुष्पिनः सदा ।

परिषङ्गफलाः काले कालेऽपक्वफलान्विताः ॥ २९ ॥

सुखं दुःखं विषम् सग्धम् शोकश्चिन्ता शुभाशुभम् ।

स्यकर्मफलनिष्ठञ्च सर्वं काले ह्युपस्थितम् ॥ ३० ॥

न हि कस्य प्रियः को वा विप्रियो वा जगत्प्रये ।

काले कार्प्यवशात् सर्वे भवन्त्येवाप्रियाः प्रियाः ॥ ३१ ॥

रात्रानो मनसः पृथ्व्यां दृष्टा युष्मामिष्य वै । स्यकर्मफलवाकेन सर्वं कालपरशूनाः

युष्माकमधुनात्रैव गोलोकं यत्क्षणं गतम् । पृथिव्यां तत्क्षणेनैव सममन्वन्तरं गतम् ॥

इन्द्राः सत गताम्बुज देवेन्द्रधाष्टमोऽधुना । कालयज्ञः समन्त्येवं मदीयञ्च विधात्रिताम्

इन्द्राद्य मनसो भूयाः सर्वे कालपरशूनाः । कौत्सिःपृथ्वी पुण्यमयं कथामात्रापरोक्षितम्

अधुनापि च रात्रानो दुष्टाश्च हरिनिन्दकाः । यन्मूर्खदयो भूयां महाकलयरात्रमाः ३१

सर्वे याम्यन्ति कालेन माम् कालान्कल्पय च ॥ ३७ ॥

सर्वे कालोऽयं वानो वानि निज्जन्तम् । यद्विदं हति मूर्ख्यं च तन्त्येव समात्रा

सन्नि देरेषु मृगुधरानि जगन्पु । सर्वमन्त्येव जगत्पराः सर्वे देवा समात्रपराः ३१

ब्रह्मण्यनिष्ठा विप्राश्च तपोनिष्ठास्तपोधनाः । ब्रह्मर्षयो ब्रह्मनिष्ठा योगनिष्ठाश्च योगिनः  
वे सर्वे मद्भयाद्धीताः स्वधर्मकर्मतत्पराः । मद्भक्ताश्चैव निःशङ्काः कर्मनिर्मूलकारकाः

देवाः कालस्य कालोऽहं विधाता धातुरेव च ।

संहारकर्तुः संहर्ता पातुः पाता परात्परः ॥ ४२ ॥

ममाज्ञयाऽयं संहर्ता नाम्ना तेन हरः स्मृतः ।

त्वं विश्वसृक् सृष्टिहेतोः पाता धर्मस्य रक्षणात् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः । स्वकर्मफलदाताहं कर्मनिर्मूलकारकः ॥ ४४ ॥

अहं यान् संहरिष्यामि कस्तेषामपि रक्षिता ।

यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोऽपि च ॥ ४५ ॥

सर्वेषामपि संहर्ता कृष्टा पाताहमेव च । नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारे नित्यदेहिनाम् ॥

भक्ता ममाहुना नित्यं मत्पादाचंनतत्पराः । अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणाहेतवे ॥

उर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः । न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः

ततो विपश्चितः सर्वे दास्यं याञ्छन्ति नो धरम् ।

ये मां दास्यं प्रयाचन्ते धन्यास्तेऽन्ये च घञ्जिताः ॥ ४६ ॥

जन्ममृत्युजराव्याधिभयञ्च यमताडना । अन्येषां कर्मिणामस्ति न भक्तानाञ्च कर्मिणाम्

भक्ता न लिप्ताः पापेषु पुण्येषु सर्वकर्मणः । अहं धुनोमि तेषाञ्च कर्मभोगांश्च निश्चितम्

अहं प्राणाश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च ।

ध्यायन्ते ये च मां नित्यं तान् स्मरामि दिवानिशम् ॥ ५२ ॥

चक्रं सुदर्शनं नाम पोद्गशारं सुतीक्ष्णकम् । यत्तेजःपोद्गशांशोऽपि नास्ति सर्वेषु जीविषु

भक्तान्तिके तु तद्यत्कं दत्त्वा रक्षार्थमीप्सितम् । तथापिनप्रतीतिर्मे यामि तेषाञ्च सन्निधिम्

न मे स्वास्थ्यञ्च वैकुण्ठे गौलीके राधिकान्तिके ।

यत्र तिष्ठन्ति भक्तास्ते तत्र तिष्ठाम्यहर्निशम् ॥ ५५ ॥

प्राणेश्वरः प्रेयसी राधा स्थितोरसि दिवानिशम् ।

यूयं प्राणाधिका लक्ष्मीर्न मे भक्तात् पराः स्मृताः ॥ ५६ ॥

भगवत्पुत्रं यदुद्वेगं भगवाऽध्यामिस्तुदेवराः । भगवत्पुत्रं भगवत्पुत्रं मुद्गे वदित्वाऽप्यम्  
 वत्रोपुष्यमनास्वनाः । आर्यवशांशुराणाम् ।

गुप्तान् विहाय ताप्रियं वमरायदमहर्निराम् ॥ ५८ ॥

उद्योगो ये न भगवानां आर्यवशांशुराणामपि । मन्त्रान्निवेदयन्नाञ्च दिवां कुर्वन्ति निश्चिन्त  
 तदाऽपि तेनश्यन्ति यथा यद्वीरुजानि च । न कोऽपि रक्षितानेषां मपि हन्तव्यं मयि ते  
 याम्यामि वृथियी देवा यात यूयं स्वमालयम् ।

यूयं चैषांशुरूपेण शीघ्रं गच्छत भूगन्तम् ॥ ६१ ॥

इत्युक्तया जगतां नाथो गोपानाह्वय गोपिकाः ।

उपाच मधुरं सत्यं धारयं तत्समयोजितम् ॥ ६२ ॥

गोपा गोप्यश्च शृणुत यात मन्दव्रजं परम् । वृषभानुगृहं शिप्रं गच्छ त्यमपि राधिके ।  
 वृषभानुप्रिया साध्वी माम्ना गोपीकलायती । सुखलस्य सुता सा च कमलांशुसमुद्रणा

पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च योयिताम् ।

पुरा दुर्वाससः शापाज्जन्म तस्या यजे गृहे ॥ ६५ ॥

तस्यां लमस्य त्वं जन्म शीघ्रं नन्दव्रजं यज । त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने ६६  
 त्वं मे प्राणाधिका राधे तवः प्राणाधिकोऽप्यहम् ।

न किञ्चिदावधोमिश्रमेकाङ्कः सर्वदेव हि ॥ ६७ ॥

श्रुत्वा च राधिका तत्र हरोद प्रेमचिह्नला । पपी चक्षुश्चकोराम्यां मुखबन्धं हरेमिने ॥ ६८ ॥  
 जनुर्लमत गोपाश्च गोप्यश्च पृथिवीतले । गोपानामुत्तमानाञ्च मन्दिरे मन्दिरे शुभे ॥

पतस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशू रथमुत्तमम् । मणिरत्नेन्द्रसारेण हीरकेण विभूषितम् ॥ ७० ॥  
 श्वेतचामरलक्षेण शोभितं दर्पणायुतैः । सूक्ष्मकापायवस्त्रेण चहिशुद्धेन भूषितम् ॥ ७१ ॥

सद्गतकलसानाञ्च सहस्रेण सुशोभितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥  
 पार्यदप्रवरैर्युक्तं शतकुम्भमयं शुभम् । तेजः स्वरूपमतुलं शतसूर्यसमप्रथम् ॥ ७२ ॥

पुठयं श्यामसुन्दरं कमनीयकम् । शङ्खवक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥ ७५ ॥

कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् । चन्दनागुहकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचञ्चितम् ॥ ७५ ॥

तुर्मूर्जं स्मेरघबत्रं भक्तानुग्रहकातराम् । मणिरत्नेन्द्रसारारणां सारभूषणभूषिताम् ॥ ७६ ॥

देवीं सद्भामतो रम्यां शुक्लवर्णां मनोहराम् ।

वैशुवीणाग्रन्थहस्तां भक्तानुग्रहकातराम् ।

विद्याधिष्ठातृदेवीञ्च ह्यानरूपां सरस्वतीम् ॥ ७७ ॥

अपरां दक्षिणे रम्यां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ।

ततकाञ्चनवर्णाभां सस्मितं सुमनोहराम् ॥ ७८ ॥

सद्रत्नकुण्डलाम्बाञ्च सुकपोलविराजिताम् । अमूल्यरत्नलज्जितामूल्यवस्त्रेण भूषिताम्

अमूल्यरत्नकेयूरकरकङ्कणशोभिताम् । सद्रत्नसारमञ्जीरकलशश्रद्दसमन्विताम् ॥ ८० ॥

पारिजातप्रसूनानां माल्यैर्वक्षःस्थलोज्ज्वलाम् ।

प्रफुल्लमालतीमालासंयुक्तकवरीं शुभाम् ॥ ८१ ॥

शरच्चन्द्रप्रभामोषिमुखवाद्यविभूषिताम् ॥ ८२ ॥

कस्तूरीचिन्दुसंयुक्तसिन्दूरतिलकान्विताम् । सुधारुकज्जलासकशरत्पङ्कजलोचनाम् ॥

सहस्रदलसंयुक्तलौलाकमलसंयुताम् । नारायणञ्च पश्यन्तं पश्यन्तीं शकवक्षुषा ॥ ८४ ॥

अचक्ष्य रथात्पूर्वं सखीकः सह पार्षदैः । जगाम च सभां रम्यां गोपगोपीसमन्विताम्

देवा गोपाञ्च गोप्यञ्चोत्तस्थुः प्राञ्जलपो मुदा । सामवेदीकस्तोत्रेणकृतेनचसुरैर्विभिः

गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे । दृष्ट्वा च परमाश्चर्यते सर्वे विस्मयं ययुः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शतकुम्भमयाद्रथात् । अवच्छ्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः ॥

आजगाम चतुर्बाहुः धतमालाविभूषितः ।

पीताम्बरधरः श्रीमान् सस्मितः सुमनोहरः ।

सर्वालङ्कारशोभाढ्यः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ८६ ॥

उत्तस्थुस्ते च तं दृष्ट्वा त्रुष्टुः प्रणता मुने । स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेशपरविग्रहे ॥ ९०

ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयं पत्यं ययुः । संपिलीने हरैरङ्गे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ ९१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगाम त्वरान्वितः । शुद्धस्फटिकसङ्काशो नाम्नासङ्कर्षणः स्मृतः

सहस्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्यसमप्रभः ॥ ९२ ॥



आगतं तुष्टुवुः सर्वं दृष्ट्वा तं विष्णुविग्रहम् । स चागत्य नतस्कन्धस्तुष्टावराधिदेश्च  
सहस्रमूर्द्धभिर्मतया प्रणनाम च नारद ॥ ९३ ॥

आवाञ्च धर्मपुत्रो ह्यौ नरनारायणामिधौ ।

लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे घभूय फाल्गुनो वरः ॥ ९४ ॥

ब्रह्मेशशेषधर्माश्च तस्युरेकत्र तत्र वै ॥ ९५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा ददृशू रथमुत्तमम् । स्वर्णसारविकारश्च नानारत्नपरिच्छदम् ॥ ९६ ॥

मणीन्द्रसारसंयुक्तं घट्टिशुद्धांशुकान्वितम् । श्वेत्वासरसंयुक्तं भूयितं दर्पणायुतैः ॥ ९७ ॥

सद्रत्नसारकलससमूहेन विराजितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ।

सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोयायि मनोरमम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोपकरं परम् ॥ ९८ ॥

मुक्तामाणिवयवज्जाणां समूहेन समुज्ज्वलम् ।

चित्रपुत्तलिकापुष्पसरःकाननचित्रितम् ॥ १०० ॥

देवानां दानधानाञ्च रथानां प्रवरं मुने ।

यत्नेन शङ्खप्रतिया, निर्मितं विश्वकर्म्मणा ॥ १०१ ॥

पञ्चाशदुपोजनोदुर्ध्वश्च चतुर्षोऽप्युपजनिस्तृतम् ।

रतितल्पसमायुक्तैः शोभितं शतमन्दिरैः ॥ १०२ ॥

तत्रस्थां ददृशुर्दोषीं ग्लनलङ्कारभूयिताम् । प्रदग्धस्वर्णसाराणां प्रभामोपकरयुतिम् ॥

नेत्रःस्वकृपासतुलां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ १०३ ॥

सहस्रभुजसंयुक्तां नानायुधसमन्विताम् । ईषदास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारिताम् ॥

गण्डम्यलकपोलाभ्यां सद्रत्नकुण्डलोऽज्वलाम् ।

रत्नेन्द्रसाररचितकण्ठगम्भीररञ्जिताम् ॥ १०५ ॥

मर्णान्द्रमेखलायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् । सद्रत्नसारकेयूरकरकटुजमूयिताम् ॥ १०६ ॥

मन्दागुपुष्पमालाभिदरःस्वलयसमुज्ज्वलाम् । नितम्बकटिनधोनिषीनोऽप्यनुचानताम् ॥

शरत्पुधाकरामासविनिन्दास्यमनोहराम् । षड्भ्योऽज्वलरत्नानुशरत्पट्टजलोत्थिताम् ॥

सन्दनानुदकान्तुरीचित्रपत्रकभूयिताम् । नर्षान्वन्तुर्ध्याजामामोष्ठाधरानुशोभिताम् ॥ १०८ ॥

नुक्तापङ्क्तिप्रमामोपिदन्तराजिविराजिताम् । प्रकृतमालतीमालासंसक्तकषरीं धराम् ॥

पद्मिन्द्वचञ्चनासाग्रजेन्द्रमीक्तिकान्विताम् ॥ १११ ॥

पङ्क्तिशुद्धांशुकानातिज्वलितेन समुज्ज्वलाम् । सिद्धपृष्ठसमारूढां सुताभ्यां सहितां मुदा

अधरत्न रथात्पूर्णां धीकृष्णं प्रणनाम च । सुताभ्यां सह सा देवी समुधास धरासने ॥

गणेशः कात्तिकेयश्च नत्वा कृष्णं परात्परम् । ननाम शङ्करं धर्ममनन्तं कमलोद्भवम् ॥

उत्तस्थुरारात्ते देवा इद्वा तौ त्रिदशेश्वरी । आशिषश्च द्वादशैवा धासयामासुः सन्निधौ

ताभ्यां सह सदात्नानं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥ ११५ ॥

तस्थुर्देवाः समामध्ये देवी च पुरतो हरेः । गोपागोप्यश्च बहुशो यमुषुषिस्मयाकुलाः ॥

उपाव कामलां कृष्णः स्मेराननसरोरुहः । त्वं गच्छ भीष्मकगृहं नानारजसमन्वितम् ॥

यैदम्यां उदरे जन्म लभ देवि सनातनि ।

तव पार्णि प्रहीष्यामि गत्वाहं कुण्डिनं सति ॥ ११८ ॥

ता देव्यःपार्वतीद्वादसमुत्थाप्यत्परान्विताः । रत्नसिंहासने ख्ये धासयामासुरीश्वरीम्

पित्रेन्द्र पार्वती लक्ष्मीर्षांगधिष्ठातृदेवताः । तस्थुरेकासने तत्र सम्भाष्य च यथोचितम्

ताश्च सम्भाषयामासुः सम्प्रीत्या गोपकन्यकाः ।

उपुगोपादिषाः काञ्चिन्मुदा तासाञ्च सन्निधौ ॥ १२१ ॥

धीकृष्णः पार्वतीं तत्र समुधाच जगत्पतिः । देवि त्वमंशरूपेण मज नन्दमजं शुभे ॥

उदरे च यशोदायाः कन्याणि मन्दैरतसा । लभ जन्म महामाये वृष्टिसंहारकारिणि ॥

ग्रामे ग्रामे च पूजां ते कारयिष्यामि भूतले । कृष्णे मदीतले भक्त्या नगरीषु यनेषु च ॥

तत्राधिष्ठातृदेवी त्वां पूजयिष्यन्ति मानवाः । द्रष्टव्यैर्नादिषैर्दिव्यैर्यत्किञ्चमुदान्विताः

एष भूषणशोभात्रेण सृष्टिकामन्दिरेशिषे । पिता मां तत्र संस्थाप्य त्वामादाय गमिष्यति

कांसदर्शनमात्रेणागमिष्यति शिषान्तिकम् ।

मारापतात्पुं कृत्वा गमिष्यामि स्यमाधमम् ॥ १२७ ॥

इत्युत्वा धीद्विरस्तूर्णमुवाच च वद्वाततम् । अंशरूपेण यत्स त्वं गमिष्यति मदीतलम्

जाययत्वाश्च गर्भे च लभ जन्म सुरैरथ । भ्रष्टेन देवताः सर्वा गच्छन्तु परर्णाठलम् ॥

मागदाई कथिष्यामि वासुधायाश्च निदिनम् ॥ १२१ ॥

इत्युनवा राधिकायाश्चाम्भो निदागने चरे । तन्मूर्त्तयाश्च देव्यश्च गोपातोऽजगत्त  
एतस्मिन्ततोऽप्राप्ता वासुधायाश्च इरेः पुरः । पुराप्रवृत्तिर्गमनामुपाय निनयान्ति ।  
प्रज्ञोपाय ।

भवधानं कुत विमो किदूरस्य निवेरने । भागो कुत मदायाम कस्य कुत्र स्पर्त्तं मुवि  
भागां पातोऽदारकतां रेषकतां प्रभुः वादा । स भूयः सर्वदा भक्तः ईश्वरातो कतेति क  
के देवाः येन रूपेण देव्याश्च कस्यया कया । कृत्र कस्यामिषेयाश्च विनाशश्च मर्हन्ते ।  
प्रपणो वचनं धृत्या प्रत्युपाय जगत्पतिः । यस्य यत्राचकाराश्च कथयामि विधान  
शौराण उपाय ।

कामदेपो रौपिमणेयो रती मायावतीमती । शम्बरस्यगृहे या च उपायवेनर्ममिन्  
त्वं तस्य पुत्रो भविता नामनानिरुद्ध एष च । भारती शोणितपुरे वाजपुत्रो भविष्यति  
अनन्तो देवकीगर्भाद्रोहिणेयो जगत्पतिः । मायया गर्भसङ्कर्षाप्राना सङ्कर्षः स्मृतः ।  
कालिन्दी सूर्यतनया गङ्गाशेन महीतले । अर्द्धांशेनैव तुलसी लक्ष्मणा राजकन्यका ।  
सावित्री वेदमाता च माया नामजिती सती ।

वसुन्धरा सत्यभामा शैब्या देवी सरस्वती ॥ १४० ॥

रोहिणी मित्रचिन्दा च भविताराजकन्यका । सूर्यपत्नीरत्नमालाकलया च जगद्गुरो  
स्वाहांशेन सुशीला च हविमण्याद्याः स्त्रियो नव ।

दुर्गाक्षांशा जाम्बवती महिषीणां दश स्मृताः ॥ १४२ ॥

अर्द्धांशेन शैलपुत्री यानु जाम्बवतो गृहम् । कैलासे शङ्कराशा च यभूय पार्वती प्रति ।  
कैलाशगामिनं विष्णुं श्वेतद्वीपनिवासिनम् । आलिङ्गनं देहिकान्ते नास्ति दोषो ममाश्रया  
प्रहोषाच ।

कथं शिवाज्ञा तां देवीं यभूय राधिकापते । विष्णोः सम्भाषणे पूर्वं श्वेतद्वीपनिवासिनः  
शौराण उपाय ।

पुरा गणेशं द्रष्टुं च प्रजग्मुः सर्वदेवताः । श्वेतद्वीपात् स्वयं विष्णुर्जगाम शङ्करस्तावत्

॥ गणेशं मुदितः समुवास सुखासने । सुखेन दृश्युः सर्वे त्रैलोक्यमोहनं वपुः ॥  
हरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं धरम् । सुन्दरं श्यामरूपञ्च नवयीपनसंयुतम् ॥  
न्दनागुच्छकस्त्रीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । रत्नालङ्कार्योभाढ्यं स्मेराननसरोरुहम् ॥१४६॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च पार्वदेः पखिष्टितम् ।

वन्दितञ्च सुरैः सर्वैः शिष्येन पूजितं स्तुतम् ॥ १५० ॥

। दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं प्रसन्नवदनैक्षणम् । मुखमाच्छादयामास वाससा ध्वाङ्गया सती  
स्तीपसुन्दरं रूपं दर्शं दर्शं पुनः पुनः । ददर्श मुखमाच्छाद्य निमेररहिता सती १५२ ॥  
रत्नाद्भुतवेशञ्च सस्मिता धनचञ्चुषा । सुखसागरसंमग्ना बभूव पुलकाञ्जिता ॥ १५३ ॥  
क्षणं ददर्श पञ्चास्यं शुन्नचणं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपरिधरं कन्दर्पकोटिसुन्दरम् ॥१५४  
क्षणं ददर्श श्यामं तमेकास्पञ्च द्विलोचनम् । चतुर्भुजं पीतवस्त्रं धनमालाविभूषितम् ॥  
एकं ब्रह्मसूक्तिभेदमभेदं वा निरूपितम् । दृष्ट्वा बभूव सा प्राया सकामा विष्णुमायया ॥  
मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । तान्पार्वतीत्कार्यपाताञ्च श्रेष्ठः सत्त्वगुणात्मकः  
दृष्ट्वा तं पार्वती भक्त्या पुलकाञ्जितविग्रहा । मनसा पूजयामास परमात्मानमीश्वरम् ।  
दुर्गान्तरामिप्रायञ्च क्षुधुधे शङ्करः स्वयम् । सर्वान्तरात्मा भगवानन्तर्यामी जगत्पतिः ॥  
दुर्गाञ्च निर्जनीभूय तामुवाच हरः स्वयम् । बोधयामास त्रिविधं हितं तथ्यमखण्डितम्

शङ्कर उवाच ।

निवेदनं मदीपञ्च निबोध शैलकन्यके । शृङ्गारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने ॥ १६१ ॥  
यहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मैकञ्च सनातनम् । देवको भेदरहितो विषयान्मूर्त्तिभेदकः ॥  
सर्वेषां प्रकृतिर्होका माता त्वं सर्वरूपिणी । स्वयम्भुवश्च घाणीत्वं लक्ष्मीर्नारायणोरसि  
मम वक्षसि दुर्गात्वं निबोधाध्यात्मकं सति । शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच सुरेश्वरी

श्रीपार्वत्युवाच ।

दीनबन्धो कृपासिन्धोतव मामकृपा कथम् । सुचिरंतपसालब्धो नाथस्त्वंजगतां मया  
मादृशीं किङ्करीनाथ न परित्यक्तुमर्हसि । अयोग्यमीदृशं वाक्यं मां मा पद महेश्वर ॥  
सच वाक्यं महादेव पालयिष्यामि सर्वथा । देहान्तरे जन्मलब्ध्या भक्तिप्यामिहरिहर ॥

इत्येवं घवनं धृत्या विरराम महेश्वरः । उद्यैर्जहासामयदः पार्वत्यै चामपं दशौ ।  
 तत्प्रतिशापालनाय पार्वती जाम्ययद्गृहे । लभिष्यति जनुर्धातर्नाम्ना जाम्ययती सती  
 प्रहोपाच ।

भूमौ कतिविधे भूपे संस्थिते पार्वती कथम् । ललाम भारते जन्मनिन्दितेभाल्लुकेगृहे  
 श्रीहृष्ण उवाच ।

रामाघतारे त्रेतायां देवांशाश्च ययुर्महीम् । हिमालयांशो मल्लूकोजाम्ययान् रामकिङ्क  
 रामस्य घरदानेन चिरजीवी धिया युतः । कोटिसिंहबलाधारः क्रियते च महाबलः ।  
 पितुरंशगृहं गत्वा जगामांशेन भूतलम् । एयं पूर्वस्य धृत्तान्तं कथितं शृणु मनुष्यात् ।  
 सर्वेषाञ्च सुराणाञ्चैवांशा गच्छन्तु भूतलम् । नृपपुत्रा मत्सहाया भविष्यन्ति स्वेविषे  
 कमलाफलया सर्वा भवन्तु नृपकन्यकाः । मन्महिष्यो भविष्यन्ति सहस्राणाञ्च बोद्धु  
 धर्मोऽयमंशरूपेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः । घायोरंशाद्धीमसेनो वज्रंशादजुनः स्वयम् ।  
 नकुलः सहदेवश्च सर्वेषांशसमुद्भवः । सूर्यांशः कर्णधीरश्च विदुरः शमनः स्वयम् ।  
 दुष्येधनः फलेरंशः समुद्रांशश्चशान्तनुः । अश्वत्थामा शङ्करांशो द्रोणोवह्यंशसम्भवः  
 चन्द्रांशोऽप्यभिमन्युश्चभीष्मश्चैवस्वयं वसुः । वासुदेवः कश्यपांशोऽप्यदित्यंशाच्चदेवकी  
 वस्यंशो मन्दगोपश्च यशोदा वसुकामिनी । द्रौपदी कमलांशा च यज्ञकुण्डसमुद्रया ।  
 हुताशनांशो भगवान् धृष्टद्युस्तो महाबलः । सुभद्राशतरूपांशा देवकीगर्भसम्भवा ॥ १८ ॥  
 देवा गच्छन्तु पृथिवीमंशेन भारहाएकाः । कलया देवपत्न्यश्च गच्छन्तु पृथिवीतलम् ।  
 इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद । सर्वं विवरणं ध्रुवा तत्रोपास प्रजापतिः ॥

हृष्णस्य घामे घान्देर्घा दक्षिणे कमलालया ।

पुरतो देवताः सर्वाः पार्वती चापि नारद ॥ १८४ ॥

गोप्यो गोपाश्च पुरतो राधा वक्षःस्थलस्थिता । एतस्मिन्नन्तरेसाच तमुवाच प्रजेश्वरी  
 राधिकोवाच ।

प्रययामि किङ्करीघवनं प्रभो । प्राणा दहन्ति सततमान्दोलयति मे मनः ।  
 कथुर्निर्मालनदुर्नुमयता तय दर्शने ।

त्वया विना कथं नाथ यास्यामि धरणीतलम् ॥ १८७ ॥

कतिकालान्तरं बन्धो मेलनं मे त्वया सह । प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं भविष्यत्येव गोकुले  
निमेषश्च युगशतंभवितामे त्वयाविना । कं द्रक्ष्यामि कयास्यामि कोषामांपालयिष्यति  
मातरं पितरं बन्धुं भ्रातरं भगिनीं सुतम् ।

त्वया विनाहं प्राणेश चिन्तयामि न कं क्षणम् ॥ १९० ॥

करोषि माययाच्छत्रां माञ्जेन्मायेशभूतले । विस्मृतां विभवं दृष्ट्वा सत्यं मे शपथं कुरु  
अणुक्षणं मम मनोमधुषो मधुसूदन । करोतु भ्रमणं नित्यं समार्ध्याके पदाम्बुजे ॥ १९२ ॥

यत्र तत्र च यस्यां वा योनौ जन्म भवत्विदम् ।

एवं स्वस्य स्मरणं दास्यं मह्यं दास्यसि धाम्निष्ठतम् ॥ १९३ ॥

कृष्णस्त्वं राधिकाहञ्ज प्रेमसौभाग्यमावयोः । न विस्मरामि भूमौ च देहिमह्यं परं परम्  
यथा तन्या सह प्राणाः शरीरं छायाया सह । तथाययोरजन्म यातु देहि मह्यं परं विमो  
चधुर्निमेषच्छेदो भविता नाचयोर्भुषि । तत्रागत्यापि कुत्रापि देहि मह्यं परं प्रमो ॥

मम प्राणैस्तव तनुः केन वा धार्यते हरेः । आत्मता मुरली पादौ मनसा धापिनिर्मितौ  
स्त्रियः कतिपिधाः सन्ति पुरुषा वा पुरष्टुतः ।

नास्ति कुत्रापि कान्ता वा कान्तासक्ता च मादृशी ॥ १९८ ॥

तव देहाद्भागैर्नरेणपाहं विनिर्मिता । इदमेवाययोर्भेदो नास्त्यतस्त्ययि मे मतः ॥ १९९ ॥  
ममारममानसः प्राणांस्त्वपिस्त्वस्याप्यकेनवा । तथात्ममानसः प्राणामविचासंस्थितामपि  
मतो निमेषविरहादात्मनो पितृकथं मतः । प्रदग्धं सन्तनं प्राणा दहन्ति विरहधुती ॥ २०१ ॥

इत्येषमुनया सा देपी तत्रैव सुरमंसदि ।

भूयोभूयो शरोदोषैर्भूत्वा तथरणागुजे ॥ २०२ ॥

कोदे हृत्वा च तां कृष्णो मुगं संमृश्य वाससा ।

षोडशमास विपिधं सत्यं तप्यं हितं षचः ॥ २०३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

आप्यातिमहं परं धोर्गं शोकच्छेदकत्तनम् । शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगीन्द्राणाञ्च दुर्लभम्

आधाराधेययोःसर्षप्रह्लाण्डं पदय सुन्दरि । आधारव्यतिरेकेण नास्त्यात्रे यस्यसम्म  
 फलाधारश्च पुष्यश्च पुष्याधारश्चपह्वयम् । स्क्न्धश्चपह्वयाधारःस्क्न्धाधारस्तदस्वा  
 वृक्षाधारोऽप्यङ्कुश्च वीजशक्तिसमन्वितः । मण्डिरेषाङ्कुराधारश्चाट्याधारो वसुन्धरा  
 शेषोवसुन्धराधारःशेषाधारो हि फच्छपः । पायुश्चफच्छपाधारो पाप्याधारोऽहमेव

ममाधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि शाश्वतम् ।

त्वञ्च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ २०६ ॥

त्वं शरीरस्वरूपासि त्रिगुणाधाररूपिणी । तवात्माहं निरीहश्च चेष्टावांश्च त्वया सह  
 पुरुषाद्दीर्घ्यमुत्पन्नं धीर्प्यात् सन्ततिरेष च । तयोराधाररूपा च कामिनी प्रकृतेः कला  
 पिना देहेन कुत्रात्मा क शरीरंविनात्मना । प्राधान्यञ्च द्वयोर्देवि विना द्वाभ्यां कुतोभव  
 न कुत्राप्यावयोर्भेदो राधे संसारजीवयोः । यत्रात्मा तत्र देहश्च न भेदो विनयेन कि  
 यथा क्षीरे च घापत्यं दाहिका च हुताशने ।

भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः ॥ २१४ ॥

घापत्यङ्गुधयोरेक्यं दाहिकानलयोर्यथा । भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथावयोर्  
 मया विना त्वं निर्जोषा चादृश्योऽहं त्वया विना ।

त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम् ॥ २१६ ॥

विना मृदा घटं कर्तुं यथा नालंकुलालकः । विना स्वर्णंस्वर्णकारोऽलङ्कारं कर्तुंमक्षम  
 स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम् ।

सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी ॥ २१८ ॥

मम प्राणसमा लक्ष्मीर्वाणी च सर्वमङ्गला । प्रह्लेशानन्तधर्मांश्च त्वमे प्राणाधिका प्रिया  
 समीपस्था श्मेसर्वेसुरादेव्यश्चराधिके । एतेभ्योऽप्यधिकानोचेत्कथं वक्षःस्थलस्थिता

त्यजाधुमोक्षणं राधे श्रान्तिञ्च निष्फलां सति ।

विहाय शङ्का निःशङ्कं वृषमानुग्रहं यज ॥ २२१ ॥

कलापत्याश्च जठरे मासानां नय सुन्दरि । पायुना पूरयित्वा च गर्भे रोधय मायया ॥  
 जगमे समनुप्राप्ते त्वमाधिर्भय भुञ्जेत् शिशुरूपं विहाय च २२१

वायुनिःसरणे काले कलावत्याः समोपतः । भूमौ विवसनीभूय पतित्वा रोदिपिधुषम्  
 अयोनिसम्भवा त्वञ्च भवितागोकुले सति । अपोनि सम्भयोऽहञ्च नावयोर्गर्भसंस्थितिः  
 भूमिष्ठमात्रा तातो मां गोकुलं प्रापयिष्यति । तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्याकंसभयंछलम्  
 यशोदामन्दिरे मात्र सानन्दं नन्दनन्दनम् । नित्यंद्रश्यसिकल्पाणि समाश्लेषणपूर्वकम्  
 स्मृतिस्ते भविता काले घरेण मम राधिके । स्वच्छन्दं विहरिष्यामि नित्यं वृन्दावने वने  
 त्रिःसप्तशतकोटिभिर्गोपिभिर्गोकुलं व्रज । त्रयस्त्रिंशद्वयस्यामिः सुरीलादिभिरेव च ॥

संस्थाप्य संख्यारहिता गोपीर्गोलोक एव च ।

समाश्वास्य प्रयोधैश्च मितया च सुधागिरा ॥ २३० ॥

अहमसंख्यान् गोपालान् संस्थाप्यात्रैव राधिके ।

यसुदेवाध्वं पश्चाद् यास्यामि मथुरां पुरीम् ॥ २३१ ॥

व्रजं व्रजन्तु वीडार्थं मम सङ्गे प्रियात् प्रियाः । घट्टवानां गृहे जन्मलभन्तु गोपकोटयः  
 इत्येषमुक्ता धीकृष्णो विरराम च नारद । ऊपुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च तत्र वी ॥  
 ब्रह्मेशधर्मशेराश्च श्रीकृष्णं तं परात्परम् । शिवापद्मास्तरस्वत्यस्तुष्टुयुः परया मुदा ॥  
 मनया गोपाश्च गोप्यश्च विरहश्चरकातरा । तत्र संस्तूय श्रीकृष्णं प्रणेमुः प्रेमविह्वलाः  
 प्राणाधिकं प्रियं कान्तं राधा पूर्णमनोरथा ।

पत्तिप्राप मनया च विरहश्चरकातरा ॥ २३६ ॥

साधुपूर्णातिदीनाश्च दृष्ट्वा राधां भपाकुलाम् । प्रयोधप्रचनं सत्पमुपाच तां हृदिःस्थयम्  
 श्रीकृष्ण उवाच ।

प्राणाधिके महादेवि स्थिरा भय भयं त्यज ।

यथा स्वश्च तथाहञ्च क्व चिन्ता ते मयि स्थिते ।

किन्तु ते कथयिष्यामि किञ्चिद्देवास्त्यमङ्गलम् ॥ २३८ ॥

वर्षाणां शतकं पूर्णं त्यद्विच्छेदो मया स्तद्व । धीदामशापजन्वेन बर्भभोगेन सुन्दरि ! ॥

भविष्यत्येष मम च मथुरागतमनं ततः ॥ २४० ॥

तत्र भारत्पतरणं विबोर्धन्धनमोक्षणम् । मालाकारतन्तुपापकुञ्जिकानाञ्च मोक्षणम् ॥



घातयित्वा च यपनं भुञ्जन्स्य मोक्षणम् । द्वारकायाश्च निर्माणं राजसूयस्य दर्शनम् ।  
उत्तार्हं राजकन्यानां सहस्राणाञ्च पौड्रशः । दशाधिकशतम्यापि शत्रूणां दमनन्तया ।  
मित्रोपकरणञ्चैव पाराणस्याश्च दाहनम् । हरस्य जुम्भायां तत्र थाणस्य भुजकर्त्तनम् ।  
पारिजातस्य हरणं यद् यत् कर्मान्यद्देव च । गमनं तीर्थयात्रायां मुनिसङ्घप्रदर्शनम् ।  
सम्भाषणञ्च पत्नूनां यज्ञसम्पादनं पितुः । शुभशणे पुनस्तत्र त्वया सार्द्धं प्रदर्शनम् ।  
करिष्यामि च तत्रैव गोपिकानाञ्च दर्शनम् ।

मुन्यमाध्यारिमकं दत्त्वा पुनः सत्यं त्वया सह ॥ २४७ ॥

दिवानिशमधिच्छेदो मया सार्द्धमतः परम् । भविष्यति त्वया सार्द्धं पुनरागमनं व्रजे ।  
कान्ते पिच्छेदसमये पर्वाणां शतके सति । नित्यं समीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वयासह  
गतस्य द्वारकां त्यक्तो मम नारायणांशस्य (णस्य च) ;  
शतवर्षान्तरे साध्यान्येतान्येव मुनिश्चितम् ॥ २५० ॥

भविष्यति पुनस्तत्र वने घासस्त्वया सह । पुनः पित्रोश्च गोपीनां शोकसम्मार्जनं परम् ।  
कृत्वा भारघतरणं पुनरागमनं मम । त्वया सहापि गोलोके गोपैर्गोपीभिरैव च ।  
ममनारायणांशस्य घाण्याच पद्मया सह । वैकुण्ठगमनं राधे नित्यस्य परमात्मनः ॥ २५३  
श्वेतद्वीपे धर्मगेहमंशानाञ्च भविष्यति । देवानाञ्चैव देवीनामंशा यास्यन्ति चाक्षयम् ।

पुनः संस्थितिरशैव गोलोके मे त्वया सह ॥ २५४ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं भविष्यञ्च शुभाशुभम् । मया निरूपितं यत्तत् कान्ते केन निवार्यते  
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः कृत्वा राधां स्ववक्षसि ।  
तस्यै तस्युः सुराः सर्वे सुरपत्न्यश्च विस्मिताः ॥ २५६ ॥  
उवाच श्रीहरिर्दिवान् देवीञ्च समयोचितम् ।

देवा गच्छन्त काप्याद्यं स्वालयं विपयोचितम् ॥ २५७ ॥

गच्छ पार्वति कौलासंभुताभ्यांस्वामिना सह । मयानियोजितं कर्मसर्वकाले भविष्यति  
भविता कलया जन्म सर्वेषाञ्च व्रजेश्वरि । क्षुद्राणाञ्चैव महतां देवं लभ्योदरं धिता ॥  
स्वालयं प्रययुमुंदा । लक्ष्मीं सरस्वतीं भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमम्

हरिणा योजितं कर्म कर्तुं व्यग्रा महीं ययुः ।

भर्त्रा निरूपितं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ २६१ ॥

उवाच राधिकां कृष्णो वृषभानुग्रहं व्रज । गोपगोपीसमूहैश्च सह पूर्वतिरूपितैः २६२

अहं यास्यामि मथुरां वसुदेवालये प्रिये ।

पश्चात् कंसभयव्याजाद् गोकुलं तव सन्निधिम् ॥ २६३ ॥

राधा प्रणम्य श्रीकृष्णं रक्तपङ्कजलोचना । भृशं हरोद पुरतः प्रेमचिल्लेदकातरा ॥ २६४ ॥

स्थायं स्थायं क्वचित् यान्ती गत्या गत्वा पुनः पुनः ।

पुनः पुनः समागत्य दर्शं दर्शं हरेर्मुखम् ॥ २६५ ॥

पपी चञ्चुश्चकोराम्यां निमेपरहिता सती । शरत्पार्ष्णचन्द्राभसुधापूर्णं प्रभोर्मुखम् ॥

ततः प्रदक्षिणोक्त्य सप्तधा परमेश्वरी । प्रणम्य सप्तधा चैव पुनस्तस्थौ हरेः पुरः ॥

आजगमुर्गोपिकानाञ्च त्रिःसप्तशतकोटयः । आजगाम च गोपानां समूहः कोटिसंख्यकः

गोपानां गोपिकानाञ्चसमूहैःसह राधिका । पुनः प्रणम्य तं कृष्णं तत्र तस्थौ च नारदः

त्रयस्त्रिंशद्द्वयस्याभितोषीभिः सह सुन्दरी । गोपानाञ्च समूहैस्तु प्रणम्य प्रययौ महीम्

हरिणा योजितं स्थानं प्रजग्मुर्नन्दगोकुलम् । वृषभानुग्रहं राधा गोप्यो गोपग्रहं ययुः

महीं गतायां राधायां गोपीभिः सह गोपकैः ।

यभूव आहरिः सद्यः पृथिवीगमनोन्मुखः ॥ २७२ ॥

सम्भाष्य गोपान् गोपीश्च नियोज्य स्वीयकर्मणि ।

मनोयायी जगन्नाथो जगाम मथुरां हरिः ॥ २७३ ॥

पूर्वं यदुपदपत्यञ्च देवकीवसुदेवयोः । यभूव सद्यस्तन् कंसः पुत्रपदकं जघान ह २७४

शेषांशं सप्तमं गर्भं माया वाकृष्य गोकुले । निधाय रोहिर्नागर्भे जगाम चाश्रया हरेः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्म-

खण्डे श्रीराधाकृष्णसम्पादवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः

## सप्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णजन्मपूर्वोपक्रमवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

तस्यातिरिक्तं कृष्णस्य महत्पुण्यकरं परम् । यद् जन्म महाभाग जन्ममृत्युजरापरम् ॥  
यसुदेवः कस्य पुत्रः कस्य कन्या च देवकी । कोषा यसुर्देवकी या विवाहश्च तयो ॥  
कथं जघान कंसस्तत्पुत्रपदकं सुदारुणः । कस्मिन् दिने हरेर्जन्म ध्योतुमिच्छामि ॥

नारायण उवाच ।]

कश्यपो यसुदेवश्च देवमाता च देवकी । पूर्वपुण्यफलेनैव प्रापतुः श्रीहरिं सुतम् ॥  
देवर्माद्गाम्भारिण्यां यसुदेवो महानभूत् । यस्योद्भवे देवसङ्घो घादयामास दुन्दुभिः ॥  
भानकश्च महाहृष्टो धीहरेर्जनकश्च तम् । सन्तः पुरातनास्तेन यदन्त्यानकदुग्दुग्मि ॥  
आदुक्तस्य सुतः धीमान् यदुर्वशासमुद्भवः । देवको भानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देव ॥  
गार्गी यदुक्नुव्यावाप्यैः सम्पन्नं यमुना सह ।

देवक्याः कात्यामास विधिपथ यथोचितम् ॥ ८ ॥

महासम्भृतसम्भारो यसुदेवाय सुसजे । उद्गाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल ॥  
अश्यानाञ्च सदस्याणि न्यर्गपात्राणि भाग्य । सार्द्धहस्तानां दासीनां शतानि सुन्दरानि ॥  
नानाविधानि द्रव्याणि वस्त्रानि विविधानि च । मणिध्रेष्ठानि घञ्जानि रत्नपात्राणि ता ॥  
सद्रत्नमूर्धिता कन्यां शतयन्त्रसप्तप्रभाम् ।

शैलोच्चमोहिनीं कन्यां मान्यां धेष्टाञ्च योनिताम् ॥ १२ ॥

कृपाधानं गुणाधानं सन्धितां यच्छटोसताम् । नयसङ्गमयोग्याञ्च प्रौढिप्रनयवीर्या ॥  
तां पृष्ट्वा च धे हृत्वा प्रन्याजप्रकारोत्तरा ॥ १३ ॥

बंसो हृष्टः सरवरो मणिमुद्गाहकर्मणि ।

कंसं संबोध्य गगने धाम् बभूवाशरीरिणी । कथं हृष्टोऽसिराजेन्द्र शृणु सत्यवचोहितम्  
 देवक्या अष्टमो गर्भा मृत्युहेतुस्तथैव हि ॥ १५ ॥

श्रुत्यैवं देवकीकंसः खड्गहस्ती महायलः । दैववाक्साद्भवात् क्रीपात् पापिष्ठो हन्तुमुद्यतः  
 तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा वसुदेवः सुपण्डितः । बोधयामास नीतिज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥  
 वसुदेव उवाच ।

राजनीतिं न जानासि शृणुमेवचनं हितम् । यशस्कृत्ञ्च दोषञ्च शास्त्रोक्तं समयोचितम्  
 अस्या पयाष्टमात् गर्भात् मृत्युञ्चेत् तव भूमिप ।  
 इमां हत्वा हि दुष्कीर्तिं करोषि नरकं च किम् ॥ १६ ॥

घधे च क्षुद्रजन्तूनां हिंसकानाञ्च पण्डितः । कार्पापणं समुत्सृज्य मृत्युकाले प्रमुच्यते  
 अहिंसकानां क्षुद्राणां च घे शतगुणं ध्रुवम् । प्रायश्चित्तं मृत्युकाले कथितं पश्योनिना ॥  
 घधे विशिष्टजन्तूनां पश्वादीनाञ्च कामतः । ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरवर्षीत् ।

नराणां म्लेच्छजातीनां च घे शतगुणं ततः ॥ २२ ॥

म्लेच्छानाञ्च शतानाञ्च यत् पापं लभते घधे । सच्छूद्रैकस्य च घधे तत् पापं लभते पुमान् ॥  
 सच्छूद्राणां शतानाञ्च यत् पापं लभते घधे । तत्पापं लभते नूनं गोघधेनैव निश्चितम्  
 गवां दशगुणं पापं ब्राह्मणस्य घधे भवेत् । विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीघधे लभते नरः ॥ २५ ॥  
 चिरोपतो हि भगिनी पोष्या या शरणगतः । स्त्रीहत्याशतपापञ्च भवेत् तस्या घधे नृप  
 तपोजपञ्च दानञ्च पूजनं तीर्थदर्शनम् । चिप्राणां भोजनं ह्योमं स्वर्गार्थं कुरुते नरः ॥ २७ ॥  
 जलवृद्धवृद्धत् सद्यं स्वप्नवद् भयदं भयम् । पश्यन्ति सततं सन्तो धर्मं कुर्वन्ति यत्नतः  
 मर्नीं (भगिनीं) च त्यज धर्मिष्ठ स्ववंशपरम्पराकर ।

बुधाः कृतिविधाः सन्ति सभायां गृच्छन्तान् नृप ॥ २६ ॥

अस्याश्चैवाष्टमे गर्भे यदपत्यं भवेन्ममम् । वन्धो तुभ्यं प्रदास्यामि तेन मे किं प्रयोजनम्  
 भयघा यान्यपत्यानि भयन्ति हानिनां वर । तानिसर्वाणि दास्यामि त्वत्तो नैको घरः प्रियः  
 भगिनी त्यज राजेन्द्र कन्यातुल्यां प्रियां तव । मिष्टान्नपानदानेन वर्द्धितामनुजां सदा ॥  
 वसुदेव उवाचः श्रुत्वा तव्याज भगिनीं नृपः । वसुदेवः प्रियां नीत्वा जगाम निजमन्दिरम्

प्रमादपत्ययत्कञ्च यद् यद्भुनञ्च नारद ।

दर्शो तस्मै घसुः सत्यान् स जघान क्रमेण तान् ॥ ३४ ॥

देवपयाः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां दर्शो भिया । रोहिणीजठरे माया तमाहृत्य ररक्ष च ।  
रक्षकाः कथयामासुर्गर्भस्त्रापो यभूष ह । तस्माद्बु यभूष भगवन्नात्ता सद्गुणैःप्रभुः॥३५॥

तस्या एपाष्टमो गर्भो घायुपूर्णो यभूष ह ॥ ३७ ॥

गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते । दृष्टिं दर्शो च गर्भे स भगवान् सर्वदर्शनः ॥३८॥  
स्वयं रूपपती देवी सर्वासां योपितां घरा । यभूष दर्शनात् सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा  
ददर्श देवकीं कंसः प्रबुद्धवदनेक्षणाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च मायामिव दिशोदश॥४०॥  
ज्योतिषां संहतिञ्चैव यथा मूर्त्तिमतीमिव । दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रश्च विस्मयं परमं ययी ॥  
अस्मान्गर्भादपत्यञ्च मृत्युपीडं ममैव च । इत्येवमुक्त्वा कंसश्च चक्रे रक्षां प्रयत्नतः ।

देवकीं घसुदेवञ्च सप्तद्वारे ररक्ष च ॥ ४२ ॥

पूर्णे च दशमे मासि गर्भः पूर्णो यभूषह । यभूष सा चलस्पन्दा जङ्करुपा च नारद॥४३॥  
गर्भे च घायुना पूर्णे निर्लितो भगवान् स्वयम् । हृत्पद्मदेशे देवक्या हाधिष्ठानं चकारह  
सा विश्वम्भरगर्भां च मन्दिराम्यन्तरे सती । उवासजङ्करुपा च क्लेशयुक्ता यभूष हा॥४५॥  
उवास च क्षणं देवी क्षणमुत्थाय तिष्ठति । क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै ।

दृष्ट्वा च देवकीं शीघ्रं घसुदेवो महामनाः ।

प्रसूतिसमयं दृष्ट्वा सस्मार हरिमीश्वरम् ॥ ४७ ॥

रत्नप्रदीपसंयुक्तमन्दिरे सुमनोहरे । स्थापयामास खड्गञ्च लौहं तोयं हुताशनम् ॥४८॥  
मन्त्रज्ञञ्च नरञ्चैव यन्धुपत्नीर्भवाकुलः । विद्वांसं ब्राह्मणञ्चैव सतीवर्ग्युञ्च सादरम् ॥४९॥  
एतस्मिन्नन्तरे तस्यां रात्रौ द्विप्रहरगेते । व्यासञ्च गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः ॥५०॥  
चतुश्च घायवक्षेष्टा ययुर्निद्राञ्च रक्षकाः । अचेष्टिताश्च शयने मृता इव विचेतनाः ॥५१॥  
एतस्मिन्नन्तरे तत्रचाजमुस्त्रिदशेश्वराः । तुण्डयुर्धर्मब्रह्मेशा गर्भस्वं पत्येश्वरम् ॥५२॥

देवा ऊचुः ।

जगद्भयोनिरयोनिस्त्वमतन्तोऽव्यय एव च । ज्योतिःस्वरूपोह्यनघःसगुणोनिर्गणोमहात्

भक्तानुरोधान् साकारो निराकारो निरङ्कुशः ।

स्वेच्छामयश्च सर्वेशः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ॥ ५४ ॥

सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च । निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः  
निष्पाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः । स्वात्मारामः पूर्णकामो निर्दोषो नित्यएव च  
सुमगो दुर्मगो धाम्नी दुराराध्यो दुरत्ययः । वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः ॥  
इत्येषमुत्तया देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः । हर्षाश्रुलोचनाः सर्वेष्वर्षुः कुसुमानि च ॥ ५८ ॥

द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।

दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते चाञ्छितं फलम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मादिकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

त्वेवं स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्थालयं ययुः । धभूय जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मधुरा पुरी ॥

घोरान्धकारनिविडा धभूय घामिनी मुने ॥ ६० ॥

गते सप्तमुहूर्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते ॥ ६१ ॥

वेदातिरिक्ते दुर्ज्ञेये सर्वोत्कृष्टे शुभेक्षण्ये । शुभप्रहैर्हृष्टलग्नेऽप्यदृष्टे चाशुभप्रहैः ॥ ६२ ॥

अर्द्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिष्यामष्टमीतिथौ । जयन्तीयोगयुक्ते च चार्द्धचन्द्रोदये मुने ॥

इडा इडा क्षणं लग्नं भीताः सूर्यादयस्तथा ।

घमने क्रममुलङ्घ्य जामुर्मनिं शुभाशुभाः ॥ ६४ ॥

सुप्रसन्ना प्रहाः सर्वे धभूयुस्तत्र संस्थिताः ।

एकादशस्थास्ते प्रीत्या मुहूर्तं धातुराज्ञया ॥ ६५ ॥

वर्षर्षुश्च जलधरा वयुर्धाताः सुशीतलाः । सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥

आपयो मतवश्चैव यक्षगन्धर्वकिन्नराः । देवा देव्यश्च मुदिता ननूतुष्वाप्सरोगणाः ॥

अगुर्गन्धर्वपत्नयो विद्याधर्यश्च नारद । सुमेत सुस्रुचूर्णयो जज्वलुध्यानयो मुदा ॥

नेदुर्दुग्धुभयःस्पर्गे चानकाश्च मनोरमाः । प्रसूतुपारिजातानां पुष्पवृष्टिर्धभूय ॥ ६६ ॥

अगाम सुतिक्तगोहं नारीकूपं विधाय भूः । जयराजः शंकराश्रौ हविश्रौ धभूय ॥ ७० ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पपाग देवकी रात्री । निःससार च पायुश्च देवकीतडराक्तः ॥७१॥

तत्रैव भगवान् कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च ।

हृत्पद्मकोपाद् देवक्या हरिरापिर्गभूय ह ॥ ७२ ॥

अतीवकमनीयञ्च शरीरं सुमनोहरम् । द्विभुजं मुग्धीहस्तं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥७३॥

इंद्रास्यप्रसभ्नाभ्यं भक्तानुग्रहकातरम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूयणीश्च विभूगितम् ॥

नयीतनीरदश्यामं शोभितं पीतयाससा । चन्द्रनागुरुकस्तूर्तीकुङ्कुमद्रववर्धितम् ॥ ७४ ॥

शरत्पार्यणवन्द्रास्यं विम्बाधरमनोहरम् । मयूरपुच्छनूडञ्च सद्रत्नमुकुटोत्थयन् ॥७५॥

त्रिभङ्गपद्मभ्यञ्च घनमालाविभूषितम् । श्रीधरसपक्षसं चारुकोस्तुमेन विराजितम् ॥

किशोरपयसं शान्तं कान्तं प्रहोशयोः परम् ॥ ७७ ॥

वदशं घसुदेवश्च देवकीपुरतो मुने । तुष्टाव परया भनया विस्मयं परमं ययौ ॥ ७८ ॥

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिभ्रास्यकन्धरः ।

अध्रुपूर्णः सपुलको देवक्या च स्त्रिया सह ॥ ७९ ॥

घसुदेव उवाच ।

श्रीमन्तमिन्द्रियातीतमक्षरं निर्गुणं विभुम् । ध्यानासाध्यञ्च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम्

स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम् । निर्लिप्तं परमं ब्रह्म धीजरूपं सनातनम् ॥८१॥

स्थूलात् स्थूलतरं व्याप्तमतिमृश्ममदर्शनम् । स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम् ॥

शरीरघन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम् । प्रकृतिं प्रकृतीशञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥ ८२ ॥

सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वान्तकरमव्ययम् ।

सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभो ॥ ८४ ॥

अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती । यं स्तोतुमसमर्थञ्चपञ्चवक्त्रःपङ्कजनः ॥

चतुर्मुखो वेदकर्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा । गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥

ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः । स्वप्ने तेषामदृश्यञ्च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते

श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः ।

विहायैवं शरीरञ्च बालो भवितुमर्हसि ॥ ८८ ॥

वसुदेवहृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । भक्तिदास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णवरणाश्रुजे ॥  
 विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम् । सङ्कटं निस्तरेत् तूर्णं शत्रुभीत्याःप्रमुच्यते ॥  
 इति श्री ब्रह्मवैवर्ते वसुदेवहृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

नारायण उवाच ।

वसुदेववचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् । प्रसन्नवदनः श्रीमान् भक्तानुग्रहकातरः ॥  
 श्रीकृष्ण उवाच ।

तपसाञ्च फलेनैव पुत्रोऽहं तव साम्प्रतम् । धरं वृणुष्व भद्रन्ते भविष्यति न संशयः ॥  
 पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः । पत्न्यासहृतपस्विन्यातपसाराधितस्त्वया  
 पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा माञ्च वृतो वरः । मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः  
 दत्त्वा तुभ्यं धरं तात मनसालोच्य चिन्तितम् ।

मत्समो नास्ति भुवने पुत्रोऽहं तेन हेतुना ॥ १५ ॥

तपसाञ्च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम् । सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥ १६ ॥  
 अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवः पिता मम । देवकी देवमातेयमदितेरंशसम्भवा ॥ १७ ॥  
 त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेऽशेन सम्भवः ।

अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसः फलात् ॥ १८ ॥

मांघातयं पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन वा पुनः । मां प्राप्तोऽसि महाप्राज्ञजीवन्मुक्तोभविष्यसि  
 यशोदाभयनं शीघ्रं मां गृहीत्वा व्रजं व्रज । संस्थाप्यतत्रमांतात मायामादाय स्थापय ॥  
 इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र बालरूपो बभूव ह । ननं भूमौ शयानञ्च ददर्श श्यामलं सुतम् ॥  
 दृष्ट्वा स बालकं तत्र मोहितो चिष्णुमायया । किंचा कूटञ्च तन्द्रायात्प्रपूर्यं सूतिकागृहे ॥  
 इत्युक्त्वा वसुदेवञ्च समालोच्य स्त्रिया सह ।

गृहीत्वा बालकं क्रोडे जगाम नन्दगोकुलम् ॥ १०३ ॥

गत्वा नन्दव्रजं शीघ्रं चिवेश सूतिकागृहम् ।

ददर्श शयने न्यस्तां यशोदां निद्रयान्विताम् ।



निद्रान्धितश्च मन्दश्च सप्यं तत्र गृहे स्थितम् ॥ १०४ ॥

ददर्श यालिकां नानां तत्तत्काश्चनसन्निभाम् । इत्यद्वास्यप्रसन्नास्यो पर्यन्तीं गृहरीशस्य्

तां दृष्ट्वा घसुदेवश्च विस्मयं परमं ययौ ॥ १०६ ॥

संस्थाप्य तत्र पुत्रश्च कन्यामादाय सत्परम् ।

जगाम मधुरां व्रस्तः स्वफान्तासूतिकागृहम् ॥ १०७ ॥

स्थापयामास तत्रैव महामायाञ्जयालिकाम् । रोरुचमानां कामेव दृष्ट्वा व्रस्ता च देवकी  
रोदनेनैवसायाला पोषयामास रक्षकान् । उत्थाय रक्षकाः शीघ्रंजगृह्युर्वालिकां तदा ॥

गृहीत्वा यालिकां ते च प्रजामुः कंससन्निधिम् ।

जगाम देवकी पश्चात् घसुदेवश्च शोकतः ॥ ११० ॥

दृष्ट्वा च यालिकां कंसो नातिदृष्टो महामुने । रोरुचमानां फलयाणीं तद्व्या न बभूव ह्य

तां गृहीत्वा च पापाणे हन्तुं यान्तं सुदारणम् । ऊचतुर्वसुदेवश्च देवकी परमादरम् ॥

भो भो कंस नृपश्रेष्ठ नीतिशास्त्रविशारद । नियोध धाक्यं सत्यञ्च नीतियुक्तं मनोहरम्

हत्वावयोः पुत्रपट्कं दद्या ते नास्ति यान्धय । अधुना चाष्टमे गर्भे यालिकामबलां मम

हत्वा किं ते महैश्वर्य्यं भविष्यति महीतले । धीमेव हन्तुमवला किं क्षमा रणमूर्द्धनि ॥

इत्येवमुक्त्वा तं घसुदेवकी च समातले । रुरोद पुरतस्तत्र कंसस्य च दुरात्मनः ११६

कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तामुवाच सुदारुणः । शृणु धाक्यं मदीयञ्च नि बोधबोधयामि ते

कंस उवाच ।

तृणेन पर्वतं हन्तुं शको घाता च दैवतः ।

कीटेन सिंहशार्दूल मशकेन गजं तथा ॥ ११८ ॥

शिशुना च महावीरं महान्तं क्षुद्रजन्तुभिः । मूपिकेण च मार्जारं मण्डूकेन मुञ्जङ्गमम् ॥

पयं जन्येन जनकं भक्ष्येणैव च भक्षकम् । घह्निना च जलं नष्टं घह्निशुष्कतृणेन च ॥

पीताः सप्त समुद्राश्च द्विजेनैकेन जहनुना । घातुर्गतिर्विचित्रा च दुर्ज्ञेया भुवनत्रये ॥

दैवेन यालिका नष्टुं मां समर्था भविष्यति ।

यालिकाञ्च धधिष्यामि नात्र कालविचारणा ॥ १२२ ॥

इत्येवमुक्त्वा कंसश्च गृहीत्वा बालिकां तदा । हन्तुमारब्धवान् कंसस्तमुवाच वसुस्तदा

वृथा हिंसितवान् राजन् देहि बालां कृपानिधे ॥ १२३ ॥

स तच्छ्रुत्वा विचारल्लःकंसस्तुष्टो महामुने । संयोधयन्ती तत्रैववाग्बभूवाशरीरिणी ॥

हे कंस हंसि कां मूढ न विज्ञाय विधेर्गतिम् ।

कुत्रचित्ते निहन्तास्ति काले व्यक्तो भविष्यति ॥ १२५ ॥

श्रुत्वैवं दैववाणीञ्च तत्याज बालिकां नृपः ॥ १२६ ॥

वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितः । जग्मतुःस्यगृहं तौ च कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि

मृतामिष पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् । सा परा भगिनी विप्र कृष्णस्य परमात्मनः

पफानंशेन विख्याता पार्वत्यंशसमुद्भवा ॥ १२८ ॥

वसुस्तां द्वारकायान्तु रुक्मिण्युद्वाहकर्मणि । ददौ दुर्वाससे भक्त्या शङ्करांशायभक्तिः

एवं निगदितं सर्वं कृष्णजन्मानुकीर्तनम् । जन्ममृत्युजराविघ्नं सुखदं पुण्यदं मुने ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे

श्रीकृष्णजन्मखण्डे श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

## अष्टमोऽध्यायः

जन्माष्टमीव्रतमाहात्म्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि मतानां व्रतमुत्तमम् । फलं जयन्तीयोगस्य सामान्येन च साग्रतम् ॥

को वा दोषोऽप्यकारणे भोजने वा महामुने । उपवासफलं विपाजयन्त्याञ्जसुसम्मतम्

व्रतपूजाविधानञ्च संयमस्य च साग्रतम् । उपवासपारणयोः शुचिचार्य्यं यद् ब्रूमो ! ॥

नारायण उवाच ।

हरवा हविष्यं सप्तम्यां संयतः पारणे तथा । भरणीदयवेलायां समुत्थाय परेऽहनि ॥

प्रातःशुद्धं संविधापद्मातयासङ्कल्पमानरेम् । मनोपयासपोर्ध्वत्न श्रीकृष्णप्रीतिकेतुम्  
मन्वादिदिपसे प्राप्ते यन् फलं स्नानपूजनैः । फलं माद्रूपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं हि

तस्यां तिथौ पारिमार्त्रं पितृणां यः प्रयच्छति ।

गयाश्राद्धं कृतं तेन शताश्रं नात्र मंशयः ॥ ७ ॥

स्नातया नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिकागृहम् ।

लौहपद्मं पद्मिजालैर्युक्तं रक्षकसङ्घैः ॥ ८ ॥

तत्र द्रव्यं बहुपिघं नाङ्गीच्छेदन्कर्त्तनम् । धार्त्रीम्यरुपां नारीञ्च यत्नतःस्थापयेद्बुधः ।

पूजाद्रव्याणि चारुणि सोपचाराणि षोडश ।

फलान्यष्टौ च मिष्टानि द्रव्याण्येव हि नारद ॥ १० ॥

जातीफलञ्च कञ्जोलं दाडिमं श्रीफलन्तथा । नारिकेलञ्च जम्बीरं कूष्माण्डञ्च मनोहलं

आसनं घसनं पाद्यं मधुपर्कं तथैव च । अर्घ्यमाचमनीयञ्च स्नानीयं शयनन्तथा ॥ ११ ॥

गन्धपुष्पञ्च नैवेद्यं ताम्बूलमनुलेपनम् । धूपदीपां भूषणञ्च सोपचाराणि षोडश ॥ १२ ॥

पादप्रक्षालनं कृत्वा धृत्वा धौते च घाससी ।

आचम्य चासने स्थित्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १४ ॥

घटस्थारोपणं कृत्वा सम्पूज्य पञ्च देवताः । घटे हावाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम्

घसुदेवं देवकीञ्च यशोदां नन्दमेव च । रोहिणीं बलदेवञ्च पद्मीदेवीं वसुन्धराम् ॥ १६ ॥

रोहिणीं ब्राह्मणीञ्चैव ह्यष्टमीं स्थानदेवताम् ।

अश्वत्थाम्ना सह बलिं हनूमन्तं विभीषणम् ॥ १७ ॥

शुभं परशुरामञ्च व्यासदेवं मृकण्डकम् । सर्वस्थावाहनं कृत्वा ध्यानं कुर्व्याद्वरैस्तथा

पुष्पकं मस्तके न्यस्य पुनर्ध्यायेद्विचक्षणः । ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणु वक्ष्यामि नारद

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं कुमाराय महात्मने ॥ १६ ॥

चालं नीलाम्बुदाभमतिशयरुचिरं स्मेरवक्त्राम्बुजाभं

ब्रह्मेशानन्तधर्मैः कति कति दिवसैः स्तूयमानं परं यत् ।

ध्यानासाध्यसपीण्डैर्मनिमनजपरैः सिद्धसङ्घैस्ताध्यं

योगीन्द्राणामचिन्त्यमतिशयमनुलं साक्षिरूपं भजेऽहम् ॥ २० ॥

ध्यात्वा पुष्पञ्जदस्वानुतत्सर्वं मन्त्रपूर्वकम् । द्वाद्यतीवतंकुर्ष्यात्शृणुमन्त्रंयथाक्रमम्  
 आसनं सर्वशोभाढ्यं सद्गन्तमणिनिर्मितम् । विचित्रितञ्च चित्रेण गृह्यतां शोभनं हरे ॥  
 घसनं वह्निशुद्धञ्च निर्मितं विश्वकर्मणा । प्रतप्तस्वर्णखचितं घसनं गृह्यतां हरे ॥ २३ ॥  
 पादप्रक्षालनार्थञ्च स्वर्णपात्रस्थितं जटम् । पवित्रं निर्मलं चारुपुष्पं पाद्यञ्च गृह्यताम् ॥  
 मधु सर्पिर्दधिक्षीरं शर्करासंयुतं परम् । स्वर्णपात्रस्थितं देयं स्नानार्थं गृह्यतां हरे ॥ २५ ॥  
 र्वाक्षतं शुक्लपुष्पं स्वच्छतोयसमन्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीसहितं गृह्यतां हरे ॥ २६ ॥

सुस्वादु स्वच्छतोयञ्च घासितं गन्धवस्तुना ।

शुद्धमाचमनार्हञ्च गृह्यतां परमेश्वर ॥ २७ ॥

गन्धद्रव्यसमायुक्तं विष्णुनैलं सुवासितम् । आमलक्या द्रवञ्चैव स्नानार्थं गृह्यतां हरे ॥  
 उद्गतमणिसारेण रवितां सुमनोहराम् । छाद्रितां सूक्ष्मवस्त्रेण शय्याञ्च गृह्यतां हरे ॥  
 सवूर्णां वृक्षमेदानां मूलाणां द्रवसंयुतः ।

फल्गुरीरससंयुक्तो गन्धोऽयं गृह्यतां हरे ॥ ३० ॥

पुष्पं सुगन्धिसंयुक्तं घनस्पतिसमुद्भवम् । सुप्रियं सर्वदेवानां गृह्यतां परमेश्वर ॥ ३१ ॥  
 शर्करास्यस्तिकाकञ्च मिष्टद्रव्यसमन्वितम् । सुपक्वफलसंयुक्तं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥ ३२ ॥  
 शीतलं शर्करायुक्तं क्षीरं स्वादु सुपक्वकम् । लड्डुकं मोदकञ्चैव सर्पिःक्षीरं शुद्धं मधु  
 नयोद्भूतं दधि तक्रं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥ ३३ ॥

ताम्रमूलं भोगसाध्यं कर्पूरादिसमन्वितम् । मया निषेदिनं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वर ॥  
 चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । आर्षारचूर्णे रुचिरं गृह्यतां परमेश्वर ॥ ३५ ॥  
 तदभेदरसोत्कर्षां गन्धयुक्ताग्निना सह । सुप्रियः सर्वदेवानां भूषोऽयं गृह्यतां हरे ॥ ३६ ॥  
 घोरान्धकारनाशोक्तदेतुरेव शुभापहः । सुप्रदीपो दीप्तिकरो दीपोऽयं गृह्यतां हरे ॥ ३७ ॥

पवित्रं निर्मलं तोयं कर्पूरादिमुवासितम् ।

जीघर्षं सर्पजीपानां पानार्थं गृह्यतां हरे ॥ २८ ॥

जानापुष्पसमायुक्तं घृदिनं सूक्ष्मतनुना । शरीरभूयगणैर्माह्वयञ्च प्रतिपद्यताम् ॥ ३८ ॥

दत्त्वा देयानि द्रव्याणि पूजोपयोगितानि च । धृतस्थानस्थितं द्रव्यं हरये देयमेव च ।  
फलानि तर्ह्याजानि स्वादूनि सुन्दराणि च । वंशवृद्धिकराण्येव गृह्यतां परमेश्वर ॥४१॥  
आवाहितांश्च देवांश्च प्रत्येकंपूजयेद् व्रती । संपूज्य भक्तिभावेन दद्यात् पुण्याञ्जलिप्रदम्  
सुनन्दनन्दकुमुदान् गोपान् गोपींश्च राधिकाम् ।

गणेशं कार्तिकेयञ्च ब्रह्माणञ्च शिवं शिवाम् ॥ ४३ ॥

लक्ष्मीं सरस्वतीञ्चैव दिक्पालांश्च ब्रह्मांस्तथा । शेषं सुदर्शनञ्चैव पापदप्रवरांस्तथा  
संपूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डपद् भुवि । ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्त्वा दद्याच्च दक्षिणाम्  
कथाञ्च जन्माध्यायोक्तां शृणुयाद्भक्तिभावतः ।

तदा कुशासने स्थित्वा कुर्याज्जागरणं व्रती ॥ ४६ ॥

प्रमाने चाह्निकं कृत्वा संपूज्य श्रीहरिं मुदा ।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च कुर्यात् श्रीहरिकीर्तनम् ॥ ४७ ॥

नारद उवाच ।

प्रकालव्ययमध्याञ्च वेदोक्तां सर्वसम्भताम् । वेदार्थञ्च समालोच्य संहिताञ्च पुरातनीं  
उपवासे जागरणे वने वा किं फलं भवेत् । किं वा पापं तत्र भुक्त्वा यद् वेदविदां च  
नारायण उवाच ।

अष्टमीपादमंबन्तु रात्र्यर्द्धे यदि दृश्यते । स एव मुख्यकालश्च तत्र जातः स्युः इति ।  
जयं पुण्यञ्च कुर्यात् जयन्ती तेन साम्भृताः । तत्रोपोष्यव्रतं कृत्वा कुर्याद्भ्रातारणवृत्तं  
सर्वापपादःकालोऽयं प्रधानः सर्वसम्मतः । इति वेदविदां धार्मी चेत्युक्ता वेधता पुनः

तत्र जागरणं कृत्वा यथोपोष्य व्रतं वरेत् ।

कोटिजन्माजितान् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंहिताष्टमी । सा सप्तमिणा न कर्त्तव्या सप्तमी संहिताष्टमी ॥  
वर्षाद्वादान्तु अस्यायां जालो देवकीजन्मदत्तः । वेदवेदाङ्गुणे च विप्रिये मङ्गले क्षणे ।

व्यर्तने रोहिणीःसप्तमे व्रती कुर्याच्च वारणम् ॥ ५५ ॥

तिथ्यन्ते च हरिं स्मृत्वा कृत्वा देवानुराधनम् । वारणं वापनं पुंसो सर्वभाष्यकारणम्

उपवासाद्भूतञ्च फलदं शुद्धिकारणम् । सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवाधारणमिष्यते ॥५७॥

अन्यथा फलदानिः स्याद् कृते धारणाधारणे ॥ ५८ ॥

न रात्रौ धारणं कुर्याद्भूते वै रोहणीव्रतात् ।

निशायां धारणं कुर्याद्भू घर्जयित्वा महानिशाम् ॥ ५९ ॥

पूर्वाह्ने धारणं शस्तं कृत्वा विप्रसुराचनम् । सर्वेषां सम्मतंकुर्याद्भूते वै रोहिणीव्रतम्  
बुधसोमसमायुक्ता जयन्ती यदि लभ्यते । न कुर्याद्भू गर्भवासञ्च तत्र कृत्वा व्रतं व्रती  
उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि । भवेद् बुधेन्दुसंयुक्ता प्राजापत्यधंसंयुता ॥  
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते । व्रती च तद् व्रतं कृत्वा पुंसां फौटीःसमुदरेत्

नृणां विना व्रतेनापि भक्तानां हीनसम्पदाम् ।

कृतेनैवोपवासेन प्रीतो भवति माधयः ॥ ६४ ॥

भक्त्या नानोपचारेण रात्रौ जागरणेन च ।

फलं ददाति दैत्यार्जियन्तीव्रतसम्भवम् ॥ ६५ ॥

वित्तशाठ्यमकुर्वाणःसम्पत्फलमवाप्नुयात् । कुर्वाणःवित्तशाठ्यञ्च लभते सदृशफलम्  
अष्टम्यासथ रोहिण्यां न कुर्यात्धारणंबुधः । हन्यात् पूर्वव्रतं पुण्यमुपवासाजितं फलम्  
तिथिरष्टगुणंहन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम् । तस्मात्प्रथमतः कुर्यात् तिथिमान्तेचधारणम्  
महानिशायां प्रासायां तिथिमान्ते यदा भवेत् । तृतीयेऽङ्कि मुनिधेष्टे धारणं कुरुते व्रती ॥  
षण्मुहूर्ते ध्यर्तने तु रात्रायेव महानिशा । लभते ब्रह्महत्याञ्च तत्र भुक्त्वा च नारद ॥७०

गोमोसविण्मूत्रसमं ताम्बूलञ्च फलं जलम् ।

पुंसामभक्ष्यं शुद्धापामोदनस्यापि वा फया ॥ ७१ ॥

त्रियामां रजनीं प्रादुस्वन्तयाचन्तचतुष्टयम् । दण्डानां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तमंत्रिते  
जन्माष्टम्याञ्च शुद्धापां कृत्वा जागरणं व्रतम् । शतजन्मदृष्टान् पापान्मुच्यते नात्र संशयः  
जन्माष्टम्याञ्च शुद्धापामुपोष्य केवलं नरः । अश्वमेधफलं तस्य व्रतं जागरणं विना ॥  
यदुदाल्ये यद्य षोडशे योषणे यद्य षोडशे । सतजन्मदृष्टान् पापान्मुच्यते नात्र संशयः  
धीरुज्जन्मद्विषसे यद्य भुङ्क्ते नराधमः । स भयेन्मातृगामी च ब्रह्महत्याकारं लभेत्

कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।

अनर्हश्चाशुचिः शश्वत् दैवे पैत्रे च कर्मणि ॥ ७७ ॥

अन्ते वसेत् कालसूत्रे यावच्चन्द्रविवाकरौ । कृमिमिः शूलतुल्यैश्च सीक्षणदंष्ट्रैश्च भक्षि  
पापी ततः समुत्थाय भारते जन्म चेद्भवेत् । पट्टिवर्षसहस्राणि विष्टायाञ्च कृमिर्भवेत्  
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदं शतजन्मानि शृगालः शतजन्म  
सप्तजन्मसु सर्पश्च काकश्च सप्तजन्मसु ॥ ८० ॥

ततो भवेन्नरोमूको गलत्कुष्ठी सदःऽऽतुरः । ततोभवेत् पशुश्च व्यालग्राही ततोभवे  
तदन्ते च भवेद्दस्युर्धर्महीनो नरघ्नकः ॥ ८२ ॥

ततो भवेत् स रजकस्तैलकारस्ततो भवेत् । ततो भवेद्देवलश्च ब्राह्मणश्च सदाशुचिः ।  
उपवासासमर्षश्चेदेकं विप्रञ्च भोजयेत् । तापद्भनानि वा दद्याद् यदुमुक्तं द्विगुणं भवे  
सहस्रसम्मितां देवां जपेद् वा प्राणसंयमम् ।

कुर्याद् द्वादशसंख्याकान् यथार्थं तद् व्रते नरः ॥ ८५ ॥

इत्येवं कथितं वरस श्रुतं यद्दर्शनवचनतः । प्रतोपवासपूजानां विधानमरुते च यत् ॥ ८६ ॥  
इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे जन्माष्टमीप्रत-  
पूजोपवासनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ।

## नवमोऽध्यायः

यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम् ।

नारद उवाच ।

संख्याय गोबुलेहृणं यशोदामन्दिरैवसुः । जगाम म्यष्टदंन्दः किं चकारसुनोत्सवम्  
किं चकार हस्तिस्तत्र कतिपयंस्त्वितिर्षिमोः ।  
वाल्मीकिर्नरः तस्य वर्णयत् प्रमशः प्रमो ॥ २ ॥

पुत्रा वृत्ता या प्रतिष्ठा गोलोके राघवा सह । तन् हनं केन विधिना प्रतिप्रापालनं घने ॥  
 कीदृग् वृन्दापनं रासमण्डलं किपिधंषद् । रासकीड़ा जलकीड़ा मंथ्यस्य घणंघ प्रभो  
 नन्दस्यः किं चकार यशोदा घाय रोहिणी । हरेः पूर्वञ्च हलिनः कुत्र जन्म धनूयद् ॥  
 र्थावृत्तमण्डमान्यायानमपूर्वं धीहरेः स्मृतम् । विदोयतः कविमुने काव्यं नूनं पदे पदे ॥  
 स्यात्सामण्डलकीड़ा घणंघस्य स्वमेघ च । परोक्षघणनं काव्यं प्रशान्तं हृदयघणनम् ॥

धीहृत्पणो भगवान् रासशत्रु योगान्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

यो यस्यांशः स तु जननस्यैव सुगनः सुगी ॥ ८ ॥

स्वपैघ घणिनी चार्थो विलीनो तु युवा हरे ।

रासशत्रु गोलोकनाथांशस्वमेघे तन्ममो महात् ॥ ९ ॥

नारायण उवाच ।

शं शनैरविष्नेताः कूर्मो धर्मोऽयमेव च । नाथ कार्त्तिकेयञ्च धीहृत्पणांशो घणं नय ॥

अहो गोलोकनाथस्य मदिमा केन वपनेने ।

यं स्वयं नो विज्ञानीमो न पेशः किं विविधितः ॥ ११ ॥

शुक्रो वामनः कालीबीज क. दिनामीनर्षी । एनेवांशो कलाधामं रामदेव कनिषा मुने  
 पूर्णो मृतिहो नामथ श्वेतद्वीपविमार्धियुः । परिपूर्णमः हृत्पणो धीकुण्डे गोकुले स्वयम्  
 धीकुण्डे कलाकान्तो हृदयेदास्यमुञ्जः । गोमोर्गोकुले नापाकान्तोऽयं त्रिभुज स्वयम्  
 अयमेव तत्रो निवस्य किने कुपंति योतिन । अत्रापादान्मुञ्जं च कुला नेत्रविबंविना  
 श्चतु वित्र वर्णयामि यशोदानन्दयोगिनः ।

रोहिण्याञ्च यमो रौतरेऽहोने हीमंत्तम् ॥ १६ ॥

अहो यशोदा अहो नाथो ह्रींकारोपकः । नाथार्योऽध्यायार्थोयशोदाया लदविन्दो  
 रोहिणी शर्मिताया च चतुश्च शर्मकारिणी । यनेवा जगज्जिनं निरोध कथयामि मे ॥  
 लवदा च अत्राहोर्षो वपने गणधरादेव । कुण्डरे अत्रने चर्षे गोमन्मन्मन्विनी ॥ ११ ॥  
 अहो चतुश्च लवणच कर्षणामपुनं मुने । हृत्पणो च हांशुंश्च त्रिभुजे सुमन्मन्दि ।

अ हरां हरे ह्रींको अत्र बीज लदविन्दो ॥ १० ॥



ददर्श पुत्रं भूमिष्ठं नवीननीरयप्रभम् । अतीव सुन्दरं नामं पश्यन्तं गृहशोणम् ॥ ५७ ॥

शरत्पार्ष्ण्यचन्द्राम्बुं नीलेन्द्रीपरलोमनम् । रत्नतट्ट दसन्तट्ट रेणुम्युक्तविप्रदम्

हस्तद्वयं भुविन्यसन् प्रेमपन्तं पदाभ्युजम् ॥ ५८ ॥

दृष्ट्वा नन्दः स्त्रिया सार्वं हरिं हृष्टो यभूय ह ॥ ५९ ॥

धार्त्री तं द्यापयामास शीततोयेन पालयम् ।

चिच्छ्रेद् नाडीं पालस्य हर्षाद्गु गोप्यां जयं जगुः ॥ ६० ॥

आजामुर्गोपिकाः सर्पां वृहत्श्रोण्यधालत्तुन्वाः ।

पालिकाश्च वयःस्थाश्च विप्रपत्न्यश्च स्तिकां ॥ ६१ ॥

आशिषं युयुजुः सर्पां ददृशुर्पालकं मुदा । षोडशे चक्रुः प्रशंसन्त्य ऊपुस्तत्र च क्राञ्च

नन्दःसर्चलःस्नात्वा च धृत्वा धीते च पाससी । पारम्पर्यविधिं तत्र चकार हृष्टमानस

ब्राह्मणान् भोजयामास फारयामास मङ्गलम् ।

पाथानि वादयामास वन्दिभ्यश्च ददुर्धनम् ॥ ६४ ॥

ततो नन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । सद्रत्नानि प्रनालानि हीरकाणि च सादर

तिलानां पर्वतान् सप्त सुवर्णशतकं मुने । रौप्यं धान्याचलं धस्त्रं गोसहस्रं मनोरम

दधि दुग्धं शर्कराञ्च नवनीतं घृतं मधु । मिष्टान्नं लड्डुकोद्यञ्च स्वादूनि मोदकानि च

भूमिञ्च सर्वशस्याद्वयं धायुवेगांस्तुरङ्गमान् । ताम्बूलानि च तैलानि दत्त्वा हृष्टो यभूव

रक्षितुं स्तिकां गारं योजयामास ब्राह्मणान् ।

तत्र मन्त्रज्ञमनुजान् स्थविरान् गोपिकागणान् ॥ ६६ ॥

वेदांश्च पाठयामास हरेर्नामैकमङ्गलम् । भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः ॥ ७० ॥

सस्मिता विप्रपत्न्याश्च वयस्याः स्थविराचराः । बालिकापालकयुता आजगमुर्नन्दमन्दिर

तेभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि विचिधानि च ॥ ७१ ॥

गोपालिकाश्च वृद्धाश्च रत्नालङ्कारभूषिताः । सस्मिताः शीघ्रगामिन्य आजगमुर्नन्दमन्दिर

वह्वयस्त्राणि रौप्याणि गोसहस्राणि सादरम् ॥ ७२ ॥

वाक्सिद्धाः पुस्तककरा धाजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ॥ ७३ ॥

नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार चिनयं मुदा । आशियं युयुजुः सर्वं दृष्टुर्बालकं परम् ॥  
 त्वं संभृतसम्भारो यभूव ब्रह्मपुङ्गवः । गणकैः कारयामास यदुभविष्यं शुभाशुभम् ॥  
 त्वं यत्र ह्यं यालक्ष्य शुक्लपक्षे यथा शशी । नन्दालये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम्  
 उदा च रोहिणी हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा । तैलसिन्दूरताम्बूलं धनं ताम्भ्यो वदौ मुने  
 तस्याशियश्च शिरसि ताश्च ते स्वालयं ययुः । यशोदारोहिणीनन्दास्तस्थुर्गहेमुदान्विताः  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 नन्दपुत्रोत्सवो नाम नवमोऽध्यायः ।

## दशमोऽध्यायः

### पूतनामोक्षवर्णनम्

नारायण उवाच ।

ह्यथ कंसः समामध्ये स्वर्णसिंहासनस्थितः । शुभ्राय वाचं गगने सन्ततामशरीरिणीम् ॥  
 करोषि महामूढ चिन्तां स्वध्रेयसःकुल । जात कालो धरण्यांते तिष्ठोपाये नराधिप  
 द्वाय तनयं दत्त्वा वसुदेवस्तथास्तकम् । बन्ध्यामादाय तुभ्यञ्च दत्त्वा संमायगास्थितः  
 याशा बन्धवोयञ्च वासुदेवः स्वयं हृदि । तय हन्ता गोकुन्ते च वदन्ते नन्दमन्दिरे ।

देवर्षीसप्तमो गर्भो वदन्ते नन्दमन्दिरे ॥ ४ ॥

र्षीसप्तमो गर्भो न शुभ्राय गृहं सुभम् । स्थापयामास प्राया तं रोहिणीजटेरि बिल  
 तत्र जातश्च रोर्षाशो बलदेवो महाबलः ॥ ५ ॥

गोकुन्ते तौ च वदन्ते कालो ते नन्दमन्दिरे ॥ ६ ॥

या तद्वचनं राजा यभूव नतबन्धरः । चिन्तामयाप सटता तस्याजाहारमुन्मताः ॥ ७ ॥  
 पूतनाञ्च समानीय प्राणेभ्यः प्रेयसीं रतीम् ।

एतथाऽग्निवृण्डं धैरव्यात् प्रयेष्टुं समुपस्मिता ॥ २१ ॥

सौ मर्तुकामो दृष्ट्वा च वाग् यभूवारासेरिणी । द्रक्ष्यथःश्रीहरिं वृळ्यां गोकुले पुष्करिणि  
जन्मान्तरे यस्तुश्रेष्ठ दुर्दशं योगिनां विभुम् । ध्यानासाध्यञ्च विदुषां ब्रह्मादीनाञ्चन्द्रि  
श्रुत्वैवं तद्वराद्रोणीं जगन्तुः स्थालयं सुगाम् । लब्ध्यानुमानेत्तन्म इष्टं ताभ्यां हरेर्न  
यशोदानन्दयोरेष कथितं चरितं तथ । सुगोप्यं देवतानाञ्च रोहिणीचरितं ध्रुम् ॥ २० ॥

पफदा देवतामाता पुष्पोरसपदिने सर्गा ।

विज्ञापनश्चरद्वारा चकार फश्यं मुने ॥ २६ ॥

सुस्नाता सुन्दरी देवी रत्नालङ्कारभूयिता । चकार घंशं विविधं ददर्श दर्शने मुक्त्वा  
फस्तूरीयिन्दुना सार्द्धं सिन्दूरयिन्दुसंयुतम् । रत्नकृष्णद्वयशोभाद्वयं पञ्चामरणभूयितम् ।  
गजमौक्तिकसंयुक्तं नासाग्रं सुमनोहरम् । शरत्पार्यणचन्द्राम्बुं शरत्पद्मजलोत्थनम्

धकधूमङ्गिसंयुक्तं विचित्रकजलोत्थ्वलम् ॥ २६ ॥

पफदाङ्गिमवीजामदन्तराजिधिराजितम् ।

पकविम्बाधरौष्ठञ्च सस्मितं सुन्दरं सदा ॥ ३० ॥

अतीव कमनीयञ्च मुनीन्द्रचित्तमोहनम् ॥ ३१ ॥

एवम्भूतं मुखं दृष्ट्वा सुन्दरी स्वगृहे स्थिता । पश्यन्ती पतिमार्गञ्च कामवाणप्रपीडिता  
शुभ्राव घातार्तामदितिः फश्यं कद्रुसंयुतम् ।

रसभावसमारम्भे तस्या चक्षुःस्थले स्थितम् ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा चुकोप साध्वी सा हताशा रतिकातरा ।

न शशाप पतिं प्रेम्णा शशाप सर्पमातरम् ॥ ३४ ॥

न देवालययोग्या सा धर्मिष्ठा धर्मनाशिनी ।

दूरं गच्छन्तु स्थल्लोकाद् यातु योनिञ्च मानवीम् ॥ ३५ ॥

श्रुत्वैवं सा चरद्वारा शशाप देवमातरम् । सा चैवं मानवीं योनिं यातु मर्त्यं जरायुतम्  
फश्यपो बोधयामास कद्रुञ्च सर्पमातरम् । काले यास्यसि मर्त्यञ्च मया सह शुचिस्मिते

त्वज्ज्य भीतिं लभ मुदं द्रक्ष्यसि श्रीहरेर्मुखम् ॥ ३७ ॥

प्रपमुत्तवा कश्यपश्च प्रजगामादितेर्गृहम् । वाञ्छां पूर्णाञ्च तस्याश्च चकारभगवान्बिभुः

अतो तत्र महेन्द्रश्च बभूव ह सुर्यभः ॥३६॥

अदितिर्देवकी चैव सर्पमाता च रोहिणी ।

कश्यपो वसुदेवश्च श्रीकृष्णजनको महान् ॥ ४० ॥

रहस्यं गोपनीयञ्च सर्वं निगदितं मुने । अधुना बलदेवस्य जन्माख्यानं मुने शृणु ॥

वनन्तस्याप्रमेयस्य सहस्रशिरसः प्रभोः ॥ ४१ ॥

रोहिणी वसुदेवस्य भार्यारत्नञ्च प्रेयसी ॥ ४२ ॥

जगाम गोकुलं साध्वी वसुदेवाज्ञया मुने । सङ्कूर्पणस्य रक्षार्थं कंसभीता पलायिता ॥

स्याः सप्तमं गर्भं माया कृष्णाज्ञया तदा । रोहिण्या जठरे तत्र स्थापयामास गोकुले

संस्थाप्य च तदा गर्भं कैलासं सा जगाम ह ॥ ४४ ॥

दिनान्तरे कतिपये रोहिणी नन्दमन्दिरे ॥ ४५ ॥

एव पुत्रं कृष्णांशं तत्तरीप्याभमीश्वरम् । ईपज्ञार्थं प्रसन्नास्यं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा

यैव जन्ममात्रेण देवाः प्रसुदिरे तदा । स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुरानका मुरजादयः ॥

जयशब्दं शङ्खशब्दं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥ ४७ ॥

नन्दो हृष्टो ब्राह्मणेभ्यो धनं बहुविधं ददौ ।

विच्छेद नाड्यं धात्री च स्नापयामास घालकम् ॥ ४८ ॥

शब्दं जगुर्गोप्यः सर्वाभरणभूषिताः । परपुत्रोत्सवं नन्दश्चकार परमादरान् ॥४९॥

पशोदा गोपीभ्यो ब्राह्मणीभ्यो धनं मुदा । नानाविधानि द्रव्याणि सिन्दूरतैलमेव च

यं कथितं घत्स यशोदानन्दयोस्तपः । जन्माख्यानञ्च हलिनो रोहिर्षीचरितं तथा

तना वाञ्छनीयन्ते नन्दपुत्रोत्सवं शृणु । सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युजरापहम्

कृष्णचरितं वैष्णवतानाञ्च जीषणम् । सर्वांशुमपिनाशञ्च भवितास्यप्रदं हरेः ॥५३॥

इदेषध धोहृष्णं संस्थाप्यनन्दमन्दिरे । शृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमन्दिरम्

येन चरितं तस्याः श्रुतं यत् सुखदं मुने । अधुना गोकुले कृष्णचरितं शृणु मङ्गलम्

इदेषे शृष्टे याते यशोदा नन्द एव च । मङ्गले स्तिकागारे जयागारे जयान्विते ॥५६॥

द्वरां पुत्रं भूमिस्तु गर्वागनीरुप्रथमम् । अनीय सुन्दरं नानं वरगन्तं गृहोत्तरम् ॥ ५७ ॥  
 शरत्पार्येणमन्त्राभ्यं नीलेर्षीवालोचनम् । श्वन्तश्च हरन्तश्च रेणुसंगुलपिप्रदम् ।

हस्तद्वयं भुविग्वान्नं प्रेमपन्नं पद्माम्बुजम् ॥ ५८ ॥

दृष्ट्वा मन्दः प्रिया रास्यं हरिं दृष्ट्वा यभूय ह ॥ ५९ ॥

धार्त्री तं ज्ञापयामास शीतलोयेन बालकम् ।

चिन्त्येत् नार्दीं बालस्य हर्षाद् गोप्यो जयं जगुः ॥ ६० ॥

भाजगुर्गोपिकाः सर्वां गृहन्धोण्यञ्जन्तुनाः ।

बालिकाश्च वयःस्थाश्च विप्रपत्न्यश्च सूतिकाम् ॥ ६१ ॥

आशिरं युयुतुः सर्वां ददृशुर्बालकं मुदा । षोडशे शक्रुः प्रशंसन्त्य ऊपुस्तत्र च काश्चन  
 मन्दःसर्चलःस्नात्वा च धृत्वा धौते च पाससी । पारम्पर्यविधिं तत्र चकार दृष्टमानसः  
 ब्राह्मणान् भोजयामास फारयामास मङ्गलम् ।

वाद्यानि वादयामास घन्दिम्यश्च ददुर्धनम् ॥ ६४ ॥

ततो मन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । सद्रत्नानि प्रनालानि हीरकाणि च सादरम्  
 तिलानां पर्वतान् सप्त सुवर्णशतकं मुने । रौप्यं धान्याचलं वस्त्रं गोसहस्रं मनोरमम्  
 दधि दुग्धं शर्कराञ्च नवनीतं घृतं मधु । मिष्टान्नं लड्डुकौषञ्च स्वादूनि मोदकानि च  
 भूमिञ्च सर्वशस्याद्यं वायुवेगांस्तुरङ्गमान् । ताम्बूलानि च तैलानि दत्त्वा दृष्टो वभूव ह  
 रक्षितुं सूतिकागारं योजयामास ब्राह्मणान् ।

तत्र मन्त्रज्ञमनुजान् स्थविरान् गोपिकागणान् ॥ ६६ ॥

वेदांश्च पाठयामास हरेर्नामैकमङ्गलम् । भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः ॥ ७० ॥  
 सस्मिता विप्रपत्न्याश्च वयस्थाः स्थविरावराः । बालिकाबालकयुता आजगमुर्नन्दमन्दिरम्  
 तेभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि विविधानि च ॥ ७१ ॥

गोपालिकाश्च वृद्धाश्च रत्नालङ्कारभूषिताः । सस्मिताः शीघ्रगामिन्य आजगमुर्नन्दमन्दिरम्  
 बहुवस्त्राणि रौप्याणि गोसहस्राणि सादरम् ॥ ७२ ॥  
 नानाधिधाश्च गणका ज्योतिःशास्त्रविशाखाः ।

पाक्सिद्धाः पुस्तककरा धाजमुर्नन्दमन्दिरम् ॥ ७३ ॥

नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार विनयं मुदा । आशिषं युयुजुः सर्वे ददृशुर्वालकं परम् ।  
 एयं संभृतसम्भारो यभूव व्रजपुङ्गवः । गणकैः कारयामास यद्वनविष्यं शुभाशुभम् ।  
 एयं यषर्दं बालश्च शुक्लपक्षे यथा शशी । नन्दालये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम् ।  
 तदा च रोहिणीं हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा । तैलसिन्दूरताम्बूलं धनं ताम्भ्यो ददौ मुने ।  
 दत्त्वाशिषश्च शिरसि ताश्च ते स्वालयं ययुः । यशोदारोहिणीनन्दास्तत्पुर्गेहेमुदान्विताः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदन्याये श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 नन्दपुत्रोत्सवो नाम नवमोऽध्यायः ।

## दशमोऽध्यायः

### पूतनामोक्षवर्णनम्

नारायण उवाच ।

अथ बंसः समामध्ये स्थर्षतिहासनिश्चितः । शुभ्राय वाचं गगने मृन्तामशीरिणाम् ॥  
 किं करोषि महामूढ विन्तां स्वध्रेयसःकुल । ज्ञान बालो धरण्याने निष्ठोपायं मगधिप ।  
 मन्दाय तनयं दृष्ट्वा वसुदेवस्तवान्तकम् । बन्ध्यामादाय तुभ्यश्च दृष्ट्वा सर्वाम्पराभिधतः ।  
 प्रापारा बन्धुकेयश्च वासुदेवः स्वयं हतिः । तप हन्ता गोकुले च वन्दते मन्दमन्दिरे ।

देवकीसममो गर्भो वन्दते मन्दमन्दिरे ॥ ४ ॥

देवकीसममो गर्भो न तुभ्याय मृतं तुतम् । ध्याययामास माया तं रोहिणीजट्टे किट् ।

तत्र जातश्च शैवीसो बलदेवो महाबलः ॥ ५ ॥

गोकुले तौ च वन्दते बालौ ते मन्दमन्दिरे ॥ ६ ॥

धृष्ट्या लक्ष्मणं राजा यभूव नतबन्धतः । विन्तामवाप सरहरा लम्पाज्जाटामुग्मताः ॥ ७ ॥  
 पूतनाय समानीय प्राप्तेभ्यः वेरसी वर्णम् ।

उवाच भगिनी राजा सभामध्ये च नीतिचित् ॥ ८ ॥

कंस उवाच ।

पूतने गोकुलं गच्छ कार्यायं नन्दमन्दिरे । विपाकञ्च स्तनं कृत्वा शिखावे देहि सव  
त्वं मनोयायिनी घत्से मायाशास्त्रविशारदा । मायामानुषरूपञ्च विधाय व्रज योनि  
दुर्वाससो महामन्त्रं प्राप्य सर्वत्रगामिनी । सर्वरूपं विधातुं त्वं शक्ताऽसि सुप्रति  
इत्युक्त्वा तां महाराजस्तंष्टौ संसदि नारद । जगाम पूतना कंसं प्रणम्य कामचारि  
तप्तकाञ्चनवर्णाभा नानालङ्कारभूषिता । विभ्रती कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुक्ता  
कस्तूरीविन्दुना युक्तं सिन्दूरं विभ्रती मुदा । मञ्जीरशनाभ्याञ्च कलशब्दं प्रकुर्वती  
संप्राप्य गोष्ठं ददर्श नन्दालयं मनोहरम् । परिव्राभिर्गमोराभिर्दुल्लभ्याभिश्च वेष्टितम्  
रचितं प्रस्तरैर्दिश्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा । इन्द्रनीलैर्मरकतैः पद्मरागैश्च भूषितम् ॥  
सुवर्णकलशैर्दिव्यैश्चित्रितैः शेखरोज्ज्वलैः । प्राकारैर्गगनस्पर्शैश्चतुर्द्वारसमन्वितैः ॥  
युक्तं लोहकपाटैश्च द्वारपालसमन्वितैः ।

वेष्टितं सुन्दरं रम्यं सुन्दरीगणवेष्टितम् ॥ १८ ॥

मुक्तामाणिक्यपद्मैः पूर्णं रत्नादिभिर्धनैः । स्वर्णपात्रघटाकीर्णं गवां कोटिमिरक्ति  
भरणीयैः किङ्करैश्च गोपालकैः समन्वितम् । दासीनाञ्च सहस्रैश्च कर्मव्यग्रैः समन्वि  
प्रविशेशाश्रमंसाध्या सम्मिता सुमनोहरा । दृष्ट्वा तां प्रविशन्तीं च गोप्यस्तावदुमेरि  
त्रिवा पद्मालयादुर्गा कृष्णं द्रष्टुं समागता । प्रणमुगोपिका गोपाःपद्मदुः कुशलञ्च

दर्शो सिंहासनं पाद्यं पासयामास तत्र ये ॥ २२ ॥

पद्मदुः कुशलं सा च गोपानां चालकाम्य च ।

उवाच सम्मिता साध्या पाद्यं जग्राह सादरम् ॥ २३ ॥

तद्गुणोपिकाः सर्वाः का स्वमीश्वरि साम्प्रतम् ।

पद्मने कुत्र किञ्चाम किं पात्र कर्म तद्दद ॥ २४ ॥

पद्मदुः कुत्र किञ्चाम किं पात्र कर्म तद्दद ॥ २४ ॥  
पद्मदुः कुत्र किञ्चाम किं पात्र कर्म तद्दद ॥ २४ ॥  
पद्मदुः कुत्र किञ्चाम किं पात्र कर्म तद्दद ॥ २४ ॥

श्रुत्वागताहं तं द्रष्टुमाशिशं कर्तुमीप्सितम् । पुत्रमानय तं दृष्ट्वा यानि हृत्वा तदाशिशं  
ब्राह्मणीवचनं श्रुत्वा यशोदा हृष्टमानसा । प्रणमय्य सुतं क्रोडे ददौ ब्राह्मणयोपिते

हृत्वा क्रोडे शिशुं साध्वी चुचुम्य च पुनः पुनः ।

स्तनं ददौ सुखासीना हरिं पुण्यवती सती ॥ २६ ॥

बहोऽद्भुतोऽयं बालस्ते सुन्दरो गोपसुन्दरि । गुणीनारायणसमो बालोऽयमित्युवाच ।  
कृष्णोधिपस्तनं पीत्वा जहास वक्षसि स्थितः । तस्याःप्राणैःसह पर्षो विपक्षीरंसुधामिव  
तत्याज बालकं साध्वी प्राणांस्त्यक्तवा पपात ह । विरुताकारवदना चोत्तानयदना मुने

स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा ।

भाररोह रथं शीघ्रं रत्नसारविनिर्मितम् ॥ ३३ ॥

पार्यदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः । श्वेतचामरलक्ष्णेण वेष्टितं लक्षदर्पणैः ॥ ३४ ॥  
वह्निशौचेन घस्त्रेण सूक्ष्मेण शोभितं घरम् । नानाचित्रचित्रैश्च सद्गतकलसैर्युतम् ॥  
सुन्दरं शतचक्रज्ज्वलितं रत्नतेजसा । पार्यदास्तां रथे हृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥

दृष्ट्वा तमद्भुतं गोपा गोपिकाश्चापि विस्मिताः ।

कंसः श्रुत्वा च तन् सर्वं विस्मितश्च बभूव ह ॥ ३७ ॥

यशोदाबालकं नीत्वा क्रोडे हृत्वा स्तनं ददौ । मङ्गलं कारयामास विप्रद्वारा शिशोर्मुने  
ददाह देहं तस्याद्य नन्दः सानन्दपूर्वकम् । चन्दनागुरुकस्तूरीसमं संप्राप्य सौरभम् ॥

नारद उवाच ।

सा पा का राक्षसीरूपा कथं पुण्यवती सती ।

केन पुण्येन तं दृष्ट्वा जगाम कृष्णमन्दिरम् ॥ ४० ॥

नारायण उवाच ।

बलियसे घामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम् । बलिकन्या रक्षामाला पुत्रस्नेहं चकार तम् ॥  
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सद्गुरो मम । भवेदु यदि स्तनं दत्त्वा करोमि तन्न वक्षसि  
हरिस्तनमानसं ज्ञात्वा पर्षोऽजन्मान्तरे स्तनम् । ददौ मानुगतिं तस्यै कामपूरःकृपानिधिः  
दत्त्वा पिपस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने ।



भगवा मागुगनि प्राण कं मत्रामि पिना हग्निम् ॥ ४३ ॥  
 इत्येवं कनिगं विप्र धीरुण्णगुणवर्णनम् । परे परे सुमनुरं प्रारं कण्ठेनेः  
 इति धीं प्रथमैपत्तं महापुगणे मागवगनात्सर्ववारे धीरुण्णगुणवर्णने  
 पूगनामोषणे नाम दगमोऽध्यायः ।

## एकादशोऽध्यायः

### श्रीकृष्णबाललीलानिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच ।

षष्ठदा गोकुले साध्वी यशोदानन्दगेहिनी । गृहकर्मणि संसक्ता हृत्वा बालं स्वसती  
 घात्यारूपं तृणावसंमागच्छन्तश्च गोकुले । श्रीहरिर्मनसा धात्वा भारयुक्तो धनुः ॥  
 भारान्प्रान्ता यशोदा च तत्याज बालकं तदा । शयनं कारयित्वा च जगाम यमुनां कुतः ॥  
 पतस्मिन्नन्तरे तत्र घात्यारूपधरोऽसुरः । आदाय तं भ्रामयित्वा गत्या च शतगोज्ज्वल  
 यभञ्ज वृक्षशाखाश्च हान्धीभूतञ्च गोकुलम् । चकार सद्यो मायार्थी पुनस्तत्र पपात ॥  
 असुरोऽपि हरिस्पर्शाञ्जगाम हस्मिन्दिरम् । सुन्दरं रथमारुह्य हृत्वा कर्मक्षयं स्वस

पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा शापाद् दुर्वाससोऽसुरः ।

श्रीकृष्णवरणस्पर्शाद् गोकुलं स जगाम ह ॥ ७ ॥

घात्यारूपे गते गोपा गोप्यश्च भयविह्वलाः । न दृष्ट्वा बालकं तत्र शयानं शयने मुने ॥

सर्वे निजघ्नुः स्वं वक्षःस्थलं शोकाकुलाभयात् ।

केचिन्मूर्च्छामवापुश्च रुद्रुश्चापि केचन ॥ ६ ॥

अन्वेपणं प्रकुर्वन्तो ददृशुर्बालकं व्रजे । धूलिधूपरसर्वाङ्गं पुष्पोद्यानान्तरस्थितम् ॥ १ ॥

याहीकदेरो सरसस्तोरे नीरसमन्विते । पर्यवृत्तं गगनं शश्वदु घदन्तं भयकातरम् ॥ १ ॥

( बालकं नन्दः हृत्वा वक्षसि सत्वरम् ।

दर्शं दर्शं मुखं तस्य हरोद च शुचान्वितः ॥ १२ ॥

यशोदा रोहिणी शोषं दृष्ट्वा बालं हरोद च । कृत्वा घक्षसि तद्वक्त्रं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः  
मङ्गलं कारयामास स्नापयामास बालकम् । स्तनं ददौ यशोदा च प्रसन्नवदनेक्षणा ॥

नारद उवाच ।

कथं शशाप दुर्वासाः पाण्ड्यदेशोद्भवं नृपम् । सुविचार्य्य वदन्न ह्यन्नितिहासं पुरातनम्  
नारायण उवाच ।

पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा सहस्राक्षः प्रतापवान् ।

ह्रींसहस्रं समादाय कामवाणप्रपीडितः ॥ १६ ॥

मनोहरे निर्जने च पर्वते गन्धमादने । विजहार नदीतीरे पुष्पोद्याने मनोरमे ॥ १७ ॥

नानाप्रकारभृङ्गारं विपरीतादिकं नृपः । नखदन्तशक्ताङ्गञ्च कामिनीनां चकार सः ॥ १८ ॥

एत्वा मूर्त्तिसहस्रञ्च योगीन्द्रो नृपतीक्ष्णः । एतथा खले विहारञ्च जलक्रीडां चकार सः

नार्य्यो विषसनाः सर्वा ननाश्च नृपयोवितः । विजह्नुश्च पुष्पभद्रानदीतीरे मनोरमे ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायातो महामुनिः । शिष्यलक्ष्मैः परिवृतः गच्छन् वै शङ्करं प्रति ॥

दृष्ट्वा मुनिं महामत्तो नोत्तस्थौ न ननाम च ।

पाद्या हस्तेन राजा तु सम्भाषां न चकार ह ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा चुकोप नृपतिं शशाप स्फुरिताधरः ।

असुरो भय पापिष्ठ योगाद् भ्रष्टो भुवं मज्ज ॥ २३ ॥

भारते लक्षवर्षञ्च स्वातव्यं ते नराधम । ततो हरिपदस्पर्शाद्दु गोलोकं यास्यसि ध्रुवम् ॥

स्थाने स्थाने हे महिष्यो जनिं लभत भारते । राजेन्द्रगेहे राजेन्द्रात् भविष्यथ मनोहराः ॥

इत्युक्त्वा तु मुनीन्द्रश्च जगाम शङ्करालयम् । हाहाशब्दं विबभूव शिष्यसङ्घाः कृपालयः

गते मुनीन्द्रे राजेन्द्रो हरोद च सरित्पटे । खट्व् रमणीयाधर मण्यो विरहानुराः ॥ २७ ॥

हे नाथ रमणश्चेत्सेत्युच्चार्य्य च पुनः पुनः ।

एषां पिता एष ऋ यास्यामो पयं त्यं वा ऋ यास्यसि ॥ २८ ॥

पयं न विहरिष्यामस्त्वया सादं मुनिर्जने ।

न करिष्यसि राज्यं त्वं न यास्यामो गृहं वयम् ॥ २६ ॥

शरच्चन्द्रप्रभामुष्टं न द्रक्ष्यामो मुखं तव ।

प्रसारिताभ्यां बाहुभ्यां नातपिष्याम इत्यतः ॥ ३० ॥

इत्युतवा स्त्रुदुः सर्वाः पुरस्त्वय नराधिपम् । मूर्च्छामवापुश्चरणं धृत्याराजःसरित्

राजाग्रिकुण्डं निर्माय नारीभिः सह नारद । स्मृत्या हरिपदाम्मोजं ज्वलद्गतिविवे

दादाकारं सुराः सर्वे प्रचवर्गंगनम्बिताः । इत्युचुमुनपश्चैव दीपञ्च यत्पत्तरम् ॥

सुप्र राजा मृत्पावनीं जगाम दृग्मन्दिरम् । महिष्योभारतेवर्णेलेभिरे जन्मवाग्भि

इत्येवं कथितं सर्वं हर्षमाहात्म्यमुत्तमम् । मोक्षणं नृपतेश्चैव मुनीन्द्रशापहेतुषुम् ।

इति श्री प्रह्लवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद-संवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

मृत्पावनीवधो नामैकादशोऽध्यायः ।



## द्वादशोऽध्यायः

### श्रीकृष्णबाललीलावर्णनम्

नारायण उवाच ।

दरे नन्दपत्नी सानन्दपूर्वकम् । कृत्वा वक्षसि गोविन्दं क्षुधितञ्चस्तनं ददौ ॥  
तरेगोप्यभाजमुर्नन्दमन्दिरम् । स्थविराश्वघयस्याश्रवालिकाबालकान्विताः  
कं शीघ्रं संन्यस्य शयने सती । प्रणनाम समुत्थाय कर्मण्योत्थानिके मुदा  
तैलसिन्दूरताम्बूलं ददौ ताम्यो मुदान्विता ।

मेष्टघस्तूनि वस्त्राणि भूषणानि च गोपिका ॥५॥

रे कृष्णो रुरोद क्षुधितस्तदा । प्रेरयित्वा तु चरणं मायेशो मायया विभुः ॥

तस्य प्रवीणे शकटे मुने । विश्वम्भरपदाघातात्तच्च चूर्णं यभूव ह ॥ ६ ॥

तं पेतुर्भग्नकाष्ठानि तत्र वै । पपात दधि दुग्धञ्च नवनीतं घृतं मधु ॥ ७ ॥

पिकाश्च दुद्रुवुर्वालकं भयात् । दद्वशुर्भग्नशकटमिन्धनाभ्यन्तरे शिशुम् ॥ ८ ॥

मूहञ्च पतितं बहुगोरसम् । प्रेरयित्वा तु काष्ठानि जप्राह वालकं मिया ॥

वर्वाङ्गं रुदितं क्षुधितं क्षुधा । स्तनं ददौ यशोदा तं रुरोद च भृशं शुचा ॥

वच्छुर्वालकान् गोपा यमञ्च शकटं कथम् ।

श्चिद्धेतुं न पश्यामि सहसेति किमद्भुतम् ॥ ११ ॥

सर्वे गोपाः शृणुत तद्ब्रुवः । धीकृष्णस्यप दाघातादुद्यमञ्चशकटं ध्रुषम् ॥

गोपा गोप्यश्च जहसुर्मुदा । न हि जग्मुः प्रतीतिञ्च मिथ्येत्यूचुर्भजे प्रजाः

रोः स्वस्त्ययनं तूर्णं चक्रुर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥ १३ ॥

तारोगार्त्रे पपाठ कपचं द्विजः । यदामि तत्ते विप्रेन्द्र कपचं सर्वलक्षणम् ॥

त्तं मायया पूर्वं ब्रह्मणे नामिपङ्कजे ॥ १५ ॥

नाथे जले च जलशायिनि । भीताय स्तुतिकर्त्रे च मधुर्कटभयोर्भयात् ॥

## योगनिद्रोपाच ।

दूरीभूतं पुरु भयं भयं किन्ते हरौ स्थिते । स्थितायां मयि च प्रह्लादसुषुप्तमित्पुत्रजगत्पते ॥  
 धीहरिः पातु ते षषत्रं मस्तकं मधुसूदनः । श्रीकृष्णधक्षपोपातु नासिकां राधिकापतिः  
 कर्णयुग्मञ्च कण्ठञ्च कपालं पातु माधवः । कपोलंपातु गोविन्दःकेशांधकेशवःस्वयम्  
 अधरौष्ठं हृषीकेशो दन्तपंक्तिं गदाप्रजः । रासेश्वरश्च रसनां तालुकं वामनो विभुः ॥  
 षक्षः पातु मुकुन्दस्ते जठरं पातु दैत्यहा । जनाहंनःपातुनाभिं पातु विष्णुश्च ते हनुम् ॥  
 नितम्बयुग्मं गुहाञ्च पातु ते पुरुषोत्तमः । जानुयुग्मं जालकीशः पातु ते सर्वदा विभुः ॥  
 हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र सङ्कटे । पादयुग्मं पराहश्च पातु ते कमलोद्भवः ॥२३॥

ऊर्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात् कमलापतिः ।

पूर्वस्यां पातु गोपालः पातु षष्ठीं दशास्वहा ॥ २४ ॥

धनमाली पातु याम्यां वैकुण्ठः पातु नैर्ऋती ।

वाहण्यां घासुदेवश्च सतोरक्षाकरः स्वयम् ॥ २५ ॥

पातु ते सन्ततमजो घायव्यां विष्टरधवाः । उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः ॥  
 ऐशान्यामीश्वरः पातु सर्वत्र पातु शत्रुजित् । जले स्थले चान्तरीक्षेनिद्रायांपातुपापकः  
 इत्येवं कथितं ब्रह्मन् कथचं परमाद्भुतम् । कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया ॥  
 शुभमेन सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे । गगनेस्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण सो जितः ॥  
 कथचस्य प्रभायेण धरण्यां पतितो मृतः । पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयाघहम् ॥  
 मृते शुभे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः । मादयञ्च कथचं दत्त्वा भोलोकं सजगानद्  
 कल्पान्तरस्य घृत्तान्तं कृपया कथितं मुने । अभ्यन्तरभयं नास्ति कथचस्य प्रभावतः ॥

फोदिशः फोदिशो नष्टा मया द्रष्टाश्च वेधसः ।

अहञ्च हरिणा साद्धं कल्पे कल्पे स्थिरा सदा ॥ ३३ ॥

इत्युत्तया कथचं दत्त्वा सान्तर्द्धानं चकार-ह ।

निःशङ्को नामिकमले तस्थी स कमलोद्भवः ॥ ३४ ॥

सुवर्णशुटिकारयान्तु इत्येदं कथचं परम् ।

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ वध्नीयाद् यः सुधीः सदा ॥ ३५ ॥

विपान्निर्षर्पशत्रुभ्यो भयं तस्य न विद्यते । जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः ॥ ३७

संप्राप्ते घञ्जपाते च विपत्तौ प्राणसङ्कटे । कवचस्मरणादेव सद्यो निःशङ्कतां व्रजेत् ॥ ३७

घटुध्वेदं कवचं कण्ठे शङ्करस्त्रिपुरं पुरा । जघान लीलामात्रेण दुरन्तमसुरेश्वरम् ॥ ३८ ॥

घटुध्वेदं कवचं काली रक्तशीजं चलाद् सा । सहस्रशीर्षा धृत्वेदं विश्वं घत्ते तिलं यथा

धायां सनत्कुमारश्च धर्मसाक्षी च कर्मणाम् । कवचस्य प्रसादेन सर्वत्र जयिनो वयम्

तस्य नन्दशिरोः कण्ठे चकार कवचं द्विजः । आत्मनः कवचं कण्ठे दधार च स्वयं हरिः

प्रभाषः कथितः सर्वैः कवचस्य हरेस्तथा । अनन्तस्याच्युतस्यैव प्रभाषमतुलं मुने ॥ ४२

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

शकटभञ्जनकवचन्यासो नाम द्वादशोऽध्यायः ।



## त्रयोदशोऽध्यायः

### श्रीकृष्णमाहात्म्ये बालचरित्रकथनम्

नारायण उवाच ।

अपरं कृष्णमाहात्म्यं शृणु किञ्चिन्महामुने । विघ्ननिघ्नं पापहरं महापुण्यकरं परम् ॥ १ ॥

एकदा नन्दपत्नी सा कृत्वा कृष्णं स्वयश्शसि । स्वर्णसिंहासनस्था च भ्रुधितनंस्तनन्दौ

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चित्रेन्द्रैकः समागतः । वृतः शिष्यसमूहैश्च प्रज्वलन् प्रदत्तेजसा ३

प्रजपन् परमं ब्रह्म शुद्धस्फटिकमालया । दण्डी छत्री शुक्रवासा दन्तशक्तिविराजितः ।

ज्योतिर्ग्रन्थो मूर्त्तिमांश्च धेद्वेदशङ्खपारगः ॥ ४ ॥

परिविघ्नञ्जटामारं सतकाञ्चनसन्निभम् । शरत्पार्यणचन्द्रास्यो गौराङ्गः पद्मलोचनः ५

योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धमको गदाभृतः ।

श्याष्यामुद्राकरः धीमान् शिष्यान्ध्यापयन् मुदा ॥ ६ ॥

वेदव्याख्या कतिविधा प्रकुर्यन्नपलीलया । एकीभूय धनुर्वेदतेजसा मूर्तिमार्ति  
साक्षात् सरस्वतीकण्ठः सिद्धान्तैकपिशाच्छः ।

ध्यानैकनिष्ठः श्रीकृष्णपात्राम्भोजे दिवानिराम् ॥ ८ ॥

जीयन्मुक्तो हि सिद्धेशः सर्वथाः सर्वदर्शनः । तं दृष्ट्वा सा समुत्तस्थौ यशोदा प्रण  
पायं गां मधुपर्कञ्च स्वर्णसिंहासनं ददौ । बालकं चन्दयामास मुनीन्द्रं सस्मितं  
मुनिश्च मनसा चमो प्रणामशतकं हृदिम् । आशिशं प्रददौ ध्याय्या वेदमन्त्रोपयं  
प्रणनाम च शिष्यांश्च ते तां युयुजुगशिषम् ।

शिष्यान् पाद्यादिकं भक्त्या प्रददौ च पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

सशिष्योऽङ्घ्री च प्रक्षाल्य समुवासमुख्यासने । समुचता गतिं प्रष्टुं पुटाञ्जलियुत  
स्वक्रोडे बालकं कृत्वा भक्तिनम्रास्यकन्धरा । स्वात्मारामं मङ्गलञ्च प्रष्टुं यद्यपि  
तथापि भवतो नाम शिवं पृच्छामि सांप्रतम् ।

अथला बुद्धिर्हाना या दोषं क्षन्तुं सदाहंसि ॥ १५ ॥

मूढस्य सततं दोषक्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥ १६ ॥

अङ्गिरा घाघचात्रिर्वा मरीचिर्गांतमोऽथवा । ऋतुः किं वा प्रचेतावापुलस्त्यःपुलहो  
दुर्वासाः कर्दमस्त्वं वा घशिष्ठो गर्ग एव वा ।

जैगीपण्यो देवलो वा कपिलो वा स्वयं विभुः ॥ १८ ॥

सनत्कुमारः सनकःसनन्दो वा सनातनः । घोडुःपञ्चशिखोवात्तवमासुरिःसौमरिः  
विश्वामित्रोऽथ वाल्मीको वामदेवोऽथ कश्यपः ।

संवर्तः किमुतथ्यो वा किं कबो वा बृहस्पतिः ॥ २० ॥

भृगुः शुक्रश्च्यवनोनरनारायणोऽथवा । शकृद्भिः पराशरोव्यासःशुकदेवोऽथ जैमि  
मार्कण्डेयो लोमशश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ।

आर्स्ताको वा जरत्कारु ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ २२ ॥

पौलस्त्यस्त्वमगस्त्यो वा शरह्वान् गिरिरेव च ।

शमीकरःश्रिमिनेगिश्च माण्डव्याः पैल एव च ॥ २३ ॥

पाणिनिर्व्या कणादोपाशाकल्पः शाकटाधनः । अष्टावक्रो भागुर्षिर्वासुमन्तुर्वत्सपववा  
जायालियांशपल्लवश्च वैशम्पायन एव धा । यतिर्हंसो पिप्पलादो मैत्रेयः कश्यपस्तथा ॥  
उपमन्युर्गौरमुखोऽरुणितोर्वींऽथ कक्षिवान् । भरद्वाजो वेदशिराःशङ्कु कर्णोऽथ शौनकः  
एतेषां पुण्यश्लोकानां को भवान् वद मे प्रभो । प्रत्युत्तराहां नाहं चेत्तथापि वक्तुमर्हसि  
किङ्करःकिङ्करी वापि समर्था प्रष्टुमीश्वरम् । यो यस्य सेधानिरतःस कं पृच्छति तं विना  
घन्याहं हृतगुल्याहं सफलं जीवनं मम । त्वत्पादाब्जरजःस्पर्शाज्जन्मकोट्यंहसां क्षयः  
त्यन्पादोदकसंस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा । तवागमनमात्रेण तीर्थोभूतो ममाश्रमः ॥  
येथे धृताः धृता प्रह्वन् धृतिसारा महाजनाः । तेषामेकोमया दृष्टः पूवंपुण्यफलोद्भवात्

शिष्या वेदा मूर्त्तिमन्तो ग्रीष्ममध्याह्नभास्कराः ।

गोकुलं मतकुलं सद्यः पुनन्ति पादरेणुना ॥ ३२ ॥

आशिर्गं कर्तुमर्हन्ति प्रसन्नमनसा शिशुम् । पूर्णं स्वस्त्ययनं सती विप्रार्शावचनं ध्रुवम्  
इत्येवमुनया नन्दव्री भक्तया तस्थौ मुनेः पुरः । चरं प्रस्थापयामास नन्दमानयितुं सती  
यशोदावचनं ध्रुवया जहास मुनिपुङ्गवः । जहसुः शिष्यसंघाश्च भासयन्ती दिशो दश ॥  
दिनं तथ्यं नीतियुक्तं महत्प्रतीतकरं परम् । तामुवाच मुदा युक्तः शुद्धयुद्धिमहामुनिः ॥

श्रीगर्गोऽवाच ।

सुधामयं ते घवनं लौकिकं समयोचितम् । यद्य यत्र कुन्ते जन्म स एव साद्रो भवेत्

सर्वेषां गोपपत्रानां गिरिमानुष भास्करः ।

एनी पत्नासमा तस्य नाम्ना पद्मावती सती ॥ ३८ ॥

तस्याः कन्या यशोदा त्वं यशोवर्द्धनकारिणी ॥ ३९ ॥

कन्दो एस्त्वञ्जयामद्रे बालोऽयं येन पागतः । जानामिनिर्जनेसप्येष्यामि मन्दसन्निधिम्  
गर्गोऽहं यदुपशानां चिरकालंपुरोहितः । प्रस्थापितोऽहं घमुना मान्यसाध्येन कर्मणि  
एतस्मिन्नन्तरे मन्दः धृतमात्रं जगामह । ननाम दण्डपटु भूमौ भूजां तं मुनिपुङ्गवम् ।

शिष्यान्तनाम भूर्जां च ते तं ययुजुराशिरम् ॥४२ ॥

समुत्थापयान्ताम् पूर्णं यशोदां मन्दमेव च । शृद्धान्पान्यन्तं रम्यं जगाम विदुरो घट



ॐ अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं कर्त्तव्यमेवम् । एवं उवाच तौ वाचकं निर्गुहं निर्जिनेमुने  
अर्चनं उवाच ।

ॐ अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् । प्रभाषितोऽहं वसुना येन सत्त्वुनामिति  
कथं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् । सुतोऽयं वसुदेवस्य उच्येत सत्यं च ध्रुवम्  
अकारो च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं कर्त्तव्यम् ॥ ५१ ॥

अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् । गृहेन प्रेषितास्तेन तस्योद्योगो नृप इति ॥५१॥  
पूर्वजात्कर्मणो च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् । भाग्यव्य भाग्यहरणं कर्त्ता धाम्ना च संवितः  
कर्मणो च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् । भाग्यव्य भाग्यहरणं कर्त्ता धाम्ना च संवितः  
कर्मणो च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् । कर्त्तव्योऽन्ते तदंशाच्च नरनारायणस्युप  
कर्मणो च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् । किमु । स वसुं ददाति या च शिशुरूपो वभूव ह ।  
सत्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यम् ।

अकारो निसम्पदभावमाधिभूतो मदीतले ॥ ५२ ॥

अकारो निसम्पदभावं कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । भाषिभूय वसुं मूर्तिं दर्शयित्वा जगाम ह  
अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । सुतो रक्ततया पीत इवानी कृष्णतां गतः ।  
अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । जेतापो रक्तवर्णाऽयं पीतोऽयं ह्यपरे विभुः ।  
अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः  
अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । शिवस्यपाचकः पञ्च नकारो धर्मवाचक  
अकारो विभोर्ध्वजतः श्वेतप्रीपनिवासिनः ।

नानामप्यभार्षथ धिसर्गो वाचकः स्मृतः ॥ ५८ ॥

अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । सर्वाधारः सर्ववीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः  
अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । अकारो धातुवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ।  
अकारो वदन्ते च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं च कर्त्तव्यं । भक्तिवाचकः ।

इति स्मृतः ॥ ६१ ॥

अकारो प्रातिपचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥

नाम्नाभगधतो नन्द कोटीनां स्मरणे च यत् । तत्फलं लभते नूनं कृष्णेति स्मरणे नरः  
यद्विधं स्मरणे पुण्यं ध्वनाच्छ्रवणात्तथा ।

कोटिजन्मांहसो नाशो भवेद् यत्स्मरणादिकात् ॥ ६४ ॥

विष्णोर्नाम्नाञ्च सर्वेषां सर्वात्सारं परात्परम् । कृष्णेतिमङ्गलं नाम सुन्दरं भक्तिदायकम्  
ककारोच्चारणाद्भक्तः कैवल्यं जन्ममृत्युहम् ।

ऋकाराद् दास्यमतुलं पकाराद्भक्तिमीप्सिताम् ॥ ६६ ॥

णकारात् सहयासञ्च तत्समं कालमेव च । तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभतेनात्र संशयः  
ककारोच्चारणादेव वेपन्ते यमकिङ्कराः । ऋकारोक्तेन तिष्ठन्ति पकारात्पातकानि च  
णकारोच्चारणाद्भोगा अकारान्मृत्युरेव च । ध्रुवं सर्वे पलायन्ते नामोच्चारणभीरवः

स्मृत्युक्तिश्रवणोद्योगात् कृष्णनाम्नो ब्रजेश्वर ।

रथं गृहीत्वा धावन्ति गोलोकात् कृष्णकिङ्कराः ॥७० ॥

पृथिव्यां रजसः संख्यां कर्तुं शक्ता विपश्चितः ।

नामनः प्रभावसंख्यानं सन्तो घक्तुं न च क्षमाः ॥ ७१ ॥

पुराशङ्करवक्त्रेण नाम्नोऽस्य महिमा श्रुतः । गुणनामप्रभावञ्च किञ्चिज्जानातिमद्गुरुः  
ब्रह्मानन्तश्च धर्मश्च सुरर्षिर्मनुमानवाः ।

वेदाः सन्तो न जानन्ति महिम्नः षोडशीं कलाम् ॥ ७३ ॥

रत्येवं कथितो नन्द महिमा ते सुतस्य च । यथामति यथाज्ञानं मुख्यवक्त्रान्मया श्रुतम्  
कृष्णः पीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरथवाः । देवकीनन्दनः श्रीशोयशोदानन्दनो हरिः  
सनातनोऽच्युतो विष्णुः सर्वेशः सर्वरूपधृक् । सर्वाधारः सर्वगतिः सर्वकारणकारणम्  
राधाकधूपधिकात्भाराधिकाजीवनः स्वयम् । राधिकासहचारी च राधामानसपूरकः ॥

राधाधनो राधिकाङ्गो राधिकासक्तमानसः ।

राधाप्राणो राधिदेशो राधिकारमणः स्वयम् ॥ ७८ ॥

राधिकाविसर्चोरश्च राधाप्राणाधिकः प्रभुः । परिपूर्णतमं ब्रह्म गोविन्दो गरुडध्वजः  
गामान्येतानि कृष्णस्य धृतानि साम्प्रतं ब्रज । जन्ममृत्युहराप्येव रक्ष नन्द शुभक्षणे

हृतं निरुपितं नाम्नां कनिष्ठस्य यथा श्रुतम् ।

ज्येष्ठस्य हलिनो नाम्नः सङ्केतं धृष्टु मे मुखात् ॥ ८१ ॥

गर्भसङ्कर्षणादेव नाम्ना सङ्कर्षणः स्मृतः ॥ ८२ ॥

नास्त्यन्तोऽस्यैव धेनुषु तेनानन्तरतिस्मृतः । बलदेवो बलोद्रेकादली च हलपा  
शितिवासा नीलवासान्मुषली मुषलायुधात् । रेषत्यासह सम्मोगाद्रेषतीरमणः

रोहिणीगर्भवासान्च रोहिणो यो महामतिः ॥ ८४ ॥

इत्येयं ज्येष्ठपुत्रस्य श्रुतं नाम निवेदितम् ।

यास्याम्यहं गृहं नन्द सुखं तिष्ठ स्वमन्दिरे ॥ ८५ ॥

ब्राह्मणस्य घचः श्रुत्वा नन्दः स्तब्धो बभूव ह ।

निश्चेष्टा नन्दपत्नी च जहास बालकः स्वयम् ॥ ८६ ॥

प्रणम्योघाच्च नन्दस्तं घावयं दिनयपूर्वकम् ।

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ८७ ॥

नन्द उवाच ।

गतश्चेत्त्वं तदा कर्म करिष्यत्येव को महान् । स्वयं शुभेक्षणं कृत्वा कुटुम्बामात्रप्र  
यत्नामौघञ्च कथितोराधाप्राणादिकोऽश । तस्यापिकावाराधेतिकन्यकाकस्यच ध्रु  
नन्दस्य घचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । निगूढं परमं तत्त्वं रहस्यं कथयामि ते ॥

श्रीगर्ग उवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् । पुरा गोलोकवृत्तान्तं धृतं शङ्करवक्त्रत  
श्रीदाम्नो राधया साङ्गं बभूव कलहो महान् । श्रीदामशापाद् दैवेनगोपीराधाचगो  
वृषभानुसुता सा च मातातस्याः कलावती । कृष्णस्याद्वाङ्गसम्भूतानाथस्यसदृशीस  
गोलोकवासिनी सेयमत्र कृष्णाशयाधुना । अयोनिस्तम्भवा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी  
मातुर्गर्भं घायुपूर्णं कृत्वा च मायया सती । घायुनिःसरणे काले धृत्वाच शिशुविप्रह  
भाविर्वभूव मायेयं पृथ्व्यां कृष्णोपदेशतः । वर्धते सा व्रजे राधा शुक्ले चन्द्रकला य  
श्रीकृष्णतेजसोऽर्द्धेन सा च मूर्त्तिमती सती । एका मूर्त्तिर्द्विधामृता मन्दो धेदेनिरुपित

इयं स्त्रीसा पुमान् किंपा सा या भ्रान्ता पुमानयम् ।

हे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च ।

पराश्रमेण युद्ध्या या भ्रानेन सम्पदापि च ॥ ६८ ॥

पुरतो गमनेनेव किन्तु सा घयसाधिका । ध्यायते तामयं शश्वदिमंसास्मरतिप्रियम् ॥

रक्ता सास्य प्राणैश्च तत्प्राणैर्मूर्त्तिमानयम् । अस्य राधानुसारेण गोकुलागमनं परम्

स्वाकारं सार्धकं कर्त्तुं गोलोके यन् एतं पुरा । कंसभीतिच्छलेनेव गोकुलागमनं हरेः

प्रतिप्रापालनार्थाय भयेशस्य भयं कुतः । राधाशश्वस्य व्युत्पत्तिः सामयेदे निरूपिता

नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नामिषद्भुजे । ब्रह्मा तां कथयामास ब्रह्मलोकेच शङ्करम् ॥

पुरा कैलासशिखरे मामुवाच महेश्वरः । देवानां दुर्लभां नन्द निशामय घदामि ते ॥

सुपसुरमुनीन्द्राणां चाञ्छितांमुक्तिदां पराम् । रेफो हि फोटिजन्माघं कर्मभोगंशुभाशुभम्

आकारा गर्मयासञ्च मृत्युञ्चरोगमृतसृजेत् । धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्

ध्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः ।

रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्भुजे ॥ १०७ ॥

सर्वैस्तिनं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम् । धकारः सहवासञ्च तत्तुल्यकालमेव च ॥

ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेःसमम् । आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिः हरो यथा

योगशक्तियोगमतिस्वर्गकालंहरिस्मृतिम् । धृत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालञ्चकिल्बिषम्

रोगशोकमृत्युयुमा वेपन्तेनाप्रसंशयः । राधामाधवयोः किञ्चिदुध्याख्यानञ्चयतःश्रुतम्

तदुक्तञ्च यथाज्ञानं साकार्यं षक्तुमक्षमः । आराद्दु वृन्दावने नन्द विद्याहो भवितानयोः

पुरोहितो जगद्भाता कृत्वाग्निं साक्षिणं मुदा ।

कुचेरपुत्रमोक्षञ्च गन्वस्याहृत्य भक्षणम् ॥ ११३ ॥

हिसनं धेनुकस्यैव कानने तालभोजनम् । चकफेशिप्रलम्बानां हिसनञ्चाथ लीलया ॥

मोक्षं द्विजपत्नीनां मिष्टान्नपानभोजनम् । भजनं शक्यागस्य शकाद्गोकुलरक्षणम् ॥

गोपीनां घस्त्रहरणं व्रतसम्पादनन्तथा । ताभ्यः पुनर्वस्त्रदानं वरदानं यथेस्तिनम् ११६।

चेतसां हरणं तासामयं घश्याः करिष्यति ।

रासोत्सवं महारम्यं सर्वेषां हर्षवर्द्धनम् ॥ ११७ ॥

पूर्णचन्द्रोदये नक्तं घसन्ते रासमण्डले । गोपीनां नवसम्भोगात् श्रुत्या पूर्णं मनोरथ्य  
ताभिः सह जलक्रोडां करिष्यति कुतूहलात् । विच्छेदोऽस्य वर्षशतं श्रीदामाशापहेतुकम्  
गोपालैर्गोपिकाभिश्च भविता राधया सह । मथुरागमनं तत्र गोपीनां शोकवर्द्धनम् ॥

पुनः प्रबोधनं तासां दानमाध्यात्मिकस्य च ।

स्यन्दनाक्रूरयो रक्षां सद्यस्ताभ्यां करिष्यति ॥ १२१ ॥

रथस्यारोहणं श्रुत्या मथुरागमनं पुनः । पितृभ्रातृव्रजेः सार्द्धं विलङ्घ्य यमुनां व्रजे ॥१२०॥  
अक्रूराय ज्ञानदानं दर्शयित्वा स्वकं जले । कौतुकेन च सायाह्ने नगरात्सर्वदर्शनम् ।  
मालाकारतन्तुपापकृच्छ्रानां घन्धमोक्षणम् । धनुर्भङ्गं शङ्करस्य यागस्थानप्रदर्शनम् ।  
हिसनं गजमहानां दर्शनं नृपतेः पुरः ।

कंसस्य हिसनं सद्यः पित्रोर्निगङ्गमोक्षणम् ॥ १२५ ॥

प्रबोधनञ्च युष्माकमुपसेनामिषेचनम् । तस्य तस्य यथूनाञ्च ज्ञानाच्छोकापनोदनम् ॥  
भ्रातुः स्वस्योपनयनं पित्रदानं गुरोर्मुग्धात् । गुरुपुत्रप्रदानञ्च पुनरागमनं शूदे ॥१२७॥  
छलनं नृपसैन्यानां यघनस्य दुरात्मनः । निर्माणं द्वारकायाश्च मुचुकुन्दस्य मोक्षणम् ।  
द्वारकागमनञ्चैव यादयैः सह कौतुकात् । स्त्रीसंघानां विहरणं ताभिः सार्द्धञ्चक्रोद्धनम्  
सौभाग्यवर्धनतासांपुत्रपौत्रादिकस्य च । मणिसम्यग्निपतोमिष्याफलद्वम्पचमोक्षणम्  
सादाप्यं वाञ्छयानाञ्च भाराचरणादिकम् । निष्यन्नं राजगृहस्य धर्मपुत्रस्य स्त्रीत्या  
पारिजातस्य हरणं शक्राद्द्वारमर्दनम् ।

प्रभूर्णञ्च सत्याया राजस्य भुक्तवृत्तनम् ॥ १३२ ॥

मर्दनं शिखरीन्यातां हरस्य जन्मणं परम् । हरणं थाणपुष्याश्चैवानिच्छस्य मोक्षणम् ।  
वारानस्यश्च दहनं विप्रदाग्निवमभ्रनम् । विप्रपुत्रप्रदानञ्च मुशानां दमनादिकम् ॥१३१॥  
सार्धंवाचात्मज्ञेन युष्माभिः सह दर्शनम् । श्रुत्या च राधया सार्द्धं व्रजमागमिता पुन  
सन्ध्यादयित्वा द्वागाञ्च परं नारायणाशक्तम् । सर्वे निष्याद्वनं श्रुत्या गोलोकं राधयासह  
सन्निष्यादेष गोलोकं बाधोऽयं जगतामिति ।

त्रयोदशोऽध्यायः ] • ध्यातृष्णस्याप्रप्रारानसंस्कारसाङ्गतासिद्धयर्थदानवर्णनम् • ६०३

नारायणश्च वैकुण्ठं जामिता स्म त्वया सह ॥ १३७ ॥

धर्मशूरमूर्त्या ह्यौ च विष्णुः शशिरोदमेव च । इत्येवं कथितं नन्द भविष्यं वेदनिर्णयम्  
धूपतां साम्प्रतं धर्मं वदथं गमनं मम । माघशुक्लचतुर्दश्यां कुरु कर्म शुभे क्षणे ॥ १३६ ॥  
गुरवारे च रेपार्यां विरुद्धे सद्गतायके । चन्द्रस्थे मीनत्वाने च लानेशपूर्णादर्शने ॥ १४० ॥  
वणिजे कारणीत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे । सुदुर्लभे दिने तत्र सर्वोत्कृष्टोपयोगिके ॥ १४१ ॥  
मालोच्य पण्डितैः साद्धं कुरुकर्ममुदान्वितः । इत्युक्त्वा वहिरागत्यसमुवासमुनीश्वरः  
हृष्टो तन्यो वशोदा च कर्मोद्योगं चकार ह । एतस्मिन्नन्तरे द्रष्टुं गगं गोपाश्चगोपिकाः  
बाटका वालिकाश्चैव व्याजगमुर्नन्दमन्दिरम् । ददृशुस्ते मुनिश्रेष्ठं प्रीत्यमभ्याह्रमास्करम्  
शिष्यसङ्घैः परिवृतं ज्वलन्तं द्रह्मनेत्रसा । गृह्ययोगं प्रवोचन्तं सिद्धाय पृच्छते मुदा ॥  
पश्यन्तं सस्मितं नन्दमवतानां परिच्छदम् । स्वर्णसिंहासनस्थश्च योगमुद्राधरं धरम्  
मृतं मय्यं भविष्यञ्च पश्यन्तं ज्ञानचक्षुषा । हृदीदपरं प्रपश्यन्तं सिद्धं मन्त्रप्रभायतः ॥

यहिर्यशोदाकोड्दृश्यं तादृशं सस्मितं शिशुम् ।

महेशदत्तध्यानेन यद्रूपञ्च निरूपितम् ॥ १४८ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीत्या पूर्णभूतमनोरथम् । साधुनेत्रं पुलकितं निगमन् भक्तिसागरे ॥ १४६ ॥  
हृदि पूजां प्रणामश्च कुर्यन्तं योगवर्ष्यया । मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते तञ्च स च तानाशिर्यं ददौ

आसनस्थो मुनिस्तस्म्यौ ते अगमुः स्वालयं मुदा ।

नन्दः सानन्दयुक्तश्च बन्धून् मङ्गलपत्रिकाः ॥ १५१ ॥

प्रस्थापयामास शीघ्रमाराद् दूररिथतान् मुदा ।

दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम् ॥ १५२ ॥

गुडकुल्यांतैलकुल्यांमधुकुल्याञ्चविस्तृताम् । नवनीतकुल्यां पूर्णाञ्च तक्रकुल्यांयदृच्छया  
शर्करोदककुल्याञ्च परिपूर्णाञ्च लीलया । तण्डुलानाञ्च शालीनामुषैश्च शतपर्वतान् ॥  
शृयुक्तानां शैलशतं लवणानाञ्च सप्त च । सप्त शैलान् शर्कराणां लड्डुकानाञ्च सप्त च ।  
परिपक्वफलानाञ्च तत्र वोड्दश पर्वतान् । यवगोधूमचूर्णानां पक्कलड्डुकपिण्डकान् ॥  
मोदकानाञ्च शैलञ्च स्वस्तिकानाञ्च पर्वतान् । कपर्दफानामत्युषैः शैलान् सप्त च नारद

कंपुरादिकयुक्तानां ताम्बूलानाञ्च मन्त्रिणम् । विष्णुं ह्यर्हानञ्च धामिनोऽहर्मयुक्तम् ॥  
चन्द्रनागमुहकम्बूरीकृद्भुमेन समन्यितम् । नानाविधानि स्थानि स्वर्गानि विविधानि च  
मुक्तामलानि रम्याणि प्रवालानि मुद्गान्यितः ।

नानाविधानि चारुभिः पासांसि भृशानि च ॥ १६० ॥

पुत्रान्तपाशाने मन्दः कारयामास कौमुकात् । संस्कारयुक्तं शशिरं चन्द्रनक्षत्रयन्त्रितम् ॥  
प्राङ्गणं कदलीस्तम्भी स्थालनयपल्लवैः । शशिनैः गृहमयन्त्रेण यैष्टयामास कौमुकात् ॥  
युक्तं मङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः । चन्द्रनागमुहकम्बूरीपुष्पमालाविशालितैः ॥ १६३ ॥

माल्यानां धरयन्त्राणां शशिमिथ्य विराजितम् ।

मयाञ्च मधुपर्कानामाम्नतानाञ्च नारम् ॥ १६५ ॥

कलानां जलकुम्भानां समूहैश्च समन्यितम् । नानाप्रकारैर्यागैश्च दुर्लभैः सुमनोहरैः ॥  
दद्यानां दुन्दुभोवाञ्च पटहानां तथैव च । सृष्टङ्गमुरजार्जनामानकानां समूहैः ॥ १६६ ॥  
धंशीसन्नहतीकांस्यसरयन्त्रैश्च शशितम् ।

विद्याधरीणां नृत्येन भङ्गिमात्रमणेन च ॥ १६७ ॥

गन्धर्वनायकानाञ्च सङ्गीतैर्मूर्च्छंतायुतैः । स्वर्णसिंहासनानाञ्च स्थानां निःस्वनैर्युतम् ॥  
पतस्मिन्नन्तरे नन्दमुवाच वाचको मुदा । आजगमुर्बल्लवेन्द्राश्च धान्यघवा घल्लवास्तथा ॥  
अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथन्याश्चेति सत्वरम् । आजगमूराजपुत्राश्च खलालङ्कारयूयिताः ॥  
आगतौ गिरिभानुश्च सस्त्रीकश्च सकिङ्करः । स्थानाञ्च चतुर्लक्षं गजानाञ्च तथैव च ॥

तुरङ्गमाणां कोटिश्च शिविकानां तथैव च ।

ऋषीन्द्राणां मुनीन्द्राणां विप्राणाञ्च विपश्चिताम् ॥ १७२ ॥

चन्दिनांमिशुकाणाञ्च समूहैश्च समीपतः । गोपानांगोपिकानाञ्च संख्यांकुत्तुञ्चकःसप्तः ॥  
पश्यागत्य बहिर्भूयेत्युवाच प्राङ्गणे स्थितः । ध्रुत्वैवं तानुपवश्य समानीय यजेत्श्वरः ॥  
प्राङ्गणे वासयामास पूजयामास सत्वरम् । ऋष्यादिकसमूहञ्च प्रणम्य शिरसा भुवि ।

पायादिकञ्च तेभ्यश्च प्रददौ सुसमाहितः ॥ १७५ ॥

वस्तुमिर्वन्धुभिः पूर्णं यमूय मन्दगोकुलम् ।

त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा । चकार स्वर्णकृष्ट्या च परिपूर्णञ्च गोकुलम् ॥  
 कानुकापहवञ्चकुर्यन्धुवर्गाश्च व्रीडया । आनम्रकन्धराः सर्वे दृष्ट्वा नन्दस्य सम्पदम् ॥  
 नन्दः कृताहिकैः पूतो धृत्वा धौते च वाससी । चन्दनागुल्कस्तूरीकुङ्कुमेनैव भूयितः ॥  
 उवास पादौ प्रक्षाल्य स्वर्णपीठे मनोहरे ।

गर्गस्य च मुनीन्द्राणां गृहीत्वाज्ञां व्रजेश्वरः ॥ १८० ॥  
 संसृज्यविष्णुमाचान्तः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । कृत्वाकर्मच वेदोक्तभोजयामासवालकम् ॥  
 गर्गावाक्यानुसारेण बालकस्य मुदान्वितः । कृष्णेति मङ्गलं नाम ररक्ष च शुभे क्षणे ॥  
 सपूतं भोजयित्वाच कृत्वानाम जगत्पतेः । घाद्यानि घादयामास कारयामासमङ्गलम् ॥

नानाविधानि स्वर्णानि धनानि विविधानि च ।  
 भक्ष्यद्रव्याणि घासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ १८४ ॥  
 पन्दिभ्यो मिश्रुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ । भारकान्ताश्च ते सर्वे न शक्ता गन्तुमेवच ॥  
 ब्राह्मणान् यन्धुवर्गाश्च भिक्षुकांश्च विशेषतः । मिष्टान्नं भोजयामास परिपूर्णं मनोहरम् ॥  
 दीयतां दीयताश्चैव खाद्यतां खाद्यतामिति । बभूव शब्दोऽत्युशोश्च सततं नन्दगोकुले ॥  
 तानि परिपूर्णानि घासांसि भूषणानि च । प्रवालानि सुवर्णानि मणिसाराणि यानि च ॥

घाकानि स्वर्णपात्राणि कृतानि दिग्बकर्मणा ।  
 गत्वा गर्गाय विनयं चकार मजपुङ्गवः ॥ १८६ ॥  
 शोष्येभ्यःस्वर्णभारांश्च प्रददौ विनियान्वितः । द्विजेभ्योऽप्यवशिष्टेभ्यःपरिपूर्णानि नारद ॥  
 श्रीनारायण उवाच ।

हीत्वा धीहरिं गर्गो जगाम निभृतं मुदा । तुष्टाप परया भक्त्या प्रणम्य च तर्माश्वरम् ॥  
 गार्ग्येभ्यः सपुल्लभो भक्तितप्तमकन्धरः । पुटाश्लियुतो भूष्योवाच कृष्णपदाम्बुजे ॥  
 गर्ग उवाच ।  
 कृष्ण जगतां माध भक्तानां भयभञ्जन । प्रसन्नो भय मार्मारा देहि दास्यं पदाम्बुजे ॥  
 इतिवा मे धनं हत्तं तेन मे किं प्रयोजनम् । देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद ॥



जमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो । ज्ञानभयेऽमल्येया किञ्चिन्नास्ति स्पृहाम्न  
 द्येवा मनुष्येवा स्वर्गलोकाकलेगितम् । नास्तिमेतन्मो वाञ्छा त्वत्पादसेवनेन  
 सालोचयं साष्टिमार्ग्ये मामोच्यैक्यमीप्सितम् ।

माहं गृहामि ते प्रह्लादं त्वत्पादसेवने विना ॥ १९७ ॥

तलोकेषाणि पातान्ते पाते नास्ति मनोरथाः । किन्तुते वरणाग्नोजेमन्तनं स्मृतिस्मृते  
 जन्मन्त्रं शङ्करात् प्राप्य फलिजन्मकलोदयात् । सर्वमोऽहं सर्वदर्शी सर्वत्र गतिस्तु मे  
 पां कुत कृपासिन्धो दीनघ्नो पदाम्बुजे । रक्ष माममयं दृष्ट्वा मृग्युर्मैकि करिष्यति  
 र्वेषामीश्वरः शर्पस्त्वत्पादाग्नोजसेपया । मृग्युञ्जपोऽन्नकारणं यभूव योगिनांशुः  
 ता विधाता जगतां त्वत्पादाग्नोजसेपया । यस्मैकदिपसे प्रह्लादं पतन्तीन्द्रास्वतुर्यं  
 त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम् ।

पाता च फलदाता च जित्वा फालं सुदुर्जयम् ॥ २०३ ॥

वदन्नयदनः शेषो यत्पादाग्नोजसेवया । धत्ते सिद्धार्थयद्विश्वं शिवः कण्ठे विषं यथा ।  
 र्वसम्पद्धिधारीया देवीनाञ्च परात्परा । करोति सतनंलक्ष्मीः केशीस्त्वत्पादमार्जनं  
 यद्विधीर्जरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी । स्मारं स्मारं त्वत्पदाब्जं यभूव तत्परा या  
 पार्यती सर्वरूपासा सर्वेषांबुद्धिरूपिणी । त्वत्पादसेवया कान्तं ललाभ शिवमीश्वरम्

विद्याधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती ।

पूज्या यभूव सर्वेषां संपूज्य त्वत्पदाग्नोजम् ॥ २०८ ॥

साधित्री वैदजननी पुनाति भुवनत्रयम् । ब्रह्मणो ब्राह्मणानाञ्च मतिस्त्वत्पादसेवया ।  
 क्षमा जगद्भिर्तुञ्च रत्नगर्भा घसुन्धरा । प्रसूतिः सर्वशस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया ।  
 राधाममांशसम्भूता तव तुल्याचतेजसा । स्थित्वा यक्षसितेपादं सेवतेऽन्यस्यकाकपा  
 यथा शर्वादयो देवा देव्यः पद्मादयो यथा । सनायं कुत मामीश ईश्वरस्य समाकृपा ।  
 न यास्यामि गृहं नाथ न गृहामि धनं तव । कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवयां सेवकंत्तम  
 स्तुत्वा साश्रुनेत्रः पपात चरणे हरेः । हरोद् व भृशं भक्त्यापुलकाञ्चितविप्रहः ।  
 गर्गस्य घचनं श्रुत्वा जहास भक्तयत्सलः ।

उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥२१५॥

इदं गर्गदत्तं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं य. पठेन्नरः । दृढां भक्तिं हरिर्दास्यं स्मृतिञ्च लभते ध्रुवम् ।  
जन्ममृत्युज्वरारोगशोकमोहादिसङ्घटात् । तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः ॥  
कृष्णस्य सह कालञ्च कृष्णसार्द्धञ्च मोदते । कदाचिन्न भवेत्तस्य विच्छेदो हरिणा सह  
श्रीनारायण उवाच ।

हरि मुनिः स्तरं कृत्वा दशै नन्दाय तं मुदा । उवाच तं गृहं यामि कुर्वाणामिति बह्वम  
बहो विविधं संसारो मोहजालेन वेष्टितः । सम्मीलनञ्च विरहो नराणां सिन्धुफेनयत्  
गर्गस्य धचनं ध्रुत्वा हरोद नन्द एव च । सद्भिच्छेदो हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥  
सर्वशिष्यैः परिवृतं मुनीन्द्रं गन्तुमुद्यतम् । सर्वे नन्दादयो गोपा रुदन्तो गोपिकास्तदा  
प्रणेतुः परमप्रीत्या चक्रुस्तं विनयं मुने । दत्त्वाशिर्यं मुनिश्रेष्ठो जगाम मथुरां मुदा ॥  
ऋषयो मुनयश्चैव धन्वुवर्गाश्च बहवः । सर्वे जामुर्धनैः पूर्णाः स्वालयं हृष्टमानसाः ॥

प्रजामुर्वन्दिनः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः ।  
मिष्टद्रव्यांशुकोत्कृष्टतुल्यस्वर्णभूषणैः ॥ २२५ ॥  
बाकण्ठपूर्णा भुक्तया च मिश्रका गन्तुमक्षमाः ।  
स्वर्णचक्रभरोद्रेकपरिधान्ता मुदान्विताः ॥ २२६ ॥

शुभन्दगाभिनः केचित् केचिद्भूमौ च शेरते । केचिद्वर्त्मनि तिष्ठन्तश्चोत्तिष्ठन्तश्च केचन  
केचिद्भूयुः प्रमुदिता हसन्तस्तत्र केचन । कपर्दकानां घस्तूनां शेषांश्चोर्वरितान् बहून् ॥  
केचित्तानाद्दुःस्थित्वा दर्शयन्तश्च केचन । केचिन्नृत्यं प्रकुर्वन्तो गायन्तस्तत्र केचन  
केचिद्बहुविधा गाथाः कथयन्तः पुरातनाः । महत्शयेतसगरमान्धातृणाञ्च भूभृताम् ॥  
उत्तानपादनहुपनलादीनाञ्च याः कथाः । श्रीरामस्याश्वमेधस्य रन्तिद्वेषस्य कर्मणाम् ॥

येषां येषां नृपाणाञ्च ध्रुत्वा वृद्धमुखात् कथाः ।  
कथयन्तश्च ताः केचित् श्रुतवन्तश्च केचन ॥ २३२ ॥  
स्थायं स्थायं गताः केचित् स्वापं स्वापञ्च केचन ।  
एवं सर्वे प्रमुदिताः प्रजग्मुः स्वालयं मुदा ॥ २३३ ॥

हृष्टो नन्दो यशोदा च बालद्वयत्वा च पश्यति । तर्था स्वमिन्द्रे रम्ये कुबेरमवनोपमे  
 पर्यं प्रपदन्ती बाली शुभ्रान्द्रकन्डोपर्या । गणां पुच्छञ्च मित्तिञ्च धृष्या नोत्तम्यतुमुदा  
 शब्दादं वा तद्वर्षा क्षमां यत्तुं दिने दिने । पित्रोर्द्वयञ्च पदन्ती गच्छन्ती प्राङ्गणे मुने  
 बालो द्विपार्श्वं पार्श्वं वा गन्तुं शक्नो यभूष ह ।

गन्तुं शक्नो हि जानुभ्यां प्राङ्गणे वा गृहे हरिः ॥ २३७ ॥

वर्षाधिको हि वयसा कृष्णात्सङ्कषेणः स्वयम् ।

ततो मुदं वदन्तीं वर्द्धितां च दिने दिने ॥ २३८ ॥

प्रजन्तीं गोकुले बालीं प्रहृष्टगमने क्षमां । उक्तवन्तीं स्फुटं घाकयं मायाबालकविप्रही  
 गार्गो जगाम मधुरां घमुदेवाभ्रमं मुने । स तं ननाम पप्रच्छ पुत्रयोः कुशलं तयोः ॥  
 मुनिस्तं कथयामास कुशलं सुमहोत्सवम् । आनन्दाश्रुनिमग्नश्च धृतमात्राद् वभूव ह ॥  
 देवकी परमप्रीत्या पप्रच्छ च पुनः पुनः । आनन्दाश्रुनिमगना सा खरोद च मुहुर्मुहुः ॥  
 गर्गस्तावाशिषं दत्त्वा जगाम स्व्यालयं मुदा । स्वगृहे तस्थतुस्तीं च कुबेरमवनोपमे ॥  
 यत्र कल्पे कथा खेयं तत्र त्वमुपवर्द्धणः । पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च पतिर्गन्धर्वपुङ्गवः ॥  
 तासां प्राणाधिकस्त्वञ्चशृङ्गारनिपुणोयुवा । ततोऽभूर्ब्रह्मणःशापाद्दासीपुत्रीद्विजस्य च

ततोऽधुना प्रहापुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् ।

सर्वदर्शी च सर्वज्ञः स्मारको हरिसेवया ॥ २४६ ॥

कथितं कृष्णचरितं नामात्रप्राशनादिकम् । जन्ममृत्युजरातिघ्नमपरं कथयामि ते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे कृष्णाग्रप्रारब्धं

नामकरणप्रस्तावो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

## चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरित्रवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा नन्दपत्नी च स्नानार्थं यमुनां ययौ । गव्यपूर्णं गृहं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१॥

दधिदुग्धाज्यतकञ्च नयनीतं मनोरमम् । गृहस्थितञ्च यत्किञ्चिन्नखाद मधुसूदनः ॥२॥

मधु ह्यैयङ्गर्षानयत्स्वस्तिकंशकटस्थितम् । भुक्त्वा पीत्वांशुकैर्वक्त्रसंस्कारं कर्त्तमुद्यतम्

ददर्श बालकं गोपी स्नात्वागत्य स्वमन्दिरम् ।

गव्यशून्यं भग्नभाण्डं मध्यादिरिक्तभाजनम् ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा पप्रच्छ बालांश्च ब्रह्मो कर्मदमदुभुतम् ।

यूयं घदत सत्यञ्च कृतं केन सुदारुणम् ॥ ५ ॥

यशोदावचनं श्रुत्वा सर्वमूक्ष बालकाः । चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं दत्तमेघ च

बालानां वचनं श्रुत्वा चुकोप नन्दगोहिनी । चेन्नं गृहीत्वा हुद्राय रक्तपङ्कजलोचना ७ ॥

पलायमानं गोविन्दं गृहीतुं शशाक ह । ध्यानासाध्यं शिवादीनांदुरापमपियोगिनाम्

यशोदा भ्रमणं कृत्वा विश्रान्ता घर्मसंयुता । तस्थौ कोपपरीतात्माशुष्ककण्ठीष्टतालुका

विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः । सन्तस्थौ पुरतो मातुःसस्मितोजगदीश्वरः

हरे धृत्वा च तं देवी समानीय स्वमालयम् । बध्वा वस्त्रेण वृक्षे च तताड मधुसूदनम्

ध्या कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति । हरिस्तस्थौ वृक्षमूलेजगतां पतिरीश्वरः

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सहसा तत्र नारद । यपात वृक्षः शैलामः शब्दं कृत्वा भयानकम् ॥

वेशः पुरुषो दिव्यो वृक्षादाविर्वभूष ह । दिव्यस्यन्दनमारुह्य जगाम स्वालयं पुरः ॥

गम्य जगतीनाथं शातकुम्भपरिच्छदम् । किशोरः सस्मितो गौरो रत्नालङ्कारभूषितः

वृक्षपतनं दृष्ट्वा मिया प्रस्ता प्रजेश्वरी । क्रोडे चकार बालतं रुदन्तं श्यामसुन्दरम्

भाजामुर्गाकुलस्थाश्च गोपा गोप्यश्च तदुग्रहम् ।

यशोदां भस्त्रंयामासुः शान्तिं नमः शिष्योमुदा ॥ १७ ॥

भयन्तम्यविरे फाले तनयोऽयं यमूय ह ।

धनं धान्यञ्च रत्नं वा तत्सर्वं पुत्रहेतुवम् ॥ १८ ॥

सुमतिर्नास्ति ते सम्यं ज्ञाते नन्दयजेदपरि ।

न भक्षितं यत्पुत्रेण तन् सर्वं निष्फलं भुवि ॥ १९ ॥

पुत्रं यद्बुध्या गध्यहेतोर्घृक्षमूले च तिष्ठुरे ।

गृहकर्मणि द्यप्रायो वैपाद् वृक्षः पपात ह ॥ २० ॥

वृक्षस्य पतनाद्गोपीभाग्याद् बालोऽपि जीवितः ।

प्रतपे बालके मूढे घस्त्रुनां किं प्रयोजनम् ॥ २१ ॥

आशिषं युयुञ्जिषा घन्दिनश्च शुभाचहाम् ।

द्विजेन फारयामासुर्नामसङ्कीर्त्तनं हरेः ॥ २२ ॥

एवं कृत्वा जनाः सर्वे प्रययुर्निजमन्दिरम् ।

उवाच पत्नीं नन्दश्च रक्तपङ्कजलोचनः ॥ २३ ॥

नन्द उवाच ।

यास्यामि तीर्थमद्यैव फण्ठे कृत्वा तु बालकम् ।

अथवा त्वं गृहाद्गच्छ त्वया मे किं प्रयोजनम् ॥ २४ ॥

शतकृपाधिका वापी शतवापीसमं सरः । सरःशताधिको यतः पुत्रो यज्ञशता

तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम् । सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र इदं च परत्र च

पुत्रादपि परो यन्धुर्न भूतो न भविष्यति ॥ २६ ॥

एवमुक्त्वा स्वभार्य्याञ्च तस्यो नन्दः स्वमन्दिरं । यशोदा रोदिणीचैव त्रियुक्तेषु

नारद उवाच ।

सुवेशःपुरुषः को वा वृक्षरूपी च गोकुले । भगवन् हेतुना केन वृक्षत्वं समाच

नारायण उवाच ।

श्रीगणेशाय नमः । जगाम नन्दनपत्नं श्रीद्वार्यसह रमया

निर्जने सरसस्तीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । घटवृक्षसमीपे च सौरभे पुष्पवायुना ॥ ३० ॥  
विधाय पुष्पशयनं रत्नदीपैश्च दीपितम् । चन्दनागुरुफस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ॥ ३१ ॥

परितः पुष्पमाल्यैश्च क्षीमवस्त्रैश्च घेष्टितम् ।

तत्र रम्भां समानीय चित्रहार यथेच्छया ॥ ३२ ॥

शृङ्गाराष्ट्रकारञ्च विपरीतादिकं मुदाम् । चुम्बनं वट्प्रकारञ्च यथास्थानं निरूपितम् ॥  
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगत्रिविधाश्लेषणं मुदा । नखदन्तकारकीड़ां चकार रसिकेश्वरः ॥ ३४ ॥

जलात् स्थले स्थलात्तोये कामशास्त्रविशारदः । रतिभोगंप्रकुर्वन्तंददर्शद्देवलो मुनिः ॥  
नग्रां रम्भां मुक्तकेशीं पीतध्रोणिपयोधराम् । नखदन्तक्षताङ्गीञ्च पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥

पश्यन्तीं प्राणनाथञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा । धकध्रुभङ्गयुक्ताञ्च कामुकीञ्च ददर्श ताम्  
रत्नकुण्डलयुगेन गण्डस्थलविराजिताम् । विचित्ररत्नमाल्यैश्च पुष्पमाल्यैश्च भूषिताम्

किङ्किणीजालसंयुक्तां सिन्दूरविन्दुसंयुताम् ।

तथा युक्तं पुलकितं नोत्तिष्ठन्तं स्मरान्वितम् ॥ ३६ ॥

वृक्षत्वं याहि पापिष्ठेत्युपाच मुनिपुङ्गवः । शशाप रम्भां कामार्त्तीं मानुषीत्वं भवेति च  
जन्मेजयस्य सुभोग्या भविता कामिनीति च । त्वमेव गोकुलं गच्छ वृक्षरूपी भवेति च

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण पुनरायास्यसि गृहम् । रम्भेत्यमिन्द्रसंयोगात्पुनरायास्यसिध्रुवम्  
इत्येवमुक्ता स मुनिर्जंगाम निजमन्दिरम् । कुवेरतनयः श्रोमान् स जगाम निजालयम् ॥

इत्येवं कथितं विप्र रम्भास्थानं वदामि ते । सुचन्द्रस्य गृहे रम्भा ललाभ जन्म भारते  
कन्या लक्ष्मीस्वरूपा च यभूव सुन्दरी घरा ।

ताञ्च सालङ्कृतां हृत्वा सुचन्द्रो नृपतीश्वरः ॥ ४५ ॥

मानाकौतुकसंयुक्तां ददौ जन्मेजयाय च । जन्मेजयस्य सुभगा यभूव महिषी घरा ॥  
स्थाने स्थाने निर्जने च राजा रेमे तथा सह । एकदा नृपतिश्रेष्ठ अश्वमेधेन दीक्षितः ॥

प्रश्वसद्गोपनं कृत्वा तस्यौ शक्रश्च मन्दिरे । यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी  
द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा ।

शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम् ॥ ४६ ॥

तथा निवार्यमाणश्च रैमे तत्र तथा साह । मूर्च्छांमयाप शक्रश्च युयुधे न दिवान्निशम् ५०

सा च सम्मोगमात्रेण वैहं तदयाज योगतः ।

नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गं जगाम ह ॥ ५१ ॥

राजा धृत्वा गृतां दृष्ट्वा पिल्लाप भृशं मुहुः ।

यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दत्त्वा पूर्णाञ्च दक्षिणाम् ॥ ५२ ॥

रम्भा च मानयं वैहं त्यक्त्वा स्वर्गं जगाम ह । इत्येवं कथितं सर्वं वृक्षार्जुनविमल्वनम्

नलकृष्णरमोक्षञ्च रम्भायाश्च महामुने ॥ ५३ ॥

पुण्यदं कृष्णचरितं जन्ममृत्युजरापहम् । इत्येवं कथितं सर्वमपरं कथयामि ते ॥५४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

वृक्षार्जुनमञ्जनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

## पञ्चदशोऽध्यायः

### राधास्वरूपवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ । तत्रोपचनमाण्डरीरे चारयामास गोधनम् ॥

सरःसुस्थादुतोयञ्च पाययामास तत् पयो । उवास वृक्षमूले च बालं कृष्णं स्ववक्षसि

पतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायामानुषविग्रहः । चकार मायया कस्मान्मेघाच्छन्नं तमो मुने

मेघावृतं तमो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम् । भ्रूभावात् महाशब्दं ध्वजशब्दञ्च दारणम्

वृष्टिधारामतिस्फूर्तां कम्पमानांश्च पादवान् ।

दृष्ट्वा वै पतितस्फन्धानन्दो भयमवाप ह ॥ ५ ॥

कथं यास्यामि गोघत्सान् विहाय स्याश्रमं वत ।

गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम् ॥ ६ ॥





इत्युक्तया प्रदर्शो तस्यै रत्नं घालकं गिया ।

जप्राह घालकं राधा जहास मधुरं मुग्धात् ॥ २८ ॥

उवाच नन्दं सा यत्नात्प्रकाश्यं रहस्यकम् । भद्रं द्रष्टा त्वयानन्दकनिजन्मरलोदयात्  
प्राज्ञस्यैर्गर्गपन्नारस्यै जातामि कारणम् । अकथ्यमापयोगींष्यं नरित्रं गोपुत्रे व्रत  
घरं धृष्टु व्रजेश त्वं यत्रे मनसि पाञ्चितम् । ददामि न्यात्या तुभ्यं देवानामपिदुर्लभ-  
राधिकापन्नं श्रुत्या तामुवाच व्रजेश्वरः । युषयोश्चरणेभक्तिं देहि नान्यत्र मे सृष्टा ।

युषयोः सन्निधौ घामं दाम्यसि त्वं सुदुर्लभम् ।

आवाभ्यां देहि जगतामभियके परमेश्वरि ॥ ३३ ॥

श्रुत्या नन्दस्य घचनमुवाच परमेश्वरी । दास्यामि दास्यमनुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ।  
आधयोश्चरणामभोजे युषयोश्च दिधानिशम् । प्रफुल्लहृदये शशयत् स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा

मायायुवाञ्च प्रच्छन्नी न करिष्यति मद्भरात् ।

गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम् ॥ ३६ ॥

एषमुक्त्वा तु सानन्दं हृत्वा कृष्णं स्वघक्षसि । दूरनिनायथोकृष्णां बाहुभ्याञ्चययेस्वित्म्

हृत्वा घक्षसि तं कामात् श्लेपं श्लेपं चुचुम्य च ।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम् ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राधा मायासद्रजमण्डपम् । ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम् ॥

नानाविचित्रचित्राढ्यः चित्रकाननशोभितम् ।

सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम् ॥ ४० ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवयुक्तया । संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्याया ॥ ४१ ॥

नानाभोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम् । मणीन्द्रमुक्तामणिक्वमालाजालैर्विभूषितम् ॥

मणीन्द्रसाररचितकपाटेन समन्वितम् । भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरैः ॥

कुङ्कुमाकारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम् ॥ ४३ ॥

पुष्पोद्यानञ्च पुष्पितैः । सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामाम्यन्तरं मुदा

फण्परादिसमन्वितम् । जलञ्च रत्नकुम्भस्थं स्पच्छं शीतं मनोहय

सुधामधुम्यां पूजांनि रत्नकुम्भानि मारुद । पुरं चमनोपश किशोरदयामसुन्दरम् ॥  
 कौटिकन्दर्पलीलायं चन्दनेन विभूषितम् । शयानं पुष्पशय्यायां सस्मितं मुमनोहरम् ॥  
 पानवस्त्रपरीधानं प्रसन्नपदनेक्षणम् । मणीन्द्रसारनिर्माणं कण्ठमञ्जीरश्चितम् ॥ ४८ ॥  
 सद्गन्धसारनिर्माणकेशूरघलपान्धितम् । मणीन्द्रकुण्डलान्याश्च गण्डस्थलपिराजितम् ॥  
 कौस्तुभेन मणीन्द्रेण पद्मःस्थलसमुत्थलम् ।

शरम्पार्वणचन्द्राम्यप्रभामुष्टमुगोऽप्यलम् ॥ ५० ॥

शरम्पुद्गकमलप्रभामोचनलोचनम् । मालतीमाल्यमंशिलप्रशिरिपिच्छशुशोभितम् ॥  
 त्रिपट्टचूडां विन्नन्तं पश्यन्तं गहनमन्दिरम् । क्रोडं बालकदृग्यञ्च दृष्ट्वा तं मययीषनम् ॥  
 सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययी । रूपंरासंदयरो दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम् ॥  
 कामाक्ष्यधुधकोराम्यां मुपचन्द्रं पपी मुदा । निमेषरहिता राधा नपसङ्गमलालसा ॥  
 पुत्रकाङ्क्षितसर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा । तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोरुहाम् ॥ ५५ ॥  
 नपसङ्गमयोग्याश्च पश्यतीं धक्चक्षुरा ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

राधे स्मरसिगोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि ॥ ५६ ॥

यद्य पूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत् पुरा प्रिये । त्वंमेप्राणाधिकाराधेप्रेयसी च धरानने ॥  
 यथा त्वञ्च तथाऽहञ्चभेदोहिनाययोर्धुंषम् । यथाक्षीरेचधायल्यंयधानोदाहिकासती ॥  
 यथा वृषिव्यां गन्धश्च तथाहंत्यविसन्ततम् । चिनामृदाघटं कर्तुं चिनास्वर्णेनकुण्डलम् ॥  
 कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः फदाचन । तथा त्वया चिना सृष्टिमहद्भुतुं नचक्षमः ॥  
 सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः । आगच्छ शयने साध्वीकुक्ष्यक्षःस्थलेहिमाम् ॥  
 त्वं मे शोमास्वरूपासि देहस्य भूषणं यथा । कृष्णं वदन्तिमांलोकास्त्वयैवरहितं यदा ॥  
 श्रीकृष्णश्च तदातेऽपिन्धयैव महितं परम् । त्वञ्च श्रीस्त्वञ्चसम्पत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी ॥  
 सर्वशक्तिस्वरूपासि सर्वरूपोऽहमक्षरः । यदा तेजःस्वरूपोऽहंतेजोरूपासि त्वं तदा ॥ ६४ ॥  
 न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी । सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि ॥  
 त्वञ्च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।

ममाङ्गाशान्यरुपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ६६ ॥

शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या परानने । भावयोर्मैश्वरिद्विज यः करोति नराधमः  
तस्य पातः फाल्गुश्रे यापञ्चन्द्रदिषाकर्तौ । पूषान् सप्त परान् सप्तपुरुषान् पाल्गुश्रे  
कीटिजग्माजितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।

भजानादाययोर्निन्दां ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥ ६९ ॥

पञ्चन्ते नरके घोरे यापञ्चन्द्रदिषाकर्तौ । राशब्दं कुर्वन्तस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमम्  
धा शब्दं कुर्वन्तः पश्चाद्यामि ध्वणलोभतः । ये सेवन्ते च दस्वा मामुपचारांश्च वीक्ष्य  
यावज्जीवनपर्यन्तं या प्रीतिर्जायते मम ॥ ७१ ॥

सा प्रीतिर्मम जायते राधाशब्दात्ततोऽधिका ।

प्रिया न मे तथा राधे राधा धक्ता ततोऽधिकः ॥ ७२ ॥

ब्रह्मानन्तः शिवो धर्मो नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च कार्तिकेशश्च मत्प्रियः  
लक्ष्मीः सरस्वतीदुर्गा सावित्रीप्रकृतिस्तथा । ममप्रियाश्च देवाश्च तास्तथापि न तत्समाः  
ते सर्वे प्राणतुल्या मे त्वं मे प्राणाधिका सति ।

मिन्नस्थानस्थितास्ते च त्वञ्च पक्षःस्थले स्थिता ॥ ७५ ॥

या मे चतुर्भुजा मूर्त्तिर्विभर्त्सि पक्षसि प्रियाम् ।

सोऽहं कृष्णस्वरूपस्त्वां विवहामि स्वयंभूदा ॥ ७६ ॥

इत्येवमुक्त्वा धीकृष्णस्तथौ कल्पे मनोरमे । उवाच राधिकानाथं भक्तिप्रदात्मकन्धरा  
राधिकौघाच ।

स्मरामिसर्वं जानामि विस्मरामि कथं विभो । यत्त्वं वदसि सर्वाहं त्वत्पादाङ्गप्रसादत  
ईश्वरस्याप्रियाः केचित् प्रियाश्च कुत्र केचन ।

ये यथा मां न स्मरन्ति तथा तेषु तवाकृपा ॥ ७९ ॥

तृणञ्च पर्वतं कर्तुं समर्थः पर्वतं तृणम् । तथापि योग्यायोग्ये च सम्पत्तौ च समाकृपा  
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथामिर्व्यन्तक्षणं गतम् । तत्क्षणञ्च युगसमं नाहं गणयितुं क्षमा

पक्षःस्थले च शिरसि देहि ते चरणाम्बुजम् ।

दुनोति मग्नतः सद्यस्त्वदीयविरहानलात् ॥ ८२ ॥

पुरः पपात मे दृष्टिस्त्वदीयचरणाम्बुजे । नीता मया न हि क्लेशाद् द्रष्टुमन्यत् कलेवरम्  
प्रत्येकमङ्गं दृष्ट्वैष दत्ता शान्ते मुखाम्बुजे । दृष्ट्वा मुखारविन्दञ्च नान्यद्गन्तुं न सा क्षमा  
राधिकायचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः । तामुवाच हितं तर्ष्यं श्रुतिस्मृतिनिरूपितम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

न खण्डनोपं तत्तत्र मया पूर्वं निरूपितम् ।

तिष्ठ भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये ॥ ८६ ॥

त्वन्मनोरथपूर्णस्य स्वयङ्कालः समागतः । यस्य यल्लिखितं पूर्वं यत्र काले निरूपितम् ॥

तदेव खण्डितुं राधे क्षमो नाहञ्च को विधिः ।

विधातुश्च विधाताहं येषां यल्लेखनं कृतम् ॥ ८८ ॥

ब्रह्मादीनाञ्च क्षुद्राणां न तत् खण्ड्यं कदाचन । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा जगाम पुरतो हरैः

मालाकमण्डलुकर ईषत्स्मेरचतुर्मुखः । गत्या ननाम तं कृष्णं प्रतुष्टाव यथागमम् ॥ ९०

साधुनेत्रः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकन्धरः । स्तुत्यान्तवा जगद्धाता जगाम हरिसन्निधिम्

पुनर्नत्या प्रभुं भक्त्या जगाम राधिकान्तिकम् ।

मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मातुस्तधरणाम्बुजे ॥ ९२ ॥

चकार सम्भ्रमेणैव जटाजालेन वेष्टितम् । कमण्डलुजलेनैव शीघ्रं प्रक्षालितं मुदा ॥ ९३

यथागमं प्रतुष्टाव पुटाञ्जलियुतः पुनः ।

ब्रह्मोवाच

हे मातस्तधत्पदाम्भोजं दृष्ट्यं कृष्णप्रसादतः ॥ ९४ ॥

सुदुर्लभञ्च सर्वेषां भारते च विशेषतः । पष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं पुरा मया ॥ ९५ ॥

भास्करे पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः । धाजगाम धरं दातुं धरदाता हरिः स्वयम्

परं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टञ्च वृत्तं मुदा । राधिकाचरणाग्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम्

हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय । मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम् ॥ ९८ ॥

दर्शयिष्यामि काले च वत्सेदानीं क्षमेति च ।

न हीश्वराणां विफला तेन दृष्टं पदाम्बुजम् ॥ ६६ ॥

सर्वेषां घाञ्छितं मातर्गोलोके भारतेऽधुना ।

सर्वा देव्यः प्रवृत्त्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम् ॥ १०० ॥

त्वंकृष्णाङ्गार्धसम्भूतानुल्याकृष्णेनसर्वतः । श्रीकृष्णस्त्वमयंराधात्वंराधावाह्रिःस्वयम्  
न हि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम् ।

ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वञ्च गोलोकोऽस्ति यथाम्बिके ॥ १०२ ॥

यैकुण्ठश्चाप्यजन्यश्चत्वमजन्यातथाम्बिके । यथा समस्तब्रह्माण्डे श्रीकृष्णांशारंशर्विनः  
तथा शक्तिस्वरूपा त्वं तेषु सर्वेषु संस्थिता ।

पुरयाश्च हरेश्चास्त्यदंशा निखिलाः स्त्रियः ॥ १०४ ॥

आत्मना देहरूपात्पमस्याधारस्त्वमेव हि । अस्यानुप्राणैस्त्वंमातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वर  
किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा ।

नित्योऽयञ्च तथा कृष्णस्त्वञ्च नित्या तथाम्बिके ॥ १०६ ॥

अस्यांशा त्वं त्यदंशो चाप्ययं केननिरूपितः । अहं विधाताजगतां वेदानांजनकःस्वयम्  
तं पट्टिषा गुरुमुपाद्मन्त्येष युधा जनाः । गुणानां वा स्तवानां ते शतांशे वत्सुमशम्

वेदो वा पण्डितो घान्यः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः ।

स्नयानो जनकं ज्ञानं युद्धिर्मानाम्बिका सदा ॥ १०८ ॥

त्वं युद्धेजंननी मातः को घान्यांस्तोतुमीश्वरः । यद्बभूवु दृष्टं सर्वेषांतद्विषत्सुंयुधः सम  
पददृष्टाधृतं वत्सु तत्रियंत्सुञ्जकःक्षमः । अहं महेशोऽनन्तश्च स्तोतुं त्वां कोऽपि न शक्नो  
साम्बरीं च वेदाश्च क्षमः कः स्तोतुमीश्वरि । यथागमं यथोक्तञ्च न मां निन्दितुमर्हसि  
इत्यगणामीश्वरस्य योग्यायोग्ये समा हरा । जनस्य प्रतिपाद्यस्य क्षणेदोषक्षणेगुण  
जननी जनको यो वा सपुं क्षमनिस्नेहनः । इत्युनया जगतां घातान्त्वयी च घातान्तयो

प्रणम्य वरणाग्नौञ्जं सर्वेषां वन्दामीसितम् ।

ब्रह्मजा च हृत् स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं चः पठेन्नरः ।

राधानाथवयोः पादे भक्तिदास्यं लभेत् ध्रुवम् ॥ ११५ ॥

कर्मनिर्मूलनं कृत्वा मृत्युं जिह्वासु दुर्जयम् । विलङ्घ्य सर्वलोकांश्च याति गोलोकमुत्तमम्  
श्रीनारायण उवाच ।

ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा तमुवाच ह राधिका ॥ ११७ ॥

घरं वृणु विधातस्त्वं यत्ते मनसि घत्तंते । राधिकाघवनं श्रुत्वा तामुवाच जगद्धिधिः ॥

पञ्च युषयोः पादपद्ममक्तिञ्च देहि मे । इत्युक्ते विधिना राधा तूर्णमोमित्युवाच ह ॥

पुनर्ननाम तां भक्त्या विधाता जगतांपतिः । तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्य च हुताशनम्

हरिं संस्मृत्य हवनं चकार विधिना विधिः । उत्थाय शयनात्कृष्ण उवाच बह्विसन्निधौ

ब्रह्मणोकेन विधिना चकार हवनं स्वयम् । प्रणम्य पुनः कृष्णं राधां तां जनकः स्वयम्

कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणम् । पुनः प्रदक्षिणं राधां कारयित्वा हुताशनम्

प्रणम्य ततः कृष्णां वासयामास तं विधिः । तस्या हस्तञ्च श्रीकृष्णं प्राहयामास तं विधिः

वेदोक्तसप्तमन्त्रांश्च पाठयामास माधवम् । संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरिर्वक्षसि वेदवित्

श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ।

स्थापयामास मन्त्रांस्त्रीन् पाठयामास राधिकाम् ॥ १२६ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालां जानुचिलम्बिताम् ।

श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधाद्वारा ददौ मुदा ॥ १२७ ॥

प्रणम्य पुनः कृष्णं राधाञ्च कमलोद्भवः । राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम् ॥

पुनश्च वासयामास श्रीकृष्णं कमलोद्भवः ॥ १२८ ॥

तन्नामपार्श्वे राधाञ्च सस्मितांकृष्णचेतसम् । पुटाञ्जलिं कारयित्वा माधवं राधिकां विधिः

पाठयामास वेदोक्तान् पञ्चमन्त्रांश्च नाथ । प्रणम्य पुनः कृष्णं समर्प्य राधिकां विधिः

कन्यकाञ्च यथा तातो भक्त्या तस्यो हरिः पुरः । पतस्मिन्नन्तरे देवा सानन्दपुलकोद्गमाः

दुन्दुभिं वादयामासु धानकं मुरजादिकम् । पारिजातप्रसूनानां पुष्पवृष्टिर्वभूव ह ॥ १३२ ॥

जगुर्गन्धर्वप्रवरा मनुभ्याप्सरोगणाः । तुष्टाश्च श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मितः ॥ १३३ ॥

युषयोश्चरणाग्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम् ।

ब्रह्मणो घवनं श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ॥ १३४ ॥



निर्जने कौतुकात् कृष्णः कामशास्त्रविशारदः । चूडावेशांशुकैर्हीनश्चकार तत्र राधिका  
न कस्य कस्माद्दानिश्च तौ द्वौ कार्प्यविशारदौ ।

जग्राह राधा हस्तात्तु माधयो रदादर्पणम् ॥ १५७ ॥

मुरली माधयकराज्जग्राह राधिका यलात् । चित्तापहारं राधायाश्चकार माधयो यलात्  
जहार राधिका रासान्माधयस्यापि मानसम् । निवृत्ते कामयुद्धेच सस्मितायप्रलोचना  
प्रददौ मुरलीं प्रीत्या श्रीकृष्णाय महात्मने । प्रददौ दर्पणं कृष्णः प्रीडाकमलमुज्ज्वलम्  
चकार कवरीं रम्यां सिन्दूरतिलकं ददौ । विचित्रपत्रकं वेशश्चकारैवं विषं हरिः ॥१६१

विश्वकर्मा न जानाति सर्वाणामपि का कथा ।

वेशं विधातुं कृष्णस्य यदा राधा समुद्यता ॥ १६२ ॥

बभूव शिशुरूपश्च केशोरं च विहाय च । ददर्श बालरूपं तं रुदन्तं पीडितं शुभा ॥१६३  
यादृशं प्रददौ मन्दो भीतं सादृशमच्युतम् । विनिश्चयस्य च सा राधा हृदयेन विदूयता  
इतस्तनस्नं पश्यन्ती शोफातां विरहातुरा । उवाच कृष्णमुद्दिश्य काकृत्तमिति कातरा  
मायां करोषि मायेश किङ्करीं कथमीदृशीम् । इत्येवमुक्त्वा सा राधा पवानवरोद च  
रोद् कृष्णस्तत्रैव धाम् बभूवाशरीरिणी । कथंरोरिवि राधेरयं रमर कृष्णपदाभुजम्

भारासमण्डलं वायन्नकमत्रागमिष्यति ।

करिष्यसि रतिं निरयं हरिणा सादंभीरितताम् ॥ १६८ ॥

प्रायो विधाय रथगृहेस्वयमगतस्य मा रुद । हृत्वा क्रोडे च प्राणेशं मायेशं बालकपिणम्  
त्यज शोकं गृह गच्छ सुन्दरीःधंप्रसोधिता । धृष्टयैवं वचनं राधाहृत्वा क्रोडेचबालकम्  
ददर्श पुण्योद्यानश्च वनं सद्रत्नमण्डपम् । तूष्णीं कृदायताद्राया जगाम मन्दमन्दिरम् ॥  
सा मनोवादिनी देवी निमिषार्धेन जातम् । संसितगिण्धमपुत्ररसना रत्नलोचना ॥१७२

वरोदाये शित्तुं दातुमुद्यता रेतमुवाचःह ।

गृहीत्यैवं शित्तुं गमूतं रुदन्तश्च शुभानुगम् ॥ १७३ ॥

गोष्ठे त्वनूचामिना दनं प्राप्नोति धानको वपि ।

संसितं वरानं वरसं मेघाच्छेदतिदुर्दिने ॥ १७४ ॥



पिच्छन्ते कर्दमोद्रेके यशोदा घोडुमशमा । गृहाण बालकं मत्ने स्ननं दद्यात् प्रबोधय ॥  
 गृहं चिरं परित्यक्तं यामि तिष्ठ सुगं सति । इत्युनया बालकं दद्यात् जगाम स्वगृहं प्रति  
 यशोदा बालकं नीत्वा शुचुम्य च स्ननं ददात् । घटिर्निविष्टासा राघाम्यगृहे गृहकर्मणि  
 नित्यं नक्तं रति तत्र चकार हरिणा सह । इत्येयं कथितं घरस श्रीकृष्णचरितं शुभम् ।

सुगम् मोक्षदं पुण्यमपरं कथयामि ते ॥ १७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राघाकृष्णविवाह-  
 नयसङ्गमप्रस्तापना नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

## पोडशोऽध्यायः

धकप्रलम्बकेशीनामुद्धारवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

माधवो बालकैः सार्द्धमेकदा हलिना सह । भुक्त्वा पीत्वाच क्रीडार्थं जगाम श्रीवर्णमुने  
 तत्र नानाविधां क्रीडांचकार मधुसूदनः । कृत्वातां शिशुभिःसार्द्धं चालयामासगोधनम्  
 ययौ मधुघनं तस्माच्छ्रीकृष्णो गोधनैः सह । तत्र स्वादु जलं पीत्वा घनेचस महाबलः  
 तत्रैकद्वैत्यो बलवान् श्वेतवर्णो भयङ्करः । विहृताकारवदनो घकाकारश्च शैलघ्न ॥

दृष्ट्वा च गोकुलं गोष्ठे शिशुभिर्वलकेशवो ।

यथा ह्यगस्त्यो घातार्पि सर्वं जप्रास लीलया ॥ ५ ॥

धकप्रस्तं हरिं दृष्ट्वा सर्वे देवा भयान्विताः । चक्रुर्हाहेति सन्त्रस्ता धावन्तः शल्यपाणयः  
 शक्रश्चिशेष घञ्ज मुनेरस्थिविनिर्मितम् । न ममार धकस्तस्मात्पक्षमेकं ददाह च ॥७३  
 नीहारास्त्रं शशधरः शीतार्तस्तेन दानवः । यमदण्डं सूर्य्यपुत्रस्तेन कुण्ठो बभूव ह ॥८४  
 घायव्याह्रञ्च घायुध तेन स्थानान्तरं ययौ । घटणश्च शिलावृष्टिं चकार तेन पीडितः  
 वाह्नेन पक्षांश्चैव ददाह सः । कुबेरस्यार्धचन्द्रेण छिन्नपादो बभूव ह ॥ १०॥

- ईशानस्य च शूलेन बभूव मूर्च्छितोऽसुरः ।

ऋपयो मुनयश्चैव कृष्णञ्चकुर्मियाशिपम् ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः प्रज्ज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ददाह दैत्यसर्वाङ्गं चाह्याभ्यन्तरमीश्वरः  
तत्सर्वं धमनं हृत्वा प्राणांस्तत्याज दानवः । धकं निहत्य बलवान् शिशुभिर्गोधनैः सह  
ययौ केलिकदम्बानां काननं सुमनोहरम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृपरूपधरोसुरः ॥ १४ ॥

नाम्ना प्रलम्बो बलवान् महाधूर्त्तश्च शीलवत् ।

शृङ्गाभ्याञ्च हरिं धृत्वा भ्रामयामास तत्र वै ॥ १५ ॥

दुन्दुबुर्बालकाः सर्वे रुरुदुश्च भयातुराः । बलो जहास बलवान् हात्वा भ्रातरमीश्वरम् ॥  
बालकान् बोधयामास भयं किमित्युयाच ह । तद्विषाणं गृहीत्वाच स्वयं श्रीमधुसूदनः  
भ्रामयित्वा च गगने पातयामास भूतले । प्राणांस्तत्याज दैत्येन्द्रो निपत्यच महीतलम्  
जहसुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च जगुर्मुदा । हत्वा प्रलम्बं श्रीकृष्णो बलेन सह सत्वरम् ॥  
गोधनं चारयामास ययौ भाण्डीरमीश्वरः । गच्छन्तं माधवं दृष्ट्वा वेशी दैत्येश्वरो बली  
घेष्टयामास तं शीघ्रं खुरेण विलिखन्महीम् ।  
मूर्ध्नि हत्वा हरिं तुष्टो गगनं शतयोजनम् ॥ २१ ॥  
उत्पात्य भ्रामयामास पपात च महीतले । जग्राह स हरिं पापी चर्वयामास कोपतः ॥  
स भग्नदन्तो दैत्यश्च घञ्जाङ्गचर्वणादहो । श्रीकृष्णतेजसा दग्धः प्राणांस्तत्याज भूतले  
स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिर्वभूवहो । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पार्यदा दिव्यरूपिणः ॥ २४ ॥  
तत्राजग्मुः स्यन्दनस्था द्विभुजाः पीतवाससः । किरीटिनः कुण्डलिनो धनमालाविभूषिताः  
विनोदमुरलीहस्ताः कणनमञ्जोररञ्जिनाः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा गोपवेशधरा धराः ॥ २६ ॥  
ईषद्भास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातराः ।  
प्रदीप्तं रधमास्याय रत्नसारविनिर्मितम् ॥ २७ ॥  
भाण्डीरघ्नमाजग्मुर्वत्र सन्निहितो हरिः । दिव्यचक्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः ॥ २८ ॥  
प्रणाम्यच हरिस्तुत्या जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् । मुत्तयादेहं परित्यज्य घैष्णावापुरुषास्त्रयः  
सम्प्राप्य दानवीं योनिं बभूवुः कृष्णपार्यदाः ।

माग्न उषाम ।

के ते च दिव्यपुत्रा वैष्णवा वैद्यरूपिणः ॥ ३० ॥

कथयन्त्य महाभाग धृतं किं परमाहुतम् ।

मारायण उषान् ।

शृणु प्राणन् प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ ३१ ॥

धृतं महेशपदनात् सूर्यपर्वणि पुष्करे । हरिगुणप्रसङ्गेन कथयामास शङ्करः ॥ ३१ ॥

संपृष्टो मुनिसङ्घैश्चमया धर्मेण प्राणना । प्रत्यपुत्र महाभाग कथाम्मुपनयनम् ॥ ३१ ॥

कथयामास विस्तारं सापधानं निशामय । गन्धर्वेशो गन्धवाहः पर्वते गन्धमादने ॥

महास्तपस्वी प्रपरो हरिसेवनतत्परः । यभूयुक्षतुरः पुत्रा गन्धर्वप्रपरा मुने ॥ ३२ ॥

सस्मरुः कृष्णपादाब्जं स्वप्ने ज्ञाने दिषानिशाम् ।

ते च दुर्घाससः शिष्याः श्रीकृष्णाचनतत्पराः ॥ ३३ ॥

नित्यं दृत्वा च कमलं सम्पूज्य तं पपुर्जलम् ।

घसुदेवः सुहोत्रश्च सुदर्शनसुपार्श्वकौ ॥ ३७ ॥

चत्वारो वैष्णवधर्मप्रास्तेपुस्ते पुष्करे तपः । चिरकालं तपस्तप्त्वा यभूयुः सिद्धमन्त्रिणः

ज्येष्ठो दुर्घाससोयोगंसम्प्राप्ययोगिनांवरः । सिद्धधातृतदारश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥

सद्यो देहं परित्यज्य यभूव कृष्णपार्श्वदः । एकदा स्नातस्ते च जग्मुश्चित्रसरोवरम् ॥ ३७ ॥

पद्मानि कृष्णपूजार्थमाहर्तुमुदये रवेः । पद्मानाञ्चयनं कृत्वा गच्छतो वैष्णवान्मुने ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा निवध्य संजग्मुः सर्वे शङ्करकिङ्कराः । यलिप्रादुर्बलान्धृत्वाजग्मुः शङ्करसन्निधिम्

ते सर्वे शङ्करं दृष्ट्वा प्रणेभुः शिरसा भुवि । तानुवाच शिवः शीघ्रं प्रयुज्याशिशुत्तमाम्

ईषदास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः ।

शिव उवाच ।

के यूयं पद्महर्तारः पार्वत्याश्च सरोवरे ॥ ४४ ॥

लक्ष्यक्षे रक्षणीयं पार्वतीव्रतहेतवे । नित्यं सहस्रकमलं ददाति हरये सती ॥ ४५ ॥

त्रैमासिके भक्त्या पतिसौभाग्यवर्द्धने । शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमूचुर्वैष्णवा निपा

पुत्राञ्जलियुताः सर्वे भक्तिप्रदात्मकन्धराः ।

गन्धर्वा ऊचुः ।

धयं गन्धर्वप्रचरा गन्धवाहसुता विभो ॥ ४७ ॥

हरये कमलं दत्त्वा पिवामो जलमीश्वर । धयं न विभो हे नाथ पार्वत्या रक्षितं सरः ॥  
गृहाण कमलं सर्वं युष्माकञ्च फलङ्कुर । न दास्यामोऽद्य कमलं पास्यामोऽद्यजलं हर ॥

किं वा कथं न पास्यामस्तुभ्यं दत्तानि तानि च ।

नित्यं ध्यात्वा यत्पदाञ्जं पद्मेन पूजयामहे ॥ ५० ॥

साक्षात् तस्मै प्रदत्त्वा च पद्मं पूता धयं प्रभो । एकंप्रह्लाहाद्वितीयं क देहः कचरूपवान् ॥

भक्तानुग्रहतो देहो रूपभेदश्च मायया । किन्तु गृहाण पद्मानि त्वमेव मत्प्रभुः प्रभो ॥

यतो नो मानसम्पूर्णं तद्रूपं दर्शयाच्युत । द्विभुजं कमनीयञ्च किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥

विनोदमुरलीहस्तं पीताम्बरधरं परम् । एकयक्त्रं द्विनयनं चन्दनागुरुचर्चितम् ॥ ५४ ॥

श्यामस्यप्रसन्नास्यं रत्नालङ्कारभूषितम् । कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥

मयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यभूषितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाराजिधिभूषितम् ॥

कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । गोपीसङ्घैर्दृश्यमानं सस्मितैर्वकलोचनैः ॥

नवयौवनसम्पन्नं राधावक्षःस्थलस्थितम् । ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं वन्द्यन्व्येयमभीप्सितम् ॥

सात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुग्रहकातरम् । इत्युक्त्वा पुरतः शम्भोस्तस्युर्गन्धर्वपुङ्गवाः ॥

धीरुष्णरूपध्रवणात् पुलकाङ्कितविग्रहः । गन्धर्वाणां वचः श्रुत्वा शिवस्तानित्युवाच ह

धीरुष्णरूपध्रवणात् साधुपूर्णविलोचनः । मयैव यूयं विज्ञाता वैष्णवप्रचरा महीम् ॥

पूतां कर्तुञ्च समय चरणाम्भोजरेणुना । अहं घाञ्छां करोम्येव धीरुष्णमक्तदर्शनम् ॥

तमातामो हि साधूनां त्रिषु लोकेषु दुर्लभः । पार्वत्याश्च सुराणाञ्च सदायूयंममप्रियाः

आत्मनश्चात्मभक्तेभ्यो वैष्णवाश्च प्रियाश्च नः ।

किन्तु मोघञ्च न भवेन्मया यत् स्वीकृतं पुरा ॥ ६४ ॥

पूयतां महामाताः पार्वतीव्रतकर्मणि । सरसश्चैव पद्मानि वैद्वंस्तानि यतान्तरे ॥ ६५ ॥

तूर्णमासुरी योनिं गमिष्यन्ति न संशयः । नहि धीरुष्णभक्तानामशुभं विघतेकचित्

सम्प्राप्य मानवीं योनिं शोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ।

यूयं श्रीकृष्णरूपञ्च प्रत्यक्षं द्रष्टुमुत्सुकाः ॥ ६७ ॥

ध्रुवं द्रक्ष्यथ भो घत्सा चृन्दारण्ये च भारते ।

दृष्ट्वा कृष्णं ततो मृत्युं सम्प्राप्य वैष्णवोत्तमाः ॥ ६८ ॥

दिव्यं स्यन्दनमारुह्य गमिष्यथ हरेर्गृहम् । अधुना घाञ्छनीयञ्च रूपं द्रष्टुमिहोत्सुकाः ॥  
तत्सर्वं पश्ययेत्युक्त्वा दर्शयामास तच्छिष्यः । रूपं दृष्ट्वा साधुनेत्राः प्रणम्य सर्वरूपिणम्  
आजगमुर्दानवीं योनिमिति ते दानवेश्वराः । घसुदेवः पुरा मुक्तः सुहोत्रश्च पकासुतः ॥  
सुदर्शनः प्रलम्बोऽयं स्वयं केशी सुपार्श्वकः । हरस्य घत्दानेन दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम् ॥३२

मृत्युं सम्प्राप्य श्रीकृष्णाजगमुस्ते कृष्णमन्दिरम् ।

इत्येवं कथितं विप्र हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ ७३ ॥

पककेशिप्रलम्बानां मोक्षणं मोक्षकारकम् ।

नारद उवाच ।

ध्रुवं सर्वं महामाग त्वत्प्रसादाद्यद्भुतम् ॥ ७४ ॥

अधुना धोतुमिच्छामि पार्यंत्या किं कृतं व्रतम् ।

को घाराध्योव्रतस्यास्य किं फलं नियमश्च फः ॥ ७५ ॥

कानि द्रव्याणि भगवन् व्रतोपर्योगिकानि च ।

कति कालं व्रतं किं वा प्रतिष्ठायां निरूपणम् ॥ ७६ ॥

सुपिचार्यं यद् विमो धोतुं कौतुहलं मम ।

धीनारायण उवाच ।

व्रतं त्रैमानिकं नाम पतिसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥

भारतधोभगवान्कृष्णो राधिकासहितो मुने । विपुत्रेण समारम्भः समातिर्दक्षिणात्पौ  
संवाय पूर्वंद्विषसेरुत्थावश्यं हविष्यकम् । स्नातया वेशासंशान्तयासद्गुह्यत्राह्वयिते  
घटे मर्षो शालग्रामे जले वा पूजयेद् व्रता । ध्यायेद्ब्रह्मवाक् राष्ट्रेणं संपूज्य पञ्च वैभवाः ॥  
सामयेशोक्तं त्रिषोऽथ कथयामि ते । मर्षाननीरुदरयामं पीतकोदीयवासतम् ॥



कमन्वानाश्च मयगिसहस्राण्यशतानि च । ब्राह्मणानां सहस्राणि नन्य विनेद्र वरकः ॥  
भोजयेत्यग्मानानि ष्यादूनि मिष्टकानि च । पन्डं विशाचिरं सगयनं मयमद्रथम् ॥

दद्यान्मानापिधं द्रुष्यं मीघेयं तुमनोदग्म् ।

संनृताग्निश्च संस्थाप्य दामं कुर्वां द्विचक्षणः ॥ १०३ ॥

मयतिश्च सहस्राणि द्रुत्पाययेन गिनेन च । मयन्त्रश्च समोऽयश्च यत्रगृह्यन्तान्निभम्  
गन्धपुण्याक्षितान् मनया दद्यान्निःश्लद्द्रुकान् ।

दद्यान्मयतिकुम्भांश्च शीततोयप्रपूतितान् ॥ १०४ ॥

एवंविधं व्रतं कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । दक्षिणायाः परिमितं वेदेषु यन्निदग्निम्  
वृणेन्द्राणां सहस्रञ्च स्वर्णभृद्भूसमन्वितम् । इत्येवं कगिनं विप्रं कृतं त्रेमासिचक्रम् ॥  
विशिष्टसन्ततिकरं पतिसौभाग्यपदंनम् । व्रतव्यास्य प्रभाषेण सौभाग्यं शतव्रतनि ॥  
सत्पुत्रजन्ती सा च मयेऽजन्मशनं ध्रुवम् । कदापि न मयेऽसत्या भेदश्च पतिपुत्रयोः  
दासतुल्यो भवेत्पुत्रो भर्ता च स्वययस्करः । अनुक्षणं मयेऽप्राधाहृणामक्तियुता सती  
भवेद्भ्रतप्रभाषेण प्राप्तज्ञानहरिस्मृतिः । व्रतश्च सामवेदोक्तं कृतं पूर्वमथावयोः ॥ १११ ॥  
सर्वेषाञ्च व्रतानाञ्च श्रेष्ठं ऋणु वदामिते । स्वाम्भुवम्य च मनोः शतरूपामिधया सती ॥  
तया कृतं प्रथमतः कृत्वागस्त्यं पुरोहितम् । तत्राकृतं देवहत्या चाकृत्या च कृतं तदा ॥  
पुरोहितं पुलस्त्यञ्च कृत्वा धृत्युक्तयामुने । चकार रोहिणी तत्तु कर्तुं कृत्वा पुरोहितम्  
रतिश्चकार तद्गच्छया गीतमस्तत्पुरोहितः । अकारिदत्तद्व्रतंभवया तारया गुरुकान्तया ॥  
महासंभृतसम्मारी पशिष्टस्तत्पुरोहितः । तद् दृष्ट्वा गुरुपत्न्याश्च शत्रुशच्या कृतं व्रतम्  
महासंभृतसम्भारस्तत्पुरोध्या बृहस्पतिः । व्रतं चकार स्वाहा च सर्वतोऽपि विलक्षणम्  
अतिसंभृतसम्मारी मरीचिस्तत्पुरोहितः । तद् दृष्ट्वा पार्वती ब्रह्मन्नुपाच शङ्करं मुनिम् ॥

पुटाञ्जलियुता देवी भक्तिनम्रात्मकगंधरा ।

पार्वत्युवाच ।

आज्ञां कुरु अगन्नाथ करोमि व्रतमुत्तमम् ॥ ११६ ॥

परं व्रतम् । हरेत्पराधनं नाथ सर्वमङ्गलकारणम् ॥ १२० ॥

इष्टं दत्तं श्रुतेः पाठं तीर्थं पृच्छयाः प्रदक्षिणाम् ।

हरेराराधनस्यापि फलांनार्हन्ति षोडशीम् ॥ १२१ ॥

द्विष्यन्तरे यस्य हरिस्मृतिरनुक्षणम् । जीवन्मुक्तस्य तस्यैव मुक्तिर्भवति दर्शनात् ॥  
स्य पादाब्जरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा । तस्य दर्शनमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च धर्मश्च शेषस्त्वञ्च गणेश्वरः ।

ध्यायं ध्यायं यत्पदाब्जं तेजसा तत्समो महान् ॥ १२४ ॥

यश्च यं सन्ततं ध्यायेत् स तमाप्नोति निश्चितम् ।

गुणेन तेजसा युद्ध्या ज्ञानेन तत्समो भवेत् ॥ १२५ ॥

कृष्णस्य स्मरणाद् ध्यानात्तपसा तस्य सेवया ।

मया प्रातो हि भगवान् स्वामी वा पुत्र एव च ॥ १२६ ॥

प्रलयं लीलया सर्वं पूर्णं मन्मानसं तदा । स्वामी मे त्वाद्दृशःपुत्रोकार्तिकेयगणेश्वरी  
पिता हिमाद्रिः कृष्णांशो मम किं दुर्लभं प्रभो ।

पार्वती वचनं श्रुत्वा सुप्रीत शङ्करः स्वयम् ॥ १२८ ॥

प्रहस्योवाच मधुरं पुलकाङ्कितविग्रहः ।

श्रीमहादेव उवाच ।

महालक्ष्मीस्वरूपासि किमसाद्यं तवेश्वरि ॥ १२९ ॥

सर्वं सम्पदस्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरुपिणी ।

त्वञ्च यस्य गृहे देवि सर्वैश्वर्यस्य भाजनम् ॥ १३० ॥

न लक्ष्मीर्यद्गृहे तस्य जीवितान्मरणं धरम् । अहं ब्रह्माच विष्णुश्च त्वयिभक्तया शुभप्रदे  
संसारखण्डिकाले च त्वत्प्रसादाद्वयं क्षमाः ।

को वा हिमालयः कोऽहं को कार्तिकगणेश्वरी ॥ १३२ ॥

त्वदिहीना हाशक्ताश्च त्वयाच वयमीश्वराः । युक्ता पतिव्रताप्यार्थं या पुराणाश्रुतौ धृता  
गृहीत्वानामीश्वरस्य व्रतं कुरु पतिव्रते । व्रतमेतत् कृतं यामिस्ताभ्यः कुरु विलक्षणम्

सनत्कुमारो भगवान् व्रते तेऽस्तु पुरोहितः ।



अग्निनामो ब्राह्मणानां द्रव्यानां वायव्योऽप्यहम् ॥ ११५ ॥

कुबेरं द्रव्यकोशो न रक्षतं कु. सुन्दरि ।

यते न दानाप्यहोऽहं धनवार्ता न धीः स्वयम् ॥ ११६ ॥

पाटको षड्विधेषु चरन्तो जन्तवापकः । अग्नीनां वाहका यज्ञात्मकव्यसः यज्ञान्  
स्वानामांस्कायवतो न यतेऽत्र पयनः स्वयम् । परिवेषाम्ययं शतवन्द्रीऽधिष्ठाके

मूर्त्यंश्च दाननिर्घनत योऽप्यायोऽयं यथोन्मिगम् ।

यतोपयुक्तं यद्द्रव्यं द्रव्या निगमितं त्रिवे ॥ ११७ ॥

ततोऽधिकं यत् पुणं हयं देहि सुन्दरि ।

यते निगमितान् विप्रान् भोजयित्वा ततोऽधिकान् ॥ ११८ ॥

भसंभ्यप्राह्मणानाञ्च भगवता कु. निमग्नपम् ।

समाप्तिदिपसे स्युषं रत्नं मुक्तं प्रयालपम् ॥ ११९ ॥

यतोक्तां दक्षिणां दद्या सयं देहि द्विजानये ।

इत्युक्तया शङ्करस्ताञ्च कारयामास तद् यतम् ॥ १२० ॥

यतञ्चकार सा दुर्गा सर्वाभ्यश्च यित्प्रशणम् ।

इत्येवं कथितं विप्र पार्यत्या यद् यतं कृतम् ॥ १२१ ॥

रत्नं वीढुमशक्तञ्च ब्राह्मणाः पार्यतीयते । इतिहासः धृतः सयंः प्राकृतं शृणु नात्  
श्रीकृष्णपालचरितं नूत्नं नूत्नं पदे पदे । हत्वा तान् दानवेन्द्रांश्च शिशुभिः सह गोकु  
जगाम स्वगृहं कृष्णः कुबेरभवनोपमम् । सर्वेभ्यो धनवार्ता च प्रोक्ता च शिशुभिर्म

धुत्वैवं विस्मिताः सर्वे नन्दो भयमघाप ह ।

थानीय वृद्धान् गोपांश्च गोपिकाः स्थविरास्तथा ॥ १२२ ॥

युक्तिञ्चकारतैः सार्द्धंमालोच्यसमयोचिताम् । कृत्वायुक्तिञ्चगोपेशस्तात्स्थानं त्यकुमुप  
गन्तुं वृन्दावनं सर्वानुवाच तत्क्षणे मुने । नन्दाशाञ्च समाकर्ण्य ते सर्वे गन्तुमुद्यताः

गोपाश्च गोपिकाश्चैव थालका थालिकास्तथा ।

कृष्णेन हलिना सार्द्धं प्रययुर्वालका मुदा ॥ १२३ ॥

सङ्गीतञ्च प्रगापन्तो नानाधेरासन्नचिताः । धेणुप्रपादकाः केचिन् केचिच्छृङ्गप्रपादकाः  
 करतालकराः केचिद्दीप्ताहस्ताश्च केचन । शरयन्प्रकराः केचिच्छृङ्गहस्ताश्च केचन ॥  
 नवपल्लवकर्णाश्च केचिद्गोपालवालकाः । केचिन्मुकुलकर्णाश्च पुष्पकर्णाश्च केचन ॥  
 नवमाल्यकराः केचित् केचिदाजानुमालिनः । केचिन्पल्लवनूडाश्च पुष्पचूडाश्च केचन ॥

गोपालवालकाः सर्षे विप्रेन्द्रनवफोटयः ।

जग्मूर्गोप्यो धयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुदा ॥ १५५ ॥

घृदाश्च कोटिशस्तत्र घृदच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः ।

राधिकासहचारिण्यो घाला गोपालिका मुने ॥ १५६ ॥

ताः सुरालादयो मध्या नातालङ्कारभूषिताः । दिव्यचरप्रपरीधानाः सस्मितास्ता ययुर्मुदा  
 काश्चिदारहा शिषिकां रघमाह्ला काश्चन । राधा स्यन्दनमारहा शतकुम्भपरिच्छदम् ॥  
 तामिर्युक्ता ययो देवी रत्नालङ्कारभूषिता । यशोदा रोहिणी चैव रत्नालंकारभूषिता ॥  
 ययो स्यन्दनमारहा शतकुम्भपरिच्छदम् । नन्दः सुनन्दः श्रीदामा गिरिभानुर्विभाकरः  
 धीरभानुश्चन्द्रभानुर्गैजस्थाः प्रययुर्मुदा । धीकृष्णबलदेवौ तौ रत्नालंकारभूषितौ ॥ १६१  
 स्वर्णस्यन्दनमास्यायजग्मतुःपरयामुदा । कोटिशःकोटिशोगोपाघृदाश्च योचनान्विताः

धद्रयस्थाश्च गजस्थाश्च रघस्थाश्चैव केचन ।

गोपा ययुर्मुदायुक्ताश्चोढता नन्दकिङ्कुराः ॥ १६३ ॥

घृपस्था गर्दभस्थाश्च सङ्गीततानतत्पराः ।

अपरा राधिकादास्यस्त्रिसप्त शतकोटयः ॥ १६४ ॥

मुदान्विताः सस्मिताश्च स्वर्णालंकारभूषिताः ।

काश्चित् तिनदूरहस्ताश्च काश्चित् कञ्जलयाहिकाः ॥ १६५ ॥

काश्चित् कन्दुकहस्ताश्च काश्चित् पुस्तलिकाकराः ।

मौगद्रव्यकराः काश्चित् क्रीडाद्रव्यकरा वराः ॥ १६६ ॥

वेशद्रव्यकराः काश्चित् काश्चिन् मालाकरा वरा ।

काश्चिद्वाद्यकहस्ताश्च प्रययुर्गोपिका मुदा ॥ १६७ ॥

घहिशुद्धांशुकानाञ्च घाहिकाश्चैव काश्चन । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रव्याहिकाः ॥१६॥

काश्चित्सङ्गीतनिरताः काश्चिशित्रकथारताः ।

कोटिशः कोटिशो रम्याः प्रययुः शिषिकाश्रिताः ॥ १६६ ॥

कोटिशः कोटिशश्चाश्वाः कोटिशः कोटिशो रथाः ।

कोटिशः कोटिशश्चैव शकटा द्रव्यपूरिताः ॥ १७० ॥

कोटिशः कोटिशश्चैव वृषेन्द्रा द्रव्यवाहकाः ।

कोटिशः कोटिशश्चैव दशलक्षणि हस्तिनाम् ॥ १७१ ॥

हस्तिपाङ्कुशयुक्तानि ययुर्वृन्दावनं घनम् । सर्वे वृन्दावनं गत्वा दृष्ट्वा शून्यं गृहं मुने

वृक्षमूले यथास्थानं तस्थुः सर्वे यथोचितम् ।

उवाच गोपान् श्रीकृष्णो गृहंश्चेष्टमान् व्रजाः ॥१७३॥

अथ सन्तिष्ठतेत्येवं श्रुत्वा श्रीकृष्णमापितम् । कुत्रसन्तिगृहाःकृष्णेऽथैवमूबुस्तुगोपान्

इति तेषां वचः श्रुत्वा श्रीकृष्णो वाक्यमब्रवीत् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अत्र स्थाने गृहाः सन्ति प्रसन्ना देवनिर्मिताः ॥ १७५ ॥

देवमीति विना शक्ता नहि द्रष्टुञ्च केचन । अथ तिष्ठत गोपालाः संपूज्य घनदेवनाः

प्रातर्युयं गृहान् रम्यान् द्रव्ययाद्य ध्रुवं मुदा । धूपदीपादिनैवेद्यैर्बलिभिः पुष्पचन्दनैः

देषीञ्च घटमूलस्थां पूजांकुम्भचण्डिकाम् । कृष्णस्य घचनं ध्रुवगोपाःसंपूज्यदेवता

भुवया भोगान् दिने रात्रौ तत्रैव सुपुपुर्मुदा ॥ १७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

यकप्रत्यक्षेशी(नामुद्दारो)वृन्दावनगमनं (च) नाम षोडशोऽध्यायः ।

## सप्तदशोऽध्यायः

नगरनिर्माणवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

सुनेषु व्रजनन्देषु नक्तं वृन्दावने घने । सुनिद्रिते च निद्रेषु मातृवक्षःस्थलस्थिते ॥ १ ॥

निद्रितासु च गोपीषु रम्यतल्पस्थितासु च । यूनांश्च सुखसंयोगानुपकमानसासु च ॥

कासुचिच्छिशुयुक्तासु सखीयुक्तासु कासुचित् ।

कासुचिच्छकटस्थासु स्यन्दनस्थासु कासुचित् ॥ ३ ॥

पूर्णेन्दुकौमुदीयुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे । नानाप्रकारकुसुमवायुना सुरभीकृते ॥ ४ ॥

सर्वप्राणिनि निश्चेष्टे मुहूर्त्से पञ्चमे गते । तत्राजगाम भगवान् शिल्पिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥

विभ्रदिध्यांशुकं सूक्ष्मं रत्नमाल्यं मनोहरम् । रत्नालंकारमतुलं श्रीमन्मकरकुण्डलम् ॥ ६ ॥

ज्ञानेन वयसा वृद्धो दर्शनीयः किशोरवत् । अतीव सुन्दरः श्रीमान् कामदेवसमप्रभः ॥

विशिष्टशिल्पनिपुणैः सार्द्धं शिल्पत्रिकोटिमिः ।

मणिरत्नैर्हर्मरत्नैर्लोहास्त्रयुतहस्तकैः ॥ ८ ॥

माज्जमुष्यक्षनिकराः कुवेरवतर्किकराः । स्फाटिका रत्नवेशाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन ॥

अमरागकराः केचिदिन्द्रनीलकरा घराः । केचित्स्यमन्तकराश्चन्द्रकान्तकरास्तथा ॥

सूर्यकान्तकराश्चान्ये प्रभाकरकरा घराः । केचित्परशुहस्ताश्च लोहसारकरा घराः ॥

केचिच्च गन्धसाराणां मणीन्द्राणाञ्च घाहकाः । केचिश्चामरहस्ताश्च केचिद्दर्पणघाहकाः ॥

वर्णपात्रघटादीनां घाहकाश्चैव केचन । विष्यकर्मा च सामग्रीं दृष्ट्वा तु सुमनोहराम् ॥

गर्तं कर्तुंमारैरे ध्यात्वा कृष्णं शुभेक्षणम् । पञ्चयोजनविस्तीर्णं भारते ध्रेष्टमुत्तमम् ॥

व्यक्षेत्रं तीर्थसारमतिप्रियतमं हरेः । तत्रस्थानां मुमुक्षूणां परं निर्वाणकारणम् ॥ १५ ॥

गोलोकस्य च सोपानं सर्वेषां वाञ्छितप्रदम् ।

चतुष्कोटि चतुःशालं तत्रैवातिमनोहरम् ॥ १६ ॥



वृषभानुव्रजपतिः पुराऽऽसीत् को महानहो । कस्य वा केन तपसाराधाकन्या बभूव ह  
सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा महर्षिर्ज्ञानिनां घरः । प्रहस्योवाच प्रोत्या तमितिहासं पुरातनम्  
नारायण उवाच ।

बभूवुः कन्यकास्तिघ्नः पितृणां मानसात्पुरा ॥ ३४ ॥

कलावतीरत्नमालामेनकाश्चातिदुर्लभाः । रत्नमाला च जनकं धरयामास कामुकी ॥ ३५ ॥  
शैलाधिपं हरेरंशं मेनका सा हिमालयम् । दुहिता रत्नमाला या अयोनिसम्भवा सती ॥

श्रीरामपत्नी श्रीः साक्षात्सीता सत्यपरायणा ।

कन्यका मेनकायाश्च पार्वती सा पुरा सती ॥ ३७ ॥

अयोनिसम्भवा सा च हरेर्माया सनातनी ।

सा लेभे तपसा देवं हरं नारायणात्मकम् ॥ ३८ ॥

कलावती सुचन्द्रश्च मनुवंशसमुद्भवम् । स च राजा हरेरंशस्तां संग्राप्य कलावतीम्  
मन्ये गुणवतां श्रेष्ठमात्मानमतिसुन्दरम् । अहो रूपमहो वेशमहो अस्या नवं वयः ॥

सुकोमलाङ्गं ललितं शरच्चन्द्राधिकाननम् । गमनं दुर्लभमहो गजखञ्जलगञ्जनम् ॥  
कदाशैर्मोहितुंशक्तामुनीन्द्राणाञ्चमानसम् । धोणीयुग्मंसुललितं रम्भास्तम्भविनिर्मितम् ॥

स्तनद्वयं सुकटिनमतिपीनोन्नतं मुने । नितम्बयुगलं चारु रथचक्रविनिर्मितम् ॥ ४० ॥  
इस्तौ पादौ च रक्तौ च पद्मविम्बफलाधरम् । पद्मदाङ्गिमर्षीजाभं दन्तपङ्क्तिमनोहरम् ।

शरत्तन्मध्याह्नपञ्चानां प्रभामोचनलोचनम् । भूदण्डीभूपितं रूपं कृतं सद्रत्नमूषणम् ॥ ४५ ॥  
तीप मत्वा दृष्ट्वा च कामयाणप्रपीडितः । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य कामुक्या सह कामुकः

नीडाञ्चकार रहसि स्थाने स्थाने मनोहरे । रम्भायां मलयद्रोण्यां चन्दनागुल्फायुता ॥  
शरत्तन्मध्याह्नपञ्चानां तल्पे रतिसुखावहे । मालतीमहिष्कानाञ्च पुष्पोद्यानेऽतिपुष्पिते ॥  
पद्मद्रानदीतीरे निर्जने केतकीवने । पश्चिमाग्धितटान्तस्थकानने जगत्पुर्जिते ॥ ४६ ॥

नन्दने मन्दरद्रोण्यां कावेरीतीरजे घने ।

शैले शैले सुरम्ये च नयां नयां नदे नदे ॥ ५० ॥

प्रीयेप्रीये तु र्हसि स रेमे वामगा सह । नपसद्गममयोगात् पुबुचे न दिवानिरम् ॥ ५१ ॥  
 एवं धर्मसहस्रं तद् गतमेव मुहमं वन् । कृप्या विहारं सुनिरं स विरक्तो बभूव ह ।  
 जगाम तपसे विष्णुपरीलं तीर्थं तथा सह । माग्नेऽतिप्रशाम्यश्च पुन्रहाध्रममुत्तमम् ।  
 तपस्तेपे नृपस्तत्र दिव्यधर्मसहस्रकम् । मोक्षाकाङ्क्षी निम्नूहश्च निराहारः श्वोदत् ।  
 मूर्च्छामाप मुनिश्रेष्ठो ध्यात्पारुष्ण्यापदाद्युजम् । तत्राप्रख्यातयन्मीकं सार्धद्विरुच्चकार स  
 निश्चेष्टितं पतिं दृष्ट्वा त्यक्तं प्राणेषु पञ्चभिः । मांसशोणितरिक्तन्तमस्थिसंसक्तविग्रह  
 उद्योदरोद शोकार्ता निजने तु कलापनो । हे नाथ नायेत्युद्यार्थं कृप्या पशसि मूर्च्छितम्  
 विललाप महादीना पतिपतत्रायणा । दृष्ट्वा नृपं निराहारं कृशं धमनिसंयुतम् ॥  
 श्रुत्वा च रोदनं तस्याः कृपया च कृपानिधिः । आविर्यभूव जगतां विघाता कमलोद्भवः  
 क्रोहे कृत्वा च तन्तूर्णं करोद भगवान् विभुः । ब्रह्मा कमण्डलुमलेनासिच्य नृपविग्रहम्  
 जीवं सञ्चारयामास ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मचित् । नृपेन्द्रधेतनां प्राप्य पुरो दृष्ट्वा प्रजापतिम्

प्रणानाम च तं दृष्ट्वा तश्च कामसमप्रमम ।

तमुवाचेति सन्तुष्टो धरं वृणु यथेष्टितम् ॥ ६२ ॥

स विधेर्वचनं श्रुत्वा धवे निर्वाणमोषितम् । दयानिधे त्वं दयया धरं दातुं समुद्यन्  
 प्रसन्नवदनः श्रीमान् स्मेराननसरोरुहः । कृत्वानुमानं मनसि शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥

तमुवाच सती त्रस्ता धरं दातुं समुद्यतम् ।

कलावत्युवाच ।

यदि मुक्तिं नृपेन्द्राय ददासि कमलोद्भवः ॥ ६५ ॥

अतोऽबलाया हे ब्रह्मन् का गतिर्भविता घद ।

विना कान्तञ्च कान्तानां का शोभा चतुरानन ॥ ६६ ॥

व्रतं पतिव्रतायाश्च पतिरेव श्रुती श्रुतम् । गुह्यचामीष्टदेवश्च तपोधर्ममयः पतिः ॥ ६७ ॥  
 सर्वपाञ्च प्रियतरो न यथ्युः स्वामिनः परः । सर्वधर्मात्परा ब्रह्मन् पतिसेवा सुदुर्लभा  
 स्वामिसेवाविहीनायाः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् । व्रतं दानं तपोपूजा जपहोमादिकञ्च यत्  
 खानञ्च सर्वतीर्थेषु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणम् । दीक्षा च सर्वयज्ञेषु महादानानि यानि वा

पशून् सर्ववेदानां सर्वाणि च तपांसि च । वेदज्ञानां ब्राह्मणानां भोजनं देवसेवनम् ॥  
एतानि स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति पौडशीम् ।

स्वामिसेवाविहीना या घटन्ति स्वामिने कटुम् ॥ ७२ ॥

पतन्ति कालसूत्रे च यावच्चन्द्रदिवाकरो । सर्पप्रमाणाः कृमयो दंशन्ति च दिवानिशम्  
सन्ततं विपरीतञ्च कुर्वन्ति शब्दमुल्वणम् । मूत्रश्लेष्मपुरीषाणां कुर्वन्ति भक्षणं मुदा ॥  
मुवे तासां दृश्येयमुल्कां च यमकिङ्कराः । भुज्या भोगश्चरके कृमियोर्निप्रयान्तिताः  
भक्षन्ति जन्मशतकं रक्तमांसपुरोपकम् । श्रुत्याऽहं विदुषां पक्त्राद्देवाक्येषु निश्चितम्  
जानामि किञ्चिदयला त्वं वेदजनको विभुः ।

गुरोर्गुरुश्च विदुषां योगिनां ज्ञानिनां तथा ॥ ७३ ॥

सर्वभ्रमेवंभूतं त्वां बोधयामि किमच्युत ।

प्राणाधिकोऽयं कान्तो मे यदि मुक्तो यभूष ह ॥ ७८ ॥

मम को रक्षिता ब्रह्मन् धर्मस्य र्थोपनस्य च । कौमारैरक्षितातातोदस्वापात्रायसत्कर्ता  
सर्वेश रक्षिता कान्तस्तदभावे च तत्सुतः । त्रिप्यषष्ठापु नारीणां प्रातारश्वश्रयःस्मृताः  
याः स्वतन्त्राश्च ता नष्टाः सर्वधर्मयहिष्ठताः । असन्कुलप्रसूतास्ता कुलटादुष्टमानसाः  
शतजन्ममृतं पुण्यं तासां नश्यति पद्मज । पुत्रस्नेहो यथा बाल्ये तथा न दूनि वार्द्धके  
तिप्रतानां कान्ते च सर्वकाले समासृष्टा । सुते स्तनन्धये स्नेहोमानुषाणां चातिशोमिते

पतिस्नेहस्य साध्वीनां कलां नार्हन्ति पौडशीम् ।

स्तनान्धे स्तनदानान्तं मिष्टान्ते भोजनापधि ॥ ८४ ॥

कान्ते चित्ते सतीनाञ्च स्वप्ने प्राप्ते च सन्ततम् ।

दुःखान्तो घन्धुपिच्छेदः पुत्राणाञ्च ततोऽधिकः ॥ ८५ ॥

सुदारुणाः स्वामिनध दुःखं नातः परं त्वियः ।

अपिदग्धा यथा दग्धा जलदग्धा पिपादने ॥ ८६ ॥

तथा विदग्धा दग्धा स्याद्विदग्धपिरदाजले ।

नान्ते तृष्णा जले तृष्णा साध्वीनां स्वामिनं पिपा ॥ ८७ ॥



विरहाग्नौ मनीं वृधं धत्री शुक्लगूर्णं यथा ।  
 नदि कान्तात् परो यन्धुर्नदि कान्तात् परः प्रियः ॥ ८८ ॥  
 नदि कान्तात् परो शेषो नदि कान्तात् परो गुरुः ।  
 नदि कान्तात् परो धर्मा नदि कान्तात् परं धनम् ॥ ८९ ॥  
 नदि कान्तात् पराः प्राणा न कः कान्तात् परः स्त्रियः ।  
 निमग्नं कृष्णपादाब्जे वैष्णवाणां यथा मनः ॥ ९० ॥  
 ययैकपुत्रे मातुश्च यथा ठ्रीषु च कामिनाम् ।  
 धेनुषु कृपणानाञ्च चिरफालार्जितेषु च ॥ ९१ ॥  
 यथा भयेषु भीतानां शास्त्रेषु विदुषां यथा ।  
 स्तनादाने शिशूनाञ्च शिल्पेषु शिल्पिनां यथा ॥ ९२ ॥  
 यथा जारे पुंश्चलीनां साध्वीनाञ्च तथा प्रिये ।  
 तं विना जीवितुं ब्रह्मन् क्षणमेकं न च क्षमम् ॥ ९३ ॥

मरणं जीवनं तासाञ्जीवनं मरणाधिकम् । सद्गुरुं रहितानाञ्च शोकेन दृढचेतसाम् ॥  
 अन्यशोकनिमग्नानां कालेन पानभोजनात् ॥ ९४ ॥

विपरीतः कान्तशोको धर्मेते भक्षणादहो । कर्मच्छाया सतीनाञ्च सद्भिनीनां सतीषां  
 इतरे भोगदेहान्ते साध्वी जन्मनि जन्मनि । करोषि चेज्जगद्धातस्मिन्मुक्तं मया विना ॥

त्वां शप्तवाहं त्वयि विमो पश्य दास्यामि ह्रीवधम् ।

ध्रुत्वा फलावतीवाक्यमुवाच विस्मितो विधिः ॥ ९७ ॥

हितं पीयूषसदृशं भयसंघिन्नमानसः ।

ब्रह्मोवाच ।

वत्से मुक्तिं न दास्यामि स्वामिने च त्वया विना ॥ ९८ ॥

मुक्तं कर्तुं त्वया साद्धं साम्प्रतं नाहमीश्वरः ।

मातर्मुक्तिर्दिना भोगाद् दुर्लभा सर्वसम्मता ॥ ९९ ॥

निर्वाणतां समाप्नोति भोगी भोगनिवृत्तते ।

अनिरये श्यामोर्गं कुतश्च श्यामिता वद ॥ १०० ॥

मन्त्रानु शुषयोर्ग्राम मयिता भागने वनि ।

यदा मयिष्यति शर्मा अस्या मे वाधिका श्यदम् ॥ १०१ ॥

अंवागुर्गं लता वाटं मीर्णोवञ्च मयिष्यति ।

कति वाटं नृपेण्ड मुदस्य मोर्गं श्रिया वद ॥ १०२ ॥

शार्थी ये वाचयुक्तः वा मा मा इत्तुं श्यदंति ।

श्रीवामुक्तः वामाः वाम एवापरादावप्रमाणता ॥ १०३ ॥

वाट्यनि वदित्वापञ्च दूतं मे वा निवृत्तिम् ।

इत्युक्त्वा तौ शर्मा श्रुत्वा वामाभ्यां पुत्रानपयो ॥ १०४ ॥

यद्युक्ता मे प्रणय प्रणय श्वालय विधिः ।

वाङ्मात्रशर्मा वाग्नि मूलका मीतञ्च भागम् ॥ १०५ ॥

एवं पुत्रद्वयं विचरं मन्त्राणांवाञ्च वाट्यिणम् । सुवामो मुक्त्वाशुभं श्रुत्वा मीतं  
पदापवाद्य इति श्रुत्वाशुभं वीतता । शर्मान्मयो दीर्घतः सुदरशो वामा शर्मा ।  
अवशोभुविभं लभ मन्त्रोदे मन्त्राधिप । शर्वशुभ मन्त्राणां श्रुत्वाशुभं प्रमाणता  
मन्त्रशुभं प्रमाणता श्रुत्वाशुभं मूलकाशुभं । अन्तर्गता अन्तर्गते अन्तर्गता  
शर्मान्मयो मन्त्राणांवाञ्च सुदरशो अन्तर्गता । वाट्यिणो मुक्त्वाशुभं मन्त्राणां  
वा तौ शर्वशुभं वीतता मन्त्राणांवाञ्च मूलकाशुभं ।

शर्मा श्रुत्वाशुभं मन्त्राणांवाञ्च शर्मान्मयो ॥ १११ ॥

मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च । मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च ।  
मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च । मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च ।  
मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च । मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च ।  
मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च । मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च ।  
मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च । मन्त्राणांवाञ्च मन्त्राणांवाञ्च ।

भर्तापसुन्दरश्यामा मुनिमानसमोहिनी । चागन्धर्वकषणांमा शरच्चन्द्रनिमानता ॥  
 ईषदास्यप्रसन्नास्या प्रपुत्रपन्नलोचना । निगम्यधोणिमारास्तां स्तनमारुता सती ॥  
 गच्छन्ती राजमार्गेण गजेन्द्रमन्दगामिनी । ददर्श नन्दःपयि तां गच्छन्तीञ्च मुदान्विताः ॥

जितेन्द्रियश्च ज्ञानी च भूर्धर्माप स्यापि च ।

अस्तौ लोकान् पयि गतान् नृपं पप्रच्छ सादरम् ॥ १२० ॥

गच्छन्ती कस्य कन्येयमिति होषाच तं जनः ।

मनन्दनस्य नृपतेः कन्या नाम्ना कलावती ॥ १२१ ॥

कमलाकलया धन्या सम्भूता नृपमन्दिरे । कौतुकेन च गच्छन्तीक्रीडापं सन्निप्रदिश्य  
 व्रजं व्रज व्रजध्रेष्ट्युत्तया लोको जगाम ह । प्रहृष्टमानसो नन्दो जगाम राजमन्दिरम् ॥  
 भवत्य रधानूणं विवेश नृपतेः समाम् । उत्थाय राजा सम्भाष्य स्वर्णसिंहासनं दर्श  
 इष्टालापं बहुतरञ्जकार च परस्परम् । विनयाचनतो नन्दः सम्बन्धोक्तिं चकार ह ॥ १२२ ॥

नन्द उवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि विशेषवचनं शुभम् ।

सम्बन्धं कुरु कन्याया विशिष्टेन च साम्प्रतम् ॥ १२६ ॥

सुरभानुसुतः श्रीमान् वृषभानुर्वजाधिपः । नारायणांशो गुणधान् सुन्दरश्च सुपण्डित  
 स्थिरयौवनयुक्तश्च योगीजातिस्मरोयुषा । कन्या तेऽयोनिसम्भूता यज्ञकुण्डसमुद्भव  
 त्रैलोक्यमोहिनी शान्ता कमलांशा कलावती ।

स च योग्यस्त्वद्दुहितुस्तद्योग्या ते च कन्यका ॥ १२६ ॥

विद्मघाया विद्मघेन सम्बन्धो गुणधान्नृप । इत्येवमुक्त्वा नन्दस्तु विरराम च संसदि ॥

उवाच तं नृपध्रेष्ठो विनयाचनतो मुने ।

मनन्दन उवाच ।

सम्बन्धो हि विधिचशो न मे साध्यो व्रजाधिप ॥ १३१ ॥

प्रजापतियोगकर्ता जन्मदाताऽहमेव च । का कस्य पत्नी कन्या पापतःकोशास्वसाधनः  
 कर्मानुरूपफलदः सर्वेषां कारणं विधिः । भवितव्यं कृतं कर्म तदमोघं धृती धृत्म् ॥

अन्यथा निष्कलं सर्वमनीशस्योद्यमो यथा । वृषभानुप्रिया धात्रा लिखिताचेत्सुतामम  
पुरा भूतैव को घाहं केनान्येन निवार्यते । इत्येषमुक्त्वा राजेन्द्रो विनयानतकन्धरः ॥  
मिष्टान्नं भोजयामास सादरेण च नारद । नृपानुग्रामुपादाय ब्रजराजो ब्रजं गतः ॥१३६॥  
गत्वा स कथयामास सुरभानुश्च संसदि । सुरभानुश्च यत्नेन नन्देन च समादरम् ॥१३७॥  
सम्यग्धं योजयामास गर्गद्वारा च सत्वरम् । पिषाहकाले राजेन्द्रो विपुलर्योतुकं ददौ  
गजरत्नमश्वरत्नं रत्नानि मणिभूषणम् । वृषभानुमुंदायुक्तः प्राप्य ताञ्च कलावतीम् ॥१३८॥  
रमे सुनिर्जने रम्ये सुबुधे न दिवानिशम् । चक्षुर्निमेषविरहाद् व्याकुला स्वामिना विना  
ध्याकुलो वृषभानुश्च क्षणेन च तथा विना ।

जातिस्मरा च सा कन्या मायामानुषरूपिणी ॥ १४१ ॥

जातिस्मरो हरेरंशो वृषभानुमुंदान्वितः । षषर्द्धं च तयोः प्रेम नित्यं नित्यं नवं नयम् ॥  
सदा सकामा सा प्रोक्ता सच कामसमोयुधा । तयोःकन्याय कालेनराधिकासायभूयद्

द्वेषारसुदामरापेन धीरुत्पणस्याज्ञया पुरा ॥ १४३ ॥

अयोनिस्सम्भवा सा च वृष्णप्राणाधिका सती ।

यस्या दर्शनमात्रेण तां विमुक्तौ बभूवतुः ॥ १४४ ॥

इतिहासश्च कथितः प्रकृतं शृणु साम्प्रतम् । पापेन्धनानां दाहे च उपलक्ष्यशिशोपमः ॥  
वृषभान्याधर्मं गत्वा शिल्पिनां प्रवरो मुदा । स्थानान्तरे पितृपत्न्यां जगामम्यगणैःसह  
मोक्षमात्रं स्थलं चाह मनसालोच्य तत्पपित् । आधर्मं कर्तुंमारेभे मन्दस्य सुमहात्मनः

वृषभानुमानं बुद्ध्या च सर्वतोऽपि विलक्षणम् ।

परिष्वाभिर्गंभीराभिश्चतुर्भिः संयुतं परम् ॥ १४८ ॥

दुलं ह्यामिर्वैरिभिश्च अचिताभिश्च प्रसृतेः । पुष्पोद्यानेःपुष्पितामि.पारायारेपुष्पितैः  
आरुष्यकवृक्षैश्च पुष्पितैः सुमनोहरैः । परिमो चातितामिश्च सुगन्धिषायुता मुने ॥  
आधेगुंवाकैः पनमैः सज्जैर्भांरिबेन्दुवैः । दाहिमैः धोरज्जैर्भृङ्गैर्गंभीरैर्जांगरुक्षैः ॥१५१॥

सर्वतः शोभितामिश्च पत्तैःपुष्पितैर्हो ।

कीडाहार्भिर्निगूढाभिर्वाञ्छितामिश्च सर्वदा ॥ १५३ ॥

परिखानां रहःस्थाने चकार मार्गमुत्तमम् । दुर्गमं पर्यवर्णानां स्वानाञ्च सुगमं स  
सङ्केतेन मणिस्तम्भैश्छादितैःस्यल्पपाथसा । स्तम्भसीमाकृतमहो न सङ्कीर्णंनवित्त  
परिखोपरिभागे च प्राकारं सुमनोहरम् । धनुःशतप्रमाणञ्च चकारातिसमुच्चित्त  
प्रस्तरस्य प्रमाणञ्च पञ्चविंशतिहस्तकम् । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितञ्चातिसुन्दर  
यात्रो द्वाभ्याञ्च संयुक्तमन्तरे सप्तभिस्तथा । द्वार्भिश्च सन्निरुद्धार्भिर्मणिसारकपाट  
हरिम्बनीनां कलशैश्चित्रयुक्तैर्विराजितम् ।

मणिसारविकारैश्च कपाटैश्च सुशोभितम् ॥ १५६ ॥

स्वर्णसारविनिर्माणकलसोज्ज्वलशेखरम् । नन्दालयं विनिर्माय यन्नाम नगरं पुन  
राजमार्गाश्च विविधान् स च चारुंधकार ह ।

रक्तमानुषिकारैश्च वेदीभिश्च सुपत्तनैः ॥ १६१ ॥

पाटापाटे च परितो निवृद्धांश्च मनोहरान् । षाण्ड्याहैश्च षण्णिकां परितो मणिमण्ड  
सयंतो दक्षिणे धामे ज्वलद्विश्च विराजितान् । ततो वृन्दायनं गत्वा निर्ममेरासम  
सुन्दरं मण्डलाकारं मणिप्राकारसंयुतम् । पणितो योजनायामे मणिषेदिमिरन्वि  
मणिसारविकारैश्च मण्डपैर्नवकोटिमिः । शृङ्गाराहैश्च चित्राट्यैः इतितल्पसामनि  
नानाजातिप्रमृतानां षापुना सुरर्माश्रितैः । रसाप्रक्षीपसंयुक्तैः सुपर्णकलसोज्ज्वलैः

पुण्योद्यानैः पुण्यिनैश्च सरोभिश्च सुशोभितम् ।

रासस्थलं विनिर्माय जगामान्यन् स्थलम्पुरः ॥१६७॥

इहा वृन्दापनं रम्यं परितुष्टो बभूव ह । वृन्दापनाभ्यन्तरे च स्थाने स्थाने सुनिः  
हृष्या परिमितं वृद्धया मनसाऽऽलोक्य यत्नतः ।

विलक्षणानि रम्यानि तत्र त्रिशद्वनानि च ॥१६८॥

राधामाधवयोरैव कीडापंश्च विनिर्ममे । ततो मधुपनाभ्यासे त्रिभ्रंवेप्रतिमनोहरै  
षट्मूलसमन्वये च मरसः पथिमं तटे । बभूवकोचानपूर्वायां वेतकीवनमभ्यनः ॥  
पुनस्तयोश्च कीडापंश्चकार रसमण्डलम् । यत्तुभिर्वेदिभ्यामिध परीतमणिसुन्दरम् ।

सद्रत्नसाररचितै राजितं तूलिकाशतैः । अमूल्यरत्नरचितैर्नानाचित्रेण चित्रितैः ॥१७३॥  
कपाटैर्नवभिर्युक्तं नवद्वारैर्मनोहरैः । रत्नेन्द्रचित्रकलशैः कृत्रिमैश्च त्रिकोटिभिः ॥१७४॥

परितः परितो भिख्यामूर्ध्वञ्च पश्चिमोभितम् ।

महामणीन्द्रचिह्नैरारोहैर्नवभिर्युतम् ॥१७५॥

सद्रत्नसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम् । पताकातोरणैर्युक्तं शोभितं श्वेतचामरैः ॥  
सर्वतः पुरतो दीप्तममूल्यरत्नदर्पणैः । धनुःप्रमाणशतकमूर्ध्वमग्निशिखोपमम् ॥ १७७ ॥

शतहस्तप्रमाणञ्च प्रस्तारं घर्तुलाकृतम् । शोभितं रत्नतल्पैश्च तदभ्यन्तरमुत्तमम् ॥१७८॥  
बह्विशुद्धांशुकैर्वस्त्रैर्मांजालविचित्रितैः । पारिजातप्रसूनानां माल्योपधानसंयुतैः ॥१७९॥

चन्दनागुद्यकस्तूरीकुङ्कुमैः सुरभीकृतम् । नवशृङ्गारयोग्यैश्च कामवर्द्धनकारिभिः ॥१८०॥  
मालतीचम्पकानाञ्च पुष्पराजिभिरन्वितम् । सकपूरैश्च ताम्बूलैः सद्रत्नपात्रसंस्थितैः ॥

यज्ञसारेण चचितैर्मुंकाजालविलम्बिभिः । रत्नसारघटाकीर्णं रत्नर्पाटैः सुसंयुतम् ॥१८२॥  
रत्नसिंहासनैर्युक्तं रत्नचित्रेण चित्रितैः । क्षरितैश्चन्द्रकान्तैश्च सुसिक्तं जलविन्दुभिः ॥

शीतपासिततोयेन संयुक्तं भोग्यवस्तुभिः । कृत्वा रतिगृहं रम्यं नगरञ्च पुनर्ययी ॥१८४॥  
यानि येषां मन्दिराणि तन्नामानि लिलेख सः ।

मुदायुक्तो विश्वकर्मा शिष्यैर्यक्षगणैः सह ॥१८५॥

नेत्रेशं निद्रितं नत्वा प्रययी स्यालयं मुने । सर्वश्रेयं सुकृतिनां समस्तं भगवन्कृपा ॥  
हाद्यर्षञ्च नगरं यभूवेशोच्छया भुवि । इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्धरितमङ्गलम् ॥१८७॥

सुखदं पातकहरं किम्भूयः धोनुमिच्छसि ।  
नारद उवाच ।

कथं घृन्दावनं नाम काननस्यास्य भारते ॥ १८८ ॥  
व्युत्पत्तिरस्य संज्ञा या तत्त्वं यद् सुतत्पपित् ।

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः धृत्वा श्रुपिर्नारायणो मुदा ॥१८९॥  
प्रहस्योवाच निबिलं तरवमेव पुरातनम् ।

नारायण उवाच ।

पुरा केदारनृपतिः सप्तद्वीपपतिः स्वयम् ॥१६०॥

सत्ययुगे ब्रह्मन् सत्यधर्मरतः सदा । स रमे सह नारीभिः पुत्रपौत्रगणैः सह

पुत्रानिव प्रजाः सर्वाः पालयामास धार्मिकः ।

कृत्वा क्रतुशतं राजा लेभे नेन्द्रत्वमीप्सितम् ॥१६२॥

कृत्वा नानाविधं पुण्यं फलाफलाङ्क्षी न च स्वयम् ।

नित्यं नैमित्तिकं सर्वं श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् ॥१६३॥

केदारतुल्यो राजेन्द्रो न भूतो भविता पुनः ।

पुत्रेषु राज्यं संन्यस्य प्रियां त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥१६४॥

श्रयोपदेशेन जगाम तपसे धनम् । हरैरैकान्तिकोऽभक्तो ध्यायते सन्ततं हरिम् ।

तु सुदर्शनञ्चकमस्तियत्सन्निधौ मुने । चिरंतन्पादां मुनिध्रेष्टो गोलोकञ्चजगामसः

केदारं नाम तीर्थञ्च तन्नमना च बभूव ह ।

तत्राद्यापि मृतः प्राणी सद्यो मुक्तो भवेद् धुधम् ॥१६७॥

लांशातस्य कन्या नामना धृन्दा तपस्विनी । न ध्वजेसाधरं कञ्चियोगशास्त्रविशारदा

। दुर्वाससा तस्यै हरैर्मन्त्रः सुदुर्लभः । सा चिरक्ता गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे धनम्

। चर्यसहस्राणि तपस्तेपे मुनिर्जने । धाविर्बभूव श्रीकृष्णस्तत्पुरो भक्तघटसलः ॥१७०॥

प्रसन्नचदनः श्रीमान्धरं घृण्वित्युवाच सः ।

दृष्ट्वा सा राधिकाफान्तं शान्तं सुन्दरधिग्रहम् ॥२०१॥

यां सग्रापसा सद्यः कामशाणप्रपीडिता । साच शीघ्रं धरं ध्वजे पतिस्त्वयैभवेतिव

मित्युक्त्वा च रहसि चिरं रमे तथा सह । सा जगामचगोलोकं कृष्णेनसहकौतुकात्

धासमा सा सौभाग्याद्गोपीधेष्टा बभूव ह । धृन्दा यत्र तपस्तेपे तनु धृन्दापनं स्तुम्

दद्यात् एता क्रीडा तेन धा मुनिपुङ्गव । भयान्यश्चेतिहासञ्च शृणुष्य घटस पुण्यदम्

न धृन्दापनं नाम नियोध कथयामि ते । कुशाध्यज्ञस्य कन्ये द्वे धर्मशास्त्रविशारदौ ॥

एसीविदपत्यौच चिरक्ते भवकर्मणि । तपस्तप्या घेदपतां प्राप नारायणं परम् ॥२०१॥

सीता जनककन्या सा सर्वत्र परिकीर्तिता ।

तुलसी च तपस्तप्या घाञ्छां वृत्था हरिं पतिम् ॥ २०८ ॥

दैवान् दुर्वाससः शापात् प्राप्य शङ्खामुरं प्रति ।

पश्चात्सम्प्राप कमलाकान्तं कान्तं मनोहरम् ॥ २०९ ॥

सा चैव हरिशापेन वृक्षरूपा सुरेश्वरी । तस्याः शापेन च हरिः शालग्रामो बभूव ह  
तथा तस्थौ च सततं शिलावक्षसि सुन्दरी । विस्तीर्णं कथितं सर्वं तुलसीचरितञ्च ।

तथापि च प्रसङ्गेन किञ्चिदुक्तं मुने पुनः ॥ २११ ॥

तस्याश्च तपसः स्थानं तद्विदञ्च तपोधन । तेन वृन्दावनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः  
अथवा ते प्रबक्ष्यामि परं हेत्वन्तरं शृणु । येन वृन्दावनं नाम पुण्यक्षेत्रेण भारते ॥ २११ ॥

राधा षोडशनाम्नाञ्च वृन्दानाम धृतीधुतम् । तस्याः क्रीडावनं रम्यं तेन वृन्दावनं स्मृतम्  
गोलोके प्रीतये तस्याः कृष्णेन निर्मितं पुरा ।

क्रीडार्थं भुवि तन्नाम्ना वनं वृन्दावनं स्मृतम् ॥ २१५ ॥

नारद उवाच ।

कानि षोडश नामानि राधिकाया जगद्गुरो । तानिमे षड् शिष्याय ध्योतुं कौतूहलं  
श्रुतं नाम्नां सहस्रञ्च सामवेदे निरूपितम् ।

तथापि ध्योतुमिच्छामि त्वत्तो नामानि षोडश ॥ २१७ ॥

अभ्यन्तराणितेषांवा तद्व्यान्येवमेविमो । अहो पुण्यस्वरूपाणि भक्तानांवाञ्छितानि  
नामानि तेषां ध्युत्पत्तिं सर्वेषां दुर्लभानि च । पावनानि जगन्मातुर्जंगतामादिकार

धीनारायण उवाच ।

राधारसेश्वरी रासवासिनीरसिकेश्वरी । कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रियाकृष्णस्वरूपि  
कृष्णयामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी । कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनवितोदिन  
चन्द्रापती चन्द्रकान्ता शतचन्द्रनिभानता । नामान्येतानि सारराणि तेषामभ्यन्तराणि  
राधेत्येषञ्च संसिद्धा राकारोदानवाचकः । स्वयंनिर्माणदात्रीया सा राधापरिकीर्ति

रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता ।



रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी ॥ २२४ ॥

सर्वासां रसिकानाञ्च देवीनामीश्वरी परा । प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेष्वं  
प्राणाधिकाप्रेयसीसा कृष्णस्यपरमात्मनः । कृष्णप्राणाधिकासाच कृष्णेनपरिकीर्ति

कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा ।

सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता ॥ २२७ ॥

कृष्णरूपं सन्निधातुं या शक्ता चावलीलया । सर्वान्शैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी  
घामाङ्गाद्धेन कृष्णस्य या सम्भूतापरासती । कृष्णघामाङ्गसम्भूतातेन कृष्णेन कीर्तिता

परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती । श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी ॥  
कृष्णिर्माक्षार्थपचनो न एषोत्कृष्टवाचकः । आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता  
वस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेनवृन्दावनी स्मृता । वृन्दावनस्याधिदेवीतेन वाच्य प्रकीर्तिता

सङ्घः सखीनां वृन्दस्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः ।

सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्तिता ॥ २३३ ॥

वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या हस्तिव तत्र वै । घेदा पदन्तितां तेनवृन्दावनविनोदिनीम्  
नखचन्द्रावलीवचन्द्रोऽस्ति यत्रसन्ततम् । तेन चन्द्रावलीसाच कृष्णेन परिकीर्तिता

फान्तिरस्ति चन्द्रनुल्या सदा यस्या दिधानिशम् ।

सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्तिता ॥ २३६ ॥

शरच्चन्द्रप्रभा यस्याधाननेऽस्ति दिधानिशम् । मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना  
इदं षोडशनामो न प्रथमं व्याख्यानसंयुतम् । नारायणेन यहत्तं ब्रह्मणे नामिषङ्कते ।

ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे ॥ २३८ ॥

धर्मेण कृपया दत्तं महामादित्यपर्यणि । पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि ।

राधाप्रभापप्रस्ताये सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ २३९ ॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने । निन्दकापावैष्णवाय न दातव्यं महामुने ॥  
यावज्जापमिदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेत्ततः । राधामाधपयोः पादपद्मे मक्तिर्मयेदिह ॥

लभेत्तयोर्दास्यं शरपत्सहचरोमयेत् । अग्निमादिकसिद्धिञ्च संग्राह्यं कृष्णपिप्लव

प्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः । चतुर्णाञ्चैव देवानां पादैः सर्वार्थसंयुतैः ॥२४३॥  
 सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्धिधिबोधितैः । प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा ॥  
 शरणागतप्रक्षायामहानां ज्ञानदानतः । देवानां वैष्णवानाञ्च दर्शनेनापि यत् फलम् ॥  
 तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।

स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २४६ ॥

नारद उवाच ।

सम्प्राप्तं परमाश्चर्यं स्तोत्रं सर्वसुदुर्लभम् । कवचञ्चापि देव्याश्च संसारविजयं प्रभो ॥  
 कृतं स्तोत्रं सुयज्ञेन प्राप्तंतदपि दुर्लभम् । ध्रुत्पाठरूपकथां चित्रां त्वत्पादाब्जप्रसादतः  
 अधुना श्रोतुमिच्छामि यद्गहस्यञ्च तद्वद । प्रातश्च नगरं दृष्ट्वा किमूर्चुर्वल्लभा मुने ॥२४६॥  
 श्रीनारायण उवाच ।

गतायां तत्र यामिन्यां गते च विश्वकर्मणि । अद्यणोदयधेलायां जनाः सर्वे जजागदुः  
 उत्थाय दृष्ट्वा नगरं सर्वेभ्योऽपि विलक्षणम् । किमाश्चर्यं किमाश्चर्यमित्यूचुर्ब्रजवासिनः  
 काञ्चिद्गोपान् केचिद्भुजुः कुत एतद्भूदिदम् । न जाने केन रूपेण को भूमो प्रभवेदिति  
 युयुधे मनसा नन्दो गर्गावाक्यमनुस्मरन् । धीहरेरिच्छया सर्वजगदेतच्चरावरम् ॥२५३॥  
 ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यस्य भ्रूमङ्गलीलया ।

वाचिर्भूतं तिरोभूतं तस्यासाध्यञ्च किं कुतः ॥ २५४ ॥

विचरेष्वेवयज्ञोम्नां ब्रह्माण्डान्यखिलानि च । ईशस्य तन्महाविष्णोः किमसाध्यं हरेरहो  
 ब्रह्मानन्तेशचर्माश्च ध्यायन्ते यत्पद्मानुजम् । किमसाध्यं तद्दीशस्य मायामानुरूपिणः  
 घ्नानं घ्नानं तन्नगरं दर्शं दर्शं गृहं गृहम् । पाठं पाठञ्च नामानि सर्वेभ्यो निलयं ददौ ॥  
 कृत्वा शुभक्षणं नन्दो ब्रूयमानुध कौतुकी । चकार सगणैः सार्द्धं मुदाध्रमनिवेशनम्  
 सर्वे वृन्दावनस्थाश्च प्रसन्नवदनैः । मुदा प्रवेशनञ्चक्रुः स्व्यं स्वमाध्रममुत्तमम् ॥२५६

सर्वे मुमुदिरे गोपाः स्वे स्वे स्थाने मनोहरे ।

बालका बालिकाश्चैव चिकीडुश्च प्रहर्षिताः ॥ २६० ॥

धीहृत्प्लो धल्लरेष्वधिशुभिः सहकौतुकात् । कीडाञ्चकारतत्रैव स्थाने स्थाने मनोहरे

इत्येवं कथितं तस्य निर्माणं नगरम्यम् । ध्वजानां घने राक्षसपट्टमम्यम् नाद ॥२६॥  
इति धाम्मवैपरीतं महापुराणे नागायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मघण्टे श्रीकृष्ण-  
नगरघण्टं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

## अष्टादशोऽध्यायः

विप्रपत्नीनां मोक्षणम् ।

शौनफ उवाच ।

अहो किमहुतं सूत रहस्यं सुमनोहरम् । ध्रुवं कृष्णस्य चरितं सुप्रदं मोक्षदं परम् ॥१॥

सूत उवाच ।

श्रुत्वा नगरनिर्माणं नारदो मुनिसत्तमः । पप्रच्छ कृष्णचरितमपरं सुमनोहरम् ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

श्रीकृष्णाख्यानचरितं पीयूषमृषिसत्तम । ज्ञानसिन्धो निगद मां शिष्यञ्च शरणागतम्  
नारदस्य घञः श्रुत्वा मुदा नारायणः स्वयम् । उवाच परमीशस्य चरितं परमाहुतम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा बालकैः साङ्गं बलेन सह माधवः । जगाम श्रीमधुवनं यमुनातीरनीजम् ॥५॥  
विचेष्टासहस्रैश्च चिकीडुर्यालकास्तदा । विधान्तास्तृपरीताश्च क्षुधा च परिपीडिताः

तमूचुर्गोपशिशवः श्रीकृष्णं परया मुदा ।

क्षुदस्मान् वाधते कृष्ण किं कुर्मो ब्रूहि किङ्करान् ॥ ७ ॥

शिशूनां घवनं श्रुत्वा तानुवाच दयानिधिः । हितं तथ्यञ्च घवनं प्रसन्नवदनेक्षणः ॥८॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

बालामच्छतविप्राणां यज्ञस्थानं सुखावहम् । अन्नं पावततान्शीघ्रं ब्राह्मणांश्चकन्मुखात्  
। आङ्गिरसाः सर्वे स्याध्रमे श्रीवतान्तिके । यज्ञं कुर्वन्ति विप्राश्च श्रुतिस्मृतिविशारादाः

निष्पृहा वैष्णवाः सर्वे मां यजन्ति मुमुक्षवः ।

मायया मां न जानन्ति मायामानुषरूपिणम् ॥ ११ ॥

न चेद्ददित्युष्मभ्यमभ्रं विप्राःवनूत्मुखाः । तत्कान्तायाचत क्षिप्रंदयायुकाःशिशून्प्रति  
श्रीहृष्णवचनं धृत्या ययुर्थालकपुद्गवाः । पुरतो ब्रह्मणानाञ्च तस्थुरानप्रकन्धराः ॥  
इत्युर्ध्वालकाः शीघ्रमन्नं दत्त द्विजोत्तमाः ।

न शुश्रुवुर्द्विजाः केचित् केचिच्छ्रुत्वा स्थिताः स्थिताः ॥ १४ ॥

ययू रन्धनागारं ब्राह्मण्यो यत्रपाचिकाः । गत्याबाला विप्रभार्याः प्रणेमुर्नतकन्धराः  
घोर्धुर्धालकाःसर्वेविप्रभार्याःपतिव्रताः । मन्नंदत्तमातरोऽस्मान्भ्रुघातान्यालकानपि  
लानां वचनं धृत्या दृष्टातांधमनोहरान् । पप्रच्छुः सादरं साध्य्यः स्मेताननसरोरुहाः  
विप्रपत्न्य ऊचुः ।

के यूयं प्रेरिताः केन कानि नामानि कौचिदाः ।

दास्यामोऽन्नं यदुपिषं व्यञ्जनैः सहितं परम् ॥ १८ ॥

प्राप्तणीनां वचः धुन्या ता ऊचुस्ते मुदान्विताः ।

स्निग्धा हसन्तः स्फीताश्च सर्वे गोपालबालकाः ॥ १६ ॥

बाला ऊचुः ।

पितारामहृष्णाभ्यां वषंश्लपीद्विताभृशम् । दनाग्रमातरोऽस्मभ्यंक्षिप्रंयामस्तदान्निकम्  
तोऽविदूरे भाण्टीरे वनाभ्यन्तमेष च । घटमूले मधुघने पसन्तो रामकेदार्यो ॥ २१ ॥  
पेभान्तौ धुषितौ तौ च वाचनेऽन्नशमावतः । किमु देयमदेयं वा शौचं यदन नोऽपुना  
तोपानाञ्च वचः धृत्या हृष्टान्दाधुलोचिताः । पुलकाद्वितरतर्पाङ्गान्त्वादापन्नमनोरथाः  
गनाभ्यन्नमंयुक्तं शान्त्यर्थं मुमनोहरम् । पापसं पिष्टकं स्व्याद् दधि क्षीरं घृणं मधु ॥  
शीष्ये कौस्ये राजने च पात्रे हृत्या मुदान्विताः ।

ताः सर्वा विप्रपत्न्यश्च प्रपयुः हृष्णासन्निधिम् ॥ २५ ॥

मानामनोर्थं हृत्वामतरा गमनोत्सुकाः । वन्निशाम्ना धन्याधर्मीहृष्णदर्शनेऽसुखाः  
धीहृष्णे दृष्टुर्गत्वा रामश्च सदबालकम् । घटमूले पसन्तन्मुमुक्षुष्ये वर्षादुपम् ॥ २७ ॥

दयाम् विजोरेषयसा पीतकीशेषयारसम् । सुन्दरसम्मिन्नं शम्भराषाकार्त्तमनोहय  
शरत्पार्येणयन्द्राम्यं रद्याल्लङ्कारभूमितम् । रद्याल्लङ्कारभूमितम् । रद्याल्लङ्कारभूमितम् । रद्याल्लङ्कारभूमितम् ।  
रद्याल्लङ्कारभूमितम् । रद्याल्लङ्कारभूमितम् । रद्याल्लङ्कारभूमितम् । रद्याल्लङ्कारभूमितम् । ३० ॥

मालतीमालया कण्ठपद्मः स्थाण्डविराजितम् ।

चन्द्रनागुगलः स्नूरीकुङ्कुमागितयिप्रदम् ॥ ३१ ॥

सुतरं सुकपोलञ्च पद्मपिम्बाधरं परम् । पद्मदादिमयोत्तमं विभ्रतं दन्तमुत्तमम् ॥ ३२ ॥  
शिगिपिच्छसमायुक्तं पद्मचूडं परात्परम् । कश्चिदुत्पद्युगमाभ्यां कर्णमूले विराजितम्  
ध्यानासाध्यं योगिनाञ्च भक्तानुप्रदफातरम् । प्रतीशधर्मशेनेन्द्रैः स्नूयमानं मुनीश्वरैः ॥  
दृष्टैषमीश्वरं भक्तया प्रणेनुद्धिजयोपितः । स्वानां ज्ञानानुरूपञ्च तुष्टुष्टुर्मधुसूदनम् ॥ ३३ ॥

विप्रपत्न्य ऊचुः ।

त्वं प्रह्ल परमंधाम निरीहोनिरहदृष्टिः । निर्गुणञ्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयद  
साक्षिरूपञ्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः । प्रकृतिः पुरुषस्त्वञ्च कारणञ्च तयोः पर  
सृष्टिस्थित्यन्तविषये येच देवास्त्रयः स्मृताः । तत्त्वदंशाः सर्वथीजा प्रह्लविष्णुमहेश्वराः  
यस्यलोल्लाञ्च चिवरेचाखिलं विश्वमीश्वर । महाविराट्महाविष्णुस्त्वं तस्यजनकोपिमी  
तेजस्त्वञ्चापि तेजस्यो ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः ।

वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ४० ॥

महदादि सृष्टिसूत्रं पञ्च तन्मात्रमेव च । योजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः ॥  
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्तयाश्रयः सदा । त्वमनीहः स्वयं ज्योतिः सधानन्दः सनातनः  
अहोऽप्याकारहीनस्त्वं सर्वविप्रहवानपि । सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियभवात्  
सरस्वती जङ्गीभूतायत्स्तोत्रे यन्निरूपणे । जङ्गीभूतो महेशश्च शेषोधर्मो विधिः स्वयम्  
पार्थती कमला राधा सावित्री वेदसूरपि । वेदश्च जङ्गता याति के वा शक्ता विपश्चितः  
पयं किं स्तवनं कुर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वर । प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो रुपां कु

इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तशरणाभुजे ।

अभयं प्रददौ ताम्यः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ ४१ ॥

विप्रपत्नीवृत्तं स्तोत्रं पूजाकाले च पः पठेत् ।

स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नात्र संशयः ॥ ४८ ॥

नारायण उवाच ।

ताः पद्मम्भोजपतिता इहा श्रीमधुसूदनः । परं घृणुत कल्याणं भविता चेत्युपाच द ॥

धीकृष्णस्य वचःश्रुत्वाविप्रपत्न्योमुदान्विताः । तपूचुर्बचनं भक्त्याभक्तिप्रसक्तमन्धराः

द्विजपत्न्य ऊचुः ।

परं कृष्ण न गृह्णीमो नः स्पृहा स्वल्पदाम्युजे ।

देहि स्वं दाम्यमम्मम्यं इहा भक्ति सुदुर्लभाम् ॥५१॥

पर्यामोऽनुशासं वक्त्रसरोजं तव वेशभ । अनुग्रहं कुर्व विमो न वस्यामो गृहं पुनः ॥

द्विजपत्नीपत्रः श्रुत्वा धीकृष्णः कर्णानिधिः ।

भोमिन्पुत्रया त्रिलोकेशस्तर्था बालकसंतदि ॥५३॥

प्रदत्तं विप्रपत्नीभिर्मिष्टमन्नं सुषोपमम् । बालकान् भोजयित्वा तु स्वयञ्च युमुजे विभुः

पत्निसमग्रजरे तत्र शातकुम्भं त्रयं परम् । इदृगुर्विप्रपत्न्यश्च पत्ननं गगनादहो ॥५५॥

वददर्शनसंगुणं वदन्तारपरिष्कृतम् । वनस्तमोर्निवदञ्च सद्गणकलशोऽगपत् ॥५६॥

इयेतयाप्रसरंगुणं वदितुंशुभान्वितम् । पारिजातप्रसूतानां माताज्ञानंविवाजितम् ॥

शतशकरमागुणं मनोवापि मनोहरम् ।

येष्टिनं पारं देहिष्येवंतमालाविभूषितैः ॥५८॥

पीतपत्रपरीधाने वनमालद्वारभूषितैः । नयनोपनयनसम्भवेः श्यामदंटेः सुमनोहरैः ॥५९॥

द्विभुजैर्मुण्डीहस्तैर्गोपवेशभरैर्वरैः । शिखिपिच्छगुञ्जमालाबद्धवकिम्बुद्वजैः ॥ ६० ॥

अवराज तथासूर्पं ते प्रजस्य हरेः परम् । श्यामवरोऽहो नयनंमूर्च्छांशुणवामिनैः ६१॥

विप्रभार्या हरि कृष्णा जगुर्गोरीवर्माविरभम् ।

बभूवुर्गोषिवाः सदाशुचिन्दा मानुषविग्रहम् ६२॥

हरिश्चापौ द्विदिग्वाप नारायण विष्णुमायया ।

अथापयापार शूराश्च अज्ञानानां वचं विभुः ६३॥

विप्राश्च भार्या उद्दिश्य परमोद्दिग्गमानसाः । अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुः पथि कामिनीः  
दृष्ट्वाचुर्ब्राह्मणाः सर्वे तास्ते च वितयान्विताः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः प्रसन्नवदनेक्षणाः ॥  
ब्राह्मणा ऊचुः ।

अहोऽतिधन्या यूयञ्च दृष्टो युष्माभिरीश्वरः । अस्माकं जीवनं व्यर्थंवेदपाठोऽप्यनर्थकः  
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्धिः परिकीर्तिताः । हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः ॥  
तपो जपो व्रतं ज्ञानं वेदाध्ययनमर्चनम् । तीर्थस्नानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः ॥६८॥  
श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः ।

प्रातः कल्पतरुर्येन किं तस्यान्येन शाखिना ॥६९॥

श्रीकृष्णो हृदये यस्यतस्य किं कर्मभिः कृतैः । किं पीतसागरस्यैव पीर्यं कूपलङ्घने ॥  
इत्येवमुक्त्वा विप्राश्च गृहीत्वा कामिनी वराः ।

आजगमुः स्वगृहं हृष्टास्ताभिः सार्धञ्च रेमिरे ॥७१॥

तासां तत्रोऽधिकं प्रेमकीडासु सर्वकर्मसु । दाक्षिण्यंमाययाशतयाब्राह्मणानामतर्कितम्  
अथ नारायणः सोऽयं धलेन शिशुभिः सह । जगाम स्थालयं तूष्णं पूर्णब्रह्मसनातनः ॥  
इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम् । पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् किंभूयःभ्रोतुमिच्छसि

नारद उवाच ।

श्रृयीन्द्र केन पुण्येन यभूय विप्रयोपिताम् । मुनीन्द्रयोगसिद्धानां दुर्लभा गतिरीदृशी ॥  
इमाः का वा पुण्यवत्यः पुरा तस्थुर्महीतलम् ।

आजगमुः केन दोषेण यद् सन्देहमञ्जनम् ॥७६॥

धीनारायण उवाच ।

सतर्षेणां रमण्यञ्च रूपेणाप्रतिमाः वराः । गुणयत्यः सुरीलाश्च धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥  
नयानर्थापनाः सर्वाः वीनध्रोणिपयोधराः । दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः ॥  
तनकाञ्चनवर्णामाः स्मेराननसरोरुहाः । मुनीनां मोहितुं शक्ताः मानसं यत्रःचक्षुरा ॥७७॥  
इहा तासां स्तनध्रोणिमुष्णानि सुन्दराणि च । अलङ्कारमे ताश्च मदनानलदीप्तितः ॥  
अग्निपदानस्त्रियजलाञ्च तिलवा सुनोःगुलः ।

स्युद्धा चान्नाति तासाञ्च धभूय हतचेतनः ॥८१॥

पतिव्रता न जातन्ति पतिपादाब्जमानसाः । अग्निरद्वानि तासाञ्च दर्शं दर्शं मुमोह च ॥  
 पद्मे च मानसं श्रुत्वा भगवानङ्गिरा मुनिः । शशाप तं चेत्युपाच सर्वभक्षो यभूय ह ॥  
 यद्भिः सचेतनो भूषा तुष्टाप मुक्तिपुङ्गवम् । प्रोद्धा नम्रचक्षुभ्यकम्पे प्रहतेजसा ॥८२॥  
 ब्रह्मो मुनिः परस्मृष्टाः कामिनीश्च शशाप ह । यात यूयं पापयुक्ता मानुषीं योनिमेव च  
 भारते प्राह्यपानाञ्च गृहे लभत जन्म वै । करिष्यन्ति विषाहञ्च युष्माकं कुलजा द्विजाः  
 श्रुत्वा पापयं मुनेस्ताश्च रुद्रदुः प्रेमविह्वलाः । पुत्राञ्जलियुताः सर्पा ऊचुस्तं विदुषां वरम्  
 मुनिपरस्य ऊचुः ।

न त्यजाभ्यान्मुनिश्रेष्ठ निष्पापाश्च पतिव्रताः ।

भजानन्त्यः परस्मृष्टा न च सस्यत्तुमर्हसि ॥८८॥

भक्तानां किट्टरीणाञ्च न दण्डं कर्तुमर्हसि । युष्माकं धरणात्मोजं कदा द्रश्यामदेवयम्  
 रङ्गच्छेदाष्टप्रपातारसर्वप्रहरणाद्भुते । दारणः कान्तविच्छेदःसाध्वीनां दुःसहः सदा ॥  
 प्रतिष्ठानां गुणधर्ता पगन् कान्तान्महामुनीन् ।

एषभूतान् कथं त्यक्त्वा यास्यामः पृथिवीतलम् ॥९१॥

यास्यामी यदि पित्रेण कदात्रागमनं यद् । भजानस्पर्शदीवश्च न स्यान्नी विधिवाधितः  
 महान्यया पुनः प्रातः स्वामीन्द्रस्य प्रपंरणात् ।

एता समोराणां पुनः शुद्धा स्पर्शानाद् वर्जिता ययम् ॥९२॥

विचारं कुरु धर्मिष्ठ वैश्वेशूपपाप । विभक्तुंश्च पुत्रभयं सद्यैवैद्विदां यत् ॥ ९४ ॥  
 धर्मपाश्च मयाकान्ता प्रजन्ति शरणाग्रनिम् ।

एयकान्तभयवर्जिताः शरणं कं प्रजन्ति ताः ॥९५॥

भगवं देहि धर्मिष्ठ भवयुगलस्य एष यः । पुत्रं शिष्ये कर्तव्यं यं वो दण्डं कर्तुमर्हस्यः ॥  
 दुर्धराः शक्यो वापि स्वयन्मन्मयंभयः । स्वदुष्पविशयं कर्तुं न धार्योः रक्षितुं क्षमः

कामिनीनां वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा मुनिपुत्रः ।

कान्ता रमोद तासाञ्च निर्दिश्य मुत्पुङ्गवम् ॥९८॥



येद्येदाङ्गपार्ष्णो जामिनां योगिनां परः । पत्नीयिन्दोश्चिपये मूर्च्छीं प्रापत्प्रापि सः  
सर्वे बभूवुः शोकात्तां पिरहोद्विग्नमानसाः ।

निरीक्ष्य तासां वचत्राणि तस्युः पुत्तलिका यथा ॥१००॥

एतया विलापं सुचिरं सर्वयेद्विदां परः । घ्रातृमिध सहालोच्य ता उवाच शुवानुप  
अङ्गिग उवाच ।

यूयं शृणुत पश्वामि वचनं सत्यमेव च ।

स्यकर्मभोगिनामभोगमाकर्माद्य धृतां धृतम् ॥१०२॥

गतो भोगश्च युष्माकमस्मामिः सह निश्चितम् । गते भोगे पुनर्भोगो नहि वेदेनिरपि  
शुभाशुभञ्च यत्कर्म भारते कृतिभिः सह । नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि ॥

परमुक्ताञ्च कान्ताञ्च यो भुङ्क्ते स नराधमः ।

स पच्यते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवारो ॥१०५॥

न सा दैवे न सा पैथ्ये पाकार्हा पापसंयुता ।

तस्या बालिङ्गने भर्ता भ्रष्टश्रीस्तेजसा हतः ॥१०६॥

देवताः पितरस्तस्य हव्यदाने च तर्पणे । सुखिनो न भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः ॥  
तस्माद्यज्ञेन भार्याया रक्षणं कुरुते सुधीः । अन्यथा पापमाग्भर्ता निश्चितं नरकं व्रजेत्

पदे पदे सावधानः कान्तां रक्षति पण्डितः ।

न व्रती न स्थली योवा दोषाणाञ्च करण्डिका ॥१०६॥

कलत्रं पाकपात्रञ्च सदा रक्षतुमर्हति । परस्पर्शाद्दशुद्धाञ्च शुद्धां स्वस्पर्शने सदा ॥११०॥  
स्वकान्तञ्च परित्यज्य परंगच्छति याऽधमा । कुम्भीपाकं सा प्रयाति यावच्चन्द्रदिवारो

तामेव यमदूताश्च संस्थाप्य नरकान्तरे । उत्तिष्ठति विदूराच्चेत् कुर्वन्ति दण्डताडनम् ॥  
सर्वप्रमाणाः कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः । दशन्ति पुंश्चलीं तत्र सततञ्च दिवाविशम्

विहृताकाराश्च करोति शाश्वतमिषया । न ममार प्रहारेण सूक्ष्मदेहविधारिणी ॥११४॥  
मुहूर्तादं सुखं भुक्त्वा लोकेऽत्र यशसा हता । पतिता परलोके च गतिमेतादृशीं लभेत्  
परस्पृष्टा च या नारी या स्पृष्टां कुरुते परम् ।



सापि दुष्टा परित्याज्या चेत्याह कमलोद्भवः ॥११६॥

तस्मान्नारी परैर्यत्नाद्दृष्टा कृतिभिः कृता । असूर्य्यम्पश्या यादाराःशुद्धास्ताश्च पतिव्रताः  
स्वच्छन्दगामिनी या च स्वतन्त्रा सुकरीसमा । अन्तर्दुष्टा सदा सैव निश्चितंपरगामिनी

स्वामिसाध्या च या नारी कुलधर्ममिया स्थिता ।

कान्तेन साद्रे सा कान्ता वैकुण्ठं याति निश्चितम् ॥११६॥

यात यूयञ्च पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम् ।

कृष्णदर्शनमात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ॥१२०॥

हरिणा निर्मिताइहाया युष्माकं योगमापया ।

ता विप्रमन्दिरे स्थित्या चागमिष्यन्ति नो ध्रुवम् ॥१२१॥

पुनरंदोनो नो पत्न्यो भविष्यथ न संशयः । युष्माकं मम शापश्च यभूय च वराधिकः ॥

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम शुचान्वितः । ता आगत्य महीं शापाद् यमुवुर्विप्रयोपितः

दत्त्वान्नं हरये मत्वा प्रजग्मुर्हरिमन्दिरम् । यभूय निश्चितं तासां शापश्च सम्पदोऽधिकः

निन्द्या नीचाश्च सम्पत्तिर्विपत्तिर्महतो वरा । अहो सद्यः सतां कोपधोपकाराय कल्पते

विना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य मधेदुषि । भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता ब्राह्मणयोपितः

इत्येवं कथितं सद्ये हरैश्चरितमुत्तमम् । अहो पुण्यवतीनाञ्च मोक्षाख्यानं मनोहरम् ॥

धोःकृष्णाणयानं विप्रेन्द्र नृक्षं नृक्षं पदे पदे ।

न हि तृप्तिः ध्रुतपतां केन धेयसि तृप्यते ॥१२८॥

यापद्रव्यं तत् कथितं यच्छ्रुतं गुरवक्षत्रतः । यद् मां याच्छ्रुतं वत्सेविभूयःधोःतुमिच्छसि

नारद उवाच ।

यद्यच्छ्रुतं त्वया पूर्वं गुरवक्षत्रान् हृषानिवे । मङ्गलं कृष्णचरितं तन्मे मूढि जगद्गुरो !

सुत उवाच ।

ध्रुत्वा देवर्षियच्चनमृपिर्नारायणः स्वयम् । अपरं कृष्णमाहात्म्यं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१३१

इति धीप्रत्ययैपत्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीःकृष्णजन्मखण्डे

विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावो नामाष्टादशोऽध्यायः ।



मरणामिमुखं कान्तं दृष्ट्वा सा सुरसा सती ।

नागिनीमिः सह प्रेम्णा करोद पुरतो हरेः ॥१५॥

पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं मिया । धृत्वा पादारविन्दे च तमुवाच मियाकुला ॥

सुरसोवाच ।

हे जगत्कान्त कान्तं मे देहि मानञ्च मानद ।

पतिः प्राणाधिकः स्त्रीणां नास्ति बन्धुश्च तत्परः ॥१७॥

अयि सुरवरनाथ ! प्राणनाथं मदीयं ! न कुह पथमनन्तप्रेमसिन्धो ! सुबन्धो ! ।

बखिलभुवनबन्धो ! राधिकाप्रेमसिन्धो ! पतिमिह कुह दानं मे विधातुर्यिधातः ॥१८॥

त्रिनयनविधिशीघाः पण्मुस्रश्चास्यसङ्घैः स्तवनविषयजाड्याः स्तोतुमीशा न चाणी ।

न खलु निखिलवेदाः स्तोतुमन्येऽपि देवाः स्तवनविषयशक्ताः सन्ति सन्तस्तवैव ॥

कुमतिरहमविज्ञा योपितां काथमा वा क भुवनगतिरीशश्चभुयो गोचरोऽपि ।

विधिहरिहरशेषैः स्तूयमानश्च यस्त्वमतनुमनुजमीशं स्तोतुमिच्छामि तं त्वाम् ॥२०॥

स्तवनविषयमीता पार्वती यस्य पश्चा श्रुतिगणजनयित्री स्तोतुमीशा न पं त्वाम् ।

कलिकलुषनिभग्ना वेदवेदाङ्गशास्त्रध्वषणविषयमूढा स्तोतुमिच्छामि किं त्वाम् ॥२१॥

शयानो रत्नपर्यङ्के रत्नभूषणभूषितः ।

रत्नभूषणभूषाङ्गी राधावक्षसि संस्थितः ॥२२॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः स्मेराननसरोरुहः ।

प्रौद्यत्प्रेमरसाम्भोधौ निमग्नः सततं सुखात् ॥ २३ ॥

मल्लिकामालतीमालाजालैः शोभितशेखरः ।

पारिजातप्रसूनानां गन्धामोदितमानसः ॥ २४ ॥

पुंस्कोकिलकलध्वानैर्घमरधमिसंयुतैः । कुसुमेषु विकारेण पुलकाङ्कितविग्रहः ॥२५॥

मियाप्रदत्ताम्बूलं भुक्तवान् यः सदा मुदा । वेदा भशक्ता यं स्तोतुं जङ्गीभूतायिचक्षणाः

तमनिर्बन्धनीयञ्च किं स्तोमि नागवल्लभा । धन्देऽहं त्वत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसेवितम् ॥

लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गाजाह्ववीवेदमातृभिः । सेवितं सिद्धसङ्घैश्च मुनीन्द्रैर्मनुभिः सदा ॥

निष्कारणायाखिलकारणाय सर्वेभवायापि परात्पराय ।

स्वयं प्रकाशाय पराचराय पराचराणामधिपाय ते नमः ॥ २९ ॥

हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ब्रह्मेश शेषेश प्रजापतीश ।

मुनीश मन्वीश चराचरेश सिद्धीश सिद्धेश गुणेश पाहि ॥ ३० ॥

धर्मेश धर्मोश शुभाशुभेश चेदेश चेदेष्वनिरूपितश्च ।

सर्वेश सर्वात्मक सर्वबन्धो जीवीश जीवेश्वर पाहि मत्प्रभुम् ॥ ३१ ॥

इत्येवं स्तवचनं कृत्वा भक्तिप्रदात्मकन्धरा । विधृत्य चरणाम्भोजं तस्यै नागेशया  
नागपत्नीकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेश्वरः । सर्वपापात् प्रमुक्तस्तु यात्यन्ते धीहरैः  
इहलोके हरैर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्भुवम् । लभते पार्यदो भूत्वा सालोकादिवतुष्वप्यम्  
नारद उवाच ।

नागपत्नीष्वचः श्रुत्वा भगवान् सर्वनन्दनः ।

प्रहृष्टोत्फुल्लनयनः किमुवाच हरिः स्वयम् ॥ ३५ ॥

कथयस्व महाभाग रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ ३६ ॥

सून उवाच ।

नारदस्यःष्वचः श्रुत्वा भगवान् सर्वदर्शनः । उवाच परमाख्यानं मधुवृन्दं पदे पदे ॥ ३१ ॥

नारायण उवाच ।

नागपत्नीष्वचः श्रुत्वा श्रीकृष्णस्ताम्रुषाच ह । पुटाञ्जलियुतां पादे पतितां भयविह्वलाम्

श्रीकृष्ण उवाच

उत्तिष्ठोऽत्तिष्ठ नागेशि परं कृषु मयं स्वयम् । गृहाण कान्तं हे मातर्महाराजन्ममात् ॥

कालिन्दीहृदमुन्मृश्य स्वकीयं मयर्न व्रत ॥ ३९ ॥

भर्त्रा म्यतोऽप्यस्य सार्द्धञ्च गच्छ वत्सं त्वर्मापितम् ।

अथ प्रभृति नागेशि भूता कन्या ख त्वं मम ॥ ४० ॥

त्यन् प्राणाधिकः पयायं जामाता ख न संशयः ।

मन्त्रादप्यभिज्ञेन गच्छस्वन्वदति शुभे ॥ ४१ ॥

हृत्वा च स्तवर्न भक्त्या प्रणमिष्यति मत्पदम् ।

त्यज त्वं गरुडादीति शीघ्रं रमणकं व्रज ।

हृदाश्रिगच्छ घत्से त्वं घटं वृणु यथेप्सितम् ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्णस्य घटः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा । उवाच साधुनेत्रा सा भक्तिप्रदात्मकधरा  
सुरसोवाच ।

घटं दास्यसिचेन्मह्यं घटदेश्वर हे पितः । स्वत्पादाब्जे दृढांभक्तिं निश्चलांदातुमर्हसि ॥  
मग्नमनस्त्वत्पदाम्भोजे भ्रमतु भ्रमरो यथा । तव स्मृतौर्विस्मृतिर्मै कदापि न भविष्यति  
स्वकान्ते मम सौभाग्यं कान्तोऽयं ज्ञानिनां घटः ।

इत्येवं प्रार्थनीयञ्च परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥ ४६ ॥

इत्येवमुक्त्वा सर्पस्त्री प्रतर्ष्यौ पुरतो हरैः । शरत्पार्ष्णवन्द्यास्यं ददर्श श्रीहरेमुखम् ॥  
लोचनाभ्यां पयौ धक्त्रं निमेयरहितं सती । सर्वाङ्गपुलकोद्भिन्ना सान्न्दाधुपरिप्लुता ॥  
सुन्दरं चालकं दृष्ट्वा पुत्रस्नेहं प्रकुर्वती । उवाच पुनरैवेदं भक्त्युदेकपरिप्लुता ॥ ४६ ॥  
न यास्यामि रमणकंतत्र नास्ति प्रयोजनम् । सर्पःकरोतु संसारंकुरु मां निजर्किकरीम्  
न घाञ्छा मम हे कृष्ण सालोक्यादिचतुष्टये ।

त्वत्पदाम्भोजसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ५१ ॥

विना त्वत्पादसेवाञ्च यो घाञ्छति घटान्तरम् ।

भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वाऽसौ घञ्चितः स्वयम् ॥५२ ॥

नागपत्नीवचः श्रुत्वा स्मेराननसरोच्छ्रः । प्रसन्नमानसः श्रीमानोमित्येवमुवाच ह ॥५३  
एतस्मिन्नन्तरे दिव्यः सदन्नसारनिर्मितः । आजगाम रथस्तूर्णमुद्गीतस्तेजसा मुने ॥५४  
पार्ष्दप्रदरैर्पुंक्तो पद्ममालापरिच्छदः । शतवक्रो घायुवेगो मनोयायी मनोहरः ॥५५॥  
अवच्छ्रयथात्तूर्णं श्यामलाः श्यामकिङ्कराः ।

प्रणम्य कृष्णं तां नोत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥ ५६ ॥

इच्छायां विनिर्माय ददौ सर्पाय तेजसा । सच किञ्चिन्न बुबुधे मोहितोविष्णुमायया  
अचक्षत्सर्पमूर्तेः श्रीकृष्णः कृष्णानिधिः । ददौ हस्तञ्च कृपया शीघ्रं कालीपमस्तके ॥

सम्प्राप्य मेतनां सयो वदरां पुरतो हविम् । पुटाञ्जलियुतां साध्रुणाञ्च सुगतां  
 प्रणनाम हरिं सयो करोश्च प्रेमविह्वलः । भगवुद्रेकात्साधुनेत्रां पुलकाङ्गिनविग्रहम् ॥  
 गूष्णीम्भूनाञ्जतां दृष्ट्वा तमुवाच कृपानिधिम् । मयीदृश्यस्य सततं योग्यायोग्येसमः  
 श्रीकृष्ण उवाच ।

घरं गृणु त्वं कालीय यस्ते मनसि घर्षते । त्वं मे प्राणाधिको घत्स सुखं तित्थु मयं  
 तस्याहमनुगृह्णामि योऽतिमको ममांशजः । किञ्चिद्व्यदमनं कृत्वा प्रसादं हि करोम  
 त्ववंशजातान् सर्पांश्च हन्तियो मानपाधमः । प्रसहत्यासमंवापं भवितातम्यनिधि  
 भत्पादपद्मविद्धे यः करोति दण्डताडनम् । टिगुण प्रसहत्याया भविता तस्य किलि  
 लक्ष्मीर्थास्पति तन्नेहाच्छापंश्चा सुदारणम् । वंशायुर्वंशसांद्धानिर्मपितातस्यर्था

धुयं घर्षतं कालसूत्रे यास्यति मन्त्रिरा ॥ ६६ ॥

त्वत्प्रमाणाः कीटसङ्घा दंशिष्यन्ति च सन्ततम् ।

भोगान्ते जन्म लक्ष्या च तन्मृत्युर्धै हि दंशनात् ॥ ६७ ॥

तस्य वंशोद्भवानाञ्च त्वदुवंशाद्घविता भयम् । ये च त्वद्वंशजान् दृष्ट्वा सुपदाङ्कं मदीं  
 प्रणमिष्यन्ति भक्त्याते मुच्यन्तेसर्वपातकात् । गच्छशीघ्रंरमणकृत्यज मीतिषगाणि  
 मत्पदाङ्कंभूर्ध्नि दृष्ट्वा त्वां भक्त्या प्रणमिष्यति । तव त्वद्वंशजानाञ्च गरङ्गानभयं ॥  
 सर्वेषां ज्ञातिसर्पाणां घरोऽद्य भव महारात् । परं किं परमं वत्स घाञ्छितं घय  
 मयं त्यतवा कथय मां त्वदीयं दुःखमञ्जनम् । श्रीकृष्णवचनंश्चुरवाकालीयःकम्पितो  
 पुटाञ्जलियुतो भूत्वा तमुवाच भुजङ्गमः ।

कालीय उवाच ।

घरोऽन्यस्मिन् मम विभो घाञ्छा नास्ति घत्स ॥ ७३ ॥

भक्तिस्मृतिं त्यत्पदाब्जेदेहिजन्मनि जन्मनि । जन्मप्रसङ्गुले घापितिर्यग्योनिषुवा

तद्घोत् सफलं यत्र स्मृतिस्त्वचरणायुजे ।

तन्निष्फलः स्वर्गवासी नास्ति चेत् त्वत्पदस्मृतिः ॥ ७५ ॥

त्वत्पदाध्यानयुक्तस्ययत्तत्स्थानञ्चतत्परम् । क्षणं वाकोटिकलंघापुरवायुःक्षयोऽस्तु वा

यदि त्वत् सेवया याति सफलो निष्फलोऽथवा ।

तेषाञ्चायुर्व्ययो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः ॥ ७७ ॥

न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्त्तिभीतयः । इन्द्रत्वे घामरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे ॥

पाञ्चा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना । सुजीर्णपटखण्डस्य समं नूतनमेव च

पश्यन्ति भक्ताः किञ्चान्यत् सालोक्यादिचतुष्टयम् ।

संप्राप्तस्त्वन्मनुर्ब्रह्मन्ननन्ताद् यावद्वैव हि ॥ ८० ॥

सायत् त्वद्वायनेनैष त्यङ्गर्णोऽहमनुप्रदात् । मां च भक्तमपहं वा विज्ञाय गरुडः स्वयम्

देशाद् दूरञ्च न्यकारं चकार दृढभक्तिमान् । भवता च दृढाभक्तिर्दत्ता मे परदेश्वर ॥८२

स च भक्तश्च भक्तोऽहं न मां त्यक्तुं क्षमोऽधुना ।

त्वत्पादपद्मचिह्नाक्तं दृष्ट्वा श्रीमस्तकं मम ॥ ८३ ॥

सदोपगुणयुक्तं मां सोऽधुना त्यक्तुमर्हति । ममाराध्याश्च नागेन्द्रा न तद्बन्धुव्योऽहमीश्वर

भयं न केभ्यः सर्वत्र तत्रानन्तं गुरुं विना । यं देवेन्द्राश्च देवाश्च मुनयो मनवो नराः ॥

स्वप्ने ध्यानेन पश्यन्ति बभ्रुषोर्गच्छतः स मे ।

भक्तानुरोधात् साकारः कुतस्ते विप्रहो विभो ॥ ८६ ॥

सगुणस्त्वञ्च साकारो निराकारश्च निर्गुणः । स्थेच्छामयः सर्वधामसर्ववीजं सनातनम्

सर्वोपामीश्वरः साक्षी सर्वात्मा सर्वरूपधृक् । ब्रह्मेशशेषधर्मोन्द्रा वेदेवेदाङ्गपारगाः ॥८८

स्तोतुं यमीशं ते जाड्याः सर्पस्तोष्यति तं विभुम् ।

हे नाथ ! फरणासिन्धो ! दीनबन्धो ! क्षमाधमम् ॥८९ ॥

खलस्यभाषाद्भ्रानात् कृष्ण ! त्यङ्गवितो मया ।

नाखलश्चो यथाकाशो न दृश्यान्तो न लंघ्यकः ॥ ९० ॥

न स्पृश्यो हि न चावर्ष्यस्तथा तेजस्यमेव च । इत्येवमुक्त्वा नागेन्द्रःपपात चरणान्पुत्रे

भोमित्युक्त्वा हरिस्तुष्टः सर्वं तस्मै परं ददौ । नागराजकृतं स्तोत्रं प्रातस्तथाप यःपठेत्

तद्दर्शनाश्रितस्त्वैव नागेभ्यो न भयंभवेत् । स नागराध्यां कृत्वीव स्वयं शक्तःसदा भुवि

विश्वीयून्पयोर्भेदो नास्त्येव तस्य भक्षणे । नागप्रस्ते नापपाते प्राणान्ते विश्वमोज्जनात्



स्तोत्रप्रवणमारेण सुख्यो भवति मानवः । मूर्ते कृत्वा स्तोत्रमिदं कण्ठे वा दक्षिणैकरे

विमर्शितं यो भक्तियुक्तो नामेभ्योऽपि न तद्वयम् ।

यत्र गेहे स्तोत्रमिदं मागम्यन्न न निष्ठिति ॥ १६ ॥

पियाप्रियश्रीतीतिश्च न मयेत्तत्र निश्चितम् । इन्द्रोके हरेर्भक्तिं स्मृतिश्च सततं लभेत् ॥

भक्ते च स्वपुत्रं पूत्वा द्वाभ्यश्च लभते ध्रुपम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

नागेन्द्राय परं दद्यात् पुनस्तं जगदीश्वरः ॥ १८ ॥

उवाच मधुरं वाक्यं परिणाममुष्वायहम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

गच्छ त्वञ्च रमणकं यथेन्द्रनगरं परम् ॥ १९ ॥

साह्रं स्वगोष्ठ्या नागेन्द्र यमुनाजलवर्त्मना । श्रुत्यानागो हरेराजं हरोद् प्रेमविह्वलः

कदा द्रक्ष्यामि त्वत्पादपद्मं नाथेत्युवाच ह । प्रणम्यशतकृत्वञ्चस्त्रियागोष्ठ्यामहैरवम्

जगाम जलमार्गेण नागेन्द्रो विरहातुरः । यमुनाहदतोयञ्च बभूवामृतकल्पकम् ॥ १०२ ॥

प्रसन्ना जन्तवः सर्वे बभूवुस्तेन नारद । गत्वा ददर्श भवनं यथेन्द्रनगरं परम् ॥ १०३ ॥

आज्ञया च कृपासिन्धोर्निर्मितं विश्वकर्मणा ।

तत्र तस्थौ च नागेन्द्रः स्त्रिया पुत्रगणैः सह ॥ १०४ ॥

निःशङ्कोहर्षयुक्तश्च हरिभावनतत्परः । इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ १०५ ॥

सुखदं मोक्षदं सारं परं किं श्रोतुमिच्छसि ।

सूत उवाच ।

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नारदो हर्षविह्वलः । ऋषिं पप्रच्छ सन्देहं सर्वसन्देहमञ्जनम् ॥ १०६ ॥

नारद उवाच ।

विहाय कालीयः स्वपूर्वभवनं परम् । जगाम यमुनातीरं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद धक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ १०८ ॥

यच्छ्रुतं धर्मवक्त्राग्ने मलयै सूर्यपर्वणि । कृष्णाख्यानप्रसङ्गेन सुप्रमापञ्चिमे तटे ॥  
 पप्रच्छ धर्मं पुलहः कथितं मुनिसंसदि । इदमाख्यानमाश्चर्य्यमुवाच तं कृपानिधिः ॥  
 तत्र ध्रुतं मयाचिप्र निबोध कथयामि ते । शेषाश्रया नागगणाः प्रतिसंवत्सरं भिया ॥  
 कार्तिकीपूर्णिमायान्तु कुर्वन्ति गरुडार्चनम् । पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्घलिभिर्मुदा ॥  
 पुष्करै च महातीर्थं मुञ्जातो भक्तिसंयुतः । तस्य पूजाञ्च कालीयो न वकारात्यहंकृतः ॥  
 नागपूजोपकरणं पलाङ्गक्षितुमुद्यतः । चक्रुर्निवारणं नागा नीतिमूर्खमदोद्धतम् ॥ ११४ ॥  
 न शक्ता वारणे ते चेत्याचिर्मूतः खगेश्वरः । दृष्ट्वा खगेश्वरं नागा कालीयप्राणरक्षया ॥  
 प्राणशक्तया च युयुधुर्यावत्सूर्य्योदयं मुने । पक्षोन्द्रनेत्रसा सर्वे समुद्रिप्राः पलायिताः ॥  
 अतन्तं शरणं जग्मुः सर्वेयाममयप्रदम् । पलायनपरान् दृष्ट्वा नागांश्च करुणानिधिः ॥  
 तत्र तस्यौ च नि शङ्कः कालीयस्तं ददर्श ह । स्मृत्या हृदिपदाग्नीजं कालीयो युयुधेमुने  
 मुहूर्तञ्च तयोर्मुसं धर्ष्वार्तावदाखणम् । पराजितश्च नागेन्द्रस्तेजसा गरुडस्य च ॥ ११६ ॥  
 भिया पलायनं कृत्या जगाम यमुनाहदम् । न तं सौभरिशापेन खगेन्द्रो गन्तुर्माश्वरः ॥

तत्र तस्यौ भिया नागो जग्मुः पश्चाच्च तद्रणाः ॥ १२० ॥

नारद उवाच ।

कथं तु सौभरेः शापो यभूव गरुडाय धी । कथं न शक्तो गन्तुं तं हृदयमीश्वर्याहनः ॥

धीनारायण उवाच ।

दिष्यं धर्मसदृशञ्च धर्षाणां तत्र सौभरिः । तपस्तप्या महासिद्धो दध्यौकृष्णपदागुजम्  
 समीपे ध्यायमानस्य कृले च यमुनाजले । गणेन साक्षं निःशङ्कः करोति भ्रमणं मुदा ॥  
 पुच्छमुत्फाल्य षट्पदा पणितः परमेरुधया । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य यात्यायाति मुदान्वितः  
 शत्रुलं शुभहातमानं दर्शं दर्शं रगाधिपः । जग्राह षड्युना नृपं मुनीन्द्रस्य समीपतः ॥  
 पण्डितं तं भीतमुपं ददर्शं कोपकथुषा । प्रकोपतो मुनेर्दृष्ट्वा भीतस्तोषे पपात ह ॥  
 तमुवाच मुनीन्द्रश्च पुनरादानुमुद्यतम् । मीनश्च गरुडश्रासात्तस्यौ मुनिसमीपतः ॥

सौभरिपान ।

गच्छ दूरं गच्छ दूरं खगेन्द्र मन्समीपतः । का योग्यता मत्पुरस्ते प्रहीतुं जीवमुन्मथाम्

श्रीकृष्णवाहनंजात्यान्वामानं वदुमन्वरे । एष छिन्वान्कोटिरा. कृष्णः अर्जुनश्च सहकार  
 करोमि भस्मसात्पूर्णं त्वाञ्च भूमद्रुनीत्या । वाहनञ्च एषमोशस्य न वयं त्वं किद्रुगः  
 भयप्रभृति परीन्द्र यथागच्छति मे हृदम् । मदीयशापात्पूर्णञ्च भस्मसात्प्रयिता ध्रुवम् ॥  
 मुनीन्द्रस्य घञः ध्रुव्या प्रवचाल एगेश्वर । स्मारं स्मारं कृष्णपादं तं प्रणम्य जगाम् ॥  
 अथप्रभृति पित्रेन्द्र पतंगेन्द्रस्य सन्ततम् । हृदस्यधुनिमात्रेण कास्यो भवति निश्चितम् ॥  
 इतिहासश्च कथितो यः धृतो धर्मव्यव्रतः । साहस्यं धृतिसुनं प्रहृतं शृणु मङ्गलम् ॥  
 विनाय सुचिरं चाला नोत्सर्था तज्जलाहरिः । चक्रुर्पिपादं मोहाद्य ररुदुर्गमुनादरे ॥

स्ववदो घातनञ्चक्रुः केचिद्बालाः शुचायुलाः ।

केचिन्निपत्य भूमौ च मूर्च्छां प्रापुर्हरिं विना ॥ १३६ ॥

हृदं प्रवेष्टुं केचिच्च विरहेण समुद्यताः । केचिद्गोपालबालाश्च चक्रुश्च तन्निवारणम् ॥  
 कृत्वा विलापं केचिच्च प्राणास्त्वक्तुं समुद्यताः । तेषां केचिज्ज्ञानयन्तो रक्षाञ्चक्रुः प्रयत्नः ॥  
 केचिद्रुचुश्च हाहेति कृष्ण कृष्णेति केचन । केचिद्वक्तुं प्रवृत्तिञ्च प्रयुयुर्नन्दसन्निधिम् ॥

केचित्सम्मौलितास्तत्र शोकमोहमयातुराः ।

इत्युचुः किं करिष्यामः कुतोऽस्माकं गतो हरिः ॥ १४० ॥

हे नन्दसूनो हे कृष्ण प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रिय ।

हे बन्धो दर्शनं देहीत्युचुः प्राणाः प्रयान्ति हि ॥ १४१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे. केचिद्बालका नन्दसन्निधिम् । संप्रापुरतिलोलाश्च खदन्तः शोकविह्वलाः  
 प्रवृत्तिमूचुस्तं शीघ्रं यशोदां मूलतो चलम् । गोपान्गोपालिकाश्चैव रक्तपंकजलोचनाः  
 श्रुत्वा वार्त्ताञ्च ते सर्वेशीघ्रं जग्मुः शुचान्विताः । कलिन्दनन्दिनीतीरं ररुदुर्वालकैर्युताः  
 गत्वासम्मौलिताः सर्वैरुदुः शोकमूर्च्छिताः । हृदं विशन्तीमग्वांतां केचिच्चक्रुर्निवारणम्  
 गोपा गोपालिकाश्चैव जघ्नुरङ्गानि शोकतः । केचिद्विललपुस्तत्र मूर्च्छां प्रापुश्च केचन  
 हृदं विशन्तीं तां राधां चार्यामास काश्चन । मूर्च्छाञ्च प्रापसाशोकान्मृतेष्वेव सरितटे

विलप्यातिभृशं नन्दो मूर्च्छां प्राप पुनः पुनः ।

भूयोऽपि रोदनं कृत्वा भूयो मूर्च्छामवाप ह ॥ १४८ ॥

विलपन्तं भृशं नन्दं यशोदां शोककर्षिताम् ।

गोपांश्च गोपिकाश्चैव राधिकामतिमूर्च्छिताम् ॥ १४६ ॥

रुदतो बालकान् सर्वान् बालिकाश्च सुचान्विताः ।

सर्वांश्च बोधयामास बलश्च ज्ञानिनां धरः ॥ १५० ॥

श्रीबलदेव उवाच ।

गोपा गोपालिका बालाः सर्वशृणुतमद्वचः । हे नन्द ज्ञानिनां श्रेष्ठगर्वाक्यस्मृतिक्लृप्त ॥

जगद्धिभर्तुः शेषस्य संहर्तुः शङ्करस्य च । विधातुः संविधातुश्च भुवि कस्मात्पराजयः

परमाणुः परो व्यूहः स्थूलात् स्थूलः परात्परः ।

विद्यमानोऽप्यविदृश्यः संयोगो योगिनामपि ॥ १५३ ॥

दिशां नास्ति समाहारः स्पृश्योनाकाश एव च ।

अपि सर्वेश्वरो वाच्य इत्युचुः धृतयः स्फुटम् ॥ १५४ ॥

नात्मा दृश्यो नास्त्रलक्ष्यो न यद्यो न हि दृश्यकः ।

नाग्निप्रस्तो न हिस्यध्यापीदमाध्यात्मिका विदुः ॥ १५५ ॥

विग्रहोऽस्यैव कृष्णस्य भक्तध्यानार्थमेव च ।

उयोतिःस्वरूपस्य विमोर्नाच्यन्तमध्यमात्मनः ॥ १५६ ॥

जलप्लुते च प्रह्लाण्डे जलशार्वा जनार्दनः । यथाभियग्रजो ब्रह्मा तन्मेशस्य हृदे विपन्

मशाकध्वेन् शमो प्रसन्नं ब्रह्माण्डमविलंपितः । न तद्यपि तद्देशं तं प्रसन्नं सारं शमोमयेन्

इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकमनुत्तमम् । निगूढं योगिनां सारं मंशयच्छेद्भकारणम्

बालदेवयवः श्रुत्वा गर्वाक्यमनुग्मग्नः । तन्वाज शोकं नन्दश्च यज्ञान्य यज्ञयोपिनः

प्रबोधं मेनिरे सर्वं न यशोदा न राधिका । बन्धुचिच्छेदविषये प्रबोधेन स्थितं मनः ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णमुत्पन्नं जलान्मुने । इदृशुम्नं सुप्रसन्नाय तदव्य यज्ञयोपितः ॥ १६२ ॥

शारत्पापैषाबन्धुस्यं सन्मिने सुमनोहृतम् । अस्निग्धपरमस्निग्धमलुमवन्दनाञ्जनम् ॥

सर्वाभरणसंयुक्तं ज्वलन्तं ब्रह्मनेजसा । मयूतपिच्छनुदश्च यंशोपदनमच्युतम् ॥ १६४ ॥

यशोदा बालकं इहा कृत्वा यशसि स्वंस्मृता । सुसुखं यदनाम्भोजं यज्ञप्रपदनेजसा ॥

कोट्टे वकार नन्दश्च बलश्च रोहिणी मुदा । निमेररहिताः सर्वे ददृगुः धीनुवं हरेः ।  
 प्रेमान्धा बालका सर्वे नमुरालिङ्गनं हरेः । पपुदन्धुदन्धुकोदन्धु मृगन्धुदन्धु गौरिका ।  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सहसा काननान्तरे । दावाप्रियंष्टयामास तैः सर्वैः सहगोकुन्धु ।  
 दृष्ट्वा शीलप्रमाणानिं परितः काननान्तरे । प्रणाशं मंत्रिरे सर्वे मयमापुद्व सपुटे ।  
 श्रीकृष्णानुपुषुःसर्वे सम्पुष्टाञ्जलयो यजाः । बालागोप्यश्चसन्त्रस्तामक्तिनघ्रात्मकध्याः ।

बाला ऊचुः ।

यथा संरक्षितं प्रह्लादं सर्वापनुस्यंष नः कुलम् । तथा रक्षां कुरु पुनर्दायाननंमुद्वृत ।  
 त्वमिष्टदेवतास्माकं त्वमेव कुलदेवता । स्रष्टा पाता च संहर्ता जगताञ्च जगत्यने ।  
 वह्निर्या वरुणो वापि चन्द्रो वा सूर्य एष वा । यमःकुबेरःपवन ईशानाद्याश्च देवताः ।  
 ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः । मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिन्नाप ।  
 ये ये चराचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः । आविर्भावस्तिरोभायः सर्वेषाञ्च तवेच्छया ।  
 अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु । पर्यं त्यां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतम् ।  
 इत्येवमुक्त्वाते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वापदाग्युजम् । दूरीभूतस्तुदावाग्निःश्रीकृष्णामृतदृष्टिः ।  
 दूरीभूते च दावाशो ननृनुस्ते मुदान्विताः । सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः ।  
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातस्तथाय यः पठेत् । वह्नितो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि ।  
 शत्रुप्रस्ते च दावानो विपत्तौ प्राणसंकटे । स्तोत्रमेतत् पठित्वा तु मुच्यतेनात्रसंशयः ।  
 शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत् । इह लोके हरेर्भक्तिमन्तेदास्यं लभेदुधुवन् ।

श्रीनारायण उवाच ।

दावाग्निमोक्षणं कृत्वा तैः सादं शृणु नारद । जगाम श्रीहरिर्गोहं कुबेरमवतोपमम् ।  
 ब्राह्मणेभ्यो धनं नन्दः परिपूर्णददी मुदा । भोजनं कारयामास क्षातिवर्गांश्चवान्यवान् ।  
 नानाविधं मङ्गलञ्च हरेर्नामानुकीर्त्तनम् । वेदांश्च पाठयामास विप्रद्वारा मुदन्वितः ।  
 एवं मुमुद्विरे सर्वे वृन्दारण्ये गृहे गृहे । श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसाः ।  
 इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् । कलिकलिविपकाष्ठानां दहने दहनोपमम् ।  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे  
 श्रीकृष्णजन्मखण्डे कालीयदमनदावाग्निमोक्षणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।

## विंशोऽध्यायः

ब्रह्मणा गोवत्सादिहरणम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः ।

भुक्त्वा पीत्वानुलितश्च वृन्दारण्यं जगाम ह ॥ १ ॥

श्रीङ्गाञ्जकार भगवान् कौतुकेन च तैः सह ।

श्रीङ्गानिमग्नचित्तानां दूरं तद्गु गोकुलं वयो ॥ २ ॥

तस्य प्रभायं विनातुं विधाता जगताम्पतिः ।

जहार गाथ सार्धाञ्च वत्साञ्च बालफानपि ॥ ३ ॥

विनाय तद्भिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः । पुनश्चकार तत्सर्वं योगीन्द्रो योगमायया ॥४॥

जगाम धीहरिर्गोहं चारयित्वा च गोकुलम् । बलेन बालकैः सार्धं श्रीङ्गाकौतुकमानसः

एवं चकार भगवान् सर्वमेकञ्च प्रत्यहम् । यमुनागमनं गोमिथेनेन सह बालकैः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा प्रभायं विनाय लज्जानघातमकण्ठधरः । आजगाम हरैः स्थानं भाण्डोत्तरघटमूलके ॥

ददर्श हृष्टं तत्रैव गोपालगणपेष्टितम् । यथा पार्वणचन्द्रञ्च विभातं भगणैः सह ॥८॥

व्यासिहासनस्थञ्च हसन्तं सस्मितं मुदा । पीतवस्त्रपरीधानं ज्वलन्तं ब्रह्मनेत्रसा ॥९॥

वदन्केयूरघटयरदामञ्जीररञ्जितम् । ररन्कुण्डलयुग्माभ्यां स्वकपोलस्थलोत्तपलम् ॥१०॥

कोटिकन्दर्बलापण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनागुरुफन्नीकुङ्कुमाचितविग्रहम् ॥११॥

पारिजातप्रसूतानां मालाजालैर्विभूषितम् ।

नवीननीरदर्श्यामं प्रोद्भिन्नवयोधनम् ॥ १२ ॥

मालतीमालयसंयुक्तं मयूरपिच्छाच्छूङ्खम् । स्वाङ्गसौन्दर्य्येदीप्तया च कृतभूषणभूषितम् ॥

शरत्पार्वणचन्द्रस्य प्रभामुष्टास्यसुन्दरम् । एकविम्बाधरोष्ठञ्च त्र्यम्बकमुनासिकम् ॥

शरत्प्रध्याह्नपदानां प्रभामोक्षनलोचनम् । मुक्तापङ्क्तिपिनिन्दैकदन्तपरस्मिन्ननोहरम् ॥

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण यक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।

शान्तश्च राधिकाकान्त्नं परिपूर्णतमं परम् ॥ १६ ॥

पर्यभूतं प्रभुं दृष्ट्वा प्रणनामातिविस्मितः । दर्शं दर्शमीश्वरं तं प्रणनाम पुनः पुनः ॥ १७ ॥

यद् दृष्टं हृदयाम्भोजे तद्रूपं घहिरैव च । या मूर्तिः पुरतो दृष्टा सा पश्चात्परितस्करः ॥

तत्र वृन्दावने सर्वं दृष्ट्वा कृष्णसमं मुने । ध्यायं ध्यायञ्च तद्रूपं तत्र तस्यौ जगद्गुरुः ॥

गावो घत्साश्च बालाश्च लता गुन्माश्च वीरुधः । सर्वं वृन्दावनं ब्रह्मा श्यामरूपं दर्शो ह

दृष्ट्वैवं परमाध्ययं पुनर्ध्यानञ्चकार ह । ददर्श त्रिजगद् ब्रह्मा नान्यत् कृष्णांघ्रिता मुने

क च वृक्षः क वा शैलः क्व मही क्व च सागराः ।

क्व देवाः क्व च गन्धर्वा मुनीन्द्राः क्व च मानवाः ॥ २२ ॥

क्व चान्मा क्व जगतीजं क्व स्यर्गाः गाव पथ च ।

सर्वञ्च स्यदृशा ब्रह्मा ददर्श मापया हरेः ॥ २३ ॥

क्व कृष्णो जगतां नाथः क्व पा मायाविभूतयः ।

सर्वं कृष्णमयं दृष्ट्वा किञ्चिन्निर्यक्तुमशमः ॥ २४ ॥

किं स्मोमि किं करोमीति मनसैवं प्रगृह्य च ।

तत्र स्थित्वा जगद्धाता जगं कर्तुं समुद्यतः ॥ २५ ॥

सुखं योगासनं कृत्वा समूच समुदास्रक्तिः । पुलकाद्भित्तसर्वाङ्गः साधुनेत्रोऽतिदीनवत्

इडां सुपुत्रां मन्वाञ्च विद्वलां मन्त्रिणांशुगाम् । नाडीपस्कञ्च योगेन निबन्धयप्रवन्ध

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमकूटतम् । विगुहं परमाशासनं पश्यकञ्च निबन्धय च ॥

सदृशं ब्रह्मविद्या ख नं पश्यकं ब्रह्मादिति । ब्रह्माग्धं सामान्यं चायुपूर्णञ्चकार ॥

निबन्धय चायुं मन्वान्तामानीय हृदयाम्बुजम् ।

नं चायुं सम्यक्स्थित्वा ख योजयामास मन्वया ॥ ३० ॥

पर्यं कृत्वा तु निबन्धो यो दभो हरिणा पुनः । जहाय परमं मन्त्रं तस्यैवैव वगाशाम्

सुदर्शनञ्च जगं कृत्वा श्यावं श्यावं पराम्बुजम् । ददर्श हृदयाम्भोजे सर्वनेत्रोपर्यं मुने ॥

सुमनोहरम् । त्रिभुजं मूर्त्तौहर्त्नं मूर्त्तिं पीनशासमा ॥ ३१ ॥

धुतिमूलस्थलन्यस्तउचलन्मकरकुण्डलम् । ईषद्भास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ३४ ॥  
 यद् दृष्टं ब्रह्मरन्ध्रे च हृदि तद्दुवहिरैव च । दृष्ट्या च परमाश्चर्यं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥  
 ।त् स्तोत्रञ्च पुरा दत्तं हरिणैकार्णथि मृने । तमीशं तेन विधिना भक्तिनम्रात्मकन्धरः  
 ब्रह्मोवाच ।

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ।

सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम् ॥ ३७ ॥

नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरधिग्रहम् । स्थितं जगत्पु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् ॥  
 स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्ग्रापि जगत्परम् । सर्वस्वरूपं सर्वेषां बीजरूपं सनातनम्  
 सर्वाधारं सर्वधरं सर्वशक्तिसमन्वितम् । सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ४० ॥  
 सर्वमन्त्रस्वरूपञ्च सर्वसम्पत्करं धरम् । शक्तियुक्तमपुक्तञ्च स्तोमिस्वेच्छामयं विभुम् ॥  
 शक्तीशं शक्तिबीजञ्च शक्तिरूपधरं धरम् । संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम् ॥

कृपालुं कर्णभारञ्च नमामि भक्तवत्सलम् ।

आत्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च ॥ ४३ ॥

सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तोमि स्वेच्छास्वरूपिणम् ।

सर्वेन्द्रियाधिदेशं तमिन्द्रियालयमेव च ॥ ४४ ॥

सर्वेन्द्रियस्वरूपञ्च धिराङ्गूरुं नमाम्यहम् । वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम् ॥ ४५ ॥

सर्वमन्त्रस्वरूपञ्च नमामि परमेश्वरम् । सारात्सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपिणम् ॥ ४६ ॥

स्वतन्त्रमस्वतन्त्रञ्च यशोदानन्दनं भजे । शान्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम् ॥ ४७ ॥

ध्यानासाध्यं विद्यमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे ।

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥ ४८ ॥

गोपीभिः सेव्यमानञ्च तं राधेशं नमाम्यहम् । सतां सदैव सन्तन्तमसन्तमसतामपि ॥

योगीशं योगसाध्यञ्च नमामि शिवसेवितम् । मन्त्रबीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम्

मन्त्रसिद्धिस्वरूपं तं नमामि च परात्परम् । सुखं दुःखञ्च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च ॥

पुण्यप्रदञ्च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम् । रथैत्रं स्तथनं हृत्वा दत्त्वा गाथ सवालकान



निपत्य दण्डघट्ट भूमौ ररोद प्रणनाम च । दर्शो च भुङ्क्मीत्य विघाता जगतां मुने ॥

ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ।

इह लोके सुखं भुक्त्या यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ५४ ॥

लभते दास्यमतुलं स्थानमीश्वरसन्निधौ । लब्ध्वा च कृष्णसान्निध्यं पार्यद्भवरोभवत्

श्रीनारायण उवाच ।

गते जगत्कारणे च ब्रह्मलोके च ब्रह्मणि । श्रीकृष्णो बालकैः साधंजगामस्वालोकं विभुः

गाधो घत्साश्च बालाश्च जग्मुर्वर्षान्तरे गृहम् । श्रीकृष्णमायया सर्वे मेतिरे ते दिनात्तस्मै

गोपा गोपालिकाः किञ्चित् तर्कितुं न क्षमास्तदा ।

योगिनः कृत्रिमं सर्वं किं नूलं वा पुरातनम् ॥ ५८ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णवरितं शुभम् । सुखदं मोक्षदं पुण्यं सर्वकालसुखावहम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

गोघत्सबालकहरणप्रस्ताधो नाम विंशोऽध्यायः ।

## एकविंशोऽध्यायः

इन्द्रयागवर्षानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एषः शानन्दयुक्तश्च नन्दगोपो यजे मुने । दुग्दुग्निं घादयामास शक्रयागस्तोयमः ॥ १ ॥

दधि क्षीरं घृतं तक्रं नपनीतं गुडं मधु । एतान्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्तिथति श्रुत्वा ॥

ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपा गोप्यश्च बालकाः ।

बालिकाश्च द्विजा भूयो वैश्याः शूद्राश्च भक्तितः ॥ ३ ॥

इत्येवं धापयित्वा च स्वयमेव मुदान्वितः । यद्विमारोपयामास तस्यस्थाने सुविस्मृतेः ।

दर्शो तत्र क्षीमपन्त्रं मालाजालं मनोहरम् । चन्दनागुरुषस्तूरीकुङ्कुमद्रुपमेघ च ॥ ५ ॥

स्नातः कृताह्निको भक्त्या धृत्या धीते च वाससी ।

उपास स्वर्णपीठे च प्रक्षालितपदाम्बुजः ॥ ६ ॥

नानाप्रकारपात्रैश्च ब्राह्मणैश्च पुरोहितैः । गोपालैर्गोपिकाभिश्च बालामिः सह बालकैः  
एतस्मिन्नन्तरे तत्राजगमुर्नगरवासिनः । महासम्भृतसम्भारा नानोपायनसंयुताः ॥ ८ ॥

आजगमुर्मनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा । शान्ताः शिष्यगणैः सार्द्धं वेदवेदाङ्गपारगाः  
।श्च गालयश्चैव शाकल्यःशाकटायनः । गौतमःकल्पःकण्वो घात्स्यःकात्यायनस्तथा  
।भरिचाप्रदेवश्च याज्ञवल्क्यश्च पाणिनिः । ऋष्यशृङ्गो गौरमुखो भरद्वाजश्च घामनः ॥  
।पण्ड्येपायनः शृङ्गी सुमन्तुर्जैमिनिः कचः । पराशरश्च मैत्रेयो वैशम्पायन एव च ॥

ब्राह्मणाश्च कतिविधा मिश्रुका घन्दिनस्तथा ।

भूषा वैश्याश्च शूद्राश्च समाजगमुर्महोत्सवे ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा मुनीन्द्रान् नन्दश्च ब्राह्मणान् भूमिपांस्तथा ।

स्वर्णपीठात् समुत्तस्थी व्रजाश्चोत्तस्थुरेव च ॥ १४ ॥

प्रणम्य घासयामास मुनीन्द्रान् विप्रभूमिपान् ।

तेषामनुमतिं प्राप्य तत्रोपास पुनर्मुदा ॥ १५ ॥

एकञ्च यष्टिनिकटे कर्तुमाज्ञाञ्चकार ह । पाकप्राज्ञं ब्राह्मणानां शतमानीय सादरम् ॥ १६ ॥

त्रय रत्नप्रदीपाश्च जञ्जलुः परितस्तथा । अर्घ्यभूतञ्च धूपेन स्थानं तत् सुरभीकृतम् ॥

नानाविधानि पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च । नैवेद्यञ्च बहुविधमपूर्वं सुमनोहरम्

तिललड्डुकपूर्णञ्च मण्डकानां सहस्रकम् । स्वस्तिकैः परिपूर्णञ्च यष्टिस्थानञ्च नारद ॥

कलशानां सहस्रञ्च पूर्णं शर्करया मुने ॥ यद्यगोधूमचूर्णानां लड्डुकैर्मधुरैर्वरैः ॥ २० ॥

घृतपक्ववैविप्रकृतैः पूर्णानि कलशानि च । बुक्षपक्वानि रम्याणि चारुममाफलानि च

फलानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । क्षीराणां कुम्भलक्षाणिदध्यां तावन्तिनारद

मधूनां कुम्भशतकं सर्पिः कुम्भसहस्रकम् । कलशानां त्रिलक्षाणि तत्रपूर्णानि निश्चितम्

घटानां पञ्चलक्षाणि शुद्धपूर्णानि निश्चितम् ।

विष्णुतैलेन पूर्णञ्च कलशानां सहस्रकम् ॥ २४ ॥

पुंगेन्द्राऽऽ वदुषिधा भोगार्तद्रव्यपादपाः । मानाविधानि पात्राणि सौवर्णराजतानि च

स्थर्णपीठानि च प्रत्यन्ताजगुर्गुणिसन्निधिम् ।

धरुप्राणि वरणादांणि शारुणि मूरणानि च ॥ २६ ॥

नानाविधानि पाद्यानि चारुणि मयुराणि च ।

पादपाः स्वरपत्राणि पादयामासुहृत्सव्ये ॥ २७ ॥

छागलानां सदद्याणि महिराणां शतानि च । मेघकाणाञ्च लक्ष्मणि ह्यानयामासतवरे

शतान्येव गण्डकानामाजगुर्गुणिसन्निधिम् ।

प्रोक्षितानि च सर्पाणि रक्षितानि च रक्षकैः ॥ २८ ॥

घालकानां थालिकानां वृक्षाणां वृक्षयोपिताम् ।

युधानां युपतीनाञ्च संख्यां कर्तुञ्च पः क्षमः ॥ ३० ॥

गायकानाञ्च सङ्कीर्तनर्तकानाञ्च नर्तनम् । श्रुत्या दृष्ट्या जनाः सर्वे मुमुक्षुः सुमहोत्सवे

रम्मोर्वशी मेनका च घृताची मौहिनो रती । प्रभावती मातुमती विप्रचित्तिस्तिलोरुना

चन्द्रप्रभा सुप्रभा च रत्नमाला मद्राडसा । रेणुका रमणी प्रहलन्नेता बाजगुहृत्सव्ये ॥

तासां नृत्येनगीतेन स्तनास्यधोनिदर्शनात् । रूपेणवक्रदृष्ट्याच मूर्च्छां प्रापुष्मानका

पतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम् । गोपालवालकैः सार्धं वलेन वलशालिना

दृष्ट्वा तञ्च जनाः सर्वे सम्प्राप्ता हर्षविह्वलाः । उत्तस्थुराराट्टीताञ्च पुलकाङ्कितविभ्रवाः

प्रीडास्थानात् समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ।

चिनोद्रमुएलीविणुष्टङ्गशब्दसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

सद्वत्नसारभूषामिर्मूर्पितं कीस्तुभेन च । चन्दनागुरुपङ्केन चर्चितं श्यामविग्रहम् ॥ ३८ ॥

शरन्मध्याह्नपञ्चास्यं पश्यन्तं रत्नदर्पणे । चारुचन्दनचन्द्रेण कस्तूरीचिन्दुना सह ॥ ३९ ॥

शशाङ्केनयथाकाशंभालमध्यविराजितम् । मालतीमालयाश्यामकण्ठवक्षस्थलोज्ज्वलम्

वक्रपङ्क्तया यथाकाशंशारदीयं सुनिर्मलम् । चारुणापीतवस्त्रेणशोभितं श्यामविग्रहम्

विभ्रान्तं विद्युत्ता शश्वन्नवीनं नीरदं यथा ।

कुन्दप्रसूनैर्गुञ्जामिर्वक्षचक्रिमचूडकम् ॥ ४२ ॥

धनुषा भाति विभान्तं भगणैर्नमः । रत्नकुण्डलदीप्त्याचस्मितवक्त्रं सुशोभिता  
शरत्रफुल्लपद्मञ्च सुमणेः किरणैर्यथा ॥ ४३ ॥

त्रियवैश्याश्च मुनयो बह्वधा मुने । प्रणम्य वासयामासु रत्नसिंहासने शुभे ॥ ४४ ॥  
रत्नपांटे स तेषां मध्ये जगत्पतिः । यथा यमो शरश्चन्द्रो ज्योतिषामन्तरे च रे  
धृत्या तमुच्युस्ते सर्वे जगतामीश्वरं परम् ॥ ४५ ॥

अमयं गुणातीतं ज्योतीरूपं सनातनम् । दृष्ट्वा महोत्सवं शीघ्रमुवाच पितरं हरि  
सर्वेषां दुर्लभां नीतिं नीतिशास्त्रपिशारदः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

बह्वचरो जेन्द्र किं करोषीह सुमत । आराध्यः कश्चका पूजार्किं फलं पूजनेभवे  
फलेन साधनं किं वा कः साध्यः साधनेन च ।

देवे दृष्टे भवेत् किं वा पूजायाः प्रतिबन्धके ॥ ४८ ॥

इः किं ददाति फलमत्र परत्र किम् । काचिद्ददात्यत्र फलं परत्रे नेह काचन  
नोभयत्रापि चोभयत्रापि काचन । अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरण्डिका  
ना वा ते किमु वा पुराणमात् । दृष्टो देवस्तवया कस्मिन्नपूजेयं चानुसारिणं  
साक्षात् ज्ञादति देवस्ते वा साक्षात् किं न ज्ञादति ।

साक्षाद् भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं तदर्वनम् ॥ ५२ ॥

सादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः । ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः  
देवपूजायां यो नियुक्तो द्विजार्चने । पूजिता ब्राह्मणार्चने पूजिताः सर्वदेवता  
या नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति । गर्भमाभूतञ्च नैवेद्यं पूजनं निष्पन्नं भवेत्  
वनैवेद्यं क्षतात् ध्रुवमनन्तकम् । तुष्टो देवो वरं द्रवा प्रयाति च स्वमन्दिरा  
द्रवा देवाय नैवेद्यं मूढो भुङ्क्ते स्वयं यदि ।

क्ष्मापहारी देवस्यं भुजवा च नरकं मजेत् ॥ ५७ ॥

भोक्तव्यं नैवेद्यञ्च पिता हरैः । प्रशस्तं सर्वदेवेषु विष्णुनैवेद्यमोजनम् ॥ ५८ ॥  
प्र जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । सर्वेषाञ्च ब्रह्ममिदं ब्राह्मणाणां विदोषत

वृषेन्द्राश्च बहुविधा भोगार्हद्रव्यघाहकाः । नानाविधानि पात्राणि सौवर्णराजलानि च

स्वर्णपीठानि च ब्रह्मन्नाजगमुर्यष्टिसन्निधिम् ।

घस्त्राणि घरणादौणि चारुणि भूषणानि च ॥ २६ ॥

नानाविधानि घाद्यानि चारुणि मधुराणि च ।

घादकाः स्वरपत्राणि घादयामासुस्तस्यै ॥ २७ ॥

छागलानां सहस्राणि महिषाणां शतानि च । मेघकाणाञ्च लक्षाणि ह्यानयामासतां

शतान्येव गण्डकानामाजगमुर्यष्टिसन्निधिम् ।

प्रोक्षितानि च सर्षाणि रक्षितानि च रक्षकैः ॥ २८ ॥

वालकानां वालिकानां वृक्षाणां वृक्षयोपिताम् ।

युधानां युधतीनाञ्च संख्यां कर्तुञ्च कः क्षमः ॥ २९ ॥

गायकानाञ्च सङ्गीतं नर्त्तकानाञ्च नर्त्तनम् । श्रुत्वा दृष्ट्वा जनाः सर्वे मुमुक्षुः सुखीनां

रम्भोर्षशी मेनका च पुताची भो हिनो रती । प्रभावती भानुमती विप्रवित्तिसिताक

चन्द्रप्रभा सुप्रभा च रत्नमाला मदालसा । रेणुका रमणी ब्रह्मन्नेता भाजगमुत्तमे ।

तासां नृत्येनर्गातेन स्तनास्यधोजिदर्शनात् । रूपेणवक्रदृष्ट्याव मूर्च्छां प्रापुधन

एतन्मिन्नन्तरे शोभमाजगाम हरिः स्वयम् । गोपालवालकैः सार्धं बलेन बलप्रानि

दृष्ट्वा तश्च जनाः सर्वे सम्भ्रान्ता हर्षविह्वलाः । उत्तस्थुरारद्वीताश्च पुलकाहितनि

मीडास्थानात् समायातं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ।

पिनोदमुर्लविशुष्टदृशस्त्वसमन्वितम् ॥ ३० ॥

शस्त्रसारभृगमिमं पितं कौस्तुभेन च । चन्द्रनागुरपङ्केन चर्चितं श्यामविग्रह

शरगमध्याह्नपन्नाम्यं पश्यन् रत्नदर्पणे । चारुचन्द्र

शशाङ्केनयथाकारांशालमध्यविराजितम् ।

धकपङ्क्तया यथाकारांशारदीयं सुनिर्मलम् ।

विमानं पिपुता शयन्नर्षानं नीरदं

बुन्दप्रगुनेगुं शामिषं डयक्रिमचूडकम्

यथेन्द्रधनुषा भाति विमान्तं भगणैर्नमः । रत्नकुण्डलदीप्त्याचस्मितवक्त्रं सुशीमितम्  
शस्त्रपुङ्खपद्मश्च घुमणेः किरणैर्यथा ॥ ४३ ॥

विप्रक्षत्रियवैश्याश्च मुनयो बह्वृचा मुने । प्रणम्य घासयामासु रत्नसिंहासने शुभे ॥ ४४ ॥  
उचास रत्नपीठे स तेषां मध्ये जगत्पतिः । यथा यमो शाक्यन्द्रो ज्योतिषामन्तरे च खे  
ध्रुत्वा तमुच्युस्ते सर्वे जगतामीश्वरं परम् ॥ ४५ ॥

स्वेच्छामयं गुणार्तितं ज्योतीरूपं सनातनम् । दृष्ट्वा महोत्सवं शीघ्रमुवाच पितरं हृदिः  
सर्वेषां दुर्लभां नीति नीतिशास्त्रविशारदः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भो भो बह्वराजेन्द्र किं करोषीह सुमत । आराध्यः कश्चका पूजाकिं फलं पूजनेभवेत्  
फलेन साधनं किं वा कः साध्यः साधनेन च ।

देवे श्रे भवेत् किं वा पूजायाः प्रतिबन्धके ॥ ४८ ॥

तुष्टो देवः किं ददाति फलमत्र परत्र किम् । काचिद्ददात्यत्र फलं परत्रे नेह काचन ॥

काचिद्य नोभयत्रापि घोभयत्रापि काचन । अवेदविहिता पूजा सर्वद्वानिकरुण्डिका ॥

पूजेयमभुता वा ते किमु वा पुरयत्रभात् । दृष्टो देवस्त्वया कस्मिन्पूजेयं चानुसारिणी  
साक्षात् खादति देवस्ते वा साक्षात् किं न खादति ।

साक्षाद् भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं तद्वर्चनम् ॥ ५२ ॥

साक्षात् खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः । ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ॥

किं तस्य देवपूजायां यो नियुक्तो द्विजार्चने । पूजिता ब्राह्मणायैव पूजिताः सर्वदेवताः

देवाय द्रुवा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति । भस्मीभूतञ्च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत् ॥

विप्राय देवनेवेद्यं दानान् भुवमनन्तकम् । तुष्टो देवो परं द्रुवा प्रयाति स स्वमन्दिरम्

द्रुवा देवाय नैवेद्यं भूदो भुङ्क्ते स्वयं यदि ।

—

न दत्त्वा घस्तु देवायदर्शविप्राय वेत्सुगुणीः । गुणवा विप्रमुभेदेयान्पुत्राः स्नानं प्रयान्ति  
ताम्यात् सत्यं प्रयत्नेन विप्राणामर्गनं पुरः । प्रसाम्पान्द्राणांमिह लोके परत्र न ॥१॥

जपस्तपश्च पूजा वा यद्गदानं महोररायम् ।

सर्वेषां कर्मणां सारं विप्रनुष्ठिश्च दक्षिणा ॥ ६२ ॥

प्रादणानां शरीरेषु तिष्ठन्ति सर्वदेवताः । पादेषु सर्वतीर्थानि पुण्यानि पदभूम्नि ।  
पादोदके च विप्राणां तीर्थतोयानि सन्ति च । तन्स्पर्शान् सर्वतीर्थेषु स्नानजन्यजन्यजन्ये  
नश्यन्ति भक्षणाद्भोगा भक्तिमात्रेण घट्टय । सप्रजन्मरतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः  
पापं पञ्चविधं वृत्त्यायो विप्रं प्रणमेद्दु द्विजः । स स्नानः सर्वतीर्थेषु सर्वपापान् प्रमुच्यते  
प्राह्मणस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी । दर्शनान्मुच्यते पापादिति वेदे निरूपितम्

अप्राज्ञो वाथ प्राज्ञो वा ब्राह्मणो विष्णुविग्रहः ।

प्रियाः प्राणाधिका विष्णोर्वै विप्रा हरिसेविनः ॥ ६८ ॥

द्विजानां हरिभक्तानां प्रभावो दुर्लभः श्रुतो । येषां पादाब्जरजसा सद्यः पूता घमुच्यते  
तेषाञ्च पादचिह्नं यत्तीर्थं तन् परिकीर्तितम् । तेषाञ्च स्पर्शमात्रेण तीर्थपापं प्रणश्यति  
आलिङ्गनात्सदालापात्तेषामुच्छिष्टमोजनात् । दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव सर्वपापात्प्रमुच्यते  
भ्रमणे सर्वतीर्थानां यत्पुण्यं स्नानतो भवेत् । हरिदासस्य विप्रस्यतत् पुण्यं दर्शनाद्गम्य  
ये विप्रा हरये दत्त्वा नित्यमन्तश्च भुञ्जते । उच्छिष्टमोजनात्तेषां हरिदास्यं लभेत्ततः ।

न दत्त्वा हरये भक्त्या भुञ्जते चेद्गुणमादपि ।

पुरीपसदृशं घस्तु जलं मूत्रसमं भवेत् ॥ ७४ ॥

शूद्रश्चेद्धरिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः । आमाम्नं हरये दत्त्वा पाकं वृत्त्वा च सादति  
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शालग्रामशिलाचर्चने । अधिकारो न शूद्राणां हरिप्यर्चने तथा ॥७५॥  
द्रव्याण्येतानि गोपेन्द्रविप्रेभ्यश्चेन्नदास्यति । भस्मीभूतानिसर्वाणि भविष्यन्ति न संशयः  
अन्नञ्च सर्वजीवेभ्यः पुण्यार्थं दातुमर्हति । दत्त्वा विशिष्टजीवेभ्यो विशिष्टं फलमाप्नुयान्

अतो दत्त्वा मानुषेभ्यो लभतेऽष्टगुणं फलम् ।

शूद्राणां द्विगुणं पुण्यं वैश्येभ्योऽन्नं प्रदाय च ॥ ७६ ॥

दस्वान्तं क्षत्रियेभ्योऽपि वैश्यानां द्विगुणं भवेत् । क्षत्रियाणां शतगुणं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदाय च  
 विप्राणाञ्च शतगुणं शास्त्रज्ञे ब्राह्मणेफलम् । शास्त्रज्ञानां शतगुणं भक्तेविप्रे लभेद्बुधुवम्  
 सवान्महर्षये दस्वामुद्धक्तेभक्त्या च सादरम् । विष्णवे विप्रभक्ताय दस्वाशतुक्षयत्फलम्  
 तन् फलं लभते नूनं भक्तब्राह्मणभोजने । भक्ते तुष्टे हरिस्तुष्टो हरी तुष्टेव देयताः ॥ ८३ ॥

भवन्ति सिद्धाः शाखाश्च यथा मूलनिपेचनात् ।

द्रव्याण्येतानि देवाय यथेकस्मै प्रयच्छति ॥ ८४ ॥

सर्वे देवाश्च एषाश्चेद्देवैकः किं करिष्यति । अथ चार्द्धञ्च घस्त्नां देहि गोवर्धनाय च ॥  
 ना चर्षयति नित्यं यस्तेन गोवर्धनः स्मृतः । गोवर्धनसमस्तातपुण्यवाश्च मर्द्दाले ॥

नित्यं ददाति गोभ्यो यो नवीनानि तृणानि च ।

तीर्थस्नानेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं विप्रभोजने ॥ ८५ ॥

सर्वमतोपवासेषु सर्वेष्वेव सपःसु च । यत् पुण्यञ्च महादाने यत् पुण्यं हरिसेवने ॥ ८६ ॥  
 भुवः पर्यटने पशु सर्वेषां च येषु यत् पुण्यं सर्वेष्वप्येव दीक्षायाम् लभेन्नरः ॥

तन् पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दस्वा तृणानि च ॥ ८६ ॥

भुक्तवन्ती तृणं यश्च गां धारयति फामतः । ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रायश्चित्ताद्दिशुष्यति ॥  
 त्र्ये देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदैषु च । तद्गुणेषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः  
 गोपदानमृदा यो हि तिलकं कुर्वन् नरः । तीर्थस्नातो भवेत्सद्यो जपन्तस्य पदे पदे  
 गायस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिबोद्धितम् ।

प्राणांस्त्वत्तया नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद्बुधुवम् ॥ ८७ ॥

गणानां गवामङ्गे यो हन्ति मानवाधमः । ब्रह्महत्यासमं पार्यं भवेत्तस्य न संशयः ॥  
 नारायणांशान् विप्रोश्च गाश्च ये हन्ति मानवाः ।

कालरात्रश्च ते यान्ति यावच्छुद्धिदाकरौ ॥ ८८ ॥

येपमुनया धीहृणो विरराम च माद । मानन्दपुको नन्दश्च तमुयान् स्मिदाननः ॥  
 मन्द उवाच ।

यां परीयं पूजेति महेन्द्रस्य महाप्रमनः । नृष्टिसाधनीसाध्यं सर्वशाम्यमनोहरम् ॥



शस्यानि प्राणिनां प्राणाः शस्याञ्जीवन्ति जीविनः ।

पूजयन्ति व्रजस्थाश्च महेन्द्रं पुरुषकमात् ॥ ६८ ॥

महोत्सधो घत्सराग्नौ निर्विघ्न्याय शिवाय च । इत्येवं घत्नं श्रुत्वा यत्नेन सह मायक  
उच्चैर्जहास स पुनरुवाच पितरं मुदा ॥ ६९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

बहो श्रुतं विचित्रं ते घत्नं परमाद्भुतम् । उपहास्यं लोकशास्त्रं वेदेष्वेव विगर्हितम् ।  
निरूपणं नास्ति कुत्र शकाद् वृष्टिः प्रजायते । अपूर्वं नीतिवचनं श्रुतमद्य मुलात्सव  
शृणु नीतिं श्रुतिमतां हे तात नानयं वदे । घत्नं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः ।  
प्रशंते कुरुष्व मन्त्राश्च विविधानपि संसदि । द्रुघन्तु परमार्थञ्च किमिन्द्राद् वृष्टिरेव च

सूर्यांदि जायते तोयं तोयात् शस्यानि शालिनः ।

तेभ्योऽन्नानि फलान्येव तेभ्यो जीवन्ति जीविनः ॥ १०४ ॥

सूर्यप्रस्तश्च नीरञ्च काले तस्मात्समुद्भवः । सूर्यो मेघादयः सर्वे विधाप्राप्ते निरूपित  
यत्राद्ये यो जलधरो गजेभ्यसागरो मतः । शस्याधिपोनृपो मन्त्रीविधाप्राप्तेनिरूपित

जलादकानां शस्यानां सृणानाञ्च निरूपितम् ।

अप्येऽप्येस्त्वयैव तन् सयं कल्पे कल्पे युगे युगे ॥ १०७ ॥

हर्षो समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम् । दद्याद् घनाय तद् दद्याद्घातेन प्रेरितोपन ।

स्थाने स्थाने पृथिव्याञ्च काले काले यथोचितम् ।

ईदोच्छ्रयाविर्मृतञ्च न भवेत् प्रतिघ्न्यकम् ॥ १०९ ॥

भूतं भव्यं भविष्यच्च भवन् श्रुद्वा मध्यमम् । धारा निरूपितं कर्म वेन तान निवार्ये  
जगत्परावरं सयं ह्यं तेनेऽथगमया । भारी विजमितं मह्यं यथाप्रापि इति श्रुत्वा ।

अभ्यासात् स स्वमापो हि स्वमापारकमं एव च ।

जायते कर्मणाम्मोहो जीविनां शुभदू स्वयोः ॥ ११२ ॥

वाप्राप्यममरभोगशोकमदाति च । समुत्पत्तिपरिप्राया कविता वा दशोऽप्यथ  
पुण्यञ्च स्वर्गवासश्च पापं नरकसंनिहितः । मुक्तिर्मुक्तिर्द्वैतार्थं कर्मलाघरते कल्प

सर्वेषां जनको हीशश्चाभ्यासः शीलकर्मणाम् ।

धातुश्च फलदाता च सर्वं तस्येच्छया भवेत् ॥ ११५ ॥

चिनिर्मितो विराटेन तत्त्वानि प्रकृतिर्जगत् । कूर्मश्च शैवो धरणीं चाग्रस्तम एव च  
यस्याग्रया मरुत् कूर्मं धत्तेशेयं विमर्त्तिसः । शैवो घतुन्धरां मूर्त्नांसाच सर्वञ्चराचरम्  
यस्याग्रया सदा पाति जगन्प्राणो जगन्प्रये । तपतिन्नमणं कृत्वा भूगोलं सुप्रभाकरः  
ददत्यग्निः सञ्चरते मृन्मयुश्च सर्वजन्तुषु । विमर्त्ति शक्तिः काले पुष्पाणि च फलानि च  
स्वे स्वे स्थाने समुद्राश्च तूर्णं मज्जन्त्यधोऽधुना ।

तमीशं भज भक्त्या च शत्रुः किं कर्तुमीश्वरः ॥ १२० ॥

ब्रह्माण्डञ्च कतिविधमाचिर्मृतं तिरोहितम् । विधयश्च कतिविधा यस्य भूमङ्गलीलया  
मृत्योर्मृत्युः कालकालो विधातुर्विधिरेव सः । भज तं शरणं तातसतेरक्षां करिष्यति  
अहोऽष्टाविंशदिन्द्राणां पतने यदहर्निशम् । विधातुरेव जगतामष्टोत्तरशताधिकः ॥  
निमेषायस्य पतनं निर्गुणस्यात्मनः प्रभोः । एवंभूते तिष्ठतीशे शकपूजा विङ्मयनम् ॥  
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । प्रशशंसुश्च मुनयो भगवन्तं समासदः ॥  
नन्दः सपुत्रको हृष्टः सभायां साधुलोचनः । आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः  
श्रीकृष्णाज्ञां समाज्ञाय चकार स्वस्तिवाचनम् ।

क्रमेण धरणं तत्र सर्वेषाञ्च चकार ह ॥ १२७ ॥

सर्वतस्य मुनीन्द्राणां चकार पूजनं मुदा । बुधानां ब्राह्मणानाञ्च गवां घह्नेश्च सादरम्  
त्र पूजासमाप्तौ च कर्त्तौ च सुमहोत्सवे । नानाप्रकारपाद्यानां यभूव शब्द उल्बणः ॥  
अथशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो यभूव ह । वेदमङ्गलकाण्डञ्च पपाठ मुनिपुङ्गवः ॥ १३० ॥

पन्दिनां प्रवरो डिण्डी कंसस्य सचिवः प्रियः ।

उच्यैः पपाठ पुरतो मङ्गलं मङ्गलाष्टकम् ॥ १३१ ॥

कृष्णः शीलान्तिकं गत्वा भिन्नां मूर्त्तिं विधाय च ।

घस्तु खादामि शैलोऽस्मि घरं वृण्वित्युवाच ह ॥ १३२ ॥

वाच नन्दं श्रीकृष्णः पश्य शीलं पितः पुरः । घरं प्रार्थय भद्रं ते भविता चेत्तदा -

हरेर्दाम्यं हरेर्भक्तिं परं वसे स घण्टयः । द्रष्टव्यं मुनया परं दत्त्वा सोऽन्तर्धानम् ।

मुनीन्द्रान् प्राप्स्यन्तीष्वेव भोजयिष्या न गोपयः ।

वन्दिष्यंतीं प्राप्स्यन्त्येव मुनिभ्यश्च घनं दद्यात् ॥ १३५ ॥

मुनिभ्यो प्राप्स्यन्त्येवोऽपि दद्यात् नन्दो मुदान्घृतः ।

रामहर्षो पुरस्त्वृत्य सगणः स्वालयं यथौ ॥ १३६ ॥

रौप्यं धम्बं सुवर्णञ्च परमर्ष्यं मणिं तथा । भक्ष्यद्रव्यं यद्दुषिद्यं वन्दिने डिङ्गि

स्तुत्या नत्वा रामहर्षो मुनयो प्राप्स्यन्ता ययुः ॥ १३७ ॥

ययुरप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः किन्नरास्तथा । राजानो घट्टयाःसर्वे चागता ये म

सर्वे प्रणम्य धीकृष्णं ययुः सादरपूर्वकम् ॥ १३८ ॥

पतस्मिन्नन्तरे शक्रः कोपप्रस्फुरिताधरः । मग्नमङ्गे यद्दुषिद्यं निन्दां धृत्या सु

मरुद्विर्घारिदैः साद्धं रथमारुहा सत्वरम् ॥ १३९ ॥

जगाम नन्दनगरं वृन्दारण्यं मनोहरम् । सर्वे देवा ययुः पश्चाद् युद्धशास्त्रविशा

शस्त्रास्त्रपाणयः कोपाद्रथमारुहा नारद । वायुशब्दमैर्धशब्दैः सैन्यशब्दैर्भयानकैः

वक्रस्पे नगरं सर्वं नन्दो भयमवाप ह । भाष्यां सम्बोध्य स्वगणमुवाच शोक

रहःस्थलं समानीय नीतिशास्त्रविशारदः ॥ १४० ॥

नन्द उवाच ।

हे यशोदे समागच्छ वचनं शृणु रोहिणि ।

रामहर्षो समादाय व्रज दूरं व्रजात् प्रिये ॥ १४१ ॥

गलका बालिका नार्यो यान्तु दूरं भयाकुलाः । बलघन्तश्चगोपालास्तिष्ठन्तुमत्सर्

त्थाच्च निर्गमिष्यामो घयञ्च प्राणसङ्कटात् । इत्युक्त्वा वल्लवध्रेष्ठःसस्मार श्रीहर्षि

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिजघ्रातमकन्धरः ।

काण्वशाखीकस्तोत्रेण तुष्टाव श्रीशचीपतिम् ॥ १४६ ॥

नन्द उवाच ।

नन्दः सरपतिः शक्रो दितिजः पयसाप्रजः । सहस्राक्षो भगाङ्गश्च कश्यपात्मजं पय

विड्वीजाश्च शुनासीरोमरूदधान् पाकशासनः । जयन्तजनकः श्रीमान् शचीशो दैत्यसूदनः ॥  
 घञ्जहस्तः कामसखो गौतमीव्रतनाशनः । वृत्रहा घासवश्चैव दधीचिदेहमिश्रुकः ॥  
 जिष्णुश्च घामनन्नाता पुरहृतः पुरन्दरः । दिघस्पतिः शतमखः सुभ्रामा गोत्रमिद्विभुः ॥  
 लेम्पर्णमो कलारातिर्जम्भमेदी सुराश्रयः । संक्रन्दनो दुश्कृपयनस्तुरापाण्मेघवाहनः ॥  
 भागण्डलो हरिद्वयो नमुचिप्राणनाशनः । वृद्धथवा वृषश्चैव दैत्यदर्पनिवृदनः ॥ १५२ ॥

पृचत्वारिंशन्नामानि पापघ्नानि विनिश्चितम् ॥ १५३ ॥

स्तोत्रमेतत् कौथुमोक्तं नित्यं यदि पठेन्नरः । महाधिपत्नी शक्रस्तं घञ्जहस्तश्च रक्षति ॥  
 धतिवृष्टिशिलावृष्टि घञ्जपाताच्चदारुणात् । कदाचिन्न भयं तस्य रक्षिताघासवःस्वयम् ॥  
 यत्र गेहे स्तोत्रमिदं यश्चजानाति पुण्यवान् । न तत्र घञ्जपतनं शिलावृष्टिश्च नारद ॥  
 श्रीनारायण उवाच ।

स्तोत्रं नन्दमुखाच्छ्रुत्वा चुफोप मधुसूदनः । उवाच पितरं नीतिं प्रज्वलन् प्रह्वानतेजसा ॥  
 कं स्तौषि भीरो को घेन्द्रस्त्यज भीतिं ममान्तिके ।  
 क्षणाद्धं भस्मसात् कर्तुं क्षमोऽहमवलीलया ॥ १५४ ॥

गाधपरसांश्च घालांश्च योपितो या भयानुराः । गोवर्दनस्य कुहरे संस्थाप्य तिष्ठनिर्भयम् ॥  
 बालस्य घचनं ध्रुत्वा तत्रकार मुदान्वितः । हस्तिधार शैलन्तं घामहस्तेन दण्डयन् ॥  
 पतस्मिन्नन्तरे तत्र क्षीप्तोऽपि रत्नतेजसा । अर्न्धीभूतश्च सहसा यभूय रजसावृतम् ॥  
 सपातो मेघनिक्तरश्चच्छादगगनं मुने । घृन्दायने यभूपातिवृष्टिरेव निरन्तरम् ॥ १६२ ॥  
 शिलावृष्टिघञ्जवृष्टिरूकापातः सुदारुणः । समस्तं पथतन्पशात् पतिनं दूरतस्तनः ॥  
 विफलस्तरसमारम्भो यथानीशोघमो मुने । इहा मोघश्च सतसपं सद्यः शक्रदनुकोप ह ॥  
 तत्राहामोघकुलिशं दधीच्यल्पिनिर्मितम् । इत्या तं घञ्जहस्तश्च जहास मधुसूदनः ॥  
 रहस्तं स्तम्भायामास घञ्जमेपातिदारुणम् । सहामरणैर्मेघञ्जकार स्तम्भनं विभुः ॥  
 सर्वे तस्मिन्निहलास्ते भिर्त्तो पुस्तलिका यथा ।

हरिणा जूमितः शक्रः सद्यस्तन्द्रामपाप ह ॥ १६७ ॥

इशं सर्वे तद्द्रायां तत्र हरणमयं जगत् । द्विभुजं मुरलीदस्तं स्तालद्वारभृगितम् ॥

पीतवस्त्रपरीधानं शनर्गिहासनम् । ईशदास्यत्रसन्नाम्भं मनानुग्रहकानाम् ॥१॥  
 शन्दनोसितसर्पाङ्गमेतत् सार्धं वरानरम् । दृष्ट्यादुतनमं तत्र सद्यो मूर्च्छामयाय ॥२॥  
 जज्ञाप मन्त्रं तत्रैव प्रदत्तं गुणना पुता । राहस्यद्वयसम्भं ददर्श ज्योतिरव्ययम् ॥३॥  
 तत्रान्तरे दिव्यरूपमतीषत्सुमनोहरम् । गयोनजलदोतकर्मश्यामसुन्दरविग्रहम् ॥ ३२ ॥  
 सद्गुणसारनिर्माणं उपलम्भकारकुण्डलम् । उपलम्भणान्द्रमकरकिरीटोऽप्यलशेखरम् ।

उपलता क्रीस्तुमेन्द्रेण कण्ठवक्षःस्थलोऽप्यलम् ।

मणिकेयूरपलयमणिमञ्जीररञ्जितम् ॥ १०४ ॥

अन्तर्यहिः समं दृष्ट्या तुष्टाय परमेश्वरम् ॥ १०५ ॥

इन्द्र उवाच ।

क्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । गुणातीतं निराकारं श्रेच्छामयमनन्तवम् ।  
 कथ्यानाय सेवायै नानारूपधरं परम् । शुक्ररक्तपीतश्यामं युगानुकमेण(जेन)व ॥१०६॥  
 कृतेजः स्वरूपञ्च सत्ये सत्यस्वरूपिणम् । त्रेतायां कुङ्कुमाकारं उपलन्तं ब्रह्मनेजसा ।  
 त्वरे पीतवर्णञ्च शोभितं पीतवाससा । कृष्णवर्णं काली कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम् ।  
 अधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम् । नन्दैकनन्दनं चन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम् ॥१०७॥  
 त्रिपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम् । विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च ।  
 पेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम् । कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं विभ्रन्तं शान्तमीश्वरम् ।

क्रीडन्तं राधयासाधं वृन्दारण्ये च कुत्रचित् ।

कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ १०८ ॥

ल्लकीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित् । राधिकाकवरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिदने ।  
 त्रविद्राधिकापादे दत्तवन्तमलककम् । राधावर्धितताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुता ।  
 श्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यन्तीं वक्रवधुया । दत्तवन्तञ्च राधायै कृत्वा मालाञ्च कुत्रचिन् ।  
 त्रविद्राधयासाधं गच्छन्तं रासमण्डलम् । राधादत्तां गले मालां धृतवन्तञ्च कुत्रचिन् ।  
 साधं गोपालिकामिञ्च विहरन्तञ्च कुत्रचित् ।

राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय ताञ्च कुत्रचित् ॥ १०९ ॥

प्रेमपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तश्च कुत्रचित् । भुक्तवन्तं तालकलं बालकैः सह कुत्रचित् ॥  
 खं गोपालिकानाञ्च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा । गयाङ्गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद् बालकैः सह  
 ालीयमूर्ध्निपादाब्जं दत्तवन्तश्च कुत्रचित् । विनोदमुरलीशब्दं कुर्यन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥  
 ायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद् बालकैः सह । स्तुत्वा शक्रःस्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया  
 पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च । कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते ॥१६३॥  
 एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम् । दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा ॥

कुमारोऽङ्गिरसे दत्तो गुप्तेऽङ्गिरसा मुने ।

इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ॥ १६५ ॥

हप्राप्य दृढां भक्तिमन्तेदास्यं लभेद् ध्रुवम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्योमुच्यतेनरः  
 न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम् ॥ १६६ ॥

नारायण उवाच ।

न्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नः धीनिकेतनः । प्रीत्या तस्मै घरं दत्त्वा स्थापयामास पर्वतम्  
 प्रणम्य च हरिं शक्रः प्रययौ स्वगणेः सह ॥ १६७ ॥

गहरस्था जनाः सर्वे प्रजग्मुंगहराद् गृहम् । ते सर्वे मेनिरै कृष्णं परिपूर्णतमं विभुम् ॥  
 पुरस्कृत्य व्रजस्थांश्च प्रययौ स्वालयं हरिः ॥ १६८ ॥

तुष्टाय नन्दः पुत्रं तं पूर्णब्रह्म सनातनम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिपूर्णाधुलोचनः ॥  
 नन्द उवाच ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः । नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमा  
 धनन्तकोटिब्रह्माण्डधामधाम्ने नमोऽस्तुते । नमो मत्स्यादिरूपाणां जीवरूपायस

निर्लिप्ताय निर्गुणाय निराकाराय ते नमः ॥ २०१ ॥

धतिसूक्ष्मस्वरूपाय स्यूनात्स्यूलत्रमाय च । सर्वेश्वराय सर्वाय तेजोरूपाय ।  
 भतिसूक्ष्मस्वरूपाय ध्यातासाध्याय योगिनाम् ।

ब्रह्मविष्णुमहेशानां चन्द्राय नित्यरूपिणे ॥ २०३ ॥

धाम्ने धनुर्णी धर्मानां गुणेष्वेव धनुर्गुणम् । शुच्यन्वसर्गागत्यामामिधानगुणशालिने ।  
 योगिने योगरूपाय गुण्ये योगिनामपि । सिद्धेश्वराय सिद्धाय सिद्धानां मुखे नमः ।  
 यं स्तोतुमशो प्रह्लाद विष्णुयंस्तोतुमशमः । यंस्तोतुमशमो रक्षःशयो यं स्तोतुमशमः ।  
 यं स्तोस्तुमशमो धर्मा यंस्तोतुमशमोरपिः । यंस्तोतुमशमो लम्बोदरश्चापि पद्मलः ।  
 यं स्तोतुमशमाः सर्वे गुणयः सनकाद्यः । कपिलो नक्षमः स्तोतुं सिद्धेन्द्रानां गुरोर्गुरुं  
 न शक्तौ स्तपनं कर्तुं नरनारायणावृषी । अन्ये जडधियः केषाम्स्तोतुंशक्ताः परात्पाम्  
 येशानशक्ता नोषाणी नच लक्ष्मीःसरस्वती । नराधाम्स्तपने शक्ता किंस्तुयन्तिविरक्षित  
 क्षमस्य निखिलं ब्रह्मन्नपराधं क्षणे क्षणे । रक्ष मां कठणसिन्धो दीनबन्धो भवानेव ।  
 पुरा तीर्थे तपस्तप्त्वा पुत्रः प्राप्तः सनातनः । स्वकीयचरणाम्भोजे भक्तिं दाम्यद्ब्रह्मदेहि

ब्रह्मत्वममरत्वं वा सालोक्ष्यादिकमेव वा ।

त्वत्पद्माम्भोजदास्यस्य कलां नार्हन्ति वोऽङ्गीम् ॥ २१३ ॥

इन्द्रत्वं वा सुरत्वं वा संप्राप्तिं सिद्धिस्वर्गयोः ।

राजत्वं चिरजीवित्वं सुधियो गणयन्ति किम् ॥ २१४ ॥

एतद्यत् कथितं सर्वं ब्रह्मत्वादिक्मीश्वर । भक्तसङ्गक्षणाद्धस्य नोपमा ते किमर्हति ।  
 त्वद्भक्तोयस्त्वत्सदृशः कस्त्वां तर्कितुमीश्वरः । क्षणाद्दालापमात्रेण पारं कर्तुं सर्वेश्वर  
 भक्तसङ्गाद्भवत्येव भक्तिं कर्तुंमनेकधा । त्वद्भक्तजलदालापजलसेकेन घर्द्धते ॥ २१७ ॥

अभक्तालापतापात्तु शुष्कतां याति तत्क्षणम् ।

तद्गुणस्मृतिसेकाच्च घर्द्धते तत्क्षणे स्फुटम् ॥ २१८ ॥

त्वद्भक्तयद्गुरुमुद्भूतं स्फीतं मानसजं परम् । न नश्यं घर्द्धनीयञ्च नित्यं नित्यं क्षणे क्षणे  
 ततः सम्प्राप्य ब्रह्मत्वं भक्तस्य जीवनाय च । ददात्येव फलं तस्मै हरिदास्यभनुत्तमम्  
 संप्राप्य दुर्लभं दास्यं यदि दासो बभूव ह । सुनिश्चयेन तेनैव जितं सर्वं भयादिकम् ॥  
 इत्येवमुक्त्वा भक्त्याच नन्दस्तस्थोहरैः पुरः । प्रसन्नघदनः हृष्णोददौ तस्मैतदीप्सितम्  
 एवं नन्दहृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ।

— कृष्णोति सद्यो दास्यं लभेदरैः ॥ २२३ ॥

तपस्तप्या यदा द्रोणस्तीर्थे च धरया सह ।

स्तोत्रं तस्मै पुरा दत्तं ब्रह्मणा तन् सुदुर्लभम् ॥ २२४ ॥

पङ्कशरो मन्त्रः कवचं सर्वरक्षणम् । इह सौभरिणा दत्तं तस्मै तुष्टेन पुष्करे ॥

कवचं स्तोत्रं स च मन्त्रः सुदुर्लभः । ब्रह्मणोऽशेन मुनिना नन्दाय च तपस्यते ॥

मन्त्रः स्तोत्रञ्च कवचमिष्टदेवो गुरुस्तथा ।

या यस्य विद्या प्राचीना न तां त्यजति निश्चितम् ॥ २२७ ॥

यं कथितं स्तोत्रं श्रीकृष्णाख्यानमद्भुतम् । सुखदं मोक्षदं सारं भवबन्धविमोचनम्

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

इन्द्रयागभञ्जनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ।

## द्वाविंशोऽध्यायः

धेनुकासुरोपाख्यानवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

राधिकानाथो बलेन सह बालकैः । जगाम तत्तालव्यं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १ ॥

यं रक्षिता दैत्यैः खररूपी च धेनुकः । कोटिसिंहसमबलो देवानां दर्पनाशनः ॥

पर्वतसमं कृपतुल्ये च लोचने । ईपापङ्क्तिसमा दन्तास्तुण्डं पर्वतगह्वरम् ॥ ३ ॥

तपरिमिता जिह्वा लोला भयानका । कासारसदृशा नाभिः शब्दस्तस्य भयानकः

लघनं बाला हर्षमापुरनिन्दिताः । कौतुकात् कृष्णमूचुस्ते स्मेराननसरोरुहाः ॥

बाला ऊचुः ।

करुणासिन्धो दीनयन्धो जगत्पते । महाबलबलभ्रातः समस्तबलिनां धर ॥

यं बुद्ध विमोक्षणादं नो निवेदने । क्षुधितानां शिशूनाञ्च भक्तानां भक्तवरसह

स्वाङ्गानि सुन्दराण्येव पश्य तालफलानि च ।



मङ्क्तुं चालयितुं वृक्षान् पातितुञ्च फलानि च ॥ ८ ॥

नानावर्णानि पुष्पाणि पकानि दुर्लभानि च ।

आज्ञां करोषि चेत् कृष्ण ज्येष्ठां कर्तुं वयं क्षमाः ॥ ९ ॥

किञ्चिन्न दैव्यो बालवान् खररूपो च धेनुकः । अजितस्त्रिदशैः सर्वैर्महाबलपराक्रमः ।  
दुर्निवार्यश्च सर्वेषां कंसस्य सविवो महान् । हिसकः सर्वजन्तूनां वनानामस्ति रक्षितः  
सुविचार्य जगत्कान्त घट्टो नो घट्टां घर । युक्तं कार्प्यमयुक्तं वा कर्त्तव्यमथवा न वा  
बालकस्य घवः श्रुत्वा भगवान् मधुमूदनः । उवाच मधुरं बालान् घचरन्तस्सुखायम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

किं घो दैत्याद्भयं बाला यूयं मन्सहचारिणः ।

वृक्षान् मङ्क्त्वा चालयित्वा फलानि खादतामथम् ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णागं समादाय बालका बलशालिनः । उत्पेनुवृक्षशिलरं क्षुधिताश्च फलार्थं  
नानावर्णानि स्वादूनि सुन्दराणि च । फलानि पातयामासुः परिपकानि नारः ।  
केचिद् यमञ्जुवृक्षांश्च चालयामासुरेय । केचिन् कोलाहलञ्चकुर्नमृतुस्तत्र केवत ॥१॥  
अबलान् मरुत्पथ बालका बलशालिनः । फलान्यादाय गच्छन्तो दृष्टुर्देवपुङ्गवम् ॥६॥  
महाबलं महाकायं घोरं घट्टंमरुपिणम् । आगच्छन्तं महाविषाम् कुर्यन्तं शब्दमुत्पन्नं  
नं दृष्ट्वा कटुः सर्वे फलानि लभ्यन्तुमिषा । कृष्ण कृष्णेति शब्दञ्च प्रवक्तुर्वृषा मुषाम् ।

अस्मान् रक्ष समागच्छ हे कृष्ण परमानिधे ।

हे सद्गुरुं नो रक्ष प्राणो नो यान्ति दानवाम् ॥ २१ ॥

हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोपिन्द्र दामोदर दीनबन्धो ।

गोर्वाश गोपेश भवार्णयेऽस्माननगत नारायण रक्ष रक्ष ॥ २२ ॥

भयेऽभये बाध शुभेऽशुभे वा शुभेषु दुःशुभेषु च दीनताप ।

स्वया विनायकं शरणं भवार्णये न नोऽस्ति हे माधव रक्ष रक्ष ॥ २३ ॥

— विष्णोर् भक्तप्रसङ्गे कथयन्तो यदभयमवयक्तान् बालकान् रक्ष रक्ष ।

बालानां चिकुर्यं दृष्ट्वा बलेन सह माधवः । आजगाम शिशुस्थानं भयहा भक्तवत्सलः ॥  
 भयंनास्तिभयंनास्तीत्युक्त्वाद्बुद्रावसत्वरम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्योनिर्मयं दत्तवानशिशून्  
 दृष्ट्वा कृष्णं बलं बाला ननुतुर्विजहुर्मयम् । हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदायिका ॥२७॥  
 श्रोत्रुष्णो दानवं दृष्ट्वा प्रसन्तं पुरतः शिशून् । बलं सम्बोध्य बलिनमुवाच मधुसूदनः  
 श्रोत्रुष्ण उवाच ।

दानवो बलिपुत्रोऽयं नाम्ना साहसिको बली । गर्दभो ब्रह्मशापेन शतो दुर्वाससा पुरं  
 पापिष्ठो मम घध्योऽयं महाबलपराक्रमः । अहमेनं घधिष्यामि त्वं रक्ष बालकान् बल ॥  
 आदाय बालकान् सर्वान् दूरं गच्छेत्युवाच ह ।

तान् गृहीत्वा बलः शीघ्रं जगाम त्वरयाज्ञया ॥ ३१ ॥  
 दृष्ट्वा कृष्णं दानवेन्द्रो महाबलपराक्रमः । जप्रास लीलया कोपाञ्ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥  
 कभूवातिदाहयुक्तो मतुंकामोऽतितेजसा । उज्जप्रास पुनर्देत्यो विभुं तेजस्विनं भिया ॥  
 उन्मिक्तं सन्ततमीशञ्च दृष्ट्वा दैत्यो मुमोच ह । अतीवसुन्दरं शान्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा  
 कृष्णदर्शनमात्रेण कभूवास्य पुरा स्मृतिः । आत्मानं युयुधे कृष्णं जगतां कारणं परम्  
 तेजस्वरूपमीशन्तं दृष्ट्वा तुष्टाव दानवः । यथागमं यथा जन्म गुणातीतं ध्रुतेः परम् ॥  
 दानव उवाच ।

वामनोऽसि त्वमंशेन मत्पितुर्यज्ञभिक्षुकः । राज्यहर्ता च धीहर्ता सुनलस्थलदायकः ॥  
 बलिभक्तिपशो धीरः सर्वेशो भक्तवत्सलः ।  
 शीघ्रं त्वं हिंस मां पापं शापान्नाद्भरूपिणम् ॥ ३८ ॥

मुनेर्दुर्वाससः शापादीदृशं जन्म कुत्सितम् । मृत्युरकथं मुनिना त्वस्यो मम जगत्पते  
 योऽशारेण ध्वजेण सुतीक्ष्णेनातितेजसा । जहि मां जगतां नाथ सद्भक्तिः कुरु मोक्षद ॥  
 त्वमंशेन घरादक्ष समुद्धर्तुं वसुन्धराम् । वेदानां रक्षिता नाथ हिरण्याक्षनिवृद्धनः ॥  
 त्वं नृसिंहः स्वयं पूर्णो हिरण्यकशिपोर्यधे । प्रह्लादानुप्रहार्याय देवानां रक्षणाय च ॥  
 त्वञ्च वेदोद्धारकतां मीनांशेन दयानिधे ।

नृपस्य ज्ञानदानाय रक्षायै सुरविप्रयोः ॥ ४३ ॥

गोघर्षणं समुत्पाद्य मातयामास तं विभुः । पपात वेगात्कृत्स्नैन्द्रस्तम्भोपरि  
 पर्यंतस्य प्रहारेण मूर्च्छामाय महात्मनः । यभूय पलित्वाङ्गुष्ठा कथिरञ्ज समुत्पाद्य  
 क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्सर्षो ग्यासुरः । गृहीत्या पर्यंतप्रेष्ठं प्रेरयामान  
 दृष्ट्वा शैलमुत्पतन्तं वेगं न मधुगूदनः । जप्राह दक्षिणकरे यथेशदृष्टवन्तु  
 पूर्वस्थाने पर्यंतं तं स्थापयामास कौतुकात् । गृहीत्या दैत्यकर्णाप्रपातयामान  
 उत्पत्य च महावेगाद्यकार घेष्टनं हरेः । गृगिर्षी पर्ययामास क्षीणाप्रेणे सुते  
 प्रगृह्य श्रीहरिं वेगात्कृत्वा मूर्ध्नि महासुरः । उत्पपात मनोयार्थी लीलया लक्ष्म  
 प्रहरञ्च तयोर्बुद्धं निर्लक्षे च यभूव ह । ततो गृहीत्या श्रीकृष्णं पपात धरर्षित्वा  
 पुनर्मुहूर्त्तं युद्धञ्च यभूव भूतले तयोः । मुदा हरिः प्रशशांस प्रहस्य दानवेद्वान्  
 मङ्गलस्य बलेः पुत्र धन्यंत्वज्जीघनं परम् । स्वस्त्यस्तुने दानवेन्द्र  
 महर्शनं स्वस्ति वीजं परं निर्वाणकारणम् । सर्वाधिकं सर्वपरं लभ स्थानं

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः सस्मार चक्रमुत्तमम् ।

सूर्यकोटिसमं दीप्त्या जप्राह तन् सुदर्शनम् ॥ ६३ ॥

चिक्षेप भ्रामयित्वा च षोडशारमनुत्तमम् ।

चिच्छेद् लीलया वध्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ ६४ ॥

पपात मस्तकं भूर्मो दानवस्य महात्मनः ।

तेजःसमूह उत्तस्थौ शतसूर्यसमप्रभः ॥ ६५ ॥

विलोक्य हरिलोकं संश्लिष्टं कृष्णपदाद्युजे ।

सम्प्राप्य परमं मोक्षमहो दानवपुङ्गवः ॥ ६६ ॥

गातस्थाः सुराः सर्वे मुनयश्च भृशं मुदा । पारिजातप्रसूतानाञ्चक्रुस्ते ३  
 नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे ननुतुश्चाप्सरोगणाः । जगुर्गन्धर्वनिकरास्तुपुष्टुर्भूतयो मुदा  
 स्तुत्या जग्मुः सुराः सर्वे मुनयो हर्षविह्वलाः । धेनुकस्य घर्षं दृष्ट्वा तत्राजगुक्षय  
 बलश्च बलिनां धेष्टस्तुष्टाय पुरयोत्तमम् । त्रुष्टुव्यालकाः सर्वे ननुतुश्च मुदावि  
 द्त्वा कृष्णवलाभ्याञ्च प्रपकानि फलानि च । सर्वाणिभक्षयामासुर्वालाःप्रहृष्टवन्त

तेर्विशोऽध्यायः ] \* दुर्वाससः शापेन बलिनन्दनस्य गर्दभत्वम् \*

६८६

विष्णु पीत्वा हरिः शीघ्रं बलेन बालकैः सह । जगाम स्थाल्यं ब्रह्मभिहत्य दानवेश्वरम्  
इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
धेनुकवधो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।

## त्रयोविंशोऽध्यायः

दुर्वाससःशापेन बलिनन्दनस्य गर्दभत्वम् ।

नारद उवाच ।

पापेन बलिजो गर्दभत्वमवाप ह । दुर्वासाः केन दोषेण शशाप दानवेश्वरम् ॥१॥  
पुण्येन वा नाथ बलिनः श्रीहरेः पदम् । सहसैकत्वमुक्तिञ्च संग्राप दानवाधिपः ॥  
सर्वं सुविस्तार्य घद सन्देहमञ्जन । अहो कविमुखे काव्यं नूतनं नूतनं पदे पदे ॥  
श्रीनारायण उवाच ।

पु पत्स प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । पुरा धृतं धर्मयकभ्रातृ पर्वते गन्धमादने ॥  
मकल्पे च वृत्तान्तं विचित्रं सुमनोहरम् । नारायणकथोपेतं कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥५॥  
कल्पे कथा चैयं तत्र त्वमुपवर्द्धनः । भाकल्पजीवी सध्रीकः सुन्दरः स्थिरधीधनः ॥  
शतकामिनीनाञ्च पतिः शृङ्गारतत्परः । धरैण ब्रह्मणस्त्यञ्च सुकण्ठो गायनेश्वरः ॥  
क्षणं पपुस्तास्ते सुन्दरं मुलपङ्कजम् । निमेषरहिताः सर्पाः कामयाणप्रपीडिताः ॥  
सासां प्राणैश्च घटितो विधिना त्वमिष धृतम् ।

दिषानिशं सहचरा न जीषन्ति त्वया विना ॥ ६ ॥

रोषाने च रहसि स्थाने स्थाने मनोरमे । गह्वरेषु च शैलानां कन्दरेषु नदीषु च ॥  
नेषु च रम्येषु श्मशाने जन्तुवर्जिते । यथामनोरम्यं ताभ्य प्रतिज्ञाञ्चपुस्तयथा सह ॥  
तदा देवादिभिः शापाद् भूष्या दासोऽमुतो मयात् ।

अयुता ब्रह्मणः पुत्रो वैष्णवीच्छिष्टभोजनात् ॥ १२ ॥

असंख्यकल्पजीवी च वैष्णवप्रथरो महान् । ज्ञानदृष्ट्या सर्वदर्शो प्रियशिष्यश्च वृद्धेः  
तस्य कल्पस्य वृत्तान्तं मुने मत्तो निशामय । विस्तार्यदैत्यवृत्तान्तं कथयामिसुघोषम् ॥

एकदैव बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली ।

स्यतेजसा सुरान् जित्वा प्रतस्थौ गन्धमादनम् ॥ १५ ॥

चन्द्रनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नभूषणभूषितः । रत्नसिंहासनस्थश्च बहुसैन्यसमन्वितः ॥ १६ ॥  
पतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति तिलोत्तमा । रूपेणाप्सरसां श्रेष्ठा नानावेशविधायिनी ॥

चारुचम्पकपर्णामा रत्नाभरणभूषिता । नवयौवनसम्पन्ना कामवाणप्रपीडिता ॥ १८ ॥

ईषदास्यप्रसन्नास्या दिव्यवस्त्रं सुविभ्रती । पद्मभूमङ्गयुक्ता सा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥

स्तनमूर्धं मुग्धेन्दुश्च दृष्ट्वा साहसिको युवा । वायुना मुक्तयस्त्रायास्तस्यामूर्च्छामिव ॥

सा ददर्श बलेः पुत्रमतीवसुमनोहरम् । प्रफुल्लमालतीमालां विभ्रतं नवयौवनम् ॥ २१ ॥

शरत्पार्यणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम् ।

दृष्ट्वा तं विस्मिता कामात् फटाशश्च चकार सा ॥ २२ ॥

श्रीद्वये चन्द्रलोकाश्च गच्छन्ती चन्द्रकामुकी । तस्थौ केन छलेनैव मत्ता शृङ्गारलालसा

दरं दर्शश्च तस्यास्यं प्रहस्य पद्मचतुषा । मुस्यस्याच्छादनं चको वातसा सा पुनः पुनः

पुनःपुनःपुनःपुनः धर्मधर्मसमन्वितम् । सम्यक् काममत्ताया योनी कण्डूयनं जल्प ॥

विसस्मार शरापरं बलिपुत्रमनोरथा । महो को येद् भुयने दुर्जेयं पुंश्लीमनः ॥ २१ ॥

पुंश्ल्यां यो हि विश्वम्भो विधिना स पिङ्गमितः ।

बहिष्कृतश्च यगता धर्मैः स्वबुद्धेन च ॥ २७ ॥

वाञ्छितं नृपत्नं प्राप्य चित्पति पुरातनम् ।

सदा स्वधर्मसाध्या सा को या तस्याः त्रियोद्भियः ॥ २८ ॥

इदं धर्मं विदधे च पुत्रे धर्मो न मर्षति ।

दाहना पुंश्लीवित्तं सदा शृङ्गारधर्मिणि ॥ २९ ॥

प्रायाजितं रक्षितं सत्कृतं दृष्ट्वा च पुंश्ली । सत्तदं रत्नवित्तं विदुष्टया हि पत्न्या ॥

स्वैवा स्वल्पस्यैव पुंश्लीवित्तं न पुत्रवित्तम् । दाहना पुंश्लीवित्तं त्रियोद्भियः स्वैव ॥

निष्कृतिः सर्वभोगान्ते सर्वेषामस्ति निश्चितम् ।

न पुंश्चलीनां चिप्रेन्द्र याचञ्चन्द्रदिवाकरो ॥ ३२ ॥

अन्यासां कामिनीनाञ्च कीटं हन्तुञ्च या दया ।

सा नास्ति पुंश्चलीनान्तु कान्तं हन्ति पुरातनम् ॥ ३३ ॥

कान्तं दृष्ट्वा हिनस्त्येष सोपायेनावलोलया । रतिज्ञं नूतनं प्राप्य चिपतुल्यं पुरातनम् ३४

पृथिव्यां यानि पापानि पुंश्चलीष्वेवभारते । तिष्ठन्ति ताभ्यो नपरः पापिष्ठाः सन्तियेव न

पुंश्चलीपरिष्वक्यान् सर्वपातकनिश्चितम् । दैवे कर्मणि पेश्ये च न देयञ्च तथा जलम् ॥

अन्नं विष्टा जलं मूत्रं पुंश्चलीनाञ्च निश्चितम् ।

दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो भुत्तया च नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥

रातपरं कालसूत्रे पचत्येष सुदारुणे । घोरान्धकारे हृमयस्तं दशन्ति दिवानिशम् ॥ ३८

पुंश्चलयश्च यो भुङ्क्ते दैवाद्यदि नराधमः । सप्तजन्मवृत्तं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्

आयुः धी यशसां हानिरिह लोके परत्र च । तस्माद्यज्ञाद्रक्षणीयं पाकपात्रं कलत्रकम् ॥

पुंश्चलीदर्शने पुण्यं यात्रासिद्धिर्मवेदु ध्रुपम् ।

स्पर्शाने च महापापं तीर्थस्नानाद्विदुष्यति ॥ ४१ ॥

स्नानं दानं व्रतञ्चैव जपञ्च देवपूजनम् । निष्कलं पुंश्चलीनाञ्च भारते जीपनं वृथा ॥ ४२

कथितं कुलटाख्यानं दुर्ज्ञेयञ्च यथागमम् । संघादञ्च तयोस्तत्र प्रवृत्तं शृणु नारद ॥ ४३ ॥

स पुनश्चेतनां प्राप्य तां दृष्ट्वैव बले सुतः । कामानुरः प्रमत्तश्च जगाम कुलटान्तिकम्

उपाच कुटिलापाद्रीं पीनध्रोजिपयोधराम् । मोडया घाससायकप्रमान्छन्नं कुर्वतीमुदा

साहसिक उपाच ।

कासि स्थं कस्य कस्यासि कस्य कान्तासि कामिनि ।

स्वयं कथ यासि कं सुसू पुण्यघन्तं मनोहरम् ॥ ४६ ॥

कल्पान्ते तपसा पूर्णं भोक्तुं त्वामेव सुन्दरि । यंतं यासि यादिसात्यं भृशं मां कर्तुं मर्दसि

कीर्णादि रत्नपुण्येन मां भृशं रतिलोलुपम् । शृङ्गारलोलुपा त्वञ्च शृङ्गारदेहि कामुकि

रपया सह ममाश्लेषो विधिना च विनिर्मितः ।

असंख्यकल्पजीवी च घैष्णघप्रचरो महान् । हानद्रूष्ट्या सर्वदर्शो प्रियप्रियश्च वृष्टे  
 तस्य कल्पस्य वृत्तान्तं मुने मत्तो निशामय । विस्तार्य्यदैत्यवृत्तान्तंकथयामिमुद्योन्न

एकदैव बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली ।

स्वतेजसा सुरान् जित्वा प्रतस्थौ गन्धमादनम् ॥ १५ ॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नभूषणभूषितः । रत्नसिंहासनस्थश्च बहुसैन्यसमन्वितः ॥ १६ ॥

पतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति तिलोत्तमा । रूपेणाप्सरसां श्रेष्ठा नानावेशविधानि ॥ १७ ॥

चारुचम्पकवर्णांसा रत्नाभरणभूषिता । नवयौवनसम्पन्ना कामवाणप्रपीडिता ॥ १८ ॥

ईपद्मास्यप्रसन्नास्या दिव्यवस्त्रं सुविभ्रती । धकभ्रूमङ्गयुक्ता सा गजेन्द्रमन्दगान्ति ॥ १९ ॥

स्तनमूर्धं मुनेन्दुश्च दृष्ट्वा साहसिको युधा । पायुना मुकवस्त्रायास्तस्यामूर्च्छान्व ॥ २० ॥

सा ददर्श बलेः पुत्रमतीवसुमनोहरम् । प्रफुल्लमालतीमालां विभ्रतं नवयौवन्म् ॥ २१ ॥

शात्पार्वणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम् ।

दृष्ट्वा तं विस्मिता कामात् फटाक्षश्च चकार सा ॥ २२ ॥

कीडापै चन्द्रलोफश्च गच्छन्ती चन्द्रफामुकी । तस्थौ केन छलेनैव मत्ता शृङ्गा ॥ २३ ॥

दर्शं दर्शश्च तम्याम्यं प्रहस्य पत्रचभुया । मुखस्याच्छादनं चको धाससा सा पुत्र ॥ २४ ॥

पुत्रकाङ्क्षितसर्पाङ्गं धर्मकर्मसमन्वितम् । बभूव काममत्ताया योनी कण्डूयनं ॥ २५ ॥

विसस्मार शशापरं बलिपुत्रमनोरथा । महो को वेद् भुषने दुर्ज्ञेयं पुंश्लीमन ॥ २६ ॥

पुंश्ल्यां यो हि पिश्यस्तो विधिना स पिङ्गम्बितः ।

बदिष्टृतश्च यशसा धर्मेण स्वदुज्जैत च ॥ २७ ॥

धात्रित्तं नूतनं प्राप्य चित्तपति पुरातनम् ।

सदा स्वकर्मसाध्या सा को वा तम्याः प्रियोऽप्रियः ॥ २८ ॥

दैवे कर्मणि वैश्वे च पुत्रे बन्धो न मर्त्तरि ।

दारुणं पुंश्लीवित्तं सदा शृङ्गारकर्मणि ॥ २९ ॥

प्राजाधिकं वृत्तिं सामृतद्रूष्ट्या च पुंश्ली । रत्नपरं रत्नविभं विपद्रूष्ट्या वि ॥ ३० ॥

सर्वेषां स्थूलमन्देव पुंश्लीनां न कुत्रचिन् । दारुणा पुंश्लीप्राप्तिर्नरपान्त्रि ॥ ३१ ॥

तेविंशोऽध्यायः ] \* साहसिकतिलोत्तमासंवाद्यवर्णनम् \*

निष्कृतिः सर्वभोगान्ते सर्वभामस्ति निश्चितम् ।

न पुंश्चलीनां विप्रेन्द्र याचश्चन्द्रदियाकरो ॥ ३२ ॥

अन्यासां कामिनीनाञ्च कीटं हन्तुञ्च या दया ।

सा नास्ति पुंश्चलीनान्तु कान्तं हन्ति पुरातनम् ॥ ३३ ॥

अन्तं दृष्ट्वा हिनस्त्येष सोपायेनावलोलया । रतिर्न नूतनं प्राप्य विपतुल्यं पुरातनं  
पिब्यां घानि पापानि पुंश्चलीश्वेषभारते । तिष्ठन्ति ताम्बो नपरः पापिष्टाःसति  
श्चलीपरिपक्वान्तं सर्वपातकनिश्चितम् । दैवे कर्मणि पैश्वे च न देयञ्च तथा

अन्नं विष्टा जलं मूत्रं पुंश्चलीनाञ्च निश्चितम् ।

दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो भुतया च नरकं प्रजेत् ॥ ३७ ॥

प्रथमं कालसूत्रे पचत्येव सुदारणे । घोरान्धकारे दृग्मयस्तं दशन्ति दिवानिश  
पुंश्चल्यश्च यो भुङ्क्ते देवाद्यदि नराधमः । सप्तजन्मदत्तं पुण्यं तस्य नश्यति नि  
प्रायुः धी घशासां हानिरिह लोके परत्र च । तस्माद्यन्नाद्रक्षणीयं पाकपात्रं कल

पुंश्चलोदर्शने पुण्यं यात्रासिद्धिर्मवेदु ध्रुवम् ।

स्पर्शने च महापापं तीर्थंजानाद्विदुध्रुपति ॥ ४१ ॥

ज्ञानं दानं व्रतञ्चैव जपश्च देवपूजनम् । निष्कलं पुंश्चलीनाञ्च भारते जीवनं धृ  
कथितं कुलटाण्यानं दुर्भेषञ्च यथागमम् । संवाद्यञ्च तयोस्तत्र प्रदत्तं शृणु नास्  
सि पुनश्चेतनां प्राप्य तां दृष्ट्वैव बले सुतः । कामानुरः प्रमत्तश्च जगाम कुलटा  
श्याच कुटिलापाङ्गीं पीनध्रोणिपयोधराम् । मोडया घाससायवत्रमाच्छन्नं कुल

साहसिक उवाच ।

वासि रयं कस्य कस्यासि कस्य कान्तासि कामिनि ।

॥ स्वयं क्व यासि कं सुभू पुण्यवन्तं मनोहरम् ॥ ४६ ॥

हृत्पान्ते तपसा पूर्णं भोक्तुं स्वामेवसुन्दरि । यन्तं वासि यादिसात्वं भृत्यंमांस  
दीर्घादि रनिपुण्येन मां भृत्यं रतिलोनुपम् । शृङ्गारलोनुपा स्पञ्च



निरुपितं यत्नेनैव वार्यते येन तन् प्रिये ॥ ४६ ॥

वाक्यं रीग्यूपसदृशं सम्मिन्नं यद् सुन्दरि । शीघ्रं भुजङ्गतापारीर्वन्धनं कुर्वन् निर्वृते ॥ ४७ ॥

भासनं देहि पञ्चगानि स्योरं, प.नफ.सप्रिमम् ।

स्तनमण्डलकुम्भश्च यात्रायोग्यं प्रदर्शय ॥ ५१ ॥

सीङ्गणास्त्रेण फटाक्षेण जर्जरं कुर्वन् मामिति । कामसंगंभ्रतं पादम्पर्यन्तं नीरजं कुर्वन् ॥ ५२ ॥

अधरौष्णामृतं स्यादु देहि मे क्षुधिताय च । यद्यपदाङ्गिमर्याजानं दन्तं दर्शय सुन्दरम् ॥

गम्भीरानामि त्रिषलीं द्रुपुमिच्छामि सुन्दरि ।

नीवीप्रमोक्षणं कर्त्तुमिच्छामि मे वर्त्तते सदा ॥ ५४ ॥

श्रोणिं पश्यामि ललितां मुनिमानसमोहिनाम् ।

शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनाम् ॥ ५५ ॥

शरत्पार्षणवन्द्यास्यं प्रसन्नञ्च प्रदर्शय । सा च तद्वचनं श्रुत्वा...तमुवाच स्मपतुता ।

द्रुप्यातं कामवाणेन मानसं यक्षकामिनी ॥ ५६ ॥

तिलोत्तमोवाच ।

पतिस्त्वत्सदृशो नाथ कामिनीनां मनीषितः ।

बलिपुत्रोऽसि धर्मिष्ठो रूपवान् गुणवान् युवा ॥ ५७ ॥

शृङ्गारनिपुणः कान्तः कामशास्त्रविशारदः । सदा मनोशःस्त्रीणां त्वं सुवेशाश्चस्वभावश्च

सुवेशं सुन्दरं शान्तं कान्तं दान्तमरोगिणम् । शृङ्गारज्ञं गुणज्ञं त्वां युवानंरसिकंशुक्तिम्

स्त्रीमनोशं दयालुञ्च बलिष्ठं सन्तमीश्वरम् । दातारमनुरक्तञ्च कान्तमिच्छति कामिनी

पते सर्वे गुणाः कान्त सन्ति कान्ते त्वयि ध्रुवम् ।

त्वां न वाञ्छन्ति याः कान्तास्ता अविज्ञाश्च धञ्जिताः ॥ ६१ ॥

सन्तोषं ते करिष्यामि समागम्य विधोर्गृहात् ।

वेशं कृत्वा तु चन्द्रार्थं यात्राघ तस्य कामिनी ॥ ६२ ॥

मन्याश्लेषणमात्रेण भविता धर्मलङ्घना । याश्च धर्मान्न रक्षन्ति तासाञ्च जीवनं धृष्या ।

... न जानन्ति यास्ता मूढाः प्रकीर्त्तिताः ।

ता एव मातृगर्भस्था न प्राज्ञाः पौरुषैरसैः ॥ ६४ ॥

स्वयद्यौ मदनश्चन्द्रो भरुथान्नलकृवरः । एभिर्नालिङ्गिता यास्ता वञ्जिता रतिकर्मणि  
दिपानिशं मानसं मे तेषां क्रीडाञ्चिन्तयेत् । विदोषतः कामदेवो निपुणो रतिकर्मणि  
चन्द्रशृङ्गारमार्लेपमालापममृताधिकम् । अद्य तस्य रतिदिनं तेन तं चिन्तयेन्मनः ॥ ६७

तिलोत्तमायचः श्रुत्या जहास बलितन्दनः ।

सकामश्च सपुलकस्तामुवाच रहःस्थले ॥ ६८ ॥

साहसिक उवाच ।

प्राज्ञा निर्मिता त्वञ्च कौतुकेन तिलोत्तमे ।

अतो घरा चाप्सरसो विद्ग्धरसिकेश्वरी ॥ ६९ ॥

सुन्दोपसुन्दयोर्नाशनिमित्तेन प्रयत्नतः । सर्वरूपगुणाधारा विधिना च कृता पुरा ॥ ७०  
सर्वं जानासि सर्वज्ञे चित्ते सुरतकर्मणि । हर्षेण श्रोतुमिच्छामि घद घो मानसं घनः ॥  
अतिप्रियश्च को वा च कः स्वभायोवरानने । अवश्यंगोपनीयश्च श्रोतुमिच्छामि सुन्दरि  
गन्धर्वाणां सुराणाञ्च राज्ञां पुण्ययतामपि । सर्वेषां प्राणतुन्या त्वमेषु तं कः परः प्रियः

असुरस्य घनः श्रुत्या प्रहस्य सा तिलोत्तमा ।

मुपमाच्छाद्यामास विलोक्य घनश्चक्षुषा ॥ ७१ ॥

सत्यं सारमन्तरस्थमश्रयत्वमतिगोपनम् । उवाच मानसं वाचयमन्नानं विदुषामपि ॥ ७२  
तिलोत्तमोवाच ।

कथनीयं साहसिकं पुञ्जलीनां मनोपचः । त्रीजार्तानाञ्च सर्पांसामुपहासकरं परम् ॥  
सर्वेषामपि दुर्भयं चरितं योऽस्मितामपि । विदोषतोऽपि दुर्भयं पुञ्जलीनां मनोपचः ॥ ७३

षेदपेदाङ्गुलाह्वानं सधं जानाति पण्डितः ।

कान्तं मानं पित्रानाति दिशामाकाशयोऽस्मिताम् ॥ ७४ ॥

विषादप्यप्रियो वृद्धो रक्षादपि च योऽस्मिताम् ।

मुषा सर्वस्यदस्तां वेत्त्यापोऽप्योऽपि परः प्रियः ॥ ७५ ॥

मुषानं सुन्दरं दृष्ट्वा शार्ता मयति पुञ्जली । विदोषतः सुपेयाय इच्छेय दत्तयेत्ता ।

निमेषरहिता ताम्य लोचनान्मया णी मुग्धम् ॥ ८० ॥

योर्नो जन्तुं शरैराम्याः शयः कण्डूयनं मयेन् ।

मनोऽनिलोल्लसम्भ्येष्यं सर्वाङ्गानि गणगिरि ।

जर्झभूतं शरीरञ्च प्रदग्धं मदनानलात् ॥ ८१ ॥

संप्राप्य तं चेद्रहसि सालापं कुर्वते स्फुटम् । सपट्याश्रं स्मेरपत्रं दर्शयित्वा पुनः पुनः  
या यदि परां कर्तुं न शशाक जितेन्द्रियम् । स्यमङ्गं दर्शयित्पातमन्तर्वाक्यंस्फुटवदेत्

साध्ये नापके दुःखं भवेदाजन्म जन्मनि । तत्तुल्यं तन्परं प्राप्य तं विस्मरति पुंश्वली

पुंश्वलीनामप्रियः कः कः प्रियो वा महीतले ।

योऽतिशृङ्गारनिपुणः स च प्राणाधिकः प्रियः ॥ ८५ ॥

एवंजारं पति पुत्रं भ्रातरं पितरं प्रसूम् । विशिष्टं नूतनं प्राप्य सर्वं त्यजति लीलया ॥ ८६ ॥

दानेन न मानेन सत्येन स्तघनेन वा । नोपकारेण प्रीत्या वा सा साध्या सुरतिविना

यने भोजने चापिस्वप्नेदानेदिवानिशाम् । नित्यं सन्पुरुषाश्लेषंस्मरन्तिकुलट्याः स्त्रियः

शृङ्गारनिपुणानाञ्च ध्यानसाध्या चिरं परम् । दाहणापुंश्वली जातिः प्रार्थयन्ती नवं नवम्

जर्वासां कुलटानाञ्च चरित्रं कथितं मया । अकथ्यं गोपनीयञ्च मम हृदयनं शृणु ॥ ८७ ॥

मम सन्ति प्रियतरा गन्धर्वेपुरगेषु च । युधानो रतिशूराश्च कामशास्त्रविशारदाः ॥ ८८ ॥

विशेषतः शशाधरे स्नेहो मे विद्यते परः । ततोऽतिरिक्तः सर्वस्मादपि कामः प्रियो मम

प्रियो मे कामसदृशो न भूतो न भविष्यति ।

स्मरस्य स्मरणात् तूष्णं सुस्निग्धं मानसं मम ॥ ९३ ॥

इत्येवं कथितं सर्वमात्मनो योपितामपि । भ्रातां कुरुमहाराज यास्यामिचन्द्रसन्निधिम्

चन्द्रस्थानात्तत्र स्थानं समागत्य सुनिश्चितम् । सन्तोषं तत्र दैत्येन्द्रकरिष्यामिनसंशयः

ध्रुत्वैवं बलिपुत्रञ्च जहासोच्चैः पुनः पुनः । सा वक्रचक्षुपालोका तं जहास स्मरानुरा ॥ ९४ ॥

छलेन दर्शयामास कठिनं स्तनयोर्युगम् । चारुचम्पकवर्णाभं घर्तुलं पीनमुच्छ्रितम् ॥ ९५ ॥

धोर्णी सुकठिनां रम्यां रग्मास्तम्भविनिन्दिताम् ।

रहःस्थानं समासाद्य कामेन हतचेतसा ।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी लोचनाभ्यां पपी मुखम् ॥ ६६ ॥

तस्य रूपञ्च घेशञ्च दर्शं दर्शं पुनः पुनः । मुखस्याच्छादनं भावात् कुर्वन्तीसूक्ष्मयाससा  
प्रतिफलामातुरां हृद्वा सुप्राहो बलिनन्दनः । एप्रच्छकामिनीं कामी भावं विज्ञातुमुत्सुकः  
साहसिक उवाच ।

कं करिष्यति मां सत्यं वद पङ्कजलोचने । कार्प्यान्तरं करिष्यामि सुचिरंस्थानुमक्षमः

कामिनीपु यलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये ।

विशेषतोऽतिविदुषां नास्माकं स्यकुलोचितः ॥ १०३ ॥

द्वारं देहि धामच्छ रतिं कर्तुं सुरान्तिके । कःक्षमोघा घर्षीकर्तुं पुंश्चलीयहुगामिनीम्  
तपस्य वचः धृत्या शुष्ककण्ठीष्टतालुका । भात्मानमधमंमन्या मिथ्यमानास्मरावृतः  
तिलोत्तमोवाच ।

कथमेवं मूढि त्वं मे कान्त प्राणाधिकः प्रियः ।

कथं वा कोपयुक्तोऽसि कुरु कार्यं मनीषितम् ॥ १०६ ॥

स्वामेवं विमुचं हृत्या यामि चन्द्रान्तिकं यदि ।

तवाभिरापासत्रैव सद्यो विप्रो भविष्यति ॥ १०७ ॥

वहारं कुरु मद्रं ते करिष्यति हृदिः स्वयम् । वदे वदे शुभं तस्य वः स्त्रीमानञ्च रक्षति  
वपमन्य स्थिरं मूढो यो याति पुरुषाधमः । वदे वदे तदशुभं करोति पार्यती सती ॥

तिलोत्तमापनः धृत्या जहास बलिनन्दनः । कामशास्त्रेषु निष्णातस्तद्वायं बुबुधे सुधीः  
वायं विहाय भाषयः कामशास्त्रविरारदः । करे धृत्या समाश्लिष्य सुसुम्बमुगण्डूजम्  
गाम व तया सार्द्धं गन्धमादनगह्वरम् । ददर्श तत्र गत्या न स्थानं जन्तुपिपत्रितम् ॥

श्लेष्य रत्नार्थिणां धूपञ्च सुमनोहात् । शय्यां रतिकर्त्री हृत्या सुप्याय व तया सद्  
नामकारभृङ्गारञ्चकार काममोहितः । तिलोत्तमा तं बुबुधे सुगदपि विषयज्ञम् ॥

परितरतो मुष्टा बभूव रतिवेत्सवः । दिवानिशं न बुबुधे नवसद्गममूर्च्छिता ॥ ११५ ॥  
तिलोत्तमा कामभाषाद् बलिबुधमुवाच ह । हृत्या वक्षति प्राप्तेः स्मरणपोरन्तरे मुष्टा

निमेषरहिता तस्य लोचनाभ्यां पद्मौ मुखम् ॥ ८० ॥

योनौ जलं क्षरेत्तस्याः सद्यः कण्डूयनं भवेत् ।

मनोऽतिलोलमस्यैव्यं सर्वाङ्गानि चकम्पिरे ।

जड्भीतं शरीरञ्च प्रदग्धं मदनानलात् ॥ ८१ ॥

संप्राप्य तं चेद्रहसि सालापं कुरुते स्फुटम् । सकटाक्षं स्मेरवक्त्रं दर्शयित्वा पुनः पुनः  
तथा यदि वशं कर्तुं न शशाक जितेन्द्रियम् । स्वमङ्गं दर्शयित्वातमन्तर्वाक्यं स्फुटं परैः  
दुःसाध्ये नाथके दुःखं भवेदाजन्म जन्मनि । तत्सूत्र्यं तत्परं प्राप्य तं विस्मरति पुंश्चली

पुंश्चलीनामप्रियः कः कः प्रियो वा महीतले ।

योऽतिशृङ्गारनिपुणः स च प्राणाधिकः प्रियः ॥ ८५ ॥

पूर्वजारं पति पुत्रं भ्रातरं पितरं प्रसूम् । विशिष्टं नूतनं प्राप्य सर्वं त्यजति लीलायात्  
न दानेन न मानेन सत्येन स्तवनेन वा । नोपकारेण प्रीत्या वा सा साध्या सुरतिविता  
शयने भोजने चापिम्बज्जेजानेदिवानिशाम् । नित्यं सन्पुरुषाश्लेषं स्मरन्तिकुलटाः स्त्रिय  
शृङ्गारनिपुणानाञ्च ध्यानसाध्या चिरं परम् । दादृणापुंश्चली जातिः प्रार्थयन्ती सर्वं नयम्  
सर्पासां कुलटानाञ्च चरित्रं कथितं मया । अकथ्यं गोपनीयञ्च मम हृदयनं शृणु ॥ ८६ ॥  
मम सन्ति प्रियतरा गन्धर्षेयुरगेषु च । युषानो रतिशूराश्च कामशास्त्रपिशारदाः ॥ ८७ ॥  
विशेषतः शशापरे स्नेहो मे विद्यते परः । ततोऽतिरिक्तः सर्वस्मादपि कामः प्रियो मम

प्रियो मे कामसदृशो न भूतो न भविष्यति ।

स्मरन्मय स्मरणात् तूष्णं सुस्निग्धं मानसं मम ॥ ८३ ॥

इत्येवं कथितं सर्वमानमनो योयितामपि । भात्रां कुर्महाराज पाम्पामिचन्द्रसप्रियम्  
बन्द्रस्थानात्तव भगानं समागत्य मुनिधियम् । सन्तोषं तव दैत्येन्द्रकरिष्यामिनसंतप  
धृत्येवं बलिपुत्रश्च जहासोद्यैः पुनः पुनः । सा यत्रन्वशुपालोक्ष्य तं जहास स्मगनुरा ॥  
छन्द्रेण दर्शयामास कटिनं स्तनयोपुंगम् । यादव्यमकथयन्नामं वस्तुलं पीनमुच्छ्रितम् ॥ ८४ ॥

शोषी मुकटिनां रम्यां रम्मान्ममविनिन्दिताम् ।

सकटाक्षं स्मेरमुत्तं कपोलं पुलकाक्षितम् ॥ ८८ ॥

रुःस्थानं समासाद्य कामेन हतचेतसा ।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी लोचनाभ्यां पपी मुखम् ॥ ६६ ॥

स्य रूपञ्च वेशञ्च दर्शं दर्शं पुनः पुनः । मुखस्याच्छादनं भाषात् कुर्वन्तीसूक्ष्मयाससा  
रतिकामातुरां दृष्ट्वा सुप्राज्ञो बलिनन्दनः । पप्रच्छकामिनी कामी भावं विहातुमुत्सुकः  
साहसिक उवाच ।

कं करिष्यति मां सत्यं वद पङ्कजलोचने । कार्प्यान्तरं करिष्यामि सुचिरंस्थातुमक्षमः  
कामिनीपु बलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये ।

विशेषतोऽतिविदुषां नास्माकं स्वकुलोचितः ॥ १०३ ॥

ङ्गारं देहि पागच्छ रतिं कर्तुं सुरान्तिके । कःक्षमोषा वशीकर्तुं पुञ्जलीं बहुकामिनीम्  
नवस्य घवः धृत्वा शुष्ककण्ठीष्टालुका । आत्मानमधममन्या भिद्यमानास्मराखतः  
तिलोत्तमोवाच ।

कथमेवं ब्रूहि त्वं मे कान्त प्राणाधिकः प्रियः ।

कथं वा कीपयुक्तोऽसि कुरु कार्प्यं मनीषितम् ॥ १०६ ॥

त्वामेवं विमुखं हृत्वा यामि चन्द्रान्तिकं यदि ।

तयाभिशापान्त्रैव सद्यो विप्रो भविष्यति ॥ १०७ ॥

।हारं कुरु मद्रं ते करिष्यतिहरिः स्वयम् । पदे पदे शुभं तस्य यः स्त्रीमानञ्च रक्षति  
घमन्य स्त्रियं मूढो यो याति पुरुषाघमः । पदे पदे तदशुभं करोति पार्वती सती ।  
लोत्तमापचः धृत्वा जहास बलिनन्दनः । कामशास्त्रेषु निष्णातस्तद्ग्रावं बुबुधे सुधी  
त्वं विहाय भावहः कामशास्त्रविशारदः । करे धृत्वा समाश्लिष्य बुबुध्म्युत्पङ्कज  
गाम च तया सादं गन्धमादनगह्वरम् । ददर्शत्त्र गत्वा च स्थानं जन्तुविचर्जितम् ।  
साप्य रत्नादीपांश्च धूपञ्च सुमनोहरम् । शय्यां रतिकरीं हृत्वा सुष्याप च तया सा  
लाप्रकारगृह्णारञ्जकार काममोहितः । तिलोत्तमा तं बुबुधे सुरादपि विचक्षणम्  
परीतरती तुष्टा बभूव रसिकेश्वरी । दिवानिशं न बुबुधे नयसद्गममूर्च्छिता ॥११५॥  
लोत्तमा कामभाषाद् बलिपुत्रमुपाच ह । हृत्वा वक्षति प्राणेशं

तिलोत्तमोवाच ।

कदा द्रक्ष्याम्यहं कान्त मुखचन्द्रं मनोहरम् । एवंभूतं शुभदिनं कदा मे भविता पुनः ।  
अपि किं रूपमाश्चर्य्यं गुणो वा तव दानव । ध्रुवंशृङ्गारनिपुणस्त्वत्परो नास्तिकश्चरः ।

मां विस्मरसि कालेन पुरुषः पदपदो यथा ।

स्त्रीणां सत्पुरुषाश्चेय आजीवं मनसि स्थितः ॥ ११६ ॥

सत्सङ्गमः शुभदिने पुण्यात् पुण्यवतां भवेत् । सद्दिच्छेदो दुःखहेतुर्मरणादतिरिच्यते  
पीयूषभोजनात्स्वर्गवासादपिचदुर्लभः । सत्सङ्गमः सुखमयोऽप्यसत्सङ्गोविषाधिक  
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरालिङ्गनं कुरु । त्वया सार्धं मम प्राणा यास्यन्ति चेतसा सह  
इत्येवमुक्त्वा कुलटा हृत्या घक्षसि सादरम् । पुमङ्गसङ्गोत्पुलका मूर्च्छामाप सुखेन च  
कुलटालिङ्गनालापात् सोऽतिकामी बभूव ह ।

यथा दीप्तः कृष्णघर्तमां वर्धते हविषाधिकम् ॥ १२४ ॥

पुनश्चकार शृङ्गारमसुरोऽष्टविधं मुने । चुष्यन्ञ्च तपविधं यथास्थाने यथोचितम् ।  
नष्टदन्तकरैः प्रीष्टां चकार विविधां पुनः । किङ्किणीनां फङ्गुणानां यभूव शब्द उन्नमः  
मुनेर्दुर्वाससस्तेन ध्यानमङ्गो यभूव ह । अदृष्टस्य तयोस्तत्र घलमीकाच्छादितस्य च ।  
योगासनं कुर्यंतश्च गन्धमादनगह्वरे । ध्यायतश्चरणाभ्मोजं कृष्णस्य परमात्मनः ।

न पपात तयोर्दृष्टिः समीपस्थे महामुनी ।

कामात्मनोर्न हि ज्ञानं कामेन हतचेतसोः ॥ १२६ ॥

सदसा चेतनां प्राप्य प्राचलन् प्रह्वनेजसा । ददरां पुरतस्ती तु मुनिरन्मीलय सौख्ये ।  
दिवान्तरां न जानन्ती मंयुर्कां काममोहितौ ॥ १३० ॥

दृष्ट्वा युकोप ते प्रसर्षी द्दारांशो भगवान् विमुः । उपायतो विहारान्ते रक्तगङ्गात्प्रदीपक  
ध्यानप्राप्तपदाम्भोजविष्टे शोद्धिप्रमानसः ॥ १३१ ॥

दुर्पासा उपाय ।

उत्तिष्ठ गर्भमाकार नित्यं च पुरुषाथम । मन्त्रप्रपालस्यं वनेः पुत्रः पशुसमप्रमः ॥ १३२ ॥  
देवो वा मानवो वापि वैश्वगन्धर्वराशमाः ।

लज्जां कुर्वन्ति सततं स्वजातौ च पशून् विना ॥ १३३ ॥

ज्ञानलज्जाविहीना च खरजातिर्विशेषतः । तस्मात्त्वं दानवश्रेष्ठ खरयोनिं ब्रजाधुना ॥  
तिलोत्तमे त्वमुत्तिष्ठ लज्जाहीना च पुंश्चली । पतादृशीस्पृहा दैत्ये यज योनिञ्च दानवीम्  
त्येवमुत्तवास मुनिस्तस्यौ तत्ररुपा ज्वलन् । तौ च तुष्टुवतुर्भौतावुत्थाय प्रीङ्गितौ मुनिम्  
साहसिक उवाच ।

वंप्रहात्वञ्च विष्णुश्चत्यञ्चसाक्षान्महेश्वरः । हुताशनस्त्यंसूर्य्यञ्चसृष्टिस्थित्यन्तकारकः  
समापराधं भगवन् कृपां कुरु कृपानिधे । मूढापराधं सततं यः क्षमेत् स सदीश्वरः ॥  
त्येवमुत्तवा दैत्येन्द्रो रुरोदोच्चैः पुरो मुनेः । कृत्वा तृणानि दशने पपात चरणाम्बुजे ॥  
तिलोत्तमोवाच ।

नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपांकुरु । विधिसृष्टीं च सर्वेषां मूढा स्वीजातिरेष्वच  
ततोऽतिमत्ता कुलटा सदा कामातुरा परा ।

लज्जामीतिचेतनाश्च न सन्ति कामुके विभो ॥ १४१ ॥

युत्तवा रोदनं कृत्वा जगाम शरणं मुने । विना विपत्तीं केषाञ्चिज्ज्ञानं भवति भूतले  
रोर्दृष्ट्वा च वैकल्यं बभूव करुणा मुनेः । उवाच ताभ्यामभयं दत्त्वा मुनिपरो मुने ॥  
दुर्वासा उवाच ।

तेशापः प्रसादो वा भवेद्दैवेन दानव । सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा प्राक्तनप्रभया ध्रुवम् ॥  
विष्णुमक्तबलेः पुत्रः सदंशप्रभवो जनः ।

जनकाद्विष्णुमक्तोऽसि जानामि त्वां सुनिश्चितम् ॥ १४५ ॥

कस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठतिनिश्चितम् । यथाश्रोहृष्णपादाङ्कः कालीयवंशमस्तके  
नाप्य गार्दभौ योनिं घत्स निर्वाणतांयज । पूर्वहृष्णाचर्चनफलं हि लुप्तसतां चिरान्  
घृन्दारण्यं तालघनं यज शीघ्रं यजान्तिकम् ।

प्राणांस्त्यक्त्वा हरेश्चकान्मुक्तिं प्राप्स्यसि निश्चितम् ॥ १४८ ॥

लोत्तमे भारते त्वं बाणपुत्री भविष्यसि । धीहृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि  
वेषमुत्त्वा स मुनिर्विरराम महामने । तौ जगत्तर्कगणनां



इत्युक्तं सर्ववृत्तान्तं दैत्यस्य खरजन्मनः । तिलोत्तमा याणपुत्री ह्युपानिन्दकामिनी ।  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे तिलोत्तमाबलि-  
पुत्रयोर्ब्रह्मशापप्रस्तावो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

## चतुर्विंशोऽध्यायः

कन्दलीदुर्वाससोः परिणयः ।

श्रीनारायण उवाच ।

निगूढं शृणु वृत्तान्तं मुनेर्दुर्वाससो मुने । महोऽस्य दारसंयोगः कथं तदूर्ध्वरेतसः ॥१॥  
दृष्ट्वातयोश्च शृङ्गारं मुनिः कामीयभूवह । जितेन्द्रियोऽसत्संसर्गाद्दोषः सांसर्गिको भवेत्  
सहसा तस्य हृदये बभूव सुरते स्पृहा । तपस्तप्त्वा तत्र दध्यौ कामिनीं मदनानुत् ।  
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति मुनीभ्यरः । प्रार्थयन्त्या पतिं सन्तमोर्वक्ष सुतया सह ॥  
ऊरुद्वयो ब्रह्मणश्च पुराकल्पे तपस्यतः । ऊर्ध्वरेताश्च योगीन्द्र और्ध्वस्तेन इति स्मृतः ।  
तस्य जानूद्वया कन्या कन्दली नाम विधृता ।

दुर्वाससं प्रार्थयन्ती नान्यं मनसि रोचते ॥ ६ ॥

ससुतो हि मुनिधेष्ठो मुनेर्दुर्वाससः पुरः । तस्यै महाप्रसन्नश्च उपलब्धिशिशोपमः ।  
मुनीन्द्रोऽपि मुनीन्द्रं तं पुरो दृष्ट्वा ससम्भ्रमः । प्रजयेन समुत्सवी ननाम च मुदान्वितः  
और्ध्वौ दुर्वाससं तत्र समाश्रित्य मुदान्वितः । उवाच मुनये सर्वं कन्यकाया मनोरथम्  
और्ध्वं उवाच ।

विख्याताकन्दलीनाम मम कन्यामनोहरा । प्रौढास्यामेपध्यायन्ताश्रुत्यायाचिक्यकन  
भयोनिसम्भया कन्या ब्रह्मोक्तं मोहितुं क्षमा । सर्वरूपगुणाधारा दोषैर्जिज्ञे संयुक्ता  
— कन्या । नानागुणयुतं द्रव्यं न त्यजेदेकदोषतः ॥१॥

तरत्पार्येणचन्द्रास्यां शरत्पद्मजलोचनाम् । ईषदास्यप्रसन्नास्यां पीनधोणिपयोधराम् ॥  
 त्रयोपनसंयुक्तां परपत्नीं यत्रचक्षुष्या । रत्नालङ्कारोभास्यां यद्विशुद्धांशुकान्विताम् ॥  
 [निर्ममोह तां दृष्ट्वा कामयाणप्रपीडितः । उपाय तं मुनिधेष्टं हृदयेन विदूयता ॥ १६ ॥  
 दुर्पांसा उपाय ।

नारीरुपं त्रिमुषने मुनिमार्गनिरोधनम् । व्यपधानं तपस्यायाः स्तनं मोहकारणम् ॥  
 कारागारे यत्संसारे दुर्घटं निगडं परम् । अछटेयं ज्ञानवद्भूषणं महद्भिः शङ्करादिभिः ॥  
 राङ्गिच्छायातिरिक्तञ्च कर्मभोगान् परान्परम् ।  
 इन्द्रियादिन्द्रियाधाराद्विद्यायाश्च मनेरपि ॥ १६ ॥

आदेहंराङ्गिनीं छाया भोगान्तंभोगं पश्य । देहेन्द्रियाणि जीवान् विद्याधिपापशीलम् ॥  
 मतिधोपापशीलान्तासुस्त्रीजन्मनिजन्मनि । पापघ्नीर्ष्यान्सुस्त्रीकोन तापघ्नमगण्डनम् ॥  
 यापय जीविनो जगत्तापघ्नोः सुखापहः । परं मुनीन्द्र शर्यंस्माद्विद्यादाहजरोपनम् ॥  
 ध्यायतः हाजपादात्तं मम विप्रो बभूव ह । न जाने कर्मदोषेण केन वा पूर्वजन्मनः ॥  
 पुंश्चक्षुष्या सह शृङ्गारं दृष्ट्वा दैव्यस्य मगमन । बभूव कामसंयुक्तं दर्शनं धात्रा यत्तत्पश्यम् ॥  
 बिजयतं तव काम्यायाः कटुनिजानक मुने ।

धुर्घं क्षमां कविष्यामि दास्यामि यत्तत् पश्यम् ॥ २५ ॥  
 सर्वतोऽपिपरा निन्दा श्दीकटुनिजसटिणुका । क्षमापनिन्दितं तस्यसु स्त्रीतिनोभुवनत्रये ॥  
 तवाञ्च मगमके हृत्वा श्दीप्यामि सुतांशु । उपेतो कामिनीं त्यक्तया बाल्यपूर्वमजेश्वरः ॥  
 एतन्मुपनिधानं कामान् पुंश्चक्षुषी वेष्टितेन्द्रियः ।  
 पत्न्यज्जेटर्ममपादपमांशरत्नं श्रेष्ठम् ॥ २६ ॥

शुद्धेयमुक्त्वा दुर्वांसा विरगाम ह्रीः पुनः । मुनिर्देहोःकविधिता दहो ताम्पै मुनिं मुने ॥  
 श्वासीन्पुत्राश्च दुर्पांसा मुनिश्च कौतुकं दहो । कल्याणमार्गं हृत्वा मोहादहो दहो ह ॥  
 मुक्त्वांशुवाय ह्यमुनि इवकथाविरहापुनः । अत्यन्तमेहतांशुं यत्तत्तत्पश्यम् ॥  
 श्लोकं विवर्ता श्वाय बोधयायास कल्पकाम् ।  
 मुक्त्वांशुं तत्पत्न्यज्जेटर्ममपादपमांशुं

भार्यं उवाच ।

शृणु वदसे प्रपश्यामि मीनिसारं तुदुर्लभम् । द्विजं सख्यञ्च वैशोकं परिजाममुवाच वरं

स्यकान्ताञ्च परो वन्द्युर्हि लोके परत्र च ।

न हि कान्तान् परः प्रेषान् कुन्दस्त्रीणां परो गुणः ॥ ३५ ॥

देवपूजाप्रथं दानं तपश्चानशनं जपः । ध्यानञ्च सर्वतार्थेषु दीक्षा सर्वमनेषु च ॥ ३६ ॥

प्रादक्षिण्यं पृथिव्याञ्च प्रातःकालातिथिभेषणम् ।

सर्वाणि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति परोद्देशाम् ॥ ३६ ॥

किमेतैः पतिमत्काया भगवत्कायाश्चमारते । यदादुःखं सुखारम्भे साकाङ्क्षःप्रथमोमेव

पतिसेवा परो धर्मः सर्वशास्त्रेषु पश्यते । स्वप्रधानेन सततं कान्तं नारायणाधिकम् ।

दृष्ट्वा तच्चरणाम्मोजं संवां नित्यं करिष्यति ॥ ३८ ॥

परिहासेन कोपेन भ्रमेणावश्यामुने । कटूक्तिः स्वामिनः साशान् परोश्चान्न करिष्यति

स्त्रियो पाण्योनिदुष्टायाः कामतोमारतेभुवि । प्रायश्चित्तं श्रुतानास्तिनरकं प्रलयः शत्रु

सर्वधर्मपरीता या कटूक्तिं कुर्वते पतिम् । शतजन्मदृष्टं पुण्यं तस्या नश्यति निश्चितम्

दृष्ट्वाकन्यांयोधयित्वाजगाममुनिपुङ्गवः । स्वात्मारामंस्वाश्रमेव तस्योस्त्रीसहितोमुने

सम्मोगेच्छावृते चित्ते कामी संप्राप कामिनीम् ।

अहो सुकृतिनां कामो वाञ्छामात्रेण सिध्यति ॥ ४३ ॥

शय्यां रतिकरिं कृत्वा मुनिश्रेष्ठोमहामुने । शुभे क्षणेतां गृहीत्वा सुप्याप निर्जनेप्रियाम्

नारीरसानभिष्टः स्यादाजन्म मुनिपुङ्गवः । तथापि सुरतो वित्तः कामशास्त्रविशारदः

नानाप्रकारवृद्धास्त्रकार विधिपूर्वकम् । नवसङ्गममात्रेण मूर्च्छां संप्राप कन्दली ॥ ४६ ॥

मूर्च्छां प्राप मुनिश्रेष्ठो बुबुधे न दिवानिशम् । एवं प्रतिदिनं तत्र चकार सुरर्ति मुने

विदग्धाया विदग्धेन बभूव सङ्गमः समः । संयभूव गृहासकस्तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः

स्नेत्रि कलहं नित्यं कन्दली स्वामिना सह ।

सातप्रदत्तमानेन सा न शान्ता यभूव ह ॥ ५० ॥

न जहाति प्रबोधेन स्वभावो दुरतिक्रमः । नित्यं कटूक्तिं फान्तंसा करोति हेतुनायिना  
जगत् प्रकम्पितं येनतया कोपात् स कम्पितः । तथाकृतां कटूक्तिञ्च क्षमसंस्थाचकारह  
बोधयामास तां नित्यं सद्यो मोहाद्दयानिधिः । कटूक्तिशतकं पूर्णं तत्कालेन यभूव ह  
क्षमां चकार कृपया कटूक्तिञ्च शताधिकाम् । पत्नीकटूक्त्या नियतं प्रदग्धं मानसं मुनेः

तस्याः कटूक्तिकारिण्याः कर्म पूर्णं यभूव ह ।

स्वात्मारामो दयालुश्च कोपं त्यक्तुं न सक्षमः ॥ ५५ ॥

शशाप कामिनीं मोहाद्भस्मराशिर्भवेति च । मुनेरिद्विगतात्रेण भस्मसात् सा यभूव ह  
एवमत्युच्छ्रितानाञ्च न कल्याणं जगत्त्रये । शरीरेभस्मसाद्भूते प्रतिविम्बः स चात्मनः

जीवस्तत्रान्तरिक्षस्थो ह्युवाच विनयात् प्रभुम् ॥ ५८ ॥

जीव उवाच ।

हे नाथ सर्वदर्शी त्वं सततं ज्ञानचक्षुषा । सर्वं जानासि सर्वज्ञ किमहं बोधयामि ते ॥  
सदुक्तिर्वा कटूक्तिर्वा कोपः सन्ताप एव च ।

लोभो मोहश्च कामश्च ध्रुत्पिपासादिकश्च यत् ॥ ६० ॥

स्योत्पंकार्यञ्च नाशश्च दृश्यादृश्यं समुद्भवम् । सर्वशरीरधर्मञ्च न जीवस्य न चात्मनः  
सत्त्वं रजस्तम इति शरीरं त्रिगुणात्मकम् । तच्च नानाप्रकारञ्च निबोध कथयामि ते  
किञ्चित्सत्त्वातिरिक्तञ्च किञ्चिदेवरजोधिकम् । तमोऽतिरिक्तं किञ्चिच्चनसमंकुत्रचिन्मुने  
सत्वोदयाच्च मुक्तौच्छाकर्मच्छाचरजोगुणात् । तमोगुणाज्जीवहिंसाकोपोऽहङ्कारएवच  
कोपात्कटूक्तिनियतं कटूक्त्यां शत्रुतामवेत् । तथाचाप्रियता सद्यः शत्रुः कः कस्यभूतले

को वा प्रियोऽप्रियः कः किं मित्रं को रिपुर्भवेत् ।

इन्द्रियाणि च बीजानि सर्वत्र शत्रु मित्रयोः ॥ ६६ ॥

प्राणाधिकः प्रियः सूत्रीणां भर्तुः प्राणाधिका प्रिया ।

यभूव शत्रुता सद्यो दुरुक्त्या च क्षणाद्द्वयोः ॥ ६८ ॥

यद्गतं तद्गतं सर्वं कामदोषेण वै प्रभो । क्षमापरार्थं निखिलं

किं करोमि क्व गामोनिमविना कृत्र जन्म मे । तानान्यपश्य ज्ञायार्हमविष्यामि जन्मने  
 इत्येषमुक्त्या ज्ञापय मीमोभूतो यमुप ह । भूस्त्रांमया स मुनिः शोकेन हन्नेन ।  
 श्यान्मागामो महातानीजहारनेननामहो । स्त्रीविहारेणो विद्व्यानां सार्थो कान्तस्तनः ।  
 क्षणेन नेतनां प्राप्य प्राणांम्यभुं समुद्यतः । तत्र योगासनं कृत्वा गकार वायुजान्  
 पतन्मिधन्तरे तत्र जगाम प्राहणोऽर्भकः ।

दण्डी चप्री व्यापासा विघ्ननिलकमुत्तमम् ॥७३॥

सरिमतः श्यामवर्णश्च प्रप्यलन् प्राहणेजसा । पपस्तातिशयुः शान्तोज्ञानी वेदविद्विषः  
 दृष्ट्वा तं सम्प्रमेणीय दुर्पांसाः प्रपनाम ह । पासयामास तत्रैव पूजयामास मक्तिः ।  
 उपाय प्राहणपटुर्दस्या तस्मै सदाशिवम् । तद्दर्शनादाशिस य सयं दुःखं गतं मुने ।  
 शिशुरूपं क्षणं स्थित्वा तमुपाचधिचक्षणः । पीयूषतुल्यं नित्योऽयं नीतिशास्त्रविद्यासः  
 शिशुरयाच ।

सयं जानासिसर्वज्ञ गुरोर्मन्त्रप्रसादतः । किं तस्यं त्वामहं विप्र पृच्छामिशोककालम्  
 प्राहणानां तपो धर्मस्तपः साध्यं जगत्त्रयम् ।  
 स्वधर्मं धै परित्यज्य किमिदानीं करोषि भो ॥ ७६ ॥  
 का कस्य पत्नी कः कान्तः कस्या धा भुवनत्रये ।  
 मूर्खाणां घञ्जनां फलं करोति मायया हरिः ॥ ८० ॥

मिथ्यापत्नी तत्रेयञ्च क्षणात्तेनगताधुना । न हि सत्यमदृश्यञ्च मिथ्या यत्राचिरस्थिति  
 एकानंशा च भगिनी घसुदेघसुता हरेः । पार्वत्यंशसमूहभूता सुरीला चिरजीविनी ।  
 कल्पे कल्पे सुन्दरी सा तव पत्नी भविष्यति । मनोदेहि तपस्यायां मुदा कतिपर्यंदिनम्  
 कन्दली कन्दलीजातिर्भविष्यति महीतले । शुभदा फलदा कान्ता सहस्रसूता सुदुर्लभा  
 कल्पान्तरे शान्तरूपा तव पत्नी भविष्यति ।

अत्युच्छ्रितस्य दमनमुचितञ्च धृती धृतम् ॥ ८५ ॥

इत्येषमुक्त्या शीघ्रञ्च विप्ररूपी जनार्दनः । द्रवा हानञ्च विप्राय सोऽन्तर्धानञ्चकार ह  
 - च चर्चं मुमं त्यक्त्वा तपस्यायां मनो दधे । कन्दली कन्दलीजातिर्वभूव घरर्षीतने

स्तालयनं गत्वा यभूय गर्दमाकृतिः । तिलोत्तमा चाणपुत्री यभूय समये मुने ॥८८॥  
 दैत्येन्द्रो विष्णुचक्रेण प्राणांस्त्यक्त्वा सुवाञ्छितम् ।

संप्राप चरणाम्मोजं मुनेरपि सुदुर्लभम् ॥ ८९ ॥

३ तिलोत्तमा भूत्वा जगाम स्यालयं पुनः । कृष्णपौत्रालिङ्गनेन परिपूर्णमनोरथा ॥  
 इत्येवं कथितं श्रुत्वा श्रीकृष्णाख्यानमुत्तमम् ।

पदे पदे सुन्दरञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे तालभक्षणप्रसङ्गे यलिपुत्र-  
 मोक्षणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

### पञ्चविंशोऽध्यायः

दुर्वाससं प्रति और्वशापः ।

नारद उवाच ।

श्रुतं किमद्भुतं ब्रह्मन् हरेश्चरितमङ्गलम् । विशेषतस्तव मुखे हातीव सुमनोहरम् ॥ १ ॥  
 मृतायां मुनिकन्यायां शापाद् दुर्वाससो मुने ।

समागत्य किं चकार तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सरस्वतीनदीतीरे तपस्यां कुर्वतो मुनेः । पपात धौतमूर्धाञ्च धार्यमाणञ्च धायुना ॥  
 पृथिव्यां पतितंबल्ले तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः । ध्यातेन बुबुधे सर्वं कन्यासम्बन्धिसङ्कट

जगाम शोकाविष्टोऽपि तूष्णं जामातुराश्रमम् । सिपेचपृथिवीरेणून् शश्वन्नयनविन्दुः  
 गत्यालयसमीपञ्च विप्रः कातरमानसः । हे घत्से कन्दलीत्येवमुवाच च पुनः पुनः

भवशुरस्य स्वरं ज्ञात्वा दुर्वासा भयचिह्नलः । घर्हिर्यभूव शीघ्रञ्च पपात चरणाम्बुजे ॥७॥  
 प्रणम्य भवशुरं शोकाद्विललाप भृशं पुनः । संप्राप्य चेतनां शीघ्रमुवाच तं पुरस्थितम् ।

जामातं शोकान्तं भीमं प्रजतकम्भम् । महारोकात्पूर्णागतदुःखलोचनम् ।  
कोपान् कम्पितवान् शभ्यम् संत्रस्तम् स्फुरिताम्बरः ॥ ११ ॥  
भीयं उवाच ।

भद्र प्रपन्नप्रियंश्य पौत्रस्त्रयं जगतीयनेः । स्वल्पदोषे यदुत्तरः एतौ दण्डस्त्वया कल्प  
त्यज्जन्म शङ्करांशेन शिष्यस्त्वय जगद्गुरोः ।

वेदवेदाङ्गपिञ्जल सयंभो गुणवान् स्वयम् ॥ ११ ॥

भनुग्या महासाध्या कमलांशा त्व प्रभूः । न जाने केन दोषेण त्व येतादृशी मतिः ।

गुणवान् जनको यस्य माता गुणवती सर्वा ।

तयोः पुत्रो दयाहीनो गतिः सूक्ष्मा श्रुतेर्गदो ॥ १२ ॥

मम प्राणाधिका कन्या मुदा त्वयि समर्पिता ।

महागुणान्विता स्वल्पदोषेण परिमिश्रिता ॥ १४ ॥

पाण्डुष्टायाश्च दण्डो हि परित्यागः श्रुतौ श्रुतः ।

त्वया यदि परित्यक्ता पित्रा यत्नेन पालिता ॥ १५ ॥

मदपत्यं स्वल्पदोषे यतो भस्मीकृतं त्वया । परामवस्तथ महान् भविष्यति न संशयः ।

महतां क्षुद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा ।

क्ष्ण्टा पाता च शास्ता च भगवान् कहणानिधिः ॥ १७ ॥

इत्युत्तवाच मुनिश्रेष्ठो विलप्य च पुनः पुनः । हेयत्से घत्स इत्युत्तवा जगामस्वालम्बरात् ।

गते मुनीन्द्रे दुर्घासा विललाप भृशं पुनः । ज्ञानेन विस्मृतः शोको बभूव द्विगुणपुनः ।

शोकानलो हि कालेन संच्छन्नो ज्ञानमस्मना । बन्धुदर्शनशुष्येन्धदानेन वर्द्धतां पुनः ।

स्मारं स्मारं प्रियां तत्र विलप्य च पुनः पुनः ।

बोधयित्वा घ्नमं सर्वं तपस्यायां मनो ददौ ॥ २१ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं मुनेः शापस्य कारणम् । बभूव तस्य कालेन दुःसहश्च परामवः ।

नारद उवाच ।

दुर्घासाः शङ्कर — जिवतल्यश्च तेजसा । तेजस्वी को महानेव चकार तत्परामवम् ।

नारायण उवाच ।

म्बरोषो हि राजेन्द्रः सूर्यवंशसमुद्भवः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजे तन्मनः सन्ततं मुने ॥

राज्येषु न भार्यासु न पुत्रेषु प्रजासुच । न संसत्सु क्षणं चित्तं पूर्वकर्माजितासु च

गायतेऽहर्निशं धर्मो स्वप्नेज्ञाने हरिमुदा । महान् जितेन्द्रियःशान्तो विष्णुव्रतपरायणः

द्वादशीव्रतरतः कृष्णपूजासु तत्परः । सर्वकर्मसु लिप्तश्च कर्ता कृष्णार्पितेषु च ॥

सुतीक्ष्णं षोडशारं तच्चकं नाम सुदर्शनम् । तेजसा हरितुल्यञ्च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥

ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं पूजितञ्च सुरासुरैः । प्रभुणा रचितं शश्वद्रक्षायै नृपसन्निधौ ॥

एकादशीव्रतं कृत्वा द्वादशीदिवसे सति । स्नात्वा विधायपूजाञ्च कालेन विधिपूर्वकम्

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु भोजनार्थमुवाच ह ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तपस्वी क्षुधितो मुने । दण्डीछत्रो शुक्लवासा विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्

जटिलोऽतिकृशास्त्रस्तः शुष्ककण्ठोऽप्यतालुकः । तत्राजगामभगवान् दुर्वासा नृपतेःपुरः

स च दृष्ट्वा मुनीन्द्रञ्च तमुत्थाय प्रणम्य च । दत्त्वापाद्यञ्च संप्रीत्या स्वर्णसिंहासनं ददौ

तस्मै दत्त्वाशिपं विप्रः समुवाच सुखासने ।

पप्रच्छ राजा तं भीतः काज्ञा ते घद मामिति ॥ ३१ ॥

नृपस्य घचनं श्रुत्वा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः । मां भोजय नृपश्रेष्ठ क्षुधासतोऽहमुपागतः ॥

किन्त्वघमर्षणमन्त्रन्तु जप्त्वा याम्यचिरेण हि ।

क्षणं प्रतोक्ष्यतां राजन्नित्युवाच गतो मुनिः ॥ ३२ ॥

गते विप्रे तु राजर्षिश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् । विलोक्य विगतप्रायां द्वादशीं भयसंयुतः

एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायान्तं गुहं मुदा । नत्वा निवेद्य सर्वन्तु नृपतिः समुवाच ह ॥

नायातिमुनिशार्दूलःप्रयातिद्वादशीतिथिः । सङ्कटेऽस्मिन्निधेयञ्चिविचिच्यविधिपूर्वकम्

शीघ्रं घद मुनिश्रेष्ठ भद्रामद्रञ्च मामिति ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा नृपोक्तिं त्वरितमुवाच मुनिपुङ्गवः । हितं तप्यञ्च वेदोक्तं परिणामसुखायहम् ॥

घशिष्ठ उवाच ।

द्वादश्यां समतीतायां त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।



उपवासफलं हत्वा व्रतितं हन्ति निश्चितम् ॥ ४१ ॥

ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य श्रुतौ श्रुतम् । भक्ष्यद्रव्यं सुरातुल्यमित्याह कमलोद्भवः ।

न भोजयित्वा मूढश्चेदतिथिं समुपस्थितम् ।

स व्रस्तः क्षुधितो भुङ्क्ते कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

शतवर्षं तत्र तिष्ठन्नरक्षाण्डालतां व्रजेत् । व्याधियुक्तो दरिद्रश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ।

अतोऽतिसूक्ष्मं किं ब्रूमोऽधुना परमसंकटे । रक्षां कुरु द्वयोर्धर्मं समालोक्य वदामि ते ।

उपवासफलं रक्ष कृष्णस्य चरणोदकम् । भुत्वा शीघ्रमपो राजन्तद्रक्षणमभक्षणम् ।

इत्युत्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो विरराम महामुने ।

बुभुजे तद्भ्रजलं किञ्चित् कृष्णपादाभ्युजं स्मरन् ॥ ४३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नाजगाम मुनीश्वरः । चिच्छेद कोपात्सर्वज्ञः स्वजटां नृपतेः पुत्रः ।

ततः समुत्थितः शीघ्रं पुरुषोऽग्निशिखोपमः । खड्गहस्तो महाभीमो राजेन्द्रं हस्तमुत्पन्नः ।

दृष्ट्वा सुदर्शनं पिप्रो दुद्राघ भयविह्वलः । द्विजः पश्चात्तं ददर्श ज्वलद्गनिशिखोपमम् ।

ब्रह्माण्डकर्मणं कृत्वा निर्दिष्णोऽतिभयाकुलः । तत्र मत्वा जगन्नाथं ब्रह्माणंशरणं वीरः ।

ब्राह्मि ब्राह्मिन्त्येवमुक्त्वा पिवेश ब्रह्मणः समाम् । उरधाय ब्रह्मा पित्रेन्द्रं परच्छुभ्रजलं ।

सर्वं स कथयामास वृत्तान्तं मूलतोऽधिकम् ।

धृत्वा ब्रह्मा निशरथास तमुवाच भयाकुलः ॥ ५४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

हरिदासं वरस शत्रुं गतोऽसि कस्य नेत्रसा । रक्षिता यस्य भगवान् तत्कोहन्ता जगत्पतिः ।

दुद्राणां महताऽप्येव भक्तानां रक्षणाय च । ररक्ष सगलतत्रापि धीहर्षिकवत्सलः ।

यो मूढो वैष्णवं द्वेष्टि विष्णुवाणसमं द्विज । तस्य मंहारकर्तारं संहर्तुमीश्वरो इति ।

शोभं स्थानान्तरं गच्छ वरस-त्राणं न पाधुना ।

बन्धया त्वां मया सार्धं हनिष्यति सुदर्शनम् ॥ ५८ ॥

दि ब्रह्मलोकं ब्रह्माण्डं दत्तं शकं क्षणेन यम् ।

तेजसा चिष्णुतुल्यं यत् केनान्येन निवार्यते ॥ ५६ ॥

ब्रह्मणो घचनं ध्रुत्वा ततो दुद्राव ब्राह्मणः । वस्तो जगाम कैलासं शङ्करं शरणं ।  
कृपानिधानं मां रक्षेत्युवाच शङ्करं भिया । न हि पप्रच्छ कुशलं सर्वशो ब्राह्मणं ।  
उवाच दीनदीनेशः संहतां जगतां क्षणात् । स्थिरो भव द्विजश्रेष्ठ प्रदीपं घचनं ॥ ५६ ॥

शङ्कर उवाच ।

पौत्रस्त्वं जगतां धातुरत्रेश्वर तनपो मुने । वेदज्ञातासि सर्वज्ञ मूर्खतुल्यन्तु कर्म  
वेदेषु च पुराणेषु चेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितो यः सर्वशस्तं न जानासि मूढ

अहं ब्रह्मा च रद्रश्च आवृत्त्या घसघस्तथा ।

घर्मेन्द्री च सुराः सर्वे मुनीन्द्रा मनवस्तथा ॥ ६५ ॥

आचिर्मृतास्तिरोभूता यस्य भूमङ्गल्लोला ।

तस्य प्राणाधिकं भक्तं हंसि त्वं कस्य तेजसा ॥ ६६ ॥

अहं ब्रह्मा च कमलादुर्गा घाणी च राधिका ।

न हि भक्तात्पराः प्रेम्णा भक्ताश्च सर्वतः प्रियाः ॥ ६७ ॥

शुद्रांश्च महतो भक्तान् शश्वद्रक्षति यत्नतः । सर्वान्तरात्मा भगवान् चक्रेण दुःसहे  
नियुज्य चकंदुर्वाढ्यं स्वात्मतुल्यञ्चतेजसा । तथापि न प्रतीतिश्चस्वयंगच्छतिरसि  
स्पर्कीयगुणनाम्नाश्च ध्रवणादतिसंन्नमः । भक्तसङ्गे भ्रमत्येव छायेव सन्ततं हा

कान्ता प्राणाधिका शश्वन्नहि कोऽपि ततोधिकः ।

भक्तान् द्वेष्टि स्वयं सा चेतूर्णं त्यज्यति तां प्रभुः ॥ ७१ ॥

सर्वेषाञ्च प्रिया विद्याः स्वशरीरादपि द्विज । ब्राह्मणेभ्यः प्रिया भक्ताः प्राणेभ्यश्चदरे  
ईश्वरस्य प्रियः को वाप्रियः को वा जगत्त्रये ।

यः शिष्टस्तं भजेच्छश्वद् ध्यायते सततं सदा ॥ ७३ ॥

महति प्रलये ब्रह्मन् ब्रह्माण्डोपे जलप्लुते । न तत्र नाशो भक्तानां सर्वेषाञ्च भवि  
भन्न ब्राह्मण गोविन्दं स्मर तस्य पदाम्बुजम् । सर्वापदोचिनश्यन्ति-धीहरीः स्मरण  
यत्न शीघ्रञ्च वैकुण्ठं वैकुण्ठः शरणं तव । दास्यत्येषामयं तुभ्यं करुणासागरो वि

एतस्मिन्नन्तरे ध्यायं क्रीलासं चकमेजसा । यथा च मूर्त्यङ्किरणीः सुप्रदीप्तं मदीकृतम् ॥  
 दग्धा ज्वालाकरालैश्च सर्वे क्रीलासपासिनः । त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा शङ्करं शरणायतुः  
 दृष्ट्वा चक्रं दुर्घियहं शङ्करः करणानिधिः । पार्थङ्ग्या सह मंद्रीत्या ब्राह्मणायाशिनं दूरी  
 तेजः सत्यं तपः सत्यं यदि चेत्शिरसञ्जितम् ।

एतापराधो भीतश्च द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ८० ॥

पार्थङ्गुवाच ।

यत् प्रभोर्मम पुण्येषु ब्राह्मणः शरणगतः ।

ममाशिषा महामीत्या शीघ्रं भवतु विज्वरः ॥ ८१ ॥

इत्येवमुक्त्वा कृपया विरराम शिवा शिरः । मुनिः प्रणम्य देवेशं वैकुण्ठं शरणं ययां  
 गत्वा वैकुण्ठभवनं मनोयायी मुनीश्वरः । दृष्ट्वा सुदर्शनं पद्माद्विदेशागतःपुरं हरेः  
 ददर्श श्रीहरिं विप्रो रत्नसिंहासनस्थितम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥ ८३ ॥

श्यामं चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकांतं मनोहरम् ।

रत्नालङ्कारशोभाढ्यं रत्नमालाविभूषितम् ॥ ८५ ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । सद्गुणसाररचितं किरिटीज्ज्वलशेखरम् ॥ ८६ ॥  
 पार्यद्रप्रवरन्द्रेश्च सेवितं श्वेतचामरेः । पद्मासेवितपादाढ्यं सरस्वत्या स्तुतं पुरः  
 सुनन्दनन्दकुमुदप्रचण्डादिभिरावृतम् । गुणानुषाढं गायन्तं तन्त्रैः पश्यन्तर्माप्सितम् ॥  
 एवम्भूतं प्रभुं दृष्ट्वा द्रुण्डवत्प्रणनाम च । तुष्टाः च सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥ ८९ ॥  
 दुर्घासा उवाच ।

त्राहि मां कमलाकान्त त्राहि मां करणानिधे ।

दीनबन्धोऽतिदीनेश करुणासागर प्रभो ॥ ९० ॥

वेदवेदाङ्गसंस्पृधिधातुश्च स्वयं विधे । मृतयोर्मुत्युः कालकाल त्राहिमां सद्गुणवै  
 संहारकर्तुः संहारः सर्वेशः सर्वकारण । मदाविष्णुतरोर्बीजं रक्ष मां । भवसागरे ॥ ९१ ॥  
 शरणागतशोकार्तभयत्राणपरायण । भगवन्वध मां भीतं नारायण, नमोस्तु ते ॥ ९३ ॥  
 वेदेष्व्याद्यच्च यद्वस्तु वेदाः स्तोतुं न च क्षमाः ।

सरस्वतीं जङ्गीभूता किं स्तुवन्ति विपश्चितः ॥ ६४ ॥

शेषः सहस्रवक्त्रेण यं स्तोतुं जङ्गतां व्रजेत् । पञ्चवक्त्रो जङ्गीभूतो जङ्गीभूतश्चतुर्मुखः

श्रुतयः स्मृतिकर्तारो घाणी चेत् स्तोतुमक्षमा ।

कोऽहं विप्रश्च वेदज्ञः शिष्यः किं स्तौमि मानद ॥ ६६ ॥

मनूनाञ्च महेन्द्राणामष्टाविंशतिमे गते । दिवानिशं यस्य विधेरष्टोत्तरशतायुषः ॥ ६७ ॥

तस्यपातो भवेद्यस्य चक्षुःक्षमोलनेन च । तमनिर्वचनीयश्च किं स्तौमि पाहिमांप्रभो ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा पपात चरणाम्बुजे । नयनाम्बुजनीरेण सियेच भयविह्वलः ॥ ६९ ॥

दुर्वाससा कृतस्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः । पुण्यदं सामवेदोक्तं जगन्मङ्गलनामकम् ॥

यः पठेत्संकटप्रस्तो भक्तियुक्तश्च संयुतः । नारायणस्तं कृपया शीघ्रमागत्य रक्षति ॥

राजद्वारे श्मशाने च कारागारे भयाकुले । शत्रुप्रस्ते दस्युर्भाते हिंस्रजन्तुसमन्विते ॥

चेष्टिते राजसैन्येन मगतपोते महार्णवे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे दुर्वाससाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम्

नारायण उवाच ।

मुनेश्च स्तवनं श्रुत्वा भगवान् भक्तवत्सलः । प्रहस्योवाच मधुरं पीयूषवृष्टिवन्मुदा ॥

श्रीभगवानुवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मद्रन्ते भविष्यति वरेण मे । किन्तु मे वचनं नित्यं शृणुसत्यंसुखावहम्

अन्येषाञ्च भवेज्ज्ञानं श्रुत्वा शास्त्रं सतां मुखात् ।

स्वमूर्त्तिमन्ति शाखाणि भवेत् सन्तश्चरन्ति हि ॥ १०६ ॥

कर्मवेदधिरुद्धश्च सर्वेषामतिगर्हितम् । करोति विद्वांश्चेत् ज्ञात्वा सच जीवन्मृताधिकः

पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु ब्राह्मण । वैष्णवानाञ्च महिमा श्रुतः सर्वैश्च सर्वतः ॥

बह्वं प्राणा वैष्णवानां ममप्राणाश्च वैष्णवाः । तानेव द्वेष्टियो मूढो ममासूनाञ्च हिंसकः

पुत्रान् पौत्रान् कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च ।

ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः पदः प्रियः ॥ ११० ॥

परा भक्ता न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्न शङ्करः । न भारती न

न प्राण्यो न वेदाश्च न वेदजननी परा । न गोपी नच गोपाला न राधा प्राणतः प्रिया  
 चेषं कथितं सर्वसत्यं सारञ्च यास्तयम् । न प्रशांसापरं तेषां तेच प्राणाधिकाः प्रियाः  
 द्विपन्तिच ये मूढाजानहीनाश्च वञ्चिताः । आत्मानयेन जानन्ति तेषान्तिनिग्यञ्चिन्म  
 द्विपन्तिच मद्भक्तान् प्राणानामधिकंप्रियान् । तेषां शास्तात्वहं तूष्णंपरत्र निरत्यञ्चिन्म  
 भाषोऽहञ्च सर्वेषामीश्वरःपरिपालकः । नचव्यापीस्यतन्त्रोऽहं भक्तार्थनोदिवानिन्म  
 गोलोके वाय वैकुण्ठे द्विभुजञ्च चतुर्भुजम् । रूपमात्रमिदं शश्वत्प्राणा मे भक्तसन्निधौ  
 मन्त्रदत्तञ्च भक्षणीप्रञ्च तन्मम । अमर्ष्यं द्रव्यमन्येन दत्तञ्चोदमृतोपमम् ॥११८॥  
 अम्यरीपं नृपश्रेष्ठं निरीहं तमहिसकम् । कथं हंसि दयार्शीलं सर्वप्राणिहिते रतम् ॥  
 द्यां कुर्वन्ति ये सन्तः सततं सर्वजन्तुषु । तान् द्विपन्तिच ये मूढास्तेषां हन्ताहमेव ॥  
 भक्तानां हिसकं शत्रुमहं रक्षितुमक्षमः । अम्यरीपालयं गच्छ स त्वां रक्षितुमीश्वरः ॥  
 नारायण उवाच ।

इदं वाक्यञ्च तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो भयविह्वलः । विपण्यमानसस्तस्योस्मरन्कृष्णपदाम्बुज  
 पतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या सह शङ्करः । धर्मश्चेन्द्रादयो देवा आजगमुर्मुनिपुङ्गवाः  
 प्रणम्य तुष्टुषुः सर्वे परमात्मानमीश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा भक्तिजन्मात्मकन्धराः  
 ब्रह्मोवाच ।

स्वात्मस्वरूप निर्लित भक्तानुग्रहकातर । भक्तापराधजनकं रक्ष ब्राह्मणपुङ्गवम् ॥११९॥  
 महादेव उवाच ।

दीनबन्धो जगन्नाथ नायविप्रो जगद्बुधहिः । कृतापराधं दीनञ्च पाहीमं शरणागतम् ॥१२०॥  
 पार्वत्युपाच ।

भक्त एवाम्बरीपस्ते न द्विजा न सुरा वयम् । सर्वेषामीश्वरस्त्वञ्च रक्ष धिप्रं कृतागत  
 धर्म उवाच ।

सर्वेषां जनकस्त्वञ्च पाता दण्डद्वीश्वरः । शिशुहेतोः शिशून् हन्ति पितेत्येवं कुतः प्र  
 इन्द्र उवाच ।

[विंशोऽध्यायः ] • दुर्पाससो मोक्षणार्थं सर्वदेवानां भगवत्स्तुतिकरणम् • ७११

रुद्र उवाच ।

न्ति कर्तुं समुचितमुचितं साम्प्रतं कुरु । कृतकुण्ठस्य मूलस्य पालनं कर्तुमर्हसि ॥

दिवपाल उवाच

।। परार्थं विप्रञ्च ह्येतुमर्हसि न श्रुतो । अपराधशमं कृत्वा सदा पाति सदीश्वरः ॥

प्रहा ऊचुः ।

हेष्टि वैष्णवं मूढस्तं रुष्टाः सर्वदेवताः । पीडां कुर्मो घयं शश्वत्पश्चात्त्वं पातुमर्हसि

मुनय ऊचुः ।

।। चिप्रे पराभूते सर्वे जीवन्मृता घयम् । दण्डं विधातुमेकस्य भवेत्तज्जा स्वजातिषु ॥

अत्रिरुवाच ।

त्वयैव दत्तः पुत्रो मे क्रोधी त्वत्सेवकः सदा ।

न कं विभेति श्रैलोक्ये तेजस्वी तेजसा तव ॥ १३४ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

।। परार्थं भगवन् ब्राह्मणं शरणागतम् । स्तुवन्ति देवा विप्राश्च न चिप्रं हन्तुमर्हसि ॥

सरस्वत्युवाच ।

।। यिष्यामि देवानां जनकं कामहंश्रुतिम् । भगवान्स्वामी सर्वेषां सर्वांश्चपातुमर्हसि

पार्यदा ऊचुः ।

तः स्मृतिमात्रेण सर्वेषां सर्वमङ्गलम् । भवेत्सर्धापदो यान्ति पाहीमं शरणागतम् ॥

नर्त्तका ऊचुः ।

।। दारिद्र्यमञ्जनं घयं मिश्रकास्तव सन्ततम् । मिक्षां नो साम्प्रतं देहिपरिव्राणं द्विजस्य च

पतेषां स्तवर्नं श्रुत्वा प्रभुः शरणवत्सलः । प्रहस्योवाच घवनं सर्वसन्तोषकारणम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सर्वे श्रुणुत मद्वाक्यं नीतियुक्तं सुखावहम् । विप्ररक्षां करिष्यामि युष्माकमाह्वयाभ्युषम्

किं त्वयं यातु ईकुण्ठादगरीपालयं पुनः । करोतु पारणं तत्र राक्षः सुप्रीतये मुनिः ॥

।। विप्रस्तस्यातिथिर्मूर्खा निर्वोपं शत्रुमुपतः । सुदर्शनन्तु तं रक्ष्यं ब्राह्मण

पूर्णे वर्णमयं भीमो ब्रह्मणेयं भुवं मुदा । उपयामी न शत्रेन्द्रः सम्प्रीक्या गुणान्नि ।  
 तपोऽहमुत्पार्सी च भक्तोऽपामकारणात् । सान्त्वं बालकं दृष्ट्वा न मुहूर्ते ब्रह्मणे  
 ममाशिया मुनिश्रेष्ठः सद्यो मयसु विम्परः । पथि तत्राम्य हिंसाया मघकं न कर्तित्ति  
 ब्रह्मणेपाद्य निश्चिन्ताः सुप्तं भोक्ष्यामि निश्चिन्तम् ।

भक्तश्चाञ्च यद्वन्तु योग्या वृत्त्या सुधोगमम् ॥ १४६ ॥

लक्ष्मीश्चाञ्च यद्वद्रव्यं न चाहं भोक्तुर्माध्वरः । विना भक्तप्रदानेन न तृप्तिं दानुर्मन्त्रः ।  
 हे मुनीन्द्र महाप्राज्ञ गच्छ परस नृपालयम् । सर्वे देवाश्च देव्यश्च गच्छन्तु मुनयो वृत्त  
 इत्युत्तवा श्रीहरिस्तूर्णं यथो स्वान्तःपुरंमुदा । ययुःसर्वे मुदा युताःप्रणम्य जगदीश्वर  
 ब्राह्मणश्च मनोपायी जगाम हरिमन्दिरम् । सुदर्शनञ्च तद्यत्रं सूर्यकोटिसमप्रमम् ।  
 उपोष्य घत्सरं राजा शुष्ककण्ठीष्ठतालुकः । सिंहासनस्थो ददरां पुरतो मुनिदुह्वयम् ।

उत्थाय सम्भ्रमात् सद्यः प्रणम्य सादरं मुदा ।

भोजयित्वा तु मिष्टान्नं ब्राह्मणं युयुजे स्वयम् ॥ १५२ ॥

भुक्त्वा तुष्टो द्विजश्रेष्ठो युयुजे परमाशियम् । जगाम स्वालयं तूर्णं प्रशशंस पुनःपुनः ।

उवाच पथि चिप्रेन्द्रो मनसा विस्मयाकुलः ॥ १५३ ॥

महात्म्यं दुर्लभमहो वैष्णवानामिति द्विजः ॥ १५४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 मुनिमोक्षणप्रस्तावो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

एकादशीव्रतविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

द्वादशीलङ्घने दोषः श्रुतस्त्वन्मुसतो मुने । परामयो मुनेधैव नृप त्राणं हरेरहो ॥ १ ॥

बधुना श्रौतुमिच्छामिस्वर्वेवामीप्सितञ्च मे । एकादशीव्रतस्यास्य विधानं वदनिश्चितम्  
 धद्वो श्रुतो श्रुतं किञ्चिन्नतभेदान्न निश्चितम् ।  
 श्रुतीनां कारणमुवाच्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥ ३ ॥

नारायण उवाच ।

एकादशीव्रतमिदं देवानामपि दुर्लभम् । श्रीकृष्णप्रीतिजनकं तपः धष्टं तपस्विनाम् ॥  
 देवानाञ्च यथा कृष्णो देवीनां प्रकृतिर्वथा । आध्रमाणां यथाचिम्रो वैष्णवानां यथाशिवः  
 यथा गणेशः पूज्यानां यथा धार्जा विवश्चिताम् ।  
 शाखाणाञ्च यथा वेद्रास्तीर्थानां जाह्नवी यथा ॥ ६ ॥  
 तैजसानां यथा स्वर्णं प्राणिनां वैष्णवो यथा ।  
 धनानाञ्च यथा पिपा सङ्गिनाञ्च यथा प्रिया ॥ ७ ॥

प्रमथानां यथा रुद्रः धेयसाञ्च यथा मति । आत्मा यथेन्द्रियाणाञ्च चञ्चलानां यथा मनः  
 गुरुनीणां यथा माता बन्धूनाञ्च यथा पतिः । यत्किञ्चानां यथा द्वैवं कालः कलयतां यथा  
 सुशीलञ्चैव मित्राणां शत्रूणां रुपथा मुने ।  
 यथा कीर्तिः कीर्तिमतो गृहिणाञ्च यथा गृहम् ॥ १० ॥

यथा गलो हिसकानां दुष्टानाञ्चैव पुंभली । तैजस्यिनां प्रदेशश्च सहिष्णुतां यथा क्षितिः  
 यथाऽमृतं मक्षानां दाहकानां यथातलः । यथा धार्धनदानुणां सतीनाञ्च यथा सतीः  
 प्रजेसानां यथा ब्रह्मा सरितां सागरो यथा । यथा साम धूर्तानाञ्च मायत्रीछन्दसां यथा  
 वृक्षाणाञ्च यथाऽश्वत्थः पुण्याणां तुलसी यथा ।

यथा मार्गो हि मासानामृतनाञ्च यथा मधुः ॥ १४ ॥

आदित्यानां यथासूर्यो रुद्राणां शत्रुरो यथा । यथा श्रीभोवगृताञ्च यथाणांमासं यथा  
 देवर्षीणां यथात्पञ्च प्रद्वर्षीणां यथा भृगुः । नृवाणाञ्च यथारामः सिद्धानां कपिलो यथा  
 यथा सनत्कुमारश्च योगिनां ब्रह्मा नि बटः । ऐरावतो गजेन्द्राणां यथा शम्भो यथा  
 यथा हिमाद्रिः शैलानां मर्षीनां कौस्तुभो यथा ।

सख्यवती नदीनाञ्च यथा पुण्यस्यद्विर्षा ॥ १८ ॥



पूर्णं धर्ममयं भीतो भ्रमत्येष भुयं मुदा । उपवासी न राजेन्द्रः सस्त्रीकश्च शुनानि  
 ततोऽहमुपवासी च भक्तोपवासकारणात् । स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा न मुह्यन्ते जन्मोप  
 ममाशिया मुनिश्रेष्ठः सद्यो भवतु विम्बरः । पथि तत्राम्य हिंसाञ्च मद्यकं न करिष्ये  
 अहमेवाद्य निश्चिन्तः सुखं भोक्ष्यामि निश्चितम् ।

भक्तदत्तश्च यद्वस्तु धीत्या श्रुत्या सुधोषमम् ॥ १४६ ॥

लक्ष्मीदत्तश्च यदुद्रव्यं न चाहं भोक्तुर्मोघरः । विना भक्तप्रदानेन न कृति दातुमीक  
 हे मुनीन्द्र महाप्राप्त गच्छ घटस नृपालयम् । सर्वे देवाश्च देव्यश्च गच्छन्तु मुनयो ह्य  
 इत्युत्तवा श्रीहरिस्तूष्णं यथा स्वान्तःपुरंमुदा । ययुःसर्वे मुदा युक्ताःप्रणम्य जगदीश्वर  
 ब्राह्मणश्च मनोपायी जगाम हरिमन्दिरम् । सुदर्शनश्च तद्यकं सूर्यकोटिसनप्रम  
 उपोष्य घटसरं राजा शुष्ककण्ठीष्ठतालुकः । सिंहासनस्थो ददर्श पुत्तो मुनिपुत्र

उत्थाय सम्भ्रमात् सद्यः प्रणम्य सादरं मुदा ।

भोजयित्वा तु मिष्टान्नं ब्राह्मणं युभुजे स्वयम् ॥ १५२ ॥

भुक्त्वा तुष्टो द्विजश्रेष्ठो युयुजे परमाशियम् । जगाम स्वालयं तूष्णं प्रशरंस पुनपुन

उवाच पथि विप्रेन्द्रो मनसा विस्मयाकुलः ॥ १५३ ॥

महात्म्यं दुर्लभमहो वैष्णवानामिति द्विजः ॥ १५४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनाट्यसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

मुनिमोक्षणप्रस्तावो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

एकादशीव्रतविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

द्वादशीलङ्घने दोषः धृतस्त्वन्मुखतो मुने । परामयो मुनेश्चैव नृप श्राणं हरेरहो ॥

दुना श्रोतुमिच्छामिसर्वेषामीप्सितञ्च मे । एकादशीव्रतस्यास्य विधानं वदनिश्चितम्

बहो श्रुतो श्रुतं किञ्चिन्मतभेदान्न निश्चितम् ।

श्रुतीनां कारणमुखाच्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥ ३ ॥

नारायण उवाच ।

एकादशीव्रतमिदं देवानामपि दुर्लभम् । श्रीकृष्णप्रीतिजनकं तपः धृष्टं तपस्विनाम् ॥

नाञ्च यथा कृष्णो देवीनां प्रकृतिर्यथा । आश्रमाणां यथाचिप्रो वैष्णवानां यथाशिवः

यथा गणेशः पूज्यानां यथा घाणी विषक्षिताम् ।

शास्त्राणाञ्च यथा वेदास्तीर्थानां जाह्नवी यथा ॥ ६ ॥

तेजसानां यथा स्वर्णं प्राणिनां वैष्णवो यथा ।

धनानाञ्च यथा विद्या सङ्गिनाञ्च यथा प्रिया ॥ ७ ॥

ानां यथा रुद्रः श्रेयसाञ्च यथा मतिः । आत्मा यथेन्द्रियाणाञ्च चञ्चलानां यथा मनः

रीणां यथा माता बन्धुनाञ्च यथा पतिः । बलिष्ठानां यथा दैवं कालः फलवतां यथा

सुशीलञ्चैव मित्राणां शत्रूणां स्वयथा मुने ।

यथा कीर्तिः कीर्तिप्रतां गृहिणाञ्च यथा गृहम् ॥ १० ॥

रलो हिंसकानां दुष्टानाञ्चैव पुंघ्नली । तेजस्विनां प्रदेशश्च सहिष्णुनां यथा शक्तिः

मृतं भक्षणां दाहकानां यथानलः । यथा धार्धनदानृणां सतीनाञ्च यथा सती ॥

नां यथा प्रत्या सतितां सागरो यथा । यथा साम श्रुतीनाञ्च गायत्रीउन्दसां यथा

सृष्टाणाञ्च यथाऽश्वत्थः पुष्पाणां तुलसी यथा ।

यथा मार्गो हि मासानामृतूनाञ्च यथा मधुः ॥ १४ ॥

यानां यथासूर्षो रक्षाणां शङ्खोपधा । यथा भीष्मो वधूनाञ्च धर्म्याणां मारुतं यथा

गां यथात्थञ्च प्रद्वीपां यथा भृगुः । नृपाणाञ्च यथातमः सिद्धानां कपिलो यथा

उत्तमुत्तमाश्च योगिनाञ्चानि मो वरः । ऐतदनो गजेन्द्राणां पशूनां शम्भो यथा

यथा हिमाद्रिः शैलानां मणीनां कौस्तुभो यथा ।

सरस्वती नदीनाञ्च यथा पुण्यस्वरूपिणी ॥ १८ ॥

गन्धर्वाणां चित्ररथो यथा श्रेष्ठश्च नारद । यथा कुबेरो यक्षाणां सुमाली रक्षतां यथा  
 यथा श्रेष्ठा च नारीणां शतरूपा घरा परा । मनूनाञ्च तथा श्रेष्ठः स्वयं स्वायम्भुवोभुः  
 सुन्दरीणां यथा रम्मा यथा माया च मायिनाम् ।

एकादशीव्रतमिदं व्रतानाञ्च धरं तथा ॥ २१ ॥

कर्त्तव्यञ्च चतुर्णाञ्च घर्णानां नित्यमेव च । यतोनां वैष्णवानाञ्च ब्राह्मणानां विशेषतः  
 सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । सत्येवौदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतवासरे ॥

भुक्तवैतानि च पापानि यो भुङ्क्ते तत्र मन्दधीः ।

इहातिपातकी सोऽपि यात्यन्ते नरकं ध्रुवम् ॥ २४ ॥

एकादशीप्रमाणानि युगसंख्याट्टानि च ।

कुम्भीपाके महाघोरे स्थिरया चाण्डालतां व्रजेत् ॥ २५ ॥

गलितव्याधियुक्तश्च ततः सप्तसु जगमसु । पश्चान्मुक्तो भवेत्पापादित्याह कमलोद्भव ।  
 इत्येवं कथितं ब्रह्मन् यो द्वापस्तत्र भोजने । द्वादशीलङ्घने दोषो मयोक्तश्च ध्रुतः पुणः ।

दशमीलङ्घने दोषं निषाध कथयामि ते । पुराभूतो धर्मयक्त्राद्वेदसारोऽपि ॥ २६ ॥  
 दशमी यः कलामात्रां मूढो ज्ञानेन लङ्घयेत् ।

याति धाम्नदुग्धाक्षुणं शापं दद्यात्तु दारुणम् ॥ २६ ॥

इह तद्वंशदानिश्च यशोहासिर्भवेत्तु ध्रुवम् । मन्ते मन्वन्तस्यात्मन्धकूपे यशोऽनु द्विज ।  
 दशमेकादशी वापि द्वादशी यत्र वासरे । तत्र भुज्या परदिने उपोष्य व्रतमाचरेत् ।

द्वादश्याञ्च मन्ते इत्या अयोदश्याञ्च पारणम् । द्वादशीलङ्घने दोषो व्रतिनां तत्र विप्रैः  
 सम्पूर्णद्वादशो यत्र प्रभाते विज्ञिरेव सा । तत्रोपोष्या द्वितीया च परा चोद्यति कथि

परिदण्डान्मिथा यत्र प्रभाते च निमित्तयम् । पूर्वमिदृश्याः पूर्वमेव यस्याद्वयसत्ता  
 परवानरावं इत्या श्रियदृश्यं समाचरेत् । मन्ते जागरणे सत्यं पूर्वत्रैवाचरेत्तु पुनः ॥ २७ ॥

तत्पूर्वदिवसे मन्ते मन्ते इत्या दोऽत्रि । यथादश्यां धर्मजायां पारणास्तु समाचरेत् ।  
 वैष्णवादी धर्मजाञ्च विष्णवादी तत्रैव च ।

हामेव तु कुर्वन्ति गृहिणो वीष्णवेतराः । न कृष्णालङ्घने दोषस्तेषां वेदेषु नारद ॥

शयनी वोधनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।

सैषोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥ ३६ ॥

त्येषं कथितो ब्रह्मनिर्णयो यः श्रुतो श्रुतः । व्रतस्यास्य विधानञ्च नियोधकथयामिते  
त्या हविष्यं पूर्वाह्ने न च भुङ्क्ते पुनर्जलम् । एकाकी कुशशय्यायां नक्तंशयनमाचरेत्

ब्राह्मे मुहूर्त्तं चोत्थाय प्रातःकृत्यं विधाय च ।

नित्यकृत्यं विधायैतत् स्नानं समाचरेत् ॥ ४२ ॥

प्रतोपवासं सङ्कल्प्य श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् ।

कृत्वा सन्ध्यातर्पणञ्च विधायैकमाचरेत् ॥ ४३ ॥

नेत्यपूजादिने कृत्वा व्रतद्रव्यं समाहरेत् । कृत्वा षोडशोपचारं प्रदृष्टं विधियोधितः  
मासनं वसनं पाद्यमर्घ्यं पुष्पानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं यज्ञसूत्रञ्च भूषणम् ॥ ४५ ॥

न्यस्नानीयताम्युलं मधुपर्कं पुनर्जलम् । एतान्याहृत्य दिग्भिः प्रतं नक्तं समाचरेत् ॥

उपविश्यासने पूतो धृत्वा धौतेयवाससी ।

भाचम्य धीहरिं नत्वा स्थतिवाचनमाचरेत् ॥ ४७ ॥

मारोप्य मङ्गलघटं धान्वाधारे शुभे क्षणे । कलशापाचन्द्रनाकं वेदोक्तं मुनिमिमुंदा ॥

वेदपङ्कं समावाह्य पृथक् धान्यैः समाचरेत् । पूजां पञ्चोपचारैश्च प्रदृष्टैश्च विचक्षणः

गणेश्वरं दिनकरं षड्भिः विष्णुं शिवं शिवाम् ।

सम्पूज्यैतान् प्रणम्याथ व्रतं कुर्याद्दरिं स्मरन् ॥ ५० ॥

नाराध्य वेदपङ्कञ्च यदि कर्म समाचरेत् ।

नित्यं नैमित्तिकञ्चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ५१ ॥

त्येषं कथितं सर्वं व्रताङ्गभूमेव च । कल्पशास्त्रोक्तमिष्टञ्च व्रतं शृणु महामुने ॥ ५२ ॥

सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम् ।

पुष्पञ्च शिरसि न्यस्य पुनर्ध्यानं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

ध्यानं शृणु निगूढञ्च सर्वैरपि वाञ्छितम् । न प्रकाश्यममत्ताप मत्तत्रार्जापिचण्डलं

गन्धर्वाणां चित्ररथो यथा श्रेष्ठश्च मारुत् । यथा कुपेरो यक्षाणां सुमाली रक्षायां यथा  
यथा श्रेष्ठा च नारीणां शतरूपा परा परा । मन्वृताञ्च तथा श्रेष्ठः स्वयम्भुवाम्भु-  
सुन्दरीणां यथा रम्भा यथा माया च मायिनाम् ।

एकादशीयतमिदं व्रतानाञ्च परं तथा ॥ २१ ॥

कर्त्तव्यञ्च चतुर्णाञ्च षण्णानां नित्यमेव च । व्रतानां यैष्णवानाञ्च ब्राह्मणानां विशेष-  
सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । सत्येषां दनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतवासरे ।

भुक्तयैतानि च पापानि यो भुङ्क्ते तत्र मन्दधीः ।

इहातिपातकी सोऽपि यात्यन्ते नरकं ध्रुवम् ॥ २४ ॥

एकादशीप्रमाणानि युगसंख्याकृतानि च ।

कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत् ॥ २५ ॥

गलितव्याधियुक्तश्च ततः सप्तसु जन्मसु । पञ्चान्मुक्तो भवेत्पापादित्याह कमलोद्भवः ।

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् यो दोषस्तत्र भोजने । द्वादशीलङ्घने दोषो भयोक्तश्च ध्रुवः पुरा ।

दशमीलङ्घने दोषं निबोध कथयामि ते । पुराधृतो धर्मषक्त्राद्देवसारोद्भूतोऽपि वा २६

दशमीं यः कलामात्रां मूढो ज्ञानेन लङ्घयेत् ।

याति श्रीस्तदुगृहात्सूर्णं शापं दत्त्वा तु दारुणम् ॥ २६ ॥

इह तद्वंशहानिश्च यशोहानिर्मवेद् ध्रुवम् । व्रते मन्वन्तश्चातमन्थकूपे वसेद् द्वित्र ।

दशम्येकादशी वापि द्वादशी यत्र वासरे । तत्र भुक्त्वा परदिने उपोष्य व्रतमावरेत् ।

द्वादश्याञ्च व्रतं कृत्वा त्रयोदश्याञ्च पारणम् । द्वादशीलङ्घने दोषो व्रतिनां तन्न विप्रते

म्पूर्णेकादशी यत्र प्रभाते किञ्चिद्देव सा । तत्रोपोष्या द्वितीया च परा चेद्यदि व्रतनि

तिष्टिण्डात्मिका यत्र प्रभाते च तिथिन्नयम् । कुर्वन्तिगृहिणः पूर्वञ्चैव यत्यादयस्ताम्

प्रातःशानं कृत्वा नित्यकृत्यं समाचरेत् । व्रते जागरणं सर्वं पूर्वत्रैवाचरेद् बुधः ॥ २७ ॥

त्पूर्वदिवसे नित्यं व्रतं कृत्वा परेऽहनि । एकादश्यां व्यतीतायां पारणान्तु समाचरेत्

यैष्णवानां यतीनाञ्च विधवानां तथैव च ।

सर्पाः समा उपोष्यास्ता मिश्रूणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ३७ ॥

कृष्णमेव तु कुर्वन्ति गृहिणो वैष्णवेतराः । न कृष्णालङ्घने दोषस्तेषां वेदेषु नारद ॥

शयनी योधनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।

सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥ ३६ ॥

येषु कथितो ब्रह्मनिर्णयो यः श्रुतो श्रुतः । व्रतस्यास्य विधानञ्च निबोधकथयामिते  
त्या हविष्यं पूर्वाह्णे न च भुङ्क्ते पुनर्जलम् । एकाकी कुशशाप्यायां नक्तंशयनमाचरेत्

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय प्रातःशृत्यं विधाय च ।

नित्यशृत्यं विधायाथ ततः स्नानं समाचरेत् ॥ ४२ ॥

मतोपवासं सङ्कल्प्य श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् ।

श्रुत्या सन्ध्यातर्पणञ्च विधायाह्निकमाचरेत् ॥ ४३ ॥

त्यपूजादिने श्रुत्या व्रतद्रव्यं समाहरेत् । श्रुत्या षोडशोपचारं प्रहृत्यं विधियोधितः

सनं वसनं पाचमर्घ्यं पुष्पानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं यज्ञसूत्रञ्च भूषणम् ॥ ४४ ॥

धस्नानीयताम्बूलं मधुपर्कं पुनर्जलम् । एतान्याहृत्य दिपसे व्रतं नक्तं समाचरेत् ॥

उपविश्यासने पूतो धृत्या धीतेययाससी ।

भाचम्य श्रीहरिं नत्वा स्पतिपाचनमाचरेत् ॥ ४७ ॥

रोष्य मङ्गलघटं धान्याधारे शुभे क्षणे । फलशाग्राचन्दनाक्तं वेदोक्तं मुनिभिर्मुदा ॥

पर्कं समापाहा पृथक् धान्यैः समाचरेत् । पूजां षडोपचारैश्च प्रहृत्यैश्च पितृशरणः

गणेशवरं दिनकरं चह्नि विष्णुं शिवं शिषाम् ।

सम्पूज्यैतान् प्रणम्याथ व्रतं कुर्व्याद्धरिं स्मरन् ॥ ५० ॥

नाराय्य वेदगर्भञ्च यदि कर्म समाचरेत् ।

नित्यं नैमित्तिकञ्चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ५१ ॥

यं कथितं सर्वं प्रताङ्गभूतमेव न । कल्पशास्त्रोक्तमिष्टञ्च व्रतं शृणु महामुने ॥ ५२ ॥

सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम् ।

पुष्पञ्च शिरसि न्यस्य पुनर्ध्यानं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

न शृणु निगूढञ्च सर्वेषामपि

नर्षाननीरक्षो यद्गन् इवामसुम्बरविप्रहम् । शरत्पार्यणचन्द्रामाविनिद्राम्प्रनुत्तम्  
 शरत्सूर्योदयतजानां प्रमामोचनलोचनम् । म्याङ्गसौन्दर्यशोभामां रत्नमूरनृप  
 गोपीलोचनकोणेऽथ प्रसन्नैरतिगुणकैः । शरत्निरीक्ष्यमाणं मन्त्रापीरिव विनिर्  
 रासमण्डलमध्यस्थं रासोद्गाससमुत्सुकम् । राधापत्रशरत्पञ्चसुधापानचकोरम्  
 कौस्तुभेन मणीन्द्रेण पञ्च म्यालसमुत्सुकम् ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालेर्षिगजितम् ॥ ५६ ॥

सद्रत्नसारनिर्माणं किरीटोत्पलदोषरम् । विनोदमुरलीहस्तन्यस्तं पूर्यं सुरसुयैः ॥  
 ध्यानासाध्यं दुराराध्यं प्रह्लादीनाञ्च यन्दितम् । कारणं फारणानां यं तर्माश्वरुहं मं  
 ध्यात्वाऽनेन तमावाह्य चोपहाराणि षोडश । दृष्ट्वा संपूजयेद्दत्तया मन्त्रैर्मिथं नार  
 भासनं स्वर्णनिर्माणं रत्नसारपरिच्छेदम् । नानाविधविचित्राद्वयं गृह्यतां परमेश्वर  
 षड्विधक्षालितं षष्ठं निर्मितं विश्वकर्मणा । मूल्यानिघञ्चनीयञ्च गृह्यतां राधिकार्ये  
 पादप्रक्षालनार्हञ्च सुवर्णपात्रसंस्थितम् । सुवासितं शीतलञ्च गृह्यतां करणानिघे ॥  
 इदमर्थं पवित्रञ्च शङ्खतोपसमन्वितम् । पुष्पं दूषांचन्दनाकं गृह्यतां भक्तवत्सल  
 सुवासितं शुक्लपुष्पं चन्दनागुरुसंयुतम् । सद्यस्ते प्रीतिजनकं गृह्यतां सर्वकारण ॥  
 चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमोशीरमुत्तमम् । सर्वेष्वितमिदं कृष्ण गृह्यतामनुलेपनम् ॥  
 रसो वृक्षविशेषस्य नानाद्रव्यसमन्वितः । सुगन्धियुक्तः सुखदो धूपोऽयं प्रतिगृह्यता  
 दिवानिशं सुप्रदीप्तो रत्नसारविनिर्मितः । पुनर्ध्वान्तनाशवीजं दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥  
 नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि सुरभीणि च ।

सोप्यादीनि पवित्राणि स्वात्माराम प्रगृह्यताम् ॥ ७१ ॥

सावित्रीप्रणिसंयुक्तं स्वर्णतन्तुविनिर्मितम् । गृह्यतां देवदेवेश रचितं वाहकारणा ।  
 अमूल्यरत्नरचितं सर्वावयवभूषणम् । त्विषा जाउषल्यमानञ्च गृह्यतां मन्दनन्दन ॥७१॥  
 प्रधानो घर्षणीयश्च सर्वमङ्गलकर्मणि । प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रदः ॥७१॥

सर्वेषां प्रीतिजनकं सुमिष्टं मधुरं मधु । सद्रत्नसारपात्रस्थं गोपीकान्त प्रगृह्यताम् ॥  
निर्मलं जाह्नवीतीयं सुपवित्रं सुवासितम् । पुनराचमनीयञ्च गृह्यतां मधुसूदन ॥ ७८ ॥

इति षोडशोपचारान् दत्त्वा भक्तो मुदान्वितः ।

मन्त्रेणानेन पुष्पाणि माल्यं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥ ७९ ॥

नानाप्रकारपुष्पैश्च प्रथितं शुक्लतन्तुना । प्रवरं भूषणानाञ्च माल्यञ्च गृह्यतां प्रभो ॥ ८० ॥

इति पुष्पाञ्जलिं दद्यान्मूलमन्त्रेण च व्रती । कुट्यात्तद्वस्तचनंभक्त्यापुटाञ्जलियुतः सुधीः  
भक्त उवाच ।

हे कृष्ण राधिकानाथ कल्याणसागर प्रभो । संसारसागरे घोरे मामुद्धर भयानके ॥  
शतजन्मकृतायासादुद्विप्रस्य मम प्रभो । स्वकर्मपाशनिगडैर्वदस्य मोक्षणं कुरु ॥ ८१ ॥

प्रणतं पादपद्मे ते पश्य मां शरणागतम् । भयपाशभयाद्गीतं पाहि त्वं शरणागतम् ॥  
भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च वेदतः । वस्तु मन्त्रविहीनं यत्तत् सम्पूर्णं कुरु प्रभो

वेदोक्तविहिताज्ञानात् स्वाङ्गहीने च कर्मणि । त्वन्नामोच्चारणेनैव सर्वं पूर्णं भवेद्धरे  
इति स्तुत्या तं प्रणम्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।

महोत्सवं विधायाथ कुट्याञ्जागरणं व्रती ॥ ८२ ॥

कृत्या व्रतोपवासञ्च यदि निद्रां निवेवते । पुनरेव जलं मुङ्क्ते व्रतार्थफलभाग्भवेत् ॥  
यत्नेन च हविष्याश्रं सकृदेव समाचरेत् । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र धीकृष्णचरणं स्मरन् ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राणा ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।

देहि मे विष्णुरूप त्वं व्रतोपवासयोः फलम् ॥ ९० ॥

एवं यः कुरुते भक्त्या भारते व्रतमुत्तमम् । पूर्वान् सप्तपरान् सप्तस्थात्मानमुद्धरेद्बुधुवाम्  
मातरं भ्रातरञ्चैव श्वभूञ्च श्वशुरं सुताम् । जामातरं तथा भृत्यमुद्धरेन्निश्चितं नरः ॥

तयेवं कथितं विप्र श्रीकृष्णचरितव्रतम् । सुखदं मोक्षदं सारमपरं कथयामि ते ॥ ९३ ॥  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे एकादशीव्रत-

निरूपणं नाम पद्मविंशोऽध्यायः ।



## सप्तविंशोऽध्यायः

गोपीवस्त्रापहरणे जयदुर्गाव्रतकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद पश्यामि श्रीकृष्णचरितं पुनः । गोपीनां पत्रहरणं धरदानं मनोजितम् ॥

हेमन्ते प्रथमे मासि गोपिकाः काममोहिताः ।

कृत्वा हविष्यं भक्त्या च यावन्मामं सुसंयुताः ॥ २ ॥

स्नात्वा सूर्यसुनार्तीरे पार्वतीं घालुकामयीम् ।

कृत्वावाह्यं च मन्त्रेण पूजां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ ३ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च मनोहरैः । नानाप्रकारपुष्पैश्च माल्यैर्वहुविधैरपि ॥ ४ ॥

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैर्नानाफलैर्मुने । मणिमुक्ताप्रवालैश्च घायेर्नानाविधैरपि ॥ ५ ॥

हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि । नन्दगोपसुतं फान्तमस्मभ्यं देहि सुते

मन्त्रणानेन देवेशीपरिहारं विधाय च । ततः कृत्वा तु संकलयं पूजयेन्मूलमन्त्रतः ॥ ६ ॥

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽप्यातयामः सवीजकः ।

ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नम इति ॥ ८ ॥

पुष्पं माल्यञ्च नैवेद्यं धूपं शीपं तर्थांशुकम् ।

मन्त्रेणानेन तां भक्त्या ददुः सर्वा मुदान्विताः ॥ ९ ॥

प्रवालमालया भक्त्या चेमं मन्त्रं सहस्रधा । जपं कृत्वाच स्तुत्वाच प्रणेमुः शिरसस्तु

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वकामप्रदे शिवे । देहि मे वाञ्छितं देवि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ १० ॥

श्रुत्युक्त्वा च नमस्कारं कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम् ।

नैवेशानि च सर्वाणि ब्राह्मणेभ्यो ययुर्षुहम् ॥ १२ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

स्तवरात्रं शृणु मुने तुष्टुयुर्वेन पार्वतीम् ।

मनया गोपाङ्गनाः सर्पाः सर्पाभीष्टफलप्रदाम् ॥ १३ ॥  
 जगत्प्रेकार्णवे घोरे चन्द्रमूर्यविषाजिते । भञ्जनाकारतोयेन संप्लुते च चराचरे ॥ १४ ॥  
 दत्तं पुरा ब्रह्मणे च हरिणा जलशायिना । तस्मै दत्त्वा सर्वमिदं निद्रां भेजे जगत्पतिः  
 ाभिपद्ये जगत्प्रष्टा मधुना कौटभेन च । पीडितः परितुष्टाद्य मूलप्रवृत्तिमीश्वरीम् ॥ १६ ॥  
 ओं नमो जयदुर्गायै ।

ब्रह्मोवाच ।

गौ शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि । जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्वमङ्गले ॥ १७ ॥  
 त्यनाशार्थघचनो इकारः परिकीर्तितः । उकारो विघ्ननाशार्थवाचको घेदसम्मतः ॥  
 ङो रोगप्रवचनो गश्च पापप्रवाचकः । भयशत्रुप्रवचनश्चाकारः परिकीर्तितः ॥ १८ ॥

स्मृत्युक्तिस्मरणायस्यापते नश्यन्ति निश्चितम् ।

वतो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता ॥ २० ॥

विपत्तिघाचको दुर्गाश्चाकारो नाशवाचकः ।

दुर्गा नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥ २१ ॥

गौ दैत्येन्द्रघचनोऽप्याकारो नाशवाचकः । तं ननाश पुरा तेन युधैर्दुर्गां प्रकीर्तिता ॥

घ कल्याणघचन इकारोत्कृष्टवाचकः । समूहवाचकश्चैव घाकारो दातृवाचकः ॥

ःसंघोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्तिता । शिवराशिर्मूर्त्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥

शिवो हि मोक्षघचनश्चाकारो दातृवाचकः ।

स्यर्धं निर्वाणदात्री या सा शिवा परिकीर्तिता ॥ २५ ॥

यो भयनाशोक्तश्चाकारो दातृवाचकः । प्रददात्यभयं सद्यः साऽभया परिकीर्तिता ॥

त्रार्थघचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः । तां प्रापयति या सद्यःसा मायापरिकीर्तिता

श्च मोक्षार्थघचनो याश्च प्रापणवाचकः । तं प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता

ऋणार्थाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा । तदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता

निर्गुणस्य च नित्यस्य घाचकश्च सनातनः ।

सदा नित्या निर्गुणा या कीर्तिता सा सनातनी ॥ ३० ॥

जयः कल्याणायनो यकारो वातृपात्रकः ।

जयं दद्यात्ति या नित्यं सा जया पत्निकीर्तिना ॥ ३१ ॥

सर्वमङ्गलार्थं सर्वपूर्णैश्वर्यपात्रकः । आकारो द्वायवचनस्तदात्री सर्वमङ्गला ॥ ३२ ॥  
नामाष्टकमिदं सारं नामार्थसहस्रयुतम् । नागरणेन यदहं ब्रह्मणे नामिदं ॥ ३३ ॥  
तस्मै दद्यात्ति निद्रितश्च यभूष जगतां पतिः । मधुकैटर्मा दुर्गान्तो ब्रह्माणं हनुमुद्यते ॥

स्तोत्रेणानेन स ब्रह्मा स्तुतिं नत्वा चकार ह ।

साक्षात् स्तुता तदा दुर्गा ब्रह्मणे कथंचं ददौ ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्णकवचं दिव्यं सर्वरक्षणनामकम् । दद्यात्तस्मै महामाया सान्तरानं चकार ह

स्तोत्रं कुर्यन्ति निद्राश्च संरक्ष्य कथचेन वै । निद्रानुग्रहतः सद्यः स्तोत्रस्यैव प्रमायत ।  
तत्राजगाम भगवान् वृषरूपी जनार्दनः । शनया च दुर्गया साधं शङ्करस्य जयाय च ।

सख्यं शङ्करं मूर्ध्नि कृत्वा च निर्मयं ददौ । अत्यूर्ध्वं प्रापयामास जया तस्मै जयं ददौ ।  
स्तोत्रस्यैव प्रभावेण संप्राप्य कवचं विधिः । धरञ्च कवचं प्राप्य निर्मयं प्राप निश्चित

ब्रह्मा ददौ महेशाय स्तोत्रञ्च कवचं धरम् । त्रिपुरस्य च संप्राप्ते सख्ये पतिते हतौ  
ब्रह्मास्त्रञ्च गृहीत्वा स सनिद्रं श्रीहरिं स्मरन् ।

स्तोत्रञ्च कवचं प्राप्य जघान त्रिपुरं हरः ॥ ४२ ॥  
स्तोत्रेणानेन तां दुर्गां कृत्वा गोपालिकाः स्तुतिम् ।

लेभिरे श्रीहरिं कान्तं स्तोत्रस्यास्य प्रमायतः ॥ ४३ ॥  
गोपकन्याकृतं स्तोत्रं सर्वमङ्गलनामकम् । चाञ्छितार्थप्रदं सद्यः सर्वविघ्नविनाशनम्

त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं भक्तियुक्तश्च मानवः ।  
शैवो वा वैष्णवो वापि शाक्तो दुर्गात् प्रमुच्यते ॥ ४५ ॥

राजद्वारे श्मशाने च दायात्री प्राणसङ्कटे । हिंस्रजन्तुभयप्रस्तो मग्नः पोते महार्णवे ॥ ४६ ॥  
शत्रुप्रस्ते च संप्राप्ते कारागारे विपद्गते । गुह्यशापे ब्रह्मशापे बन्धुभेदे च दुस्तरे ॥ ४७ ॥

स्थानघ्नते घनघ्नते जातिघ्नते शुचान्विते । पतिभेदे पुत्रभेदे खलसर्पविपान्विते ॥ ४८ ॥  
... मन्व्येत निर्मयः । चाञ्छितं लभते सद्यः सर्वैश्वर्यमनुत्तम

रहलोके हरेर्भक्तिं दृढाञ्च सततं स्मृतिम् । अन्ते दास्यञ्च लभते पार्वत्याश्च प्रसादतः ॥  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

गोपकन्याकृतं सर्वमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ।

धनेन स्तवराजेन तुष्टुवुर्निरयमीश्वरीम् । प्रणेमुः परया भक्त्या याचन्मासं यजाङ्गनाः  
एवं पूर्णे च मासे च समाप्तिदिषसे तथा । स्नातुं प्रजग्मुर्गाप्यश्च वस्त्राण्याधाय तत्तटे  
नानाविधानि द्रव्याणि रत्नमूल्यानि नारद ।

पीतलोहितशुक्लानि चारुणि मिश्रितानि च ॥५३॥

गौरवृत्तान्यसंख्यानि तैश्च तीरं सुशोभनम् । चन्दनागुरुकस्तूरीवायुना सुरभीकृतम् ॥  
वैधेयैश्च बहुविधैः कालदेशोद्भवैः फलैः । धूपैः प्रदीपैः सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्च विराजितम् ॥

जले क्रीडोन्मुखा गोप्यो बभूवुः कौतुकेन च ।

नग्नाः क्रीडाभिरासक्ताः श्रीकृष्णार्पितमानसाः ॥५६॥

दृष्ट्वा कृष्णश्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च ।

घासांस्यादाय वस्तूनि चत्वाद शिशुभिः सह ॥५७॥

गत्या दूरञ्च गोपालास्तस्थुः सर्वे मुदान्विताः ।

वस्त्राणि पुञ्जीकृत्यादौ ऊचुः स्कन्धेऽतिलोलुपाः ॥५८॥

दामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च । सुवलश्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा

न्द्रभानुर्धोरभानुः सूर्यभानुस्तथैव च । वसुभानू रत्नभानु गोपालाद्वादश स्मृताः ॥

कृष्णो बलदेवश्च प्रधानाश्च चतुर्दश । गोपा हरेर्वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुने ॥

त्राण्यादाय ते सर्वे तस्थुरेकत्र दूरतः । शतशः पुञ्जिकास्तत्र स्थापयामासुरमुखाः ॥

किञ्चिद्वस्त्रं समादाय कृत्वा च पुञ्जिकां मुदा ।

समारुह्य कदम्बाग्रमुवाच गोपिकां हरिः ॥६३॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भो भो गोपालिकाः सर्वा विनष्टा यतकर्मणि ।

कृत्वा विधानं मद्रावयं ध्रुत्वा क्रीडत मग्मथात ॥६५॥

सङ्कल्पिते यताहं च मार्गे मह्यन्वर्तमानि । यूपं नागतः कर्म तोये यताङ्गानिकानिकाः  
परिवेयानि पासांसि पुण्यादान्यानि यानि च ।

यताहंणि च यस्तूनि केन नीतानि षोऽधुना ॥६६॥

मने तु मग्ना यास्नातितां शृष्टोपरुणःस्ययम् । यत्नानुचरा पासङ्गानुर्वस्तुविनिर्दि  
कथं यास्यथ मग्नाश्च यतस्य किं मयिष्यति ।

यताराध्या कथं सा च यस्तूनि किं न रक्षति ॥६८॥

निन्तां कुप्यतां पूज्यां तुष्टाय बलिरीश्वरीम् । युष्माकमीदृशीं देधीनशक्तापस्तुष्टा  
कथं यतफलं सापो दातुं शक्तासुरेश्वरी । फलं प्रदानुं या शक्ता सा शक्ता सर्वका

श्रीकृष्णस्य घनः श्रुत्या विन्तामापुत्रं जस्त्रियः । ददृशुर्गमुनातीरं यस्त्रयस्तुविहीन  
स्रष्टुर्विपादं तोये च नग्नास्ता हरदुर्भृशम् ।

यद्य गतानि च यस्त्राणि यस्तूनीत्युचुरत्र नः ॥७३॥

हृत्वा विपादं तत्रैव तमूचुर्गोपकन्यकाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा मत्तया धिनयपूर्व  
गोपालिका ऊचुः ।

परिवेयानि यस्याणि किंकरीणां सदीश्वरः । निबोधयात्मानमेव स्पर्शं कर्तुं त्वा  
यताहंणि च यस्तूनि देवत्वानि च साम्प्रतम् । अदत्तानि नोचितानि गृहीतुं वेद

देहि धीतानि धृत्वा च करिष्यामो वतं धयम् ।

यस्तूनान्येन गोविन्द यस्तूनां भक्षणं कुरु ॥७६॥

पतस्मिन्नन्तरे तत्र श्रीदामा यस्त्रपुञ्जिकाम् । दर्शयित्वा च ताः सर्वा दूरं दुद्राव  
दृष्ट्वा सवस्त्रं गोपालं सर्वासामीश्वरीपरा । सर्वाधयस्याधोवाच कोपयुकाज्ज

श्रीराधिकोवाच ।

हे सुशीले शशिकले हे चन्द्रमुखि माधवि । कदम्बमाले हे कुन्ति यमुने सर्वमङ्गले ॥१॥  
हे पद्ममुखि सावित्रि पारिजाते च जाह्ववि । सुधामुखि शुभे पत्ने हे गौरि हे स्वयंप्र  
कालिके कमले दुर्गे हे सरस्वति भारति । अपूर्णे रति हे गङ्गे चाम्बिके सति सुन्दरि  
कृष्णप्रिये मधुमति । नि । यूपं सर्वाः समुत्थाय यदुध्वानयत पद्माम् ॥

सर्वा राधाहया तूर्णं समुत्थाय जलात् क्रुधा ।

प्रजग्मुर्गापिका नाना योनिमाच्छाय पाणिना ॥८३॥

स्तासां सहचारिण्यो गोप्यस्तूर्णं सहस्रशः । प्रजग्मुस्तेन रूपेण कोपादारकलोचनाः ॥  
वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानञ्च बालिकाः । वेगेन च प्रधायन्तं विभ्रन्तं घस्त्रपुञ्जिकाम्  
जगामशीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः । जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्बलसंयुताः ॥

वस्त्रचोरांश्च गोपांश्च वेषयामासुराशु ताः ।

मिया प्रद्रुद्रुवुर्याला यत्र कृष्णः सहांशुकः ॥ ८७ ॥

श्रीकृष्णसहितान् बालान् घस्यामासुराशु च ।

गोपिकानां मिया गोपा ददुर्घस्त्राणि माधवम् ॥ ८८ ॥

माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा । कदम्बवृक्षः शुशुभे वस्त्रैर्नानाविधैरपि

घस्त्राणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु विनिधाय च ।

उवाच गोपिकाः कृष्णः परिहासपरं घवः ॥ ९० ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

ओमो गोपालिकानप्राप्तानां किं करिष्यथ । घस्त्रयाञ्जनांप्रकर्तुंश्चकुस्ताशु पुटाञ्जलिम्

गत्वा घदत युष्माकमोश्वरीमथ राधिकाम् ।

करोतु शीघ्रं घस्त्राणि याञ्जनां कृत्वा पुटाञ्जलिम् ॥ ९२ ॥

कन्यघाहं न दास्यामियुष्मभ्यमंशुकानि च । युष्माकमीश्वरीराधाकिंकरिष्यतिमेऽधुना

प्रताराध्या च या देयी सा धा मे किं करिष्यति ।

इत्येवं कथितं सर्वं श्रुत यूयञ्च राधिकाम् ॥ ९४ ॥

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ताः सर्वा गोपकन्यकाः ।

घीक्ष्य लोचनकोपेन प्रजग्मु राधिकान्तिकम् ॥ ९५ ॥

वर्तुर्निघेदनं गत्वा यदुवाच हृदिःस्ययम् । श्रुत्वा जहास सा राधा बभूव कामपीडिता

श्रुत्वा तासाञ्च वचनं पुलकाञ्जितविप्रहा । न जगाम हरेः स्थानं प्रीडया सस्मितासती

जले योगासनं कृत्वा दध्यां कृष्णपदाम्बुजम् ।

ब्रह्मेशानन्तु धर्माणां धन्यमीप्सितदं परम् ॥ ६८ ॥

स्मारं स्मारं पदाम्भोजं साश्रुसम्पूर्णलोचना । भावातिरेकात्प्राणेशन्तुष्टाय निर्गुणंपद  
राधिकोचाच्च ।

गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणबहुभ । हे दीनघन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तुते ।  
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन । नन्दात्मज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ।  
शतमन्योर्मन्युमग्न ब्रह्मदर्पविनाशक । कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तुते ॥ १०४ ॥  
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर । ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तुते ॥ १०५ ॥  
चराचरतरोर्बीज गुणातीत गुणात्मक । गुणधीज गुणाधार गुणीश्वर नमोऽस्तु ते ।  
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धेसिद्धिस्वरूपक । तपस्तपस्विगन्तपसां बीजरूप नमोऽस्तुते ।  
यदनिर्वचनीयञ्च घस्तुनिर्वचनीयकम् । तत्स्वरूप तयोर्बीज सर्वधीज नमोऽस्तु ते ।

अहं सरस्यती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतिप्रसूः ।

यस्य पादारचनान्नित्यं पूज्या तस्मै नमो नमः ॥ १०७ ॥

स्पर्शने यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवनिशम् ।

पवित्राणि चर्त्तार्यानि तस्मै भगवते नमः ॥ १०८ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विप्रहम् ।

मनःप्राणांश्च धीहृष्णे सग्यां स्थाणुसमा सती ॥ १०९ ॥

राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । हरिमन्त्रिञ्च दास्यञ्च लभेत्प्राणातिधुक्  
पिपत्सौ यः पठेद्भक्त्या सद्यः सम्पत्तिमाप्नुयात् । शिरकालगतं द्रव्यं हृतं नष्टञ्च सन्त्ये  
घन्धुषुद्धिर्मघ्नस्य प्रसन्नं मानसं परम् । निन्ताप्रस्तः पठेद्भक्त्या परां निर्वृतिमाप्नुयात्  
पतिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च सट्टये । प्राप्तं मनसा यदि पठेत्सद्यः स दर्शनं लभेत् ॥

मनसा बुभारी स्तोत्रञ्च शृणुयाद्व्यस्रं यदि ।

धीहृष्णसद्वरां कान्तं गुणघनं लभेद्भुवम् ॥ ११४ ॥

इति धीप्रहयैवर्ते महापुराणे धीहृष्णजन्मखण्डे राधाकृतं धीहृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ।

उत्तरया राधिवा ध्यात्वा धीहृष्णधरणाभ्युत्तम् ।

स्तुत्वैवञ्चभ्रुन्मील्य दृष्ट्वा कृष्णमयं जगत् ॥ ११५ ॥

ददर्श यमुनातीरं घस्त्रद्रव्यमयंमुने । दृष्ट्वा तन्द्रायथा स्वप्रमिति मेने च राधिका ॥११६॥  
यत्र स्थाने यदाधारे यद् द्रव्यं संस्थितं पुप । चखैश्च सहितं सद्यं तत्प्रापुर्गोपकन्यकाः

जलादुत्थाय ताः सर्वा व्रतं कृत्वा मनीषितम् ।

संप्राप्य च घरं देव्यस्ताः सर्वाः स्यालयं ययुः ॥ ११८ ॥

नारद उवाच ।

व्रतस्य किं विधानञ्च किं नाम किं फलं प्रभो ।

फानि द्रव्याणि देयानि फा देया तत्र दक्षिणा ॥ ११९ ॥

प्रतान्ते किं रहस्यञ्च बभूव सुमनोहरम् ।

व्यासं कृत्वा महाभाग घद नारायणी कथाम् ॥ १२० ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य घचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारभे कर्षीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥

नारायण उवाच ।

सर्वं व्रतविधानञ्च मत्तो घत्स निशामय । क्पालं गौरीव्रतं नाम मार्गमासि कृत्स्त्रिया  
संसाञ्च धर्मकामार्थमोक्षदं कृष्णभक्तिदम् । देशभेदे प्रसिद्धञ्च व्रतं पौर्णपरं स्मृतम् ॥

कामदं फामुकानाञ्च फलं कान्तनिमित्तकम् । उपोष्य पूर्वदियसे घस्त्रं प्रशाल्यसंयता

प्रातश्च मार्गसंभ्रान्त्यां मनया गत्वा सरित्तटम् ।

धृत्वा धौते घ स्नात्वा घ नानाद्रव्येण कन्यका ॥ १२५ ॥

पयस्कञ्च सम्पूज्य-कृत्वा-घाषादनं घटे । गणेशञ्च दिनेराञ्च घङ्गि नारायणं शिष्यम् ॥

गार्गोपशोपचारीञ्च सम्पूज्य व्रतमारभेत् । घटाधःपिण्डिकां कृत्वा चतुरस्रां सुविस्तृताम्

घन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्त्रताम् ॥ १२७ ॥

नेर्माय बालुकानाञ्च दुर्गां दशभुजां पराम् । पूज्या कपाले सिन्दूरं तदपघन्दनेन्दुषम्

तौ घ्यात्पाऽऽयाहयेदेषी ततो भूष्या पुटाञ्जलिः । इमं मन्त्रं पठित्वा दशतः पूजासमारभेत्

हे गौरि शङ्कराधोङ्गि यथा त्वं शहरत्रिणा ।



- तथा मां कुरु वक्ष्याणि कात्तकात्ता सुदुर्ममाम् ॥ १३० ॥  
 इमं मन्त्रं पठित्वा तु ध्यायेद्देवीं जगत्प्रभाम् । ध्यानं कृत्वा मये शोकं निगूढं सर्वकामम्  
 शृणु मारुद पश्यामि मुनीन्द्राणाञ्च दुर्ममम् ।  
 ध्यायत्यनेन सिद्धाश्च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ १३१ ॥  
 शिवां शिवप्रियां शैवां शिवपत्न्यः स्थलम्बिताम् । इन्द्राण्यप्रसन्नाम्वां सुप्रतिष्ठां सुलोका  
 नपयीषन्सम्पन्नाः स्तनाभरणभूषिताम् । रत्नकटूणकेयूररत्ननूपुरभूषिताम् ॥ १३२ ॥  
 रत्नकुण्डलगुमेन गण्डस्थलविराजिताम् । मालतीमाल्यमंसक्तकवरीं चमराभिव्याज  
 सिन्दूरतिलकं चाक, कस्तूरीचिन्दुना सह । पद्मिगुह्यांशुकां रत्नकिरीटां सुमनोहरा  
 मणीन्द्रसारसंसक्ताजमालासमुच्चलाम् ।  
 पारिजातप्रसूनानां मालाजालानुलम्बिताम् ॥ १३३ ॥  
 १ सुर्षानकठिनश्रोणीं विभ्रतीञ्च स्तनानताम् ।  
 नपयीषन्मारीचादीपन्प्रान् मनोहराम् ॥ १३४ ॥  
 प्रह्लादिमिस्तूपमानां सूर्य्यकोटिसमप्रभाम् । पकविम्याघरोष्ठीञ्च चारुवन्पकसन्निभान्  
 मुक्तापङ्क्तिविन्द्वैकदन्तराजिविराजिताम् । मुक्तिकामप्रदां देवीं शरच्चन्द्रमुखीं भवे ।  
 ध्यात्वैवं मस्तके पुष्पं चिन्यस्य च वती मुदा ।  
 पुष्पं गृहीत्वा भक्त्या च पुनर्ध्यात्वा च पूजयेत् ॥ १३५ ॥  
 दत्त्वा षोडशोपचारान् प्रहृष्टं तत्र नित्यशः । पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण मुदा भक्त्या वते प्रती  
 पूर्वोक्तेनैव स्तोत्रेण स्तुत्या च प्रणमेत्तदा ।  
 कृत्वा प्रणामं भक्त्या च संयतः शृणुयात्कथाम् ॥ १३६ ॥  
 नारुद उवाच ।  
 वतं व्रतविधानञ्च फलञ्च स्तोत्रमद्भुतम् ।  
 अधुना श्रोतुमिच्छामि गौरीव्रतकथां शुभाम् ॥ १३७ ॥  
 व्रतं केन कृतं पूर्वं भूमौ केन प्रकाशितम् ।  
 कथं च विस्तार्यं व्रतसन्द्देशमञ्जन ॥ १३८ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

कुराध्वजस्य हि सुता नाम्ना वेदघती सती । तथा कृतं घतमिदं महातीर्थं च पुष्करे ॥  
समाप्तिदिघसे साक्षाद्बभूव जगदम्बिका । योगिनीलक्षसंयुक्ता सूर्य्यकोटिसमप्रभा ॥  
पातकुम्भधिनिर्माणरथस्था परमेश्वरी । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या तामुवाच सुसंयताम् ॥

पार्वत्युवाच ।

इ वेदघति भद्रन्ते घरं वृणु यथेप्सितम् । तव व्रतेन तुष्टाहन्तुभ्यं दास्यामि घाञ्छितम्  
पार्वतीघवनं श्रुत्या दृष्ट्वा तां हृष्टमानसाम् । पुटाञ्जलियुता साध्वी प्रणम्योवाच नारद ॥  
वेदघत्युवाच ।

देवि नारायणं कान्तं मह्यं देहि मनीषितम् ।

घरेऽन्यस्मिन् स्पृहा नास्ति दृढां भक्तिञ्च तत्पदे ॥ १५१ ॥

श्रुत्या वेदघतीवाक्यं ग्रहस्य जगदम्बिका । अवरह्य रधात्तूर्णं तामुवाच हरिप्रियाम् ॥  
पार्वत्युवाच ।

पातं सर्वं जगन्मातस्त्वञ्च लक्ष्मीः स्वयं सती । भारतं पादरजसा पूतं कर्तुं समागता  
पत्पादरजसा साध्वी सद्यः पूता वसुन्धरा । निखिलानिच तीर्थानि पूतानि परमेश्वरि  
तन्ते लोकशिक्षार्थं तपश्चर तपस्विनि । नारायणस्य कान्तात्वं प्रिया जग्मनि जन्मनि  
पारावतरणे विष्णुर्वसुधामागमिष्यति । रामो दाशरथिः पूर्णः कर्तुं दस्युपिनिग्रहम् ॥  
लशापाञ्च च्युतयोर्मोक्षणाय च भक्तयोः । अयोध्यायाञ्च त्रेतायामाविर्भावो हरेरपि ॥

त्वमेव मिथिलां गच्छ विधाय शिशुविग्रहम् ।

त्वामिमां प्राप्य जनकोऽप्ययोनिसम्भवां सुताम् ॥ १५८ ॥

पालयिष्यति यत्नेन सीता त्वञ्च भविष्यति ।

गत्वा रामोऽपि मिथिलां त्वां विधाहं करिष्यति ॥ १५९ ॥

नारायणस्य कान्ता त्वं कल्पे कल्पे भविष्यसि ।

इत्युक्त्वा तां समालिङ्ग्य पार्वती स्वालयं ययौ ॥ १६० ॥

गत्वा सा मिथिलां साध्वी शिशुरूपं विधाय च ।

साङ्गन्त्य व रेगापो सुगासर्गा व भागया ॥ १११ ॥

विलोक्य जनकस्याश्वनात् मुद्रितलोचनाम् । लम्काश्वनरर्गाश्च कर्त्वी तेजसाग्नि  
 द्वा ताश्च शूहीत्या व वृत्वा वरासि नाम् । गवाश्वनाग्नित्रयेवाम्बुधमूषागार्गिणी  
 क्षपोनिसम्भवा वर्या कमला प्रहणं कुम् । नारायणस्ते जामाता भविनेत्येवमेव च  
 धृष्णातरा देवपाणी शूर्दात्या वर्याकामृषिः । गत्वाद्दी शकान्तारे पान्तराय मुद्गनि  
 सा लक्ष्मणोपना प्राय रामं दशरथि सती । प्रतम्यास्य प्रमायेज कान्तं त्रिजगतीर्त्  
 प्रकाशितं परिष्टेन वृधिव्यां मक्तिमायतः । राधा वृत्वा प्रतमिद्ं श्रीकृष्णप्राणवहाम्  
 गोपाङ्गनाश्च तं प्रापुर्मतस्यास्य प्रमायतः । इत्येवं कथिता विप्र कथा गौरीप्रतम्य  
 भारतेच प्रतमिद्ं या करोति कुमारिका । म्यामिनं कृष्णतुल्यश्च सा प्रप्नोति न संशय  
 इति गौरीप्रतकथा समाप्ता ।

श्रीनारायण उपाच ।

एवं प्रतश्च चकुस्ता यावन्मासश्च गोपिकाः । पूर्वस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुयुध दिने दिने  
 समाप्तिदिक्षते गोप्योप्रतं वृत्त्वामुदान्विताः । कष्यशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टुयुःपरमेस्वरान्  
 येन स्तोत्रेणतां स्तुत्यासीता सत्यपरापणा । सद्यःसंप्राप कान्तश्च रामं राजीवलोचनम्  
 जानक्युधाच ।

केत्यरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये । सदा शङ्करयुक्ते च पतिं देहि नमोस्तु ते ।  
 सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि ।

सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १७४ ॥

गौरि पतिमर्मज्ञे पतिप्रतपरायणे । पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ १७५ ॥

वर्मङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते । सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥ १७६ ॥

वंप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुमघिनाशिनि । सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ १७७ ॥

रमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि । साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥

धुत्तृप्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा सन्द्रा स्मृतिः क्षमा ।

पतास्तव  नमोऽस्तु ते ॥ १७८ ॥

लज्जामेधातुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः । एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते  
 दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्योजफलप्रदे । सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते ॥१८१॥  
 शिवे शङ्करसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिकान्तञ्च सौभाग्यं देहिदेवि नमोऽस्तुते

स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम् ।

नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम् ॥ १८३ ॥

इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् ।

दिव्यं स्यन्दनमादह्य यात्यन्ते कृष्णसन्निधिम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधावृतं पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

समाप्तिदिवसे राधा गोपीभिः सह संयुता ।

देवीं प्रणम्य स्तुत्वा च व्रतं पूर्णञ्चकार ह ॥ १८५ ॥

गोसद्वरं ब्राह्मणाय सुवर्णशतकं मुदा । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यतः ॥

ब्राह्मणानां सद्वरञ्च भोजयामास सादरम् । घाद्यानि वादयामास मिथुकाय धनं ददौ  
 पतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । भाविर्वभूय गगनाञ्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥

ईश्वरस्यप्रसन्नास्या योगिनीशतसंयुता । सिंहस्था च दशभुजा खालद्वारभूषिता ॥  
 शतकुम्भमयादिव्याघ्रनसात्परिच्छदान् । भवदह्य रथात्तूर्णमालिङ्गयोरसि राधिकाम्

दृष्ट्वा गोपाङ्गना देवीं प्रणेमुध मुदान्विताः ।

भाशिषं युयुजे दुर्गा घाञ्छासिद्धिर्भविष्यति ॥ १६१ ॥

गोपिकाम्यो वरं दत्त्वा ताः सम्माप्य च सादरम् ।

उपाच राधिकां दुर्गां स्मैराननसरोदहा ॥ १६२ ॥

पार्यत्युपाच ।

राधे सर्वेश्वरप्राणादधिके जगदम्बिके । प्रतन्ते लोकशिक्षार्थं मायामानुषरूपिणी ॥  
 गोलोकनाथं गोलोकं धोशीलं गिरिजातटम् । धारासमण्डलं दिव्यं वृन्दावनमनोहरम्

धरितं रतिचोरस्य स्त्रीणां मानसहारकम् ।

पिदुयः कामशास्त्राणां किञ्चिन् स्मरसि सुन्दरि ॥ १६५ ॥

ताङ्गलम्य च रैगायो तुष्ठासम्पत्तौ च मागया ॥ १३१ ॥

विलोक्य जगत्प्रतापनाम्नां मुद्रितलोचनताम् । तदाकाशमथर्षांश्च रुद्रीं नेत्रमन्त्रि-  
 दृष्ट्वा ताश्च गृहीत्वा च कृत्वा पशामि नारद । गच्छन्तंवलिनश्रैवयाम्बुवपूयार्तिरिपि-  
 बपोनिसम्भवां कल्प्यां कामलां प्रहणं कुम्भ । नारायणस्मने जामाता भविष्येतेयेमे च  
 ध्रुत्वातदा देवपानीं गृहीत्वा कल्पकागृपिः । गत्याद्दूरी स्वकान्तार्यै पान्त्राय दृष्ट्वा  
 सा लम्घयौघना प्राप रामं दारारधिं सती । वनम्याम्य प्रमायेण कान्तं त्रिजगतांति  
 प्रकाशितं पशिष्टेन पृथिव्यां भक्तिभाषतः । राधा कृत्वा व्रतमिदं श्रीकृष्णप्राणवदन् ।  
 गोपाङ्गनाथ तं प्रापुर्वतस्यास्य प्रभाषतः । इत्येवं कथिता यिम् कथा गौरीव्रतम् ।  
 भारतेच व्रतमिदं या करोति कुमारिका । म्यामिनं कृष्णतुल्यश्च सा प्राप्नोति नमस्त-

इति गौरीव्रतकथा समाप्ता ।

श्रीनारायण उवाच ।

एवं व्रतञ्च सकृस्ता यावन्मासञ्च गोपिकाः । पूर्वंस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुषुश्च दिने ति-  
 समाप्तिदिवसे गोप्पोव्रतं कृत्वा मुदान्विताः । कष्यशास्त्रोक्तस्तोत्रेण तुष्टुषु पामेर्वर-  
 येन स्तोत्रेणतां स्तुत्वासीता सत्यपरापणा । सद्यःसंप्राप कान्तञ्च रामं राजीवलोचन-  
 जानक्युवाच ।

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये । सदा शङ्करयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते ।

सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि ।

सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १७४ ॥

हे गौरि पतिर्मर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे । पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ १७५ ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते । सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥ १७६ ॥

सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुमविनाशिनि । सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ १७७ ॥

परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि । साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ।

धुत्सृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा ।

एतास्तथ फलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७८ ॥

लज्जामेधातुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः । एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते  
 दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्वीजफलप्रदे । सर्वातिर्यचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते ॥१८१॥  
 शिवे शङ्करसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिकान्तञ्च सौभाग्यं देहिदेवि नमोऽस्तुते

स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्या समाप्तिदिपसे शिवाम् ।

नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम् ॥ १८३ ॥

इह कान्तमुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् ।

दिव्यं स्यन्दनमादह्य यात्यन्ते कृष्णसन्निधिम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधावृतं पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

समाप्तिदिपसे राधा गोपीभिः सह संयुता ।

देवीं प्रणम्य स्तुत्वा च वृतं पूर्णञ्चकार ह ॥ १८५ ॥

गोसहस्रं ब्राह्मणाय सुवर्णशतकं मुदा । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यता ॥  
 ब्राह्मणानां सदस्यञ्च भोजयामास सादरम् । पात्रानि वादयामास मिश्रुकाय धनं ददौ  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । भाविर्वभूय गगनाञ्ज्वलन्ती ब्रह्मनेत्रसा ॥  
 ईशदास्यप्रसन्नास्या योगिनीशतसंयुता । सिंहस्था च दशभुजा रत्नालङ्कारभूषिता ॥  
 शतकुम्भमयादिव्याव्रजसारपरिच्छिदात् । भवहृत् राधात्पूर्णमालिङ्गयोरसि राधिकाम्

दृष्ट्वा गोपाङ्गना देवीं प्रणेमुञ्च मुदान्विताः ।

भाशिरं युयुजे दुर्गा घाञ्जासिद्धिर्भषिष्यति ॥ १६१ ॥

गोपिकाम्यो परं दत्त्वा ताः सम्प्राप्य च सादरम् ।

उपाच राधिकां दुर्गा स्मेराननसरोरहा ॥ १६२ ॥

पार्वत्युपाच ।

राधे सर्वेश्वरप्राणादधिके जगद्गर्विके । प्रकृते लोकशिशुषुषं मायामानुषकपर्णि ॥

गोलोकनाथं गोलोकं धोशीलं गिरिजातटम् । धारासमण्डलं दिव्यं वृन्दावनमनोहरम्

घरितं रतिचोरस्य स्त्रीणां मानसहारकम् ।

विदुषः कामशास्त्राणां किञ्चिन् स्मरसि शुन्दरि ॥ १६५ ॥

लाङ्गलम्य च रेखायां सुपासस्यो च मायया ॥ १६१ ॥

पिलोषय जनकस्ताश्चनगनां मुद्रितलोचनाम् । तप्तकाश्चनवर्णाश्च कर्त्तीं तैत्रसान्वितम्  
 द्वा ताञ्च गृहीत्वा च वृत्त्वा पश्चसि नारद । गच्छन्तं प्रतिनयेषवाण्बभूवाशरीरिणी ।  
 यो निसम्भयां फन्यां कमलां प्रहर्णं कुः । नारायणस्ते जामाता भवितेत्येवमेव च ।  
 त्पातदा देवघाणीं गृहीत्वा फन्यकामृषिः । गत्वाद्दौ स्वकान्ताये पालनाय मुद्रावित्  
 ॥ लक्ष्मण्यौचना प्राप रामं दाशरथिं सती । प्रतस्याम्य प्रमायेण कान्तं त्रिजगतांरि  
 काशितं पशिष्टेन पृथिव्यां भक्तिभाषतः । राधा वृत्त्वा प्रतमिदं श्रीकृष्णप्राणकम्प  
 पोपाङ्गनाश्च तं प्रापुर्वतस्यास्य प्रभाषतः । इत्येवं कथिता विप्र कथा गौरीव्रतम् च  
 रतेच व्रतमिदं या करोति कुमारिका । स्वामिनं कृष्णतुल्यञ्च सा प्राप्नोति न संशय

इति गौरीव्रतकथा समाप्ता ।

श्रीनारायण उवाच ।

यं व्रतञ्च चक्रुस्ता यावन्मासञ्च गोपिकाः । पूर्वस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुवुञ्च दिने हि  
 मासिदिवसे गोप्योव्रतं वृत्त्वासुदान्विताः । कण्वशाखीकस्तोत्रेण तुष्टुवुःपामेवदं  
 न स्तोत्रेणतां स्तुत्वासीता सत्यपरापणा । सद्यःसंप्राप कान्तञ्च रामं राजीवलोचन

जानक्युवाच ।

क्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाधये । सदा शङ्करयुक्ते च पतिं देहि नमोस्तु ते ।

सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि ।

सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १७४ ॥

गौरि पतिर्ममेशे पतिव्रतपरायणे । पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ १७५ ॥  
 र्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते । सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥ १७६ ॥  
 र्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभयिनाशिनि । सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ १७७ ॥  
 त्मात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि । साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १७८ ॥

क्षुत्तृष्णेच्छा दया धृद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा ।

यत्तास्तथ कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७९ ॥

लज्जामेधानुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः । पतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते  
दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्थोजफलप्रदे । सर्धानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते ॥ १८१ ॥  
शिवे शङ्करसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिकान्तञ्च सौभाग्यं देहिद्वेषि नमोऽस्तुते

स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्या समाप्तिद्विषसे शिवाम् ।

नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम् ॥ १८२ ॥

इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् ।

दिव्यं स्पन्दनमाह्वयात्यन्ते कृष्णसन्निधिम् ॥ १८३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृतं पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

समाप्तिद्विषसे राधा गोपीभिः सह संयुता ।

द्वेषीं प्रणम्य स्तुत्वा च प्रतं पूर्णञ्जकार ह ॥ १८५ ॥

गोसहस्रं ब्राह्मणाद्य सुवर्णशतकं मुदा । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा म्यगृहं गन्तुमुद्यता ॥

ब्राह्मणानां सहस्रञ्च भोजयामास सादरम् । पायानि घादयामास मिथुकाय घनं दर्शं

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गां दुर्गनिनाशिनीं । भाषिष्यंभूय गगनाग्ज्वलन्ती ब्रह्मनेत्रसा ॥

इयदास्यप्रसन्नान्वा योगिनीशानमंगुता । तिहन्वा च दशभुजा रत्नालङ्कारभूषिता ॥

शातशुभ्रमयादिव्याद्रदासारपरिच्छिन्ना । भयत्वा रथात्पूर्णांमालिङ्ग्योरसि राधिकाम्

इहा गोपाङ्गना देवीं प्रणेमुध मुदाश्रिताः ।

भाषितं मुमुक्षे दुर्गां पाश्र्ठासिद्धिर्भविष्यति ॥ १११ ॥

गोपिकाभ्यो परं दृष्ट्वा ताः सम्माप्य च सादरम् ।

उवाच राधिकां दुर्गां स्मरान्नसरोरहा ॥ ११२ ॥

पार्वत्युवाच ।

राधे तवैश्वर्याणादधिकं जगदधिकं । प्रकृते लोकप्रियायं प्रायाप्तानुपकृतिर्जा ॥

गोलोकभाषं गोलोकं धीरोत्तं गिरिजाशरम् । धारासनगङ्गलं दिव्यं कृन्दायनमनोहरम्

अरिर्न रतिचोरस्य कर्षणीं भावसहायकम् ॥



धीहृत्तन्त्रार्थाङ्गसम्भूता हृत्तन्त्राद्य तेजसा । तर्वाशकल्या देव्यः कर्म त्वमानुषी सती  
 भवती च हरेः प्राणा भवत्याश्च हरिः स्वयम् । धेरेनाग्नि द्वयोर्भेदः कर्मण्य मानुषीकं  
 वद्विपर्यसद्व्याजि प्रह्ला तत्र्या तयः पुरा । न ते दर्या पादात्तं कर्म त्वं मानुषीसती  
 हृत्तन्त्रया च त्वं देवी गोपीरूपं विधाय च ।

भागतासि महीं शान्ते कर्म त्वं मानुषी सती ॥ १११ ॥

सुयज्ञो हि नृपधेष्ठो मनुष्यशसमुद्भवः । त्वसो जगाम गोत्रोकं कर्म त्वं मानुषी सती  
 त्रिःसप्तशतयो निर्मूपां घषार पृथिवीं भृगुः । त्व मन्त्रेणकथयात्कर्म त्वं मानुषी सती  
 शङ्करात्प्राप्य त्वमन्त्रं सिद्धंशतया च पुष्करे । जघानकर्तव्योर्व्यञ्ज कर्मत्वं मानुषीसती  
 यमञ्ज दर्पाहन्तञ्च गणेशस्य महात्मनः । त्वसो नाम भयं चक्रो कर्म त्वं मानुषी सती ।  
 मप्युद्धतायां कोपेन मत्ससात्कर्तुमीभवरः । ररक्षागत्यमद्रीत्या कर्म त्वं मानुषी सती  
 कल्पे कल्पे तव पतिः हृत्तन्त्रो जन्मनि जन्मनि ।

प्रतं लोकहितार्थाय जगन्मातस्त्वया कृतम् ॥ २०५ ॥

अहो धीदामशापेन भारावतरणेन च । भूर्मा तवाधिष्ठानञ्च कर्म त्वं मानुषी सती ।  
 अयोनिसम्भवा त्वञ्च जन्ममृत्युजरापहा । कलावतीसुता पुण्या कर्म त्वं मानुषी सती  
 त्रिषु मासेष्वतीतेषु मधुमासे मनोहरे । निर्जने निर्मले रात्रौ सुयोग्ये रासमण्डले ।  
 सर्षाभिर्गोपिकाभिश्च सार्धं वृन्दावनेवने । हर्षेण हरिणा सार्धं क्रीडां ते भविता सती  
 विधात्रा लिखिता क्रीडा कल्पे कल्पे महीतले । तव धीहरिणा सार्धं केनराधेनिवार्यते  
 यथा सौभाग्ययुक्ताहं हरस्य धीहरिप्रिये । तथासौभाग्ययुक्तात्वं मय हृत्तन्त्रस्य सुद्वि

यथा क्षीरेषु घावत्यं यथा घहो च दाहिका ।

भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा हृत्तन्त्रे स्थितिस्तव ॥ २१२ ॥

दैर्वा वा मानुषीवापिगन्धर्वोराक्षसीतथा । त्वत्तःपरा च सौभाग्या न भूतानमविष्यति  
 परात्परो गुणातीतो प्रह्लादीनाञ्च वन्दितः । स्वयं हृत्तन्त्रस्तवाधीनो मद्वरेण मविष्यति

प्रह्लानन्तशिषाराध्यो भविता त्वद्गशः सति ।

ध्यानार्थ्यो दराराध्यः सर्वेषामपि योगिनाम् ॥ २१५ ॥

चञ्चमाग्यवतीराधेस्त्रीजातिषु न ते परा । कृष्णेनसाहंपञ्चात् त्वंगोलोकञ्चगामिष्यसि  
 त्युक्त्वा पार्वती सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे मुने । साधं गोपालिकाभिश्च राधिका गन्तुमुद्यता  
 तस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकापुरः । राधा ददर्श श्रीकृष्णंकिशोरं श्यामसुन्दरम्  
 तवस्त्रपरीधानंनानालङ्कारभूषितम् । आजानुमालतीमालापनमालापिभूषितम् ॥२१६॥  
 पदास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥२२०॥  
 रत्पार्वणचन्द्रास्यं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । पङ्कदाङ्गिमयीजामदशनं सुमनोहरम् ॥  
 नोदमुरलीहस्तन्यस्तलीलासरोरुहम् । कोटिकन्दर्पलापण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥

गुणातीतं स्तूयमानं ब्रह्मानन्तशिवादिभिः ।

ब्रह्मस्वरूपं प्राहृष्यं धृतिभिश्च निरूपितम् ॥ २२३ ॥

यत्कमलक्षरं ध्यत्कं उयोतीरुपं सनातनम् । मङ्गल्यं मङ्गलाधारं मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥  
 तद्भुतं रूपं संभ्रमात् प्रणनाम तम् । तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता राधा कामयागप्रपीडिता  
 दशं मुद्यामभोजं सस्मिता पङ्कलोचना । मुग्धमाच्छादयामास मीड्या च पुनः पुनः  
 हरिस्तामुपाच प्रसन्नवदनेक्षणः । गोपालिकासमूहानां सर्वेषां पुरतः स्थितः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

राधिकेराधिके त्वंवरंशृणुमनीषितम् । भो भो गोपालिकाःसर्वा वरंशृणुतवाञ्छितम्

कृष्णस्य वचनं ध्रुव्या वरं वने च राधिका ।

गोपालिकाश्च ब्रह्मराः सर्वशः कल्पपादपम् ॥ २२६ ॥

राधिकोपाच ।

माशब्दे मन्मनोऽलिः सततं भ्रमन्तु प्रभो ! । पातु भक्तिरसं वने मधुपथ यथा मधु  
 मयाजनाधारस्यं भय जन्मनि जन्मनि । त्वशीपचरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम्  
 मूर्तां गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञानेदिपानिराम् । भयेग्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषिणम् ॥

गोपालिका ऊचुः ।

राधा तथा मधु प्राणबन्धोदिपानिराम् । भविष्यतिप्राणनाधोत्सवसि प्रतिजन्मनि  
 च वचनं धत्वा तथास्त्रयेवमुपाच ह । प्रसन्नवदनः धर्मान् वशोदानन्दवर्षकः ॥

क्रीडापद्मं राधिकायै सहस्रदलसंयुतम् । ललितां मालतीमालां ददौ प्रीत्या जगत्पतिः ।  
मालासमूहं पुष्पाणि गोपीभ्यो गोपिकावतिः ।  
प्रहस्य परमप्रीत्या प्रददाचित्युवाच ह ॥ २३६ ॥  
श्रीकृष्ण उवाच ।

त्रिषु मासेष्वतीतेषु यूयं क्रीडां मया सह । रासमण्डलस्ये च वृन्दारण्ये करिष्यथ ।  
यथाऽहञ्च तथा यूयं न हि भेदः श्रुतौ श्रुतः ।  
प्राणा अहञ्च युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो ॥ २३८ ॥  
व्रतं घो लोकरक्षायं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः । सहागताश्च गोलोकाद्गमनञ्च मया सह  
गच्छत स्वालयं शीघ्रं घोऽहं जन्मनि जन्मनि ।  
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः ॥ २४० ॥  
इत्युवाच श्रीहरिस्तत्र तन्धौ सूर्यसुतातटे । तस्युर्गोपालिकाःसर्वा वीक्ष्यकृष्णोपुनपुनः  
सर्वाः प्रहृष्टयदनाः सम्मिता वप्रलोचनाः । प्रीत्या चञ्चुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पशुंति  
; शीघ्रं प्रययुर्गोहं जयं दत्त्वा पुन पुनः । हरिश्च शिशुभिः सार्धं प्रसन्नाः स्वालयं ययौ  
येवं कथितं सर्वं हरेक्षरितमद्गलम् । गोपीनां वस्त्रहरणं सर्वलोकसुखायहम्प्राप्तम् ॥  
इति धर्मब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
गोपीकायस्त्रहरणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

रामक्रीडाप्रस्ताववर्णनम् ।

नारद उवाच ।

त्रिषु मासेष्वतीतेषु मनाश्च हरिणा सह । वरं केन प्रकारेण बभूव तनुनाम्नः ॥ १ ॥  
वृन्दारण्यं द्विप्रकारं द्विविधं रामवन्दनम् । हरिकेशनाथ बहवः केन क्रीडा बभूव ॥

कुतूहलं भवति मे इदं श्रोतुं नवं नवम् । कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ ३ ॥

कथा पुराणसाराणां रासयात्रा हरैरहो ।

हरिलीलाः पृथिव्यान्तु सर्वाः श्रुतिमनोहराः ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य ध्वजः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणः स्वयम् । प्रहस्य सुप्रसन्नास्यः प्रवक्तुमुपवचकमे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा श्रीहरिर्नक्तं घनं वृन्दावनं ययौ । शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने ॥ ६ ॥

यूथिकामालतीकुन्दमाधवीपुष्पवायुना । घासितं कलनादेन मधुघ्राणां मनोहरम् ॥ ७ ॥

नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । नवलक्षरासवाससंयुक्तं सुमनोहरम् ॥ ८ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुवासितम् । कर्पूरान्वितताम्रमूलभोगद्रव्यसमन्वितम् ॥ ९ ॥

प्रसूनैश्चम्पकानाञ्च कस्तूरीचन्दनान्वितैः ।

रतियोग्यैर्विरचितैर्नानातल्पैः सुशोभितम् ॥ १० ॥

दीप्तं रत्नप्रदीपैश्च धूपेन सुरभीरुतम् । नानापुष्पैश्च रचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥ ११ ॥

परितो घर्तुलाकारं तत्रैव रासमण्डलम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुसंस्मृतम् ॥ १२ ॥

पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च युक्तं क्रीडासरोवरेः । हंसकारण्डपार्कीर्णैर्जलकुङ्कुटकृतैः ॥ १३ ॥

क्रीडनीयैः सुन्दरैश्च सुरतश्रमहारिभिः । शुद्धस्फटिकसंकाशतोयपूर्णैः सुनिर्मलैः ॥ १४ ॥

दधिपूर्णशुक्लधान्यजलैर्निर्मसृजनीरुतम् ।

रम्भास्तम्भसमूहेन सुन्दरेण सुशोभितम् ॥ १५ ॥

आम्रपल्लवयुक्तेन सूत्रकण्ठेन घ्रायणा । भूपितं मङ्गलघटैः सिन्दूरचन्दनान्वितैः ॥ १६ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तैर्नारिकेलफलान्वितैः । स रासमण्डलं दृष्ट्वा जदास मधुसूदनः ॥ १७ ॥

चकार तत्र कुतुकाद्विनोदमुरलीरवम् । गोपीनां कामुकीनाञ्च कामवर्धनकारणम् ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोद मदनातुरा । यभूय स्याणुषदेहा ध्यानैकतानमानसा ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य पुनः शुभाप सा ध्यनिम् ।

उवाच सा समुत्सर्थां समुद्दिग्ना पुनः पुनः ॥ २० ॥

त्यक्त्वा चावश्यकं कर्म निःससाराद्दुतं गृहात् । ययौ तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दिशम्  
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । तेजसा च द्योतयन्ती सदन्नसाम्भूरुणैः

बहिर्यभूवुस्तास्त्रस्ता घरेण हृतचेतनाः ।

कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काममोहिताः ॥ २३ ॥

त्रयस्त्रिंशद्द्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः ।

राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥ २४ ॥

तासां पश्चाद्ययुर्गोप्यस्तासां संख्यां निबोध मे । समावेशेन धयसा रूपेण च गुणेन च  
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोडश । ययुश्चन्द्रमुखीपश्चात्सहस्राणि च षोडश ।  
एकादशसहस्राणि माधव्याल्यश्च निर्ययुः । जग्मुः कदम्बमालाल्यः सहस्राणि त्रयोदश

ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश स्मृताः ।

चतुर्दशसहस्राणि ययुस्ता यमूनानुगाः ॥ २८ ॥

जाङ्घीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव ।

ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुठ्याल्य एव च ॥ २९ ॥

सावित्र्याल्यः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्वत्रात् ।

पात्त्रिजातावयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश ॥ ३० ॥

स्वर्पप्रमानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्वत्रात् ।

ययुः सुधामुखीगोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥ ३१ ॥

शुमानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ।  
गौरी पद्मा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । ययुः स्वर्पमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोडश  
कादिकात्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश । निर्ययुः कमलाल्यश्चसहस्राणित्रयोदश  
दुर्षानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश । ययुः सरस्वतीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ।  
प्रजग्मुर्मारुतीपश्चात्सहस्राणि दश वत्रात् । भागनांसहचारिण्यः सहस्राणि चतुर्दश ।  
रतिरश्वात्प्रयत्नाश्च सहस्राणि ययुर्दश । गङ्गावयव्याः प्रययुः सहस्राणि चतुर्दश ॥ ३२ ॥

सतीपश्चाद्युगोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥ ३८ ॥  
 मन्दिनीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्दश । प्रययुः सुन्दरीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ॥ ३९ ॥  
 ययुः कृष्णप्रियापश्चात्सहस्राणि च षोडश । ययुर्मधुमतीपश्चात्सहस्राणि च षोडश ॥  
 ययुश्चम्पानुगा गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ।  
 चन्दनाल्यो ययुः पश्चात्सहस्राणि च षोडश ॥ ४१ ॥  
 सर्वा यभूयुरेकत्र तत्र तस्थुः पलं मुदा । तत्राययुगोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥ ४२ ॥  
 चादचन्दनहस्ताश्च काश्चित्त्राययुर्ब्रजात् । श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्त्राययुर्मुदा ॥ ४३ ॥  
 तत्राययुगोपकन्याः काश्चित् कुङ्कुमघाहिकाः ॥ ४४ ॥  
 काश्चित् तत्राययुगोप्यस्ताम्बूलपात्रघाहिकाः ।  
 यावत्काञ्चनवस्त्राणां घाहिका गोपकन्यकाः ॥ ४५ ॥  
 काश्चित्त्राययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रायली मुदा ।  
 सर्वाश्चैकत्र संभूय सस्मिताश्च मुदान्विताः ॥ ४६ ॥  
 विधाय राधिकामेशं स्थानाच्च प्रययुर्मुदा । चक्रुः पुनःपुनस्ताश्च हरिशब्दं जयं पथि ॥  
 प्रापुर्चुर्न्दायनं रम्यं ददृशू रासमण्डलम् । स्वर्गोन्मयः सुन्दरं द्रश्यं राकापतिकरान्वितम् ॥  
 मुनिर्जनं कुसुमितं वासितं पुष्पधायुना । नारीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम् ॥ ४९ ॥  
 शुश्रूवुस्तत्र ताः सर्वाः पुंस्कोकिलकलध्वनिम् ।  
 अतिवृश्मकलञ्चापि च्मरराणां मनोहरम् ॥ ५० ॥  
 मूनामधुमत्तानां च्मरीसङ्गसङ्गिनाम् । शुभे क्षणे प्रविशेश राधिका रासमण्डलम् ॥ ५१ ॥  
 सर्वाभिरालिभिः सार्धं ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम् ।  
 राधामारात्तु संवीक्ष्य कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥ ५२ ॥  
 गामानुयजं प्रीत्या सस्मितोमदनानुरः । मज्यस्थां सखिसङ्घानां रत्नालङ्कारभूषिताम्  
 देव्यथरूपरीधानां सस्मितां चक्रलोचनाम् । गजेन्द्रगामिनीं रम्यांमुनिमानसमोदिनीम्  
 पीनपेशपयसा रूपेणातिमनोहराम् । तलत्रोणिनिताभ्यानां भारदोगान्वितां पराम् ॥ ५५ ॥  
 तदचम्पकपर्णामां शरच्चन्द्रनिभानताम् । विच्रन्तीं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् ॥

स्यत्तया व्यापदयकं कर्म निःसत्ताराद्भुतं गृह्णात् । ययो तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दशान्  
ध्यायन्ती वरुणाम्मोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । तेजसाच द्योतयन्ती सद्गुणसाधुर्गुणैः

वदिर्यभूयुस्तास्त्रस्ता वरेण हतचेतनाः ।

कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काममोहिताः ॥ २३ ॥

त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः ।

राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥ २४ ॥

तासां पञ्चाययुर्गोप्यस्तासां संख्यां नियोध मे । समावेशेन पयसा रूपेण च गुणेन च  
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोडश । ययुश्चन्द्रमुखीपञ्चात्सहस्राणि च षोडश ॥  
एकादशसहस्राणि माधव्याल्यश्च निर्ययुः । जामुः कदम्बमालाल्यः सहस्राणि त्रयोदश

ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश स्मृताः ।

चतुर्दशसहस्राणि ययुस्ता यमुनानुगाः ॥ २८ ॥

जाह्नवीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव ।

ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुख्याल्य एव च ॥ २९ ॥

सावित्र्याल्यः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्व्रजात् ।

पारिजातावयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश ॥ ३० ॥

स्वयंप्रभानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्व्रजात् ।

ययुः सुधामुखीगोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥ ३१ ॥

शुभानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥

गौरी पद्मा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । ययुः सर्वमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोडश

कालिकाल्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश । निर्ययुः कमलाल्यश्चसहस्राणित्रयोदश

दुर्गानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश । ययुः सरस्वतीपञ्चात्सहस्राणि त्रयोदश ॥

प्रजग्मुर्भारतीपञ्चात्सहस्राणि दश व्रजात् । अपर्णासहचारिण्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥

रतिपञ्चाद्वयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश । गङ्गावयस्याः प्रययुः सहस्राणि चतुर्दश ॥३१

प्रजग्मुरम्बिका पञ्चात्सहस्राणि च षोडश ।

सतीपद्माद्युगोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥ ३८ ॥

शन्दिनीसहस्रारिण्यः सहस्राणि ययुर्दश । प्रययुः सुन्दरीपद्मात्सहस्राणि त्रयोदश ॥  
ययुः कृष्णप्रियापद्मात्सहस्राणि च षोडश । ययुर्मधुमतीपद्मात्सहस्राणि च षोडश ॥  
ययुः कृष्णप्रियापद्मात्सहस्राणि च षोडश ॥

शन्दनाल्यो ययुः पद्मात्सहस्राणि च षोडश ॥ ४१ ॥

सर्पा ययुरेकत्र तत्र तस्युः पलं मुदा । तत्रायुगोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥  
व्यालघन्दनहस्ताश्च काश्चित्त्राययुर्मुंदा । श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्त्राययुर्मुंदा ॥

तत्रायुगोपकन्याः काश्चिन् बुद्धमपादिकाः ॥ ४४ ॥

काश्चिन् तत्रायुगोप्यस्ताम्यूलपात्रपादिकाः ।

पापत्काशनपत्राणां पादिका गोपकन्यकाः ॥ ४५ ॥

काश्चित्त्राययुः शीघ्रं यत्र शन्द्रापली मुदा ।

सर्पाश्चैकत्र संभूय सन्मिताश्च मुदन्विताः ॥ ४६ ॥

विधाय राधिकार्येण स्थानाद्य प्रययुर्मुंदा । यत्रः पुनः पुनस्ताश्च द्विष्यत् जयं पति ॥  
प्रापुर्द्वयपत्नं यत्रं दृष्ट्वा रासमण्डलम् । स्वर्गोप्यः सुन्दरं दृश्यं राकापतिकरान्वितम् ॥  
सुनिर्जनं बुभुक्षितं पातितं पुण्यपायुना । शरीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम् ॥ ४७ ॥

शुभ्रपुत्रत्र ताः सर्पाः पुंसोः किलकन्दोपनिम् ।

अतिगूढमकन्दश्चापि छमराणां मनोहरम् ॥ ५० ॥

प्रगूढमधुमलातां छमरीसङ्कराङ्गिणाम् । शुभे शले अपिदेश राधिका रासमण्डलम् ॥ ५१ ॥

सर्पाभिरानिभि शार्धं ध्यात्वा कृष्णपद्मान्मुञ्जम् ।

राधामाराणु सर्ववीच्य कृष्णवत्त्र मुदन्विताः ॥ ५२ ॥

जगामानुजत्रं व्रीत्या रासिमनोमदनापुरः । अल्पमती रासिराह्वती वञ्चालूतामूर्त्तिनाम् ॥  
द्विष्यत्पारपरीशानां रासिमतीं वचनोच्चिताम् । तत्रैन्द्रागमिनीं शर्यामुन्मितामनोदितंम् ॥  
वरीजदेशपयसा वरेषानिमनोऽहाराम् । तत्रां किलिज्जन्तुणां प्राणोऽन्वितां पराम् ॥ ५५ ॥  
कारकादवचनं शर्यन्निमानकाम् । विपुलीं वचनं शर्यन्निमानकाम् ॥



राधा ददर्श धीरुष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम् । नपयोपनसम्पन्नं रत्नाभरणमूयितम् ॥५७  
 वन्दुर्षकोटिलाघण्यलीलाधाममनोहम् । प्राणाधिकां तां पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रवन्तुया  
 पद्माङ्गुतरुपञ्च सत्यंशानुपमं परम् । विनिव्रवेशं शूद्राञ्च विघ्नन्तं सस्मितं मुदा ॥५६ ॥  
 पद्मलोचनकोणेन दशं दशं पुनः पुनः । मुग्धमाच्छादयामास व्रीडया सम्मिता सती ॥  
 मूर्च्छामपाप सा सद्यःकामयाणप्रपीडिता । पुलकाञ्जितसर्पाङ्गी यभूय हनचेतना ॥६१॥  
 कटाक्षकामयाणैश्च विद्वः क्रीडारसोन्मुपः ।

मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्यो स्थाणुसमो हरिः ॥ ६२ ॥

पपात मुरली तस्य क्रीडाकमलमुञ्ज्वलम् । द्वितीयं पीतवस्त्रञ्च शिखिपिच्छं शरीरतः ॥  
 क्षणेन चेतनां प्राप्य ययी राधान्तिकं मुदा ।

वृत्त्या वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्ब सः ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण संप्राप्य चेतनां सती । प्राणाधिकं प्राणनाथं समाश्लिष्यचुचुम्बह  
 मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्य च सा मुने ।

जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ॥ ६६ ॥

रत्नाप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पणसंयुतम् । चारुचम्पकशय्यामिश्रन्दनाक्ताभा राजितम् ॥६७॥  
 कर्पूरान्वितताम्रबूलेभोगद्रव्यैः समन्वितम् ।

उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥ ६८ ॥

राधाप्रदत्ताम्रबूलं चलाद मधुसूदनः । रत्नेश्वरी कृष्णदत्तं ताम्रबूलं धुमुजे मुदा ॥६९॥  
 दत्तं चर्चितताम्रबूलं राधायै प्रमुणा मुदा । चलाद भक्त्या सा तूर्णं प्रहस्य मदनातुरा ॥

राधाचर्चितताम्रबूलं ययाचे माधवो मुदा । न ददौ राधिका भीता पपात चरणाभुजे ॥  
 पतस्मिन्नन्तरे तत्र सकामः सुरतोन्मुखः । सुष्याप राधया सार्धं रतितल्पे मनोहरे ॥७२

शृङ्गाराष्टप्रकारञ्च विपरीतादिकं विभुः । नखदन्तकराणाञ्च प्रहाराञ्च यथोचितम् ॥७३॥  
 कामशास्त्रेषु यद्गोप्यं चुम्बनाष्टविधं परम् । कामिनीनां मनोहारि चकार रसिकेश्वरः ॥

शृङ्गारकुशलौ तौ तु कामशास्त्रमुपण्डितौ । रतियुद्धविरामश्च न यभूय द्वयोरपि ॥७६॥

एवं गृहे गृहे रम्ये नानामूर्त्ति विधाय च । रमे गोपाङ्गनामिध सुरम्ये रासमण्डले ॥  
गोपीनां नवलक्षणाणि गोपानाञ्च तथैव च । लक्षणाद्यष्टादश मुने युक्तानि रासमण्डले

मुक्तकेशानि मग्नानि विच्छिन्नभूपणानि च ।

वेशोच्छिन्नानि मत्तानि मूर्च्छितानि स्मरेण च ॥ ७६ ॥

कङ्कणानां किङ्किणीनां घलयानाञ्च नारद । सद्रत्ननूपुराणाञ्च शब्दयुक्तानि सन्ततम्  
एवं हृत्या स्थलकीड़ां ययुस्तानि जलं मुदा ।

हृत्या तत्र जलकीड़ां पस्थिान्तानि साम्प्रतम् ॥ ८१ ॥

तूर्णं जलात्समुत्थाय घासांसि परिधाय च । ददृशुर्मुखपद्मानि सद्रत्नदर्पणेषु च ॥ ८२ ॥  
चन्दनागुरुकस्तूरीद्रव्याणि पुष्पमालिकाः । मुदा परिदधुस्तानि सम्प्रापुञ्चेतनानि च ।

सकपूरञ्च ताम्बूलं भुक्त्या सर्षाणि कौतुकात् । ददृशुर्मुखपद्मानि सद्रत्ने दर्पणेऽमले ॥ ८४ ॥  
काचित्कामातुरा कृष्णं यलादाकृष्य कौतुकात् । हस्ताद्वशीं निजग्राह वसनञ्च चर्करं च

काचित्कामप्रमत्ता च ननं हृत्या तु माधवम् ।

निजग्राह पीतवस्त्रं परिहास्यं पुनर्ददौ ॥ ८६ ॥

युक्तिं शृण्वित्येवमुक्त्वा काचित्संपृह्य स्वामिनम् ।

चुचुम्ब गण्डे विम्बोष्ठे समाश्लिष्य पुनः पुनः ॥ ८७ ॥

सस्मितं सकटाक्षञ्च मुखचन्द्रस्तनोन्नतम् । काचिच्छोर्णिसुललितां दर्शयामासकामतः  
काचित्कान्तं करे हृत्या संस्थाप्य धोणिदेशतः ।

चकार चूडानिर्माणं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥ ८९ ॥

काचिचूडां समाकृष्य मयूरपिच्छकं ददौ । गुड्यां माल्यञ्च चूडायां घेष्टयामास काचन  
प्रददौ स्वामिने कामात् प्रेमवर्धनहेतवे । काचित्कान्तञ्चित्समाकृष्य ननान् हृत्यातु कामतः

प्रेषयामास कृष्णस्य क्रोडे घन्दनवर्चिते । ननुतुभ्य जगुः काश्चित् कान्तं हृत्यातु कामतः  
नर्तनं कारयामास तञ्च काचिदुपलेन च । कृष्णञ्च वस्त्रं कस्याध विचर्करं कुन्दलात्

काश्चित् हृत्या तु नन्वाञ्च कस्यैचिदंशुकं ददौ ।

कृष्णो राधां समाकृष्य घासयामास कश्चित् - -

तस्याश्च कथरी तस्यां सुनिर्माणश्चकार ह । सिन्दूरश्च दशो माले कस्तूरीचिद्रुमिसद  
 भन्निष्कम्बं गन्दनेगन्धं कौतुफान्तरुषो दशो । पत्रायली सुललितां सुकपोले चकार ह ॥  
 पद्मिगुदांगुलं मारु परिषाव्यं प्रयत्नतः । दशो सद्रत्नमञ्जारे गृहीत्वा घण्टाम्युजे ॥ १७ ॥  
 नाननिर्माणं शृत्वा सुन्दरं वायकं दशो । भूर्णोभूषितां कृत्वा सम्प्रलिप्यानुलेपनैः ॥ १८ ॥  
 दश्या च मालतीमालां सुचुम्ब्य च पुनः पुनः । घाटलोचनपद्मे च चकाराग्रनसंयुते ॥ १९ ॥  
 प्रदशो नासिकामध्ये दुर्लभं गजमौक्तिकम् । श्रोणिदशे च स्तनयोर्नयच्छिद्रं चकार ह  
 चकार दन्तदलनं पद्मिग्याधरे परे । सरसश्च सट्टे रम्ये पुष्पोद्याने सुनिर्जने ॥ २० ॥  
 पद्मिधन्त्रोदये रम्ये पुष्पचन्दनचर्चिने । अगुरुचन्दनाक्तेन घायुना सुस्मीकृते ॥ २०२ ॥  
 भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरत्नभ्रुते । यद्भूमूर्त्तौः संविधाय योगितां परमो गुरुः ॥ २०३ ॥  
 पुनश्चकार भृङ्गारं गोपीनां चित्तहारकः । किङ्किणीनां कङ्कणानां नूपुराणाञ्च नारद ॥  
 भृङ्गारोद्रेकतस्तत्र यभूय सुन्दरो घरः । मूर्च्छामवापुस्ताः सर्वा नयसङ्गममात्रतः ॥ २०५ ॥  
 यभूवुरचलास्पन्दाः पुलकाञ्चितविप्रहाः । भृङ्गारविरते भूने संप्रापुध्येतनां पुनः ॥ २०६ ॥  
 नखदन्तप्रहारञ्च प्रवकार परस्परम् । कृष्णः कररुहाघातं दशो तासां कुञ्चोपरि ॥ २०७ ॥

श्रोणीदेशे सुकठिने नखचित्रं चकार ह ।

नावीचिर्नसिता तासां कथरी क्षुद्रघण्टिका ॥ २०८ ॥

दूरीभूतं सुवसनं सुवेशं सुमनोहरम् । आलिङ्गनं नयविधं शुभ्यनाष्टविधं मुदा ॥ २०९ ॥  
 भृङ्गारं षोडशविधं चकार रसिकेश्वरः । अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि च योषिताम् ॥

चकारालिङ्गनं प्रीत्या कामुकीनाञ्च कामुकः ।

नारीणां षोडश कलाः शृङ्गारस्तत्प्रमाणकः ॥ २११ ॥

कलाभेदेन तद्भेदं कामशास्त्रविदो विदुः । प्रकृतं द्वादशविधं चकार रसिकेश्वरः ॥ २१२ ॥

निरूपितं कामशास्त्रे चकारेशस्ततोऽधिकम् ।

प्रीडारम्भे च मध्ये च विरतौ कर्म योषिताम् ॥ २१३ ॥

प्रीत्यर्थमपि कर्त्तव्यं चकारेशस्ततोऽधिकम् ।

गोपीकङ्कणरेखाभिः पादालककचिहितः ॥ २१४ ॥

शुशुभे कृष्णदेहश्च यथाद्रिर्गोरिकेण च । एवमभूते पूर्णराससंभूते रासमण्डले ॥ ११५ ॥

समाजगमुः सुराः सर्वसकलब्राह्मसानुगाः । सुवर्णस्यन्दनस्याश्चकौतुकात्स्वगणावृताः

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कामवाणप्रपीडिताः ।

ऋषयो मुनयश्चैव सिद्धाश्च पितरस्तथा ॥ ११७ ॥

विद्याधराश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । सस्त्रीकाश्च समाजामुर्द्वहशुश्च मुदान्विताः ॥

दिव्यस्यन्दनमारुह्य शतकुम्भयिनिर्मितम् ।

सुशोभितञ्च मणिना रत्नसारपरिच्छदम् ॥ ११६ ॥

षड्विंशोऽशुकेनैव वेष्टितं सुमनोहरम् । श्वेतचामरयुक्तञ्च सद्रत्नदर्पणाम्बुजम् ॥ १२० ॥

शतचक्रं चित्रयुक्तं मनोयायिम नोदरम् । सद्रत्नसारनिर्माणकलशोऽञ्जलशेखरम् ॥ १२१ ॥

समाजगाम भगवान् पार्वत्या सह शङ्करः ।

धामपार्श्वे महाफालो दक्षिणे नन्दिकेश्वरः ॥ १२२ ॥

पुरतः कार्तिकेशश्च स्वयं देवो गणेश्वरः । विङ्गलाक्षायः सर्वे पार्वदाः परितस्तयोः ॥

क्षेत्रपालादयः सर्वे तथाष्टौ भैरवेश्वराः ।

पक्षःस्थलस्त्रिता दुर्गा सस्मिता वक्रलोचना ॥ १२४ ॥

भारत्या सह प्रह्ला च शतकुम्भरथस्थितः । धामे सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणे सनकादयः ॥

सुवर्णस्यन्दनस्याश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम् ।

पक्षःस्थलस्थिता तस्य मूर्तिः स्मेरानना सती ॥ १२६ ॥

पश्यन्ती पूर्णरासञ्च सकामा वक्रलोचना । परितः पार्वदाः सर्वे ज्वलन्तो प्रह्लतेजसा ॥

शन्वा सह महेन्द्रश्च रोहिण्या च कलानिधिः ।

स्याहासाधं स्वयं वह्निः सूर्यश्च संजया सह ॥ १२८ ॥

समाजगाम कामश्च रति कृत्याश्च पक्षसि । सर्वे प्रहाश्चदिक्वाला भाजगमुःसकलब्रकाः

धाकारास्थाश्च इन्द्रः सरासं रासमण्डलम् । केचिच्च मुमुक्षुस्तत्र मूर्च्छामापुञ्जकेचन ॥

मुहूर्त्तञ्च सुराः सर्वे सस्मिताश्च मुदान्विताः । चन्दनद्रपपृष्टिञ्च पुष्पपृष्टिञ्च विशिषुः ॥

कस्तूरियुक्तमाद्वानां पृष्टिञ्चमुंनीश्वराः । रासं दृष्ट्वा देवपत्न्यः कामवाणप्रपीडिताः ॥

रगन्ते रतिरमं हृद्या जगाम यमुनात्रलम् । राघया सह कृष्णश्च पूर्णप्रद्वसनात्मनः ॥

गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्णरूपिणाः ।

प्रपीडिताः कामघाणैः क्रीडाञ्चकुरुन्ते मुदा ॥ १३४ ॥

जले ददौ राधिकायै सफामो माधवः स्वयम् ।

ददौ सा च माधवाय कामार्तायाञ्चलिप्रयम् ॥ १३५ ॥

पम्त्रं जग्राह तस्याश्च साँचं नम्रा यभूय ह । मालाञ्चिच्छेद कवरीं चकार शिथिलाँदृष्टि

सिन्दूरपत्रं लुप्तं घेशञ्च जलताडनेः । भ्रूविचित्रमोष्ठरागं लुप्तं कञ्जल्लोचनम् ॥ १३७ ॥

ताञ्च नम्रां समाश्लिष्य निममञ्च जलेदृष्टिः । प्रहृत्याम्यन्तरे क्रीडां सुतर्प्यां च तयासह

ताञ्च नम्रां दर्शयित्वा गोपिकां प्रीडया नताम् । सस्मितां प्रेरयामास दूरतो यमुनात्रले

सा वेगेन समुत्थाय बलाञ्जग्राह माधवम् । गृहीत्वा मुरलीं कोपात् प्रेरयामास दूरतः

गृहीत्वा पीतपसनञ्चकार तं दिगम्बरम् । धनमालाञ्च चिच्छेद ददौ तोयं पुनः पुनः ॥

हरिं पुनः समाकृष्ण प्रेरयामास पापसि । गम्भीरे स्रोतसि मुने निममञ्च जगत्पतिः ॥

उत्थाय माधवः शीघ्रं तां गृहीत्वा प्रहस्य च । हृत्वाचक्षसि नम्राञ्च युचुम्बच पुनःपुनः

एवन्ता मूर्त्तयः सर्वा गोपीभिः सह कौतुकात् । क्रीडां विचकुर्यमुनातीरनीरे मनोहरे ॥

राधिकायै ददौ घस्त्रं रम्यां मालाञ्च माधवः । प्रददौ हरये घस्त्रं वंशीं रासेश्वरी तया

चन्दनागुहकस्तूरीं सर्वाङ्गे कुङ्कुमान्विताम् ।

कृष्णस्य परया भक्त्या ददौ धौणिस्थितस्य च ॥ १४७ ॥

निर्माय चूडां ललितां कामिनीचित्तमोहिनीम् । शोभनैर्मालतील्यैश्चकार वेष्टनं पुनः ॥

श्रीकृष्णो राधिकायाश्च कवरीं सुमनोहराम् । हृत्वाकुन्तलसंस्कारं निर्ममे पत्रकावलोम्

ददौ ललाटे सिन्दूरं कस्तूरीविन्दुभिः सह । तदधश्चन्दनेन्दुञ्च सुसूक्ष्मं सुमनोहरम् ॥

नखाङ्गुं स्तनयोर्वर्षोहरस्येव घनं मुदा । दत्वातां घासयामास घद्विशुद्धांशुकेन वै ॥ १५१ ॥

चन्दनागुहकस्तूरीकुङ्कुमानां द्रवेण सः । हृत्वा घक्षसि संलिप्य युचुम्बच मुहुर्मुहुः ॥

पुनराश्लेषणं हृत्वा ददौ मालां गतं । भ्रूणैर्मूषितां हृत्वा मञ्जीर्यखणे ददौ ॥ १५३ ॥

बलककञ्चरणयोर्नक्षत्रेषु च ददौ पुनः । एवं गोपश्च गोपीनां विदधौ च पृथक् पृथक् ॥  
 पुनः प्रजामुस्ता मत्ताः सुन्दरं रासमण्डलम् । पूर्णेन्दुबन्धिकायुक्तं रतियोग्यं सुनिर्जनम्  
 माधवीकेतकीकुन्दमालतीनां मनोहरैः । चम्पयूथीमल्लिकानां पुष्पैश्च सुरमीकृतम् ॥१५६॥  
 दृष्ट्वा च स्फुटितं पुष्पञ्चयनं कर्तुमीश्वरी । गोपीर्नियोजयामास कौतुकेनच राधिका ॥  
 काञ्चिन्नियोजयामास मालानिर्माणकर्मणि । काञ्चित् ताम्बूलसञ्ज्ञेषुकाञ्चिच्चन्दनवर्षणे  
 मालाचन्दनताम्बूलं गोपीदत्तञ्च सुन्दरी । ददौ कृष्णाय संग्रीत्या सस्मिता चक्रलोचना  
 काञ्चिन्नियोजयामासुः कृष्णसङ्गीतकर्मणि । सुदङ्गमुरजादीनां धादनेषु च काञ्चन ॥  
 एवं रासे रतिं कृत्वा लीलया हरिणा सह । विजहार च सर्वत्र निर्जनेषु मनोहरम् ॥  
 पुष्पोद्यानेषु रम्येषु सरसाञ्च तटेषु च । कन्दरं कुन्दरं रम्ये नदेषु च नदीषु च ॥१६२॥  
 अतीवनिर्जनस्थाने श्मशाने गिरिगह्वरे । वाञ्छितेषुच नारीणां प्रयत्नशब्दनेषु च ॥१६३॥  
 भाण्डोरे धीवने रम्ये कदम्बकानने तथा । तुलसीकानने कुन्दवने चम्पककानने ॥१६४॥  
 निम्बारण्ये मधुवने जम्बीरकानने तथा । नारिकेलवने पूगवने च कदलीवने ॥ १६५ ॥  
 बदरीकानने विल्ववने नारिकेलकानने । अश्वत्थकानने वंशवने दाडिमकानने ॥ १६६ ॥  
 मन्दारकानने तालवने चूतवने तथा । केतकीकाननेऽशोकवने खर्जूरकानने ॥ १६७ ॥  
 धाम्रातकवने जम्बूगह्वने शालकानने । कटकीकानने पद्मवने जातिवने मुने ॥ १६८ ॥  
 न्यग्रोधगह्वने घोरे धीवण्डकानने तथा । प्रहृष्टकेसरवने सर्वतोऽपि विलक्षणे ॥१६९॥  
 एवं रेमे कौतुकेन कामार्तित्रशादिवानिशम् । तथापि मानसम्पूर्णं नच किञ्चिदुच्यभूव ह ॥  
 न कामिनीनां कामश्च शृङ्गारेण निवसन्ते । अधिकं चर्द्धते शब्दव्याघ्रिर्घृत्तधारया ॥१७१॥  
 जग्मुर्देवाः स्वर्गोद्देशं देव्यश्च मुनयस्तथा । ते सर्वे प्रशशांसुश्च विस्मयञ्च ययुर्मुदा ॥  
 गेहे गेहे नृपेन्द्राणां लेभिरे जन्म भारते । दग्धाः कामाग्निनांशेन देव्यः शृङ्गारलालसाः  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे रास-

• क्रीड़ाप्रस्तावो नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ।

## ऊनत्रिंशोऽध्यायः

रासक्रीड़ावर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ गोपाङ्गनाः सर्वाः काममत्ततया मुने । अतिप्रौढाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पतिम्  
काश्चिद्वचुरहो कृष्णं सस्मिता घक्रलोचना । मालतीपुष्पमुत्तोल्य देहि मे मालिकामिति

काश्चिद्वचुरये कृष्ण स्यक्रोडेऽस्मांश्च कुर्विति ।

वृहीत्या श्रीहरेः स्फन्धमारुतोह च कानन ॥ ३ ॥

उवाच काचिद्वर्षेण प्रमत्ता प्राणवह्नमम् । स्वकीयपीतपसनं परिधारय मामिति ॥ ४ ॥

उवाच काचिर्दीशान्तं सितदूरं देहि मामिति ।

उवाच काचिन् प्राणेशं शीघ्रमागत्य साम्प्रतम् ॥ ५ ॥

वृत्त्या कृतलसंस्कारं कुरु मे कयरीमिति । काश्चित्संप्रेरयामासुः श्रीखण्डं वल्लभाय च  
स्वाङ्गवेशाधिधायिन्यो भूषणं ध्रुतिमूलतोः । उवाच काचिन् कामेन परं सद्भूतपूर्वकम्

पश्यन्ती तन्मुखागमोजं सस्मिता मैथुनाय च ।

काचित्रप्राह मुग्लीं वलादाकृष्य माधवम् ॥ ८ ॥

जहार पीतपसनं वृत्त्या नराञ्च कामिनी । कामिन्यः काश्चिद्विग्नयुग्मांस्त्रयो मधुगूरतत्र  
ध्रुतसकृद्द्वयं देहि पादयोर्नगरेषु च । उवाच काचित्प्रेरणा तं गण्डयोः स्तनयोर्मम ॥

नानाचित्रविग्नप्राङ्गणं कुरु पत्रायन्तीमिति । वृत्त्यानुमानं मनसा दृष्ट्वा तासां प्रमत्तताम्  
माधवो राधया साङ्गमन्तर्धानं चकार ह । धर्तीपनिर्जने स्थाने मुदा स्वच्छामयोपिभु

कलामानप्रकारञ्च शृङ्गारञ्च चकार ह । पर्यन्ते पर्यन्ते सन्ते द्वीपे द्वीपे सुनिर्जने ॥ १३ ॥  
तटे तटे मदीनाञ्च सर्वजन्तुविनिर्जने । धीमोष्ठे वल्लरीके च वल्लामङ्गातटेऽपि च ॥ १४ ॥

काचिन्द्रे च पुच्छिन्द्रे च मन्दिरे मन्थमगदने । मनोहरे कुन्दपत्ने काचिरीतीरतीरने ॥ १५ ॥  
पुष्पमद्रासुस्त्रिजं पुष्पोपाने सुसुगन्ते । सर्वत्र समग्रे वृत्त्या राधायैर्ता विधाय च ॥

जगाम मलयद्रीणीं रम्याञ्चन्दनवायुना । शय्यां पुष्पमयीं कृत्वा तत्र रेमे तथा सह ॥

अतीवसुखसम्भोगान्मूर्च्छां संप्राप्य राधिका ।

कृत्वा वक्षसि गोविन्दं पुलकाञ्चितविप्रदा ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा तां मूर्च्छितां कृष्णो घनधोणिपयोधराम् ।

विलुप्तवेशां कामार्तां नग्नां शिथिलकुन्तलाम् ॥ १९ ॥

चेतनां कारयामास कृत्वा वक्षसि तन्द्रिताम् । पासयामासवसनं राधाया मेखलाम्बरम्

कथरीं रचयामास किञ्चिद्दामेनवङ्किमाम् । मालतीमाल्यसंयुक्तां कुन्दपुष्पैश्च वेष्टिताम्

तस्याः कपाले सिन्दूरतिलकं सुन्दरं ददौ ।

गण्डयोः स्तनयोश्चित्रां चकार पत्रिकां मुदा ॥ २२ ॥

सालककांश्च नखरान् चित्रितान् पदपद्मयोः । नखैःकृत्रिमपद्मानि निर्ममे धोणिवक्षसोः

उत्थायाथ तथा सार्द्धं जगाम ह सरोवरम् । नानाप्रकारपद्मानां राजिभिश्च विराजितम्

निर्मलस्फटिकाकारजलपूर्णं मनोहरम् । हंसकारण्डवाकीर्णं जलकुङ्कुटकुजितम् ॥२५॥

मधुलुब्धमधुघ्राणां पद्मस्थानं सुपद्मजम् । चारुणा कलशब्देन शब्दितं शश्वदेव हि ॥

तत्र छात्वा जलक्रीडाञ्चकार ह तथा सह ।

जलं ददौ राधिकायै मुदा सा माधवाय च ॥ २७ ॥

सहस्रदलपत्रे च गृहीत्वा माधवः स्वयम् । एकं ददौ राधिकायै ररक्ष स्वार्धमेककम् ॥

चन्दतागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमीप्सितम् । स्वाङ्गं दत्त्वा राधिकायै लिलेप राधिकेश्वरः

सतो गच्छन्तया सार्द्धं ददर्श पुरतो घटम् । अतीवोत्तुङ्गशाखाप्रमतिविस्तृतमेव च ॥३०॥

मूले योजनपर्यन्तं छायाया परिवेष्टितम् । उचास तत्र गोविन्दः केतकीवनसन्निधी ॥

पुष्पाकेन सुशीतेन वायुना सुस्फीकृते । चित्रं रहस्यं सुविरं पुराणञ्च पुरातनम् ॥३२॥

प्रहर्षितश्च धीकृष्णः कथयामास राधिकाम् ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श मुनिपुङ्गवम् ॥ ३३ ॥

आगच्छन्तञ्च तं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम् । न दृष्ट्वा हृदये रूपमाशस्य परमात्मनः ॥ ३४॥

ध्यानाद्विरतमप्रे च पश्यन्तं बहिरेव तत् । सर्वावयववक्रञ्च कृष्णं सर्वं दिगाश्वरम् ॥३५॥



नाम्नाऽष्टवक्रं जटिलं ज्जलन्तं ब्रह्मतेजसा । मुखतोऽग्निमुद्गिरन्तं तपोराशिमिषोत्थितम्  
 अहो किं वा ब्रह्मतेजो मूर्त्तिमन्तमिव स्वयम् । नखश्मश्रुसुदीर्घञ्च शान्तं तेजस्विनं परम्  
 पुटाञ्जलियुतं भक्त्या भीतं प्रणतकन्धरम् ।

दृष्ट्वा हसन्तीं राधां तां धारयामास माधवः ॥ ३८ ॥

प्रभावं कथयामास मुनीन्द्रस्य महात्मनः । अथ प्रणम्य गोविन्दं तुष्टाय मुनिपुङ्गवः ॥  
 यत् स्तोत्रञ्च पुरा दत्तं शङ्करेण महात्मना ॥ ३९ ॥

अष्टावक्र उवाच ।

गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक । गुणीश गुणिनां बीज गुणायन नमोऽस्तु ते  
 सिद्धिस्वरूप सिद्ध्यंश सिद्धिवीज परात्पर । सिद्धिसिद्धगुणाधीशसिद्धानां गुरवे नमः  
 हे वेदबीज वेदज्ञ वेदिन् वेदविदां धर । वेदाज्ञातोऽसि रूपेश वेदज्ञेश नमोऽस्तु ते ॥४२  
 ब्रह्मानन्तेश शेषेन्द्र धर्मादीनामधीश्वर । सर्वं सर्वेश सर्वेश बीजरूप नमोऽस्तु ते ॥४३  
 प्रकृते प्राकृत प्राज्ञ प्रकृतीश परात्पर । संसारवृक्ष तदुबीज फलरूप नमोऽस्तु ते ॥

सृष्टिस्थित्यन्तबीजेश सृष्टिस्थित्यन्तकारण ।

महाधिराट् तरोर्वीज राधिकेश नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥

अहो यस्य त्रयः स्कन्धा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

शाखा प्रशाखा वेदाद्यास्तपांसि कुसुमानि च ॥ ४६ ॥

संसारविफला एष प्रकृत्यंशुःरमेव च । तदाधार निराधार सर्वाधार नमोऽस्तु ते ॥  
 तेजोरूप निराकार प्रत्यक्षानुहमेव च । सर्वाकारतिप्रत्यक्ष स्येच्छामय नमोऽस्तु ते ॥  
 इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो निपन्यचरणाभ्युजे । प्राणांस्तत्याज योमेन तयोःप्रत्यक्ष एव च  
 पपात तत्र तद्देहः पादपद्मसमीपतः । तत्तेजश्च समुत्तरधौ ज्वलद्ग्निसिन्धोपमम् ॥५०॥  
 सप्ततालप्रमाणन्तु चोत्थाय च पपात ह । भ्रामं भ्रामञ्च परितो लीनं हृत्था पदाभ्युजे ॥  
 अष्टावक्रवृत्तं स्तोत्रं प्रातष्टथाय यः पठेत् । परं निर्वाणमोक्षञ्च समाप्नोति न संशयः ॥  
 प्राणाधिको मुमुक्षुर्णां स्तोत्रराजश्च नारद । हरिणाहो पुरा दत्तो वैकुण्ठे शङ्कराय च  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदमंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 मुनिमोक्षणं नामोत्तमोऽध्यायः ।

## त्रिंशोऽध्यायः

राधाश्रीकृष्णसंवादवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

हामुने रहस्यञ्च श्रुतं ब्रह्मन् किमद्भुतम् । मृते मुनीं किञ्चकार श्रीकृष्णो भक्तयत्सलः॥  
श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा मृतं मुनिं कृष्णः संस्कारं कर्ममुद्यतः । कृत्वा घक्षसि तद्देहं करोदोच्चैर्यथा नरः ॥  
बाहुभ्याञ्च समाश्लिष्य पिपेपोद्विक्रमोदृतः । निर्गतं भस्मनिकरं शवाद्ब्रज्राङ्गवर्षणात् ॥  
रक्तमांसास्त्रिहीनं तच्छरीरञ्च महारमनः । पृष्टिर्वर्षसहस्राणि निराहारः कृतो मुने ॥  
दग्धं लोहितमांसास्त्रि ज्वलता जठराग्निना । बाह्यज्ञानविहीनस्य हरिपादाब्जचेतसः ॥

चितां चन्दनकाष्ठेन निर्माय मधुसूदनः ।

कृत्वाऽग्निकाव्यं तत्रैव स्थापयामास शोकतः ॥ ६ ॥

ददौ चितायामग्निञ्च काष्ठं दत्त्वा शषोपरि ।

ज्वलितायां चितायाञ्च मूर्च्छामाप क्षणं विभुः ॥ ७ ॥

तेदेहे भस्मसाद्भूते नेदुर्दुन्दुमयो दिवि । यभूय पुष्पवृष्टिश्च तत्क्षणाद्गगनादहो ॥८॥  
पतस्मिन्नन्तरे तत्र रत्नसारविनिर्मितम् । स्पन्दनञ्च मनोयायि घस्त्रमाल्यपरिच्छदम् ।  
पार्यदप्रवरैर्घुक्तं श्रीकृष्णसद्गुरोर्वरेः । आविर्भूय गोलोकात्सुन्दरं पुरतो हरैः ॥ १० ॥  
अथरुहा रथान्तूर्णं पार्यदप्रवरा हरैः । सर्वे समानरूपास्ते प्रणम्य राधिकेश्वरौ ॥ ११ ॥  
धृतवन्तं सूक्ष्मदेहं प्रणमय्य मुनीश्वरम् । रथे कृत्वा तु तं देहं जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥१२॥  
गते मुनीन्द्रे गोलोकं वृन्दावनविनोदिनी । यभूव विस्मिता साध्वी पप्रच्छ जगदीश्वरम्  
धीराधिका उवाच ।

कोऽयं नाथ मुनिश्रेष्ठः सर्वाययपपङ्क्तिमः । मत्तिलवर्षोऽज्ञाकारस्तेजीयानतिवृत्तिसतः ॥  
कथं वा निर्गतं भस्म देह्यदस्य किमद्भुतम् ।

साक्षाद्विनीनं यत्तेजस्वत्पादाप्तेऽनलोपमम् ॥ १५ ॥

रामाभाः पुण्यघान् सार्धो गोलोकश्च जगामह । स्यात्मारामस्य यद्वेतो गोदं ते बभूवह  
 त्वया ह्यज्ञ रात्कारमभ्रपूर्णं न सधुया । सर्वं विघरणं नृणं संव्यस्य कथय प्रभो ॥  
 राधिकापननं ध्रुत्वा प्रहस्य मधुगूरुनः । कथां कथितुमात्मे युगान्तरगतामपि ॥१८॥  
 श्रीकृष्ण उवाच ।

रहस्यमष्टापदीयं विख्यातं सर्वतः प्रिये । पश्चाच्छोष्यसि फाल्नेन प्रसङ्गे विदुषामुसाम्  
 भष्टापमो मुनीन्द्रोऽपि विख्यातो भुवनत्रये । परिपूर्णं यद्यशसा जन्मना तज्जगत्प्रथम्  
 कृष्णस्य घचनं ध्रुत्वा विमनस्का हरिप्रिया । उवाच मधुरं यद्वाञ्छुष्ककण्ठीष्टतालुका  
 राधिकोषाच ।

यत्सृगालोर्मनः पूर्णं न यभूय सुराम्बुधो । स वितृप्तो भवति किं गोप्यदोदकपानतः ॥  
 वेदानां वेदवक्तृणां विधातुर्जनकस्य च ।

महाविष्णोरीश्वरस्त्वं कोऽन्यो घक्तास्ति त्वत्परः ॥२३॥

राधिकाघचनं ध्रुत्वा तुष्टः कृष्णो बभूव ह । उवाच गोपनीयञ्च रहस्यं परमाद्भुतम् ॥  
 श्रीकृष्ण उवाच

शृणु फाल्ने प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । श्रवणात् कथनाद्यस्य सर्वं पापं प्रणश्यति  
 महाविष्णोर्नाभिस्रग्दुग्धभूय जगतां विधिः । ममांशस्य मत्कलया जलाकीर्णं जगत्त्रये  
 पुत्रा बभूवुश्चत्वारो ब्रह्मणो मानसात्पुरा । नारायणपराः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥  
 शिशवः पञ्चवर्षीया नग्ना अज्ञानिनो यथा । बाह्यज्ञानविहीनाश्च ब्रह्मतत्त्वविशारदाः ॥  
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवानेते चत्वार एव च ॥ २६॥  
 तानुवाच जगद्धाता सृष्टि कुस्त पुत्रकाः । तेन तस्युः पितुर्पाक्ये प्रययुस्तपसे मम ॥३०॥  
 विधाता विमनस्कश्च तनयेषु गतेषु च । पितुर्दुःखाय प्रभवेत् पुत्रध्वेदवचस्करः ॥३१॥  
 ज्ञानेन निर्ममे पुत्रान् स्वाङ्गेषु च तपोधनान् ।

वेदवेदाङ्गविज्ञांश्च ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३२ ॥

अग्निः पुलस्त्यः पुलहो मरीचिभृंशुरद्विराः । ऋतुर्घशिष्ठो षोडुश्च कपिलश्चासुरिकपिः

शङ्खः पञ्चशिखः प्रचेतास्ते तपोधनाः । बहुकालं तपस्तप्त्वा चक्रुःसृष्टिं तदाहया  
 लत्रवन्तस्ते सर्वे संसारं कर्तुमुन्मुखाः । यभूयुः पुत्रपौत्राश्च सर्वेवाञ्छ तपस्थिनाम् ॥  
 स्तु च कथा बह्वी मुनिवंशानुकीर्त्तनी । चार्थी पुष्पस्वरूपा च प्रकृतं शृणु सुन्दरि ॥

चेतसः सुतः श्रीमानसितो मुनिपुङ्गवः । सकलत्रस्तपस्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥३७॥  
 यभूव सुतस्तस्य प्राणांस्त्वक्तुं समुद्यतः । तं सम्बोद्धुं बभूवाथ सत्या धामशरीरिणी  
 कथं त्यजसि प्राणांस्त्वं गच्छ शङ्करसन्निधिम् ।

सिद्धं कुरु गृहीत्या च मन्त्रं शङ्करध्वजतः ॥ ३६॥

न्त्राधिष्ठातृदेवी ते सद्यः साक्षाद्गविष्यति । घरेणाभीष्टदेव्याश्च पुत्रस्ते भविता ध्रुवम्  
 त्वैतश्चरितं विप्रो जगाम शिवसन्निधिम् । योगिनामप्यगम्यश्च शिवलोकं निरामयम्  
 सकलत्रो यथा योगी तुष्टाय योगिनां गुरुम् ।

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिप्रदात्मकन्धरः ॥ ४२ ॥

असित उवाच ।

गद्गुरो नमस्तुभ्यं शिष्याय शिवदाय च । योगीन्द्राणाञ्च योगीन्द्र गुरूणां गुरवे नमः  
 मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन । मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युत्रय नमोऽस्तु ते  
 कालरूपं कलयतां कालकालेशकारण । कालादर्तात कालस्य कालकाल नमोस्तु ते ॥

गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक । गुणीश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः ॥  
 ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्ममावनतत्पर । ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोस्तु ते ॥ ४७ ॥  
 रति श्रुत्या शिवं नत्वा पुरस्तस्यो मुनीश्वरः । दीनवत्साधुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥

असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । वर्षमेकं हविष्याशी शङ्करस्य महात्मनः ।  
 स लभेद्वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् । भवेद्दनाढ्यो दुःखीच मूको भवति पण्डितः  
 अभाष्यो लभते भाष्यो सुशीलाञ्च पतिप्रताम् ।

इहलोकं सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसन्निधम् ॥ ५१ ॥

इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसे । प्रचेतसा स्यपुत्रायासिताय दत्तमुत्तमम् ॥५२॥  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे शिवस्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

समाकर्ण्य मुनेः स्तोत्रं भगवान् शङ्करः स्वयम् ।

उवाच ब्रह्मणः पुत्रं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥ ५३ ॥

शङ्कर उवाच ।

स्थिरो भव मुनिश्रेष्ठ जानामि तव घाञ्छितम् ।

पुत्रस्ते भविता सत्यं मदंशेन च मत्समः ॥ ५४ ॥

दास्यामि मन्त्रमतुलं सर्वेषाञ्च सुदुर्लभम् । इत्युक्त्वा च ददौ मन्त्रं तवैव षोडश  
स्तोत्रं पूजाविधानञ्च कथञ्च परमाद्भुतम् । संसारविजयं नाम पुरश्चरणपूर्वकम्  
परं दातुमिष्टदेवी प्रत्यक्षा भवितेति च । इत्युक्त्वा विरतो रुद्रः स तं नत्वा जगत्  
जजाप परमं मन्त्रं सोऽसितः शतवत्सरम् । साक्षाद्भूत्वा परस्तमे त्वयादत्तः पुर  
पुत्रस्ते भविता सत्यं महाज्ञानोऽसुनेति च । परं दत्त्वा त्वय्यगदो गोलोकं मम सद्य  
कालेन च सुतस्तस्य शिवांशेन यभूय ह । प्रक्षिप्तो देवलो नाम्ना कन्दर्पसमस्तुन्द  
सुयज्ञनृपतेः कन्यां रत्नमालायतीं मुदा । तां सुन्दरीं विवाहेन जग्राह सर्वमोहिनी  
स्थाने स्थाने च रहति शतशतं तथा सह । स रेमे निपुणश्रेष्ठः स्त्रीणां रमणकर्म  
कालान्तरे स विरतो यभूय म्निपुङ्गवः । सुखं सयं परित्यज्य धर्मिष्ठः श्रोहर्त् स्म  
उत्थाय रात्रौ शयनाद्विरक्तश्च तयोधतः । स यथै तपसे काले मन्धमादतपर्यन्ते ।

निद्रां त्यजन्वा च तन्कान्ता न दृष्ट्वा स्वामिनं सतो ।

विललाप भृशं शोकान् प्रदग्धा विरहाग्निना ॥ ६५ ॥

उत्तिष्ठन्तो निर्घिशन्तो ररोदोद्योमंद्भुमंद्भुः । तनरात्रे यथा धान्यं यभूय तन्मनस्तदा ॥  
आहारञ्च परित्यज्य प्राणांस्तन्याजसुन्दरी । चकार तन्मुनस्तन्याः कर्मनिर्हरणादि  
सगजकार स मुनिगन्धमादनगह्वरे । दिव्यं पर्यसहस्रञ्च मम भर्ता जितेन्द्रियः ॥ ६६  
नं ददशं ह देवेन रम्भा शृङ्गारलालुया । भर्ताव सुदर्शं शास्त्रं कन्दर्पमिव सुन्दरम्  
सा च तं कथयामास निद्रने समुपस्थिता ।

- विधाय धेयं वसत्रं त्रैलोक्यचिन्तमोहिनी ॥ ३० ॥

रम्मोवाच ।

नियोध साधो ब्रह्मन्वयं कामिनीनां मनोहरम् ।

त्यक्त्वा कठोरं रहसि भज मां सुखदायिकाम् ॥ ७१ ॥

एवं परेषु वरः पृथग्यं वरारोहा स्वयं वर । विदग्धाया विदग्धस्य दुर्लभो नवसङ्गमः

यज्ञं कुर्वन्ति भूपाला भारते स्वर्गहेतुकम् । स्वर्गभोगनिमित्तञ्च भोगसारा वयं मुने ॥

स्तनयोर्युगमपूर्वोर्मे सुन्दरं मुखपङ्कजम् । हास्यभ्रूभङ्गसहितं दृष्ट्वा को न भवेत्सुखी ॥

स्त्रीरसः सुखसारश्च मुनेनाममिषाञ्छितः । रसिकासुखसम्मोगो निर्जने चातिदुर्लभः

देवो वा दानवो वापि गन्धर्वो वाथ राक्षसः ।

स्त्रीसुखेष्वप्यविज्ञेयो रम्भाया रतिवञ्चितः ॥ ७६ ॥

रहस्युपस्थितां कान्तां न भजेद्यो जितेन्द्रियः ।

मात्रलोमप्रमाणाब्धं कुम्भीपाके वसेद्बुधम् ॥ ७७ ॥

सत्यं तस्याश्च वधभाक् तच्छापेन प्रणश्यति । विधाता मोहिनीशापाद्पूज्यो भुवनत्रये

येन त्यक्तोपस्थिता तं यथा पश्यति पुंश्चली । स्वामिपुत्रस्यबन्धूनां न तथाघातकं रुपा

परं प्रियञ्च सर्वेषां जारं जानाति पुंश्चली । यदि तेन परित्यक्ता तं हन्तुं सा तु दक्षिणा

पुंश्चली हिस्त्रजन्तुभ्यो नरघातिभ्य एष च । दुष्टा शश्वद्वयाहीना दुरन्ता प्रतिजन्मनि ॥

त्यज ध्यानं मुनिश्रेष्ठ मुंश्चेदं तपसः फलम् । रहस्युपस्थितांमाञ्च गृहीत्यासुचिरसुखम्

स रम्भावचनं श्रुत्वा तामुवाच भयाकुलः । हितं तस्य नीतिसारं परिणामसुखाघहम् ॥

देवल उवाच ।

भृशं रम्भे प्रवक्ष्यामि वेदसारपरं वचः । कुलधर्मोचितं सत्यं ब्राह्मणानां तपस्विनाम्

धर्मोऽयं युक्तकाले च स्थयोपिति रतो द्विजः । सर्वत्र पूजितः शश्वदिहलोकैः परत्र च

ब्राह्मणःशत्रियो वैश्यो द्यौरतःपरयोपिति । याति तस्यापूजितस्य रुष्टालक्ष्मीर्गृहादपि

इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु । परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षानं वसेत् ॥

प्राह्या चोपस्थिता स्त्री च गृहिणा न तपस्विना ।

त्यागे दोषः कामिनीनां शापभाक् पापभाग्यहृद् ॥ ८८ ॥

ब्रह्माजगद्विधातापि न विरक्तः कलत्रवान् । द्याग्नेदोपस्तत्कदाचिन्नास्माकं त्यक्त  
स्वभार्याश्च परित्यज्य यो गृह्णाति परस्त्रियम् । यशोधनायुषांहातिर्भवेत्त्रियत्

भुवि नास्ति यशो यस्य जीवनं तस्य निष्फलम् ।

सुसम्पदा किं राज्येन सुखेन च तपस्विनः ॥ ६१ ॥

निष्कामेन च ब्रुद्धेन मया कित्ते प्रयोजनम् । सुवेशं सुन्दरं मातृयुवानं पश्य सु  
इत्येवं धवनं श्रुत्वा चुकोपाप्सरसांघरा । उवाच भूयोवाक्यं तं त्रस्ता प्रस्फु

रम्भोवाच ।

घाहन्नम्पकवर्णामः कन्दर्पसमसुन्दरः । तपःप्रमावात्सथोकः सुवेशः सम्मतः

त्वया विनान्यं कं यामि को वास्ति त्यत्परः पुमान् ।

पुंश्चली त्वां परित्यज्य का जीवति स्मरन्तुरा ॥ ६५ ॥

शीघ्रं मां भज विघ्नेन्द्र दग्धं कामाग्निना सदा ।

कामो नश्यति मां त्वत्तो यथा रम्भां मतङ्गजः ॥ ६६ ॥

न चेच्छापं प्रदास्यामि पद घेद्विदां घरा । मां पा दारुणशापं वा सत्वरं स्वीकुरु  
दग्धाः प्राणामनो दग्धं स्वात्मा वा इतिसन्तनम् । तपश्चुद्गारपीयूषपातनिर्वाणतां

स्यान्तदुःखेन दुःखार्तो योऽयं शपति निश्चितम् ।

तं शापं सपिडितुं शक्तो न विधाता जगत्पतिः ॥ ६६ ॥

द्विजोरम्भावच श्रुत्वा समुपव्यानतत्परः । नोपाचकिञ्चिन्मौनस्यः सार्तं कोपाच्छ्र  
दे पत्रचित्तं ते विप्र सर्वापययप्रिमम् । शरीरमद्भुताकारं रूपयोधनपरिजितम् ॥ ६७ ॥

अतीपविह्वलाकारं त्रिभु लोकेषु गर्हितम् । पुरातनं तपो नष्टं सद्यो भयानु निश्चित  
इत्युत्तवापुंश्चली कामात्कामलोकां जगाम सा । भविरेण मुनिन्द्रध्व न ददरां हरेः ।

पद्मारविन्दविग्रहात्मसमुद्रिणो बभूव ह । स्याद्गुञ्ज इहा विहृतं पूर्वपुण्यविपरिजित  
दृग्वाऽग्निबुध्दं शोभेत् प्राणांस्वयम्भुं समुद्यतः ।

मया दृष्टो वरो दम्भो दिव्यज्ञानेन बोधितः ॥ ७० ॥

अश्वत्थामधरः शीघ्र्या लजः शाल्मो बभूव ह । भद्राम्पटी च वक्रालि दृग्गानूर्णं महापु

अष्टावक्रेति तन्नाम कौतुकेन मया कृतम् ॥ १०६ ॥

मद्वाक्यात् मलयद्रोणीमिमामागन्व सत्वरः । पृथिव्यसहस्राणि चकार परमन्तयः ॥  
तपोऽघसाने मद्भक्तो मया युक्तः कृतः प्रिये । सर्वस्मिन्प्रलये नष्टे न मद्भक्तः प्रणश्यति ॥  
सुचिरेणैव तपसा ज्वलता जडराशिना । त्यक्तवाहारस्यान्तरञ्च भस्मपूर्णं तपो मुनेः ॥  
आगतं मलयद्रोणिं मुनिहेतोर्मम प्रिये । अष्टावकाश्च मद्भक्तो न भूतो न भविष्यति ॥  
एवम्भूतस्तपोनिष्ठः प्रपौत्रो ब्रह्मणो मुनिः ।

निष्कलः पुंश्चलीशापाद् ब्रह्माऽपूज्यो यथा पुरा ॥ १११ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं रहस्यञ्च महात्मनः । सुखदं पुण्यदं गृहं किं भूयः श्रोतुमर्हसि ॥  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
राधाप्रश्ने त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

## एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणः शापकारणकथनम् ।

धोराधिकोवाच ।

किमाश्चर्यं धृतं नाद्य चरितं सुमनोहरम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मणः शापकारणम् ॥  
यो विधाता त्रिजगतां तपसां फलदायकः । स कार्यं बुद्ध्याशापादपूज्यश्च धमूष ह ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मन्यन्तरे रीपतश्च सुचन्द्रो नृपगुणधरः ॥ तपस्वी वैष्णवध्रेष्ठो हानी परमधार्मिकः ॥ ३ ॥

स च पूर्वं तपः कुर्यन्नाजगाम मम प्रिये । इमाश्च मलयद्रोणीं भारतेषु मनोहराम् ॥ ४ ॥

तपश्चकार राजेन्द्रो घर्षाणाश्च सहस्रकम् । जीर्णं तस्य शरीरञ्च कटोरेण तपस्थितः ॥ ५ ॥

वल्मीकाच्छादितं देहं दृष्ट्वा धाता हृषानिधिः ।

भाजगाम परं दानुं तपःस्थानं सुनिर्जनम् ॥ ६ ॥



रण्डलुजलेनेष मम देहोद्भवेन च । सिनेन सञ्ज मन्त्रेण मया दत्तेन यो

कमण्डलुजलस्पर्शादुत्थाय नृपतिः स्वयम् ।

ननाम मनया जगतां श्रष्टारञ्च पुरः स्थितम् ॥ ८ ॥

तं नमन्तं राजानमुवाच कमलोद्भवः । परं वृष्णिपति राजेन्द्र यत्ते मनसि

य तद्वचनं श्रुत्वा परं वधे परात्परम् । ममैष चरणे मक्ति मदीयं दाम्पत्ये

हृषया च परं प्रया दत्तयानमिषाञ्छितम् ।

स च तन् पुरतस्तस्यो कामदेवसमप्रमः ॥११॥

स्मिन्नन्तरे राजा ददर्श रथमुत्तमम् । भाकाशान्निपतन्तं वै शतसूर्यसमप्रम

तेजसाच्छादितं सर्वं सुप्रदीप्तं दिशो दश ।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं शतचक्रसमन्वितम् ॥ १३ ॥

अमूल्यरत्नरचितं विचित्रफलशोऽज्यलम् ।

मुक्तामाणिक्यदीराणां मालाजालैश्च राजितम् ॥१४॥

जदर्पणैर्दीप्तैस्तीक्ष्ण सुमनोहरम् । भूपितं दिव्यवस्त्रैश्च श्वेतत्वामरकोटिभि

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुरोमितम् ।

मनोवायि महाश्चर्यं नानाचित्रेण चित्रितम् ॥१६॥

तं पार्षदैर्दिव्यै रत्नभूषणभूपितैः । चतुर्भुजैः श्यामलैश्च ज्वलद्भिः स्थिरयौव

वस्त्रपरीधानैश्चन्दनागुह्वचितैः । दृष्ट्वा रथस्यान् देवांश्च ननाम नृपतिर्मुद

ता तस्य शिरसि पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गं चानकाश्च मनोहर

तो मुनयः सिद्धाः प्रकुर्यन्तो मुदाशियम् । प्रशशांसुः सुराः सर्वे राजानं हर्ष

राजा च पार्षदान्ध्यात्वा तद्रूपश्च बभूव ह ।

पार्षदास्तं रथे कृत्वा नीत्वा जग्मुर्ममालयम् ॥२१॥

मदीयं पार्षदो भूत्वा स च तस्यो ममान्तिके ।

ततः स्वमन्दिरं यान्तं ददर्श मोहिनी विधिम् ॥२२॥

पुष्पोद्याने च रथे च पुष्पचन्दनवायुना । सद्यो मुमोह तं दृष्ट्वा प्रदग्धा मदनानलं

विलोक्य चकनयना जुगोप सस्मितं मुखम् । सिन्दूरविन्दं दधती कस्तूरीविन्दुना सह  
 चारुचम्पकचर्णांसा सततं स्थिरयौवना । बृहन्नितम्बयुगला पीनध्रोणिपयोधरा ॥२५॥  
 शरत्पार्ष्णशुभ्रांशुप्रभामुष्करानना । सूक्ष्मचस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिता ॥ २६ ॥

शैलोक्यं मोहितुं शक्ता कटाक्षरेष लीलया ।

अतीव कामिनी शश्वद्रजैन्द्रमन्दगामिनी ॥२७॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी मूर्च्छां संप्राप वर्त्मनि ।

सन्निरिश्य च तां ब्रह्मा जगाम धोहरिं स्मरन् ॥२८॥

सयिकारं न हि प्राप ह्यात्मारामो जितेन्द्रियः ।

ब्रह्मलोकञ्च संप्राप ब्रह्मा च जगतां पतिः ॥२९॥

सकामा सा च कुलटा बभूव हतचेतना । दिवानिशाञ्चिन्तयन्ती स्वप्ने शाने चतुर्मुखम् ॥

सर्वं जारं विसस्मार तत्याजाहारमीश्वरी । उत्तिष्ठन्ती निवसती शयनं कुर्वती क्षणम् ॥

ततपात्रे यथा शस्यं भ्रमत्येव यथा पथि । एतस्मिन्नन्तरे रम्भा विदग्धाप्सरस्तां परा ॥

गच्छन्ती कामलोकं सा सकामा तेन वर्त्मना ।

इहा सदचरी तत्र शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाम् । अभिप्रायेण ध्रुवुषे पप्रच्छ सस्मिता तदा ॥

रम्भोद्याव ।

कथमेवंविधा त्वं हि शैलोक्यचित्तमोहिनी । यद् शीघ्रं महाभागे रम्भाऽहं चेतनं कुर्व ॥

समुद्दिश्य सकामा त्वं गच्छ त्वं कान्तमीप्सितम् ।

कुलटा सर्वसौभाग्या न त्वयं कुलपालिकाः ॥३५॥

सर्वे ध्यमा इन्द्रियाणां सुखाय भुवनत्रये ।

यान्ति प्राणा यतः काले वा लज्जा तत्र जीविनाम् ॥३६॥

न घातमनः पुरः कश्चिन् प्रियोऽस्ति भुवनत्रये ।

कान्ते पत्न्यौ स्वयन्धौ च स्नेहो यः स्वान्महेतुकः ॥३७॥

सम्यग्यः रघात्मनो पापत्तापन् स्नेहोऽस्ति तत्र वै ।

येषु यन्मानसं शश्वत्तेषां प्राणास्त एव हि ॥३८॥

गच्छन्ती कामलोचनं सकामां पर्य मां प्रिये ।

सह सग्या समालोच्य मनसा गच्छ मे प्रियम् ॥३१॥

निषद्य मीर्यां केशांश्च कृत्वा वेशममीप्सितम् । मुनिमोहनरीतञ्च तन्मोहं कुरु मोहिनि  
कथयन् महाभागे वननं हृद्यङ्गमम् । रक्षात्मानं प्रमाद्यश्च स्त्रीजातीनां जगत्प्रये ॥३२॥

स्वामिप्रायश्च सुरसौ न प्रकाश्यः कदाचन । स्वान्तं कान्तंस्वानुरक्तमृत्वीसहनरीचिता  
मन्मात्मानेन हृष्टापयं प्रकाश्यश्च प्रिये प्रिये । अन्यथा शोषहासाय मरणापैव कल्पते ॥  
तन्प्रायश्च वननं धृत्वात्तस्मिन्ना सा सुसज्जिता । हृद्यञ्च कथयामास पद्वेतोस्तादृशीगतिः  
मोहिन्युपाय ।

यापुं दृष्टो मया रभे निर्जने चतुराननः । तावन्मनो मेऽतिदुर्ध्वं शयन्मनसिज्जानलैः  
न दत्तमात्मने मध्यमन्तरे न हि रोचते । जानामि नाहमुद्वयं यामिनीशदिनेशयोः ॥३६॥  
अधुना न हि भेदो मे सततं स्पन्दमानयोः । मम प्राणाः प्रतीक्षन्ते तस्वाल्लिङ्गनमेव च  
क्षणं विज्ञाय न चिरं यास्वपन्ती नान्यथा प्रिये ।

कामञ्चालाकलापैश्च स्पर्णाकारं कलेधरम् ॥३८॥

अनाहारेण चेदानीं बभूव दग्धशैलघत् । गन्तुं स्यातुं न शक्नाहं शयनं कर्तुमुद्यता ॥३९॥  
धिगस्तु पुंश्चलीजातिं मामेव च विशेषतः । कमुपायं करिष्यामि यद् रभेति साध्यतम्  
लज्जां धापि शरीरं वा विसृजामि च किं द्वयोः ॥५०॥

मोहिनीवचनं श्रुत्वा प्रहस्याप्सरसां धरा । तामुवाच हितं नीतमुपायं शुभकारणम् ॥  
रभोवाच ।

एवमेतद्दहो भद्रे मद्रस्य कारणं तव । सर्वं त्वपनयिष्यामि शृणुपायं मयं त्वज ॥५२॥  
कृत्वा वेशमपूर्वञ्च पूर्वमाराध्य मन्मथम् । तेन सार्धं स्वयं गत्वा मोहं कुरु च मामिनि  
जितेन्द्रियाणां प्रधरं साक्षान्नारायणात्मकम् । विना कामसहायेन काशकाजेतुमीश्वरम्  
भज कामं तपः कृत्वा पुष्करे व्रज मोहिनि । सद्यःसाक्षात् स भवितादयालुर्योषितांप्रभुः  
इत्युक्त्वा तामप्सरसां प्रधरा काममन्तिकम् ।

जगामेन्द्रियशान्त्यर्थं सा जगाम च पुष्करम् ॥५६॥

पुष्करे च तपः कृत्वा कामं सम्प्राप्य मोहिनी । जगाम तेन सार्धञ्च ब्रह्मलोकमनामयम्  
ददर्श निर्जनस्थञ्च मोहिनी कमलोद्भवम् । तमेव मुग्धं कर्तुञ्च समारंभे पुरःस्थिता ॥  
क्षणं ननर्त सुचिरं सुगानेन क्षणं जगौ । सङ्गीतं मम सम्यग्धि भक्तानां चित्तमोहनम् ॥

विधाता जगतां तस्याः श्रुत्वा सङ्गीतमीप्सितम् ।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो मुमोह साधुलोचनः ॥६०॥

दृष्ट्वा मुग्धं चतुर्वक्त्रं मोहिनीं हृष्टमानसा । कलाप्रमाणं भावञ्च चकार तत्र लीलया ॥  
स्वाङ्गं सन्दर्शयामास स्मेरप्लूभङ्गपूर्वकम् । का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः ॥  
विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतध्वत्रो बभूव ह । प्रदाय तस्य दानञ्च विरतः श्रीहरिं स्मरन् ॥  
विज्ञाय ब्रह्मणो भावं शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । हतोद्यमा सा तुष्टाव कामं कामप्रदं वरम्  
मोहिभ्युधाव ।

सर्वेन्द्रियाणां प्रवरं विष्णोरंशञ्च मानसम् । तदेव कर्मणां बीजं तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥

स्वयमात्मा हि भगवान् शानरूपो महेश्वरः ।

नमो ब्रह्मन् जगत्स्त्रष्टस्तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥ ६६ ॥

सृष्टिः सर्वशरीरेषु दृष्टिश्च योगिनामपि । जगत्साध्य दुराराध्य दुर्निवार नमोऽस्तु ते  
सर्वाङ्गित जगज्जेता जीवजीव मनोहर । रतिबीज रतिस्वामिन् रतिप्रिय नमोऽस्तु ते  
शश्वयोपिदधिष्ठान योपित्प्राणाधिक प्रिय ।

योपिद्वाहन योपास्त्र योपिदुग्धो नमोऽस्तु ते ॥६६॥

पतिसाध्यकराशेरूपाधार गुणाध्यय । सुगन्धियातसञ्चिव मधुमित्र नमोऽस्तु ते ॥  
शश्वयोनिवृत्ताधार स्त्री सन्दर्शनवर्धन । विश्वधानां विरहिणां प्राणान्तक नमोऽस्तु ते  
धर्या येयु ते नायं तेषां ज्ञानविनाशनम् ।

धनूरुपमनेषु वृषासिन्धो नमोऽस्तु ते ॥६७॥

तपस्विनाञ्च तपसां पिप्रवीजापलीलया ।

मनः सकामं मूढानां कर्तुं शक्त नमोऽस्तु ते ॥६८॥

सपः साध्याश्च राध्याश्च सदैवं पाञ्चमीनिकाः । पञ्चेन्द्रियवृत्ताधार पञ्चयाण नमोऽस्तुते

मोहिनीत्येवमुक्त्वा तु मनसा सा विधेः पुरः । विरराम नम्रवक्त्रा बभूव ध्यानलक्षणा ॥

उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम् ।

पुरा दुर्यासता दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने ॥७६॥

स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्तया यदा पठेत् ।

अमीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद् ध्रुवम् ॥७७॥

नेष्टां न कुरते कामः कदाचिदपि तं प्रियम् । भवेद्रोगी धीयुक्तः कामदेवसमप्रभः ।

यनितां लभते साध्वी पत्नी श्रैलोक्यमोहिनीम् ॥७८॥

इति श्रीब्रह्मोपनिषत् महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधाप्रश्ने मोहिनीस्तोत्रप्रसङ्गो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।

## द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्ममोहिन्योः संवादः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

मोहिनीस्तवनेनैव कामस्तुष्टो बभूव ह । चकार शरसन्धानमन्तरिक्षे स्थितः स्वयम् ॥

मन्त्रपूर्तं महास्त्रञ्च चिक्षेप पितरं मुदा । बभूव चञ्चलो ब्रह्मा कामास्त्रेण च कामुकः ॥

क्षणं निरीक्षणं चक्रे मोहिन्यास्ये पुनः पुनः ।

ज्ञानं प्राप्य तदा धाता विरराम हरिं स्मरन् ॥३॥

युधे मनसा सर्वं चरितं मन्मथस्य च । शशाप तं सुतमपि विधाता क्रोधविह्वलः ॥४॥

हे काम यौघनोन्मत्त मूढैश्वर्येण गर्हितः । भविता दुर्षमङ्गस्ते गुरोर्मे हेहनादिति ॥५॥

हृत्तोद्यमो जगामाशु मन्मथो मधुना सह । ब्रह्मणः शापमीतश्च शुष्ककण्ठीमुतालुकः ॥

इत्युवाच जगद्धाता मोहिनीं मदनातुराम् ।

चतुर्वक्त्रञ्च पश्यन्तीं सस्मितं वक्रचक्षुषा ॥७॥

मातर्मोहिनि गच्छ त्वं निष्कलं कर्म चात्र ते ।

ज्ञातस्तवाभिप्रायश्च नाहं योग्योऽस्य कर्मणः ॥८॥

दे जुगुप्सितं कर्म तदेष कर्त्तुमक्षमः । वेदकर्त्ता स्वयमहं व्यवस्थाकारको भवे ॥९॥

अकीर्त्तिर्धेदयकुश्च नित्यञ्च किमतः परम् ।

उपस्थिता च या योषिद्व्याज्या रागिणामपि ॥ १० ॥

पुत्री धृतमितित्याज्या सर्वदेवतपस्विनाम् । अहोसर्वैः परित्याज्या पुंश्चलीच विशेषतः  
यनायुःप्राणयशसां नाशिनी दुःखदायिनी । स्वकार्प्यतत्परा शश्वत्परकार्प्यविनाशिनी  
नेष्टुरानवघ्रातिभ्यः सर्वापदुवीजरूपिणी । विद्युद्दीप्तिर्जले रेखा लोभान्मैत्री यथामवेत्  
परदोहाद्यथा सम्पत्कुलटाप्रेम तत्समम् । सर्वेभ्यो हिंस्रजन्तुभ्यो विषदुधीजासदैव हि  
पो विश्वसेत्तां संसृद्धो विपत्तस्य पदैपदे । त्वञ्च रूपवतीधन्या घञ्जिता कामुकैःसदाः

यूनां सम्पत्स्वरूपा च विपत्तुल्या तपस्विनाम् ।

त्वमेवाप्सरसां श्रेष्ठा सर्वदा स्मिर्योचना ॥ १६ ॥

तत्रैव कर्मयोग्यञ्च युवानं पश्य सुन्दरिः । त्वं विदग्धा च योषित्सु विदग्धान्वेषणं कुरु  
विदग्धाया विदग्धेतसङ्गमो गुणवान्भवेत् । जरातुरोऽहंबृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः  
अस्थतन्त्रः पराधीनः का रतिःपुंश्चलीपु मे । अये वत्सेगच्छ शीघ्रं विहाय पितरञ्चमाम्  
नाम्नाऽहञ्च जगत्त्रया तस्मात्तव पिता सदा । मन्मथञ्चन्द्रमित्रञ्च जयन्तं नलकूबरम् ॥

स्वर्षी चन्द्रतनयं दितिपुत्राञ्च सुन्दरान् ।

कामशास्त्रेषु निष्णातान् रतिकर्मविशारदान् ॥ २१ ॥

या मां यासि हि तांस्यतवा सा विदग्धा च कामुकी ।

सदा सम्भोगविषये स्त्रियं प्रार्थयते पुमान् ॥ २२ ॥

स्त्री चेत् प्रयाति पुरुषं विपरीतं विदग्धनम् । सर्वेषाञ्चैव रत्नातां स्त्रीरत्नं दुर्लभं परम्  
स्वयंप्रार्थयतेस्यामी न तुस्यामिनमेव च । योषिज्जातिपुष्पिक्ताश्चस्वयंयाःसमुपस्थिताः

भवेद्दुर्लभं स्थल्पमूल्यं रत्नं स्वयमुपस्थितम् ।

नित्यं पुमान् स्त्रियं याति स्त्री वा याति च न प्रियम् ॥ २५ ॥

लोकाचारेषुवेदेषु स्त्रीयातिपरप्रियम् । स्ववस्तुभुङ्क्तेयः कालेशास्त्रोक्तविधिपूर्वकम्  
स पूज्यो न भवेत् पूज्यो यद्रतिः परवस्तुषु । कः कस्य शत्रुरबले निशामय जगत्त्रये  
स्वेन्द्रियाः शत्रवः सर्वे शत्रुता यन्निमित्ततः । वेदोकाचरणे सर्वं मित्रञ्च जगतां जगत्  
कृते वेदविरुद्धे च मित्रं शत्रुर्भवेद् ध्रुवम् । वेदोक्तं कृतवन्तश्च हरिस्तुष्टो दिवानिशम् ॥

हरौ तुष्टे जगत्सुष्टं तस्मिन् कृष्टे भवो रिपुः ।

कुत्रास्ति कुलटाजातिः साध्वीजातिश्च कुत्र वा ॥ ३० ॥

स्वकीयाचरणात्सर्वं भवे भवति कर्मणः । स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा नारायणविनिर्मिता ॥  
दुःशीलापुंश्चली निन्द्यासुशीला च पतिव्रता । पतिव्रतास्तु त्रिविधाःपुंश्चलीपुत्र योषितः  
तासामेवंविधानास्ति स्वयंयातिपरप्रियम् । स्त्रीजातीनाञ्चमध्ये च कास्त्येयंकुलकजला  
भवे रत्येत्ययं दृष्ट्वेशं कृत्वाप्रयातितम् । क्षोभितायदि पश्यन्ती भक्ष्यद्रव्यमसाध्यकम्  
घैकुल्यान्नहि तत्साध्यं सामान्यमेव केवलम् । इत्येवमुक्त्वा जगतां विधाता धिरराम च  
घक्तुं समुद्यता सा च कोपप्रस्फुरिताधरा ॥ ३१ ॥

मोहिन्युषाच ।

जाने सयं जगद्गतधरितं तद्य साग्रतम् । त्वया नियोधितानीतिर्मतो मे न स्थिरमप्यं  
मृतं त्वयि विशिष्टञ्च यावद् दृष्टः क्षणे भवान् ।  
त्वद्वदृष्टिमात्रेण सयं जाराधयिष्मताः ॥ ३२ ॥

दं कामाग्निना दग्धं यदा त्यक्तुं समुद्यता । निसिरेच च मां रत्नाप्रदौ मन्त्रमीदृशम्  
तदा कामसहायेन त्यक्तुं समोषं समागता । स मधुस्तथ शापेन स जगाम हतोद्यमः ॥  
मदो गन्तुमराजगहं स्वया पद्यमिदिरांता । सर्वाद्ग्रेष्वेव मे जात्यं कभूय साग्रतथिमो  
कृपां कुट कृपासिन्धो न मां हन्तुं त्वमर्हसि ।

तयात्रेपणमात्रेण विश्वराहं सुनिश्चिन्म ॥ ४१ ॥

घनैवजगतां धाता कुलटाऽऽञ्च कर्मणा । सन्तो गर्वे न कुर्वन्ति कर्मसाध्याश्च जीयन्ति  
धिन् प्रयाति दानेन वहन्ति तञ्च केचन । करं शृण्वन्ति नृपतिः कर्मणा दत्ति प्रजाः ॥  
सिद्धासनव्यध नृपरात्रश्च कर्मणा । कर्मणा वाहकाः केचिन् केचिद्वाहनपालकाः

करीजठरं कश्चित् संप्रयाति स्वकर्मणा । कश्चिच्छ्रव्याश्च जठरं तद्य पुत्राश्च केचन  
केचित् वृत्त्या हरेर्भक्तिं कर्मणा तस्य पार्यदाः ।

केचिद्भुषन्ति हृत्प्रयो विष्ठायां दैवदोषतः ॥ ५६ ॥

वगं प्रयान्ति राजेन्द्राः केचिच्चस्वस्वकर्मणा । केचित्प्रयान्तिनरकं विष्णुत्रे तत्रपच्यते  
ज्मणाकश्चिदिन्द्रेन्द्राःसुराणां प्रपरःस्वयम् । केचित्सुरानरा.केचित् केचिच्चभुद्रजन्तवः  
केचिच्च कर्मणा विप्रा वर्णश्रेष्ठा महीतले । केचिद्भूपा वैश्यशूद्राः केचिच्चम्लेच्छजातयः  
केचित्स्वकर्मणा ब्राह्म ज्ञानेनसर्वदर्शनः । केचिन्मूर्खाःकेचिदग्धाः स्वाङ्गहीनाश्चकेचन  
केचिच्छास्त्रं शोधयन्ति शिष्यवर्गान् स्वकर्मणा ।

केचित् पठन्ति सर्वाद्यं जानन्ति गुरुवक्त्रतः ॥ ५१ ॥

भवन्ति कर्मणा केचिद्देहे स्यावरजङ्गमे । तपस्यी नवघाती च त्वञ्च ब्रह्मा च कर्मणा  
काचित्स्वकर्मणासाध्वीपूश्येह च परत्र च । काचिद्देश्यातदाहारंभुंके वृत्त्याङ्गविक्रयम्  
स्वर्वेश्याहं सुरपुरे सुरभोग्या सुपूजिता । येषामालिङ्गनेनैव कर्मणां सण्डनं भयेत् ॥  
मनः स्पमापयीञ्च स्वभाषः कर्मवीजकः । तत्कर्म फलयीञ्च सर्वेषां जनको हरिः  
फलं हृदाति नियतं कर्मद्वारा विभुः स्वयम् । सर्वेभ्यो बलवाश्रित्यं कर्मरुपी जनार्दनः  
बुधो हेतोर्निन्दिताऽ' स्वयैव मत्सिंता कथम् ।

जगत्क्षण्टुरीभ्यस्व पादायं द्रष्टुमागता ॥ ५७ ॥

स्वप्ने यस्य पद्दद्वन्द्वं न हि पश्यन्तियोगिनः । तर्माश्चरंति कर्तुमिच्छया स्वयमागता  
गत्या हि कस्यचित्स्थानमस्पृश्येहपरत्र च । कस्यचिन्पादरजसायशसामान्तियोपितः  
इत्युक्तया मोहिनीशीघ्रं गत्वोपास हरेःपुरः । स्वयं विधाता जगताञ्चकम्पेकुल्टामयात्  
सस्मिता यत्रनयता कामभावं चकार ह । स्याङ्गञ्च दर्शयामास कामशाणप्रपीडिता ॥  
एतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वज्ञः सर्वयोगयिन् । अपिमूय पञ्चशाणान्निविशेष च प्रत्यपि  
संमोहने समुद्रेणं योजस्तग्मितकारणम् । उन्नत्तपीजं उपलदं शर्यद्येतनहारकम् ॥  
एतान् प्रक्षिप्य मदनोऽप्यन्तरिक्षस्थितः स्वयम् ।

किङ्करान् प्रेषयामास संमोहाय यितुर्मुदा ॥ ६४ ॥



पसन्तं कोकिलादीन् गन्धपातं मनोहरम् । निपुन्याभ्यन्तरं गत्वा लङ्घिकारं गफाद्  
 पुंस्कोकिलः कलं राघमुवाच स्रसमीपतः । यदपदः सुन्दरं सुशर्मं क्षुण्णजे पुरतः स्थितः  
 शय्यद्वयौ गन्धयहो मन्दोऽतिशीतलः प्रिये । सन्ततं मुदितस्तत्र यथायं य मधु स्यपम्  
 पुलकाञ्जिनमर्वाङ्गौ यभूय जगतां विधिः । ददर्श मोहिनीमायं प्रहस्य स पुनः पुनः ॥  
 मनीषयत्रजयना यामास्त्रहननेन । विधाता तुभ्ये सधं सार्वबन्धनिबन्धनम् ॥ ६१ ॥

नियन्तुं न मनः शक्तः सम्पार धीहरिं प्रिया ।

तुभ्यै मन्त्रा कृष्णं शान्तं हृत्पद्ममिथितम् ॥ ६० ॥

त्रिभुजं मुग्धहृत्पद्मं हरिं वीणाधरं परम् । मनीषकमनोयस्य किशोरं निरायीवसम् ।

गन्तान्द्रुग्धभूषणं सस्मिन् श्याममुन्दरम् ॥ ६१ ॥

प्रयोषाम् ।

यत्र यत्र ही माह्नि निमग्नं कामसागरे । पुरकोक्तिप्रलपुणं वा तुभ्यारं यदुगाहुरे ॥ ६१ ॥

यद्विषयमृत्विजं वा विद्यायोग्यमनुभवे । मनीषनिर्मलज्ञानमधु-प्रधत्प्रकारणे ॥ ६१ ॥

अर्थाः प्रियदुर्गादिने योनिप्रदीपणदुः । रतिप्रयोगश्यामपुनः मनीरे गौर एव वा ॥

प्रणम्यान्नुभवे वा वरिष्णमर्कमन्त्रे । यमास्तनयोस्ताव मुक्तिप्राप्तानिभिः ॥ ६१ ॥

कुड्याः मन्त्रा विद्यानेऽदृश्यामन्त्रः स्वयम् ।

स्वयम् एवं यत्रोक्तम् । प्रदीपं मन्त्रम् ॥ ६१ ॥

मन्त्रिणा वा विविधमन्त्र विद्यायाः प्रणम्यन्ति ।

मन्त्रे विद्यायाः विद्यायां हे विद्यायाः प्रणम्य ॥ ६१ ॥

• यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं । यत्रोक्तं न यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं ॥

हे मन्त्रे यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं । यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं ॥

यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं ।

यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं ॥ ६१ ॥

यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं यत्रोक्तं ॥ ६१ ॥

म मायां विनिर्जित्य स ज्ञानं लभते ध्रुवम् । इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रचरो मघेत्  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
प्रथमोहिनीसंवादो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

## त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति मोहिन्याः शपः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

कृत्वा प्रसा हरेः स्तोत्रं तस्यो तस्याः समोपतः ।

मनोमत्तगजेन्द्रञ्च कामासक्तं निवारयन् ॥ १ ॥

दिव्यज्ञानाद्गुणेनैव मया दत्तेन राधिके । उवाच मोहिनी सञ्च परिहासपरं वचः ॥ २ ॥

मोहिन्युवाच ।

इदित्तैव भार्याणां सद्यो मत्संभवेऽग्नयः । करोत्याकृष्यसम्मोहं यः स एषोत्तमो विमो

हात्वा स्फुटमभिप्रायं माय्यां संश्रयितो हि यः ।

पञ्चान् करोति शृङ्गारं पुनः स च मध्यमः ॥ ४ ॥

पुनः पुनः प्रेषितश्च स्त्रियया कामार्त्तया च यः ।

तया न निमो गदति स ह्रीषो न पुमानहो ॥ ५ ॥

गृही तस्यै कामी वा त्यजेन् म्त्रियमुपश्रित्याम् । जज्ञेन् परत्र नरकस्यूताम् भवेद्विद

नरधोत्रंरूपञ्च छन्दुद्विभवेषु ध्रुवम् । स तपः ह्रीषतो यानि ब्रह्मराप्तेन योगिनः ॥

उत्तिष्ठ जगतीनाय पारं बुद्ध स्मरणंयै । निमदां दुष्मरी घोरे कर्त्तव्यमपानके ॥ ८ ॥

भर्त्सयन्निर्जनास्थाने सपेङ्गमुपिर्जने । सुतन्त्रिययायुना मये पुंस्कोविलरत्नधुने ॥ ९ ॥

सतपे स्वप्ननाशकामो हारिर् जगति जगति ।

ह्रीर्षोऽपि शत्रुपुष्येनामृत्परत्वेन सत्परम् ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा मोहिनी सद्यो जगत्स्रष्टुश्च ब्रह्मणः ।

विचकर्ष घरं घस्त्रं सस्मिता कामहिला ॥ ११ ॥

विज्ञाय समयं धाता तामुवाच भयातुः । पियूषतुल्यं घचनं घरं विनयपूर्वकम् ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु मोहिनि मद्वाक्यं सत्यं सारं हितं स्फुटम् ।

न कुरु त्वञ्च त्रैलोक्ये स्त्रीजार्तानामपन्नपाम् ॥ १३ ॥

त्यज मामभ्यिके पुत्रं वृद्धं निष्काममेव च । त्यत्कर्मयोग्यरसिकं युवानं पश्य सुस्मिते

निपेकाहृमते पत्नी शुक्मर्तुः शूभाशुभम् । मन्त्रशिल्पमपत्यञ्च सर्वमेतन्न यत्नतः ॥ १५ ॥

त्वया सह मम रते निबन्धो नास्ति सुघते । क्षुद्रं महद्वा यत् कर्म सर्वं दैवनिबन्धकम्

इत्युक्त्वन्तं ब्रह्माणं स्मरन्तं मत्पदाङ्गुजम् । विचकर्ष पुनर्वेश्या कामेन हतचेतना ॥ १७ ॥

एतस्मिन्नन्तरं शीघ्रं स्थानं तत् सुमनोहरम् । आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मनेजसा

अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो वशिष्ठः क्रतुरङ्गिराः । भृगुर्मरीचिः कपिलो षोडुः पञ्चशिखोरुचिः

आसुरिश्च प्रचेताश्च स्वयं शुक्रो वृहस्पतिः । उतथ्यः करकः कण्वः कश्यपो गौतमस्तथाः

सनकश्च सनन्दश्च कर्दमश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान् योगिनां परमो गुरुः ॥

शातातपः पिप्पलश्च शङ्कुः शङ्खः पराशरः । मार्कण्डेयो लोमशश्च मृकण्डुश्च्यवनस्तथा

दुर्वासाश्च जरत्कारुरास्तीकश्च विभाण्डकः । ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजो घामदेवश्च कौशिकः

दृष्यवैतांश्च तपोनिष्ठानागतान् मुनीश्वरान् । तत्याज मोहिनी शीघ्रं शोड्याकमलोद्भवम्

तत्रोवाच जगद्धाता तद्दामपार्श्वतश्च सा । प्रणेमुर्मुनयस्तञ्च भक्तिजघातमकन्धराः ॥ २५ ॥

आशिर्यं युयुञ्जे ब्रह्मा वासयामास तान् विभुः । तेषु मध्ये प्रजज्वालयधातारासु चन्द्रमा

पप्रच्छुर्मुनयो देयं कथमेया तथान्तिके । स्वर्वेश्यानाञ्च प्रपरा मोहिनीत्येवमेव च ॥ २७ ॥

धुत्या मुनीनां घचनमुवाच तान् प्रजापतिः । स्त्रीजार्तानाञ्च पचनं लज्जाच्छादनमेव च

ब्रह्मोवाच ।

अपूर्वं मृत्युमप्यञ्च विरं हत्या शुभाषदा । उपासेयं परिधान्ता यथा कथा पितुः पुरः

इत्युक्त्वा जगतां धाता जहास मुनिसंसदि । जहंमुर्मुनयः सर्वे सर्वज्ञान्तरा राधिके ॥

तयं रहस्यं विज्ञाय जगत् स्रष्टुश्च मानसम् । सद्यश्चोप कुलटा हास्यव्याजेन संसदि  
 र्वाङ्गकम्पमाना सा कुलटा कुटिलानना । रक्तपङ्कजनेत्रा च कोपप्रस्फुरिताधरा ॥३२॥

उत्थाय च सभामध्ये तेषाञ्च पुरतः स्थिता ।

संबोधोवाच ब्रह्माणं मृत्युकन्या यथा रुया ॥ ३३ ॥

मोहिन्युवाच ।

अये ब्रह्मन् जगन्नाथ वेदकर्ता त्वमेव च । किं वा वेदप्रणिहितं कर्म किं तद्विपर्ययम् ॥

विचारं मनसा स्वेन कुरु वेदविदां गुरो ! ।

स्थकन्यायां यत्स्पृहा स कथं हससि नर्तकीम् ॥ ३५ ॥

निर्मिताहमीश्वरेण स्वर्धेश्या सर्वगामिनी । सतां कर्मविरुद्धं यस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥

दासीतुल्यां विनीताञ्च दैवेन शरणागताम् ।

यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाशिरम् ॥ ३७ ॥

नविद्यद्दर्पभङ्गं ते करिष्यति हरिः स्वयम् । निबोध धवनं ब्रह्मन्देश्यायाञ्च तु साम्प्रतम्

तवैव धवनं स्तोत्रं गृह्णाति यो नरः सदा ।

भविता तस्य विप्रश्च स यास्यत्युपहास्यताम् ॥ ३६ ॥

भविता वार्षिकी पूजा देवतानां युगे युगे ।

तद्य मात्पाञ्च संक्रान्त्यां न भविष्यति सा पुनः ॥ ४० ॥

फलान्तरेऽत्र कल्पे वा देहे देहान्तरेऽत्र वा । पुनः पूजा न भविता वा गतास्ता गतैश्च

इत्युक्त्या मोहिनी शीघ्रं जगाम मदनालयम् । तेन सार्द्धं रति कृत्वा यमूय विज्वरा पुनः

पश्चात् सा चेतनां प्राप्य विललाप भृशं पुनः । अयं कथं मया शान्तो जगद्विधिरतिप्रियः

स्वर्धेश्यायां गतायाञ्च मुनयोदुःखिता भृशम् । स्वयंविधाता जगताञ्चकम्पे नतकण्ठरः

उपायं मुनयस्तस्मै हृदुः फल्याणकारिणः । शरणं व्रज वैकुण्ठमित्युक्त्या ते गृहान् ययुः

ब्रह्मा जगाम शरणंमम मूर्त्यन्तरं परम् । शान्तं तं कमलाकान्तं श्यामं नारायणामिधम्

गत्वा विपणणघट्टनः प्रणम्य च धनुर्मुजम् । तत्रोपास जगत्कर्सां नातिदूरे समीपतः ॥

रहस्यं कथयामास शुष्ककण्ठोद्वेष्टालुक्कः । दीनयत्सुं दयासिन्धुं विपत्तारणकारणम् ॥

शुभ्या वृष्ट्यं तत्सर्वं प्रहस्योवाच तं विभुः ।

सर्वं सारं हितं वाचनं जगताञ्च सुभाषणम् ॥ ४१ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वं त्वं वेदविद्विषि विदुषाञ्च शुभेर्गुरुः । स्वया वृत्तञ्च यत् स्वयं इह केन न तत् वृत्तञ्च

स्वीज्ञानिः प्रहृतेरज्ञा जगतां रीतकर्मिणा । र्मानां विद्वम्पनेनेव प्रहृतेषु विद्वम्बनम् ॥

न तद्भारतरुञ्च पुण्यशोभमनुगमम् । त्रीदशोत्रं प्रह्लादोके कल्पयेन्द्रियनिग्रहः ॥ ५२ ॥

यदि तद्भारते देवाः स्वामिनी समुपनिता ।

स्वयं गदसि कामातां म सा त्याग्या त्रिनेन्द्रियैः ॥ ५३ ॥

त्यनया परत्र नारकं प्रजेदिति विद्वम्बनः । भयेदेष हि दुःखातां शारं दयाद्य तं ध्रुपम् ।

विहाय म्पकन्ध्रञ्च यो वृद्धाति परम्प्रियम् ।

लोमात् कामतुजाद्वापि सोऽधमो नात्र मंशयः ॥ ५५ ॥

पातयित्वा सद्य पनेदश पूर्वांश्च दशागरान् ।

त्यनया स्वम्यामिनं या च परं गच्छति कामतः ॥ ५६ ॥

न पुमात्र च वेश्याञ्च कुलस्त्री तत्र दुष्यति । उपायेनच या साध्यं करोति परपूजाम् ॥

सा तिष्ठत्येवान्धकूपे याचञ्चन्द्रदिपाकर्ता । स्वर्षेष्वा च दिवं याति सततं कुलधर्मतः ॥

ध्रुवंभवेत् सोऽपराधी तस्या अप्यवमाननः । समुपायं करिष्यामि शतो यत्र विशुष्यति

क्षणं तिष्ठ जगन्नाथ पापिनञ्च भवाणंवे । एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदाजगाम हरैः पुरः ।

द्वारपालः शीघ्रगामीत्युवाच नतकन्धरः ॥ ६० ॥

द्वारपाल उवाच ।

अन्यत्रल्लाण्डाधिपतिर्ब्रह्मा दशमुखः स्वयम् । द्वारं तिष्ठन्महामकस्त्वां द्रष्टुं स्वयमागतः

द्वारपालवचः ध्रुत्वा स चैवानुमतिं ददौ । द्वारपालाज्ञया ब्रह्मा तुष्टायामत्य भक्तिः ॥

स्तोत्रैरतिविचित्रैश्च चतुर्वक्त्राध्रुतेषु । स्तुत्योवासाज्ञया विष्णोः कृत्वा पश्चाच्चतुर्मुखम्

नारायणो द्वारपालानित्युवाच चतुर्भुजान् । भागन्तुकं जनमपि प्रवेशयत सादरम् ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृन्दावनविनोदिनि । आजगामातिप्रणतो ब्रह्मा शतमुखः स्वयम् ॥

देव्यैः स्तोत्रैश्च तुष्टाव निगूढमतिसुन्दरैः । स्तुत्वोपास धरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतेरहो ॥  
तदनन्तरयोरेषे भक्त्या शतमुखः स्वयम् । जगद्धिर्षो सभायाञ्च तत्र तिष्ठति तत्क्षणे ॥

आजगामातिब्रह्माण्डाधिपो ब्रह्मा हरेःपुरः । सहस्रवदनःश्रीमान् भक्त्या नम्रात्मकन्धरः  
स्तुत्वोपास धरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतेरहो । तञ्च पप्रच्छसर्वेषां ब्रह्माण्डानाञ्च ब्रह्मणाम्  
पातां विषयिणाञ्चैव सुराणाञ्च क्रमेण च ॥ ६६ ॥

चतुर्मुखस्य तान् दृष्ट्वा दर्पमङ्गो बभूव ह । आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य दर्पतः ॥  
अन्यान् स दर्शयामास ब्रह्माण्डेष्वान् विधीन् इति ।

दृष्ट्वा च श्रुत्या तत्र मृततुल्यं चतुर्मुखम् ॥ ७१ ॥

यावन्ति गात्रलोमानि सन्ति नारायणस्य मे ।

तत्प्रमाणाश्च ब्रह्माण्डा ब्रह्मणः सन्ति सन्ततम् ॥ ७२ ॥

नारायणं प्रणम्याशु जग्मुस्तेस्वालयं प्रति । स मेने विधिरात्मानमत्यल्पं विषयाधिपम्  
पप्रच्छ प्रणते विष्णुर्लज्जानघ्नंचतुर्मुखम् । घटं तन् किमिदं दृष्टं स्वप्रवद्व्यक्ताधुना ॥ ७४

नारायणवचः श्रुत्वा विधिरित्युक्तवांस्तदा । भूतं भव्यं भविष्यञ्च तव मायासमुद्भवम्  
इत्येवमुक्त्वा स विधिस्तत्सौ संसदि लज्जया ।

सर्वान्तर्यामी भगवान् तस्योपायं विनिर्ममे ॥ ७६ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

मोहिनीशापब्रह्मदर्पमङ्गो नाम अष्टविंशोऽध्यायः ।

## चतुर्विंशोऽध्यायः

जाह्नव्या जन्मवृत्तान्तः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शङ्करः समुपस्थितः । सरिमतो वृषभेन्द्रस्यो विभूतिभूयणः स्वयम्  
प्याप्रचर्मांश्वत्परो नातयज्ञोपर्वतकः । स्वर्णाकारजटामारमर्घचन्द्रश्च सन्धत् ॥ २ ॥

त्रिमूर्तिपट्टिशकर्त्री विद्वान् गन्धाङ्गुलाम् । सत्रज्ञसाररत्नितम्बमन्त्रकरो मुदा ॥ ३४ ॥  
 पाहनाक्षयश्यामु भगिनघ्नात्मकन्धरः । प्रजम्ब कमलाकान्तं वामे शोपास भक्तिः ॥  
 आङ्गपुम्बुनवः सर्वे सुराः शक्रादयस्त्रया । आदित्या वसथो रुद्रा मनयः सिद्धनारणाः  
 पुलकाशितसर्पाङ्गः साधुनेत्रः पुनः पुनः । तदेष धृतिमात्रेण मूर्च्छां प्राप्य विचेतनाः ।  
 यभूय रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये । रुद्ररूपाः सुराः सर्वे विधातृहरिपार्यदाः ॥ १२ ॥  
 नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिचःस्ययम् । जलपूर्णञ्च वैकुण्ठं दृष्ट्वा अस्तोऽहमीदृशं  
 गत्वा मूर्त्तौपिनिर्माय सर्वाश्च सादृशीरिति । तत्स्यरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्यवहनभूषणा  
 तत्स्यभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः । स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्यचतुर्दिशि  
 तदधिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम् । शरीरजा सुराणां सा यभूय सुरनिम्बगा ।  
 मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा ॥ १६ ॥

समयोनितराणेण मनोमोहनकारिणा ॥ ८ ॥

यत्र षण्ठेकतानेत्र श्रीकामनेन गारुणा । पद्भेदयिरामेण गुरुणा लघुना क्रमात् ॥ १ ॥  
 गमकेनातिदीर्घेण मदेन मधुरेण च । भवेति दुर्लभं सृष्टं प्रोदया स्येन विनिर्मितम् ॥ १० ॥  
 पुलकाशितसर्पाङ्गः साधुनेत्रः पुनः पुनः । तदेष धृतिमात्रेण मूर्च्छां प्राप्य विचेतनाः ।  
 यभूय रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये । रुद्ररूपाः सुराः सर्वे विधातृहरिपार्यदाः ॥ १२ ॥  
 नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिचःस्ययम् । जलपूर्णञ्च वैकुण्ठं दृष्ट्वा अस्तोऽहमीदृशं  
 गत्वा मूर्त्तौपिनिर्माय सर्वाश्च सादृशीरिति । तत्स्यरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्यवहनभूषणा  
 तत्स्यभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः । स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्यचतुर्दिशि  
 तदधिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम् । शरीरजा सुराणां सा यभूय सुरनिम्बगा ।  
 मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा ॥ १६ ॥

मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा ॥ १६ ॥

कोटिजन्माजितं पापं पिषिधं पापिनामहो । यस्याश्च स्पशयायोश्चसम्पर्केणचिन्त्यति  
 किं या न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शतयोःफलम् । किमुतस्तानजन्यञ्चकथयामि निरुपणम्  
 सर्वतीर्थात्परं पृथ्व्यां पुष्करं परिकीर्तितम् । घेदोकञ्जतदेवास्याःफलानार्हतिपोदशीम्  
 भगीरथेन धानीता तेन भागीरथीस्मृता । गामागता स्रोतसोऽशाङ्गना तेन प्रकीर्तिता  
 जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुना तोयकोपतः । तस्यकन्यास्यरूपा सा जाह्नवीतेनकीर्तिता  
 भीष्मः स्वयं पसुर्जातस्तस्यां सा तेन भीष्मसुः ॥ २२ ॥

मि. स्वयं पृथिवीमतलं तथा । ममाशया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी

मन्दाकिनीस्मृता । योजनायुतविस्तीर्णाप्रस्थेचयोजनास्मृता

क्षीरतुल्यजला शष्यदन्त्युत्तुङ्गतरङ्गिणी । वैकुण्ठाद् ब्रह्मलोकञ्च ततः स्वर्गं समागता ॥  
 स्वर्गाद्विमाद्रिमार्गेण पृथिवीमागता मुदा । सा धारातकनन्दाख्या लवणोदेनमिध्रिता  
 शुद्धस्फटिकसद्भाशा बहुयोगयती सर्ता । पापिनां पापशुष्येन्धं दग्धुं पावकरूपिणी ॥  
 अतो सागरखंडोभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी । वैकुण्ठगामिनी सा च सोपानरूपिणी धरा  
 अतोऽपि मृत्युसमये सतां पुण्यस्वरूपिणाम् ।

आदौ पादौ च संन्यस्य मुखे तोयं प्रदीयते ॥ २६ ॥

गङ्गासोपानमारुह्य सन्तो यान्ति निरामयम् । भाप्रह्मलोकं संलंघ्य रथस्थाश्चनिरापदः  
 दैवात्पुरा प्राक्तेन मने चेत् कृतपातकैः । लोमप्रमाणघर्षञ्च मोदन्ते हरिमन्दिरे ॥ ३१ ॥  
 ततो भोगो भवेत्तेषां निश्चितं पापपुण्ययोः । अति स्वल्पेन कालेन कालव्यूहञ्च विभ्रताम्  
 ततःपुण्यघतां गेहे लब्ध्वा जन्म च भारते । संप्राप्य निश्चलांमर्त्तिं भवन्ति हरिरूपिणः  
 मृतद्विजानां देहांश्च दैवाच्छूद्रा वहन्ति चेत् । पद्मप्रमाणघर्षञ्च तेषाञ्च नरके स्थितिः ॥  
 ततस्तेषाञ्च साहाय्यं करोति हरिरूपिणी । ददाति मुक्तिं तेभ्योऽपि क्लमेण च कृपामयी  
 जन्मपुण्यघतां गेहे कारयित्वा च भारते ।

स्थलं ददाति वैकुण्ठे निश्चितं जन्ममिस्त्रिभिः ॥ ३६ ॥

यायां कृत्वा तु यः शुद्धो ह्यातुं याति सुरेश्वरीम् ।

पद्मप्रमाणघर्षञ्च वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

गङ्गां प्राप्यानुपङ्गेण स्नातिचेत् समलो नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यते  
 कलौ पञ्चसहस्राब्दं स्थितिस्तस्याश्च भारते । तस्याञ्च विद्यमानायांकः प्रभावः कलेरहो  
 कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम । तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कालेः  
 अतलं याति या, धारा सा च भोगयती स्मृता ।

पयःफेननिभा शश्वदतिवेगघती सदा ॥ ४१ ॥

आकरामूल्यखानां मणीन्द्राणाञ्च सन्ततम् । नागकन्याश्चतर्त्तीरेऽङ्गिनि स्थिरयोधनाः  
 स्वर्घं देषी च वैकुण्ठे घेषयित्वा च सन्ततम् । सहस्रयोजनाप्रस्थे वैभ्यं च लक्षयोजना  
 अस्या विनाशः प्रलये नास्त्येव दुहितुर्मम । नानारत्नाकरं दिव्यं तर्त्तीरं सुमनोहरम् ॥



इत्येवं कथितं सर्वं जाह्नवीजन्मपुण्यदम् । ब्रह्मणश्च प्रतीकारो माहिनीशापतः ॥ १ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

जाह्नवीजन्मप्रस्तावो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

## पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

### ब्रह्मणो गोलोकगमनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारायणश्च ब्रह्माणमुवाच कृपया पुनः । दृष्ट्वा गङ्गाञ्च सर्वेषां मम मायाञ्च मेनिरे ॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उत्तिष्ठ गच्छ भद्रन्ते भविष्यति चतुर्भुज । अप्र स्नात्वाभिरातस्त्वंपूतो मय ममाश्रया

त्वं चेन् सत्यं स्यपं पूतः स्पर्शं पाञ्छन्ति तानि च ।

वैष्णवेशस्य तीर्थानि सर्पाणि सततं मुने ॥ ३ ॥

तयापि शापमुक्तस्त्यमत्र प्रवृत्तिहेलनात् । महद्गाराश्च सर्वेषां पापपीडमद्गुलम् ॥ ४ ॥

शीघ्रं त्वं गच्छ गोलोकं ममालयपरात्परम् ।

प्रवृत्त्यंशां मद्गुलदां तत्र प्राप्स्यसि भार्गवीम् ॥ ५ ॥

प्रवृत्तिं भज कल्प्याणमृषिर्बीजस्यरुषिर्जीम् । अहो कल्प्याणतपर्वन्तं तपस्तप्तं त्वयापुना

तप मन्त्रं न गृह्णन्ति केऽपि येश्चामिश्रापतः । यद्व्यदेयपूजायां तव पूजा भविष्यति ॥

स्थमेव जगतो धाता म्यान्मारासश्च योषितः । सर्वंरुपी च पूजा च सर्वदेहेषु सर्वतः ॥

तदा ममाश्रया ब्रह्मन् स्नात्वा च जाह्नवीजले । शीघ्रं जगाम गोलोकंमां प्रणव्यजगद्गुणैः

ते देवा मुनयः सर्वे प्रजग्मुः श्यालये मुदा । सुत्रिर्मलं मम यशो गायन्तश्च पुनः पुनः ।

विधिरागस्यगोलोकं संप्राप्यमार्त्तिसर्गम् । सर्वविधाधिदेहीतां मद्ब्रह्मद्वयिर्निर्मिताम्

वागांश्वरीञ्च सर्वप्राप्य ब्रह्मा प्रमुदिनः स्वयम् । कामास्त्राणांश्व्याणांमनुमेतैश्चर्यविभुः

तत आगत्य मां नत्वा प्राप्य त्रैलोक्यमोहिनीम् ।

क्रीडां चकार भगवान् स्थाने स्थानेऽतिनिर्जने ॥ १३ ॥

रतिं चिरतरं हृत्या चिरराम स्वपं विधिः । वागीश्वरीमुवाचेदं स्वं चै ब्रह्मा च कर्मणा  
काचित् स्पर्कर्मणा साध्वी पूज्या च स्थिरयौघना । . . .

तवैव कर्मयोगञ्च युवानं पश्य सुन्दरि ॥ १५ ॥

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् । जरातुरोऽहंबृद्धश्चतस्पोषैष्णवो द्विजः  
अस्यतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे । श्राजगाम ब्रह्मलोकं पुनरेव निजालयम् ॥  
दद्रुर्गुह्यलोकस्थस्तां देवीं कौतुकान्विताम् । अतीवसुन्दरीरम्यांशुभ्रयर्णाञ्चसस्मिताम्  
शरच्छीतांशुवदनां शरत्पङ्कजलोचनाम् । पङ्कविभ्यप्रभामुष्ट दीप्तौष्ठाधरपल्लवाम् ॥ १६ ॥  
मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । रत्नकेयूरपल्लवरत्ननूपुरशोभिताम् ॥ २० ॥  
रत्नकुण्डलयुग्मेन कर्णमूलचिराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारैण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलाम् ॥ २१ ॥  
वह्निशुद्धांशुकं सुश्रमं विव्रतीं नवयौघनाम् । अतीव कमनीयाञ्च पीनश्रोणिपयोधराम् ॥  
घोणापुस्तकहस्ताञ्च व्याख्यामुद्राकरां धराम् । ते च निर्मञ्जुनंकृत्वाचक्रुः परममङ्गलम्  
पुरीं प्रवेशयामासुर्ब्रह्माणं भारतीं मुदा । ब्रह्मा तथा सह क्रीडां चकार सः दिवानिशम्  
अतीव सुखसम्भोगे निमग्नः सततं मुदा । गूढं सर्वपुराणेषु किंपुनः धोतुमिच्छसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

प्राणेशवचनं ध्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरो । भूयोऽपि परिप्रच्छ कौतुकान्मातसं पुरा ॥ २६ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

ब्रह्मा कथं न जग्राह वैश्यां स्वयमुपस्थिताम् ।

न कर्मक्षेत्रे रक्षति फलदाता च कर्मणाम् ॥ २७ ॥

उपस्थितायास्त्यागे च महान् दोषो हि योषितः ।

हात्वा वैष विधाता स कथं त्वत्पतेज मोहिनीं च ॥ २८ ॥

श्रीनारायण उवाच । . . .

राधिकावचनं ध्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । पापकल्पस्यैः कृतान्तमुवाच परमेश्वरीम् ॥



क्षणेन चेतनां प्राप्य ददर्शाग्ने च कन्यकाम् ।

तां संभोक्तुं मनश्चक्रो सा दुदाय भिया सती ॥ ४७ ॥

दृष्ट्वा पश्चाच्च पितरं धावन्तं हतचेतनम् ।

जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातृणाञ्च तपस्विनाम् ॥ ४८ ॥

तेषां समीपे संस्थाप्य तमूचुः पितरं क्रुधा । हितं तथ्यञ्च वेदोक्तं नीतिसारं परंपचः ॥

ऋषय ऊचुः ।

।। किमेतज्जनककर्मतेति चिगर्हितम् । नीचानां चरितं यत्तत्करोपि त्वं जगद्धिषे ॥

यन्ति सततं सन्तः प्रसूमिष परस्त्रियम् । ये ते सर्वत्र पूज्याश्च परब्रह्म जितेन्द्रियाः ॥

त्वं स्वयं वेदकर्ता च कन्यां संभोक्तुमिच्छसि ।

कन्या च मातृवर्गेषु प्रविष्टा च श्रुती श्रुता ॥ ५२ ॥

तोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नीच या सती । पत्नीच भ्रातृसुतयोर्मित्र पत्नीच तत्प्रसूः

प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नी श्वश्रूः स्वकन्यकाः ।

जगनी तत्सपत्नी च भगिनी सुरमी तथा ॥ ५५ ॥

शर्मोऽसुरपत्नीच धात्रिकान्नप्रदायिका । गर्भधात्री स्वनाम्नाच भयाभ्रातुश्च कामिनी

ता वेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः । एतास्वपिचसर्वासु न्यूनता नास्ति फासु च

कन्यादातान्नदाता च ज्ञानदातामथप्रदः ।

जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च पितरः स्मृताः ॥ ५७ ॥

एता यद्वन्ति ये मूढा य एतान् जनकानपि ।

पच्यन्ते नरके ते च वायुद्वै ब्रह्मणो धयः ॥ ५८ ॥

।। नान्धकृपे संस्थाप्य दूरतो यमकिङ्कराः । बुर्वन्ति ताडनं शश्वत्पुरीषं पाययन्ति च ॥

त्वमेव विश्वकर्ता च शास्ता वै शमनस्य च ।

स्वयं विधाता जगतां तेन गृह्णासि कन्यकाम् ॥ ६० ॥

अस्माकं पुरतो दूरं गच्छ कामार्तमानस । न कुर्मा भस्मसात्कर्तुं शकाश्चजनकं धयम्

गुरादोपसहस्राणि क्षन्तुमर्हन्ति पण्डिताः । सर्वज्ञं ते चित्तिन्नन्ति नीतिज्ञाःस्पगुहंपिता

शुक्लं यदि सार्यस्य शयनं निन्दुं शुभम् । साधवस्त्वन निन्दन्ति प्रणमन्ति स्वयन्निन्द  
ये द्विपत्ति च निन्दन्ति मुठमिषं सुरात्पाम् ।

पच्यन्ते मेऽन्धकूपे च पापघग्निदिवाकरौ ॥ ६४ ॥

पुरीषं भुञ्जते नित्यं क्षुभिता यमताङ्गनेः । सार्यप्रमाणकीटैश्च क्षिणाद्य दिवानिशम् ॥ ६५ ॥

इत्येवमुक्त्वा मुनयः प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजम् । सार्यं मधति देवेन प्रशान्तमनसा ध्रुवम् ॥

उन्मुखा मुनयः सार्यं यभूयुश्च स्वयकर्मणि । प्राप्ता शरीरं सन्त्यक्तुं योङ्ग्या च समुद्यतः ॥

योगेन भिरघा पश्चक' सपान् प्राणाग्निहृद्य च ।

प्रहरन्ध्रं समानीय तस्याज स्व्येन घर्मना ॥ ६८ ॥

मनसा धीहरि स्मृत्वा नमस्कारं चकार ह । न मे मनः परद्रुष्ये भविता लोलम्रीद्वर ॥

प्राणत्यागात्, परे दुःखमयशद्व्य यशस्विनाम् ।

यभूय हृदि हृत्त्वैकं ब्रह्मा लीनश्च ब्रह्मणि ॥ ७० ॥

कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः । योगेन देहन्तस्याज सा प्रलीनाचब्रह्मणि ॥

मृतं तातञ्च भगिनी दृष्ट्वाच मुनिपुङ्गवाः । सस्मरुः धीहरिकोपात् स्वात्मारामं विलप्य च

नारायणो मद्देशश्च कृपायागत्य सत्वरम् । ब्रह्माणं जीवयामास ब्रह्मज्ञानात् सुताञ्च ताम्

ब्रह्मा पुरो हरि दृष्ट्वा घरं घत्रे स्वपाञ्चितम् ।

भक्ति त्वच्चरणे शश्वसिञ्चलामनपायिनीम् ॥ ७४ ॥

ब्रह्माणं विरसं दृष्ट्वा तमुधाच कृपानिधिः । प्रबोधघचनं सत्यं नीतिसारं मनोहरम् ॥ ७५ ॥

: श्रीनारायण उवाच ।

शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्येऽहं मुञ्जमुत्तोष्य साम्प्रतम् ।

त्यज लज्जां जगन्नाथ हृदयधररूपिणीम् ॥ ७६ ॥

सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा सुप्रतिष्ठाप्युपद्रवः । क्षुद्राणाञ्चैव महतां भवन्त्येषां स्वकर्मणा ॥

सर्वेषामपि सर्वेषुः स्वकर्मं धलयत्तरम् । तस्मात्सन्तः प्रकुर्वन्ति नित्यं सत्कर्मसंततम्

केचित् कुर्वन्ति निर्मूलं सर्वेषामपि कर्मणाम् । कृतं कर्म परं भुक्त्वाहरिपादांश्चेत्ततः ॥

७६ लज्जां भवेद् ध्रुवम् । सुकर्मणः सुप्रतिष्ठा सर्वत्रनिर्मलं वंशः ॥

कालेन रजसा देहो बलरूपं शुभाशुभम् । कार्तिर्या त्रिगुणा चैव मोहधापयशो विधे ॥  
श्रृणुमणापवादाश्च जन्तूनां याति कालतः । महतां तौ च पूर्वोक्तौ नेतरश्च कदाचन ॥

सदापकीर्तिर्वसति परस्त्रीषु च वस्तुषु ।

तस्मात्तेनैव गृह्णन्ति सन्तः स्पृहेशकारणे ॥ ८३ ॥

स्मर मामन्तरै ब्राह्मे मदीयं विषयं कुरु । अतस्तेन मनो लोलं भविता परवस्तुषु ॥८४॥  
योपिद्रुपा च मे माया सर्वेषां मोहकारिणी । लीलया कुरुतेमोहं स्वात्मारामस्य सन्ततम्  
नानामुद्राश्रये देशे रागिणं सन्ततं रतिः । स्तनाभिधे मांसपिण्डेऽधरे लालालये शुचौ ॥  
श्रोणिष्वथ्रस्तनं तासां कामदेवालयं सदा । तस्मात्तेन हि पश्यन्ति सन्तो हि धर्मभीरवः

को धर्मः किं यशस्तेषां का प्रतिष्ठा च किं तपः ।

किं बुद्धिर्विद्या दानञ्च परस्त्रीषु च यन्मनः ॥ ८८ ॥

इहाप्यपयशो दुःखं नरकेषु परत्र च । घासः प्रहारस्तेषाञ्च ताडनैः कृमिभक्षणैः ॥८९॥  
दुःखर्याजं सुखं मत्वा मूढाश्च दीपदोषतः । परस्त्रीसेवनं प्रीत्या कुर्वन्ति सन्ततं मुदा ॥  
उत्तमा मत्पदाम्भोजं सन् कर्म मध्यमा सदा । स्मरन्ति शब्दधमाः परस्त्रीसेवनं मुदा  
विपत्तिः सन्ततं तस्य परवस्तुषु यन्मनः । विशेषतः परस्त्रीषु सुवर्णेषु च भूमिषु ॥९२॥  
दीवात्परस्त्रियं दृष्ट्वा विरमेद्यो हरि स्मरन् । दृष्ट्वा परसुवर्णञ्च हस्तप्रक्षालनाच्छुचिः ॥  
स्तनं नैव संसक्ताः सन्तः स्वस्त्रीषु कामतः । यद्भव्याधिज्ञानहानिलोकनिन्दामयेन च  
तपस्विनस्तपस्यायां शास्त्रचिन्तासु पण्डिताः ।

योगिनो योगचिन्तासु वेदार्येषु च वैदिकाः ॥ ९५ ॥

साध्यश्च पतिभेषासु गृहम्या गृहकर्मसु । विषयेषु विषयिणो मद्भक्ता मम सेवने ॥९६॥  
एते नियुक्ता एतेषु सभासु च प्रशंसिताः । विदोक्तावरणेनैव तद्विरुद्धेन निन्दिताः ॥९७॥  
सर्वे जिन्यं प्रशंसन्ति शब्दसन्मार्गगामिनम् ।

हालिषा अपि जिन्दन्ति कुपार्त्तगामिनं विधे ॥ ९८ ॥

भविता न परस्त्रीषु परवस्तुषु ते मनः । अथ प्रभृति जीपन्तं निषिष्टं मन्त्रेण च ॥९९॥  
अदीपविषये वाह्ये मयादत्तं कुट्ट विषयम् । अन्तरा मत्पदाम्भोजचिन्तां विप्रचिन्तारिणीम्

कन्या भवतु मे ब्रह्मन् कामदेवस्य कामिनी । रतिर्नाम परित्याज्या रत्यधिष्ठातृदेवता ।  
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमाश्वास्य कमलापतिः । जगाम नित्यं वैकुण्ठं वृन्दावनचिनोदनः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधा-  
कृष्णसंवादो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

## पट्त्रिंशोऽध्यायः

हरदर्पभङ्गवर्णनम्

श्रीनाराधिकोवाच ।

एतेन नियमेनैव ब्रह्मा तत्याज मोहिनीम् । कथं स कुलटाशापादपूज्यः संयभूय ह ॥१॥  
कथं तस्य दर्पभङ्गञ्चकार कमलापतिः । कथयस्य सर्व्यधीजं सर्वेषामीश्वरः स्वयम् ॥२॥

श्रीनारायण उवाच ।

रासेश्वरीपत्न्यः श्रुत्या ब्रह्मस्य रसिकेश्वरः । निगूढमितिहासञ्च तां वन्दुमुपनयने ॥ ३ ॥  
श्रीकृष्ण उवाच ।

ब्रह्मा चिरं तपस्तप्त्वा मत्तो लब्ध्वा परं परम् ।

सृष्टिं नानाविधां कृत्वा विधाता स यभूय ह ॥ ४ ॥

तपसां पत्न्यदाता च सर्वेषां शान्तिहृत् प्रभुः । मात्मानमीश्वरं ज्ञात्वा महागर्षोकभूय ह ॥६॥  
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु गर्भपर्यन्तमुन्नतिः । इति मत्वा ब्रह्मणश्च दर्पभङ्गः कृतो मया ॥६॥

येषां येषां भवेद्दर्पो ब्रह्माण्डेषु परात्परः । विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताहमेव च ॥७॥  
प्रथमे ब्रह्मणो गर्भो मया शूर्जोऽहम् श्रुतः । शङ्करस्य च पार्यन्त्याद्यन्त्रस्य च रथेभ्यो च ॥  
यद्दे दुर्घांससञ्चैव तथा धन्यगनैः त्रिये । इमेण दर्पभङ्गञ्च कथयामि निशामय ॥८॥  
शुद्धाणां महताञ्चैव देवाङ्गुर्यो भवेन् त्रिये । एवंविधमहं तेषां शूर्जोभूतं करोमि च ॥

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णस्य वाचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोऽहतालुका ।

पप्रच्छ राधा यत्नेन सन्त्रस्ता भवविह्वला ॥ ११ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

कस्य केन प्रभावेण महादर्पो बभूव ह । त्वया केन प्रभावेण तस्य भङ्गः कृतः पुरा ॥१२  
कथयस्व प्राणनाथ सर्वेषां दर्पभञ्जन । दर्पहाभयद् प्राणदानैककारणेश्वर ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

येन भूतं गर्वन्यूनां श्रुतं त्रिजगतां विधेः । अन्येषां श्रूयतां राधे व्यासेन कथयामि ते ॥  
स्वयं शिषो मदंशश्च संहर्ता जगताञ्च यः । तेजसा मत्समः पूर्णां ज्ञानेन च गुणेन च  
ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं तस्याख्यानं शृणु प्रिये ॥ १६ ॥

युगापष्टिसहस्राणि तपस्तपसा दिवानिशम् । भूषाव मत्कलापूर्णा बभूव मत्समोषिभुः  
तपसा तेजसा शश्वत्तेजोराशिर्बभूव ह । सूर्यकोटिप्रभापञ्च भक्तानां कल्पपादपः ॥१८  
ध्यायं ध्यायञ्च योगीन्द्रास्तत्तेजो बहुकालतः । तदन्तरे च पश्यन्ति स्वरूपमतिमुन्दरम्  
शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं धरम् ॥२०  
जपन्तं स्वात्मनात्मानं श्येताम्बुधोज्जमालया । ईषदास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रनूडं परात्परम्  
स्पर्णाकारं जटाभारं धरन् शिरसा मुदा । शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकारम् ॥  
अथ स्वामीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसम्पदाम् । ददाति सर्वं सर्वेभ्योवाञ्छितं कल्पपादपः  
यो यं वाञ्छति तस्मै परं दत्त्वा परेद्वरः । बभूव गर्वसंयुक्तः स्वात्मारामः स्वलीलया  
एकदा न वृको द्वैत्यस्तपस्तेषु शिषस्य च । वेदारेण च कठोरेण पर्यमेकं दिवानिशम् ॥  
निर्वयं याति तत्समीपं हृदया च हृषानिधिः । परं क्षान्तुं यथार्थाष्टं न जप्राहारुरो धरम्  
परान्ते शङ्करः शरपसस्थां तन्पुरतः स्पर्धम् । वरदो भक्तिपादो न शर्णं गन्तुं न स क्षमः  
सर्वेष्वप्यं सर्वसिद्धिं भुक्तिं मुक्तिं हरैः पद्म् ।

द्वैत्यः किञ्चिन्न शृङ्खलि परितः शूलपाणिनः ॥ २८ ॥

ध्यायमानं तन्परदाञ्जं दृष्ट्वा त्रस्तो मधेश्वरः । भयाचितारं निदलेष्टं हरौद् द्वेषविह्वलः ॥  
भर्ताप रोदनात्तस्य ध्यानभङ्गो बभूव । दरशं पुरतः साक्षादाकारं सर्वसम्पदम् ॥२०॥



यन्मायया वरं वरं वैद्योद्भो मणिगूर्णकम् । इत्थं वरं वरं मन्मथि न मन्मथ मन्मथि  
 भोमिन्पुत्रया प्रयागन्तं वृद्धाय वैद्यगुह्यः ।

शुभगुह्यो शुभगुह्यात् वृद्धाय वामपिद्वयः ॥ ३२ ॥

पयात् इत्यस्त्वस्य ध्यायन्तं मनोहरम् । विगम्यते वरा विसो भेजे दानवर्मात्मे  
 न हन्ति तत्र वृथा मगञ्ज मन्मथस्तनः । वृष्टानुसारं सावुदन न करोति कदा  
 साधयोपनिष्ठागतश्च भुग्यपुत्रं प्रियापिना । प्रयोधितुं न शक्तस्तन्मयात्मानं वृथा  
 शिवः स्पृष्टुंमाया न मानदन्ति।हृष्टः । स्मारं स्मारञ्च मां मन्मथमेव शक्त  
 वृष्टा म्याधममापानं शुक्लपत्रोहनालुकम् ।

दे हरे रक्ष रक्षेति जपन्तं मन्मथिलम् ॥ ३३ ॥

संस्थाप्यतत्सर्मापि य स दैत्यो योधितोमया । वृष्टदत्त सर्ववृत्तान्तमुवाच मां वरं  
 तदा ममानया तूष्णं वक्षितो माययासुतः । दया स्वमूर्धि हस्तञ्च सद्यो मन्मथ  
 तदासिद्धाः सुरेन्द्राश्चमुनीन्द्रा मनयोमुदा । तुष्टुवुर्मां सुभवया च लज्जयालङ्घित-  
 यभूवः चूर्णस्तद्वर्षो जगाम योधितो मया । वरं ददाति धरदस्ततो वध्यो ह्यहं शि  
 अथ गर्वाङ्घ्रितो वृद्धो हन्तुं त्रिपुरमुल्यजम् । मत्था मनसि संहर्ता सर्वेषां जगतां  
 फोऽयं पतङ्गवद्वैत्य इति मत्था ययो रणम् । विहाय शूलं मदत्तं मदीयकथचं परम्  
 विरं वभूय समरं वरमेकं दिवानिशम् । न कोऽपि जेतुं कं शक्तो ह्यौ समो समरे  
 पृथिव्याञ्च रणं वृथा दैत्येन्द्रो मायया प्रिये ।

अत्यूर्ध्वञ्च समुत्तस्थो पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥ ४१ ॥

उत्तस्थो शङ्करस्तूष्णं हन्तुं दैत्यं जगत्प्रभुः । यभूव तत्र युद्धञ्च मासमेकं निराश्रये ॥४१  
 अस्त्राणि चापं चिच्छेद शङ्करस्यासुरो यलो । रथं यमञ्च दैत्येन्द्रश्चापमस्त्राणि शङ्कर  
 जघान मुष्टिना वृद्धो दानवेन्द्रं प्रकोपतः । वज्रमुष्टिप्रहारेण सद्यो मूर्च्छामवापसः ॥४२  
 क्षणेन चेतनां प्राप्य कोपादानवपुङ्गवः । शिवं शयानमुत्तोल्य पातयामास मृतले ॥४३  
 सुर्ये पातिते वृद्धे देवा देवर्षयो भिया । तुष्टुवुर्मां परित्राहि कृण्वेत्पुत्त्वा पुनः पुनः  
 वृष्टः सस्मार मामेव निर्मयो मन्मथारणम् । तुष्टाय भवया स्तोत्रेण मया दत्तेन सङ्क

तदाहं कलया शीघ्रं वृपरूपं विधाय च ।

शयानं शङ्करं धृत्वा विपाणाभ्यामुदक्रमम् ॥ ५२ ॥

ददौ तस्मै स्वकषचं स्वशूलमरिमर्दनम् । प्राप्य तदानवस्थानमत्यूर्ध्वञ्च निराश्रयम् ॥

मया दत्तेन शूलेन जवान त्रिपुरं हरः । मामेव दर्पहन्तारं तुष्टाय धीङ्गितः पुनः ॥ ५३ ॥

सद्यः पपात द्वैत्येन्द्रश्चूर्णोभूतश्च भूतले । देवता मुनयः सर्वे तुष्टुयुः शङ्करं मुदा ॥ ५५ ॥

तत्याज शङ्करो दर्पं विप्रवीजन्ततो विभुः । ज्ञानानन्दस्वरूपश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु ॥

ततोऽहं वृपरूपेण घहामि तेन तं प्रियम् ।

मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः ॥ ५७ ॥

मनःस्वरूपो ब्रह्मा मे ज्ञानरूपो महेश्वरः । बुद्धिर्भगवती दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ५८ ॥

निद्रादयःशक्यो यास्ताःसर्वाः प्रकृतेःकलाः । धागधिष्ठातृदेवी या सा स्वयंचसरस्पती

मम कलयाणाधिदेवो हर्षरूपो गणेश्वरः । परमार्थः स्वयं धर्मो मम भक्तो हुताशनः ॥

सर्वेश्वर्याधिदेवी मे सर्वगोलोकवासिनः । प्राणाधिष्ठातृदेवीत्वं सदा प्राणाधिकामम

गोपाङ्गनास्तव कला भतएव मम प्रियाः ।

ब्रह्मोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः ॥ ६२ ॥

तेजःस्वरूपः सूर्यश्च प्राणा मे धायवःस्मृताः । जलाधिदेवो वरुणः पृथिवीमे मलोद्भवा

मम शूलयो महाकाशो मदनी मानसोद्भवः । इन्द्रादयः सुराःसर्वे मत्कलांशांशसम्भवाः

एतानि सृष्टिवीजानि महदादीनि शैव हि । सर्वेषां बीजरूपोऽहं स्वयमात्मा निराश्रयः

जीवो मे प्रतिविम्बश्च कर्मभोगाधिकारकः । अहंसाक्षी निरीदृश्च न भोगी सर्वकर्मसु

भक्तध्यानार्थदेहोऽयं मम स्वेच्छामयस्य च । प्रकृतिः पुरुषोऽहञ्च एक एव परात्परः

इत्येवं कथितं त्रये शिवदर्पविमोचनम् । सृष्टिवीजञ्च शृणु मे पार्वतीदर्पमोचनम् ॥ ६८ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

इत्युक्तवन्तं धीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् । पप्रच्छ राधिकादेवी निगूढमभिवाञ्छितम्

श्रीराधिकोवाच ।

भगवन् सर्वतत्त्वज्ञ सर्वबीज सनातन । धद मे वाञ्छितं प्रथं सर्वसन्देहमञ्जनम् ॥ ७० ॥

सर्वज्ञानाधिदेवश्च शङ्करः सर्वतत्त्ववित् ।

मृत्युञ्जयः कालकालो भगवान् तत्समो महान् ॥ ७१ ॥

कथं विभूतिगात्रश्च पञ्चपक्वस्त्रिलोचनः । दिग्गवरो जटाधारी नागसङ्घातभूषणः ॥

वृषेणाटति देवेन्द्रो विहाय धरवाहनम् । न विमर्ति कथं रत्नं सारनिर्माणभूषणम् ॥ ७३ ॥

बह्निशुद्धांशुकं त्यक्त्वा धत्ते शार्दूलचर्मकम् । धत्ते धत्तूरकुसुमं पारिजातं विहाय च ॥

नास्तिरत्नकिरीटेच्छा जटायांप्रीतिरुत्तमा । दिव्यलोकं परित्यज्य श्मशानेषुस्पृहाविमोः

चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमानि च ।

त्यक्त्वा स्पृहा विल्वपत्रे विल्वकाष्ठानुलेपने ॥ ७६ ॥

एतद्वेदितुमिच्छामि व्यासेन कथय प्रभो । धोतुं कौतूहलं नाथ घटते मे मनःस्पृहा ॥

राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । कथां कथितुमारभे कृत्वा राधां स्ववक्षसि ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शुगपष्टिसहस्राणि तपः कृत्वा महेश्वरः । चिरराम पुर्णतमो ध्यात्वा मां मनसा मुदा

एतस्मिन्नन्तरे माञ्च ददर्श पुरतः स्थितम् । अतोव कमनीयाङ्गं किशोरं श्यामसुन्दरम्

दहोऽनिर्वचनीयञ्च दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम् । न यभूव वितृष्णश्च लोचनाभ्यां त्रिलोचनः ॥

पश्यन्निमेपरहित इति मत्वा स्वमानसे । भक्तयुद्रेकान् महाभक्तो ररोद् प्रेमविह्वलः ॥

सहस्रवदनोऽनन्तो भाग्यवाञ्छ चतुर्मुखः । बहुमिर्लाचनैर्दृष्ट्वा तुष्टाव बहुभिर्मुखैः ॥ ८३ ॥

पश्यामि किं वा किं स्तोमि संप्राप्य नाथमीदृशम् ।

भास्यैकेन लोचनाभ्यां चतुर्धा स पुनः पुनः ॥ ८४ ॥

स्वमानसे कुर्वतीदं शङ्करे च तपस्विनि । तद् यभूष चतुर्वक्त्रं पूर्वेण सह पञ्चमम् ॥ ८५ ॥

एकैकपक्वत्रं शुशुभे लोचनैश्च त्रिभिस्त्रिमिः । यभूष तेन तन्नाम पञ्चपक्वत्रस्त्रिलोचनः ॥

स्तपनादधिकप्रीतिः शिवस्य दर्शने मम । तेनाधिकानि तस्यैव यभूयुर्लोचनानि च ॥ ८७ ॥

चक्षुषि गुणरूपाणि तस्य ब्रह्मस्यरूपिणः । सत्यं रजस्तम इति तस्य हेतुं निशामय ॥

सत्त्वादीनं दृशा शम्भुः पश्यन् पाति च सात्त्विकान् ।

राजसेन राजसिकान् तामसेन च तामसान् ॥ ८९ ॥

चक्षुषस्तामसात् पद्भ्याल्ललादस्याद्वरस्य च ।

संहारकाले संहर्तुं रश्मिवाचिर्मयेत् क्रुधा ॥ ६० ॥

कोटितालप्रमाणश्च सूर्य्यकोटिसमप्रभः । लेलिहानो दीर्घशिखस्त्रैलोक्यं दग्धुर्माश्वरः  
चिभूतिगात्रः स विभुः सर्तालंस्कारभस्मना । घत्ते तस्या अस्थिमालांप्रेमभावेनभस्मव  
त्वात्तमारामो यद्यर्पाशस्तथापि पूर्णमध्दकम् । सतीशयंगृहीत्वा च भ्रामं भ्रामं रतोद्द ह  
प्रत्यङ्गं चापि तस्याश्च पपात यत्र यत्र ह । सिद्धर्पाठस्तत्र तत्र यभूय मन्त्रसिद्धिद्वन् ॥  
तदा शयापदोयञ्च हृत्पा यक्षसि शङ्करः । पपात मूर्च्छितो भूत्वा सिद्धिदोत्रे च राधिके  
तदा गत्पा मदेशं तं हृत्पा क्रोडे प्रयोष्य च ।

मद्दद्विष्यतस्यञ्च तस्मै शोकाहरं परम् ॥ ६६ ॥

तदा शिवश्च सन्तुष्टः स्वं लोकञ्च जगाम ह । मूर्त्यन्तरेण कालेन तांमं प्रापप्रियांसर्ताम्  
द्विष्यन्प्रधारी दोगैतनेच्छानिरत्येपरेविभोः । अटास्तपस्याकालीनापत्तेऽद्यापिदियेकतः  
न घेच्छा केशमंस्कारे स्वाङ्गयेदोन योगिनः । समता चन्दने पट्टे लोष्टुं रवे मर्णाद्वरे  
गरुद्वेष्टिणो मागाः शङ्करं शरणं ययुः । विमर्ति हृपया स्याङ्गे तानेय शरणागतान् ॥  
वाहनं वृत्रयोऽदमन्यस्तं धोदुमक्षमः । त्रिपुरस्य वये पूर्णं मन्त्रकलांशस्तमुद्भवः ॥१०१॥  
पारिजातादिकं पुण्यं शुगन्धि मन्दनादिकम् । मयिमंन्यम्यनेप्येयंप्रीतिनांमि कदागन  
धक्षुरे तरसदा प्रीतिर्वित्यपत्रानुत्पने । मन्धर्हाने प्रमूने च योगीष्टे ध्याप्रधर्मणि ॥  
द्विष्यलोके द्विष्यतःपे जनतायां न तन्मनः ।

इमशानेऽर्णाय रहसि ऽयापने मामहर्निशम् ॥ १०४ ॥

भाष्यप्रमत्तकण्ठ्यन्तं समञ्च मन्थने शिवः । ममानिर्वन्वन्तंयिऽत्र कपे तन्मप्रमानसम् ॥  
प्रदणः पत्ने नापि शालपाणेः शयो भयेन् । तस्यायुवः प्रमाणशुनाहंजानामि का धुनिः  
ज्ञानं गृह्युद्भवः इत्तं धत्ते मत्तेजसा समम् । विना मया न कश्चित् शङ्करं त्रिमुर्माश्वरः  
शङ्करः परमात्मा मे प्राणेःयोऽपि परः शिवः । अयक्ते मन्थनःशल्पत्रजियोमैमवात्परः  
कालाण्डनिकरं उर्ध्वं मया ममापया शशा । स कश्चन हि शरवण च तं मोहितुं शक्यः  
न संवत्सामि गोलोके वैदुष्ये तय वशति । तदशक्तिवस्य हृदये निबद्धः केशवः ॥

स्वरसिद्धं सुतानेन पञ्चवक्त्रेण शङ्करः । शश्वद्वायति मन्नाथां तेनाहं तत्समीपतः ॥१॥  
 स्रष्टुं शक्तोहि नष्टुञ्च भ्रूमङ्गुलीलयापि यः । प्रह्लाण्डनिकरंयोगाग्रयोगी शङ्करात् प  
 दिव्यज्ञानेन यःस्रष्टुं नष्टं भ्रूमङ्गुलीलया । मृत्युं कालादिकं शक्तो न ज्ञानी शङ्करात् प  
 मम भक्तिञ्च दास्यञ्च मुक्तिञ्च सर्वसम्पदः । सर्वसिद्धिं दातुमीशो न दाता शङ्करात् प  
 पञ्चवक्त्रेण मन्नाम यशो गायत्यहर्निशम् । मद्भयं ध्यायते शश्वन्न भक्तः शङ्करात् पा  
 भतं सुदर्शनं शम्भुस्तेजसा च पर्यं समाः ।

प्रह्ला स्रष्टा च योगेन नास्माभिस्तेजसा समः ॥ ११६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं शङ्करस्य यशोऽमलम् । तथाप्यस्य दर्शनङ्गं भूयः शोभति ॥  
 इति धीरूष्णवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीरूष्णजन्मस्य  
 शङ्करांशोपाख्यानं नाम पद्मत्रिंशोऽध्यायः ।

## सप्तत्रिंशोऽध्यायः

इग्निमान्पशापप्रमंगारगर्जनम् ।

राधिकोपाय ।

एतन्मूषकवर्षिणोः शर्वेशस्य महत्प्रथमः । न शक्नोति कस्यचिच्छूलं मूर्तिं शोभतेऽत्र ॥  
 धीरूष्ण उवाच ।

अत्रु वैचि शक्येऽहं विज्जित्वां पुनःकनम् । पाणिपशानो वरुने उपपत्तिशिशोपमम् ॥  
 अन्तर्गतो वै शूण्डकेकरः च जगत्प्रभ ॥ वरुणो भूतधमञ्जुः शानो नारायणो विभ ॥१॥

मुच्यते शूरे शोभेऽहं प्रथम्य भक्तितो मुरा ।

अपरेण वरुणे शक्येऽहं विज्जित्वां पुनःकनम् ॥ ४ ॥

शक्येऽहं मूर्धं विदेव विज्जित्वां । विज्जित्वां शक्येऽहं विज्जित्वां शक्येऽहं विज्जित्वां ॥ ५ ॥

शक्येऽहं मूर्धं विदेव विदेव । शक्येऽहं मूर्धं विदेव विदेव ॥ ६ ॥

मुक्त्वा सुदुर्लभं वस्तु ननर्त प्रेमचिह्नलः । पुलकाञ्चितसर्षाङ्गः साधुनेत्रो मुदान्वितः ॥७

गायन्मम गुणान् भक्त्या सुकण्ठःपञ्चपक्वतः ।

रागभेदैकतानेन तालमानेन सुन्दरम् ॥ ८ ॥

पपात डमरुहस्तात् शृङ्गञ्च व्याघ्रचर्म च । स्वयं निपत्य पश्चाच्च रुदन् मूर्च्छामघाप ह ॥

अर्ताय कर्मनीयं तद्वृत्तं ध्यात्वैकमानसः । सहस्रदलमध्यस्थं मां पश्यन् हृत्सरोरुहे ॥१०

एतस्मिन्नन्तरे देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । मुदाजगाम शोधं तत्सप्रन्नवदनेक्षणा ॥११॥

रुदन्तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा निपतन्तञ्च भक्तिः । प्रहस्य वार्तां पप्रच्छ कुमारं शृलपाणितः

सर्वं तां कथयामास कुमारः संपुटाञ्जलिः । श्रुत्वा चुकोपसा देवीशिवं प्रस्फुरिताधरा

तां शम्भुमुद्यतां देवीमुत्थाय च त्रिलोचनः । बोधयामास विविधं तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ।

श्रुत्वा मनोहरं स्तोत्रं न शशाप शिवं शिवा । दुष्टं चक्रे तदुच्छिष्टममर्ष्यं विदुषामपि

न लीकानां प्रभावश्च तपःसौभाग्यतेजसाम् । ब्रह्माण्डे सर्वसंहर्ता चकम्पे पार्वतीमये ॥

उवाच तं जगन्माता नीतिसारं परं वचः । गणप्रसूः सकोपा च रक्तपङ्कजलोचना ॥१७

अहो तपःप्रभावश्च तेजसश्च न जीविनाम् । स ब्रह्माण्डस्य संहर्ता चकम्पे शैलकन्यका

पार्वत्युवाच ।

त्वं पोष्टा जगतां पाता ममैव च विशेषतः । वक्त्रा चतुर्णां वेदानां जनकश्च स्वयंविभुः

मुक्तिप्रदाता भक्तानां दाता च सर्वसम्पदाम् ।

त्वं चेत्करोषि दुर्नीतिं को वा धर्मञ्च पाति वै ॥ २० ॥

सदा ते परिपाल्याहं पोष्या भक्ता च किङ्करी । वञ्चिता कर्मदोषेण हरनिर्माल्यभक्षणे ॥

किञ्चिद्दुर्दं हिरण्येन किञ्चिद्वस्तु च घायुना ।

किञ्चित् प्रक्षालनेनैव सर्वं विष्णोर्निवेदनात् ॥ २२ ॥

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्याः सर्वदेवताः । पितरोऽतिपथश्चैवमिति वेदेषु निश्चितम् ॥

अनिवेद्यममर्ष्यञ्च नैवेद्यमुदरे हरेः । त्यक्त्वा करोति ध्यो भक्त्या पार्यदप्रचरो भवेत् ॥

अमृतं सर्ववस्तूनां मिष्टसारं सुदुर्लभम् । विष्णोर्निवेदितान्नेर्ष्व कलां नार्हतिपोङ्गशीम्

इत्यकालिकमृत्युं तदमृतं मूढरजनम् । नैवेद्यञ्च हरेरेव हरितुल्यं करोत्यहो ॥ २६ ॥

यद्व्याया तन्नेनेषं यो मुद्कः साधुमद्वुतः । वरिणसदस्यानां प्राप्नोति तन्मःफलम्  
मां निवेद्य हवि मुद्के भगवा मन्त्रश्च विन्यसाः ।

विना तन्मयां कर्मा न न हरेःनेत्रगा रामः ॥ २८ ॥

धुनं पुरा त्वग्मुगलः पुष्करे मुनिर्गंसरि । अहं मेरुविद्याना म विमदं वन्मूर्त्ययं ॥  
सुगिरञ्ज तन्मन्त्रायामया सत्पत्न्यार्वात्पराः । त्वया विष्णोःप्रसादेनयजिनाहं कर्णप्रभो  
यतो न दत्तं मेघेयं विष्णोमंशं त्वयाधुना ।

अतो मत्तो गृहार्णोत्सु पत्न्येव प्रदेया ॥ ३१ ॥

अथ प्रभृति ये लोका नैवेद्यं मुद्रते तथ । ते जग्मैः सारमेवा मयिप्यन्त्येष भार  
इत्युतया पार्यती माता स्तोत्रं पुत्रो विमोः । इष्टिःपपात त्रकण्ठे नान्यकण्ठो यमू  
तदा शिवः शियां भगवा हृद्या यशसि सादरम् ।

तन्मानमहं स्तोत्रेण विनयेन यकार ह ॥ ३४ ॥

करेण यधुयो नारं समृश्य च पुनः पुनः । योधवामास विविधैर्नीतियाक्यैर्मनोहरैः  
परिनुष्टा च सा देवीं भर्तारं समुपाच ह । कलेवरञ्च त्यश्यामि नैवेद्येन विना हरेः ॥  
विभर्ति देहं सततं तथ सौभाग्यवर्द्धनम् । कथं यहामि सौभाग्यरहितञ्च कलेवरम् ॥१  
अपूर्वं तथ नैवेद्यं जन्ममृत्यजराहरम् । एत दुष्टञ्च यत्तस्मात् परय देहं त्यजामि च  
लिङ्गोपरि च यदत्तं तदेवाप्राहार्णोद्वर । सुपवित्रं भवेत्तद्य विष्णोर्नैवेद्य मिथितम् ॥२  
इत्येषमुतया सा देवी देहं त्यक्तुं समुद्यता । अस्तो इरस्तत्पुरतः स्तुत्वाच स्वीचकार  
शङ्कर उवाच ।

स्थिरा भव महादेवि यण्डिके जगदग्धिके । ममापराधमखिलं क्षन्तुमर्हसि सुन्दरि ॥  
मां भृत्यं तपसा क्रीतं कृपां कुर्व ममोपरि । ब्रह्मविष्णुमहेशानां षोडशभूते सनातनि ॥  
अहो गोलोकनाथस्य गुणार्तातस्य निर्गुणे । सर्वशक्तिरूपे च सदैव सहचारिणि ॥  
साकार च निराकारे त्रित्ये स्वेच्छामये प्रिये ।

कृपया तद्विभोरेव मम यशसि साभ्रतम् ॥ ४४ ॥

सर्वबीजस्वरूपे च महाभायि मनोहरे । सर्वसिद्धिप्रदे देवि मुक्तिदे हृष्णभक्तिदे ॥४५॥

इत्येवं धीदरेः साक्षान्नाहं दातुमपि क्षमः । तदा देदं परित्यज्य निर्गुणं प्रज निर्गुणे ॥  
 इत्येवमुक्त्वा पुरतस्तर्ष्या च चन्द्रशेखरः । बभूव सुप्रसन्ना सा प्रणनाम हरं परम् ॥४७॥  
 इत्येवं पार्वतीस्तोत्रं शङ्करेण वृतं पुरा । यः पठेद्विषदा प्रस्तः स भयादेष मुच्यते ॥४८॥  
 मिश्रभेदो मयेद्दूरं तत्सम्प्रातिर्मवेत् पुरा । पार्वती परितुष्टा च नात्यजतस्य मन्दिरम्  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

श्रुत्वा प्रतिज्ञां नाथस्य परितुष्टा बभूव सा । जगाम स्वर्णदीन्तूणंक्रान्तार्थं शङ्कराक्षया ॥  
 स्नात्वा सम्पूज्य भक्त्या च सुरमिष्टञ्च निर्गुणम् ।  
 चकार प्रस्तुतं शीघ्रं मिष्टान्नं प्यङ्गनात्रि च ॥ ५१ ॥  
 शिवः स्नात्वा च सम्पूज्य ब्रह्मन्योतिः सनातनम् ।  
 तुष्टाय परया भक्त्या मामेव हृदयस्थितम् ॥ ५२ ॥  
 गत्वा सर्वमहं भुक्त्वा तस्मै दरवामिवाच्छितम् । नैवेद्यं पार्वती लेभे त्वमूलं समागता  
 भुक्त्वापरोपं सा देवी सह भर्त्रा मुदान्विता । तुष्टाय शङ्करं भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥  
 इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं सुरेश्वरि । अमिशतं शङ्करस्य निर्माल्यं येन हेतुना ॥  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे हरनि-  
 र्माल्यशापप्रसङ्गे नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दुर्गादर्पविमोचनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

दर्पभङ्गः धृतो देवि शङ्करस्य जगद्गुरोः । अधुना धूयतां मत्तो दुर्गादर्पविमोचनम् ॥२॥  
 तेजसा सर्वदेवानामाचिर्भूय जगत्प्रसूः । दधार कामिनीरूपं कमनीयं मनोहरम् ॥ २ ॥



दानवैर्ग्राक्ष ररक्ष देवताकुलम् । लेभे जन्म ततो देवी जडरे दक्षयोषितः ॥ ३ ॥

पिनाकपाणि जग्राह सा देवी सुरसाधनम् ।

शश्वत् परमभक्त्या च सिपेवे स्वामिनं सती ॥ ४ ॥

साह्रं दैवेन यभूव शिवशत्रुता । निरर्थकं दैवयोगात् पुरा वै सुरसंसदि ॥ ५ ॥

तर यज्ञञ्च तत आगत्य फोषतः । सर्धान् विज्ञापयामास तत्रैव शङ्करं विना ॥ ६ ॥

। देवताः सर्वा आजामुर्दक्षमन्दिरम् । सगणः शङ्करः फोपाज्ञाजगामाभिमानतः

तिञ्च मोहेन बोधयामास यत्नतः । न तञ्चालयित्तुं शक्ता यभूव चञ्चला स्वयम्

म पितुर्गोहं दर्पात्तस्य विनाहया । तस्य शापेन तस्याश्च दर्पभङ्गो यभूव ह ॥ ६ ॥

न हि सम्भाषणञ्चके बाह्यात्रेण पिता च ताम् ।

ध्रुत्वा च निन्दां भर्तुश्च देहं तत्याज मानतः ॥ १० ॥

ये निगदितं सतीदर्पविमोचनम् । तस्य जन्मान्तरं नित्यं दर्पमद्गुह्यभूयताम् ॥ ११ ॥

न्म सतीशीघ्र जडरे शैलयोषितः । शिवस्तस्याश्चितामस्म चास्थि जगाह भक्ति

मालास्थनाञ्चभस्मना तनुलेपनम् । स्मारंस्मारं सतीं प्रेम्णा भ्रामं भ्रामं पुनःपुन

मेना तां देवीमतीथ सुमनोहराम् । सृष्टीं विधातुस्तस्याश्च ह्युपमा नास्ति कुत्रच

गुणप्रसूर्गुणान् सर्धान् सर्वरूपान् विभक्तिं सा ।

सर्वाश्च देवपत्न्यस्तत्कलां नार्हन्ति योऽशीम् ॥ १५ ॥

षर्द्धमाना सा शुक्ले चन्द्रकला यथा । भतीथ यौवनस्था च शैलगेहे दिने दिने ॥

काशपाणी च तां सम्बोध्य जगत्प्रसूम् । शिथे शिषश्च तपसा फटोरेण लभेतिव

रं न तपसा प्राप्ता हि गर्भसम्भयम् । प्रहस्य तस्यौ ध्रुत्वेति सा च यौवनगर्विता

मम जन्मान्तरीणञ्च भस्मास्थि च विभक्ति यः ।

स मां प्रौढां कथं दृष्ट्वा न शृङ्गात्यत्र जन्मनि ॥ १६ ॥

इन्द्रश्च ब्रह्माण्डं यत्राम मम शोकतः । स कथं मां न शृङ्गाति दृष्ट्वा परमसुन्दरीम्

मं यो यमञ्च मम हेतोःकृपानिधिः । स कथं मां न शृङ्गातिपतीं जन्मनि जन्मनि

व्यपत्नीं यो यस्या भर्तामात्सल्यःपुरा । कुत्रोक्तिरथे तयोर्गोहो निरेषोनाम्बधामयेत्

सर्वरूपगुणाधारं मत्वा स्वमतिमानतः । न चकार तपः साध्वी न विज्ञाय तमीश्वरम् ॥  
सुन्दरीषु च सर्वासु मत्तो नास्त्येव सुन्दरी । हृदीति मत्वा गर्वेण न चकार तपःशिवा  
रूपयौघनवेशानां पुमान् प्राही स्वयोपिताम् ।

शिवो मच्छ्रुतिमात्रेण मां गृह्णाति चिन्ता तपः ॥ २५ ॥

हृदीतिमत्वा गिरिजा तस्योद्धिमगिरेर्गृहे । शश्वत्सदृचरीमध्ये क्रीडोन्मत्तादिवानिशाम्  
धतस्मिन्नगरे तूर्णं दूतः शैलेन्द्रसंसदि । उवाचागत्य मधुरं तत्पुः संपुटाञ्जलिः ॥

दूत उवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शैलेन्द्र गच्छाक्षयवटान्तिकम् । आजगाम महादेवः सगणो वृषवाहनः ॥

मधुपर्कादिकं दृष्ट्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पूजनं कुरु शैलेन्द्र देवेन्द्रन्तमतीन्द्रियम् ॥

सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुहम् ।

मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ ३० ॥

परमात्मस्वरूपश्च सगुणं निर्गुणं विभुम् । भक्त्यायानार्थममलं दधानं देहमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

शैलो दूतयच ध्रुत्वा समुत्तस्थौ मुदान्वितः । मधुपर्कादिकं नीत्वाजगाम शङ्करान्तिकम्

देवी दूतयचः ध्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा । हृदीति मेने मद्देतोराजगाम महेश्वरः ॥ ३३ ॥

चकार वेशमतुलं दधार पल्लवसुतमम् । रत्नेन्द्रसारालङ्कारान् रत्नमालां मनोहराम् ॥ ३४ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालां चन्दनसंयुताम् । चकार शङ्करार्थञ्च मत्वा मालां मनोहराम्

रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श दर्पणे मुखम् । फस्तूरीचिन्दुना सादं सिन्दूरचिन्दुभूषितम्

भारतज्ञैत्रयुगलं निर्मलाञ्जनसंयुतम् । शरत्तभ्याहममलं यथा लिखं त्रिवेष्टितम् ॥ ३७ ॥

सुकुमलीष्टयुगलं ताम्बूलरागसंयुतम् ।

अतीव सुन्दरं रम्यं पद्मविम्बफलं यथा ॥ ३८ ॥

रत्नकुण्डलदीप्त्या च गण्डस्थलपिराजितम् । सूर्योदयेन ज्वलितं सुमेरुशिखरं यथा ॥

भक्ष्यनिर्वचनीयञ्च दन्तपंक्तिमनोहरम् । यथा मुक्तासमूहञ्च सजलं जलदागमे ॥ ४० ॥

गजमुक्तासमायुक्तं सुचारुनासिकोत्तमम् । सुशोभितं यथा मेघं स्पर्णदीजलघात्या ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तं परीभारसंयुतम् । पक्षपंक्तिमुशोभादयं नवीनं जलदं यथा ॥ ४२ ॥



शाताक्षं पारिमद्रमष्टापकं महद्गणम् । एतान् पुरोगमात्प्रत्या प्रणनाम शिवं गिरिः ।

मूर्त्ता निपत्य भूमौ स दण्डपःसंपुटाञ्जलिः ॥ ६२ ॥

अधोऽनल्पपाभक्तया धृत्वा तत्राणाम्भुजम् । ननाम चाश्रुनेत्रः स पुलकाञ्चितिविग्रहः  
धर्मदत्तेनःस्तोत्रेण तुष्टाय परमेदपरम् । तुष्टे प्राज्ञे दिनेऽतीते पुष्करं सूर्य्यपर्वणि ॥ ६४ ॥

हिमालय उवाच ।

त्वं प्रज्ञा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः ।

त्वं शिवः शिवशोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥ ६५ ॥

स्वमीश्वरो गुणातांतो ज्योतीरूपः सनातनः । प्रवृत्तः प्रवृत्तीशश्च प्रावृत्तः प्रवृत्तेः परः ॥

नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे । येषु रूपेषु यत्प्रातिस्तत्तद्रूपं विभर्षि च ॥

सूर्य्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् । सौमस्त्वंश स्यपाता च सततंशांतरशिम्भा

वायुस्त्वं घटणस्त्वञ्च त्वमग्निः सर्वदाहकः । इन्द्रस्त्वं देवराजश्च काले मृत्युर्यमस्तथा

मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः फालकालो यमान्तकः । वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः

विदुषां जनकस्त्वञ्च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ।

मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः ॥ ७१ ॥

धाक् त्वं धामधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम् ।

अहो सरस्वतीशीर्षं कस्त्वां स्तोतुमिहैश्वरः ॥ ७२ ॥

इत्येवमुत्तवाशेलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वापदाम्भुजम् । तत्रोवास तमावोध्द्य चावहृत्वावृथाञ्छिवः

स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ॥

अपुत्री लभते पुत्रं मासमेकं पठेद्यदि । भाट्यादीनो लभेद्द्वार्यां सुशीलां सुमनोहराम्

चिरकालगतं घस्तु लभते सहसा ध्रुवम् । राज्यन्नरो लभेद्वाज्यं शङ्करस्य प्रसादतः ॥

कारागारे श्मशाने च शत्रु भस्तेऽतिसङ्कटे । गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपीठे विवाहने ॥

रणमध्ये महामौले दिव्यजन्तुसमन्विते । सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे

दुर्गादपंचमोचनं नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

## एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

### मेनकया पूर्वशिवरूपदर्शनम्

धीहृष्ण उवाच ।

ति स्तुत्वा हिमगिरियंसतः शङ्करस्य च । उयास पुरतो दूरे लब्धातः सर्वसम्मतः ॥

युपर्कादिफं तस्मै प्रदर्शो मक्तिपूर्यकम् । मुनीन् सम्पूजयामास ततः शङ्करपार्यदान् ॥

दा तत्र समागत्य मेनका स्त्रीगणैः सह । ददर्श घटमूलस्थं शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥ ३ ॥

दास्यप्रसन्नास्यं घसन्तं व्याघ्रचर्मणि । मध्ये मुनिगणानाञ्च ज्वलन्तं ब्रह्मनेत्रसा ॥

यथाकारे तारकाणां द्विजराजं विराजितम् ।

परमाहादकं रूपं कन्दर्पकोटिसन्निभम् ॥ ५ ॥

हाय घादंकावस्थां दधतं नवयौघनम् । अतीव सुन्दरं रम्यं चित्तचौरञ्च योयिताम्

मंकामानुराणाञ्च सतीनाञ्च सुतंयथा । वैष्णवानां महाविष्णुं शैवानाञ्चसदाशिवम्

केस्यरूपं शाक्तानां सौराणांस्वर्यरुपिणम् । कालस्थरूपं दुष्टानां शिष्टानांपरिपालकम्

लकालसमं मृत्योर्मृत्युं मृत्युं भयानकम् । व्याघ्रचर्मं चारुवस्त्रं बभूव भस्मचन्दनम्

र्गाः सुन्दरमालयानि कस्तूरी या विषप्रभा । जटा सुललिता चूडा चन्द्रमेलकचन्दनम्

सुचार्वां मालतीमाला गङ्गाधारा मनोहरा ।

अस्थिमाला रत्नमाला धत्तूरं चारु वम्पकम् ॥ ११ ॥

भीतं पञ्चवक्त्रं नेत्रयुग्माब्जशोभितम् । शरत्पार्वणचन्द्राभं प्रच्छाद्य दीप्तमुत्तमम् ॥

मुञ्जीघचिनिन्द्यैकमोष्ठाधरमनोहरम् । श्वेतश्चन्द्रो वृषेन्द्रश्च भूताद्या मर्तका इव ॥ १३ ॥

यो व्यतिक्रमं सर्वं महेशस्य महेश्वरी । दृष्ट्वैवं शिवरूपञ्च; मेना तुष्टा बभूव ह ॥ १४ ॥

श्चिन्निमेपरहिताः कामेनपुलकाञ्चिताः । अतिकामानुराः सत्यः प्रापुर्मूर्च्छाञ्च काश्चन

काश्चिद्विनिन्द्य कान्तांश्च प्रशशंसुर्महेश्वरम् ।

मनोरथेन मनसा समाश्लिष्यन्ति काश्चन ॥ १६ ॥

काञ्चिन्मानसिकं कामात् कुर्वन्ति सुख्यं मुदा ।

ध्रुवं कामं करिष्यामो धयञ्च कामसागरे ॥ १७ ॥

अस्माकमेवं भर्ता च परत्रैव यतो भवेत् । रहैवैकं करिष्यामो धयं कान्तं रतां रतम् ॥

दृष्ट्वातपस्या सुचिरमितिजल्पन्तिकाश्चन । काञ्चिद्दृष्ट्वाशिवं किञ्चिन्मुखमाच्छाद्यवाससा

सस्मिता धक्रजयताः पश्यन्त्येवं पुनः पुनः ।

धयं गृहं न यास्यामो यास्यामः शिवसन्निधिम् ॥ २० ॥

सख्यसुधांशुवदनं द्रक्ष्यामोऽहर्निशं मुदा । संसारं न करिष्यामः प्रविशामो हुताशनम्

भविता नः शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन ।

अहो पुण्यधती दुर्गा शशाङ्गते जन्म भारते ॥ २२ ॥

यस्या ह्ययं शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्तिकाश्चन । मुदामेता शिवं दृष्ट्वा गृहन्ताभिर्जगामद

शिवं सम्पूज्य शैलेन्द्रः प्रणम्य स्वगृहं ययौ । कृत्वातुमानं रहसि गिरीशो मेनया सह

दुर्गांप्रस्थापयामास शिवायशिवसन्निधिम् । पार्वतीसखिभिः साद्वैशं कृत्वामनोहरम्

भाषानुरक्ता हर्षेण जगाम शिवसन्निधिम् । दृष्ट्वा शिवा शिवं शान्तं प्रसन्नवदनेक्षणम्

सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा सस्मिता प्रणनाम सा । अनन्यभाजं गुणिनममरं शानिनां धरम् ॥

सुन्दरं लभ भर्तारं सुन्दरीत्याशिवं ददौ ।

भविता तव सौभाग्यं शुभे स्वामिनि सन्ततम् ॥ २८ ॥

पुत्रस्ते भविता साध्वि नारायणसमोगुणैः । भविता ते परा पूजा शैलोक्यजगदम्बिके

प्रह्लाण्डेषु च सर्वेषु सर्वेषाञ्च परा भय । सप्तप्रदक्षिणीकृत्य यतो भक्त्या त्वया नतम्

सप्तजन्मनि तुष्टोऽहं तन्फलं लभ सुन्दरि । तीर्थं कान्तेऽभीष्टदेवे गुरोर्मन्त्रे तथोपये

भास्या च यादृशी यासां सिद्धिस्तासाञ्च तादृशी ।

इत्युक्त्वा शङ्करस्तूर्णं प्रह्लाज्योतिः परञ्च माम् ॥ ३२ ॥

दधौ योगासनं कृत्वा योगीशो व्याघ्रवर्मणि ।

प्रह्लात्य चरणौ देवीं पपी सधरणोदकम् ॥ ३३ ॥

चकार भार्जनं भक्त्या घट्टिशोचेन पाससा । रहसिहासनं रम्यं विद्वक्कर्मादिनिर्मितम्

अपूर्वं कांस्यपात्रस्थं नैवेद्यं प्रददौ किल । अर्घ्यं मन्दाकिनीतोयसंयुक्तञ्चरणे ददौ ॥  
 सुगन्धिचन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । प्रददौ मालतीमालां गले गरलसुन्दरो ॥३६॥  
 भक्त्या पूजाञ्चकाराथ पुष्पवृष्टिञ्च तुष्टये । पीयूषं स्वर्णपात्रस्थं प्रददौ मधुरं मधु ॥  
 रत्नप्रदीपशतकं समन्ताद्भूपमुत्तमम् । त्रैलोक्यदुर्लभं वस्त्रं स्वर्णयज्ञोपवीतकम् ॥३७॥  
 सुगन्धि शीततोयञ्च पानार्थं पार्यती ददौ । अर्तव्य सुन्दरं रम्यं रत्नसारेन्द्रभूषणमा ॥३८॥  
 दुर्लभां कामधेनुञ्च स्वर्णशृङ्गसमन्विताम् । स्नानीयन्तीर्थतोयञ्च ताम्बूलञ्च मनोहरम् ॥

दत्त्वा षोडशोपचारं प्रणनाम पुनः पुनः ।

संपूज्य शूलिनं भक्त्या ययौ नित्यं पितुर्गृहम् ॥ ४१ ॥

शुभ्रावाप्सरसां वक्त्रादेवीमिन्द्रो महेश्वरः । धृत्या घातां शुनार्शीरो ननर्त्त हर्षसंयुतः  
 दूतद्वारा कामदेवमानिनाय त्वरान्वितः । इन्द्रागया कामदेवः प्रजगामामरावतीम् ॥४३॥  
 तूपं प्रस्थापयामास तञ्च यत्र शिवः शिवा । पञ्चसायकसंयुक्तो जगाम पञ्चसायकः ॥  
 प्रसन्नवदनं धीमान् यत्र शक्तियुतः शिवः । गत्वा ददर्श मदनः शिवायुक्तं शिवं विभुम्  
 शान्तं त्रैलोक्यकान्तञ्च प्रसन्नवदनेक्षणम् ।

कामः स्मितोऽन्तरीक्षे च धृत्या च सशरं धनुः ॥ ४६ ॥

विशेषाम्ब्रं दुर्निवार्यममोघं शङ्करे मुदा । वभूवामोघमस्त्रञ्च मोघन्तत्परमारमणि ॥  
 आकारा इव निर्लिप्ते निर्लिप्ते परमात्मनि । मोषीभूते च शस्त्रे च भयमाप च मन्मथः ॥  
 चक्रधेपुरतः स्थित्या दृष्ट्वा मृत्युत्रयंविभुम् । सस्मारत्रिदशान् कामःशकार्दीन्मयविह्वलः  
 धायदुर्द्वेषताः सर्वाः शम्भुकोपेन धेविनाः । वक्रः स्तुतिञ्च स्तोत्रेण शङ्करं त्रिदशोदयम्  
 षोषामिमुद्रिरन्तं तं कपाललोचनादहो । स्तुतिं कुर्यन्सु देयेषु न वक्रिः शम्भुमामय ॥  
 अज्यालोर्षवशिलो दानः प्रलयान्निशिषोपमः । उत्पत्य गगने धूर्गेन निगम्य घर्षणात्तले

धामं धामञ्च परितः पदात् मदनोपरि ॥ ५२ ॥

बभूव भस्मसात्कामः क्षणेन हरकोपतः । विवर्णा देवताः सर्वा भक्तवचनं च पार्यती ॥  
 पिल्लटाव बभूव हरस्य पुरतो रतिः । तुष्टुदुर्द्वेषताः सर्वाः कल्पिताधन्वरीणाम् ॥५३॥  
 रत्निभूषः सुतः सर्वे वदन्तुध मुष्टुमुहुः । किञ्चिद्भस्म शृङ्गया च रत्नं मालमयं त्यक्त ॥

घयं तं जीवयिष्यामो लभिष्यसि प्रियं पुनः । हरकोपापनयने सुप्रसन्ने दिने तथा ॥

दृष्ट्वा रतेर्विलापञ्च मूर्च्छां संप्राप पार्वती ।

अतीन्द्रियं गुणातीतं तुष्टाव चन्द्रशेखरम् ॥ ५७ ॥

रदन्तीं पार्वतीं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययौ शिवः ।

सद्यो बभूव तत्रैव पार्वतीदर्पमोक्षणम् ॥ ५८ ॥

रूपयौवनयोगं चैव तत्याज शैलकन्दका । मुखं दर्शयितुं लज्जा तद्भयभूव सखीगणे ॥ ५९ ॥

सुराश्च रतिमाश्वास्य सर्वे जग्मुः स्वमन्दिरम् । प्रणम्य दण्डवद्भुङ्क्षुः शोकादुद्धिग्ममानसाः

स्तुत्वा रुदित्वा शीघ्रेण भयेन कामकामिनो । कोपरक्लेक्षणं रुद्रं राधिके स्यालयं ययौ

न जगाम पितुर्गौहे पार्वती सा तु लज्जया ।

स्वालिमिर्वाप्यमाणापि जगाम तपसे वनम् ॥ ६२ ॥

प्रजग्मुः सहचारिण्यस्तत्पश्चाच्छोकविह्वलाः ।

मातृमिर्वाप्यमाणा सा स्वर्णदीतीरजं वनम् ॥ ६३ ॥

सुचिच्छ तपस्तप्या सा संप्राप त्रिलोचनम् । रतिः संप्राप मदनं शङ्करस्य घरेण च ॥

इत्येवं कथितं सर्वे पार्वतीदर्पमोक्षणम् । निगूढचरितं राधे किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीप्रहावैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णराधिकासंवादे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

## चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

### राधिकाकृष्णसंवादवर्णनम्

श्रीराधिका उवाच ।

अहो विचित्रं चरितमपूर्वं किं धृतं किमो । सुन्दरं धृतिपीयूषं निगूढं ज्ञानकारणम् ॥ १ ॥

न विशीवं समासञ्च धृतं न घ्यासमोप्सितम् ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि विस्तीर्णं कथय प्रभो ॥ २ ॥



किं किं तपः षडोरञ्च चकार पार्यती स्वयम् ।

कं कं परं वा संप्राप्य कथमाप महेश्वरम् ॥ ३ ॥

रतिः केन प्रकारेण जीषयामास मन्मथम् । पार्यतीशिवयोः कृष्ण विवाहं वर्णय  
तयो रहसि सम्मोगं पाणिनीयागमोचनम् ।

कथ्यतां कल्पसिन्धुः दुःखिनीदुःखमोचनम् ॥ ५ ॥

दम्पतीविरहोक्तिश्च कर्णञ्ज्वाला न योयितः । श्रोतुं कौतूहलं कृष्ण पुनःसम्मीलनं  
अग्निञ्ज्वाला पिपञ्ज्वाला क्षमाः सोदुञ्च योयितः ।

दम्पतीविरहञ्ज्वाला न श्रोतुञ्च क्षणं क्षमा ॥ ७ ॥

राधिकापचनं ध्रुत्वा विस्मितश्चकिताननः । विस्तीर्णं वक्तुमारेभे हृदयेन विदूयत  
दम्पतीविरहोक्तिञ्च या राधा श्रोतुमक्षमा । विच्छेदे शतवर्षीये किमस्या भवित  
इत्येवं मानसे कृत्वा मायेशो माययान्वितः । कृपासिन्धुश्च कृपया कथां कथितुं

श्रीकृष्ण उवाच ।

प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणयत्नुभे । प्राणाधिदेवि प्राणेशि प्राणाधारे मनो  
षट्मूलाद्गते ह्ये पार्यती तपसे ययी । पुनः पुनः स्वमात्रा च पित्रा च विनिवारि  
गत्या सा स्वर्णदीतीरं स्नात्वा त्रिपवर्णं मुदा । सन्देहे च मया दत्तं जज्ञापनं मनुं  
वर्षमेकञ्च सम्पूर्णमनाहारा स्वभक्तिः । तप्त्या तपः षडोरञ्च चकार जगदम्बिका ।

श्रीप्रे च परितो बहिं प्रज्वलन्तं दिवानिशम् ।

कृत्वा प्रतस्थौ तन्मध्ये सन्ततं जपती मनुम् ॥ १५ ॥

शश्वत् श्मशाने वर्षासु कृत्वा योगासनंशिवा । शिलां दृष्ट्वा च संसिक्ताबभूव जलघात  
शीते जलान्तरे शश्वत् प्रतस्थौ भक्तिपूर्वकम् । अनाहारा शस्त्रीद्वनीहारास्तु निशासु  
पवं कृत्वा परं वर्षमप्राप्य शङ्करं सती । शुचा कृत्वाग्निकुण्डञ्च प्रवेष्टुं सा समुद्यत  
तामग्निकुण्डं विशती तपसातिकृशां सतीम् ।

दृष्ट्वा शिवः कृपासिन्धुः कृपया तां जगाम ह ॥ १६ ॥

अतीव धामनो बालो विप्ररूपी स्वतेजसा । प्रज्वलन् मनसा हृष्टो दण्डी छत्रीजटाध

शुक्लयज्ञोपवीतो च शुक्लवासाश्च सस्मितः । श्वेताब्जपीजमालाश्च विभ्रत्तिलकमुग्ज्वलम्

निर्जने बालकं दृष्ट्वा स्निग्धा साति जगाद ह ।

तत्तेजसातिप्रच्छन्ना तत्याज च तपः स्वयम् ॥ २२ ॥

को भवानिति पप्रच्छ तं शिशुं पुरतः स्थितम् ।

मनसालिङ्गनं कर्तुमिच्छन्ती परमादमम् ॥ २३ ॥

ध्रुत्वा शैलसुताप्रश्नं प्रहस्य परमेश्वरः । उवाचातीव मधुरं कर्णपीयूषमीश्वरीम् ॥ २४ ॥

शङ्कर उवाच ।

इच्छागामी घटुरहं तपस्वी विप्रबालकः । का त्वं कान्तातिकान्तारे तपश्चरसि सुन्दरि

षद् कस्य कुले जाता कस्य कन्या च कामिधा ।

तपसः फलदात्री त्वं कस्माद्धेतोस्तपस्तव ॥ २६ ॥

अहा वा तपसां राशिः स्वयं मूर्तिमती सती ।

तपो वा लोकशिक्षार्थं करोषि कमलक्षणे ॥ २७ ॥

स्वयं तेजःस्वरूपा वा मूलप्रकृतिरीश्वरी । विधाय भक्तध्यानार्थं विग्रहं भारते जनुः ॥

किं वा त्रिलोकलक्ष्मीस्त्वं सम्पद्रूपा सनातनी ।

रक्षां विधातुं जगतामागता धातुरन्तिके ॥ २९ ॥

किंवाग्बिका त्वं देवानां स्वयं मूर्तिमती सती ।

साधित्री भारते जन्म स्वेच्छया लब्धुमागता ॥ ३० ॥

रागाधिष्ठातृदेवी घास्ययंसाक्षात् सरस्वती । सर्वविद्याः प्रकटित्तुं स्वेच्छया जन्मभारते

एतासु मध्ये का वा त्वं नाहं तर्कितुमीश्वरः ।

या सा भवति कल्याणि परितुष्टा च मां भव ॥ ३२ ॥

सति त्वयि प्रसन्नायां प्रसन्नः परमेश्वरः । पतिप्रतायां तुष्टायां तुष्टो नारायणः स्वयम्

तुष्टे नारायण देवे शश्यन्तुष्टं जगत्त्रयम् । तष्टमूलेषु सिकेषु शाखाः सित्ता यथा त्रिये

शिरोस्तद्वचनं ध्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी ।

उवाच धचनञ्चारु कर्णपीयूषमीश्वरी ॥ ३५ ॥

## पार्वत्युवाच ।

नाहं वेदप्रसूतं क्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवता । जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं शैलकन्यका ॥ ३६ ॥

पूर्वं जन्म दक्षगोहे सती शङ्करकामिनी । योगेन त्यक्तदेहाहं तातमर्तुं विमिन्दया ॥ ३७ ॥

अत्र जन्मनि पुण्येन संप्राप्ते शङ्करेद्विज । मां त्यक्त्वा भस्मसात् कृत्वा मन्मथं स जगामह

प्रयाते शङ्करे तापाद् व्रीडयाहं पितृगृहात् । अगमत्तपसे चित्तं ममेदं स्वर्णदीपटे ॥

तपः कृत्वा कठोरञ्च सुखिरं प्राणबल्लभम् । अप्राप्याग्निं प्रवेष्टुञ्च त्वांचन्द्राक्षुणं स्थिता

गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नीं प्रलयाम्निशिखोपमे ।

कृत्वा स्वकामनां विप्र हरप्राप्तिमनीषितम् ॥ ४१ ॥

यत्र यत्र जनुर्लब्ध्वा लभिष्यामि शिवं परम् ।

प्राणाधिकं प्रियं फान्तं विभुं जन्मनि जन्मनि ॥ ४२ ॥

सर्वां हि स्वप्रियं लब्धुं लभन्ति जन्म चाञ्छितम् ।

तज्जन्म पतिलाभायं सर्वासाञ्च धृता धृतम् ॥ ४३ ॥

प्राक्तनीयो हि यो भर्ता स तासां प्रतिजन्मनि ।

या स्त्री येषां सुनियता सा तेषां जन्मजन्मनि ॥ ४४ ॥

तद्दहमिह न प्राप्य कृत्वा धोरतरं तपः । कृत्वाग्निखण्डे काम्यञ्च लभिष्यामि परब्रतम्

इत्युक्त्वा पार्वती तत्र तत्पुत्रः प्रविवेश ह । निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः ॥

पद्भिर्प्रवेशं कुर्यन्त्याः पार्वत्याः परमेश्वरि । यभूय तपसा सद्यो पद्भिर्भग्नवदु भुषम् ॥

क्षणं तदन्तरे स्थित्वाघोत्पन्नतीं शिवां शिवः । पुनः पत्रच्छसहस्रा घृन्दाघनधिनोरिनि

श्रीमहादेश उवाच ।

महो तपस्ते किं भद्रे न युजं किञ्चिदेष हि ।

न हर्षो पद्भिना देहो न च प्राप्ता मनीषितः ॥ ४६ ॥

शिवं कल्याणरूपञ्च भर्तारं कर्तुमिच्छसि । अविप्रदं वसि कृत्वा किंवातेषाञ्छितं मयैव

संहर्तारञ्च भर्तारं पदिच्छसि शुचिर्मिते । कान्तमिच्छसि काषात्रीसर्पसंहारकारणम्

मोक्षं चाञ्छसि वेदेवि कृत्वाकान्तस्वरूपिणम् । सर्वमुक्तिप्रदा रवश्चतुष्पाद्विक्रान्तव

शिवश्च मङ्गले मोक्षे संहर्ता न च दृश्यते । शिवशब्दस्य चान्यार्थो न हि वेदे निरूपितः  
 तच्च संदारकर्तारं यदि चाञ्छसि सुन्दरि । लभिष्यसे रतं रुद्रं सर्वलोकभयङ्करम् । ५४।  
 न भविष्यति मोक्षस्ते स्वामीष्टं देवसेवनम् । हरिस्मृतिरमोघा च सर्वमङ्गलदा सदा ॥  
 शीघ्रं पितुर्गृहं गच्छ तत्र द्रक्ष्यसि शङ्करम् । प्रमाशिंगा स्यतपसां फलेन च सुदुर्लभम्  
 इत्युचया पार्वतीं विप्रस्तत्रैवान्तरधीयत । दुर्गा ययौ पितुर्गृहं महादेवेति वादिनी । ५७।  
 पार्वतीगमनं श्रुत्वा मेनका च हिमालयः । दिव्यं यानं पुरस्कृत्य प्रययौ हर्षविह्वलः ॥  
 संस्थाप्य मङ्गलघटान् राजवर्त्मनि राधिके । चन्दनागुदकस्तूरीफलशाखासमन्वितान् ॥  
 पट्टसूत्रसन्निवद्धरसालपल्लवान्धितैः । परितः परितो रम्भास्तम्भवृन्दसमन्वितैः ॥ ६० ॥  
 पतिपुत्रघती योपितृसमूहैर्दोषहस्तकैः । पूर्णैर्लाजाधान्यदूर्वाफलपुष्पसमन्वितैः ॥ ६१ ॥  
 सुपुण्यैर्ग्राहणैश्चापि मुनिभिर्ब्रह्मचारिभिः । नट्टीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्रैः परिशोभितैः ॥  
 पुरोहितैश्च संयुक्तैः कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम् । सुचारुमालतीमालाहस्तैः शस्तैः प्रशंसितैः ॥  
 नानाप्रकारघातैश्च शङ्खध्वनिसुनादितैः । सिन्दूररेणुभिश्चारुचन्दनद्रव्यपङ्कितम् ॥ ६४ ॥  
 प्रविश्य नगरं दुर्गां ददर्श पितरौ पुरः । सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षांशुपुलकान्वितौ । ६५।  
 प्रसन्नघटना देवी चालिभिः प्रजनाम तौ । संयुज्याथाशिंगन्तौ च चक्रतुस्ताञ्चयश्चसि  
 हे घटसे घटसेत्युच्चार्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ । तदा ताञ्च रथे कृत्वा जग्मतुर्निजमन्दिरम्  
 स्थिरयो निर्मञ्छनञ्चकुर्विषा युयुजुराशिंगम् । ब्राह्मणेभ्यश्च घन्दिभ्यः पर्यन्तेन्द्रो घनंदर्दौ

मङ्गलं कारयामास पाटयामास छान्दसम् ।

पयं स्वकन्यया सार्द्धं तस्थतुस्तौ स्वमन्दिरे ॥ ६६ ॥

सुपेन घसती तौ हि हर्षनिर्भरमावसौ ।

एकदा च तपः कर्तुं जगाम स्वर्णदं गिरिः ॥ ७० ॥

मेनका कन्यया सार्द्धमुवास प्राङ्गणे मुदा । पतस्मिन्नन्तरे मिश्रुर्नर्तकश्च सुगायनः ॥

सहस्रैक भाजगाम मेनकासन्निधि मुदा । शृङ्गवाचं धामहस्ते श्वमरं दक्षिणे तथा ॥

कृत्वा पिभूतिगात्रोऽतिवृद्धोऽतीघजरातुरः ।

पृष्ठकन्धो रक्तयासाः सुकण्ठोऽतिमनोहरः ॥ ७३ ॥

जगो मम गुणाख्यानं कृत्वा नृत्यं मनोहरम् ।

पाश्यामास भृङ्गञ्च क्षणं इमंलोकं तथा ॥ ७३ ॥

आजगमुनांगरा याला यालिका हर्षविह्वलाः ।

वृद्धा युवानो युवतीसमुदा वृद्धयोपितः ॥ ७४ ॥

श्रुत्वा तु सुन्दरं गीतं सुतानम्परसंयुतम् । सहसा मुमुहुः सर्वे तेन मूर्च्छामवाप्नुवन्

मूर्च्छां संप्राप सा दुर्गा ददर्श हृदि शङ्करम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्मधरं परम् ॥

विभूतिभूषणं रम्यमश्विमालां सुनिर्मलाम् । ईषडाम्यप्रसन्नान्मयं सुप्रसन्नं त्रिलोचनम्

मालादस्तं पञ्चवक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम् । धरं वृषियत्युक्तवन्तं सुन्दरं चन्द्रशेखरम् ॥

हृदयस्थं हरं दृष्ट्वा मनसा नं ननाम सा । धरं घञे मानसे सा त्वं पतिर्मे भवेति च ॥

एवं दत्त्वा शिवस्तस्यै चान्तर्धानञ्चकार सः । न दृष्ट्वा हृदि तं दुर्गा संप्राप्य चेतनां पुनः

ददर्श चक्षुस्माल्य मिश्रुकं गायकं पुरः । नृत्यसंगीततः सा तु मिश्रुकस्य च मेतका ॥

दातुं ययौ सा रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च ।

मिशां ययाचे मिश्रुस्तां दुर्गां नान्यां गृहीतवान् ॥ ८३ ॥

पुनश्च नर्तनं कर्तुमुद्यतः कौतुकेन च । मेता तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप विस्मयं ययौ ॥

मिश्रुकं भर्त्सयामास बहिःकर्तुमुवाच तम् । पत्नी त्रिलोकनाथस्य शिवस्यपरमात्मनः

याच्ञामिमां प्रकुर्वन्तं दूरं कुरु सुभाषिणम् ।

पतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा गिरिः स्वलयमाययौ ॥ ८६ ॥

ददर्श पुरतो मिश्रुं प्राङ्गणस्थं मनोहरम् । कृत्वा नारायणार्चाञ्च गङ्गातीरे मनोहरे ॥

तन्मूर्त्तिध्यानविश्लेषशोकादुद्विग्नमानसः । श्रुत्वा मेतामुवाह्वार्तां जहासच चुकोप सः

आज्ञां चकार स्वचरं बहिः कर्तुञ्च मिश्रुकम् । आकाशमिध दुःस्पर्शं प्रञ्चलन्तं स्वतेजसा

न शशाक बहिः फतुं समीपं गन्तुमक्षमः । ददर्श मिश्रुकं शैलः क्षणञ्चादवतुर्मुञ्जम् ॥

किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं परम् । सुचेरां सुन्दर्याममीपदास्यं मनोहरम् ॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं मक्कानुग्रहफातरम् । यद्यन् पुष्पं प्रदत्तञ्च पूजाकाले गदाभृते ॥९॥

शाश्वे शिरसि तत्सर्वं मिश्रुकस्य ददर्श ह । धूपः प्रदीपो यो दत्तो नैवेद्यं वा मनोहरम्

ददर्श शैलस्तत्सर्वं मिथुकस्य पुरःस्थितम् । क्षणं ददर्श द्विभुजं चिनोदमुरलीकरम् ॥  
 गोपवेशं किशोरञ्च सस्मितं श्यामसुन्दरम् । मयूरपिच्छचूडञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् ॥  
 चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं वनमालाविभूषितम् । क्षणं ददर्श स्वच्छञ्च शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥  
 त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माभ्वरं परम् । विभूतिगात्रममलमस्थिमालाविभूषितम् ॥६७॥  
 नागयज्ञोपवीतञ्च तप्तस्वर्णजटाधरम् । डमरुशृङ्गहस्तञ्च सुप्रशस्तं मनोहरम् ॥ ६८ ॥  
 प्रजपन्तं हरीर्नाम श्वेताब्जवोज्ज्वालया । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥६९॥

स्वतेजसा प्रज्वलन्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।

क्षणं ददर्श जगतां ऋष्टारञ्च चतुर्मुखम् ॥ १०० ॥

जपन्तं धीहरीर्नामस्वच्छ स्फटिकमालया ।

क्षणं सूर्यस्वरूपञ्च ददर्श त्रिगुणात्मकम् ॥ १०१ ॥

ददर्शातीवतीव्रं तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । क्षणमग्निस्वरूपञ्च ज्वलन्तमतितेजसा ॥१०२॥

क्षणमाहादजनकं चन्द्ररूपं ददर्श ह । क्षणं तेजःस्वरूपञ्च निराकारं निरञ्जनम् ॥१०३॥

निर्लितञ्च निरीहञ्च परमात्मस्वरूपिणम् । एवं स्वेच्छामयं दृष्ट्वा नानारूपधरं परम् ॥

हर्षाध्रुपुलकः शैलो दण्डयत् प्रणनाम तम् । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च पुनः पुनः

समुत्पत्य हर्षयुक्तो ददर्श पुनरेव तम् । वास्तवं मिथुकं दृष्ट्वा शैलेन्द्रोविष्णुमायया

विसस्मार च तत्सर्वं नानारूपधरं परम् ।

मिक्षां ययाचे मिथुस्तं मिक्षास्थालीस्वपार्श्वकम् ॥ १०७ ॥

रक्ताम्बरः शृङ्गवाद्यविचित्रडमरुः करे ।

आदातुमुत्सुको दुर्गां नाम्यां मिथुः कदाचन ॥ १०८ ॥

न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितो विष्णुमायया ।

मिथुः किञ्चिन्त जप्राह तत्रैवान्तरधीयत ॥ १०९ ॥

सदा यभूय ह्यतञ्च मेनकाशैलयोः प्रिये । अहो दृष्टो जगन्नाथ आवाभ्यां स्वप्नवद्दिने ॥

भावां शिष्यो घञ्जयित्वा स्वस्थानं गतवान् विभुः ।

तयोर्मक्ति शिष्ये दृष्ट्वा सर्वे देवाश्च चिन्तिताः ॥ १११ ॥

शक्रः शक्रायो युक्तिं सुमेतो रक्षणे मरान् ।

एकान्तमनया शैलश्चेत् कन्यां तस्मै प्रदास्यति ॥ ११२ ॥

धुवं निर्याणतोसद्यः संप्राप्तोत्येव भारते । अनन्तराधास्येत्पृथ्वीत्यतथाप्रयाण  
रत्तागर्माभिघा भूमेर्मिष्यैव भविता धुषम् । स्याद्वरत्थं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय  
कन्यां शूलभृतेदृश्या विष्णुलोकं गमिष्यति । नागयणम्यसारूप्यं भविष्यत्येव लील  
संप्राप्य पार्यदत्त्वञ्च हरिदासो भविष्यति ।

दशवापीसमा कन्या दीयते प्राप्तनाय ताम् ॥ ११६ ॥

वेदज्ञाय पवित्राय चाप्रतिग्रहशालिने । सन्ध्यायज्ञयेदपाटकारिणे सत्यवादिने ॥ ११७ ॥  
अस्मै प्रदत्ता कन्या च दशवापीफलप्रदा । त्रिसन्ध्याकारिणे सत्यवादिने गृहशालिने  
चेदज्ञाय सुविषाय दत्त्वा सुफलदायिनी । परदारगृहीताय याजकाय द्विजाय च  
शठाय सन्ध्याहीनाय चाप्यैकफलदा सुता । सर्वसन्ध्यास्वगायत्रोविहीनाय शठाय च  
चैश्योद्भवाय दत्ता या चाप्यर्द्धफलदा स्मृता । पापिने शूद्रजाताय विप्रश्चोद्भवाय च  
दत्ता चाण्डालतुल्याय कन्या सा नरकप्रदा ।

विष्णुभक्ताय विदुषे विषाय सत्यवादिने ॥ १२२ ॥

जितेन्द्रियाय दत्ता या विशद्वामीफलप्रदा । पट्टिर्पत्तत्राणि दिव्यरूपं विधाय च ॥ १२३ ॥  
एवम्भूताय दत्ता चेन् मोदते विष्णुमन्दिरे । दत्त्वा कन्यां सुशीलाञ्च हराय हरयेऽथवा  
नारायणस्वरूपञ्च भवेदेव श्रुतो श्रुतम् । विष्णुभक्तो यदा कन्यां ददाति विष्णुप्रीतये ॥  
स लभेद्दरिद्रास्यञ्च धुवं विप्रोद्भवाय च । श्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वाच मन्त्रणांप्रिये  
गुरुं प्रस्थापितुं जम्बुहिमालयगृहं प्रति । गत्वा प्रणम्यच गुरुं सर्वे चक्रुर्निवेदनम् ॥  
हिमालयगृहं गत्वा कुरु निन्द्राञ्च शूलिनः । पिनाकिनं विना दुर्गा धरं नान्यं परिष्यति  
अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं तूष्णं लभिष्यति । कालेन यातु शैलेन्द्रश्चेदानीं भुवितिष्ठतु  
अन्तरङ्गाधारञ्च त्वमेव रक्ष भारते । देवानां घवनं धृत्वा प्रददौ कर्णयोः कर्तुं ॥  
न स्वीचकार स्व गुरुः स्मरन्नारायणेति च । उषाद्य देववर्गांश्च संमत्स्यं च पुनः पुनः

वेदवेदान्तचिज्ञाता महाभक्तो हरीं हरे ॥ १३१ ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

थ्यतां मद्भवः सत्यं हे देवाः स्वार्थसाधकाः ।

नीतिसारञ्च वेदीकां परिणामसुखायहम् ॥ १३२ ॥

हरकेशवगोमर्कं ये च निन्दन्ति पापिनः । भूदेवान् ब्राह्मणांश्चैव स्वगुरुं च पतिव्रता ॥

पतिमिधुब्रह्मवारीसृष्टिवीजान् सुरांस्तथा ।

पच्यन्ते कालसूत्रे ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १३४ ॥

श्लेष्ममूत्रपुरीषेषु शरत्ते ते दिवानिशाम् । भक्षिता कीटनिकरैः शब्दं कुर्वन्ति कातराः ॥

ये निन्दन्ति च ब्रह्माणं स्रष्टारं जगतां गुरुम् ।

शिवं सुराणां प्रवरं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ १३६ ॥

गीताञ्च तुलसीं गङ्गां वेदांश्च वेदमातरम् । धृतं तपस्यां पूजाञ्च मन्त्रं मन्त्रप्रदं गुरुम् ॥

ते पच्यन्तेऽन्धकूपे वै वायुपोऽहं विधेरहो । भक्षिताःसर्वसङ्घैश्च शब्दं कुर्वन्तिसन्ततम्

ये निन्दन्ति हृषीकेशं देवसाम्यं विधाय च । विष्णुभक्तिप्रदञ्चैव पुराणञ्च श्रुतेः परम् ॥

राधान्तदङ्गतां गोपीब्राह्मणांश्च सदाबिताम् । ते पच्यन्ते घटे देवा विधानुरायुषा समम्

अधोमुखा उदुर्ध्वजंघाः सर्पसङ्घैश्च वेष्टिताः । भक्षिता विकृताकारैः कीटैः सर्पसमाकृतैः

अतीपकातरामीताःशब्दं कुर्वन्ति सन्ततम् । श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि धुवं भक्षन्तिशोभिताः

उल्कां ददति हृष्टाश्च सन्मुषे यमकिङ्कराः ।

त्रिसन्ध्यन्तर्जमं कृत्वा कुर्वन्ति दण्डताडनम् ॥ १४३ ॥

कुर्वन्ति मूत्रपानञ्च प्रहारैस्तृपितान् मिया । तदा कल्पान्तरे स्रष्टुं सृष्टिञ्च प्रथमे पुनः ॥

तेषां भवेन् प्रतीकार इत्याह कमलोद्भव ॥ १४५ ॥

कृत्वा हि शिवनिन्दाञ्च यास्यन्ति नरकं सुराः ।

इममेयोपकारञ्च कर्तुमिच्छथ पुत्रकाः ॥ १४६ ॥

ब्रह्मणा प्रेरितो दक्षो इत्त्वा शूलभृते सुताम् । न पापं परमेश्वर्यं संप्राप हरनिन्दकः ॥

अनिच्छया सुतांदत्त्वा तुर्व्यपुण्यं ललाभ सः । अहो विहायसारूप्यं तुच्छंसर्गललाभसः

कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गत्वा शैलशृङ्गे सुराः । सम्पादयत स्वमतं शैलेन्द्रस्य प्रयत्नतः ॥



अनिच्छया सुतांदस्वा सुखंतिष्ठतु भारते । तस्मै भक्त्या सुतांदस्वामोक्षं प्राप्स्यति निश्चितम् ॥  
 पश्चात्सप्तर्षयः सर्वे गृहीत्वा तामकथतोम् । ध्रुवं तस्य गृह्णत्वा यो धयिष्यन्ति पर्वतम् ॥  
 चिना पिनाकिनं दुर्गा घरं नान्यं धरिष्यति । अनिच्छया सुतां तस्मै प्रदास्यति सुताह्वया  
 इत्येवं कथितं सर्वं देवा गच्छन्तु मन्दिरम् ।

इत्युत्तया षाक्पतिः शीघ्रं तपसे स्वर्णं दीङ्गतः ॥ १५३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 राधिकाकृष्णसंवादे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

## एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

देवब्रह्मसंवादवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

तदा देवाः समान्योच्य जग्मुस्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् । सर्वे निवेद्यामासुर्ग्रहाणं जगतां प  
 देवा ऊचुः ।

ततः सृष्टौ जगत्स्रष्टा रक्षाधारो हिमालयः । स चेत्प्राप्स्यति मोक्षञ्च रक्षामर्मा कुतो ।  
 सुतां शृणुभूने दस्वा भक्त्या शीतेभ्वरः स्वयम् । नारायणस्य सारूप्यं संप्राप्स्यति न सर्व  
 त्यं तस्य निन्दनं कृत्वा विमतिं प्रतिगदय । स्वयायिना क्षमो नान्यो गच्छ शीलगृहं प्र  
 देवानां वचनं ध्रुवा तानुपाय विधिः स्वयम् । वचनं नीतिसारञ्च कर्णवीर्यमुत्तमम्  
 ब्रह्मोवाच ।

माहं कर्णु क्षमो यन्साः शिपनिन्दो मुदुष्कृतम् । सम्यग्जिनाशरूपाश्च विपदोपीत्रकृपिणी  
 भूनेशं प्रस्थापयत स्वात्मनिन्दो करोतु तः । परनिन्दायिनाशाय स्वनिन्दा यशसंपर

ब्रह्मणा वचनं ध्रुवा तं प्रणम्य सुराः प्रिये ।

शीघ्रं वयुन्ने बैलासं गन्वा च मुष्टुः शिवम् ॥ ८ ॥

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ] \* विप्ररूपेण शिवस्य हिमालयसमीपे गमनम् \* ८०१

सर्वे निवेद्यामासुः शङ्करं करुणालयम् । स ययो शैलमूलञ्च तानाश्वास्य प्रहस्य च ॥  
देवा मुमुक्षुरै सर्वे शीघ्रं गत्या स्वमन्दिरम् । इष्टसिद्धिर्भवे शश्वदसिद्धिर्दुःखवर्द्धिनी ॥  
अथ शैलः समामध्ये समुचास मुदान्वितः । बन्धुवर्गैः परिवृतः पार्वतीसहितः स्वयम् ।  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्ररूपी शिवः स्वयम् । समाजगाम सहसा प्रसन्नवदनेक्षणः ॥

दण्डी छत्री दीर्घवासा विभ्रत्तिलकमुत्तमम् ।

करे स्फटिकमालाञ्च शालग्रामं गले दधत् ॥ १३ ॥

तञ्च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणश्च हिमालयः । ननाम दण्डवद्भूमौ भक्त्याऽतिधिमपूर्वकम्  
ननाम पार्वती भक्त्या प्राणेशं विप्ररूपिणम् ।

व्राशिपं मुमुजे विप्रः सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम् ॥ १५ ॥

शैलदत्तासने शीघ्रमुचास ब्राह्मणः स्वयम् । मधुपर्कादिकं सर्वं जप्राह प्रीतिपूर्वकम् ॥  
पप्रच्छ कुशलं शैलो ब्राह्मणं को भवानिति । उवाच सर्वं विप्रेन्द्रो गिरीन्द्रं सादरेण च  
ब्राह्मण उवाच ।

घाटिकां वृत्तिमाश्रित्य भ्रमामि धरणीतले । मनोयायी सर्वगामी सर्वज्ञोऽहं गुरोर्वरात्  
मया ज्ञातं शङ्कराय सुतां दातुं त्वमिच्छसि । इमां पशासमां दिव्यामज्ञातकुलशीलिने ॥  
तिराश्रयायासद्गायारूपाय निर्गुणाय च । श्मशानगामिने सर्वभूतनाथाय योगिने ॥२०  
दिग्वाससेऽहिगात्राय विभूतिभूषणाय च । व्यालप्राहिस्वरूपाय फालव्यायादयाय च  
अज्ञातमृत्यवेऽज्ञायानायायावन्धवे भवे । ततस्वर्णजटाभात्धारिणे निर्व्यनाय च ॥ २२ ॥  
अज्ञातवयसेऽतीवबृद्धाय चाधिकारिणे । सर्वाश्रयाय भ्रमिणे नागदाराय भिक्षवे ॥  
नियोध ज्ञानिनां ध्रेष्ठं नारायणकुलोद्भवम् । स ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदातृकर्मणि ॥  
महाजतः स्मेरमुखः धृतिप्राप्राङ्गविष्यति । लक्षशैलाधिपस्त्वञ्च न तस्यैकोऽस्तितान्धयः  
यान्धयान् सैनकां प्रदन्तुकु शीघ्रं प्रयत्नतः । सर्वान् पप्रच्छ यत्नेन हे बन्धो पार्वतीविना  
रोगिणे नौपधं शद्वत्कुपय्यं रोचते सदा ।

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शीघ्रं स्नात्वा भुक्त्वा मुदान्वितः ।

जगाम स्थालयं शान्तो धृन्दावनपितोदिनि ॥ २७ ॥

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम् । शोकेन साश्रुनयना हृदयेन विदूयता ॥

मेनकोवाच ।

शृणु शैलेन्द्र मद्वाक् परिणामसुखावहम् । पृच्छ शैलवरानस्मै न दास्यामि सुतामहम् ॥

त्यश्यामि सर्वान्विषयान् भक्ष्यामि विषमेव च ।

गले बध्वाभ्रिकां पश्य यास्यामि घोरकाननम् ॥ ३० ॥

गृहीत्वा पार्वतीमेता गत्वा कोपालयं रया । त्यक्त्वाऽऽहारं रुन्ती च चकार शयनं भुवि ॥

पतस्मिन्नन्तरे तत्र वशिष्ठो ब्राह्मिः सह । आजगाम पुनस्तैश्च युक्ता पश्चादरुन्धती ॥

प्रणम्य शैलस्तान् सर्वान् स्वर्णसिंहासनंददौ । दत्त्वा षोडशोपचारं पूजयामासमकितः ॥

ऋषयश्च सभामध्ये सुखमूपुः सुखासने । जगामारुन्धती तूर्णं यत्र मेता च पार्वती ॥ ३४ ॥

गत्वा ददर्श मेताञ्च शयानां शोकमूर्च्छिताम् ।

उवाच मधुरं साध्वी सावघातां हितं वचः ॥ ३५ ॥

अरुन्धत्युवाच ।

उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्यद्गृहेऽहमरुन्धती ।

पितृणां मानसीं कन्यां मां जानाहि विधेर्वधूम् ॥ ३६ ॥

अरुन्धत्याः स्वरश्रुत्या शीघ्रमुत्थाय मेनका । उवाच शिरसा नत्वा तां पद्यामिपतेजस ॥

मेनकोवाच ।

अदोऽद्य किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम् । पभूर्जंगद्विधेः पत्नी पशिष्ठस्य ममालं ॥

साम्प्रमेणैदमेपांतं गृहं तेऽहञ्च किन्दूरी । ईदृसी जगतां म्रपुरागता यद्गुण्यतः ॥ ३९ ॥

पापं दत्त्वा स्वर्णपिष्टे पासयामास तां सर्नाम् ।

भोजयामास मिष्टान्नं शुभुजे कन्यया सह ॥ ४० ॥

शिवस्य हेनोनीतिञ्च बोधयामास मेनकाम् । अरुन्धतीं प्रसङ्गेन सावन्धवोजनानि च ॥

अथ शैलशृंगान्द्राघः शीतिसारं परं वचः । बोधयामासुः सम्बन्धवोजनानि प्रसङ्गेन ॥

शरण्य ऊतुः ।

शैलेन्द्र धूयतां वाक्पदमन्माकं शुभकारणम् । शिवाय पार्वतीं देहि संदुर्गं स्वगुरो मय ।

चितारं देवेशं बोधयाशु प्रयत्नतः । तव शङ्काविनाशाय ब्रह्मा सम्वन्धकर्मणि ॥४४  
 लुको दारसंयोगे शङ्करो योगिनां वरः । विप्रेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां ग्रहीष्यति  
 हेतुस्ते तपस्यान्ते प्रतिज्ञानं वकार सः । हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहञ्च करिष्यति ॥  
 गीणां घचनं ध्रुत्वा प्रहस्य च हिमालयः । उवाच किञ्चिद्गीतञ्च परं चिनयपूर्णकम् ॥  
 हिमालय उवाच ।

शिवस्य राजसामग्रीं न हि पश्यामि काञ्चन ।

किञ्चिदाश्रममैश्वर्यं किं वा स्वजनबान्धवम् ॥ ४८ ॥

कन्यामतिनिर्लिप्तयोगिने दातुमर्हति । सूर्यं विधातुःपुत्राश्च सत्यं घदत निश्चितम् ॥  
 नुरुपाय पुत्राय पिता कन्यां ददातिचेत् । कामाहोमाद्भयान्मोहाच्छताब्दं नरकं व्रजेत्  
 हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणिने । यद्विधानं भवेद्योग्यमृपयस्तद्विधीयताम्  
 हिमालयवचः ध्रुत्वा पशिष्ठो विधितन्दनः । वेदवेदाङ्गविज्ञाता वेदोक्तं षक्तुमुद्यतः ॥ ५२  
 पशिष्ठ उवाच ।

चतनं त्रिविधं शैल लीकिके वैदिके तथा । सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानवश्रुषा ॥  
 असत्यमहितं पश्चात् साम्प्रतं धृतिसुन्दरम् । सुबुद्धं शत्रुर्घदति न हितञ्च कदाचन ॥५४  
 आपातप्रीतिजनकं परिणामतुखावहम् । दयालुर्धर्मशीलश्च बोधयत्येव बान्धवम् ॥५५॥

धृतिमात्रात् सुधातुल्यं सर्वकाले सुखावहम् ।

सत्यसत्तारं हितकरं षडसतां श्रेष्ठमीप्सितम् ॥ ५३ ॥

एवञ्च त्रिविधं शैल नीतिशास्त्रनिरूपितम् ।

करुणतां त्रिषु मध्ये किं वदामि वाञ्छनीप्सितम् ॥ ५७ ॥

बाह्यसम्पद्धिहीनश्च शङ्करस्त्रिदशेश्वरः । तत्त्वज्ञानसमुदेषु संनिगमनैकमानसः ॥ ५८ ॥  
 आपातममसम्पत्तिर्विद्युच्छ्रीरिव नाशिनी ।

सदानन्दस्येश्वरस्य स्वात्मारामस्य वा स्पृहा ॥ ५६ ॥

गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने ।

कन्यां विद्विषिणो दत्त्वा कन्याघातो भवेत् पिता ॥ ६० ॥

फो घदेच्छङ्करो दुःखी कुबेरो यस्यकिङ्करो । भूमङ्गलीलया सृष्टिं स्रष्टुं नष्टुं क्षमो हि न  
निर्गुणः परमात्मा च य ईशः प्रकृतैः परः । सर्वेशः स च निर्लिप्तो लिप्तश्च सर्वजन्तुषु ।

स एकः सृष्टिसंहारे स सर्वः सृष्टिकर्मणि ।

निराकारश्च साकारो विभुः स्वेच्छामयः स्वयम् ॥ ६३ ॥

य ईशस्त्रिविधां मूर्तिं विधत्ते सृष्टिकर्मणि ।

सृष्टिस्थित्यन्तजननीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ ६४ ॥

ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासहृत् ।

शिवः कैलासवासी च सर्वाः कृष्णविभूतयः ॥ ६५ ॥

श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्व  
तस्य देवस्य तंशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । केचिद्देवाः कलास्तस्य कलांशाश्चैव के  
कृष्णः सृष्ट्युन्मुखश्चापि प्रकृतिं तत्र निर्गमे । निर्माय ताञ्च तयोर्नो पीर्याधानञ्चका  
ततो डिम्भः समुद्रभूतस्तन्मध्ये च महाविराट् ।

महाविष्णुः स विज्ञेयो श्रीकृष्णः योङ्गशांशकः ॥ ६६ ॥

नाभिपद्मोद्भवो ब्रह्मा तस्यैव जलशायिनः । मालोद्भवस्तस्य स्रष्टुः शङ्करश्चन्द्रशेखरः  
महाविष्णोर्धामपार्श्वात्संभूतो विष्णुरेव च । सर्वे प्राकृतिकाः शैल ब्रह्मविष्णुशिवाश्च  
धत्ते चतुर्विधां मूर्तिं प्रकृतिः कृष्णसंभवा । अंशेन लीलया सृष्ट्यै कलया बहुधा त्व  
कृष्णवामाङ्गसंभूता राधा रासेश्वरीस्वयम् । मुक्ताद्भवा स्वयं घाणी रागाधिष्ठातृदेव  
वक्षःस्थलोद्भवाः लक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ।

शिवा तेजःसु देवानामाविर्भावं चकार सा ॥ ७४ ॥

निहत्य दानवान् सर्वान् देवेभ्यश्च श्रियंद्दौ । प्राप्य कल्पान्तरे जन्म जठरी दक्षयोपित्त  
नाम्नासतीशिवं प्रापदक्षस्तरुमैर्ददौ च ताम् । योगेनदेहं तत्याजभृत्या सा भर्तृ निन्दन्तम्  
पितृणां मानसी कन्या मेनका तव गेहिनी । ललाभ तस्या जठरी जन्म सा जगदम्बिका

शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल जन्मनि जन्मनि ।

कल्पे कल्पे युद्धिरूपा हानिनां जननीपरा ॥ ७८ ॥

जातिस्मरा च सर्वज्ञा सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी ।

अस्या अस्थि चितामस्म भवत्या धत्ते शिवः स्वयम् ॥ ७६ ॥

देहि त्वं स्वेच्छया कन्यां देहि भद्र शिवाय च ।

अथवा सा स्वयं कान्तस्थानं यास्यति द्रक्ष्यति ॥ ८० ॥

मास्तनाद्यस्य या कान्तासा तं प्राप्नोतिवल्लभम् । प्रजापतेर्नियन्धञ्जन कोऽपिखण्डितुंक्षमः  
पिपाहेनोत्सुकःशम्भुःस्यात्मारामधृतस्वपित् । तुष्टुवुस्तंसुराःसर्वैतारकाख्येनपीडिताः  
देवानां पीडनं दृष्ट्या प्रद्वेषा प्रार्थितो विभुः । कृपया स्वीचकाराशु कृपालुदेवसंसदि  
दृष्ट्वाप्रतिज्ञायोगीन्द्रोदृष्ट्याङ्गेशमसंख्यकम् । दुहितुस्तेतपःस्थानमाजगामद्विजात्मकः

साम्राज्यास्य धरं दत्त्वा जगाम निजमन्दिरम् ।

तच्छ्रुत्स्वैवाययुः सर्वे सुराः शकादयो मुदा ॥ ८५ ॥

नारायणश्च भगवान् प्रह्ला धर्मश्च सांप्रतम् । शृण्वो मुनयः सर्वे गन्धर्वा यक्षराक्षसाः  
तत्र सर्वे मुदा युक्तैः समालोचनकर्तृभिः । प्रन्यापिता धरं शीघ्रमनूषा सा भरुधती  
तप प्रबोधने प्रीतिर्यद्भने भदती सदा । मंत्रासगुभकाप्यंश्च सर्वकालमुखायदम् ॥ ८८ ॥

शिवां शिवाय शैलेन्द्र स्वेच्छया चेन्न दास्यसि ।

भविता वा विवाहश्च भवितव्ययत्नेन च ॥ ८६ ॥

भागमिष्यति देवो यो नारायणसहायवान् । रत्नसाररथे वृत्त्वा देवानां प्रवरं धरम् ॥  
योगीन्द्राणां घरेण्यं तं धान्तिनाञ्च गुरोर्गुरुम् । आदिमध्यान्तरदितमविकारमत्रं परम्  
धरं ददौ शिवाय स शिवश्च तपसः स्यने । मदीभ्यरप्रतिज्ञानं दुर्लभं विरलं भवेत् ॥  
प्रादादिस्तम्यपर्यन्तं सर्वं तत्रयमस्थिरम् । अहो प्रतिजा दुर्लभ्या साधूनामधिनाशिनी

एको महेन्द्रः शैलानां पशान् चिच्छेद् शीलया ।

पथनो शीलया मरौः शृङ्गमङ्गं सकार ह ॥ १४ ॥

के वा शैलेषु योऽज्ञाः सुरैः सह हिमालय । पतिष्यन्ति समुद्रेषु पथनैः प्रेरिताः क्षणान्  
एकार्षे यदि शैलेन्द्र सर्वसम्पटिनरपति । सर्वांश्च रक्षति तद्दस्या विना च शरणागतम्  
शरणागतसार्क्षार्थं प्राजाश्च दानुमर्दति । पुत्रदारधनं सर्वांनिजि नीतिविदो विदुः ॥९३॥

दत्त्वा विप्राय श्वसुतामनारण्यो नृपेश्वरः । ब्रह्मशापादिमुक्तश्च ररक्ष सर्वसम्पत्  
तमाशु घोभ्रगामासुर्नीतिशास्त्रपिदो जनाः ।

ब्रह्मशापनिमग्नश्च ब्रह्मण्यमतिकानरम् ॥ १६ ॥

तममेव शैलराजेन्द्र सुतां दत्त्वा शिष्याय च । रक्ष सर्धान् बन्धुघर्षान् घरो कुर्व सुत  
घशिष्टस्य पचः धृत्त्वा प्रहस्य पर्यतेश्वरः । पप्रच्छ नृपयुक्तान्तं हृदयेन विदूयताः ।  
हिमालय उवाच ।

कस्य षंशोद्गधो ब्रह्मन्ननारण्यो नृपेश्वरः । सुतां दत्त्वा स च कथमरक्षन् सर्वसम्प  
पशिष्ट उवाच ।

मनुषंशोद्गधो राजा सोऽनारण्यो नृपेश्वरः । चिरजीवी धर्मशीलो वीर्यवो विजितेन्द्रि  
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं ब्रह्मपुत्रोऽतिधार्मिकः । राज्यं चकार धर्मेण युगानामेकसप्तति  
ततो जगाम वीकुण्ठं सहितः शतरूपया ।

संप्राप्य दास्यं सान्निध्यं हरेर्दासो बभूव ह ॥ १०५ ॥

मनुर्वभूव तपश्चात् स्वयं स्वारोचिषो महान् । स्वारोचिषे गते शैल बभूव मनुर्दण  
उत्तमे निर्गते धर्मो तामसो मनुरेव च । ततो मनुर्वभूवात्र रैघतो ज्ञानिनां घरः ॥१०६॥  
चाक्षुषश्च ततो शैयः धाद्देवश्च सप्तमः । सावर्णिरष्टमो ज्ञेयः श्रीसूर्य्यतनयो महान् ।

चैत्रवंशोद्गधो राजा पुराऽऽसीत् सुर्य्यो भुवि ।

नयमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिको दश ॥ १०६ ॥

एकादश मनुश्चेष्टोऽधर्मसावर्णिश्च्यते । ततश्च र्द्रसावर्णिषिष्णुमक्तो जितेन्द्रियः ।  
तत्परो देवसावर्णिरिन्द्रसावर्णिकस्ततः । इत्येवं कथितं बन्धो मनवश्च चतुर्दश ॥१११॥  
पतेषु समतीतेषु बभूव ब्रह्मणो दिनम् । इन्द्रसावर्णिवृत्तान्तं सर्वं मत्तो निशामय ॥  
मनूनां प्रघरो धर्मो शुद्धमक्तो गदाभृतः । चकार राज्यं धर्मेण युगानामेकसप्ततिम् ॥

राज्यं दत्त्वा सुरेन्द्राय जगाम तपसे वनम् ।

सुरेन्द्रस्य सुतः श्रीमान् धीनिकेतुर्महाबलः ॥ ११४ ॥

तस्य पुत्रो महायोगी पुरीपतहरेष च । तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गोकामुल इति स्मृतः

वृद्धधाः सुतस्तस्य तत्पुत्रो भानुरेव च । पुण्डरीकः सुनस्तस्य तत्पुत्रोजिह्वलस्तथा  
जिह्वलस्यसुतः शृङ्गी तत्पुत्रो भीमपत्न्य च । तत्पुत्रोऽपि यशधन्द्रो यथासाचशशीजितः  
तत्कर्त्तिनिर्मलां सन्ती गायन्ति सन्ततंसुराः । तस्य पुत्रो धरेण्यश्च पुरारण्यश्चतत्सुतः  
तत्पुत्रो धार्मिकः श्रीमान् धरारण्यश्च पत्न्य च ।

तत्पुत्रो मङ्गलारण्यस्तपस्यां क्षानिनां धरः ॥ ११६ ॥

अपुत्रको नृपधेष्टस्तपसे पुष्करं गतः । सुविद्वञ्च तपस्तप्त्वा परं लब्ध्वा महेश्वरान् ॥  
संप्राप्य घैष्णवं पुत्रमनारण्यं जिनेन्द्रियम् । इत्था तस्मै च राज्यञ्च जगाम तपसेचनम्  
अनारण्यो नृपधेष्टः सप्तर्षीपमहीपतिः । चकार यद्दशतकं भृगुणा च पुरोधसा ॥ १२२ ॥  
तुच्छंमत्यागु शत्रुत्वं न लेभेनर्धरंसुधीः । लीलया च जितःशकोर्लीलया च जितोयष्टिः  
जिताश्च दानधेन्द्रा घै ज्वलता स्वेन तेजसा । यभूयुः शतपुत्राश्च राक्षस्तस्य हिमालय ॥  
कन्यैका सुन्दरी रम्या पद्मा पद्मालयासमा ।

सा कन्या पौचनस्या च यभूय पितृमन्दिरे ॥ १२५ ॥

व्यारं प्रस्थापयामास वराय नृपतीश्वरः ॥ १२६ ॥

एकदा पिप्पलादश्च गन्तुं स्याग्रममुत्सुकः । तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ह ॥  
स्त्रीषु निमग्नचित्तञ्च शृङ्गापरससागरे । कामादतीवमत्तञ्च न जानन्तं दिवानिशम् ॥  
दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामश्च यभूय ह ।

ततः सुभद्रचित्तः सन् विन्तयन् क्षारसंग्रहम् ॥ १२६ ॥

एकदा पुष्पमद्रायां क्षातुं गच्छन् मुनीश्वरः । ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम्  
केयं कन्येति पप्रच्छ समीपस्थान् जनान् मुनिः । जना निवेदनञ्चक्रुःपद्मानाराण्यकन्यका  
मुनिः स्नात्वाभीष्टदेवं सम्पूज्य राधिकेश्वरम् ।

जगामःकामी मिक्षार्थंमनारण्यसभां गिरे ॥ १३२ ॥

राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनामभयाकुलः । मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तिः  
कामात्सर्वं शृष्टीत्या च ययाचे कन्यको मुनिः । मौनी यभूय नृपतिःकिञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः  
मुनिः पुनर्ययाचे तं कन्धां देहीति मे नृप । अथवा भस्मसात्सर्वं करिष्यामि क्षणेन च



सर्वे बभूवुरच्छन्ना गणाश्च तेजसा मुनेः ।  
रुरोद राजा सगणो हृष्ट्या वृद्धं जगत्तु  
महिष्यो रुद्धुः सर्वा इति कर्तव्यमक्षमाः ।

मूर्च्छां प्राप महाराज्ञी कन्यामाता शुचाकुला ॥ १३७ ॥

पण्डितो नीतिशास्त्रज्ञो बोधयामास भूपतिम् ।

महिषोञ्च नृपसुतान् कन्यकां नीतिमुत्तमाम् ॥ १३८ ॥

अथ घापि दिनान्ते घा दातव्या कन्यकानृप । पराय विप्रादन्यस्मै कस्मै वा दातुमर्हति  
सत्पात्रं ब्राह्मणादन्य न पश्यामि जगत्त्रये । सुतां दत्त्वा च मुनये रक्षस्व सर्वसम्पद  
राजकन्यानिमित्तेन सर्वसम्पत् प्रणश्यति । सर्वं रक्षति तत्त्यक्त्वा विना तं शरणागतम्  
राजा प्राज्ञवचःश्रुत्या विलप्य च मुहुर्मुहुः। कन्यां सालङ्कृतां हृष्ट्या मुनोन्द्रायददीकित

कान्तां गृहीत्या स मुनिर्मुदितः स्वालयं ययौ ।

राजा सर्वान् परित्यज्य जगाम तपसे शुचा ॥ १४३ ॥

मर्तुंश्च दुहितुः शोकात् प्राणांस्तथ्याज सुन्दरी ।

पुत्राः पौत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छां प्रापुर्नृपं विना ॥ १४४ ॥

अनारण्यस्तपस्तप्त्या चिन्तयन् राधिकेश्वरम् । गोलोकनार्यसंसेव्यगोलोकश्च जगाम ह  
बभूव कीर्तिमान् राजा उपेष्टपुत्रो नृपस्य च । पुत्रयन् पालयामास प्रजाः सर्वांमहीनये  
इति श्रोत्रप्रवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डेऽ-  
नारण्यकन्यकोपाख्यानं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अनारण्यकन्यकोपाख्यानम्

अष्टादशोऽध्यायः ।

११. सिधेदे भक्तिनो मुनिन् । कर्मनामरतावाद्या कश्मीर्नारायणयथा

एकदा स्वर्णदीं स्नातुं गच्छन्तीं सस्मितो सतीम् ।

ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपलिङ्गकः ॥ २ ॥

चाक्षत्ररथस्थश्च रत्नालङ्कारभूषितः । नवीनयौवनः श्रीमान् कामदेवसमप्रभः ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा तां सुन्दरींरम्यामुवाच माययाविभुः । विज्ञातुमन्तस्तत्त्वञ्च तस्याश्च मुनियोषितः

धर्म उवाच ।

अयि सुन्दरि लक्ष्मीश्च राजयोग्ये मनोहरं । अतीवयौवनस्थे च कामिनि स्थिरयौवने ॥

जरातुरस्य वृद्धस्य समीपे त्वं न राजसे । चन्दनगुरुसंलिप्ता राजसे राजवक्षसि ॥ ६ ॥

विप्रं तपःसु निरतं सत्यज्ञं मरणोन्मुखम् । विहाय पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मरातुरम् ॥

प्राप्नोति सुन्दरं पुण्यात् सौन्दर्यं पूर्वजन्मतः । सफलं तद्द्वेषेत्सर्वं रसिकालिङ्गनेन च

सहस्रसुन्दरोकान्तं कामशास्त्रविशारदम् ।

किङ्कुरं कुरु मां कान्ते परित्यक्ष्यामि ता अपि ॥ ६ ॥

निर्जने निर्जने रम्ये शैले शैले नदे नदे । पुष्पोद्याने पुष्पिते च सुगन्धिपुष्पवायुना ॥ १० ॥

मलये चन्दनारण्ये चारुचन्दनवायुना । विहरिष्यामि कामेन कामिन्या च त्वया सह ॥

कामज्वरेण दग्धायाः शान्तिं कर्तुमहं क्षमः । विहरस्व मया साङ्गं जन्मेदं सफलं कुरु

इत्येवमुक्तवन्तं तं स्वरथादचरह्य च । गृहीतुमुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता ॥ १३ ॥

पप्रोवाच ।

दूरं गच्छ गच्छ दूरं पापिष्ठ भूमिपाधम । मां चेत्पश्यसिकामेन सद्यो भस्मभविष्यसि

पिष्पलाद् मुनिघ्रेष्ठं तपसा पूतविप्रहम् । विहाय त्वां भजिष्यामिस्त्रीजितं रतिलम्पटम्

स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति ।

न भूमौ पातकी पापात् पापिनां स्त्रीजितात्परः ॥ १६ ॥

मां मातरञ्च स्त्रीभावं कृत्वा येन ब्रवीषि च । भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः

श्रुत्वा धर्मः सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च । धृत्वा स्वमूर्तिं देवेशःकम्पमान उवाच ताम्

धर्म उवाच ।

मातर्जानीहि मां धर्मं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुम् । परस्त्रीमातृबुद्धिञ्च कुर्वन्तं सन्ततं सति ॥

अहं त्वान्तर्विप्रानुमागतस्तत्र सप्रिधिम् । गुण्याकञ्च मनो याने तथापि देवबोधिः ।

एतं मे दमनं साधिय न विन्दं यथोचितम् ।

शाम्निः समुत्पद्यमानामीश्वरेण विनिर्मिता ॥ २१ ॥

धर्मं धर्मं विप्रान्तु कालं कलयितुं क्षमः । विधातारं संविद्यातुं तस्मै कृष्णाय ते नमः ।  
संहतुं यःक्षमकाले संहतारं भयं विभुः । स्रष्टारं स्वीलया स्रष्टुं तस्मै कृष्णाय ते नमः ।  
शत्रुं विधातुं मित्रञ्च सुधीति कलहं क्षमः । स्रष्टुं नष्टुं तदेषञ्च तस्मै कृष्णाय ते नमः ।  
शापं प्रदातुं सर्पाश्च सुगन्धुःपयराजं क्षमः । सम्यद् विपद्ं यो हि तस्मै कृष्णाय ते नमः ।  
प्रकृतिनिर्मिता येन महाविष्णुश्च निर्मितः ।

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यान्तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥ २६ ॥

येन शुद्धीकृतं क्षीरं जलं शीतं एतं पुरा । दाहीकृतो दुताशश्च तस्मै कृष्णाय ते नमः ।  
अतितेजःसमुत्थाय तेजोरूपाय मूर्तये । गुणध्रेष्ठनिर्गुणाय तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२८॥  
सर्वस्मै सर्वधीजाय सर्वेषामन्तरात्मने । सर्वबन्धुस्वरूपाय तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२९॥  
इत्युक्त्वापुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मोजगद्गुरुः । सा साधोतञ्च विज्ञाय सहस्रोवाच पर्वत  
पद्मोवाच ।

त्वमेव धर्मःसर्वपां साक्षी च सर्वकर्मणाम् । सर्वान्तरेषु सर्वात्मा सर्वेशः सर्वतत्त्ववित्

कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि किङ्करीम् ।

यत् कृतं त्वत्कृते ब्रह्मन्नपराधो बभूव मे ॥ ३२ ॥

त्वञ्च शतो मयाऽज्ञानात् स्त्रीस्वभावात् क्रुधा विभो ।

का व्ययस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्ति पायषः ।

तथापि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन ॥ ३४ ॥

त्वञ्च नष्टो भयसि चेत् सृष्टिनाशो भवेत्तदा । इतिकर्तव्यतामूढा तथापित्वां वदाम्यहम्  
सत्ये पूर्णश्चतुष्पादैः पौर्णमास्यां यथा शशी । विराजसे देवराज सर्वकालंदिषानिश्चम्

भगवन् भविता त्वेव । पादौ परौ द्वापरौ च स्तृतीयश्च कलौ विभो ॥

कलिशेषे शेषपादस्तवाच्छन्नो भविष्यति । पुनः सत्ये समायाते परिपूर्णां भविष्यसि ॥  
 सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च कुत्रचित् । यत्र स्थानं तयाधारो घदामिश्रयतांघिमो  
 धैष्णवेषु च सर्वेषु यतिषु प्रह्लाचारिषु । पतिव्रतासु प्राज्ञेषु वानप्रस्थेषु मिश्रुषु ॥ ४० ॥  
 नृपेषु धर्मशीलेषु सत्वसु सद्रैश्यजातिषु । द्विजसेविषु शूद्रेषु सत्संसर्गस्थितेषु च ॥ ४१ ॥  
 एषु त्वं सततं पूर्णां धर्मराजं विराजसे । युगे युगे तयाधारा यत्र पुण्यतमा जनाः ॥  
 भक्ष्यत्यचटविल्वेषु तुलसीवन्दनेषु च । दीक्षापरीक्षाशपथगोष्ठगोष्पदभूमिषु ॥ ४२ ॥

विद्याहेषु च पुण्येषु विद्यमानोऽसि शाखिषु ।

देपालयेषु तीर्थेषु सतां शश्वदुगृहेषु च ॥ ४४ ॥

वेदवेदाङ्गथयणे जलेषु च समासु च । धीकृष्णगुणनामोक्तभृतिगीतण्यलेषु च ॥ ४५ ॥  
 व्रतपूजातपोन्याययज्ञसाक्षिभ्यलेषु च । गवां गृहेषु गोष्वेव विद्यमानो हि पश्यसि ॥  
 वृशता ते न भविता धर्मं तेषु स्थलेषु च । ण्तदन्येषु वृशता यदगम्यञ्च तच्छृणु ॥ ४७ ॥  
 पुंश्रुतीषु च सर्वासु गृहेषु नरघातिनाम् । नरघातिषु नीचेषु मूर्खेषु च खलेषु च ॥ ४८ ॥  
 द्वेषतामुरुषिप्रेष्पाल्यानां धनहारिषु । असन्नरेषु धूर्तेषु चोरेषु रतिभूमिषु ॥ ४९ ॥  
 सुरोदरसुरापातकलहानां स्थलेषु च । शालग्रामसाधुतीर्थपुराणरहितेषु च ॥ ५० ॥  
 दस्युर्नरेषु घादेषु तालच्छायासु गर्भिषु । भसिजीविमसीजीविदेवलग्रामयात्रिषु ॥ ५१ ॥  
 मृष्याहम्यर्णकारजीपदिसोपजीविषु । मनुं निन्दितनारीषु स्त्रीजितेषु च पुंसु च ॥ ५२ ॥

दीक्षासन्ध्याविष्णुमक्तिविहीनेषु द्विजेषु च ।

स्नाङ्गकन्यापिक्रमिषु सघोषिद्विक्रमिष्वथ ॥ ५३ ॥

शालग्रामसुराग्रभूमिपिक्रमिषु प्रभो । मित्रद्रोहिदृशज्जनेषु सत्यविश्वास्तथातिषु ॥ ५४ ॥  
 शरणागतहीनेषु घाधितज्जनेषु नृष्यपि । शश्वन्मिथ्योनिर्त्रालिषु तथा संभाषहारिषु ॥  
 कामात् क्रोधात्तथा लोमान्निध्यासाह्वयप्रयादिषु ।

पुण्यकर्मविहीनेषु पुण्यकर्मविरोधिषु ॥ ५६ ॥

स्थानुमेतेषु जिन्देषु नाधिकारस्तव प्रभो । ममापि यत्नं सत्यं कथं तन्मूर्खं तव ।  
 यास्यामि पतिसेवायै गच्छ तत स्वमन्दिरम् ॥ ५७ ॥

। धादिनीं साध्वीमुवाच विधिनन्दनः । प्रसन्नवदनः श्रीमान्तीवचिनयं धनः ॥  
धर्मं उवाच ।

धन्यासि पतिभक्त्यासि स्वस्ति तेऽस्तु च सन्ततम् ।

घरं गृहाण दास्यामि मत्पश्चिन्नाकारिणि ॥ ५६ ॥

भवतु भर्ता ते रतिशूरश्च कन्यके । रूपवान् गुणवान् साध्वि सन्ततं स्थिररथीपतः  
स्वर्णसंयुक्ता त्वं भव स्थिररथीयता । विरजीवी भवतु स मार्कण्डेयात्परः सुते ॥  
द्धनवांश्चैव शक्रादेश्वर्यवानपि । विष्णुभक्तः शिवसमः सिद्धस्तु कपिलात्परः ॥  
मेसीभाग्यसंयुक्ता भव त्वं जीवनावधि । गृहा भवन्तुतेसाध्वि कुबेरभयनाधिकाः  
माता त्वं दशपुत्राणां गुणिनां विरजीविताम् ।

स्वमन्तरधिकानाञ्च भविष्यसि न संशयः ॥ ६४ ॥

वमुक्त्वा सन्तस्थौ धर्मराजश्च पर्वत । सा तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य स्वगृहं ययी ॥  
स्तामाशियं युतया जगाम निजमन्दिरम् । पतिव्रतां प्रशशंस प्रतिसंसदि संसदि ॥

सा रमे श्यामिना सार्धं यूना रहसि सन्ततम् ।

पश्चाद्भुवभूव सन्पुत्रास्तद्भृतरधिका गुणैः ॥ ६७ ॥

न्द्र कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् । दत्त्वानारण्यः स्वसुतां ररक्ष सर्वसम्पदम् ॥  
वेध पत्न्यकां दत्त्वा सर्ववामीश्वराय च । रक्ष सर्वयन्धुषर्गानारमनः सर्वसम्पदम् ॥  
।।हे समर्तने च दुर्लभेऽतिशुभे क्षणे । लग्नाधिपे च लग्नस्थे चन्द्रे स्वतनयान्पिने ॥  
दत्ते रोहिणीयुक्ते विशुद्धे चन्द्रतारके । मार्गशीर्षे चन्द्रधारे सर्वदोषविपरिजिते ॥ ७१ ॥  
संसृष्टसंसृष्टे ह्यसंसृष्टविपरिजिते । सदपत्न्यप्रदेऽर्थावपतिर्सीभाग्यदायिनी ॥ ७२ ॥  
नेष्यप्रदे सौख्यप्रदे जग्मनि जन्मनि । भगवन्तमेमाविच्छेद्दप्रदायिनि परात्परे ॥ ७३ ॥

कन्यां प्रदाय पुत्राय त्वं कृती भव पर्वत ।

जगदभ्यां जगत्पित्रे मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ ७४ ॥

नेत्रः स्वरूपां सर्वेशं देवानां देवपूजिताम् ।

धाविर्भता युगाकारे देवानां रक्षनाय च ॥ ७५ ॥

तेजोराशिः सुरीघाणां प्रज्वलन्ति दिशो दश ।

अस्याः स्वतेजसा दैत्याः केचिद्गन्धाः पलायिताः ॥ ७६ ॥

केचिदुबभूवुः शैलेन्द्र मस्मीभूताश्च भूतले । विलं प्रविचिशुः केचिन्मूर्च्छां प्रापुश्च केचन  
केचिदन्ते तृणं कृत्वा जग्मुः शरणमीश्वरीम् । केचिच्चिक्षिपुरस्त्राणिस्तम्भिता अपिकेचन

केचिच्चिरं रणं कृत्वा ययुः स्वर्गमनामयम् ।

निःशत्रवो यभूवुस्ते सुरा अस्याः प्रसादतः ॥ ७६ ॥

कृष्णाश्रया सा कल्पान्ते दक्षकन्या यभूव ह । दक्षश्च विधिवद्देवीं प्रददौ शूलपाणये ।  
देवेन मत्पितुर्यज्ञे सहसा सुरसंसदि । यभूव कलहः शैले तेन शूलभृता महान् ॥ ८१ ॥  
ब्रह्माणञ्च नमस्कृत्य ययौ रष्टस्त्रिलोचनः । दक्षश्च सगणो रष्टः प्रययौ स्वालयं तदा ।

कोपात् संभृतसंभारो दक्षो यज्ञं चकार ह ।

न ददौ यज्ञभागञ्च मात्सर्व्याच्छूलपाणये ॥ ८३ ॥

द्रुह्य सती प्रकुपिता जनकं रकलोचना । निर्मरस्यं च यदुतरं हृदयेन विदूयता ॥ ८४

यज्ञस्थानात् समुत्थाय जगाम मातुरन्तिकम् ।

भविष्यं कथयामास त्रिकालज्ञा परात्परा ॥ ८५ ॥

यज्ञभङ्गादिकं वापि स्वपितुश्च परामयम् । पलायनञ्च देवानां यज्ञस्थानाद्द्विरीश्वर  
मुनीनामृत्विजाञ्चैव पर्वतानां तथैव च । जयं शङ्करसैन्यानां स्वात्मनो मृत्युरेव च  
शोकात् पर्य्यटनं भर्तुर्विरहातुरचेतसा । निर्माणं नेत्रसरसः प्रयोधञ्च जनार्दनात् ॥ ८८

मूर्तिभेदात् पुनः प्राप्तिं विहारं तस्य तत्समम् ।

अपरं भवितव्यञ्च सर्वमुत्तवा जगाम सा ॥ ८६ ॥

स्वमात्रा भगिनीभ्यश्च प्रतिसिद्धा च दुःखिता ।

यभूवादर्शना योतात्सर्वासां सिद्धियोगिनी ॥ ९० ॥

गत्या सा जाह्नवीतीरं स्मृत्या संपूज्य शङ्करम् ।

स्मृत्या तथरणाग्भोजं देहं तत्याज सुन्दरी ॥ ९१ ॥

गन्धमादनद्रोणीस्थं शरीरं प्रविवेश ह । सङ्गहार पुरा येन दैत्यानामखिलं कुलम् ॥ ९२ ॥

हाहाकारं प्रणम्य सुगः सर्वेऽनिविष्टमिताः ।

जग्मुः शङ्कररीताश्च दक्षयज्ञं विनाय न ॥ ६३॥

पराभवञ्च सर्वेषां कृत्वा शोकातुराः पराः । सत्यं सर्ववृत्तान्तं कथयामासुरीश्वरम् ॥

धृत्वा प्रवृत्तिं मंहसां सर्वंस्त्रगणीयुतः । जगाम स्वर्णदीनारं यत्र देवीकण्ठेषम् ॥६५॥

इति श्रीशिवस्यैवसे महापुराणे नारायणनाम्नंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे सतीदेह-

त्यापो नाम द्विप्यारिंशोऽध्यायः ।

## त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

सतीदेहत्यागान्तरं शङ्करविलापवर्णनम्

श्रीनारायण उवाच ।

अथ दुर्गां महादेवः सतीमूर्तिं मनोहराम् । अस्नानपद्मवक्त्रां तां शयानां जाह्नवीतटे ॥१॥

दधतीमक्षमालाञ्च प्रतप्तकाञ्चनप्रभाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च दधानां शुक्लवाससम् ॥२॥

दृष्ट्वा सतीशरीरञ्च प्रदग्धो विह्वलिना । तत्स्वयंशिमूर्तिमाञ्च मूर्च्छां प्राप तथापि च ॥

कलत्रशोको बलवान् स्वात्मरामं पपत्परम् ।

याधते चेद्वीजं तं योगीन्द्राणां गुरोर्गुहम् ॥ ४ ॥

क्षणेन चेतनांप्राप्य तामुवाच त्रिलोचनः । निरीक्ष्य घटनाम्भोजं स्थाणुःस्थाणुरिवापरः

साश्चुनेत्रोऽतिदीप्तश्च दीनानां शरणप्रदः । दीनदेन्यापहारो च विललाप परं घक्तः ॥६॥

शङ्कर उवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुभगे सति प्राणेश्वरि प्रिये । शङ्करोऽहं तव स्वामी पश्यमानं निकटागतम्

शिवं शिवप्रदं सर्वसंपदूपञ्च सिद्धिदम् । सर्वात्मानञ्च सर्वशं शक्तुल्यं त्वया विना ॥

शक्तोऽहञ्च त्वया साहं सर्वशक्तिस्वरूपया । शक्तिहीनः शवसमो निश्चेष्टः सर्वकर्मसु

यश्च शक्तिं न जानाति दानहीनश्च निन्दति । तं त्यक्तुमुचितं विधे कथं मा त्यजसि प्रिये

इयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुःसाध्यभूताद्ययं तव । सस्मितं सकटाक्षञ्चयद् किञ्चित्सुधोपमम्  
मधुराभासद्वय्या च मां दग्धं सेचनं कुरु ।

मां दृष्ट्वा दूरतः शीघ्रं स्निग्धं घदसि सस्मितम् ॥ १२ ॥

अमद्यापि निश्चेष्टं विलपन्तं न भावसे । प्राणाधिके समुत्तिष्ठ रुदन्तं मां न पश्यसि  
रित्यज्य च नः प्राणान् गन्तुं नार्हसि सुन्दरि । जगदध्ये समुत्तिष्ठ प्राणाधारे परात्परे  
तिव्रते समुत्तिष्ठ कथं मां नाद्य सेवसे । कथं करोपि विश्वाय व्रतभङ्गं धृतिप्रसूः ॥ १५ ॥  
त्युत्तया मृतदेहश्च प्रियाया विरहातुरः । निधायोरसि संश्लिष्य चुचुम्ब च पुनः पुनः  
वधरे चाधरं दत्त्वा वक्षो वक्षसि शङ्करः । पुनः पुनः समाश्लिष्य पुनर्मूर्च्छामवाप सः  
पुनः स चेतनां प्राप्य वेगादुत्थाप शोकतः । दुद्राप च यथोन्मत्तो ज्ञानिनाञ्च सुरोर्गुरुः  
सप्तद्वीपं सप्तसिन्धुं लोकालोकक्षकाञ्चनम् । वन्नामम्नान्तयज्ञज्ञानी सतीं कृत्वास्वयवक्षसि  
शतशृङ्गगिरैः पार्श्वे जम्बुद्वीपे च भारते । सुनिर्जनेऽक्षयवटे गङ्गातीरे सरित्तटे ॥ २० ॥  
हरोदोच्चैः स्वयं कृत्वा सति साध्वीत्युदीर्य्य च । त्रिनेत्रनेत्रतीरेण सम्यभूव सरोवरम्  
तन्नेत्रञ्च सरो नाम मुनीनां तपसः स्थलम् । योजनद्वयविस्तीर्णं पुण्यतीर्थं मनोहरम् ॥  
यत्र स्नात्वा पुनर्जन्म नराणां न भवेद्दिरे । शतजन्मकृतं पापं स्नानमात्रेण नश्यति ।

त्यक्त्या तां मानर्षीं मूर्तिं नरा यान्ति हरैः पदम् ॥ २३ ॥

तत्र संरोदनं त्यक्त्वा पुनर्ब्रह्म मेदिनीम् । पूर्णमध्यं महायोगी विरहातुरमानसः ॥ २४ ॥  
सतीगलितप्रत्यङ्गैरङ्गैश्च पर्वतेश्वर । वभूव सिद्धपीठानां समूहो वाञ्छितप्रदाः ॥ २५ ॥  
शेषाङ्गानां महादेवःसंस्कारं वै विधाय च । अस्थिमालां चिनिर्माणं चकार कण्ठभूषणम्  
नित्यं हृद्गम्य भक्त्या चकार गात्रलेपनम् । सति प्राणेश्वरीत्युत्तया पुनर्मूर्च्छामवापसः  
पिसस्मार ब्रह्मपरमात्मानमात्मसम्भयः । स्थात्मारामः पूर्णकामोनिश्चेष्टीविरहज्वरात्  
तं शयानं गिखिरस्याभ्यासे धरमूलके । दृष्ट्वा देवाः समाजमुर्विस्मिताः शिवसन्निधिम्  
नारायणञ्च भगवानीश्वरः सह पार्यदैः । रत्नयानेनाजगाम पञ्चाक्षितपदाम्बुजः ॥ ३० ॥  
रत्नालङ्कारशोभाढ्यः पीतवासाम्बुतुर्भुजः । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यो घनमालाविभूषितः ॥  
ब्रह्मा शेषश्च धर्मश्च सुराः सर्वे महर्षयः । समूपुतीशसदसि लक्ष्मीकान्तं प्रणम्य ते ॥



धीःकृष्णः शङ्करमाहो ष्टया पञ्चासि मूर्च्छितम् ।

रत्नं योधयामास प्राणीशो प्राणिनां गुणम् ॥ ३३ ॥

धीमगयानुयाम ।

स्पातमाराम निषोधेर्षं मर्दीयं घनं ष्टयु । द्विगमभ्यात्मसारञ्च दुःखशोकनिवृत्तनम् ।

सर्षाभ्यात्मपिद्यमानधीजं ज्ञाननिधि विधिम् ।

तथापि योधयामि त्यां सत्यं योधसां विधिम् ॥ ३५ ॥

युधं योधयितुं शक्तो युधोऽपि प्राणसङ्घटे । व्ययहारोऽस्मि लोकेषु सत्यःसत्यं परस्परम् ।

मायाश्रिता गुणाः सर्वे हेतवःसुखदुःखयोः । विष्णुमाया यत्पती गुणयुक्तं प्रवाचते ।

दुःखं शोकं भयं शम्भो दुर्दिने भवतीत्यर ।

तत्रार्ताते कुतस्तानि मुदिने च समागते ॥ ३८ ॥

हर्षं पेश्वर्ष्यर्ष्यं सततं तत्र घटते । सर्षाण्येतानि गण्यन्ते स्वप्राणीव विपश्चितः ॥ ३९ ॥

ज्ञानं लभ महादेव ज्ञानधीजं सनातन । चेतनां कुरु भद्रं ते सतीं प्राप्स्यसि निश्चितम् ।

तत्तोयं शीततां नित्यं नाग्निं मुञ्चति दाहिका ।

तेजः सूर्यं मही गन्धो तथा त्वाञ्च सती शिवः ॥ ४१ ॥

शैलेत्येव समाकर्ण्य हरिं किञ्चिदुवाच ह । नेत्राण्युन्मीलनं कृत्वा त्रिनेत्रो ध्रुयतामिति ।

त्रिनेत्र उवाच ।

कस्त्वं तेजःस्वरूपोऽसि क इमे तव सन्निधौ ।

किनाम भवतश्चैषां कानि नामानि का सती ॥ ४३ ॥

कोऽहं को मे भवान् प्रूते किङ्कराः कुत आगताः ।

क यास्यसि क यास्यामि क गच्छन्त इमे घट ॥ ४४ ॥

हरिरित्येवमाकर्ण्य हृदोद सगणो गिरे । नेत्रनीरैस्त्रिनेत्रं तं रूढन्तं प्रसिपेच सः ॥ ४५ ॥

हरित्रिनेयोर्नेत्रनीरपातेन तत्र वै । यभूव सरसां श्रेष्ठं तीर्थं भुवनपावनम् ॥ ४६ ॥

भारतेऽस्तगिरेः पश्चात्तत्राक्षयघटान्तिके । स्थलं यभूव तपसां मुक्तिधीजं तपस्थिनाम् ॥

यधोवाच पुनः शीप्रमाध्यात्मञ्च हरं हरिः । ष्टयतां सर्वदेवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसान् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

एषु शङ्कर वक्ष्यामि ज्ञानानन्द सनातनः । ज्ञानं ज्ञाननिधे शोकाद्विस्मृतोऽसि परात्पर ॥  
 बुद्धिर्न दुर्दिने शश्वत् स्रमत्येवं भवे भवे । सर्वेषां प्राकृतानाञ्च ते बीजे सुखदुःखयोः ॥  
 सुखाद्भवति हर्षश्च दर्पः शौच्यं प्रमत्तता । राग ऐश्वर्य्यकामश्च विद्वेषश्च निरन्तरम् ॥  
 दुःखाच्छोकात् समुद्वेगाद्भयं मित्यं प्रवर्तते । हताग्नेतानि सर्वाणि हते बीजे महेश्वर ॥  
 सुदिनं दुर्दिनञ्चैव सर्वकर्मोद्भवं भव । तत्कर्म तपसां साध्यं कर्मणाञ्च शुराशुभम् ॥

तपः स्वभाषसाध्यञ्च स्वभावोऽभ्यासतो भवेत् ।

संसर्गसाध्योऽभ्यासश्च संसर्गः पुण्यतो भवेत् ॥ ५४ ॥

पुण्यबीजं मनश्चैव पापबीजञ्च चञ्चलम् । मनः शम्भो ममांशश्च सर्वेन्द्रियपुरःसरम् ॥  
 सर्वेषां जनफोऽहञ्च विस्वं ब्रह्मा पतिस्त्वयम् । ब्रह्मैकं मूर्तिभेदस्तु गुणभेदेन सन्ततम्  
 तद्ब्रह्म विविधं घस्तु सगुणं निर्गुणंशिव । मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्च निर्गुणः  
 स्वेच्छामयश्च भगवानिच्छया विकरोति च । इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिर्नित्या सर्वप्रसूःसदा  
 केचिदेकं घदन्त्येवं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् । केचिद्दन्ति द्विविधं ब्रह्म प्रकृतिपूर्वकम् ॥  
 भृणु ये च घदन्त्येकं मायापुरुषयोः परम् । तस्माद्भवति तौ द्वौ च तद्ब्रह्म सर्वकारणम्  
 अयं चैकं परं ब्रह्म द्विविधं भवतीच्छया । इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिः सर्वशक्तिप्रसूः सदा ॥  
 तत्रासक्तश्च सगुणः सर्वाधारः सनातनः । सर्वेश्वरः सर्वसाक्षी सर्वत्रास्ति फलप्रदः ।  
 शरीरं द्विविधं शम्भो नित्यं प्राकृतमेव च । नित्यं चिनाशरहितं नश्वरं प्राकृतं सदा ॥  
 अहं त्वञ्चापि भगवन्नामयोर्नित्यविग्रहः । आचयोरंशमूता ये प्राकृता नष्टविग्रहाः ॥ ६४ ॥  
 रद्रादयस्त्वदंशाश्च मदंशा विष्णुरूपिणः । ममाप्येवं द्विधारूपं द्विभुजञ्च चतुर्भुजम् ॥  
 चतुर्भुजोऽहं चैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह । गोलोके द्विभुजोऽहञ्च गोपीभिः सह राधया

द्विविधं येऽघदन्त्येवं द्वौ प्रधानौ तु तन्मते ।

पुरुषश्च सदा नित्यो नित्या प्रकृतिरीश्वरी ॥ ६७ ॥

सदा तौ द्वौ च संश्लिष्टौ सर्वेषां पितरौ शिव ।

सशरीरौ निःशरीरौ स्वेच्छया सर्वरूपिणौ ॥ ६८ ॥

प्राधान्यञ्च यथा पुंसः प्रहृतेभ्य सदा तथा । सतोमिच्छसि चेच्छमो प्रहृतेः स्तनं च ।

यत् स्तोत्रञ्च त्वया हृत्सं युग दुर्वासने मुदा ।

गदित्वां कण्ठशागोर्णं यत्र तेन जगत्प्रभू ॥ ७० ॥

शोकनाशो भवतु मे शिवं शिव भगवतिना ।

दूरं पितृषहेतुभ्य यातुः श्रीविद्यारत्नः ॥ ७१ ॥

इत्येवमुक्तया लक्ष्मीशो विरगम गिरिधर । स्तनं कर्त्तारमे प्रहृतेभ्य महेश्वरः ॥ ७२ ॥

घातया नभ्यान् धीकृष्णं प्रप्राणं भक्तिर्भुक्तः । पुटाञ्जलियुक्तो भूयापुनकाञ्चिनविप्रः

महेश्वर उवाच ।

ॐ नमः प्रहृत्यै मन्त्रः ।

प्राप्तिं प्राप्तास्वरूपे त्वं मां प्रसीद सनातनि । परमान्तस्वरूपे च परमानन्दरूपिणि ॥ ७३ ॥

भद्रे भद्रप्रदे दुर्गे दुर्गघ्ने दुर्गनाशिनि । पोत्सरूपेऽजीर्णे त्वं मां प्रसीद भवाण्वि

सर्वस्वरूपे सर्वेशि सर्वयोजस्वरूपिणि । रूपाधारं सर्वविद्ये मां प्रसीद जयप्रदे ॥ ७४ ॥

सर्वमङ्गलरूपे च सर्वमङ्गलदायिनि । समस्तमङ्गलाधारं प्रसीद सर्वमङ्गले ॥ ७५ ॥

निद्रे तन्द्रे क्षमे भद्रे तुष्टिपुष्टिस्वरूपिणि । लज्जे मेधे बुद्धिरूपे प्रसीद भक्तवत्सले

वेदस्वरूपे वेदानां कारणे वेददायिनि । सर्ववेदाङ्गरूपे च वेदमातः प्रसीद मे ॥ ७६ ॥

द्वये जये महामाये प्रसीद जगदम्बिके । क्षान्ते शान्ते च सर्वान्ते क्षुत्पिपासास्वरूपिणि

लक्ष्मीनारायणक्रोडे क्षप्तुर्वक्षसि भारति । मम क्रोडे महामाये विष्णुमाये प्रसीद मे ।

कलाकाष्ठास्वरूपे च दिवारात्रिस्वरूपिणि । परिणामप्रदे देवि प्रसीद दीनघटसले ।

कारणे सर्वशक्तानां कृष्णस्योरसि राधिके । कृष्णप्राणाधिके भद्रे प्रसीद कृष्णपूजिते

यशःस्वरूपे यशसां कारणे च यशःप्रदे । सर्वदेवीस्वरूपे च नारीरूपविधायिनि ॥ ८४ ॥

समस्तकामिनोरूपे फलांशेन प्रसीद मे । सर्वसम्पत्स्वरूपे च सर्वसम्पत्प्रदे शुभे ॥ ८५ ॥

प्रसीदपरमानन्दे कारणे सर्वसम्पदाम् । यशस्विनां पूजिते च प्रसीद यशसां निधे ॥

वाधारे सर्वजगतां रक्षाधारे घमुन्धरे । चराचरसद्वरूपे च प्रसीद मम मा चिरम् ॥

योगस्वरूपे योगीशे योगदे योगकारणे । योगाधिष्ठात्रि देवीशे प्रसीद सिद्धयोगिनि

र्वसिद्धिस्वरूपे च सर्वसिद्धिप्रदायिनि । कारणे सर्वसिद्धीनां सिद्धेश्वरि प्रसीद मे ॥  
याख्यां सर्वशास्त्राणां मतभेदे महेश्वरि । ज्ञाने पदुकं तत्सर्वं क्षमस्व परमेश्वरि ॥  
चिद्धदन्ति प्रकृतेः प्राधान्यं पुरुषस्य च । केचित्तत्र मतद्वैधे व्याख्याभेदं चिदुर्वुधाः ॥

महाविष्णोर्नामिदेशे स्थितं तं फमलोद्भवम् ।

मधुकैटभौ महादैत्यौ लीलया हन्तुमुद्यता ॥ ६२ ॥

ष्टु स्तुतिं प्रकुर्वन्तं ब्रह्माणं रक्षितुं पुरा । योधयामास गोविन्दं विनाशहेतवे तयोः ।

नारायणस्त्वया भक्त्या जघान तौ महासुरौ ।

सर्वेश्वरस्त्वया सार्द्धमनीशोऽयं त्वया विना ॥ ६४ ॥

पुरा त्रिपुरसंग्रामे गगनात्पतिते मयि । स्वया च विष्णुना सार्द्धं रक्षितोऽहं सुरेश्वरि ॥

अधुना रक्ष मामीशे प्रदग्धं विरहाग्नि । स्वान्मदर्शनपुण्येन क्रीणीहि परमेश्वरि ॥ ६६ ॥

इत्युतया विरतः शम्भुर्ददर्श गगनस्थिताम् ।

रत्नसाररथस्थं तां देवीं शतभुजां मुदा ॥ ६७ ॥

सप्तकाञ्चनवर्णामां रत्नाभरणभूषिताम् । पद्मास्यप्रसन्नास्यां जगतां मातरं सतीम् ॥

हृष्ट्या तां विरहासक्तः पुनस्तुष्टाय सत्वरम् । दुःखं निवेद्यामास प्रदन्विरहोद्भवम् ॥

दर्शयामासास्त्रिमालां स्वाङ्गस्थं भस्मभूषणम् ।

कृत्वा षट्परीहारं तौषयामास सुन्दरीम् ॥ १०० ॥

नारायणश्च प्रदा च धर्मः दीयः सुरर्ययः । शिवं रक्षेश्वरीत्युतया तुष्टुयुक्ते सनातनम्

कभूय परितुष्टा सा तेषां स्तोत्रेण तत्क्षणम् । उवाच कथया शम्भुं प्राणेशं प्राणवल्लभा

प्रकृतिदयाच ।

निरतो भव महादेव प्राणाधिक मम प्रभो ।

भयानात्मा च योगीशः स्वामी जन्मनि जन्मनि ॥ १०३ ॥

महं शैलेन्द्रकामिन्यां लब्ध्वा जन्ममहेश्वर । तव पत्नी मयिष्यामि मुञ्चस्व विरहउररम्

इत्युतया शिवमादधास्य घान्तर्धानं चकार सा ।

सुरा जग्मुस्तमादधास्य लज्जानप्रात्मकन्धरम् ॥ १०५ ॥

हर्षान्तरात्मा गिरिः कौलाशं तं जगामह । ननर्त सगणस्तूर्णं सन्त्यज्य विरहज्यम् ।  
इदं शिष्यकृतं स्तोत्रं प्रकृत्या यः पठेन्नरः । न भवेत्कामिनीभेदस्तस्य जग्मनि जग्मनि ।

इह लोके सुखं भुक्तवा स याति शिवमन्दिरम् ।

धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते नात्र संशयः ॥ १०८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मसर्गे  
शङ्करशोकापनोदनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

## चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

### पार्वतीपरिणयवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

घशिष्टस्ययचःश्रुत्या सगणोऽपि हिमालयः । विस्मितोभाष्ययासाहंजहासपार्यतीस्यम्  
अरन्धती च तां मेनां योधयामास कातराम् । निराहारं रुदन्तीं तां जहौ शोकमुदा च सा  
अरन्धतीं भोजयित्वा युभुजे भोगमुत्तमम् । सधं प्रहृष्टमनसा मङ्गलञ्च चकार ह ॥ ११  
ततः संभूतमंमारो घशिष्टस्याज्ञया त्रिये । पत्रं प्रस्थापयामास नानास्थानं त्वरात्विज  
ततः प्रस्थापयामास त्रियं मङ्गलपरिकाम् । नानाप्रकारद्रव्याणि पाहानि च चकार ह  
तण्डुलानाञ्च शैलान् चै वृषुकानाञ्च सुन्दरि । तैलानाञ्च घृणानाञ्च दध्नां चार्पाश्चकार ह  
मुद्गानामासवानाञ्च क्षीराणाञ्च तथैव च । अधो ह्येवद्वीमानां लयणानां परं मुने ॥  
लङ्कुकानां शर्कराणां स्यन्तिकानां तथैव च ।

पयचूर्णादिपिष्टानां घृणरुक्कानि तानि च ॥ ८ ॥

नानाप्रकारपत्राणि पङ्क्तिःशैः चानि यानि च । महारुद्रप्रवालानि सुवर्णरत्नानि च ॥ ११  
द्रव्याप्येनानि शैलेन्द्रः कृत्वा तु विधिपूर्वकम् । मङ्गलं कर्तुंमारेभे तथैव मङ्गले विने ॥  
संस्कारं चारयामासुः पार्वतीं पर्यनस्त्रियः । स्नापयित्वा चत्त्रमुष्मं धारयामासुरागुहाः ॥

कारयित्वा सुवेशाञ्च रत्नभूषणभूषिताम् । दर्पणं धारयामासुर्दूर्वाक्षतसमन्वितम् ॥ १२ ॥

ददुश्चालककं चास पादाङ्गुलिषु पादयोः ।

गण्डे पत्रावलीं रम्यां नेत्रे कज्जलमुज्ज्वलम् ॥ १३ ॥

कवरीं कारयामासुर्मालतीमाल्यवेष्टिताम् । पट्टसूत्रपिनद्धां तां धामवक्त्रां मनोहराम् ॥

एतस्मिन्नन्तरे राधे समाजग्मुः सुरेश्वराः । नीत्वा त्रिनेत्रं तत्रैव रत्नयानस्यमीश्वरम् ॥

शैलः संभृतसंमारान् सम्भाषयितुमीश्वरान् ।

शैलान् प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि पूजितान् ॥ १६ ॥

प्राङ्गणं कारयामास रम्यास्तामैः समन्वितम् । पट्टसूत्रसन्निवद्धरसालपल्लवान्वितैः ॥

फलपल्लवसंयुक्तैः फलसैर्जलसंयुतैः । चन्द्रगागुक्कस्तूरीसुचारुकुसुमान्वितैः ॥ १८ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तैः संयुक्तं सुमनोहरम् । देवेश्वरान् पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः ॥

रत्नसिंहासनं दातुं प्रेरयामास किङ्करान् ।

नारायणो हि भगवानुवास पार्यदैः सह ॥ २० ॥

विनतानन्दनात्तूर्णभवरुह्य चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्यदैश्च रत्नभूषणभूषितैः ॥ २१ ॥

रत्नमुष्टितिवदैश्च सेवितः श्वेतचामरैः । ऋषिश्रेष्ठैः सुरश्रेष्ठैः स्तूयमानश्च संसदि ॥

ईषदास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः । उवाच च तद्भ्यासे ब्रह्मा देवगणैः सह ॥ २३ ॥

ऋषयो मुनयश्चैव समूहमङ्गले स्थले । एतस्मिन्नन्तरे शम्भुरवरुह्य रथादहो ॥ २४ ॥

रत्नासने समुत्तिष्ठन् ददर्श पर्वतालयम् । समाजग्मुः शिवं द्रष्टुं शैलेन्द्रनगरस्त्रियः ॥

पृष्ठापाला गुपत्यश्च घस्त्राभरणभूषिताः । काश्चित्कज्जलहस्ताश्च घस्त्रहस्ताश्च काश्चन

काश्चिन् सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित् कङ्कृतिकाकराः ।

पेशार्धभूषिताः काश्चिन् काश्चिन्नेषार्धभूषिताः ॥ २७ ॥

काश्चिन्निभूषिताः काश्चिन् सर्वाभरणभूषिताः ।

सर्वा भागत्य सन्तस्युः सस्मिताः पर्वतालये ॥ २८ ॥

ऋषिकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः । गन्धर्वरैलकन्याश्च राजकन्याः समागताः

सर्वा भप्सरसो दिव्या रम्यायाःसमुपसिद्धताः । मेनकन्यागणैः सार्द्धं ददर्श शङ्करंघञ्ज्

चारुत्वम्पकषणाभमेकचवत्रं त्रिलोचनम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यं रत्नाभरणभूषितम् ॥३१॥

चन्दनागुरुकस्तूरीचारुङ्कुम्भभूषितम् । मालतीमाल्यसंयुक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥३२॥

वह्निशोचिनातुलेन चातिसूक्ष्मेण चारुणा ।

अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिभूषितम् ॥ ३३ ॥

रत्नदर्पणहस्तश्च फज्जलोज्ज्वललोचनम् । सर्वथा प्रभयाच्छन्नमतीवसुमनोहरम् ॥३४॥

अतीवतरुणं रम्यैर्भूषिताङ्गैश्च भूषितम् । विभ्रन्तं रूपमतुलं परं नारायणाज्ञया ॥ ३५ ॥

योगस्वरूपं योगेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् ।

स्वेच्छामयं गुणार्तातं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ ३६ ॥

गुणभेदाद्रूपभेदं धत्तेऽनन्तरूपकम् । तारणं तं भवस्थानां सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥

सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वेशं सर्वजीवनम् । साक्षिरूपं निरीहश्च परमानन्दमक्षरम् ॥ ३८ ॥

आद्यन्तमध्यरहितं सर्वायं सर्वरूपकम् ।

दृष्ट्वा जामातरं मेना जहाँ शोकं मुदान्विता ॥ ३९ ॥

प्रशारासुपुंषन्त्यश्च धन्या धन्या सतीति ताः । दुर्गा भाग्यपतीत्येवमूचुः काश्चन कन्यकाः

कामेनकाश्चित्कामिन्यो मीनोभूताश्चकारचन । न दृष्टो धर इत्येवमस्मामिज्ञानगोवो

काश्चित्प्रियेपरहिता मूर्च्छामाप्सुश्च काश्चन ।

निनिन्दुः स्यपति काश्चिन् स्वेच्छाञ्जशुश्च काश्चन ॥ ४२ ॥

काश्चिद्वापेन मन्दुः पुलकाञ्चितविप्रहाः ।

कामेन काश्चिन् कामिन्यो मीनोभूताश्च स्तम्भिताः ॥ ४३ ॥

अगुणान्धर्यपत्नयो मन्तुध्याप्सरोगणाः । दृष्ट्वा शङ्कररूपश्च प्रहृष्टाः सर्वश्रेयताः ॥ ४४ ॥

नानाप्रकारपापानि धारुणि मधुराणि च । वादका वादयामासुर्नानाशिल्पेन तत्र यैः ॥

एतन्मिगन्तरे दुर्गां शैलान्धःपुरचारिकाः । बहिष्कृत्यश्च सद्रत्नासतरथा रत्नवेदिकाम्

कस्तूरीपिन्दुभिः सान्द्रसिन्दूरपिन्दुभूषिताम् ।

धारयन्तवन्दामां मध्रमालम्यलोऽप्यन्ताम् ।

रत्नेन्द्रसारहारैः बभूवुःफलविभूषिताम् ॥ ४७ ॥

त्रदत्तनेत्रान्तामन्यधारितलोचनाम् । अतीपद्मास्ययुक्तास्यां सकटाक्षं मनोहराम् ॥  
 केयूरघलयरत्नकङ्कणमण्डिताम् । रत्नपाशकसंसक्तां कृष्णन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥ ४६ ॥

अमूल्यातुल्यचित्रालयधनयुग्मसुरोमिताम् ।

सद्वत्नकुण्डलाम्याञ्च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम् ॥ ५० ॥

नेसारप्रभामुष्टदन्तराजिधिराजिताम् । रत्नदर्पणहस्ताञ्च क्रीडापद्मं विघूर्णातीम् ॥  
 दनागुरकस्तूरीकुङ्कुमेनाङ्गचर्चिताम् । मुदिता ददृशुः सर्वे जगदाद्यां जगत्प्रसूम् ॥ ५२ ॥  
 नेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदान्वितः । सर्वां सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजहौ विरहज्वरम् ॥  
 ५४ ॥ सर्वं विलस्मार दुर्गासंन्यस्तमानसः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो हर्षाश्रूयुक्तलोचनः ॥

एतस्मिन्नन्तरे शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः ।

तं धरं धरयामास वल्लभन्दनभूपणैः ॥ ५५ ॥

कथा पाशादिभिर्माल्यैर्दिव्यगन्धमनोहरैः । ततः शीघ्रं वेदमन्त्रैः सम्प्रदानञ्चकार ताम् ॥  
 त्तुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च । चारुरत्नविकाराणि पात्राणि सुन्दराणि च ॥  
 त्वां लक्षं गजेन्द्राणां सहस्राणि च राधिके । रत्नकम्बलयुक्तानि साङ्कुशानि मुदान्वितः ॥  
 त्रंशुलक्षं हयानाञ्च सज्जितानामकातरः । दासीनामनुक्तानां लक्षं सद्रत्नभूषितम् ॥ ५६ ॥  
 ततं द्विजघट्टनाञ्च पार्वतीध्नातृकल्पकम् । रथानाञ्च शतं रम्यं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ॥ ६० ॥  
 तार्वतीं घस्तुसहितां स्वतीत्युच्चार्य शङ्करः । जप्राहानन्दमनसा यत्नाच्छैलसमर्पिताम् ॥

हिमालयः सुतां दत्त्वा परिहारञ्चकार तम् ।

माध्यन्दिनोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव सम्पुटाञ्जलिः ॥ ६२ ॥

हिमालय उवाच ।

प्रसीद दक्षयज्ञं नरकार्णवतारक । सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दविग्रह ॥ ६३ ॥

गुणार्णव गुणातीत गुणयुक्त गणेश्वर । गुणबीज महामाग प्रसीद गुणिनां धर ॥ ६४ ॥

योगाधार योगरूप योगह योगकारण । योगीश योगिनां बीज प्रसीद योगिनां गुरो ॥

प्रलय प्रलयाद्यैक मय प्रलयकारण । प्रलयान्ते सृष्टिबीज प्रसीद परिपालक ॥ ६६ ॥

संहारकाले घोरे च सृष्टिसंहारकारण । दुर्निवार्य दुरातव्य चाशुतोष प्रसीद मे ॥



लस्यरूप कालेश काले न कालदायक । कालयोजक कालज्ञ प्रसीद् कालफलक  
 तस्यरूप शिष्य शिवपीठ शिष्याश्रय । शिष्यभूत शिवप्राण प्रसीद् परमाश्रय ॥  
 धैर्यं स्तपनं कृत्या पितराम द्विमालयः । प्रशशीसुः सुराः सर्वे मुनयश्च गिरीश्वर  
 मालपट्टतं स्तोत्रं नयतो यः पठेन्नरः । प्रददाति शिवस्तस्मै धान्द्रितं शयिके प्र  
 इति श्रीप्रह्लादपर्वतं महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 पार्वतीसम्प्रदाने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

### पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वतीपरिणये नानादेवस्त्रीणामागमनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

मथ वेदविधानेन संस्थाप्य घहिमीश्वरः । यज्ञं चकार तत्रैव घामे संस्थाप्य पार्वतीम् ॥  
 निवृत्ते विधिघट्टु यज्ञे विप्राय दक्षिणां ददौ । शिवः शतसुघर्णानि वृन्दावनविनोदिनि ॥  
 मथ प्रदोषमानीय शैलेन्द्रनगरस्त्रियः । निर्वर्त्य मङ्गलं कर्म गृहं संप्राप्य दम्पती ॥ ३ ॥  
 कृत्वा जपध्वनिं प्रीत्या शुभनिर्मञ्छनादिकम् ।

सस्मिताः सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविप्रदाः ॥ ४ ॥

घासगेहं संप्रविश्य ददृशुः कामिनीगणाः । शङ्करं रूपवेशाढ्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ५ ॥  
 चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्जितविप्रहम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं मनोहरम् ॥ ६ ॥  
 अपूर्वसूक्ष्मवेशाढ्यं सिन्दूरविन्दुभूषितम् । चारुचम्पकवर्णामं सर्वाषयवसुन्दरम् ॥ ७ ॥  
 नवीनपीथनस्यञ्च मुनोन्द्रचित्तमोहनम् । सरस्वतीञ्च लक्ष्मीञ्च सावित्रीं जाह्नवीं रतिम्  
 अदितिञ्च शचीञ्चैव लोपामुद्रामरुन्धतीम् ।

अहल्यां तुलसीं स्वाहां रोहिणीञ्च घसुन्धराम् ॥ ८ ॥

संहाञ्च सतीह्रीणाञ्च पोडुश । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः ॥

या याः स्थितास्तत्र तासां संख्यां कर्तुञ्च फः क्षमः ।

तामी रत्नासने दत्ते तत्रोपास शिवो मुदा ।

तमूचुः कमशो देव्यो मधुरोक्तिं सुधामिव ॥ ११ ॥

सरस्वत्युपाच ।

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा ।

दृष्ट्वा त्रिपास्यं चन्द्राभं सन्तापं त्यज कामुक ॥ १२ ॥

कालं शमय कालेश सदा संश्लेषपूर्वकम् ।

विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाशिया ॥ १३ ॥

लक्ष्मीरुपाच ।

लज्जां विहाय देवेश सतीं हृत्या स्वयमृषि ।

तिष्ठ समप्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना ॥ १४ ॥

सावित्र्युपाच ।

भोजयित्वा सतीं शम्भो शीघ्रं भोजय मा त्विद ।

सदाचम्य सकर्पूरं ताम्बूलं देहि भक्तिः ॥ १५ ॥

जाह्नव्युपाच ।

स्पर्णकङ्कटिकां पृथ्वा केशान्मार्जय योपितः ।

कामिन्याः स्वामिसौभाग्यं मुखं नातः परं भवेत् ॥ १६ ॥

रतिकरुपाच ।

गृहीत्वा पार्यन्तीं देव सुभगाप्रतिदुर्लभाम् ।

कार्यं मम प्राणनाथो निःस्वार्थं भस्मसान्तरतः ॥१७॥

जीपयसि विमो कामं कामव्यापारमात्मनि । कुत्र दूरञ्च सन्तापं मम विश्लेषहेतुकम् ॥

दम्पतीपिरद्वेष्टो तस्यै द्वात्वा हयानिधे । तथापि मम कान्तश्च कोपेन भस्मसान्तरतः ॥

हृत्युत्वा काममस्माद्य हरो स्ता मंधिवन्धिन्म् ।

रतोद् पुरतः शम्भोर्नाथ नाथेत्युदीर्यं च ॥ २० ॥

हरिस्तद्रोदनं श्रुत्वा करुणामयसागरः । ब्रह्मा धर्मादिदेवाश्च ययुर्वासगृहं शिवम् ॥२१॥  
 दृष्ट्वा नारायणं धर्मं ब्रह्माणञ्च सुरानपि । जयेत् पीडादुत्थाय स्वाहां कुर्वित्युवाच ह  
 शंकरस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ।

कामं जीवय हे रुद्रेत्युक्त्वा शीघ्रं जगाम सः ॥ २३ ॥

ऊचुर्देव्यो बहुतरं वाक्यं विनयपूर्वकम् । ऋधादृष्ट्वा शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मत्  
 दृष्ट्वा कामं रतिस्तञ्च प्रणनाम महेश्वरम् । तद्रूपञ्च तदाकारं सस्मितं सधनुःशाम् ॥  
 प्रणम्य शङ्करं कामः स्तुतिं कृत्वा यथागमम् । बहिर्गत्वा हरिं देवान् प्रणम्य समुवाच ह  
 कामं सम्माप्य देवाश्च युयुञ्जुश्च तमाशियम् । काले रक्षा विनाशश्च निषेधः केन वाप्यते  
 अथ शैलः सुरान् सर्वाभारायणपुरोगमान् । भोजयामास भक्त्या च शाययामास यज्ञत  
 अथ शम्भुर्वासगृहे घामे संस्थाप्य पार्श्वतीम् ।

मिष्टाग्रं भोजयामास तथा सह मुदान्वितः ॥ २६ ॥

भुक्तपन्तं शिवं तत्र देवमातादितिः स्वयम् । उवाच सस्मितं राधे सग्रीत्या सरसं वच  
 अदित्युवाच ।

भोजनान्ते शशि शम्भोःशौचायं जलमर्षय । द्वेदि शीघ्रं मम प्रीत्या दग्धत्योःप्रीतिपूर्वकम्  
 शच्युवाच ।

कृत्वा विलापं यदंतोः शयं कृत्वा स्वयशसि ।

यो बन्नाम भयं मोहात् कालेन प्राप तां सर्तीम् ॥ ३२ ॥

भरन्धर्युवाच ।

मया दत्ता सर्ती तुम्यं मेना दातुमर्नाप्लिता । विविधं बोधवित्थेमां रतिञ्च कर्तुंमर्दति  
 महत्योपाय ।

वृद्धापन्थां वरित्थाय शर्तःव तदणोऽपुना । तेन मेना तु मेने त्वां पुनामर्षितुमीश्वर  
 तुल्युवाच ।

सती त्वया वरित्थया कामो दग्धः पुन कृतः ।

करं तदा वरित्थय प्रमो प्रम्याप्लितोऽपुना ॥ ३५ ॥

स्वाहोवाच

सिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि सागप्रतम् । विवाहेव्यवहारोऽस्तिपुरस्त्रीणांप्रगल्भता  
रोहिण्युवाच ।

कामं पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद । कुरुपारं स्वयंकामी कामिनां कामसागरम्  
वसुन्धरोवाच ।

भोगद्रव्यं विना भोगी न हि तुष्टः क्षुधातुरः । येन तुष्टिर्भवेच्छम्भो तत्कर्तुमुचितंस्त्रिया  
संशोवाच ।

जानासि भावं सर्वज्ञ कामार्तानाञ्च योषिताम् ।

न च स्वस्वामिनं शम्भो सती जानाति सङ्गतम् ॥ ३६ ॥

शतरूपोवाच ।

तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शङ्करम् । रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने ॥  
श्रीरुष्ण उवाच ।

स्त्रीणां तद्वचनं ध्रुत्वा सा उवाच शिवःस्वयम् ।

निर्विकारी च भगवान् योगान्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ४१ ॥

शङ्कर उवाच ।

देव्यो मा वदतोक्तिञ्च होवम्भूनां ममान्तिके । जगतां मातरःसाध्यः पुत्रे चपलताकथम्  
शङ्करस्य वचः ध्रुत्वा लज्जिताः सुरयोषितः । वभ्रुःसम्भ्रमासूष्णीं चित्रपुस्तलिका यथा ॥

भुक्त्या मिथानि भगवताचम्य च मुदाश्रितः । सकर्पूरञ्च ताम्बूलं वृभुजे मार्पर्यया सद  
रत्नसिंहासने शम्भुर्मनादसे मनोहरे । सप्रिधाय मुदा युक्ती ददर्श घासमन्दिरम् ॥४५॥

रत्नप्रदीपशतकीर्णलङ्घिर्भ्रूलितं धिया । रत्नपात्रघटाकर्णं मुक्तामालिषयभूषितम् ॥४६॥  
रत्नदर्पणशोभादपं मण्डितं श्वेतचामरेः । चन्द्रामुण्डसंगुक्तं पुष्परालयासमन्वितम् ॥

नानाचित्रपिचित्रादयं निर्मितं विश्वकर्मणा । रत्नसारेण खचितं रचितं हारकीर्णैः ॥  
कुत्रचित् सुरनिर्माणपेकुण्टमुग्रनोहरम् । वृन्दापनं कुत्र पनं कुत्रविद्रासमण्डलम् ॥४६॥

वैलासञ्च कुत्रघन कुत्रचिद्विन्द्रमन्दिरम् । इहाऽऽश्चर्यं महादेवः परितुष्टो वभूय ६ ॥५०॥

भगवत्प्रसादात्काले यभूय प्राणयत्सुमे । मानाप्रकाश्यायञ्च पादपाञ्चजिरे जनाः ॥ ५१ ॥

सर्वे सुराः समुत्तम्यः सर्वाभूताः नसन्ममाः ।

म्यपाहनान् समागत्य कैलासं गन्तुमुच्यताः ॥ ५२ ॥

पासगेहं समागत्य धर्मां नारायणानया । उपाय शङ्करं योगी योगीशं समगोचिन्म् ।  
धर्म उपाय ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मद्रं ते भयतु प्रमथाधिपः ।

पार्वत्या सह माहेन्द्रे यात्रां कुः हरिं स्मरन् ॥ ५४ ॥

दृष्ट्वा धर्मपचः ध्रुत्वा पार्वत्या सह शङ्करः । यात्रां चकार माहेन्द्रे यृन्दायनपिनोदिनि  
यात्रां कुर्यति देवेशे पार्वत्या सह शङ्करे । उच्चैरुदित्या सा मेना तमुपाच हृपानिधिम्  
मेनोपाच ।

हृपानिधे हृषां हृषा मद्रस्तां पालयिष्यसि । सहस्रदोषं भगवानाशुनोयः क्षमिष्यति  
त्यत्पदाम्युजमक्तेशा मद्रस्ता जन्मजन्मनि । स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेव प्रभुं विना  
त्यद्वक्तिध्रुतिमात्रेण हर्षाध्रुपुलकान्विता । त्वन्निन्दया मयेर्न्मना मृत्युञ्जय मृता इव ।  
इत्युक्त्वा मेनका शीघ्रं तत्रागत्य हिमालयः । उच्चैरुद च तदा घत्सां हृत्वा स्ववक्षसि

क यासि घत्सेत्युच्चार्य्य शून्यं हृत्वा हिमालयम् ।

स्मारं स्मारं तद्गुणौघं विदार्य्य मन्मतः स्फुटम् ॥ ६१ ॥

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रः समर्प्य च शिवां शिवे । सशैलः सहपुत्रश्च हरोदोषैर्मुहुर्मुहुः ।  
नारायणश्च भगवानध्यतमविद्यया स्वयम् । सर्वान् प्रबोधयामास हृषया स हृपानिधिः ।  
ननाम पार्वती भक्त्या मातरं पितरं गुह्यम् । मायया च महामाया हरोदोषैर्मुहुर्मुहुः ॥ ६४ ॥  
पार्वतीरोदनेनैव रुद्रदुः सर्वयोपितः । मुनयश्च सुराः सर्वे सखीकाः सगणा ध्रुवम् ॥ ६५ ॥  
शीघ्रं ययुस्ते कैलासं देवा मानसशायिनः । मुहूर्ताद्धिन मुदिताः संप्रापुः शङ्करालयम् ।  
दृष्ट्वा गता देवपत्न्यो मुनिपत्न्यश्च सत्वरम् । आययुर्दोषमानीय मुदा महल्लकर्मणि ।  
घायुपत्नी कुबेरस्य कामिनी शुक्रकामिनी । तारा सुरसुरोः पत्नी पत्नी दुर्घाससस्तया ।  
अत्रिमाट्यांजनसूया च चन्द्रपत्न्यस्तथैष च । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्याः सहस्रतः

असंख्यकामिनीसङ्घः संख्यां फलूञ्च कः क्षमः ।

ताश्च प्रवेशयामासुर्दम्पती वासमन्दिरम् ॥ ७० ॥

जसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरम् । सतीं तां दर्शयामास शिवः पूर्वाल्यं मुदा ॥

सति स्मरस्यतो गेहाद्यदृता तातमन्दिरम् ॥ ७१ ॥

धुना शैलकन्या त्वं तत्र दक्षसुता पुरा । जातिस्मरां स्मरयामि नित्यं स्मरसि चेद्ब्रह्म

शङ्करस्य घञः श्रुत्वा सस्मितोवाच सा सती ।

सर्वं स्मरामि प्राणेश मूर्त्तान्भूतो भवेति तम् ॥ ७३ ॥

शिवः संभृतसंभारो नानावस्तु मनोहरम् । भोजयामास देवांश्च नारायणपुरोगमान् ॥

भुक्त्या देवाः प्रजग्मुस्ते नानारत्नविभूषिताः । सखीकाःसगणाः सर्वे प्रणम्यचन्द्रशेखरम्

नारायणञ्च प्रक्ष्णाणं ननामशङ्करः स्थयम् । सी च तञ्च समाश्लिष्याशिषं वृत्त्वाप्रजग्मतुः

अथ शैलश्च मेना च मैनाकमानुहाय ह ।

शीघ्रमानय भद्रं ते पार्वती शङ्करं सुत ॥ ७७ ॥

तयोःस घञं श्रुत्वा शीघ्रं गत्वाशिवालपम् । आजगामसप्रानोय पार्वतीपरमेश्वरी ॥

पार्वत्या गमनं श्रुत्वा बालाश्च यालिकास्तथा । वृद्धायुवत्यो वा याश्चरौऽथ दुद्रुयुमुंदा ॥

मेना सुताभ्यां कन्या च सह दुद्राव सस्मिता ।

हिमालयश्च मुदितो दुद्राषानुमज्ज सुताम् ॥ ८० ॥

अथरह रथादेर्षा मातरं पितरं गुरुम् । प्रणताम प्रमुदिता निमग्नानन्दऽऽसागरै ॥ ८१ ॥

पार्वतीञ्च समाश्लिष्य मैनाका हर्षविह्वला । हिमालयश्च मुदितो गताः प्राणा इषागताः ॥

सुतां निषाय गेहे स्वे रत्नसिंहासने दर्श । शूलभूते गणेशश्च मधुपर्कादिकं मुदा ॥

तर्ष्यो श्वशुरगेहे च सगणश्चन्द्रशेखरः । नित्यं योऽशोपचारैः पूजितः सह भाष्यंया ॥

इत्येवं कथितं राधे शङ्करोल्लसद्गुलम् । शोकघ्नं हर्षजनकं विः भूयः धीनुमिच्छसि ॥

इति धीश्रद्धावर्षे महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे

शङ्करविद्याहो नाम पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

# पट्चत्वारिंशोऽध्यायः राधिकाश्रीकृष्णसंवादवर्णनम् ।

राधिकोवाच

सुचिरञ्च मृतं कामंशङ्करेण च जीवितम् । रतिः पुनःप्रियं प्राप्यकिंचकारमुदान्विता ॥  
स्त्रीणां स्वस्वामिविच्छेदो मरणादतिदुष्करः । पुनःसंमेलनं भर्तुः सुखंपरमदुर्लभम् ॥  
शिवः सतीं तां संप्राप्य सङ्गे मङ्गलकर्मणि । चिरं प्रनष्टविरहः किं चकार मुदान्वितः ॥  
फलप्रविष्टः पुंसांसर्वशोकात्सुदुष्करः । पुनःसम्मिलनं तस्याः प्राणदानाधिकंसुखम् ॥  
रतिःपुंसोविरहिणीशिवःस्त्रीविरहीचिरम् । द्वयोर्द्वयोश्चसंप्राप्तौकिम्यभूय द्वयोःसुखम् ॥  
तदेव श्रोतुमिच्छामि परंकोतुहलं मम । कृपया विदुषां श्रेष्ठ सध्यासं कथय प्रभो ॥  
मेलनं शक्तिशिवयो रतिमन्मथयोस्ततः । शोकापहं धृतवतां सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ७ ॥

नारायण उवाच ।

इत्युत्वाराधिकादेवीसम्मिता विररामह । कृष्णस्तद्वचनंश्रुत्वा सस्मितस्तामुपाव ॥  
कृष्ण उवाच

मृतं कामं पुनःप्राप्य कामार्ता कामकामिनी ।  
स्वालयं तं समानीय हरोद्गाहगृहादहो ॥ ६ ॥  
भर्तुः सुखेयं विविधं स्यात्प्रनः स्यात्किमिमुदा ।  
कारयामास यत्नेन सा रती रमणोत्सुका ॥ १० ॥

ज्ञाप्या कामस्तु तद्वायं कामशास्त्रविधायकः । रक्षयानं समागृह्य जगाम स्वालयपादनम् ॥  
शैले शैलेऽतिरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे । द्वीपे द्वीपे सिन्धुतटे पुण्योद्याने मनोहरे ॥  
काञ्चने भूमिनिकरे वटमूलेऽनिजिर्जने । नदीपुङ्खितमूष्याञ्च पुष्पिने पुष्यकानने ॥ ११ ॥  
स्रमत्पथि संयुक्ते पुंस्कोकिल्लत्पथने । सुगन्धिवायुनाफोर्णा दधनी जलश्रीकरम् ॥  
वेकनाताञ्च हरणं योनिनामहो । बलापानप्रकारेण शृङ्गारञ्च चकार सा ॥ १५ ॥

मधुशतं दिव्यं स रैमे वामया सह । दिधानिशं न क्षुब्धे संसक्तः सततं मुदा ॥  
 धनुस्ती च तत्रैव संसक्ती सन्ततं मुदा । सुरती च न विरती रतिशास्त्रविशारदी

तेविच्छेदसन्तापं विजही सा रतिमुदा । प्राप्य रत्नमपहृतं कः क्षणं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥  
 येवं कथितं सर्वं रतिसन्तापकारणम् । शृङ्गारं शक्तिशिवयोरनुलं शृणु राधिके ॥

प्वतां कर्णपीयूषं परमाश्चर्यमीप्सितम् । सर्वसन्तापहरणं सुपदं पुष्पदं शुभम् ॥  
 सन् इयशुगेहे स पार्वत्या सह शङ्करः । तदनुनां सामशाय कीडार्थं प्रययी वनम् ॥

नन्वन्दनमात्रा रत्नसारपरिच्छेदम् । रत्नसारेण रचितं रचितं विद्वकर्मणा ॥२२॥  
 तशृङ्गे सुषसने मलये गन्धमादने । नन्दने पुष्पमद्रे च पारिमद्रे च भद्रके ॥ २३ ॥

पुलिन्दे च कलिन्दे च पुण्ड्रे पिण्डारकेऽन्धके ।

वने वनेऽतिरम्ये च सागराणां तटे तटे ॥ २४ ॥

नेकट्टेऽस्तगिरेः पार्श्वपटमूले मनोहरे । चकार कठनां यत्र परित्यज्य सती शिवम् ॥  
 तातास्थानेषु रहसि पशुपतिविरजिते । यथा मनोरथं गामी स रैमे वामया सह ॥२६॥

यत्र यत्र शयं नीत्वा यत्राम धरणीतन्म् । तन् सर्वं दर्शयामास सती शम्भुमुदान्वितः  
 कृत्वा विहारं सुनिरं न पूर्णं मानसं तयोः । महाशृङ्गारमारेभे सहस्राब्दं जगत्पिता ॥

नापार्तातोऽतिमापेशो मायासक्तः स्वमायया । न कालं बुभुषेयोगी सुगेन कालकारकः  
 तनिजातिमनोमन्त्रं न धन्य परिधमः । जहत्तोःसर्वसन्तापमन्योन्यविरहोद्दपम् ॥३०॥

सुरसर्वसक्तमनसोः पुलकाक्षितगात्रयोः । कामयाणमूर्च्छितयोः पुष्पराज्याशारानयोः ॥  
 शययोः सुषसभोगाद् रतिशास्त्रपिपिषयोः । नवदन्तप्रहारश्च क्षतपिहानदेदयोः ॥ ३२ ॥

चन्द्रनागुरुकफान्मूर्धामिन्दूरपिन्दुलिमयोः ।

निषद्वेषेराफवरीश्लथयोदिच्छन्तमान्वयोः ॥ ३३ ॥

वसनानां नूपुराणां कडुजाताश्च सुन्दरि ।

वलयानां कुण्डलानां शार्द्रेः कीडां प्रसुर्यतोः ॥ ३४ ॥

पुष्पनारं इलिनयोषांप्योत्कर्षश्च बिल्वोः । मेजसा समयोऽरात्पन् कोडुया कोत्तुकेच  
 शारेच विद्वकर्मयोर्भाषात्राज्जा वामुग्धरा । सा पिपीजां चकारे च सारोत्पन्नसागरा



तपोर्नारायणानुपरायाश्च भजेन च । नारायणो हि शेषश्च गङ्गातीर्षि कच्छः ।  
 कच्छपस्य भर्षोप सर्पाधाराः सर्पाश्रयाः । महाविद्वद्यमुक्ताश्च सर्वप्राणाश्च स्तम्भिनः  
 स्तम्भितेषु सर्पारेषु त्रिलोका मयविह्वलाः । प्रह्लादस्यः सुराः सर्वे वैकुण्ठं शरणां ययुः  
 शर्यं निषेधयामासुर्नारायणपरायुजे । नारायणश्च भगवानुपायान् कर्मलोद्भवम् ॥ ४७

श्रीनारायण उवाच ।

शृङ्गारभङ्गसमयो मपिता ताभूना विधे । कालप्रयुक्तं कार्प्यंश्च सिद्धं तत्समयोक्ति  
 पूर्णं वर्षसहस्रे च न्येच्छया विरमिष्यति । शम्भोःसम्भोगमिष्टञ्च को भेदं कर्तुमीदृ  
 स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः । तस्य स्त्रीपुंसयोर्भेदो मयेज्जन्मनि जन्मनि  
 यात्यन्ते कालसूत्रे च वर्षलक्षं स पातकी । स्रष्टमानो नष्टकीर्तिरलक्ष्मीको मयेदिह  
 रम्भा युक्तं शकमिमं चकार विरतं रती । महामुर्खान्द्रो दुर्घासास्तत्स्त्रीभेदो यभूय  
 पुनरन्यां स संग्राप्य निषेध्य शूलपाजितम् । दिव्यवर्षसहस्रञ्च विजहौ विरहज्वल  
 रोहिणीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रती । महर्षिर्गौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो यभूय  
 पुनः शिवं समाराध्य प्रापाहत्याञ्च पुष्करे । दिव्यवर्षसहस्रञ्च विजहौ विरहज्वरम् ॥  
 मुनिः स्वभार्यासंसक्ते दिवसे निर्जने घने । प्रहाण्डकसुतं नीत्वा चकार विरतं ह्य  
 यभूय पुत्रविच्छेदस्तस्य कल्पान्तरे पुनः । शिवं निषेध्य संग्राप्य पुत्रं तत्याज विरः  
 हरिश्चन्द्रो हालिकश्च वृषल्या सह संवतम् । धारयामास निक्षेष्टं निर्जने तत्फलं  
 अष्टः धीराज्यचित्तेभ्यस्तं चकारावलीलया । विश्वामित्रो महर्षिश्च ताडयामास तं  
 ततः शिवं समाराध्य दातारं सर्वसम्पदाम् । सद्यो जगामवैकुण्ठं सगणो मम मनि  
 थजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम् । न भिया धारयामासुः सुरास्तञ्चाति के  
 निष्पन्ने कर्मभोगे च स मद्भक्तो मुमोच ह । मन्नामस्मृतिमात्रेण चाजगाम ममात्  
 सर्वं निषेकसाध्यञ्च निषेको यलघान् विधे । निषेकफलदाताहं निषेकः केन धार्य  
 दिव्यं वर्षसहस्रञ्च शम्भोः सम्भोगकर्मकृतम् । निषेकफलदातुस्तु निषेकफलसञ्चय  
 पूर्णं वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र महेश्वरः ।  
 येन धीव्यं पतद्भूमौ तत्करिष्यति निश्चितम् ॥ ५८ ॥

तत्र वीर्यं च भविता स्कन्दको भक्ततारकः ।

सदा मद्रस्वरूपोऽहं भयं किं वो मयि स्थिते ॥ ५६ ॥

धुनात्वं गृहंगच्छ भगवन् स्वगणैः सह । करोतु शम्भुः सम्भोगं पार्यत्या सहनिर्जने  
त्युक्त्वा कमलाकान्तःशीघ्रं स्वान्तःपुरंययौ । स्वालर्षं प्रययुर्देवाःशिवःस्वस्थो रत्नारतः  
नारायण उवाच ।

इत्युक्त्वा राधिकां कृष्णः सकटाक्षाञ्च सस्मिताम् ।

जगाम चन्दनवनं निर्जने च तथा सह ॥ ६२ ॥

प्रतीपनिर्जनं रम्यं घायुना सुरमीकृतम् । पुष्पोद्यानिः समाकीर्णं तत्र क्रीडां चकार ह ॥  
पुष्पतल्पसमाकीर्णं परपुष्टधृतध्रुते । म्रमरध्वनिसंयुक्ते कामिनीनां मनोहरे ॥ ६४ ॥

कृष्णसम्मोगमात्रेण सुखसंमूर्च्छिता च सा ।

अतीघमूर्च्छितः कृष्णो राधाङ्गस्पर्शमाश्रतः ॥ ६५ ॥

तस्थतुस्तत्र संयुक्तो राधारासेश्वरी मुने । अतीघरतिनिश्चेष्टो किं भूयः श्रोतुमिच्छसि  
इत्येवं मङ्गलं कर्म यः शृणोति समाहितः । कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य नारद ॥  
महाशोकार्णवे मग्नी भेदे पुत्रफलत्रयोः ।

मदुभृत्यानतश्च बन्धूनां मासं ध्रुत्वा लभेद् ध्रुघम् ॥ ६८ ॥

सुत उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मपुत्रश्च पिरराम महामुनिः । पुनः संप्रष्टुमारैमे देवर्षिः कर्तुफान्वितः ॥  
इति धीश्रवणैवर्से महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे मङ्गल-  
घर्णनं नाम पद्मवत्पारिशोऽध्यायः ।

## सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रदर्पमङ्गवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अथ क्रीडान्तरे राधा किं पप्रच्छ हरिं विभुम् ।

कां कथां कथयामास कथ्यतां करुणानिधे ॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उत्थाय सुखसम्भोगाद्राधां कृत्वा पुरो हरिः । उवास मलयद्रोणीं घटमूले मनोहरे  
राधां तां पत्विप्रच्छ सस्मितं सुमनोहरम् । दर्पमङ्गं पञ्चभृतो निगूढं धृतिसुन्दरम्  
श्रीराधिकीवाच ।

धुनं यशः शूद्रभृतो दर्पमङ्गश्च दैवतः । पार्श्वत्या दर्पमङ्गश्च चिवाहश्च तयोरहो ॥ ४

अधुना श्रोतुमिच्छामि दर्पमङ्गं हरेहरे ।

शेराणाञ्च व्रमेणीष घद व्यस्य जगद्गुरो ! ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

दर्पमङ्गं सुरपतेस्त्रिषु लोकेषु विभ्रतम् । कर्णवीर्युपमतुलं सुन्दरं शृणु सुन्दरि ॥ ६ ॥

पुरा शतमन्वो दर्पात् कृत्वा शतमन्वं मुदा । यभूय सर्वदैधानामध्यक्षः सम्पदा युतः ॥ ७ ॥

दिने दिने तदैश्वर्यं वर्द्धते तपसः फलाम् । दीक्षान्तं कारयामास सिद्धमन्त्रं बृहस्पतिः

न जज्ञायम हामन्त्रं पुष्करे शतयत्सरम् । यभूय मन्त्रसिद्धश्च पत्तिपूर्णमनोरथः ॥ ८ ॥

प्रणम्यरूपां प्रवृत्तिं सगन्धमुदी न मन्यसे ।

मा तं शशाप स्वगुरोः शार्ङ्ग लभेऽतिकीपनः ॥ १० ॥

एकदा प्रवृत्तेः शापाडनवृद्धिः स्वयंसिद्धिः । गुरुं कृष्ट्वा समुत्थाय न ननाम मुहुरन्वित

। न तस्यां तास्काभ्यासो तपसो कान्तं ययौ ॥

दीनो या नु सगण्डरैरिति । अथ शक्यो मणि प्राप्य कः पतोऽतो मरीच्यतः

इत्युक्त्वा वेगतः पीडाज्जगाम तारकान्तिकम् ।

प्रणम्य मातरं मत्तया नतस्कन्धः पुटाञ्जलिः ॥ १४ ॥

सर्वं निवेदनं कृत्वा हरोदोर्ध्वमुहुमुहुः । पुत्रस्य रोदनं दृष्ट्वा हरोद् तारका भृशम् ॥

घटस गच्छ गृहं नैव गुरुं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम् ।

दुर्दिनान्ते गुरुं प्राप्य पुनर्लक्ष्मीमवाप्स्यसि ॥ १६ ॥

अधुना कर्मणां भोगं भुञ्च्य मूढ दुराशय ।

दुर्दिने स्वगुरो दोषः सुदिने परितोषणम् ॥ १७ ॥

सुदिनं दुर्दिनं शत्रुः कारणं सुखदुःखयोः । इत्युक्त्वा तारकादेवी विरराम पतिव्रता ॥

जगाम शनःऽघानार्पंस्वर्णदीं सुमनोहराम् । ददर्श तत्र रुचिरां मार्जन्तीञ्जनितम्बिनीम् ॥

सस्मितां सषट्पाशं तामहत्यां गौतमप्रियाम् ।

दृष्ट्वा च विपुलश्रीणीं स्तनयुग्मं मनोहरम् ॥ २० ॥

सतस्याः शनःसम्पश्यन् मुमोहकाममोहितः । पुनःसचेतनांप्राप्यविहायघ्नानमीश्वरि ॥

मूर्ति विधाय तद्गर्भंस्तत्समीपं जगाम ह ॥ २१ ॥

गत्वा तु जिघ्रिषस्त्रां तां समाहूय स्मरातुरः । चकारविधिघंतत्र शृङ्गारं सुमनोहरम्

मूर्च्छां संप्राप्य फालेन तद्द्राञ्च मुनिकामिनी ।

निश्चेष्टा सुखसम्प्रीयाश्रिश्चेष्टस्त्रिदशाधिपः ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्या समागत्य मुनीश्वरः । ददर्श गेहे मिथुनं मीथुने च रतिप्रिये ॥२४॥

दृष्ट्वा शुकोप स मुनिर्जलप्रिय हुताशनः । पिञ्जी न चानिरोधेण धमञ्ज सुरतिक्षणम् ॥

शक्रः स चेतनां प्राप्य दृष्ट्वा च मुनिपुङ्गवम् ।

कालस्वरूपं प्राप्तेन क्षपार घातान्मुञ्जम् ॥ २६ ॥

कोपरत्नास्यनयतो देवं पादान्तं भ्रिया । उपाच नीतिघचनं जगाम शरणागतम् ॥

गौतम उवाच

धिक् स्वामिन्द्र सुरभेष्ट कश्यपात्मज पण्डित ।

प्रयोज्ज जगतां शत्रुर्गुंदिस्ते कथमीदृशी ॥ २८ ॥

मातामहः स्वयं दृशोऽवितिमांता पतिजता । कर्मसाध्यः स्वभावश्च पुनश्चर्म प्रयापने ।  
 येर्दं विज्ञाय भानी त्वं योनिलुप्तोऽसि कर्मणा । योनीनाञ्च सादृशञ्च त्वगपत्रे भवत्यिदं  
 पूर्णवर्णञ्च सततं योनिगन्धं त्वमाप्नुहि । ततः त्वयं समाराध्य योनिश्चतुर्भुवित्यति ॥

मम प्राणेश्वरी दुष्टा येन मूढ त्वया हता ।

मच्छापेन गुरोः कोपाद् भ्रष्टधामंय साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥

गुरोरपेक्षया मूढ प्राणा नापहतास्ताव । तेजस्थितोऽतिथन्धोर्मं यन्धुमेदमिया सुर ।  
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठदेवेन्द्र गच्छ धरस्वमन्दिरम् । शुभाशुभक्षयतिकञ्चिन् सर्वं यमोद्भवमवेद  
 महामुनीन्द्रधवनाद्रूपा शरश्च पुष्करम् । चकारात्पथनं मत्तया नैष्टृत्यञ्च चकार ह ॥  
 पादानतामदृश्यां तामुवाच मुनिपुङ्गवः । यनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्तिप्रदमकः ।  
 अकामाञ्चकमे शक्रः सर्वं जानाम्यहंप्रिये । तथा च परभोग्या मे न च भोग्या प्रजापते  
 परर्थायं यदुदरे कामतोऽकामतोऽपिवा । बहल्ये याति दैवेन तदुपायं निशामय ॥३८॥  
 अकामतो न दुष्टा सा प्रायश्चित्तेन शुध्यति । कामभोगेन त्वान्या सा कर्मभोगेन शुध्यति  
 पितृपाके दैवपाके पूजायां नाधिकारिणी । पट्टिर्वर्षसहस्राणि फालसूत्रं प्रयाति सा ॥  
 पट्टिर्वर्षसहस्राणि क्षयं कृत्वा स्वकर्मणः । स्वामिनो यचनात् सा तु प्रणम्य स्वामिनं निया  
 नाथ नाथेति कुर्वन्ती रुदन्ती घनमाय सा ।

पट्टिर्वर्षसहस्राणि भुक्त्वा भोगं मुनिप्रिया ॥ ४२ ॥

धीरामचरणस्पर्शात्सद्यः शुद्धा बभूव ह । त्रैलोक्यमोहनं रूपं विधाय मुनिकामिनी ॥  
 जगाम गौतमाभ्यासं मुनिः सम्प्राप्य सुन्दरीम् । अथ शक्रस्य वृत्तान्तं परमं शृणु सुन्दरी  
 पापघ्नं पुण्यधीजं तत् संव्यस्य कथयामि ते ।

एकदा च गुरोः कोपात् प्रहतेरेव हेलनात् ॥ ४५ ॥

ब्रह्महत्या घञ्भृतो बभूव हतचेतसः । शक्रस्त्यक्तगुरुद्वैवप्रस्यो दैत्यनिपीडितः ॥ ४६ ॥  
 जगाम शरणं भोतो ब्रह्माणं जगतां गुरुम् । तदाश्रया विश्वरूपश्चकार च पुरोहितम् ॥

बभूव तत्र विश्वस्तो दैवानुबुद्धिहतो हरिः ।

दैत्यदोहित्रस्य भावं विज्ञाय च विवक्षणः ॥ ४८ ॥

चिच्छेद् शिरस्तस्य तीक्ष्णवाणेनलीलया । विश्वरूपपिता त्वया ध्रुत्वा सद्यश्चुकोपह  
न्द्रशत्रो विषर्द्धस्वेत्युक्त्वा यज्ञञ्चकार ह । यज्ञकुण्डात् समुत्तस्थी वृत्रो नाममहासुरः  
स्कार निग्रहं कौपाद्देवानामवलीलया । शको महामुनेरस्थनां धञ्जं हृत्वा सुदारुणम् ॥  
तयान वृत्रं देवानां कण्ठकं दैत्वमर्दनः । ग्रहाहृत्या शुनासीरं बुद्राय हतचेतनम् ॥५२ ॥  
त्वयस्त्रपरीधाना वृत्रस्त्रीशेषारिणी । सप्ततालप्रमाणा सा शुष्ककण्ठीष्ठतालुका ॥  
[पाप्रमाणदशना महामीतञ्चकार तम् । धावन्तं परिधावन्ती बलिष्ठा हतचेतनम् ॥५४॥

खड्गहस्ता दयाहीना वेगेन परिधावति ।

इन्द्रो इडा च तां घोरां स्मारं स्मारं गुरोः पदम् ॥ ५५ ॥

विधेश मानससरो भृणालसूक्ष्मसूत्रतः ।

तत्र गन्तुं न शक्ता सा ग्रहणः शापकारणात् ॥ ५६ ॥

सा तस्थी घटशाखायां सरसस्तटसन्निधौ । भयात्र नहुयो भूपस्त्रिलोकेशो बभूव ह  
स ययाचे शचीं देवान् बलिष्ठो दुर्वलानपि । शची ध्रुत्वा महामीता तारकां शरणंययी  
तारा निर्भर्त्स्य स्पपति भृत्यपत्नीं ररञ्च च । शचीमाश्वस्य स्वगुरुर्जगाम तत्सरो मुदा  
आजुहाव शुनासीरं कातरं हतचेतनम् ॥ ५६ ॥

वृहस्पतिरुवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे घत्स भयं किं ते मयि स्थिते । त्वदीश्वरं स्वरेणैव निशामय भयंत्यज  
स्वरं वृहस्पतेर्ज्ञात्वा सर्वसिद्धीभ्यरो हृदि । सूक्ष्मरूपं परित्यज्य स्वरूपञ्च दधार सः  
। उत्पायसयःसम्पन्नान्तोगुरं तं सूर्यवर्चसम् । इडातनामसम्प्रीत्या सम्प्रीनंत्यक्तकोपकम्  
। पादाभ्युजे निपतितं रुदन्तं भयचिह्नयम् । निधाय षष्टसि प्रेम्णा रुतोद् प्रेमविह्वलः ॥

रुदन्तं पाक्पतिं तुष्टं तुष्टाय त्रिदशेश्वरः ।

पुटाञ्जलिः पुलकितो भक्तिनघातमकन्धरः ॥ ६४ ॥

इन्द्र उवाच ।

। शमस्य भगवन् दोषं ह्यसां कुट्ट ह्यानिजे । (पुत्र) भृत्पापराधं (व)न गृह्णाति सदीत्यटः  
स्यभार्प्यासु स्वशिष्येषु स्वभृत्येषु सुतेषु च ।

दुर्यतः सगणो वापि को दण्डं कर्तुमहाम् ॥ ६६ ॥

त्रिषु कोटिषु देवेषु देवकोऽहमपण्डितः । स्वप्नसादान् सुगन्धेषु क्षय्या वर्द्धितम्यः  
संहर्तुमीशमृत्यं सयंमार्तं को वापिकीटयन् । स्वयंविधातुः पौत्रश्च पुनः स्रष्टुं स्वयंक्षम  
इति तस्य स्तथ धृष्या परिशुष्यो गुरुः स्वयम् । उषान् घघनं प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षण  
गुग्गुलान् ।

स्थिरो भव महाभाग तिष्ठायां कमलां नम । साप्राप्य पद्मेश्वर्ये पूर्वम्माद्य वनुगुणन  
गच्छामरावतीं परस राज्यं कुरु पुरन्दर ।

दत्तशत्रुर्मत्प्रसादाद्गत्वा पश्य शचीं सतीम् ॥ ७१ ॥

इत्येवमुक्त्वा स गुरुः सशिष्यो गन्तुमुद्यतः । ददर्श पुरतो घोरं ब्रह्महत्यां सुदुःसहाम्  
दृष्ट्वा शको महामीतस्तं गुरुं शरणं ययौ । बृहस्पतिर्महार्मीतः सस्मार मधुसूदनम् ।  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र घाम् यभूयाशरीरिणी । स्वत्याक्षरा च बहर्धा तां शुभ्राय बृहस्पति  
संसारधिजयं नाम सर्वाशुभयिनाशनम् ।

राधिके घघनं श्रुत्वा शिष्यं रक्षाधुनेति च ॥ ७५ ॥

तदा तत् कघचं दत्त्वा शिष्याय शिष्यवत्सलः ।

चकार भस्मसात्ताञ्च हुङ्कारेणैव लीलया ॥ ७६ ॥

तदा शिष्यं गृहीत्वा च गत्वा ताममरावतीम् । ददर्श छिन्नमग्राञ्च शत्रुणा वचनाद्गुरोः  
भर्तुरागमनं श्रुत्वा शचीं संहृष्टमानसा । प्रणम्य स्वगुरुं भक्त्या स्वकान्तं प्रणनाम सा  
श्रुत्वा गमनमिन्द्रस्य समाजग्मुः सुराः प्रिये । श्रयथो मुनयश्चैव हर्षगद्गदमानसाः ॥  
योजयामास सत्कारं निर्मातुममरावतीम् । पूर्णमब्दशतं शिल्पी निर्ममे त्वमरावतीम्  
नानारत्नपिचित्राढ्यां मणिरत्नेन्द्रनिर्मिताम् ।

मतोहरो निरुपमां न हि तुष्टो यया हरिः ॥ ८१ ॥

विश्वकर्मा गृहं गन्तुं न शशाफ विनाशया । परमोद्विग्नचित्तश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥  
विज्ञाय तद्भिप्रायं तमुपाच विधिः स्वयम् । तव कर्मक्षयाश्चैव तावच्छ्रेयो भवितेति च  
श्रुत्वा तद्वचनं कारुः शीघ्रं प्रापामरावतीम् । ब्रह्मा जगाम वैकुण्ठं प्रणम्योपाच मातरम्

हृत्विंहाणमाग्यास्य प्रस्थाप्य स्वगृहञ्च तम् । विप्ररूपं समास्थाय चाजगामामरावतीम्

दण्डी छत्री शुक्लवासा विभ्रत्तिलकमुञ्ज्वलम्

भतिखर्यः शुक्लदन्तः सस्मितः सुमनोहरः ॥ ८६ ॥

वयसातिशिशुर्युद्धया ज्ञानवृद्धया विचक्षणः ।

स्वयं विधातुर्घाता च दाता च सर्वसम्पदाम् ॥ ८७ ॥

न्द्रद्वारे समुत्तिष्ठन् द्वारपालमुवाच ह । ब्रूहीदं ब्राह्मणो द्वारे त्वां शीघ्रं द्रष्टुमागतः ॥

त्येवं वचनं धृत्या द्वारिज्ञानं चकार तम् । स च शीघ्रं समागम्य ददर्श ब्राह्मणार्भकम्

ालकानांवालिकानां समूहैःपरिवेष्टितम् । हसद्विध्वं महोत्साहात्सस्मितंतेजसान्वितम्

णनाम हरिर्मत्स्या तं हरिं शिशुरूपिणम् । आशिषं युयुजे प्रीत्या तं हरिर्मत्स्यवत्सलः ॥

न्धुपर्कादिकं दत्त्वा शक्रः पूजां चकार तम् । पप्रच्छागमनं कस्माद्ददेति विप्रवालकम्

न्द्रस्य वचनं धृत्या तमुवाच द्विजार्भकः । मेघगम्भीरया वाचा बृहस्पतिगुरोर्गुरुः ॥

ब्राह्मण उवाच ।

समागतोऽहं त्वां द्रष्टुं प्रष्टुं वचनमीप्सितम् । विभ्रं नगरनिर्माणं समाकर्ण्याद्भुतं हरे

कतिवर्षञ्च निर्माणे भवान् संकल्पितो यथा ।

कतिचित्तां विश्वकर्मा निर्माणं वा करिष्यति ॥ ९५ ॥

प्यम्भूतञ्च निर्माणं न केनेन्द्रेण निर्मितम् । नैर्वाविधं सुनिर्माणे विश्वकर्मा परः क्षमः ॥

वालकस्य वचः धृत्या जहास स सुरेश्वरः । सम्पन्नदातिमत्स्य पुनः पप्रच्छ वालकम्

कर्तान्द्राणां समूहञ्च त्वया दृष्टः धृतोऽथवा ।

विश्वकर्मा कतिविधस्तं मे ब्रूहि शिशोऽधुना ॥ ९८ ॥

शक्रस्य वचनं धृत्या प्रहस्य विप्रवालकः । तमुवाच धृतिसुखं पीयूषसदृशं वचः ॥ ९९ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

जानामि कश्यपं तात त्वं तातं प्रजापतिम् । मुनिं मरीचिनामानं तत्रालञ्च तपोनिधिम् ।

नामिपमोद्भवं विष्णोः स्तुत्या तं विधिमीश्वरम् ।

रक्षितारञ्च तं विष्णुं परं सत्त्वगुणान्वितम् ॥ १०१ ॥



एकार्णापञ्च प्रलयं सत्यशून्यं भयानकम् । सृष्टिं कतिविधां शक्रः कर्त्तुं कतिविधं ध्रुवम्

ब्रह्माण्डञ्च कतिविधं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।

ब्रह्माण्डेषु कतिविधानिद्रान् को गन्तुमीश्वरः ॥ १०३ ॥

यदि संख्याऽस्ति रैगुनां धरायाञ्च सुराधिप ।

तथापि संख्या शक्राणां नाम्नेयेति विदुर्वृषाः ॥ १०४ ॥

शक्राध्यायुध्याधिकारो युगानामेकसततिः । मष्टाविंशतिशक्राणां पत्नेऽहर्निदां विधेः ।

विधेरष्टोत्तरशतमायुरेव प्रमाणतः । रसेन्द्राणाञ्च का संख्या नास्ति संख्या विधेरपि ।

ब्रह्माण्डसंख्या यत्र कः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । महोविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले

ब्रह्माण्डेऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा ।

पथं लोमनः प्रमाणेन ब्रह्माण्डाः सन्त्यसंख्यकाः ॥ १०८ ॥

ब्रह्माण्डे च कतिविधाः सुराः सन्त्येव त्वत्समाः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श पुरुशोक्त

पिपीलिकासमूहञ्च व्यापतं धनुषां शतम् । कमशस्तान् संनिरीक्ष्य जहासोच्चैर्द्विजार्भवं

नोषाच किञ्चिन्मौनी च गम्भीरः सागरो यथा ॥ ११० ॥

दृष्ट्वा हास्यं विप्रवटोर्गाथां श्रुत्वातिविस्मितः । पप्रच्छ च पुनर्धिप्रं शुष्कफण्डोष्ठतालुक

इन्द्र उवाच ।

कथं हससि विप्रेन्द्र मां शीघ्रं कारणं वद ।

त्वं वा को माययाच्छन्नः शिशुरूपी गुणार्णवः ॥ ११२ ॥

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः । आध्यात्मिकं नीतिसारं ज्ञानवीजं परं धाम

ब्राह्मण उवाच ।

दृष्टः पिपीलिकासहो हेतुरस्य निगूढकः । मा मां पृच्छ शोकवीजं तवान्यज्ञानकारणम्

सांसारिकाणां संसारवृक्षमूलनिहन्तनम् । अज्ञानतमसि छन्नं ज्ञानदीपमनुत्तमम् ॥ ११५

निगूढं सर्ववेदेषु सिद्धानामपि दुर्लभम् । योगिनां प्राणतुल्यञ्च मूढाद्दृष्टारमञ्जनम् ॥

इत्युक्त्वा तत्र सन्तस्थौ सस्मितो द्विजपुङ्गवः ।

पुनः पप्रच्छ शक्रस्तं शुष्कफण्डोष्ठतालुकः ॥ ११७ ॥

शक्र उवाच ।

ब्रूहि विप्रवटो शीघ्रं ज्ञानदीपं पुरातनम् । न जानामि शिशुःकस्त्वंज्ञानराशिःस्वमूर्तिमान्  
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । ज्ञानं भाषितुमारंभे योगीन्द्राणां सुदुर्लभम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

सृष्टःपिपीलिकासङ्घे एकैकं क्रमशो मया । सर्वे स्वकर्मणा शक्र शक्रीभूताः सुरालये ॥  
अधुना कर्मणा सर्वे क्रमशो भूतजन्मनाम् ।

अतीतकाले संप्राप्ता भूतजाति विपीलिकाम् ॥१२१॥

कर्मणाजीविनो यान्ति वैकुण्ठञ्च निरामयम् । कर्मणा ब्रह्मलोकञ्च शिवलोकञ्च कर्मणा  
स्वर्गं स्वर्गसमास्थानं पातालञ्च स्वकर्मणा । कर्मणा नरकंधोरं स्वात्मदुःखैककारणम्  
कर्मणा शूकरीगर्भं कर्मणा ध्रुवजीवनम् । कर्मणा पशुपत्नीनां कर्मणा पक्षियोपिताम् ॥  
कर्मणा कीटयोनिञ्च वृक्षत्वञ्च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा सुखीदुःखी सेव्यः सेवकपच च  
कर्मणाब्राह्मणत्वञ्चद्वैवापि स्वकर्मणा । स्वकर्मणा च प्रेतत्वं ब्रह्मत्वञ्च स्वकर्मणा ॥  
कर्मणाव्याधियुक्तञ्च कर्मणैवातिसुन्दरः । कर्मणा स्वाङ्गहीनञ्च स्वाङ्गवृद्धञ्च कर्मणा ॥  
विधाता कर्मसूत्रेण फलदाता च जीविनाम् ।

कर्म स्वमाचसाध्यञ्च स्वभावोऽभ्यासजीवकः ॥ १२८ ॥

इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकपरं ध्रुवः । सुखदं पुण्यदं सारं नरकार्णवतारकम् ॥  
संसारः स्वप्रवत्सर्वं देवेन्द्र सचराचरम् । मृत्युञ्च मस्तकस्थापी सर्वेषां कालयोगतः  
जलवुद्बुधवदत्सर्वं जीविनाञ्च शुभाशुभम् । शक्रः शश्वद् भ्रमस्येव नापिष्टस्तत्र पण्डितः  
इत्येवमुक्त्वाधिप्रश्नं सत्रतस्थो च सस्मितः । विस्मितस्त्रिदशाध्यक्षो नात्मानं बहुमन्यते  
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम मुनीश्वरः । अतिवृद्धो महायोगी ज्ञानेन धयसा महान् ॥

कृष्णाजिनो जटाधारी विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ।

घक्षःस्थले रोमचक्रं विभर्त्ति मस्तके कटम् ॥ १३४ ॥

स्थितं सर्वं मध्यदेशिकिञ्चिदुत्पाटितं स्फुटम् । समागत्यद्वयोर्मध्येतस्थोस्थाणुवदेव सः  
महेन्द्रो ब्राह्मणं दृष्ट्वा प्रणनाम मुदान्वितः । मधुपर्कादिकं दत्त्वापूजयामास भक्तितः ॥

पप्रच्छ कुशलं विप्रञ्चकार चिनयं पुनः । तुष्टावातिघिभावेन मुदा सादरपूर्वकम् ॥  
विप्रार्भकस्तेन साह्यं सम्भाषाञ्च चकार सः । स्ववाञ्छितं परंप्राहसर्वं चिनयपूर्वकम् ॥

बालक उवाच ।

कुतस्त्वमागतो विप्र किञ्चाम तव घा वद । को घात्रागमने हेतुर्निवासः केन हेतुना ॥  
घटं कथं मस्तके ते लोमचक्रञ्च पक्षसि । अत्युन्नतं मध्यदेशे किञ्चिदुत्पाटितं मुने ॥

मां चेत् कृपाऽस्ति ते विप्र सर्वं संव्यस्य कथ्यताम् ।

अत्यदुतमिदं सर्वं श्रोतुं फौतूहलं मम ॥ १४१ ॥

स शिशोर्वचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः । सर्वं स्वकीयवृत्तान्तं शकस्य पुरतो मुदा ।  
मुनिस्वाच ।

अल्पायुषा मया विप्र कुत्रापि न कृता गृहाः । न विवाहश्चोपजीव्यं मिश्रोपजीविनाऽपुनः  
लोमरोति च मन्नाम हेतुर्विप्रस्य दर्शनम् । पर्वणातपशान्त्यर्थं मस्तकस्थं घटं मम ॥  
घशःस्थलस्थितं रोमचक्रं तन्कारणं शृणु । सांसारिकाणां भयदं विवेकजननं परम् ।  
भायुःसंख्याप्रमाणं मे लोमचक्रञ्च पक्षसि । शकैकपतनं विप्र लोमैकोत्पाटनं मम ॥

उत्पाटितानि लोमानि तेन मध्ये स्थितानि च ।

ब्रह्मणो द्विपरार्धं च मम मृत्युनिरूपितः ॥ १४२ ॥

भरतरूपविधवां ब्रह्मन् मरिष्यन्ति मृता अपि । कलत्रेण च पुत्रेण गृहेण किं प्रयोक्तव्यम्  
ब्रह्मणः पतने चभुर्निमेयश्च हरेर्मयेत् । तस्यादवग्रममुलं चिन्तयामि निरगताम् ॥ १४३ ॥

दुर्लभं धोहरेर्दाम्यं भनिर्मुंतेर्गंरीयसी । न्यज्जपरसर्वमैश्वर्यं तद्भक्तित्यवधायकम् ॥ १४४ ॥  
इदं मद्गुरुणा दत्तं शम्भुना ज्ञानमुत्तमम् । पिता भक्तिः न गृहामि सालोक्यादिव्यतुष्टयम्

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्ज्ञयाम शिवमग्निधिम् ।

शिवगुरो हरिस्तथैवागतर्धानं चकार ह ॥ १४५ ॥

इन्द्रस्तु स्वज्जपद् इहा बभूव तत्र विन्मिन् । मृष्णाप्राञ्च सागर्भी भाग्येव परमेरवे

विश्वकमांशमानीय द्विपमुक्त्वा शत्रुवतुः ।

दृष्ट्वा रत्नानि सन्मूष्य तं प्रम्यापितवान् गृहम् ॥ १४६ ॥

सर्वं चिन्त्यस्य पुत्रे च शरणं गन्तुमुद्यतः । शचीं राज्यधियं त्यक्त्वा विवेकी क्षयकामुकः ॥  
 दृष्ट्वा विवेकिनं कान्तं हृदयेन चिद्रूपता । शचीं जगाम शोकार्ता सन्त्रस्ता शरणं गुरोः  
 सर्वं निवेदनं कृत्वा समानीय बृहस्पतिम् । बोधयामास शकं तं नीतिसारैर्ज कामिनी  
 गुरोः शास्त्रविशेषञ्च दम्पतीरससंयुतम् । विधाय च स्वयं प्रीत्या पाठयामास तं मुदा  
 मुनिः शास्त्रविशेषञ्च बोधयामास धाक्पतिः ।

स चकार तदा राज्यं वृन्दावनचिनोदिनि ॥ १५६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं शकदर्पविमोचनम् । साक्षाद् दृष्टो दर्पभङ्गो नन्दयज्ञे सुरेश्वरि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मप्रपञ्चे

श्रीकृष्णराधासंवादे नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

## अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

### रवेर्दर्पभङ्गवर्णनम्

राधिकोषाच्च ।

कथितंभषता मह्यं दर्पभङ्गः श्रुतो हरेः । दर्पभङ्गं रवेर्भाषि श्रोतुमिच्छामि तत्पथतः ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एकदैवोदयं कृत्वा रघिरस्तं जगाम ह । माली सुमाली दैत्येन्द्रो दीप्ति कर्तुं समुद्यतो  
 महासम्पन्नमदोम्भसो शङ्कुरस्य घरेण च । तयोश्च प्रभया रात्रिर्न भवेदिति सुन्दरि ॥३॥  
 रघुः सूर्यः स्युर्गलेन तौ जघानापलीलया । पतिर्तो सूर्यंशूलेन भूर्च्छितो घरर्षातले ॥  
 भक्तापायञ्च विनाय शङ्करो भक्तघनसलः । भागत्य जीवयामास सदाज्ञानेन तौ विभुः ॥

तौ च तत्पा शिर्यं मनया जग्मतुर्निजमन्दिरम् ।

दुद्राप च महादैवः सूर्यं हन्तुं रगा उपलभ ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा संहारकर्तारं जिघांसन्तं हरं रघिः । मिथा पलायमानश्च प्रह्लाषं शरणं ययो ॥३॥

दुद्राच च महादेवो ब्रह्मणो निलयं स्या । शूलमत्यर्थमुद्यम्य कालकालो विधेर्विधिः ॥  
दृष्ट्वा ब्रह्मा हरं सृष्टं तुष्टाव परमेश्वरम् । चतुर्वक्त्रेण वेदोक्तस्तोत्रेण जगतां पतिः ॥६॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रसीद दक्षयज्ञस्य सूर्यं मच्छरणगतम् । त्वयैव सृष्टः सृष्टेश्च समारम्भे जगद्गुरो ॥  
आशुतोष महाभाग प्रसीद भक्तवत्सल । कृपया च कृपासिन्धो रक्ष रक्ष दिवानिशम् ॥  
ब्रह्मस्वरूप मगधन् सृष्टिस्थित्यन्तकारण । स्वयं रविञ्च निर्माय स्वयं संहतुंमिच्छसि  
स्वयं ब्रह्मा स्वयं शेषो धर्मः सूर्यो हुताशनः ।

चन्द्रइन्द्रादयो देवास्त्वत्तो भीताः परात्पर ॥ १३ ॥

ऋषयो मुनयश्चैव त्वां निषेव्य तपोधनाः । तपसां फलदाता त्वं तपस्त्वं तपसांफलम्  
इत्येवमुत्त्वा ब्रह्मा तं सूर्यमानीय भक्तिः । प्रीत्या समर्पयामास शङ्कुरे दीनवत्सले ॥  
शम्भुस्तमाशिरं हृत्वा विधिं नत्वा जगद्विधिः । प्रसन्नवदनः श्रोमातालयं प्रययी मुनि  
इति धातृव्रतं स्तोत्रं सङ्कृते यः पठेन्नरः ।

भयान् प्रमुच्यते भीतो बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ १७ ॥

राजद्वारे शमशाने च मगधोत्ते महर्णवे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥१८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
श्रीकृष्णराधासंवादे नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वह्निदर्पमह्वर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

सूर्यःप्रजस्य ब्रह्माणं मुदायुक्तस्तदाज्ञया । चकारपितृभ्यं प्रीत्या तेजस्थी त्रिगुणात्मकः  
अथ बहिरयास्थानं सावधानंनिशामय । गोपनीयं पुराणेषु कर्णवीर्यवसुतमम् ॥ ३ ॥

त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुमेकदाग्निः समुद्यतः । शततालप्रमाणां तां शिखां कृत्वा भयानकीम्  
धुमितः कुपितश्चैव भृगोः शापस्य कारणात् ।

स्वञ्च तेजस्विनं मत्वा तुच्छं मत्वाऽन्यमात्मनः ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगामाघलीलया । वह्नेस्तां दाहिकीं शक्तिं तां जहदर पुरस्थितः ॥  
मायया शिशुरूपी च तमुवाच जनार्दनः । सस्मितो विनयं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥

शिशुरुवाच ।

कथं कृप्तोऽसि भगवन् भवान् मां कारणं वद ।

त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुमुद्यतोऽसि निरर्थकम् ॥ ७ ॥

त्वमेव भृगुणा शतो भृगोश्च दमनकुन्ड । एकापराधात् त्रैलोक्यं भस्मीकर्तुं न चाहंसि  
विश्वञ्च ब्रह्मणा सृष्टं तस्य पाता स्वयं हरिः । संहर्ता भगवान् रद पवमेव क्रमो भवेत्  
तत्कार्यं भस्मसात् कर्तुमीश्वरे शङ्करे स्थिते । रक्षितारं हरिं जित्वा संहारं कुरु सत्वरम्  
इत्युक्त्वा ब्राह्मणवदुःशरपत्रं पुरःस्थितम् । अतिशुष्कं करे धृत्वा दग्धं कर्तुं ददौ मुदा  
दृष्ट्वा शुष्केन्द्रेण वह्निल्लिलिहानो भयानकः । स वने शिखया विप्रं मैघेन शशिनं यथा  
न च दग्धं शुष्कपत्रं लोमैकञ्च शिशोस्तादा ।

दृष्ट्वा व्रीह्यायुती वह्निर्निस्त्रयो हि शिशोः पुरः ॥ १३ ॥

कृत्वा वह्नेर्द्वर्षमङ्गमन्तर्धानं चकार सः । वह्निः स्वमूर्तिं संदहत्य स्वस्थानं भीतयद्ययी ॥  
उक्तो वह्नेर्द्वर्षमङ्गः परं वै श्रोतुमिच्छसि । तित्यनूतनमालयानं देवानां द्वर्षमोचनम् ॥  
श्रीराधिकोवाच ।

शेषाणां द्वर्षमङ्गञ्च क्रमेण कथय प्रभो ! । कथापीयूषधारां ते धृत्वा तृप्येत कीं भुवि ॥  
श्रीनारायण उवाच ।

राधिकाचचनं धृत्वा सस्मितो भगवान् प्रभुः ।

कथां कथितुमारंभे धृत्वा रम्यां पुरातनीम् ॥ १७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे अग्नि-  
द्वर्षमोचनं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः  
दृष्यांस्तो दर्पमंगर्गनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

दृष्यांस्तो दर्पमङ्गं कथयामि शृणु त्रिये ।

महामुनेषां गिनश्च रुद्रांशम्यातिनेत्रसः ॥ १ ॥

एषदा ग्राभ्यरीषश्च कृत्वा न दादरीजितम् ।

पारणं कर्तुं मारेभे भोजयित्वा द्विजान् यद्वन ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सप्त राजगाम मुनिः स्वयम् । क्षुधातंश्च रुपातंश्च विष्णुव्रतपथकः ।  
मां भोजय महाभागेऽप्येवं स नृपमुक्तवान् । राजा भक्त्या दृष्ट्वा तस्मै परमात्रं सुषोषन् ।  
सकेशं पायसं दृष्ट्वा राजानं शनमुद्यतः । जटां निहत्य शिरसः स्थापयामास भूतले ।  
जटामध्यात् समुद्रभूतो ज्वलद्ग्निशिखोपमः । सप्ततालप्रमाणश्च पुरुषः प्रलयान्तकः ।  
नृपध्रेष्ठं स राजानं कोपेन हन्तुमुद्यतः । भयेन कम्पिताः सर्वे शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ।  
सस्मार च महाभीतो राजा मम पदाम्बुजम् । सर्वविघ्नस्योपशमः स्मृतिमात्राद्बुधनूयहं ।  
एतस्मिन्नन्तरे चक्रं दुर्निवार्यं सुदर्शनम् । तेजसा मम तुल्यञ्च कोटिसूर्यप्रभोपमम् ।  
आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च घूर्णितम् । निहत्य कृत्वापुरुषं दुद्राव मुनिपुङ्गवः ।  
सशैलसागरां पृथ्वीं फाञ्चनो भूमिमुत्तमाम् ।

भ्रामयित्वा महीं सर्वां पुनर्दुद्राव तं मुनिम् ॥ ११ ॥

धावन्तं मुक्तकेशं तं भीतं कातरमातुरम् ।

तेजसाऽऽच्छाद्य सूर्ये तं क्षीर्तिं कुर्वन्तमुत्तमाम् ॥ १२ ॥

कौलानं सप्तदशं ब्रह्मलोकमनामयम् । विप्रेन्द्रो भ्रमणं कृत्वा वैकुण्ठं शरणं यवी ।  
पादपद्मे पतन्तश्च ददर्श विप्रपुङ्गवम् । कृपया च कृपासिन्धुर्ददौ विप्राय निर्भयम् ॥ १३ ॥  
नारायणवरेणैव यभूव चिन्वरो द्विजः । पुनर्यथो हर्षिं स्तुत्वा नृपगेहं तदाहया ॥ १५ ॥

राजा मुनीन्द्रं सम्प्राप्य मोजयामास पापक्षम् ।

स्वयञ्च पारणं चक्रे सखीकः सहवान्धवः ॥ १६ ॥

राजानमाशिर्यं कृत्वा भुक्त्या विप्रो गृहं ययौ ।

मया नियोजितं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च ॥ १७ ॥

नश्यन्ति सर्वे प्रलये न मे भक्तः प्रणश्यति । सर्वे देवा मम प्राणाः भक्ताप्राणाधिकाः ।  
त्वञ्च लक्ष्मीर्महामाया सावित्री वा सरस्वती । प्रह्ला शम्भुरनन्तश्च धर्मश्चप्राह्मणास्त  
गोपाङ्गनाश्च गोपाश्च सर्वे प्रियतमा मम । तेभ्यः प्रियाः परा भक्ताः प्रियो भक्ताश्चका  
दस्या सुदर्शनं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च । तथापि न प्रतीतिर्मे स्थयं द्रष्टुं प्रयामि ।  
दुर्वाससो दर्पमङ्गः श्रुतो मत्तः सुरेश्वरि । आज्ञापय महामागे किम्भूयः धीतुमिच्छ  
राधिकोषाच ।

धन्यन्तरेर्दर्पमङ्गं कथयस्व जगद्गुरो ! पुराणे गोपनीयञ्च ध्योतुं कौतूहलं मम ॥ २० ॥  
श्रीनारायण उवाच ।

पधिकावचनं ध्रुत्वा जहास मधुसूदनः । कथां कथितुमारंभे श्रुतिरम्यां पुरातनीयाम्  
इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
दुर्वाससो दर्पमङ्गो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

धन्यन्तरेर्दर्पमङ्गवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारायणांशो भगवान् स्वयं धन्यन्तरिर्महान् । पुरा समुद्रमधने समुत्तम्यो महोदधे  
सर्वपदैषु निष्णातो मन्त्रतन्त्रपिशाचः । शिष्यो हि धैरनेपथ्य शत्रुरभ्योपशिष्यश्च  
शिष्याणाञ्च सहजैजातः कौत्सासमोद्वरि । इदं तद्वचं मार्गे नेन्द्रिदानं भयानक



सर्पास्त्रमागतं दृष्ट्वा गरुडो हरियाहनः ।

विधाय चञ्चुना शोभ्रं बुभुजे क्षुधितश्चिरम् ॥ ४० ॥

नागास्त्रं निष्फलं दृष्ट्वा कोपरकेक्षणा भृशम् । जग्राह भस्ममुष्टिञ्च शिवदत्तां पुरा द्वि  
भस्ममुष्टिं मन्त्रपूतां दृष्ट्वा च प्रेरितां यथा । पक्षवातेन चिक्षेप शिष्यं पश्चान्निधाय च ।  
निरस्तां भस्ममुष्टिञ्च दृष्ट्वा देवी चुकोप ह । जग्राह शूलमव्यर्थं हन्तुं धन्वन्तरि स्वप्न  
शिवदत्तञ्च शूलञ्च शतसूर्यसमप्रभम् । अव्यर्थशूलं लोकेषु प्रलयान्निसमप्रभम् ।  
अथ ब्रह्मा तथा शम्भुराजगाम रणाजित्म् । धन्वन्तरेश्च रक्षार्थं सम्मानार्थं सगह्यं च  
दृष्ट्वा शम्भुं जगद्गौरी विधिञ्च जगतां पतिम् । भक्त्या ननाम तावेव निःशङ्काशूलधारिणी  
धन्वन्तरिश्च गरुडः प्रणनाम सुरेश्वरो । तुष्टाय परया भक्त्या तौ च चक्रतुराशिम ।  
उवाच ब्रह्मा मधुरं हितं धन्वन्तरि मुदा । पूजार्थं मनसायाश्च लोकानां हितकामया  
ब्रह्मोवाच ।

धन्वन्तरे महामाग सर्वशास्त्रविशारद । रणं ते मनसासाद्धं न हि साम्यञ्च मे मन्त्र ।  
शिवदत्तेन शूलेन दुर्निवार्येण सर्वतः । त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षमेयं त्रिदशोष्णी ।  
ध्यानं कीधुमशाखोक्तं हृत्वा भक्त्या समाहितः ।

हृत्वा षोडशोपचारं देव्याश्च कुरु पूजनम् ॥ ५१ ॥

धास्तिफीक्तेन स्तोत्रेण मन्थनं कर्तुमर्हसि । परितुष्टा च मनसा परं तुभ्यं प्रदास्यति ।  
प्रदणो वचनं धुन्वा चकारानुमतिं शिवः । येनतेयश्च समीत्या बोधयामासयज्ञः ।  
एषाञ्च वचनं धुन्वा म्नात्या शुनिरलंलः । विधिं पुरोहितं हृत्वा पूजां कर्तुं समुप  
धन्वन्तरिरुवाच ।

इहागच्छ जगद्गौरी गृहाण मम पूजनम् । पूज्या त्वं त्रिषु लोकेषु पुरा कश्यपकन्दे ।  
त्वया जितं जगत् सर्वं देवि विष्णुम्यरुणया । तेन तेऽस्त्रप्रयोगश्च न हृतो रणभूमि  
इत्युक्त्वा न्यता भूत्वा भक्तिप्रदात्मकधरः । गृहोत्था शुक्रकुसुमं ध्यानं कर्तुं समु  
धारयम्पक्षवर्णां सर्पाङ्गुसुमनोहराम् । ईषदाव्यप्रसन्नाभ्यां शोभितां गृह्णयासना  
मां रत्नामरणभूमिताम् । सर्पामयप्रदां देवी भक्तानुप्रदकालाम् ॥ ५१ ॥

सर्वविद्याप्रदां शान्तां सर्वविद्याविशारदाम् । नागेन्द्रवाहिनीं देवीं भजे नागेश्वरीं पराम्  
ध्यात्वैवं कुसुमं दत्त्वा नानाद्रव्यसमन्वितम् । दत्त्वाभोऽशोपचारं पूजयामास तां प्रिये  
स्तोत्रं चकार यत्नाद्य पुलकाञ्चितप्रहः । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥  
धन्वन्तरिक्षाच ।

नमः सिद्धिस्वरूपायै सिद्धिदायै नमो नमः । नमः कश्यपकन्यायै घरदायै नमो नमः ॥  
नमः शङ्करकन्यायै शङ्करायै नमो नमः । नमस्ते नागवाहिन्यै नागेश्वर्यै नमो नमः ॥  
नमः व्यास्तीकजननि जनन्यै जगतां मम । नमो जगत्कारणायै जगत्कारुस्त्रियै नमः  
नमो नारायणिन्यै च योगिन्यै च नमो नमः । नमश्चिरं तपस्विन्यै सुखदायै नमो नमः ॥  
नमस्तपस्यारूपायै फलदायै नमो नमः । सुशीलायै च साध्यै च शान्तायै च नमो नमः  
इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च प्रणनाम प्रयत्नतः । तुष्टा देवी घरं दत्त्वा सत्वरं सालयं यथी  
ब्रह्मरुचैरतेयाः समाजमुर्निजालयम् । धन्वन्तरिक्ष भगवान् जगाम निजमन्दिरम् ॥  
जमुनांगाः प्रहृष्टाश्च फणाराजिविराजिताः । इत्येवं कथितः सर्वः स्तवराजो मया त्व  
विधिना मातरं भक्तिमास्तिकश्च चकार ह । तदा तुष्टा जगद्गौरी पुत्रं तं मुनिपुङ्गवम् ॥  
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तिपुक्तश्च यः पठेत् । वंशजानां नागभयं नास्ति तस्य न संशयः  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
धन्वन्तरिदर्पण-मनसाविजयो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधायञ्जनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

सर्वेषां दर्पणमङ्गलं कथितञ्च धृतस्त्वया । क्षुद्राणां महताञ्चैव कृत एव न संशयः ॥१॥  
अधुना त्वोसमुत्तिष्ठ गच्छ वृन्दावनंवनम् । गोपिका विरहात्ताश्च शीघ्रं पश्यामित्सुन्दरि

धीनारागज उवाच ।

इत्येषं घनं धृष्या मानिनी रसिकेक्षरी । उवाच कृष्णं मय मी न शक्य गन्तुमीदम्  
राधिकाघनं धृष्या प्रहस्य मधुसूतः । मामाद्देयेषमुक्त्वा शोऽन्तर्धानं नकार ॥ १० ॥

सा मनोयापिनी राधा कृष्ण म रोदनं क्षणम् ।

इतस्तन्मन्मन्वेस्य गृन्धारण्यं जगाम सा ॥ ११ ॥

पियेश गन्तव्यं रक्षन्ती शोककातरा । दर्शं गोपिकास्तत्र शोकार्ताः प्रियविह्वलाः ।  
ताभ्यां धूर्णतयना घमन्ती सख्यं काननम् । नाथनाथेति कुर्वन्ती निराहारा श्याम्बिका-  
ता दृष्ट्वा राधिका सा च प्रेमपिच्छेदकातरा । फलयामाम गृत्तान्नं मलयस्रमनादिक्र-  
ताभिः सार्धञ्च सा राधा ररोद विम्हातुरा । हानाथ नाथेभ्युष्णार्थं चिन्त्य च मुहुर्मुहु-  
पिनिन्द्य कृष्णं कोपेन तर्जयामास च क्षणम् ।

क्षणं शरोरमुत्सृष्टुं कोपात् सखाः समुच्यताः ॥ १० ॥

एतस्मिन्नन्तरं कृष्णस्तत्र चन्दनकानने । स्यात्मानं दर्शयामास राधिकां गोपिकाघन-  
राधा गोपाङ्गनाभिश्च दृष्ट्वा प्राणेश्वरं मुदा । सस्मिना च प्रदुद्राय पुलकाञ्जितविह्वला  
तूष्णं कृष्णं समाश्लिष्य जहार मुरलीं यथा । मालाञ्च पीतवसनं मग्नं कृष्णं च मानिनी  
पुनः संधारयामास घस्त्रं मालां मनोहराम् । विनोदमुरलीं तुष्टा वृन्दावनविनोदिनी ।  
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च फातरम् । मुहुर्मुहुर्मुखं धीक्ष्य चुचुभ्य परमादरम् ॥ ११ ॥  
क्षणं तं तर्जयामास क्षणं स्तोत्रं चकार ह । सकर्पूरञ्च साम्बूलं क्षणं तस्मै ददौ मुदा ॥  
अथ गोपाङ्गनाः सर्वा रुरुदुः प्रेयविह्वलाः । सर्वे निवेदयामासुः स्वदुःखं विरहोद्भवम् ।  
देहत्यागञ्च ज्ञानञ्च स्वाहारस्य विसर्जनम् । घने घनेऽहर्निशञ्च शश्वदुभ्रमणमेव च ॥

क्षणं तं भर्त्सयामासुः स्तोत्रं चक्रुः क्षणं मुदा ।

क्षणं ददुर्मूषणञ्च क्षणं तस्मै च चन्दनम् ॥ ११ ॥

काञ्चिदूचुः प्राणचौरं पश्य रक्षेति सन्ततम् । एषं पुनर्न कर्तव्यमनेनेति च काञ्चन ॥ २० ॥  
काञ्चिदूचुरिमं मध्ये यूयं कुर्वत सत्वरम् । निवध्य प्रेमपाशेन हृदये चेति काञ्चन ॥ २१ ॥

प्रतीतिर्न कदाचन । यदाञ्चेतनचौरञ्च पश्य पश्येति काञ्चन ॥ २२ ॥

काश्चिद्रूपनिन्दुरोऽयं नरघातीति कोपतः । न पुनर्वदतीमञ्च काश्चनेति च नारद ॥२३॥

विर्जनानि च रम्याणि यानि यानि धनानि च ।

भ्रमेयुर्गोपिकास्तानि कृष्णेन सह कौतुकात् ॥ २४ ॥

एवं तं गोपिकाः सर्वा मध्येष्ट्वा सदीश्वरम् । यद्युर्वान्तरे यत्र सुरम्यं रासमण्डलम्  
रासं गत्वा स्वर्णपीठे तस्थौ स रसिकेश्वरः ।

निशि भाति यथाकाशे चन्द्रस्तारागणैः सह ॥ २६ ॥

नानामूर्तीर्विधायात्र सह तामिर्जनार्दनः ।

चकार च पुनः क्रीडां कामुकीनां मनोहराम् ॥ २७ ॥

स्वयं राधाकरे धृत्वा पूर्वोक्तं रत्नमन्दिरम् । विश्वकर्मविनिर्माणमाहरोह स्मरतुरः ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाकं सुधासितम् । तत्र चम्पकतल्पेषु सुष्याप च तथा सह ॥

नानाप्रकारशृङ्गारं कामशास्त्रविशारदः । चकारकामी क्रीडाञ्च कामिन्या सह कौतुकी

यभूव सुरतित्तत्र सुचिरञ्च तयोर्मने । रतिनिष्ठा तयो रम्या विरतिर्नास्ति तन्क्षणम् ॥

एवं ती तस्यतुस्तत्र राधाकृष्णौ रसोत्सुको ।

तस्थुस्ता गोपिकाभिश्च सुरती कृष्णमूर्तयः ॥ ३२ ॥

नारद उवाच ।

भादौ राधां समुद्यार्य पश्चान् कृष्णं विदुर्वधाः ।

निमित्तमस्य मां भक्तं पद् भक्तजनप्रिय ॥ ३३ ॥

धीनारायण उवाच ।

निमित्तमस्य त्रिविधं कथयामि निशामय । जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ।

सर्वस्यै त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः ॥ ३४ ॥

राधाकृष्णेति गौरीशैल्येवं शब्दभूता धृतः । कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा धृतः

प्रसीद् रोहिणीचन्द्र गृहाणार्च्यमिमं मम । गृहाणार्च्यं मया दत्तं संज्ञया सह भास्कर

प्रसीद् कमलाकान्त गृहाण मम पूजनम् । इति दृष्टं सामयेद् कौशुभे मुनिसत्तम ॥३७॥

राशाशोचाराणादेव स्फोटो मयतिमाधवः । धाराशोचाराणात् पश्चाद्वापत्येव ससम्भ्रमः

मादौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत् । स भवेन्मातृघाती च वेदातिक्रमणे मुने ॥३॥

त्रैलोक्ये भारतं धन्यं कर्मक्षेत्रञ्च पुण्यदम् ।

ततो वृन्दायनं पुण्यं राधापादाब्जरेणुना ॥ ४० ॥

गृष्टिर्षसहस्राणि तपस्तप्तञ्च वेधसा । राधिकाचरणाम्मोजपादरेणूपलब्धये ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधा-

माधवयो रासघर्षानं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### श्रीकृष्णरासक्रीडाघर्षानम् ।

नारद उवाच ।

समतीने पूर्णमासे किञ्चकार जगत्पतिः । रहस्यं किं बभूवाथ तद्वचान् वक्तुमर्हति ॥१॥

श्रीनारायण उवाच ।

रासं निवृत्त्य रासे च रामेश्वर्यां समन्वितः । स्वयं रामेश्वरस्तस्माद्यमुनापुलिन्ययी

तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा निर्मलं निर्मले जले ।

साधं गोपाङ्गनामिध जलप्रीडाञ्चकार सः ॥ ३ ॥

एतो जगाम भगवान् भाण्डारं राधया सह । गोपाङ्गनाथ स्वगृहान् प्रवयुर्विरहातुराः ॥

प्रीडाञ्चकार बहसि भाण्डारं माण्डरीपने । माण्डरीपुष्पशय्यायां रम्यायां रमणोत्तुकाः ।

कृत्वा प्रीडाञ्च तत्रैव यासन्प्रीकाननं ययौ । रमे तत्रैव रामेशो वसन्ते सुमनाहरे ॥४॥

तत्रैव रमणं कृत्वा ययौ चन्दनकाननम् । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गो गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्

कथं चन्दनकले य मितये चन्दनकले । पूर्णचन्द्रे समुदिने पित्रहार तथा राह ॥ ८ ॥

पिहारं तत्रैव ययौ चन्दनकाननम् । रम्ये चन्दनकले य यकार इतिमोश्वरीम्

इत्य तत्रैव ययौ पञ्चनं प्रमुः । पञ्चनसमाकीर्णं तत्रेऽनितुमतोदरे ॥ १० ॥

साधं तत्र पद्ममुख्या शीतेन पद्मवायुना । चकार सुखसम्भोगं ययी निद्रां तथा सह ॥

विदाय निद्रां निद्रेशो ददर्श निद्रितां प्रियाम् ।

शयानां पद्मतल्पे च सुखसम्भोगमात्रतः ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा मुखञ्च धर्माकं शरच्चन्द्रवित्तिन्दितम् । अतिसंलुप्तसिन्दूरं लुप्तं कञ्जलमुख्यणम् ॥१३॥

संलुप्ताधररागञ्च संलुप्तगण्डपत्रकम् । चिन्नस्तकवरीभारं नेत्रोत्पलविमुद्रितम् ॥१४॥

रत्नकुण्डलयुग्मेनामृत्येन परिशोभितम् । राजितं मौक्तिकेनैव गजराजोद्भवेन च ॥१५॥

प्रेमणा स्वसूक्ष्मवस्त्रेण वह्निशुद्धेन माधवः । मार्जयामास भक्त्याचतद्वचनं भक्तवत्सलः

केशसंमार्जनं कृत्वा निर्माय कवरीं हरिः । माधवीमालतीमालाजालेन परिशोभिताम् ॥

रत्नपट्टसूत्रवदां धामवक्त्रां मनोहराम् । अतीववर्तुलाकारां कुन्दपुष्पसुशोभिताम् ॥१८॥

ददौ सिन्दूरतिलकमधश्चन्दनमुज्ज्वलम् । कस्तूरीचिन्दुना साहं परितः परिशोभिताम्

चकार पत्रकं गण्डयुग्मे चित्रविचित्रितम् । प्रददौ कञ्जलं भक्त्या नेत्रोत्पलसमुज्ज्वलम्

चकाराधररागञ्च राधायाश्चानुरागतः । कर्णभूषणयुग्मञ्च चकारातीवनिर्मलम् ॥२१॥

अमृत्यरत्नहारञ्च स्तनभारयुगोज्ज्वलम् । ददौ कण्ठे च वैकुण्ठो मणिराजिविरजितम्

वह्निशुद्धांशुकं दिव्यममृत्यं विश्वरत्नतः । घासयामास घसने कस्तूरीकुङ्कुमाक्तकम् ॥

प्रददौ पादयुगले रत्नमञ्जीररञ्जितम् । चकारालक्तकं भक्त्या पादाङ्गलिनलेषु च ॥ २४ ॥

चकार सेधां सेव्यायाः सेव्यस्त्रिजगतां सताम् ।

अहो सेधकसंभक्त्या श्वेतेन चामरेण च ॥ २५ ॥

सर्वभाषविदो श्रेष्ठो बोधज्ञः कामशास्त्रवित् ।

कामिनीं बोधयामास घासयामास घक्षसि ॥ २६ ॥

प्रेमणा च प्रददौ हस्त्यै सद्रत्नदर्पणं शुभम् । सुवेशदर्शनार्थञ्च मुखचन्द्रञ्च मार्जितुम् ॥२७॥

नानापुष्पैर्विरचितामग्नानां चन्दनीक्षिताम् ।

गण्डे सौभाग्ययुक्तायाः सौभागेन ददौ हरिः ॥ २८ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धचन्दनं ततः । ददौ प्रियायाः सर्वाङ्गे प्रियः प्रेमभरेण च ॥

पारिजातस्य कुसुमं दत्तं रहसि ब्रह्मणा । प्रददौ लक्षवर्ष्याञ्च ललितायाञ्च नारद ॥३०॥

धादौ पुरुषमुखाय्यं पश्चात्प्रकृतिमुच्यते । स भवेन्मातृघाती न वेदातिप्रमणे मुने ॥३६

त्रैलोक्ये भारतं धन्यं कर्मक्षेत्रञ्च पुण्यदम् ।

ततो घृन्दाघनं पुण्यं राधापादाङ्गरेणुना ॥ ४० ॥

षष्टिर्वर्षसहस्राणि तपस्तप्तञ्च वेधसा । राधिकाचरणाम्भोजपादरेणूपलङ्घये ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधा-

माधवयो रासवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### श्रीकृष्णरासक्रीडावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

समतीति पूर्णमासे किञ्चकार जगत्पतिः । रहस्यं किं बभूवाथ तद्वचान् घक्तुमर्हति ॥१॥

श्रीनारायण उवाच ।

रासं निर्वृत्य रासे च रासेश्वर्या समन्वितः । स्वयं रासेश्वरस्तस्माद्यमुनापुलिनपर्या  
तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा निर्मलं निर्मले जले ।

साधं गोपाङ्गनामिश्च जलक्रीडाञ्चकार सः ॥ ३ ॥

ततो जगाम भगवान् भाण्डारं राधया सह । गोपाङ्गनाश्च स्वगृहान् प्रययुर्विरहातुराः ॥  
क्रीडाञ्चकार रहसि भाण्डारे मालतीघने । मालतीपुष्पशय्यायां रम्यायां रमणोत्सुकः ।  
हृत्वा क्रीडाञ्च तत्रैव वासन्तीकाननं ययौ । रमे तत्रैव रासेशो घसन्ते सुमनोहरे ॥५॥  
तत्रैव रमणं हृत्वा ययौ चन्दनकाननम् । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गो गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्

चन्दमत्तले च सिन्धे चन्दनपल्लवे । पूर्णचन्द्रे समुदिते विजहार तथा सह ॥ ८ ॥

.. विहारं तत्रैव ययौ चम्पककाननम् । रम्ये चम्पकतले च चकार रतिमोक्षरीम्  
निर्वृत्य तत्रैव ययौ पद्मघनं प्रभुः । पद्मपत्रसमाकीर्णं तल्पेऽतिसुमनोहरे ॥ १० ॥

सार्धं तत्र पद्ममुख्या शीतेन पद्मवायुना । चकार सुखसम्भोगं ययौ निद्रां तथा स  
विहाय निद्रां निद्रेशो ददर्श निद्रितां प्रियाम् ।

शयानां पद्मतले च सुखसम्भोगमाव्रतः ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा मुखञ्च धर्माक्षं शरच्चन्द्रविनिन्दितम् । अतिसंलुप्तसिन्दूरं लुप्तं कञ्जलमुत्थणम् ।  
संलुप्ताधररागञ्च संलुप्तागण्डपत्रकम् । विघ्नस्तकवरीभारं नेत्रोत्पलविमुद्रितम् ॥  
रत्नकुण्डलयुग्मेनामूलेन परिशोभितम् । राजितं मौक्तिकेनैव गजराजोद्भवेन च ॥  
प्रेमणा स्वसूक्ष्मवस्त्रेण घट्टिशुद्धेन माधवः । मार्जयामास भक्त्याचतद्वपत्रं भक्तवत्  
केशसंमार्जनं हृत्वा निर्माय कवरीं हरिः । माधवीमालतीमालाजालेन परिशोभितम्  
रत्नपटसूत्रवदां धामधवत्रां मनोहराम् । अतीवधर्तुंलाकारां कुन्दपुष्पसुशोभिताम् ।  
ददौ सिन्दूरतिलकमधश्चन्दनमुज्ज्वलम् । कस्तूरीविन्दुना साङ्गं परितः परिशोभि  
चकार पत्रकं गण्डयुग्मे चित्रविचित्रितम् । प्रददौ कञ्जलं भक्त्या नेत्रोत्पलसमुज्ज्व  
चकाराधररागञ्च राधायाश्चानुरागतः । कर्णभूषणयुग्मञ्च चकारातीवनिर्मलम् ॥  
अमूल्यरत्नहारञ्च स्तनभारयुगोज्ज्वलम् । ददौ कण्ठे च वैकुण्ठो मणिराजिविराजि  
घट्टिशुद्धांशुकं दिव्यममूल्यं विश्वरत्नतः । धासयामास घसनं कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च  
प्रददौ पादयुगले रत्नमञ्जीररजितम् । चकारालक्तकं भक्त्या पादाङ्गलिनधेषु च ॥

चकार सेवां सेव्यायाः सेव्यस्त्रिजगतां सताम् ।

अदो सेवकसंभक्त्या श्वेतेन चामरेण च ॥ २५ ॥

सर्वभाषविदां श्रेष्ठो बोधज्ञः कामशास्त्रवित् ।

कामिनीं बोधयामास धासयामास वक्षसि ॥ २६ ॥

प्रेमणा च प्रददौ तस्यै सद्गतदर्पणं शुभम् । सुवेशदर्शनार्थञ्च मुखचन्द्रञ्च मार्जितुम्  
नानापुष्पीर्धरचितामङ्गानां चन्दनोक्षिताम् ।

गण्डे सौभाग्ययुक्तायाः सौभाग्येन ददौ हरिः ॥ २८ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धचन्दनं ततः । ददौ प्रियायाः सर्पाङ्गे प्रियः प्रेमभरेण



धामलं निर्मलं दिव्यं सद्गन्धर्वमुत्तमम् । शिवेन दत्तं रहसि ददौ तदक्षिणो करे ॥१॥  
 भक्तिसारं मणीन्द्राणां मणिमन्त्रं कौस्तुभम् । दत्तं रहसि धर्मैर्ज तस्यै सुप्रीत्ये दत्तं  
 ध्यास्यं रत्नपात्रम्यं द्धमदत्तञ्च निजने । पानार्थं प्रददौ तस्यै कामोन्मादकरं परम् ॥२॥  
 मालतीमाधवीकुन्दमन्दारश्यामकादिकम् । पुण्यं सद्गन्धर्वम्यं तस्यै सुप्रीत्ये ददौ  
 सुदुर्लभञ्च ताम्बूलं कर्पूरदिगुमंस्तृप्तम् । भक्षणं कारयामास समपन्नञ्च तां प्रियाम् ॥३॥  
 सुदुर्लभञ्च पिश्येषु वाक्पत्नेः परिनिर्मितम् । अनुत्तमममूल्यञ्च घटणेन रदःस्थले ॥३॥  
 भक्तिरक्षणगुणार्थं दत्तं भक्त्या विराजितम् ।

वारायामास घटानं पृथवा नग्नाञ्च कौतुकम् ॥ ३७ ॥

देवराजेन दत्तञ्च गजराजोद्गमौक्तिकम् । नासिकाभूषणञ्चाद्य तस्यै सुप्रीत्ये ददौ ॥३८॥  
 पतस्मिन्नक्षत्रे तत्र सुशीलाद्याभगोपिकाः । पट्टिःसत्सद्वच्यर्थञ्च राधायाःसुप्रतिष्ठिका

पट्टिशतकोटिगोपीभिः साद्रे संदृष्टमानसाः ।

भाषयुः पादनिहनेन प्रियस्य घटतः प्रियान् ॥ ४० ॥

काञ्चिच्चन्दगहस्ताश्च काञ्चिश्चामरवाहिकाः ।

काञ्चित् कस्तूरीहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काञ्चन ॥ ४१ ॥

काञ्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काञ्चित् कङ्कतिकफराः ।

काञ्चिदलकफरा घटहस्ताश्च काञ्चन ॥४२॥

काञ्चिद्वर्णहस्ताश्च पुष्पपात्रधरायराः । काञ्चित् क्रीडापद्महस्ता मालाहस्ताश्चकाञ्चन

काञ्चिदासवहस्ताश्च काञ्चिद्वभूषणवाहिकाः । करतालकराःकाञ्चिन्मृदङ्गवाहिकाःपद्म

स्वयन्त्रकराः काञ्चिद्वीणाहस्ताश्चकाञ्चन । पट्टिशशङ्खगणिकागोपीकारूपधारिका

गोलोकादागता याश्च भारतं राधया सह ॥ ४५ ॥

काञ्चिज्जगुध ननृतुस्तत्रागत्य च काञ्चन ।

। सेषां राधायाः श्वेतचामरैः ॥ ४६ ॥

पादसंवाहनं मुदा । काञ्चिद्ददौ च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने

पुण्ये घृन्दापने घने । प्रतस्थौ गोपिकासद्रे राधायक्षःस्थलस्थित

क्षणं पर्षो च माध्वीकं प्रियया सह माधवः ।

क्षणञ्चत्वाद ताम्बूलं क्षणं निद्रां ययी मुदा ॥ ४६ ॥

क्षणं चकार शृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे । क्षणं जलविहारञ्च चकार यमुनाजले ॥ ५० ॥

इत्येवं कथिता घत्स रासजीडा हरेरहो । स्वैच्छामयस्यात्मनश्च परिपूर्णतमस्य च ॥

निर्गुणस्य स्वतन्त्रस्य परस्य प्रकृतेः प्रभोः । ब्रह्मचिण्णुशिवादीनामीश्वरस्य परस्य च

कृष्णजन्मरहस्यञ्च बालक्रीडनमीप्सितम् । उक्तं किशोरचरितं किम्भूयः धौतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे

श्रीकृष्णरासक्रीडावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

नारद उवाच ।

ततः परं किं रहस्यं बभूव मुनिसत्तम । कथं जगाम भगवान् मथुरां मन्दमन्दिरान् ॥

मन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम् ।

गोपाङ्गना यशोदा च कृष्णैकतानमानसाः ॥ २ ॥

चक्षुर्निमेषविच्छेदाद् वा राधा न हि जीवति ।

कथं दधार सा देवी प्राणान् प्राणेश्वरं विना ॥ ३ ॥

ये ये तत्सङ्गिनो गोपाः शयनाशनभोगतः । कथं विसम्ममन्ते च तादृशं धान्धयं वने

श्रीकृष्णोमथुरां गत्वा किं किं कथं चकारस्तः । स्वर्गारोहणपर्यन्तं तद्वपान्बभूवर्हति

धीनारायण उवाच ।

हंसभकार वज्रश्च रामाहतो धनुर्मथान् । जगाम तत्र भगवान् मेन राज्ञा निमन्त्रितः ॥

राजाप्रस्थापयामास चाङ्गूरं भगवत्प्रियम् । मङ्गूःप्रेरितो राज्ञा गत्वा च मन्दमन्दिरम्

लं निर्मलं दिव्यं सहस्रदन्तुगुणवत् । शिवेन दत्तं रहसि ददौ तदङ्गिणे करे ॥३१॥  
 नेसारं मर्जाद्वापा मणिरत्नञ्च कौस्तुभम् । दत्तं रहसि धर्मेण तस्यै सुदीनये ददौ  
 तस्यै रत्नपात्रञ्च द्यप्रक्षत्रं निर्जने । पात्रार्थं प्रददौ तस्यै कामोन्मादकरं वरम् ॥३३॥  
 लतामाधवीकुन्दमन्दारवाम्बुकादिकम् । पुत्र्यं सद्गतपात्रञ्च तस्यै सुदीनये ददौ ॥  
 दुर्लभञ्च ताम्बूलं कपूरं च सुमं सृष्टम् । भक्षणं काययामास समयप्रश्नं तां प्रियाम् ॥३५॥  
 दुर्लभञ्च विद्येषु धार्यतेः परिनिर्मितम् । अनुत्तमममूल्यञ्च यदनेन रहस्यते ॥३६॥  
 भतियुग्ममनुपमं दत्तं मनया विराजितम् ।

पासयामास यस्य सत्त्वं श्रुत्वा नम्राञ्च कौतुकम् ॥ ३७ ॥  
 पराजेन दत्तञ्च गजराजेन्द्रमौक्तिकम् । नासिकाभूषणञ्चैव तस्यै सुप्रोत्तये ददौ ॥३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुशीलाद्याश्च गोपिकाः । पट्टिः सन्सहस्रवर्ष्यश्च राधायाः सुप्रतिष्ठिताः  
 पट्टिशतकोटिगोपीभिः साङ्गं संहृष्टमानसाः ।  
 वाययुः पादविहने प्रियस्य यदतः प्रियान् ॥ ४० ॥  
 काञ्चित्चन्दनहस्ताश्च काञ्चित्चाभरणाहिकाः ।  
 काञ्चित् कस्तूरीहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काञ्चन ॥ ४१ ॥  
 काञ्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काञ्चित् कङ्कतिकाकराः ।  
 काञ्चिदलकककरा यत्रहस्ताश्च काञ्चन ॥४२॥

काञ्चिद्दर्पणहस्ताश्च पुष्पपात्रधरावराः । काञ्चित् क्रीडापद्महस्ता मालाहस्ताश्च काञ्चन  
 करतालकराः काञ्चिन्मृदङ्गवाहिकाः परा  
 त्रिशद्रागराणि षोडशो गोपीकारूपधारिका  
 ॥ ४५ ॥  
 काञ्चन ।  
 ॥ ४६ ॥  
 च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने ॥  
 राधावक्षःस्थलस्थितः

क्षणं यथा च माध्याह्निकं प्रियया सह माधयः ।

क्षणञ्चत्वात् ताम्बूलं क्षणं निद्रां यथा मुदा ॥ ४६ ॥

अकार शृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे । क्षणं जलविहारश्च अकार यमुनाजले ॥ ५० ॥

कथिता घटस्य रासनाङ्गा हरेरहो । स्वेच्छामयस्यात्मनश्च परिपूर्णतमस्य च ॥

स्य स्यतन्त्रस्य परस्य प्रहृतेः प्रमोः । प्रत्यपिष्णुशिष्यादीनामार्थपरस्य परस्य च

तन्मरहस्यश्च घालश्रीङ्गनर्माप्सितम् । उक्तं किशोरचरितं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति धीप्रज्ञयैषर्षे मदापुराणे नारायणतारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपरण्डे

श्रीकृष्णरासश्रीङ्गावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

नारद उवाच ।

किं रहस्यं यभूय मुनिसत्तम । कथं जगाम भगवान् मथुरां नन्दमन्दिरात् ॥

नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम् ।

गोपाङ्गना यशोदा च कृष्णोक्तानमानसाः ॥ २ ॥

चक्षुर्निमेषविच्छेदाद् वा राधा न हि जीवति ।

कथं दधार सा देधी प्राणान् प्राणेश्वरं विना ॥ ३ ॥

सङ्गिनो गोपाः शयनाशनमोगतः । कथं विसस्मरुस्ते च तादृशं यान्धवं व्रजे

मथुरां गत्वा किं किं कर्म अकारसः । स्वर्गारोहणपर्यन्तं तद्गवान्धक्तुमर्हति

श्रीनारायण उवाच ।

अथ यत्र समाहूतो धनुर्मलम् । जगाम तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः ॥

गपयामास चाकूरं भगवत्प्रियम् । अकूरप्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम्

कामलं निर्मलं दिव्यं सद्गन्धमुद्रावलयम् । शिखेन दत्तं रहसिं ददौ तदक्षिणं करे ॥३१॥  
 भक्तिसारं मर्जान्म्राणां मणिरत्नञ्च कौस्तुभम् । दत्तं रहसिं धर्मेण तस्यै सुप्रीतये ददौ  
 भासयं रत्नवाचस्पत्यं दक्षदत्तञ्च निर्जने । पानागं प्रददौ तस्यै कामोद्गादकरं परम् ॥३२॥  
 मालतीमाधवीन्दुन्दमन्दारमण्यकादिकम् । पुण्यं सद्गन्धाग्रस्यं तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥  
 सुदुर्लभञ्च ताम्बूलं कर्पूरदिग्मुसंभृतम् । भक्षणं कारयामास समवनञ्च सां प्रियाम् ॥३३॥  
 सुदुर्लभञ्च पिश्येषु घाक्पनैः परिनिर्मितम् । भनुत्तमममृत्यञ्च वरुणेन रहःस्थले ॥३४॥  
 भक्तिगूढमनुपमं दत्तं मनया विराजितम् ।

वासयामास वसनं पृथवा नगाञ्च कौतुकात् ॥ ३७ ॥

देवराजेन दत्तञ्च गजराजेन्द्रमौक्तिकम् । नासिकाभूषणञ्चाक तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३८॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुशोलाद्याश्च गोपिकाः । यष्टिःसत्सहस्रव्यंश्च राधायाःसुप्रतिष्ठिताः  
 पष्टिशतकोटिगोपीभिः सार्द्धं संहृष्टमानसाः ।

आययुः पादचिह्नेन प्रियस्य घटतः प्रियान् ॥ ४० ॥

काञ्चिच्चन्दनहस्ताश्च काञ्चिच्चामरघाहिकाः ।

काञ्चित् कस्तूरीहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काञ्चन ॥ ४१ ॥

काञ्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काञ्चित् कङ्कटिकाकराः ।

काञ्चिदलकककरा घट्टहस्ताश्च काञ्चन ॥४२॥

काञ्चिदूर्ध्वहस्ताश्च पुण्यवाचधराधराः । काञ्चित् कीडापद्महस्ता मालाहस्ताश्चकाञ्चन  
 काञ्चिदासवहस्ताश्च काञ्चिद्रुभूषणवाहिकाः । करतालकराःकाञ्चिन्सृङ्गवाहिकाःपराः  
 स्वयन्त्रकराः काञ्चिद्वीणाहस्ताश्चकाञ्चन । पद्मिशाग्नरागिण्योगोपीकारूपघाहिकाः  
 गोलोकादागता याश्च भारतं राधया सह ॥ ४५ ॥

काञ्चिज्जगुश्च ननृतुस्तत्रागत्य च काञ्चन ।

काञ्चिच्चकुस्तया सेधां राधायाः श्वेतचामरैः ॥ ४६ ॥

काञ्चिच्चकुश्च देव्याश्च पादसंघादनं मुदा । काञ्चिद्ददौ च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने ॥  
 एवं कौतुकयुक्तञ्च पुण्ये वृन्दावने वने । प्रतस्थौ गोपिकासार्द्धं राधावक्षःस्थलस्थितः

क्षणं पपौ च माध्वीकं प्रियया सह माधवः ।

क्षणञ्चत्वाद ताम्बूलं क्षणं निद्रां ययौ मुदा ॥ ४६ ॥

क्षणं चकार शृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे । क्षणं जलविहारञ्च चकार यमुनाजले ॥ ५० ॥

इत्येवं कथिता घटस रासकीड़ा हरैरहो । स्थेच्छामयस्यात्मनश्च परिपूर्णतमस्य च ॥

निर्गुणस्य स्वतन्त्रस्य परस्य प्रकृतेः प्रभोः । ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरस्य परस्य च

कृष्णजन्मरहस्यञ्च बालकीङ्गनमीप्सितम् । उक्तं किशोरचरितं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णरासकीड़ावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

नारद उवाच ।

अतः परं किं रहस्यं भभूव मुनिसत्तम । कथं जगाम भगवान् मथुरां नन्दमन्दिरात् ॥

नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम् ।

गोपाङ्गना यशोदा च कृष्णैकतानमानसाः ॥ २ ॥

चक्षुर्निमेषविच्छेदाद् या राधा न हि जीवति ।

कथं दधार सा देधी प्राणान् प्राणेश्वरं विना ॥ ३ ॥

ये ये तत्सङ्गिनो गोपाः शयनाशनभोगतः । कथं विसस्मरुस्ते च सादृशं बान्धवं व्रजे

श्रीकृष्णोमथुरां गत्वा किं किं कर्म चकारसः । स्वर्गारोहणपर्यन्तं तद्गपान्बन्धुमहंति

श्रीनारायण उवाच ।

कंसश्चकार यज्ञश्च समाहृतो धनुर्मखम् । जगाम तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः ॥

राजाप्रस्थापयामास चाक्रूरं भगवत्प्रियम् । अक्रूरःप्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम्

पुष्पञ्च गृहीत्वा च सगणं मथुरां गतः । कृष्णः श्रीमथुरां गत्वा जघान नृपतिं मुं  
न रजकञ्चैव चाणूरं मुष्टिकं गजम् । चकार पित्रोरुद्धारं वान्धवाताञ्च वान्धवः ।

कुञ्जया सह शृङ्गारं कृत्वा च कौतुकेन च ।

ताञ्च प्रस्थापयामास गोलोकं गोपिकापतिः ॥ १० ॥

र कृपया विष्णुर्मालाकारस्य मोक्षणम् । कृपयाचोद्भवद्वारा बोधयामासगोपिकाः  
पनीतो भगवाननवन्तीनगरं ययौ । चकार विद्याप्रहणं मुनेः सान्दीपिनेर्गुरोः ॥१२॥

जित्वा जरासन्धं निहत्य यचनेश्वरम् । उग्रसेनञ्च नृपतिञ्चकार विधिपूर्वकम् ॥  
समुद्रनिकटं निर्माय द्वारकां पुरीम् । जहाररुविमर्षीं देवीं जित्वा नृपतिसङ्घकम्  
कालिन्दीं लक्ष्मणां शैव्यां सत्यां जाम्बवतीं सतीम् ।

मित्रविन्दां नागजित्वां समुद्राहञ्चकार सः ॥ १५ ॥

य नरकं भूयं रणेन दारुणेन च । पत्नीयोद्देशसाहस्यं विहारञ्च चकार सः ॥१६ ॥

पारिजातञ्च जित्वा शक्रञ्च लीलया । चिच्छेदबाणहस्तांश्च जित्वा च चन्द्रशेखरम्  
स्यमोक्षणं कृत्वा पुनरागत्यद्वारकाम् । आत्मानं दर्शयामास लोकांश्चप्रतिमन्दिरे ॥

स पमुदेपस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । प्राणाधिष्ठातृदेवीञ्च ददर्श तत्र राधिकाम् ॥

च शतवर्षं च सुदान्नः शापमोक्षणे । पुनर्ययौ तथा सादं पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥

तुर्दशाब्दञ्च तथा सादं जगत्पतिः । चकार रासं रामे च पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥

कादशाब्दञ्च निर्वृत्य नन्दमन्दिरे । मपुरायां द्वारकायां पूर्णमप्यशनं विभुः ॥२२॥

भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः । पञ्चविंशतिपर्यञ्च शतवर्षाधिकं मुने ।

तिष्ठन् जगाम गोलोकं पृथिव्याञ्च पुरातनः ॥ २३ ॥

यशोदायै च नन्दाय वृषमानाय धीमने ।

राधामात्रे षट्दास्यै दर्शो सामीप्यमोक्षणम् ॥ २४ ॥

सादं गोपीर्मा राधिका च कुम्हलात् । वयन्ध धर्मसेतुञ्च वेदोक्तञ्च युगे युगे

सर्वं समासेन महामुने । धौहृष्णवर्तिनं रम्यं वसुधैवकुर्वन्प्रदम् ॥ २६ ॥

सर्वं भद्रपरमेष्ठे च । भज तं परमानन्दं सानन्दं मन्दनन्दनम् ॥ २७ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ] \* श्रीकृष्णप्रभाववर्णनम् \*

स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् । परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥

सत्यं नित्यं स्यतन्त्रञ्च सर्वेशं प्रकृतेः परम् । निर्गुणञ्च निरीहञ्च निराकारं निरञ्जनं

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णराधिकासंवादो नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### श्रीकृष्णप्रभाववर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

स एवभगवान् कृष्णः सर्वात्मा पुरुषःपरः । दुराराध्योऽतिसाध्यश्च सर्वाराध्यःसुखः

निजभक्तातिसाध्यश्च भक्तस्याराध्य एव च ।

शश्वद् दृश्यः स्वभक्तस्याभक्तस्यादृश्य एव च ॥ २ ॥

दुर्ज्ञेयं तस्य चरितं कार्यं हृदयमेव च । यद्वास्तन्मायया सर्वं मोहिताश्च दुरन्तया ॥

यद्गयाद्वाति घातोऽयं कूर्मो धत्ते निराश्रयः । कूर्मोऽनन्तं विधत्ते च यद्गयेन निरन्त

विभर्ति शेषो विश्वञ्च यद्गयेन च नारद । सहस्रशीर्षां पुरुषः शिरसश्चैकदेशतः ॥ ५

सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा घसुन्धरा । शैलकाननसंयुक्ता पातालाः सप्त एव च ॥

सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकसमन्विताः ।

एवं विश्वं त्रिभुवनं कृत्रिमं परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥

यद्गयेन चित्रात्रा च प्रतिसृष्टौ च निर्मितम् ।

एवं विश्वान्यसंख्यानि लोमकूपैर्महान् विराट् ॥ ८ ॥

यद्गयेन विधत्ते च यदंशो ध्यायते हि यम् । विष्णुः पाति च संसारं यद्गयेन श्रयानि

कालाग्निस्त्रो यद्गीतः कालः संहरते प्रजाः । मृत्युञ्जयो महादेवो यद्गयाद्वयायते च र

पङ्गुणैरनुरागैश्च विरागी विरतः सदा । यद्गयेन दहत्यग्निः सूर्यस्तपति यद्गयात्



यद्गयाज्जर्मनीन्द्रश्च मृत्युभरानि जगत्पु । गद्गयेन यमः शास्ता पापिनां धर्म एव न ॥ १२ ॥  
 धत्ते च भर्त्सनां संकान् गद्गयेन नगनगान् । मृत्योर्नि प्रकृतिः मृत्यो यद्गयान्महदादिकम् ॥  
 दुर्भयं तदभिप्रायं को वा जानानि पुत्रकः । यद्गयानं न जानन्ति प्रत्यविष्णुमहेश्वरौ  
 कथं जानामि तयोश्चामहं एव सुमन्वयोः । कथं जयाम मयुतां स्वगया मृन्दायनं वनम्

कथं तप्याज्ज गोपीश्वरायां प्राणाधिकां प्रियाम् ।

यशोदां बान्धवार्दीश्वरान् वा गन्दनन्दन ॥ १६ ॥

दर्पता दर्पदः सोऽपि सर्वेषां सर्वेशः सदा । यमत्र रा-यादयञ्च सुशान्तः शापकारणान् ।  
 अन्येषां भावनाहेतोर्प्रसन्नमिस्त्रया भवेन् । एयं किञ्चिद्धितर्कञ्च कुर्वते व्रमसोद्वेगः ।  
 चकार दर्पभङ्गञ्च महाविष्णुः पुराविभुः । प्रह्लादगन्ध तथा विष्णोः श्रेयस्य च शिवस्य च  
 धर्मस्य च यमस्यापि साधवस्यचन्द्रसूर्ययोः । गरुडस्य च यद्वेश्वरं गुरोर्दुर्वाससस्तथा  
 दौवारिकस्य भक्तस्या जयस्य विजयस्य च । सुराणामसुराणाञ्च भवतः कामशक्तयोः  
 लक्ष्मणस्याजुंभस्यापि चाणस्य च भृगोस्तथा । सुमेरोश्चसमुद्राणां धायोश्चचक्रणस्य च  
 सरस्वत्याश्च दुर्गायाःपद्मायाश्चभुवस्तथा । सावित्र्याश्चैव गङ्गाया मनसायास्तथैव च  
 प्राणाधिष्ठातृदेव्याश्च प्रियायाः प्राणतोऽपि च ।

प्राणाधिकाया राधाया अन्येषामपि का कथा ॥ २४ ॥

हृत्वा दर्पञ्च सर्वेषां प्रसादञ्च चकार सः । कर्ता हर्ता पालयिता स्रष्टा स्रष्टुश्च सर्वतः  
 यं स्तोतुमीशो नालञ्च पञ्चवक्त्रेण शङ्करः । स्तोतुं नालं चतुर्वक्त्रो विधाताजगतामपि  
 स्तोतुं नालमनन्तश्च सहस्रवदगैरहो । स्वयं विष्णुर्विश्वव्यापी नालं स्तोतुं जनार्दनः  
 महाविराट् न शक्तोऽपि यं स्तोतुं परमेश्वरम् । कम्पिता यस्य पुरतः प्रकृतिःपरमात्मनः  
 सरस्वती जङ्गीभूता यं स्तोतुं परमेश्वरम् । महिमानं न जानन्ति वेदा यस्य च नारद ॥

इत्येषं कथितो ब्रह्मन् प्रभावः परमात्मनः ।

निर्गुणस्य च कृष्णस्य किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णप्रभाववर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः  
महाविष्णोरहंकार भङ्गवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

किमपूर्वं श्रुतं ब्रह्मन् रहस्यं परमाद्भुतम् । अतन्तचरितं धन्यमनन्तस्याच्युतस्य च ॥  
कथं कृष्णो महाविष्णोर्दर्पभङ्गं चकार सः । अन्येषां वा कथमहो तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥  
स्यतः श्रीकृष्णचरितमतीवमधुरं श्रुतो । अतीवमधुरं रम्यं काव्यं कविमुखात्ततः ॥  
श्रीनारायण उवाच ।

महाविष्णोरहङ्कारो बभूव सहसेति च । सर्वं मह्योमकूपेषु विश्वान्येवाहमीश्वरः ॥ ४ ॥  
संहारभैरवोभूत्वा तं जग्रास सलीलया । स्थिते मूर्द्धावशेषे च प्रसादंतंचकार सः ॥  
सर्वात्मानं ध्यायमानंस्तुतंभीतंकृपानिधिः । तच्छरीरं सुसम्पन्नं पुनरेव चकार सः ॥  
ब्रह्मणः सहसा ब्रह्मन्निति दर्पो बभूव ह ।

अहं त्रिजगतां धाता कर्ताहमीश्वरः स्वयम् ॥ ७ ॥  
मत्परः पूजितो नास्ति मत्परः पूजितेन्द्रियः । इत्येवं मनसा कृत्वा बहुदर्पो बभूव ह ॥  
तं ब्रह्मणां समूहञ्च दर्शयामास तत्क्षणम् ।  
गोलोके स्वसर्मापे च वसन्तं पुरतो विभोः ।

पञ्चवक्त्रं चतुर्वक्त्रं पङ्चत्रयञ्च ततोऽधिकम् ॥ ६ ॥  
प्रत्येकं प्रत्येकं ब्रह्माण्डौघञ्च लीलया । त्यक्तुकामं स्वदेहञ्च व्रीडया नतकन्धरम् ॥  
पुनःप्रसादं कृपया तंचकारकृपानिधिः । कालेन मोहिनीद्वारा तमपूज्यं चकार सः ॥  
पकन्यां दर्शयित्वा तं सकामञ्च चकार ह । पुनस्तदर्पभङ्गञ्च शिवद्वारा चकार सः ॥  
स्याज लज्जया देहं पुनर्देहं दधार सः । पुनश्चकार तंपूज्यं ब्रह्माणं ब्रह्मणः प्रभुः ॥

ज्ञानं ददौ महाज्ञानी ज्ञानानन्दः सनातनः ।  
विष्णोर्वभूव गर्वञ्च जगत्पाताहमीश्वरः ॥ १४ ॥

तमात्मविस्मृतं कृष्णश्चकार रामजन्मनि । अहं विश्वं विमर्षीति शेषद्वयं बभूव ह ।  
 तद्वर्षं गरुडद्वारा चूर्णीभूतं चकार सः । एकदा पूजितोनागैर्गरुडः कृष्णवाहनः ॥ १६ ॥  
 न पूजितश्च शेषेणस्यदपण पुरा मुने । गरुडेन जितं क्रोधात्तमनन्तं मनस्विनम् ॥  
 चकार मोक्षणं तस्य श्रोक्ृष्णश्च कृपानिधिः । स्वयंशिवः स्वदर्पाश्चविवाहं चकार सः ॥

तं वृत्वा मायया मोहं फारयामास स्त्रीयुतम् ।

पुनर्जहार पत्नीञ्च दक्षकन्यां महासतीम् ॥ १६ ॥

वर्षं शुशोच तद्देहं क्रोडे वृत्वा च शङ्करः ।

नानास्थानञ्च वभ्राम रुदन् शोकान्मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥

जन्मान्तरे पुनः प्राप्य तां सतीं पार्यतीं मुदा । विसस्मार च स्वज्ञानं दक्षशतःपुनःपितुः  
 पुनश्चाङ्गिरसद्वारा स्मारयामास सत्वग्म् । एकदा सस्यः शम्भुः प्रेरितस्त्रिपुरे पुरा  
 हत्वा दैत्यं शिवद्वारा त्रिपुरारिं चकार तम् । सर्वं वरञ्चसर्वस्मै दातुं शम्भुःकृपानिधि  
 स्वयं कल्पतरुमूत्वा प्रतिज्ञाञ्च चकार सः । वृकासुरोऽनुष्ठानञ्च वृत्वा वने वरंविह  
 दाम्यामि हस्तं तन्मूर्ध्नि भस्मसाद्भवतु क्षणात् ।

जगाद जगतां नाथ ईप्सितं ते भविष्यति ॥ २५ ॥

इतिलब्ध्या परं रुद्रान् गच्छन्तं शङ्करंविभुम् । हस्तं दातुंश्चतन्मूर्ध्नि प्राधावत्सत्त्वांपु  
 अतोवर्भीतः शम्भुश्च जगाम शरणं हरिम् । भगवांश्च शिवस्वार्थे दैत्यं भस्मीचकारस  
 शिवं युद्धञ्च कुर्यन्तं वाणं युद्धे पुराविभुः । लीलया जम्मणास्त्रेण जङ्घीभूतं चकार स  
 समागतं दक्षवशे शम्भुं दम्भेन लीलया । पारयामास भगवान् हस्तं दत्त्वा च तद्रूढे ।  
 केदारकन्यकाद्वारा शत्रो धर्मोऽनिर्द्वेषतः । यभूवातिशयो भीतः कुहामेव यथा शती ॥  
 तदा तस्य च शापान्ते सत्ये पूर्णं बभूव ह । त्रिपाद्वयभूव त्रेतायां द्वापरे च द्विपादिति  
 एकपाद्य चरते सोऽपि कलेरन्ते पुनः क्षयः ।

पौंड्रशांशोऽतिरुद्धश्च सम्मार वरणं विभोः ॥ ३२ ॥

तदा सस्ययुगात्तमे परिपूर्णाऽभयन् पुनः । पुनर्युगानुरोधेन क्रमेण च पुनः क्षयः ॥ ३३ ॥  
 यतो माण्डव्यस्यापि न शत्रुयोनिमवाप ह । तदा पुनः शताब्दान्ते पुनः शुद्धो बभूव ह ॥

साम्यो विमातृशापेन गलतकुष्ठो यभूव सः । चन्द्रो दर्पमदेनैव जहार च गुरोः प्रियाम्  
 यभूव दर्पमङ्गोऽस्य यश्मप्रस्तो यभूव सः । सूर्यो दर्पात्तेजसश्च हन्तुं शङ्करकिङ्करम् ॥  
 सुमालीत्यमिधं दैत्यं जगामाशु गिरिं प्रति । अहर्निशं दीप्तिकरं कुर्यन्तं विषयं रवेः ॥३७  
 सूर्येण भीतो दैत्यश्च शङ्करं शरणं ययौ । सूर्यं दृष्ट्वा शङ्करश्च जप्राह शूलमेव च ।  
 भीतो दुद्राव सूर्यञ्च दृष्ट्वा तं शूलिनं मुने ॥ ३८ ॥

जयान काश्यां शूलेन शूली काशीश्वरो रविः । मूर्च्छां संप्राप्य शूलेन दर्पमङ्गो यभूव ह  
 सान्द्रान्धकारः सहसा जप्राह पृथिवीतलम् ।  
 आशुतोषो महादेवो जीषयामास तत्क्षणम् ॥ ४० ॥

तुष्टाव शङ्करं सूर्यो लज्जितोऽपि भयेन च । कृत्वा तमाशिर्यं तुष्टो ययौ गेहं कृपानिधिः  
 विभुर्गच्छमतो दर्पं यमञ्ज लीलया पुरा । निःश्वासैः प्रेरितस्यापि शिवस्य धृपमस्य च  
 आगच्छतश्च घैकुण्ठं पृष्ठे कृत्वा शिवं पुरा । द्रष्टुं समागतं भक्त्या देवं नारायणं परम्  
 घर्द्धिर्दोषो भृगोः शापात् सर्वभक्षो यभूव ह । गुरोः स्वभार्याहरणाहर्षभूर्णो यभूव ह ॥  
 दुर्वाससो दर्पमङ्गो यभूव हाग्घरीपतः । सुदर्शनेन चक्रेण विष्णोर्दुर्घिपहेण च ॥ ४१ ॥  
 जयस्य विजयस्यापि दर्पमङ्गं चकार सः । घैकुण्ठान् पतितस्यापि प्रह्लाशापच्छलेन च ॥  
 नृसिंहेन हतः सोऽपि हिरण्यकशिपुर्वधा । शूकरेण हिरण्याक्षो लीलया च रसातले ॥  
 रावणः कुम्भकर्णश्च निहतौ रामबाणतः । जन्मान्तरे च लङ्कायां ब्रह्मणा प्रार्थितस्य च  
 शिशुपालो हि निहतः कृष्णबाणेन लीलया । दन्तवकश्च सहसा परिपूर्णोऽत्र जन्मनि ॥  
 सुराणां दर्पमङ्गञ्च दैत्यद्वारा चकार ह । असुराणां सुष्टद्वारा विरोधेन परस्परम् ॥५०॥  
 पिथिद्वारा दर्पमङ्गं भयतश्च चकारसः । भवानासीन्नारदश्च पुरा पुत्रः प्रजापतेः ॥५१॥

गन्धर्वश्च पितुः शापान् शूद्रोपुत्रतस्तः क्रमान् ।  
 सतः पुनर्नारदश्च प्रसादादधुना विभोः ॥ ५२ ॥  
 स साध्यं विश्वमिति कामदर्पो यभूव ह । तं प्रमत्तं हरद्वारा भस्मसाद्य चकार सः ॥  
 नः कृत्वा प्रसादन्तं जीषयामास लीलया । एकान्तिकञ्च तद्गन्तं स च नारुष्यं करोति ह  
 कार दर्पमङ्गञ्च दर्पिणो लक्ष्मणस्य च । रणे शङ्करस्मृतेन रावणप्रेरितेन च ॥ ५५ ॥



वपुः सर्वसाध्वीनां दीधानां देवपूजिते । त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यञ्च निष्कलम्  
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी । रासेश्वर्यधिदेवी त्वं त्वरकलाः सर्वयोपितः

कैलासे पार्वती त्वञ्च क्षीरोद्रे सिन्धुकन्यका ।

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥ ७८ ॥

वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्द्विधदेवी सरस्यती ।

गङ्गा च तुलसी त्वञ्च सावित्री प्रहलोकतः ॥ ७९ ॥

कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् ।

रासे रासेश्वरी त्वञ्च वृन्दा वृन्दाघने घने ॥ ८० ॥

कृष्णप्रिया त्वं माण्डरी चन्द्रा चन्दनकानने । विरजा चम्पकघने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥

पद्मावती पद्मघने मालती मालताघने । कुन्ददन्ता कुन्दघने सुशीला केतकीघने ॥ ८२ ॥

कदम्बमाला त्वं देवी कदम्बकाननेऽपि च । राजलक्ष्मी राजमेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ॥

रत्युक्तया देयताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । रुद्रुर्नम्रघनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥

इति लक्ष्मीस्तयं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम् ।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभेद् ध्रुवम् ॥ ८५ ॥

भभार्थो लभते भार्यां विनीताञ्च सुतां सतीम् ।

सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिमुप्रियवादिनीम् ॥ ८६ ॥

पुत्रपौत्रपती शुद्धा कुलजां कोमलां पराम् । अपुत्रो लभते पुत्रं वीष्णवं विरजीयितम् ॥

परमेश्वरपुत्रञ्च विद्यापतं यशस्विनम् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भ्रष्ट्रीलंभते श्रियम् ॥

हतकधूलभेद् यन्धुं धनघ्नो धनं लभेत् ।

कीर्तिहीनो लभेत् कीर्तिं प्रतिष्ठाञ्च लभेद् ध्रुवम् ॥ ८९ ॥

सर्वमूल्यं स्तोत्रं शोकसन्तापनाशनम् । हर्षानन्दकरं शरवद्धर्ममोक्षसुहृत्पदम् ॥ ९० ॥

इति धीश्वरवैषणं महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे

मगपद्गुणपणने लक्ष्मीस्तोत्रकथने नाम पद्मञ्चाशक्तमोऽध्यायः ।

## सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पर्युर्महश्चवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

देवानां स्तयनं श्रुत्वा त्यक्त्वा च रोदनं सती ।

उवाच सुप्रसन्ना तान् तेषां स्तोत्रेण नारद ॥ १ ॥

महालक्ष्मीख्याच ।

त्यजामि देहं न प्रोधात्र वैराग्येण साम्प्रतम् ।

इदं हृदि समालोच्य देवास्तच्छ्रूयतामिति ॥ २ ॥

यस्मिन् सद्देशे महति सर्वसाम्ये च निर्गुणे । सर्वात्मनि सदानन्दे समता तृणशैलयोः  
भ्रूमङ्गलीलया लक्ष्मीलक्षं म्रष्टुमलञ्च यः ।

भृत्ये स्त्रियां यत्समता किं कार्यं तस्य सेवया ॥ ४ ॥

सत्पत्नीनां प्रधानाऽहं निरस्ता द्वारिणाऽधुना । उद्धृत्य भृत्यभृत्येन परिपूर्णं नेप्सिता  
त्यक्ष्यामि जीवनमहमसौभाग्या च स्वामिनि । बहो च कामनां कृत्वा यथामद्रं भवेत्पुत्र  
या स्त्री भर्तुरसौभाग्या ससौभाग्या च सर्वतः ।

शयने भोजने तस्या न सुखं जीघनं वृथा ॥ ७ ॥

यस्या नास्ति प्रियप्रेम तस्या जन्म निरर्थकम् । तत् किं पुत्रे धने रूपे सम्पत्ती यौवनेऽथवा  
यद्भक्तिर्नास्ति कान्ते च सर्वप्रियतमे परे । साऽगुचिर्धर्महीना च सर्वकर्मविचर्जिता ॥ ६ ॥  
पतिर्बन्धुर्गतिर्मता दैवतं गुरुदेव च । सर्वस्माच्च परः स्वामी न गुरुः स्वामिनः परः ॥

पिता माता सुतो भ्राता क्लिष्टा दातुमिदं धनम् ।

सर्वस्वदाता स्वामी च मूढानां योपितां सुधा ॥ ११ ॥

काविदेव हि जानाति महासाध्वी च स्वामिनम् ।

अतिसद्वंशजाता च मुशीला कुलपालिका ॥ १२ ॥

असद्वंशप्रसूता या दुःशीला धर्मवर्जिता । मुखदुष्टा योनिदुष्टा पतिं निन्दति कोपतः ॥  
या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुरुम् । कुम्भीपाके पवति सा याचदिन्द्राश्चतुर्दश  
व्रतं चानशनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम् । पतिभक्तिविहीनाया मस्मीभूतं निरर्थकम् ॥

अतः किञ्चिन्न घश्यामि निष्ठुरं पतिमीश्वरम् ।

भृत्यापरोर्ध्वदेवस्य प्राणांस्त्यक्ष्यामि निश्चितम् ॥ १६ ॥

पतिदोषे महासाध्वी पतिज्ञानिष्ठुरं घदेत् । यदि सोढुमशक्ता च प्राणांस्त्यजतिधर्मतः  
पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तपः । पतिसेवा परो धर्मः पतिसेवा सुरार्चनम् ॥  
पतिसेवा परं सत्यं दानतीर्थानुकीर्तनम् । सर्वदेवमयः स्वामी सर्वदेवमयः शुचिः ॥  
सर्वपुण्यस्वरूपश्च पतिरूपी जनार्दनः । या सती भर्तुरुच्छिष्टं भुंक्ते पादोदकं सदा ॥

तस्या दर्शमुपस्पर्शं नित्यं घाञ्छन्ति देवताः ।

ततः सर्वाणि तीर्थानि पुनन्ति पापिनो ह्यघात् ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा च महासाध्वी रुरोद् च मुहुर्मुहुः । उवाच ब्रह्मा भीतश्च भक्तिप्रदात्मकन्धरः  
ब्रह्मोवाच ।

भविष्यति न भद्रञ्च जयस्य विजयस्य च ।

त्वया न शक्ती तौ मूर्धा प्रियापराधभीतया ॥ २३ ॥

सापराधश्चैर्धर्मिष्ठः क्षमया नाशयेद् यदि ।

सर्वनाशो भवेत्तस्य निश्चितं मा चिरं सति ॥ २४ ॥

यदि शत्रुं न शकश्च न दण्डं कर्तुमीश्वरः । सापराधे च पुरे धर्मो दण्डं करोति च ॥  
सर्वं क्षमस्व हे मातर्गच्छ गच्छ प्रियान्तिकम् ।

माञ्च त्वत्स्थामिनो भक्तं नियोज्य सृष्टिकर्मणि ॥ २६ ॥

इत्युक्त्वा तां पुरस्कृत्वा साङ्गं देवैर्मनीन्द्रकैः । शीघ्रं जगाम चैकुण्ठं चैकुण्ठे स्तोतुमीश्वरः  
तत्र गत्वा जगन्नाथं नृणां कमलासनः । चतुर्वक्त्रैश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्वेदविदां गुह्यम् ॥२८

प्रह्वणः स्तवर्न ध्रुत्वा दृष्ट्वा लक्ष्मीं पुरःसराम् ।

रुदन्तीं नम्रवदनामुवाच कमलापतिः ॥ २६ ॥



श्रीभगवानुवाच ।

सर्वं जानामि सर्वशः सर्वात्मा सर्वपालकः । सर्वशास्ता च सर्वाधिकारणं कमलोद्भव  
भक्ते कलत्रे बन्धो च सर्वत्र समता मम । पिशोभतोऽतिमद्वक्तः कलत्रात्पर एव च ॥

मद्वक्तो तप पुत्रो च द्वारपालो दुर्न्तको । क्षम मामपराधञ्च तयोश्च भक्तिपूर्वयोः ॥

मद्वक्तिपूर्णा यत्पान् दैत्येभ्यो न विभेति च ।

रक्षितो मम ध्रुकेण भक्तिमार्ध्याफदुर्मदः ॥ ३३ ॥

इत्युत्तया जगतां नाथो लक्ष्मीं हृत्वा स्वयशसि ।

समानीय द्वारपालं तमुवाचेदमेव च ॥ ३४ ॥

मा भैर्वत्स सुखं तिष्ठ मयं किं ते मयि स्थिते ।

मद्वक्तानाञ्च कः शास्ता गच्छ घटसात्मनः पदम् ॥ ३५ ॥

इत्युत्तया भगवांस्तत्र पिरराम महामुने । ययुर्देवाश्च स्वस्थानं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥

नारायणधन्वः श्रुत्यां द्वारपाल उवाच तम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मबन्धरः ॥

जय उवाच ।

नाहं विभेमि देवांश्च लक्ष्मीं मुनिगणांस्तथा । त्वदीयचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

वैराग्यमोचनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पृथिवीदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

यभूव दर्पः पृथ्व्याश्च सर्वाधाराऽहमेव च । पृथुद्वारा च तदप्यं जघान चैव तन्प्रभुः ॥

यभूव दर्पः सावित्र्या वैदमाताऽहमेव च । काले चकार तस्याश्च सपुत्राया मदशानम् ॥

यभूव दपो गङ्गाया अहं निर्वाणदेति च । जहनुद्वारा च तदपं जहार जगतां पतिः ॥३॥  
जहार मनसादपं दुर्गाद्वारा पुरा मुने । विरजोपगतं कृष्णं भर्त्सयामास कोपतः ॥४॥  
प्रविशन्तं रासगृहं गोपीभिर्विनिवारितम् । दौवारिकाभिर्वेञ्चैश्च ताडितं तञ्च दर्पतः ॥५॥

सुदाम्ना निजभक्तेन राधा शता बभूव ह ।

देवेन सहसा ध्वस्ता गोलोकादागता धराम् ॥ ६ ॥

वृषभानुस्त्रियां जाता कलावत्याश्च नारद । कृष्णस्तदनुरोधेन कंसभीतिच्छलेन च ॥  
समागतो नन्दरोहं तेनाहं नन्दनन्दनः । सुदाम्नः शापविच्छेदपालनार्थं जगत्पतिः ॥८॥  
पुनर्जगाम मथुरामित्याह कमलोद्भवः । अस्याः परमभिप्रायं को वा जानाति नारदं ॥  
कथं जातः समायातो मथुरायाश्च गोकुलम् । इत्येवं कथितं सर्वमपरं श्रूयतामिति ॥

यथा जगाम मथुरां मन्दात् स नन्दनन्दनः ।

शोकं नन्दो यशोदा च यथा सम्प्राप दैवतः ॥ ११ ॥

यथा गोपाश्च गोप्यश्च गावो वृन्दावने वने ।

वने वने वा घन्यास्ते घन्या जानन्ति किञ्चन ॥ १२ ॥

घनं रम्यं घन्यपद्मपि त्यक्त्वा घने घने । श्मशाने वाश्मशाने वा वन्याम भामिनी मुने ॥  
ग्रामं त्यक्त्वा च वन्याम चेतनावेत्नाक्षणम् । क्षणेनवर्जिता सा च प्रार्थयन्ती प्रतीक्षणम्  
क्षणंक्षणं सा श्वसन्ती चेतनं कुर्वतोक्षणम् । क्षणं विशन्ती तल्पे च क्षणमुत्थायतिष्ठति  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

पृथिवीदर्पभङ्गवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनपष्टितमोऽध्यायः

विस्तरेण इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवं कथितं सर्वं सर्वेषां दर्पभङ्गनम् । इन्द्रस्य दर्पभङ्गश्च विस्तारेण निशामय ॥ १ ॥

इन्द्रो वर्षात् समायाञ्च रदासिदासनाकरात् ।

नोसम्भो म्यगुरुं दृष्ट्वा प्रक्षिपुञ्च मृहस्पतिम् ॥ २ ॥

शुरुजंगामातिरुष्टः स्थापमाने समरसरः । तथापि ह्यगया धर्मो स्नेहाद्य न शशाप तम् ॥

पिना शापेन तर्ह्यभूर्णीभूतो यमूय ह ।

अन्यभेद शपेदमात् प्रेम्णा वा चानि किलियम् ॥ ४ ॥

तथापि तञ्च फलति धर्मस्तं हन्ति नारद । यो यं हिंस्रं सापराधं शपेत्कोपेन धार्मिकः ॥

पिनाशः सापराधस्य धर्मो नष्टश्च धर्मिणः । तेनाधर्मेण शक्रस्य ब्रह्महत्या यमूय ह ॥

भीतस्त्यतया स्वराज्यञ्च प्रययौ स सरोधरम् । सरसः पद्मसूत्रे च निवासञ्चकार सः

गन्तुं न शक्ता हत्या च पुण्यं विष्णुसरोधरम् । श्रेष्ठं भारतवर्षे च तपस्थानंतपस्थिनाम्

तदेव पुष्करं तीर्थं प्रवदन्ति पुराविदः । राज्यभ्रष्टं हरिं दृष्ट्वा हरिमिको नराधिपः ॥ ६ ॥

बलाज्जहार तद्राज्यं नहुषो नाम धार्मिकः । दृष्ट्वा शचीं धरारोहामनपत्याञ्च सुन्दरीम् ॥

स्वर्गागङ्गाञ्च गच्छन्तीं हृदयेन विदूयता । नययौघनसम्पन्नां रत्नालङ्कारभूषिताम् ॥११॥

सुकोमलां तां सुदतीं घदन्तीञ्च महासतीम् ।

मूर्च्छां सम्प्राप राजेन्द्रः कामेन यौवनेन च ॥ १२ ॥

उवाच ततपुरःस्थित्वा सुविनीतश्च दासवत् ।

नहुष उवाच ।

धातुर्गतिर्विचित्राऽहो न बोध्या च सतामपि ॥ १३ ॥

ईदृशी स्त्री भगाङ्गस्य लुब्धस्य परयोविति । ईदृशी सुन्दरी यस्य परभाव्यासु कृमनः

अस्या भग्रे च का रम्भा कोर्वशी का तिलोत्तमा ।

का वा मेना घृताची वा रत्नमाला कलावती ॥ १५ ॥

कालिकासुन्दरीभद्राघती चम्पावतीतथा । एताश्चाप्सरसश्चास्याः कलानार्हन्तियोदृशीम्

इमां विहाय मूढोऽन्यां कथं गच्छति मन्दधीः ।

अस्माकं योपितो याश्च चेष्टीतुल्याश्च निश्चितम् ॥ १७ ॥

सुप्रीता भय किङ्करम् । यथा राधा च गोलोके कृष्णवर्णसिराज

वैकुण्ठोरसि वैकुण्ठे यथा लक्ष्मीः सरस्यती । ब्रह्मलोके च ब्रह्माणी यथैव ब्रह्मवक्षसि  
 यथा मूर्तिर्महासाध्वी धर्मवक्षःस्थलस्थिता । पातालतललक्ष्मीर्या यथैवान्तवक्षसि ॥  
 यथा पुष्टिर्गणेशे च देवसेना च कार्तिके । वरुणे वरुणानी च यथा स्वाहा हुताशने ॥

यथा रतिः कामदेवे यथा संज्ञा दिनेश्वरे ।

घायोः पत्नी यथा घायो यथा चन्द्र च रोहिणी ॥ २२ ॥

यथादिर्तिर्देवमाता तव श्वधूश्च कश्यपे । यथा हिमालये मेना पितृकन्या च मानसी ॥  
 लोपामुद्रा यथागस्त्ये यथा तारा वृहस्पती । कर्दमे देवहृती च वशिष्ठेऽरुन्धती यथा  
 मनो च शतरूपेव दमयन्ती नले यथा । तथा भव त्वं सौभाग्या मम वक्षसि सुन्दरि  
 लीलया च सहस्रेन्द्रान् छेतुंशकोऽहमोश्वरः । नारीवाञ्छति जाञ्छ स्वामिनो बल्यत्तम्  
 सुमेरुगिरिकूटे च दुर्गमेऽतिरुहःस्थले ।

अथवामलये रम्ये रम्ये चन्दनघायुना ॥ २७ ॥

विश्वम्भके सुरसने किंघा नन्दनकानने । निकटे शतशृङ्गस्य पुष्पमद्रानदीतटे ॥ २८ ॥  
 गोदायरीतीरनीरे समीपे शीतघायुना । चम्पायतीनदीतीरे रम्ये चम्पककानने ॥ २९ ॥  
 श्मशानेऽतिश्मशाने च रम्येऽतिनिर्जने घने । शैले शैलेऽतिहसि कन्दरे कन्दरे घने ॥  
 द्वीपे द्वीपे दुर्गदुर्गे नद्यां नद्यां नदे नदे । समुद्रपुलिने रम्ये सर्वजन्तुविषर्जिते ॥ ३१ ॥  
 विद्रग्धाया विद्रग्धेन सङ्गमो निर्जने सुखः । पुष्पचन्दनशय्यायां पुष्पचन्दनचर्चिते ॥  
 मां शृहीत्वा कुरु रतिं पुष्पचन्दनचर्चितम् । ब्रह्मणश्च परेर्देवी जरामृतयुविषर्जितम् ॥  
 मां कुरुष्व पतिं भद्रे नित्यं सुखिण्यीवनम् । सुवेशं सुन्दरं धीरं कामशास्त्रविशास्वम्  
 शरत्पार्वणचन्द्रास्यं चन्द्रवंशसमुद्बधम् । भागतामुर्वशीं मह्यं त्यक्तपन्तञ्च याचतीम् ।

न मे स्पृहा परस्त्रीषु तयां दृष्टा लोलुपं मनः ।

त्यक्ता मया स्वमार्याश्च रत्नभूषणभूषिताः ॥ ३६ ॥

अथवा रक्षिताः सर्पा दासीः वृत्त्या वरानने ।

रत्नेन्द्रसारं मालां ते दास्यामि वरुणस्य च ॥ ३७ ॥

निर्जित्य वरुणं युद्धे ब्रह्मास्त्रेणातिनेत्रसा । घट्टिगुप्तं वरुण्युगं जित्वा यहि सुदुर्गलम् ॥

दास्याम्यरीष ते देवि विद्योऽयं मां नियोजय । मणीन्द्रसारनिर्माणमकराकारकुण्डले ॥  
 दास्यामि देवान्निर्जित्य देवमानुष सुन्दरि । करभूषणयुग्मश्चात्यमूल्यरत्ननिर्मितम् ॥  
 दास्याम्यरीष रोहिण्याध्वन्नं जिघ्यातिदुर्लभम् । यद्दमप्रन्तमनिष्ट्यां ममैव पूर्वपूज्यम्  
 पिना युद्धेन भीतो मां हवया वा प्रदास्यति । अन्यास्तापिनिर्माणं कृणन्मञ्जीरयुग्मकम्

दास्याम्यरीष पार्यत्या मिश्रां कृत्वा महेश्वरम् ।

आशुतोषं स्तुतिवशं भक्तेशञ्च कृयामयम् ॥ ४३ ॥

सर्वसम्पत्तिदातारं परं कल्पतरुं शुभे । अमूल्यरत्ननिर्माणक्रेयूरयुगलं प्रिये ॥ ४४ ॥

दास्यामि तेऽद्य गङ्गाया युद्धं कृत्वा सुदुर्लभम् ।

यद्दुल्लोयुगलं चाह सूर्यपत्न्या मनोहरम् ॥ ४५ ॥

सद्रत्नसारनिर्माणं दास्याम्यद्य सुशोभने । अमूल्यरत्ननिर्माणं दर्पणञ्चातिनिर्मलम् ॥४६॥

दास्यामि ते कामपत्न्याः कामं जित्वा च लीलया ।

क्रीडाकमलमष्टानं कमलायाश्च सुन्दरि ॥ ४७ ॥

मिश्रां कृत्वा च दास्यामि स्तुत्वा च कमलापतिम् ।

अङ्गुलीयकरत्नानि विश्वेषु दुर्लभानि च ॥ ४८ ॥

साविथ्याश्च प्रदास्यामि कृत्वा च ब्रह्मणस्तथा ।

स्वयं गीतं प्रगायन्तीं मूर्च्छनाधृतिसंयुताम् ॥ ४९ ॥

वाणोवीणां प्रदास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम् । रत्नपाशकसङ्कुञ्च विश्वकर्मविनिर्मितम्

कुन्जरेपत्न्या दास्यामि पादाङ्गुलिचिभूषणम् । इत्येवमुक्त्वा नहुषः पपात तत्पदाभ्युजे ॥

उवाच तं शची प्रस्ता राजमार्गगतं नृपम् ॥ ५१ ॥

उत्थाप्य तं करे धृत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । स्मारंस्मारं पदाम्भोजं महासाध्वी हरोर्गते

शच्युवाच ।

भृशु घत्स महाराज हे तात भयमञ्जन । भयत्राता च राजा च सर्वेषां पालकः पिता ॥

स्रष्ट्रीश्च महेन्द्रोऽद्य त्वञ्च स्वर्गे नृपोऽधुना ।

यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव विधितम् ॥ ५४ ॥

शुक्लपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः । पित्रोःस्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नीच मातुली  
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता । गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसः षोडश मातरः ॥

त्वं नरो देवभार्याऽहं माता ते वेदसम्मता ।

गच्छ वत्सादिति रज्जुं यदि चेच्छसि मातरम् ॥ ५७ ॥

सर्वेषां निष्कृतिश्चास्ति न वत्स ! मातृगामिनाम् ।

कुम्भीपाके ते पचन्ति यावद्वै ब्रह्मणो वषः ॥ ५८ ॥

ततोभवन्ति क्रमयःवेश्यायोनिषु कल्पकान् । ततश्च कुष्ठिनो म्लेच्छा भवन्तिसतजन्मसु  
नास्त्येष निष्कृतिस्तेषामित्याह कमलोद्भवः । एवं चिरक्षत्रशूद्राणां ब्राह्मणागमने नृप  
वेदेषु निष्कृतिर्नास्ति चेत्याङ्गिरसमाहितम् ।

स्वर्गसम्पत्तिभोगश्च सुखं संसारिणां ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

मुमुक्षूणाञ्च मोक्षश्च तपश्चैव तपस्विनाम् । ब्राह्मणानाञ्च ब्राह्मण्यं मुनीनां मौनमेव च  
वेदाभ्यासो वैदिकानां कधीनां काव्यघर्षणम् ।

विष्णुदास्यं वैष्णवानां विष्णुभक्तिरसं परम् ॥ ६३ ॥

विष्णुभक्तिं विना नैव मुक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः ।

मलाश्रयेषु च क्लेशेषु दुर्गन्धिनिलयेषु च ॥ ६४ ॥

साधूनां किं सुखं साधो स्त्रीणां योनिषु मां वद ।

कुलप्रदीपे राजेन्द्र राज्ञां मण्डलवर्तिनाम् ॥ ६५ ॥

रुधश्च भारते जन्म पुण्येन बहुजन्मनाम् । पन्नानां चन्द्रवंश्यानां नृपाणां क्षामिहेतवे ॥

त्यमाचिरासीस्तेजस्वी प्रीप्समध्याह्नमास्करः । सर्वेषामाश्रमाणाञ्च स्वधर्मध्वजः परम्

स्वधर्महीना नरके पतन्ति मूढचेतसः । ब्राह्मणस्य स्वधर्मश्च त्रिसन्ध्यमर्चनं हरिः ॥ ६८ ॥

तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणञ्च सुधाधिकम् । भक्तं विद्या जलं मूत्रप्रतिषेधं हरेर्नृप ॥ ६९ ॥

भवन्ति शूकराः सर्वे ब्राह्मणा यदि भुञ्जते । भार्जायं भुञ्जते पिया एकादश्यां न भुञ्जते

शुक्लजन्मदिने चैव शिवरात्री मुनिश्चितम् । तथा रामनवम्याञ्च यज्ञतः पुण्यपातरे ॥

ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कथितो ब्रह्मणा नृप । वनं पत्नियतानाञ्च पतिसैषा परं तपः ॥ ७२ ॥

यथा पुत्रः परपतिरेव धर्मश्च योषिताम् । पालयन्ति यथाभूपाः प्रजाः पुत्रानिवोरसान् ।  
 प्रजाःस्त्रियञ्च पश्यन्ति राजानो मातरंयथा । यज्ञं कुर्यन्ति विष्णोश्च मेघर्षं देवविप्रयोः  
 निवारणञ्च दुष्टानां शिष्टानां प्रतिपालनम् । इति धर्मः क्षत्रियाणां कथितो ब्रह्मणा पुत्र-  
 पाणिज्यञ्चैव धैश्यानां स्वधर्मो धर्मसञ्चयः । शूद्राणां विप्रमेधा च परो धर्मो विधीयते  
 सर्वन्यासो हर्षो भूप धर्मः सन्वासिनां धूपम् ।

रत्नकषासा दण्डी च विभर्ति मृत्कामण्डलम् ॥ ७७ ॥

सर्वत्र समदर्शी च स्मरेन्नारायणं सदा । करोति भ्रमणं नित्यं गेहे गेहे न तिष्ठति ॥ ७८ ॥  
 विद्या मन्त्रञ्च कस्मैचिन्न ददाति च लोभतः । करोतिनाश्रमं मिथुःकरोतिनान्यवासनाम्  
 करोति नान्यसङ्गञ्च निर्मोहः सङ्गवर्जितः ।

न स्वादु भुङ्क्ते लोभाच्च स्त्रीमुखं न हि पश्यति ॥ ८० ॥

न घाञ्छितं भक्ष्यवस्तु याचतेगृहिणं व्रती । इति सन्न्यासिनां धर्ममित्याह कमलोद्भवः  
 इति ते कथितं पुत्र गच्छ घटस यथासुखम् ॥ ८२ ॥

इत्युत्वा च महेन्द्राणी विरराम च घटर्मनि । उवाच नहुषो राजा शर्चा वक्रप्रकण्ठः  
 नहुष उवाच ।

त्वया यत् कथितं देवि सर्वं तत्तु विपर्व्ययम् । यथार्थधर्मं वेदोक्तं निबोध कथयामि ते  
 कर्मणां फलमोगञ्च सर्वेषां सुरसुन्दरि । नैव स्वर्गं न पाताले नान्यद्वीपे श्रुतो ध्रुतम् ॥

कृत्वा शुभाशुभं कर्म पुण्यक्षेत्रे च भारते ।

अन्यत्र तत्फलं भुङ्क्ते कर्मो कर्मनिबन्धनात् ॥ ८६ ॥

हिमालयादासमुद्रं पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् । श्रेष्ठं सर्वस्थलानाञ्च धुनीनाञ्च तपःस्थलम् ॥  
 तत्रलब्ध्वा जन्म जीर्वा घञ्छितो विष्णुमायया । शश्वत्करोतिविश्वं विहाय सेवन्हर्षैः

कृत्वा तत्र महत् पुण्यं स्वर्गं गच्छति पुण्यवान् ।

गृहीत्वा स्वर्गकन्याञ्च विरं स्वर्गं प्रमोदते ॥ ८९ ॥

स्वर्गमागच्छति नरो विहाय मानवीं तनुम् ॥ ९० ॥

सुन्दरि । अनेकजन्मपुण्येन चागतो स्वर्गमीप्सितम् ॥

ततः किं क्षेत्रं पुण्येन दर्शनं मे त्वया सह । न हि कर्मस्थलमिदं स्वभोगस्थलमेव हि ॥  
भोगस्थलेभोगवस्तु न हि त्यक्तुं प्रशस्यते । भाषानुरक्तारसिका भोग्या त्वं भोगिनामिह  
द्रव्यमस्वामिकं भोग्यं सुखं त्यजति मन्दधीः । अविरोधस्तु खत्यागी पशुरेव न संशयः

गच्छ कान्ते गृहं गत्वा कुरु तल्पं मनोहरम् ।

रमणीयञ्च रहसि घरं रतिकरं परम् ॥ ६५ ॥

त्यज ह्रैधञ्च मनसो निश्चितं घरर्घाणनि । घरानने मया सार्द्धं मोदस्य घरमन्दिरे ॥ ६६ ॥

अमूल्यरत्नमालाञ्च मणिराजविराजिताम् ।

मिक्षां कृत्वा च दास्यामि लक्ष्मीवक्षसि शोभिताम् ॥ ६७ ॥

मणिञ्चान्तशिरसः सर्वेषामतिदुर्लभम् । दुष्प्राप्यं त्रिषु लोकेषु तुभ्यं दास्यामिसुन्दरि  
मणिरत्नं कौस्तुभञ्च यन्नारायणवक्षसि ।

मिक्षां कृत्वा तु दास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम् ॥ ६८ ॥

चन्द्रशेखरमीलेश्च यदहं चन्द्रभूषणम् । जरामृत्युव्याधिहरं शान्तं क्रीडाकरं वरम् ॥

अतीव विश्वदुष्प्राप्यं विश्ववन्द्यञ्च सुन्दरम् ।

विश्वनाथव्रतं कृत्वा तुभ्यं दास्यामि निश्चितम् ॥ १०१ ॥

दास्यामि ते धीसूर्यस्य मजिध्रेष्ठं स्यमन्तकम् ।

भक्त्या सूर्यव्रतं कृत्वा त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ १०२ ॥

अष्टौ भारान् सुवर्णञ्च यश्च नित्यं प्रसूयते । जरामृत्युहरंचैव परं क्रीडाकरं प्रिये ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणं पाञ्चरत्नं मनोरमम् । सन्ततं मधुपूर्णञ्च दास्यामि मदनस्य च ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणं सूर्यतुल्यञ्च तेजसा । नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्माणमीश्वरैच्छया

निर्मलं मण्डलाकारं मणिराजविराजितम् । हस्तलक्षपरिमितं चतुरस्रञ्च सुन्दरि ॥ १०६ ॥

पद्मा पद्मासनं ध्रेष्ठं प्रेष्ठं तस्याः सुदुर्लभम् ।

ध्रुवं तुभ्यं प्रदास्यामि कृत्वा पद्मालयाव्रतम् ॥ १०७ ॥

इत्येवमुक्त्वा नहुषः कृत्वा घर्त्मनिरोधनम् । पुनः पपात चरणे महेन्द्राण्या सुदुर्मुहुः ॥

नृपस्य घवनं ध्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । तमुवाच महेन्द्राणी स्मारं स्मारं गुरुं हरिम्



शक्युपाय ।

। ननस्यमृद्गस्य फार्ण्याफार्ण्यमजानतः । श्रोण्याभ्यश्च कनिषिधां कथां कामानुरम्यच  
। मत्तः सुरामत्तः काममत्तो विचेननः । मृत्युं न गणयेत्कामी कामेन हतमानसः ॥

स्यज मामद्य हे मत्त मातृनुन्यां रजस्वलाम् ।

श्रुतोः प्रथमो दिवसो ह्यद्य हे नृप मे ध्रुवम् ॥ ११२ ॥

प्रथमे दिवसे स्त्री च चाण्डाली सा रजस्वला ।

द्वितीये दिवसे म्लेच्छा तृतीये रजकी तथा ॥ ११३ ॥

इा भर्तृभृतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपैश्यायोः । असत्शुद्धा समा सा च तद्दिने च परं प्रति  
। मे दिवसे फान्तां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । प्रह्यहत्याचतुर्धांशं लभते नात्र संशयः  
। पुमात्र हि फार्माहो दैवे पैश्या च फर्मणि । अधमः स च सर्वेषां निन्दितश्चायशस्करः  
। तीये दिवसे नारीं यो व्रजेत् रजस्वलाम् । कामतः परित्युर्णश्च गोहत्यां लभते ध्रुवम्  
। आजीवनं नाधिकारी पितृषिप्रसुराचने ।

अमनुष्योऽयशस्यः स्यादित्याह्निसमापितम् ॥ ११८ ॥

तीयेदिवसे जायां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । स मूढो भ्रूणहत्याञ्च लभते नात्र संशयः  
। र्वचत्पतितः सोऽपि न चार्हः सर्वकर्मसु । असत्शुद्धा चतुर्थेऽह्नि न गच्छेत्तां विवक्ष्णः  
। दि मां मातरं मूढ गृह्णियसि बलेन च । ऋताघर्ताते दिवसे गमनञ्च कर्षियसि ॥  
। शक्याञ्च घचनं श्रुत्वा प्रहस्य नहुपस्तथा ।

उषाच मधुरं शान्तः शक्रकान्ताञ्च सुव्रताम् ॥ १२२ ॥

। यपत्नी सदा शुद्धा तन्मयूनं मानवं प्रति । शयने भोजने दैवी नाशुद्धा मातरं प्रति ॥  
। जस्वलायाः सम्भोगे कर्मक्षेत्रे च भारते । त्वयोक्तञ्च भवेत् पापं नात्र दुर्गे च सुन्दरि  
। तर्क्षेत्रेऽपि तत्कर्म यद्वेदोक्तं शुभाशुभे । न भवेद्द्वैष्णवानाञ्च ज्वलतां प्रह्वानेजसा ॥

यथा प्रदीप्ते षड्ही च शुष्काणि च तुणानि च ।

भवन्ति भस्मीभूतानि तथा पापानि घैष्णवे ॥ १२६ ॥

। रक्षितो विष्णुचक्रेण स्वतन्त्रोमत्तकुत्रः

न विचारो न भोगश्च वैष्णवानां स्वकर्मणाम् ।

लिखितं साम्नि कीधुभ्यां कुरु प्रथं बृहस्पतिम् ॥ १२८ ॥

अस्मांश्च सर्वेजानन्ति चन्द्रवंश्यांश्चवैष्णवान् । दैवमन्यं न सेवन्ते चन्द्रवंश्याहरिचिना

सदंशप्रभवो यो हि ब्राह्मणःक्षत्रियोऽथवा । विष्णुमन्त्रं न गृह्णातिवञ्चितोविष्णुमायया

को वा मन्त्रश्च के देवा न हि शास्ता यमो मम ।

सर्वान् शास्तुं समर्थोऽहं ब्रह्मविष्णु शिवं विना ॥ १२९ ॥

शय्यांकुरु गृहं गत्वा शीघ्रं यास्यामि ते गृहम् । ऋतुपापंमयि भवेत्तद्य किं गच्छशोभने

इत्युक्त्वा नहुपो राजा प्रफुल्लवदनेक्षणः । रत्नयानं समाख्या ययौ नन्दनकाननम् ॥ १३३ ॥

न ययौ सा शची गेहं प्रजगाम गुरोर्गृहम् ।

गत्वा कुशासनस्थञ्च ददर्श च बृहस्पतिम् ॥ १३४ ॥

तारासेवितपादाब्जं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । जपमालाकरं शश्वज्जपन्तं कृष्णमीप्सितम् ।

परमं परमानन्दं परमात्मानमीश्वरम् ॥ १३५ ॥

निर्गुणञ्च निरीहञ्च स्वतन्त्रं प्रकृतेः परम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥

मानन्दाधुनेत्रञ्च ननाम शिरसा भुवि । रुदन्ती साधुनेत्रा सा मज्जन्ती भक्तिसागरे ॥

गोकार्णवे निमज्जन्ती हृदयेन विदूयता । तुष्टाव भीता स्वगुरुं ब्रह्मिष्ठञ्च कृपानिधिम् ॥

शच्युधाव ।

क्ष रक्ष महाभाग मां भीतां शरणागताम् । त्वमीश्वरः स्वदासीञ्च निमग्रां शोकसागरे

अनीश्वरश्चेश्वरो वा बलवान् वा सुदुर्बलः ।

स्वशिष्यभार्यां पुत्रांश्च शासितुञ्च सदा क्षमः ॥ १४० ॥

पूरीभूतः स्वराज्याद्य स्वशिष्यश्च वृत्तस्त्वया । शान्तिर्बभूव दोषस्य चाधुना निग्रहंकुरु

अनाथां सर्वशून्यां मां शून्यां ताममरावर्तीम् ।

सम्पत्शून्यमाश्रमं मे परय रक्ष कृपानिधे ॥ १४२ ॥

दस्युप्रस्ताञ्च मां रक्ष देशं किङ्करम.नर । दस्वा चरणरेणून् तं शुभाशीर्वचनं कुरु ॥ १४३ ॥

सर्वपाञ्च गुरुणाञ्च जन्मदाता परो गुरुः । पितुः शतगुणा माता पूज्या पत्न्या गरीयसी

विद्यादाता मन्त्रदाता ज्ञानदो हरिमक्तिः ।

पूज्यो घन्धश्च सेव्यश्च मानुः शतगुणो गुरुः ॥ १४५ ॥

मन्त्राद्युद्गीरणेनैव गुरुरित्युच्यते युधिः । अन्यो घन्धो गुरुग्यमन्यहारोपिनो गुरु  
धज्ञाननिमिगन्धस्य प्राणाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मोलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम  
धश्रीशितस्य मूर्धस्य निष्कृतिनाम्नि निश्चितम् ।

सर्वकर्मस्वनर्हस्य नरके तन्पशोः स्थितिः ॥ १४८ ॥

जन्मदाताधदाता च मातान्ये गुरुचस्तथा । पारं कर्तुं न शक्तास्ते घोरसंसारसागरे  
विद्यामन्त्रदानदाता निपुणः पारकर्मणि । स शक्तः शिष्यमुद्धर्तुमीश्वरश्चेश्वरात् परः  
गुरुर्विष्णुर्गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुर्मर्मां गुरुः शेषः सर्वात्मा निर्गुणो गुरुः  
सर्वतीर्थाधमनैव सर्वदेवाध्रयो गुरुः । सर्वदेवस्वरूपश्च गुरुरपी हरिः स्वयम् ॥१५२  
धभीष्टदेवे रूपे च गुरुः शक्तो हि रक्षितुम् । गुरोरुष्टेऽभीष्टदेवो न हि शक्य रक्षितुम्  
सर्वे प्रहाश्च यं कृष्टा कृष्टाश्च देवब्राह्मणाः । तमेव कृष्टो भवति गुरुरेव हि देवतः ॥१५४॥

न गुरोश्च प्रियश्चात्मा न गुरोश्च प्रियः सुतः ।

धनं प्रियश्च न गुरोर्न च भाष्यां प्रिया तथा ॥ १५५ ॥

न गुरोश्च प्रियो धर्मो न गुरोश्च प्रियं तपः । न गुरोश्च प्रियं सत्यं न पुण्यञ्चगुरोःपरम्  
गुरोः परो न शास्ता च न हि बन्धुर्गुरो परः ।

देवो राजा च शास्ता च शिष्याणाञ्च सदा गुरुः ॥ १५७ ॥

यावत्शक्तोद्वातुमन्नं तावत्शास्तातद्बन्धुः । गुरुःशास्ता च शिष्याणां प्रतिजन्मनि जन्मनि  
मन्त्रो विद्यागुरुर्देवः पूर्वलब्धो यथा पतिः । प्रतिजन्मनिघन्धेन सर्वेषामुपरि स्थितः ॥  
पिता गुरुश्च घन्धश्च यत्र जन्मनि जन्मदः । गुरवोऽन्ये तथा माता गुरुश्च प्रतिजन्मनि  
— विप्राणां त्वं वरिष्ठश्च वरिष्ठश्चतपस्विनाम् । ब्रह्मिष्ठोब्रह्मविद्ब्रह्मन् धर्मिष्ठःसर्वधर्मिणाम्

तुष्टो भव मुनिश्रेष्ठ माञ्च शकञ्च साम्प्रतम् ।

३५५ ननु सदा तुष्टा भवन्ति प्रह्लादेयताः ॥ १६२ ॥

न पुनरुच्चै हरौद ह । दृष्ट्वा तद्रौदनं तारा रुरोदोद्यौर्मुहुर्मुहुः ॥

पपात चरणे तारा हरोद च पुनः पुनः । अपराधं क्षमेत्युक्त्वा गुरुस्तुष्टोऽप्युवाच ताम् ॥  
गुरुवाच ।

उत्तिष्ठ तारे! शब्द्याश्च सर्वं भद्रं भविष्यति । सद्यःप्राप्स्यति भर्तारं महेन्द्रञ्च मदाशिष्या  
इत्युक्त्वा स गुरुस्तत्र विरराम च नारद । पपात चरणे तारा पुनरेव हरोद च ॥ १६६ ॥  
गृहीत्वा च शचीं तारा संस्थाप्य च स्वक्षसि । बोधयामास विविधमध्यात्मकनुत्तमम्  
शचीकृतं गुरुस्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् । गुरुध्यामीष्टदेवस्य सन्तुष्टः प्रतिजन्मनि ॥  
ग्रहदेवद्विजास्तञ्च परितुष्टाश्च सन्ततम् । राजानो बान्धवाश्चैव सन्तुष्टाः सर्वतःसदा ॥  
गुरुभक्तिं विष्णुभक्तिं वाञ्छितं लभते ध्रुवम् ।

सदा हर्षो भवेत्तस्य न च शोकः कदाचन ॥ १७० ॥  
पुत्रार्थो लभते पुत्रं भार्यार्थो लभते प्रियाम् । सुस्वरूपां गुणवतीं सतीं पुत्रवतीं ध्रुवम्  
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् वदो मुच्येत बन्धनात् ।  
अस्पृष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ १७२ ॥  
कदाचिद् वन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य निश्चितम् । नित्यंतद्वर्द्धते धर्मो विपुलं निर्मलयशः  
लभते परमैश्वर्यं पुत्रपौत्रधनान्वितम् । इह सर्वसुखं भुक्त्वा प्राप्यते श्रीहरेः पदम् ॥  
न भवेत्तत्पुनर्जन्म हृदिदास्यं लभेद् ध्रुवम् ।

विष्णुभक्तिरसाब्धी च निमग्नश्च भवेद् ध्रुवम् ॥ १७५ ॥  
श्वत्पिबन्तिशान्ताश्च विष्णुभक्तिरसामृतम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसन्तापनाशनम्  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंघादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे महेन्द्रदर्पमङ्ग-  
प्रकरणे शचीशोकापनोदने शचीकृतगुरुस्तोत्रकथनं नामकोनपठितमोऽध्यायः ।

## पण्डितमोऽध्यायः

शचीम्प्रति बृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

शचीस्तोत्रं समाकर्ण्य परितुष्टो बृहस्पतिः । उवाच मधुरं शान्तःकान्तामिन्द्रस्य नारद  
बृहस्पतिरुवाच ।

त्यज वत्से भयं सर्वं भयं किं ते मयि स्थिते ।

यथा कचस्य पत्नी मे तथा त्वमसि शोभने ॥ २ ॥

यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्रशिष्ययोः । तर्पणे पिण्डदाने च वालने परितोषणे  
यथाग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम् । इतीदं कण्वशाखायामुवाच कमलोद्भ  
पिता माता गुरुर्मायांशिशुश्चातापयान्धपाः । एते पुंसां नित्यपोष्याइत्याह कमलोद्भ  
यश्चेतांश्च न पुष्पाति मन्मान्तं तस्य सूतकम् ।

द्वैवे पित्र्येन कर्माहः सोऽर्पात्याह महेश्वरः ॥ ६ ॥

कुर्वन् नरबुद्धिञ्च मार्तरं पितरं गुरुम् । भयशस्तस्य सर्वत्र विघ्न एव परे परे ॥ ७

राज्यन्मत्तो यः करोति स्वगुरोश्च पराभवम् ।

धनिरात्सर्वनाशश्च भयं तस्य सुनिश्चितम् ॥ ८ ॥

मां च दृशु समाकर्ण्य नोऽन्यथा वाकशासनः ।

तन्मूर्च्छं मुग्धते साक्षात्सद्यः पश्य च साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

महं करोमि मोक्षञ्च तव रक्षां सुनिश्चितम् । शासितुं रक्षितुं शक्तःस एव गुरुवच्यते ॥  
न नश्यति सर्वकल्पञ्च ह्य्यद्भवायाश्च योयितः । यन्मात्रमे विफलश्च तस्य धर्मोऽन्तरयति  
मविष्यति प्रमाथन्ने दुर्गायाश्च समः सति । मृशमीरामा प्रतिष्ठाया यशस्तवशशासाम्  
सौभाग्यं वाचिकानुल्यं तन्मामं देव मर्नरि ।

नक्त्यं मौर्यं मान्यं व्रीतिः प्रापाग्यर्माश्वरे ॥ १३ ॥

रोहिण्याश्चसमापेक्षा पूज्याश्चभारतीसमा । शुद्धा निरुपमाशरपत् साधित्रीसदृशीसदा  
पतस्मिन्नन्तरे तत्र आगतो नहुषाश्चरः । उवाच घचनं भीतो घाक्पतेर्गोचरे ततः ॥

दूत उवाच ।

उत्तिष्ठ देवि शीघ्रं त्वं गच्छस्य नहुषं प्रति । क्रीडां कर्तुंश्च रक्षसि रम्ये नन्दनकानने ॥  
दूतस्य घचनं श्रुत्या तमुवाच धृहस्पतिः । कम्पितावयवः कोपात् रक्तपङ्कजलोचनः ॥

गुरुवाच ।

नहुषं घद गत्या त्वं शचीं चेद्गोक्तुमिच्छसि । अपूर्वं यानमाख्या निशायामागमिष्यसि  
सप्तर्षीणाञ्च स्कन्धे च दत्त्वा स्पशिशिकां शुभाम् ।

तामाख्या सुवेशश्च गमनं कर्तुमर्हसि ॥ १६ ॥

घाक्पतेर्वचनं श्रुत्या गत्वोवाच नृपं तदा । दूतस्य घचनं श्रुत्या प्रहस्योवाच किङ्करम्  
गच्छ गच्छ त्वरन् गच्छ सप्तर्षीन् शीघ्रमानय ।

उपायञ्च करिष्यामि तैः साद्धं साम्प्रतं चर ॥ २१ ॥

नहुषस्य घचनं श्रुत्या गत्वा दूतस्तदन्तिकम् । उवाच सर्वांस्तत्रैव यथोक्तं नहुषेण च ॥  
दूतस्य घचनं श्रुत्या ययुः सप्तर्षयो मुदा ।

राजा दृष्ट्वा च तान् सर्वान् ननामोवाच सादरम् ॥ २३ ॥

नहुष उवाच ।

भूयञ्च ब्रह्मणः पुत्रा ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा । ब्रह्मणः सदृशाः सर्वे सततं भक्तवत्सलाः ॥  
परायणपराः शश्वच्छुद्भसत्वस्वरूपिणः । मोहमात्सर्यहीनाश्च दर्पाहङ्कारघर्जिताः ॥

परायणसमाः सर्वे तेजसा यशसा सदा । गुणेन हृपया प्रेम्णा धरदानेन निश्चितम् ॥  
त्युक्त्वा प्रणतो राजा तुष्टाव च रुरोद च । दृष्ट्वा ते कातरं भूपमूढुः परहितैषिणः ॥

ऋषय ऊचुः ।

रं घृणीष्व हे घत्स यत्ते मनसि घाञ्छितम् । सर्वं दातुं धयंशक्ता नासाध्यं नश्चकिञ्चनं  
दत्तं वा मनुत्वं वा चिरायुर्वा ततः परम् । सतद्दीपेश्वरत्वज्ञाप्यतीव सुचिरं सुखम्  
थापि सर्वसिद्धित्वं सर्वैश्वर्यं सुदुर्लभम् । मुक्तिं वा हरिमक्तिं वा तपसा वा सुदुर्लभा

किमीप्सितं न हे यत्नं यदि नः साधनं मुदा। सर्वं सुखं प्रदायैव याम्बानन्दम्  
युगलशक्तम् यथा क्षणं कृष्णानन्दं विना । . .

महिनं दुर्दिनं यत्तद् ध्यानमेयनपरिजितम् ॥ ३२ ॥

विना सम्भेयनं यो हि विपयान्यञ्ज घाञ्छति ।

विपमत्ति प्रजाशाय विहायामृतमीप्सितम् ॥ ३३ ॥

प्रह्लादशिवश्च धर्मश्च विष्णुश्चाविमहान्विराट् । गणेशश्चदिनेशश्च शेषश्चकल  
एते यश्चरणाम्भोजं ध्यायन्तोऽहर्निशं मुदा । जन्ममृत्युजराज्याधिदरं तञ्जिताम्

तेषां च घचनं श्रुत्या तानुवान् नृपेश्वरः ।

स लज्जितो नम्रवक्त्रो मायामोहितमानसः ॥ ३६ ॥

नहुप उवाच ।

सर्वं दातुं समर्थाश्च यूयञ्च भक्तवत्सलाः । अधुना देहि मे . . .  
सप्तर्षिवाहनं कान्तं शचीञ्छति महासती । एतदेव मम परं निष्पन्नं कुहञ्जिविभूम्

नहुपस्य घचः श्रुत्या मुनयश्च परस्परम् ।

अत्युच्चैर्जहसुः सर्वे कौतुकेन च नारद ॥ ३६ ॥

राजानं मोहितं मत्वा वेष्टितं विष्णुमायया । चक्रुः प्रतिज्ञां घोडुञ्च कृपया ईतवन्  
चक्रुः म्कन्धे तच्छिविकां मुक्तामाणिक्यभूषिताम् ।

राजा ययौ सुवेशश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वाचातिविलम्बञ्च भर्त्सयामास तान् नृपः । ऋचाशशाप दुर्वासाश्वाप्रगामी  
महानजगरो भूत्वा पत वै भूढमानस । दर्शनाद्धर्मपुत्रस्य तव मोक्षो भविष्यति ।  
रत्नयानेन वैकुण्ठं गत्वा वैकुण्ठसेयनम् । करिष्यसि महाराज न कर्म निष्कलं .

इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे प्रहस्य मुनिसत्तमाः ।

राजा पपात तच्छापात् सर्पो भूत्वा महामुने ॥ ४५ ॥ : . .

शची जगाम तच्छ्रुत्या गुहं नत्वाऽमरावतीम् । ययौ बृहस्पतिः शीघ्रं यच्चैन्द्रः पञ्चमं  
गत्वा सरोधराम्यासमाहृत्वा सुरेश्वरम् । अतिप्रसन्नवदनः कृपया च कृपयिषि ।

बृहस्पतिरुवाच ।

अयि घत्स त्वमागच्छ भयं किं ते मयि स्थिते ।

त्यज भीतिमिहागच्छ गुरुस्तेऽहं बृहस्पतिः ॥ ४८ ॥

स्वगुरोश्च स्वरं श्रुत्वा महेन्द्रो हृष्टमानसः । रूपं विहाय सूक्ष्मञ्च स्वरूपेण समापयौ  
पपात दण्डयन्मूर्ध्ना भक्तया चरणयोर्गुरोः । तं रुदन्तं महामोतं मुदोरसि चकार सः ॥

कारयित्वा सोमयागं प्रायश्चित्तार्थमेव च ।

रत्नसिंहासने रम्ये घासयामास तं गुरुम् ॥ ५१ ॥

प्रददौ परमैश्वर्यं पूर्वस्माद्य चतुर्गुणम् । आगत्य सर्वदेवाश्च चक्रुः सेवां मुदान्विताः  
शची संप्राप भर्तारं महेन्द्रं त्रिदशेश्वरम् । मन्दिरे पुष्पतल्पे च मुमुदे सा मुदान्विता ॥

इत्येवं कथितं घत्स महेन्द्रदर्पभञ्जनम् ।

शचीसतीत्वरक्षा च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५४ ॥

नारद उवाच ।

सोमयागविधानञ्च ब्रूहि मां मुनिसत्तम । कथं तं कारयामास गुरुश्च किं फलं परम्  
नारायण उवाच ।

प्रब्रह्मत्याग्रशमनं सोमयागफलं मुने । धर्मं सोमलतापानं यजमानः करोति च ॥ ५६ ॥

धर्ममेकं फलं मुंके धर्ममेकं जलं मुदा । त्रैवार्षिकं द्रतमिदं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥

यत्र त्रैवार्षिकं धान्यं निहितं भूतवृन्दये । अधिकं घापि वियेत स सोमं पानुमर्हति ॥

महाराजश्च देवो घा यागं कर्तुमलं मुने । न सर्वसाध्यो यशोऽयं बह्व्रथो बहुदक्षिणः

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीहृत्पञ्चमखण्डे

शक्रदर्पभङ्गप्रकरणे शकमोक्षकथनं नाम पष्ठितमोऽध्यायः ।



किमीप्सितं ते हे परस इहि नः साम्प्रतं मुदा । सर्वं तुभ्यं प्रदायैव यास्यामस्तपसे मुदा

गुणलक्षसमं यद्य क्षणं कृष्णाचरं विना ।

तद्दिनं दुर्दिनं यस्तद् ध्यानसेवनवर्जितम् ॥ ३२ ॥

विना तस्मैषनं यो हि विषयान्यञ्च पाञ्छति ।

विषमसि प्रणाराय-विहायामृतमीप्सितम् ॥ ३३ ॥

प्रह्लाशिपश्च धर्मश्च विष्णुश्चापिमहान्विराट् । गणेशश्चदिनेशश्च शेषश्चसनकादयः  
एते यद्यरणाभोजं ध्यायन्तोऽहर्निशं मुदा । जन्ममृत्युजराव्याधिहरं तन्निरता वयम् ॥

तेषां च वचनं श्रुत्वा तानुपाच नृपेश्वरः ।

स लज्जितो नम्रवक्त्रो मायामोहितमानसः ॥ ३६ ॥

नहुप उवाच ।

सर्वं दातुं समर्थाश्च यूयञ्च भक्तवत्सलाः । अधुना देहि मे तूष्णं शचीदानममीप्सितम्  
सप्तर्षिवाहनं कान्तं शचीच्छति महासती । पतदेव मम परं निष्पन्नं कुरुताचिरम् ॥ ३५ ॥

नहुपस्य वचः श्रुत्वा मुनयश्च परस्परम् ।

अत्युच्चैर्जहसुः सर्वे कीर्तुकेन च नारद ॥ ३६ ॥

राजानं मोहितं मत्वा वैष्टितं विष्णुमायया । चक्रुः प्रतिज्ञां घोदुञ्च कृपया दीनवत्सलाः  
चक्रुः स्कन्धे तच्छिविकां मुक्तामाणिक्यभूषिताम् ।

राजा ययो सुवेशश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वाचातिविलम्बञ्च भर्त्सयामास सान्नुपः । क्रुधाशशाप दुर्घासाश्चाग्रगामी च घर्त्सनि  
महानजंगरो भूत्वा पत ये मूढमातस । दर्शनाद्धर्मपुत्रस्य तव मोक्षो भविष्यति ॥ ४३ ॥

रत्नपातेन घैकुण्ठं गत्वा घैकुण्ठमेव नम् । कल्पिसि महाराज न कर्म निष्कलं भवेत्  
इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे प्रहस्य मुनिसत्तमाः ।

राजा पपात तच्छापांश्च संपो भूत्वा महामुने ॥ ४५ ॥

शची जंगम कच्छुत्वा गुरुं नत्वाऽमरापतीम् । ययो बृहस्पतिः शीघ्रं वनेन्द्रः पञ्चतनुपु  
गत्वा सरोवराभ्यासमाहुहाव सुरैश्वरम् । अतिप्रसन्नपदनः कृपया च कृपानिधिः ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

अपि घत्स त्वमागच्छ भयं किं ते मयि स्थिते ।

त्यज भीतिमिहागच्छ गुरुस्तेऽहं बृहस्पतिः ॥ ४८ ॥

स्वगुरोश्च स्वरं श्रुत्वा महेन्द्रो हृष्टमानसः । रूपं विहाय सूक्ष्मञ्च स्वरूपेण समाययी  
पपात दण्डवन्मूर्ध्ना भक्त्या चरणयोर्गुरोः । तं रुदन्तं महाभीतं मुदोरसि चकार सः ॥

कारयित्वा सोमयागं प्रायश्चित्तार्थमेव च ।

रत्नसिंहासने रम्ये घासयामास तं गुरुम् ॥ ५१ ॥

प्रददौ परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम् । आगत्य सर्वदेवाश्च चक्रुः सेवां मुदान्विताः  
शर्वा संप्राप भर्तारं महेन्द्रं त्रिदशेश्वरम् । मन्दिरे पुष्पतल्पे च मुमुदे सा मुदान्विता ॥

इत्येवं कथितं घत्स महेन्द्रदर्पभञ्जनम् ।

शचीसतीत्यरक्षा च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५४ ॥

नारद उवाच ।

सोमयागविधानञ्च ब्रूहि मां मुनिसत्तम । कथं तं कारयामास गुरुश्च किं फलं परम्  
नारायण उवाच ।

ब्रह्महत्याप्रशमनं सोमयागफलं मुने । वर्षं सोमलतापानं यजमानः करोति च ॥ ५६ ॥

वर्षमेकं फलं भुंक्ते वर्षमेकं जलं मुदा । त्रैवार्षिकं व्रतमिदं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥

यत्र त्रैवार्षिकं धान्यं निहितं भूतवृद्धये । अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥

महाराजश्च देवो वा यागं कर्त्तुमलं मुने । न सर्वसाध्यो यज्ञोऽयं बह्वो बहूदक्षिणः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीहृष्णजन्मखण्डे

शक्रदर्पभङ्गप्रकरणे शक्रमोक्षकथनं नाम पष्ठितमोऽध्यायः ।

## एकपष्टितमोऽध्यायः ।

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

इति ते कथितं किञ्चिदिन्द्रस्य दर्पभङ्गनम् । अपरं श्रूयतां ब्रह्मन् सावधानं निगूढकम्  
समुद्रमथनं कृत्वा पीत्वामृतरसंपुरा । निर्जित्य दैत्यसङ्घाश्च बहुदर्पो बभूव ह ॥ २ ॥  
तदा कृष्णो बलिद्वारा शक्रदर्पं बभञ्ज ह । स्रष्टश्रियो बभूवुस्तं देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३ ॥  
तदा बृहस्पतेः स्तोत्राददितेश्च व्रतेन ते । जातश्च स्वांशकलयाप्यदित्यां घामनोबिभु-  
याश्चां कृत्वा बलिं राज्यं कृपया च कृपानिधिः ।

तस्मै ददौ महेन्द्राय देवेभ्यश्चापि सम्पदम् ॥ ५ ॥

बभूव शक्रदर्पश्च पुनः कल्पान्तरे पुरा । विभुर्दुर्वाससाद्वारा जहार तच्छ्रियं मुने ॥ ६ ॥  
पुनर्ददौ च कृपया कृपालुर्मन्तवत्सलः । पुनः श्रीदुर्मदः सोऽपि जहार गीतमप्रियाम् ॥  
तदा गीतमशापेन भगाङ्गश्च बभूव सः । सम्प्राप यातनामिन्द्रः स्वाङ्गवेदनया पुरा ॥  
उच्चैस्तं जहत्सुर्दृष्ट्वा ऋषयो मनवस्तथा । देवाश्च लज्जिताः सर्वे मृततुल्यो बृहस्पतिः  
तदा सहस्रवर्षञ्च तपस्तप्त्वा रवेः पुरा । रवेर्वरेण शक्रः स सहस्राक्षो बभूव ह ॥ १० ॥  
कलङ्करूपमिन्द्रस्य तच्चक्षुर्निकरं परम् । यथा चन्द्रे कलङ्कश्च तारकाहरणादभूत् ॥ ११ ॥

नारद उवाच ।

ब्रह्मन् केन प्रकारेण जहार गीतमप्रियाम् । महासतीमहल्याञ्च पूज्यां भुवनपावतीम् ॥  
शुद्धाशायां महाभागां निर्मलां कमलाकलाम् । एतद्वेदितुमिच्छामि घद् वेदविदां धर ॥

श्रीनारायण उवाच ।

पुष्करे तीर्थयात्रायां सूर्यपर्वणि नारद । तत्रागतामहल्याञ्च ददर्श पाकशासनः ॥ १४ ॥  
सस्मितां सुदतीं शान्तां पीनशोणिपयोधराम् ।  
मूर्च्छामवाप चेन्द्रश्च दृष्टिमात्रेण तत्क्षणम् ॥ १५ ॥

अथापरदिने ताञ्च दृष्ट्वा मग्दाकिनीतटे ।

एकाकिनीं सस्मिताञ्च ह्यन्तीं नग्रां सलज्जिताम् ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा धोणीं स्तनपुगमतोचविपुलं हरिः । मूर्च्छामवाप कामार्तो जहार चेतनां पुनः ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य गत्वा कामी तदन्तिकम् ।

उवाच श्लक्ष्णया घाचा विनयेन पतिव्रताम् ॥ १८ ॥

महेन्द्र उवाच ।

अहो गुणमहो रूपमहो किं वा नवं वपः । अहो किंवा मुखधीस्ते शश्वन्द्रविनिन्दिता

अहो कटाक्षे कुटिलं पुंसो विस्रविकर्षणम् । किमहो लोचनं पद्मप्रभामोचनमोप्सितम्

गमनं रमणीयञ्च गजलञ्चनभञ्जनम् । अहो धाक्चन्तु मधुरं पीयूषादपि दुर्लभम् ॥ २१ ॥

किमहो विपुलधोणी कामाधारा मनोहरा । कामदा कामुकार्यैव मुनिमानसमोहिनी ॥

वतीव कठिना पीना रम्भास्तम्भविडम्बिता । अहो नितम्बयुगलं चतुर्लं चन्द्रविम्बवत्

धोयुक्तं धोफलपुगमुत्सवं ते स्तनयुग्मकम् । अत्युन्नतं सुकठिनं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ॥

अहो किंवा तपस्तेपे गौतमश्च तपोधनः । संप्राप यत्फलेनैव सुदतीं सुन्दरीं वराम् ॥

निषेव्य प्रकृतिं दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम् ।

लक्ष्मीञ्च लक्ष्मीसदृशीं तपसा प्राप पतिनीम् ॥ २६ ॥

सुकोमलां सुवदनां ललनां नल्लिखानताम् । शुद्धाञ्च सुदतीं श्यामां न्यग्रोधदलमध्यमां

त्यत्पालनञ्च जानामि कामशास्त्रविचक्षणः ।

कामो वा कामुकश्चन्द्रः कित्वां जानाति गौतमः ॥ २८ ॥

मां प्रशंसन्ति नित्यं ते कामशास्त्रविचक्षणाः ।

उर्ध्वश्यायाश्चाप्सरस्तो मां प्रशंसन्ति सन्ततम् ॥ २९ ॥

दासीं कृत्वाचदास्यामि शर्वांतुभ्यंघरानने । त्रैलोक्यलक्ष्मीं विपुलां गृह्णाण त्यजगौतमम्

अनमिश्रं कामशास्त्रे दुर्बलञ्च तपस्विनम् । अव्ययहार्यं निष्कामं नारायणपरायणम् ।

अविदग्धो विधाता च योजयामास योऽक्षमम् ।

ईदृशीं कामुकीं रम्यां ददाति च तपस्विने ॥ ३२ ॥

इत्युत्तया कामुकः शक्रः पयात यरणेमुदा । तमुवाच महासाध्वी वेदाक्तञ्च यथोचितम्  
अहल्योषाच ।

अभाष्याद्ब्रह्मणश्चापि मरीचेद्यतपस्विनः । अभाष्यात्कश्यपस्यापि त्वंपुत्रःपापमानसः  
किं तज्जपेत तपसा मौनेन च प्रतेन च । सुरार्चनेन तीर्थेन स्त्रीमिर्यस्य मनो हतम् ॥  
स्त्रीरूपं निर्मितं सृष्टोमोहाय फामिनां मनः । अन्यथा न भवेत् सृष्टिःऋष्या तेनपुरात्रया  
सर्वमापाकरण्डश्च धर्ममार्गागलं नृणाम् । व्यवधानञ्च तपसां दोषाणामाधर्मं पा  
कर्मबन्धनिबन्धानां निगडं कठिनं स्मृतम् । प्रदीपरूपं कीटानां मीनानां वडिरं यथा  
धिपकुम्भं दुग्धमुत्तमारम्भे मधुरोपमम् । परिणामं दुःखयीजं सोपानं नरकस्य च  
श्रुपयः सनकाद्याश्च नोद्गाहञ्चकुरीप्सितम् । परस्त्रीषु मनोयेषां तेषां सर्वञ्च निष्कल्य  
परस्त्रीसेवनं शक्र इहैघात्ययशस्करम् । परत्र नरकं घोरं ददाति कामुकाय च ॥ ४१ ॥

इत्युत्तया च महासाध्वी विहाय तञ्च कामुकम् ।

प्रययौ स्वगृहं तूर्णं गृहिणी गौतमस्य च ॥ ४२ ॥

तत्सर्वं कथयामास गौतमाय तपस्विने । तस्यो प्रहस्य स मुनिर्महेन्द्रञ्च विनिन्द्य च ॥  
एकदा गौतमः शीघ्रं जगाम शङ्करालयम् । शक्रो गौतमरूपेण तां सम्भोगं चकार सः  
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो स्वयं मन्दिरमाययौ । निर्गच्छन्तं महेन्द्रञ्च ददर्श मुनिपुङ्गवः ॥  
नद्रामहत्यां रहसि पीनश्रोणिपयोधराम् । मुनिःशशाप शक्रञ्च भगाङ्गञ्च भवेति च  
फोपाच्छशाप पत्नीञ्च खदन्तीं भयविह्वलाम् । त्वञ्च पापाणरूपा च महारण्ये भवेति च  
ययौ च स्वगृहं शक्रो लज्जैकतानमानसः । उवाच मधुरं भीता स्वामिनं शोककर्षितम्

अहल्योषाच ।

माञ्च दासीञ्च निर्दोषां कथं त्यजसि धार्मिक । त्वञ्चवेदविदां श्रेष्ठो विचारं कुरुधर्मतः  
गौतम उवाच ।

त्वां जानामिमनःशुद्धांसुप्रताञ्जपतिप्रताम् । त्वक्षयामि च तथापितांपरधीर्यञ्चविघ्नतीम्  
परभोग्या च या कान्ता साऽशुद्धा सर्वकर्मसु ।

तां यो गच्छेन्महामूढो नरकं तस्य फल्यकम् ॥ ४१ ॥

अन्नं विष्टा जलं मूत्रं परमोग्याश्च निश्चितम् उपस्पृशेन्न तस्याश्च हन्तिपुण्यं पुराकृतम्  
अनिच्छया च शृङ्गारे स्त्री जारेण न दुष्यति ।

दुष्टा स्त्री निश्चितं साध्वी स्वेच्छाशृङ्गार कर्मणि ॥ ५३ ॥

त्वं शकं स्वामिनं मत्वा सुखं भुतवा रतिं वृधे । पश्चाद्दुःखभूय ते ज्ञानं मां दृष्ट्वा च निशामय  
गच्छ गच्छ महारण्यं भव पाराणरूपिणी । रामपादाङ्गुलिस्पर्शात् सद्यः पूता भविष्यसि  
मां संप्राप्स्यसि तन् पुण्यात् पुनरैवागमिष्यसि ।

गच्छ कान्ते महारण्यमित्युक्त्वा तपसे ययौ ॥ ५६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं महेन्द्रदर्पमञ्जनम् । पुनः संप्राप लक्ष्मीञ्च विभोश्च कृपया मुने ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

इन्द्रदर्पमङ्गवर्णनं नामैकपष्टितमोऽध्यायः ।

## द्विपष्टितमोऽध्यायः

संक्षेपेण श्रीरामचरित्रम् अहल्यामोक्षणञ्च ।

नारद उवाच ।

इहान् केन प्रकारेण रामो दाशरथिः स्वयम् । चकार मोक्षणं कुत्र युगे गीतमयोपितः  
प्रायतारं सुखदं समासेन मनोहरम् । कथयस्व महामाग श्रोतुं कौतूहलं मम ॥

श्रीनारायण उवाच ।

क्षणाप्रार्थितो विष्णुर्जातो दशरथात्स्वयम् । कौशल्यायाश्च भगवान् ब्रैतायाश्च मुदान्वितः  
केप्यां भरतश्चैव रामतुल्यो गुणेन च । लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः  
वैश्वामित्रप्रेपितश्च श्रीरामश्च सलक्ष्मणः । प्रययौ मिथिलां रम्यां सीताग्रहणहेतवे ॥ ५

दृष्ट्वा पाषाणरूपाञ्च रामो घर्त्मनि कामिनीम् ।

विश्वामित्रञ्च पप्रच्छ कारणं जगदीश्वरः ॥ ६ ॥

रामस्य धनं धृष्ट्या विभ्रामित्रो महात्माः । उवाच तत्र धर्मिष्ठो गह्वर्यं सर्वमेव च ।  
कारणं तन्मुक्त्वाच्छ्रुत्वा रामो भुवनपापनः । पत्न्यर्षी पादाङ्गुलिना सा बभूव च परित्रि  
सा राममाशिरं कृत्वा प्रपथी मर्षु मन्दिरम् ।

शुभाशिरं ददौ तस्मै मात्स्यां संप्राप्य गीतमः ॥ १६ ॥

रामश्च मिथिला गत्या धनुर्मङ्गं शिवस्य च । नकार पाणिप्रदणं सीतायाश्चैव नाग्न ।  
कृत्वा पिवाहं राजेन्द्रो भृगुदर्पं निहत्यन । अयोध्यां प्रपथी स्व्यां प्रोडाकोतुकमङ्गुलैः  
राजा पुत्रं नृपं फलुप्रियेय स तु सादगम् । सननीर्घोदकं तूर्णमानीय मुनिपुङ्गवान् ॥१२  
कृत्वाधियासं श्रीरामं सर्वमङ्गलमंयुतम् । दृष्ट्वा भरतमाता न कैकेयी शोकविह्वला ॥१३  
धरयामास राजानं पूर्वमङ्गीकृतं परम् । रामस्य धनवासञ्च राजत्व्यं भरतस्य च ॥१४  
परं दातुं महाराजो नेयेय प्रेममोहितः । धर्मसत्यमवेनेयोवाच रामो नृपं सुधीः ॥ १५

श्रीराम उवाच ।

तद्भागशतदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते धापीदानेन निश्चिन्तम् ॥  
दशवापीप्रदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः ॥१७  
दशकन्याप्रदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते यज्ञैकेन नराधिप ॥ १८  
दशयज्ञेन यत् पुण्यं लभते पुण्यवृत्तनः । ततोऽधिकञ्च लभते पुत्रास्यदर्शनेन च ॥१९  
दर्शने शतपुत्राणां यत् पुण्यं लभतेनरः । तन् पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान् सत्यपालत्रात्

न हि सत्यात् परो धर्मा नानृणात् पातकं परम् ।

न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः ॥ २१ ॥

नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम् ।

धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यज्ञतः ॥ २२ ॥

स्वधर्मं रक्षिते तात शब्दत् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम् ॥  
चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन् । धनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते  
कृत्वा सत्यञ्च शपथमिच्छायानिच्छयाद्यथा ।

न कुर्यात्पालनं यो हि भस्मान्तं तस्य सूतकम् ॥ २५ ॥

हृत्मीपाके स पचति यावच्चन्द्रद्विवाकरी । ततो मूको भवेत् कुप्री मानवः सतजन्मसु  
त्येवमुक्त्वा श्रीरामो विधाय बलकलं जटांम् । प्रययौ च महारण्ये सीतया लक्ष्मणेन च  
बुधशोकान्महाराजस्तत्याज स्वतनुं मुने । पालनाय पितुः सत्यं रामो बध्नाम कानने ॥

कालान्तरे महारण्ये भगिनी राघणस्य च ।

भ्रमन्ती कानने घोरे भद्रा सार्द्धं सुफीतुकात् ॥ २६ ॥

दर्शं रामं कुलटा कामार्त्ता राक्षसी तदा । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी मूर्च्छामाप स्मरेण च  
प्रीरामनिकटं गत्वा सस्मितोषाच कामुकी । शश्वयीवनसंयुक्तातिर्षोढा कामदुर्मदा ॥  
शूर्पणखोषाच ।

३ राम हे धनश्याम रूपधाम गुणान्वित । भावानुरक्तां वनितां मां गृहाण सुनिर्जने ॥

श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यं धर्मं संस्मृत्य धार्मिकः ।

उवाच मधुरं वाक्यं शापभीतश्च नारद ॥ ३३ ॥

श्रीराम उवाच ।

मय्य मातःसभार्योऽहमभार्यं गच्छ मेऽनुत्तम् । भजेत् प्रियजनं दुःखमितरञ्ज सुखालयम्

रामस्य घननं श्रुत्वा प्रययौ लक्ष्मणं मुदा ।

दर्शं लक्ष्मणं शान्तं कान्तञ्च लक्षणान्वितम् ॥ ३५ ॥

मां भजस्व महामागेत्युवाच च पुनः पुनः । लक्ष्मणस्तद्वचः श्रुत्वा तामुवाच कुन्दलात्

लक्ष्मण उवाच ।

विद्वाय रामं सर्वेशं हे मूढे दासमिच्छसि । सीतादासीं च मत्पत्नीं सीतादासोऽहमेव च

मय सीतासपत्नीत्वं गच्छ रामं मदीश्वरम् । तवपुत्रो भविष्यामि सीतायाश्च यथासति

लक्ष्मणस्य च वः श्रुत्वा कामेन हतमानसा । उवाच लक्ष्मणं मूढा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका

शूर्पणखोषाच ।

यदि त्यजसिमां मूढकामात् स्वयमुपस्थिताम् । युवयोश्च विपत्तिश्च भविष्यति न संशयः

ब्रह्मा च मोहिनीं त्यक्त्वा विश्वेऽपूज्यो बभूव सः ।

रमाशापेन दक्षश्च छागमुण्डो बभूव सः ॥ ४१ ॥



स्वर्गेशोर्षशीशापाद् यज्ञभागविपजितः । रुग्हीनः कुन्वेरश्च मेनाशापेन लक्ष्मण ॥४२॥

कामो पुनार्घाशापेन यभूय भम्मस्तात् शिवात् ।

यन्निर्महालसाशापाद् भद्रराज्यो यभूय ह ॥ ४३ ॥

शापेन मिश्रकेदयाश्च हृतमार्यो बृहस्पतिः । मम शापास्तथा रामो हृतमार्यो भविष्यति

कामातुरां यौघनष्ठा भार्यां स्वयमुपस्थिताम् । न त्यजेद्वर्ममीनश्च श्रुत् सार्यं दिनेपुरा

इह त्यतया विपद्ग्रस्तः परत्र मरकं प्रजेत् ॥ ४५ ॥

भूत्वा शूर्पणखापाकयमर्द्धचन्द्रेण लक्ष्मणः । निच्छेद् नासिकां तस्याःशुग्धारेणलीलया

तस्या भ्राता च युयुधे यलयान् परदूषणः ।

ससैन्यो लक्ष्मणास्त्रेण स जगाम यमालयम् ॥ ४७ ॥

चतुर्दशसहस्रञ्च राक्षसान् शरदूषणम् । मृतान् दृष्ट्वा शूर्पणखा भर्त्सयामास रायणम्

सर्वं निवेदनं कृत्वा जगाम पुष्करं तदा । ब्रह्मणश्च परं प्राप कृत्वा च दुष्करं तपः ॥

उपाच तादृशीं दृष्ट्वा निराहारां तपस्विनीम् । सर्वशस्तनमनो मत्वा हृपासिन्धुधनारद

ब्रह्मोपाच ।

अप्राप्य रामं दुष्प्रापं करोषि दुष्करं तपः । जितेन्द्रियाणां प्रघरं लक्ष्मणं धर्मलक्ष्णम्

ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरं प्रकृतेः परम् । जन्मान्तरे च भर्तारं प्राप्स्यसि त्वं धरानने

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च जगाम स्थालयं मुदा ।

देहं तत्याज सा बहो सा च कुब्जा यभूव ह ॥ ५३ ॥

अथ शूर्पणखावाक्पात्कोपात्कम्पितधिग्रहः । जहार मायया सीतां मायावी राक्षसेश्वर

सीतांन दृष्ट्वा रामश्चमूर्च्छां प्रापचिरंमुने । चेतनां कारयामास भ्राता चाध्यात्मिकेतव

ततो यन्नाम गहनं शैलञ्च फन्दरं नदम् । अहर्निशं स शोकातो मुनीनामाश्रमं मुने ॥५६॥

चिरमन्वेदणं कृत्वा न दृष्ट्वा जानकीं विभुः । अकार मित्रतां रामः सुग्रीवेण स्वयंप्रभुः

निहत्य घालिनं याणैर्ददौ राज्यञ्च लीलया । सुग्रीवायच मित्राय स्वीकारपालनाय वै

दूतान् प्रस्थापयामास सर्वत्र धानरेश्वरः । तस्यौ सुग्रीवभवने धोरामश्च सलक्ष्मणः

परं दत्त्वा रम्यं ख्जाङ्गुलीयकम् । सीतायै शुभसन्देशं प्राणधारणकारणम् ॥६०॥

तच्चप्रस्थापयामांस दक्षिणां दिशमुत्तमाम् । सुप्रीत्यालिङ्गनं दत्त्वापादरेणूरसुदुर्लभान् ॥  
 हनूमान् प्रययौ लङ्कां सीतान्वेषणहेतवे । रामादधीतसन्देशो ययौ रुद्रकलोद्भवः ॥६२॥  
 वशोककानने सीतां ददर्श शोककर्शिताम् । निराहारामतिदृशां कुह्नां चन्द्रकलामिव ॥६३॥  
 सततं रामरामेति जपन्ती भक्तिपूर्वकम् । विभ्रतीञ्च जटाभारं तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ॥६४॥  
 ध्यायमानां पदान्जञ्च धीरामस्य दिवानिशम् । शुद्धशय्यां सुरीलाञ्च सुव्रताञ्च पतिव्रताम्

महालक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां प्रज्वलन्तीं स्वतेजसा ।

पुण्यदां सर्वतीर्थानां दृष्ट्वा भुवनपावनीम् ॥६६॥

प्रणम्य मातरं दृष्ट्वा रुन्तीं वायुनन्दनः । रत्नाङ्गुलीयं रामस्य ददौ तस्यै मुदान्वितः  
 हरोद धर्मी तां दृष्ट्वा धृत्या तच्चरणाम्बुजम् । उवाच रामसन्देशं सीताजीवनरक्षणम् ॥

हनूमानुवाच ।

पारंसमुद्रेथीरामः सन्नद्धश्च सलक्ष्मणः । यभूव राममन्त्रश्च सुप्रीवो बलवान् कपिः ॥

रामश्च वालिनं हृत्वा राज्यं निष्कण्टकं ददौ ।

सुप्रीवाय च मित्राय तदुभार्यां वालिना हताम् ॥७०॥

सुप्रीवश्च तथोद्धारं स्वीचकार च धर्मतः । वानराश्च ययुः सर्वे तवान्वेषणकारणात् ॥

प्राप्य मङ्गलघाताञ्च मत्तो राजीवलोचनः । गम्भीरं सागरं च दुध्वा सोऽचिरैणागमिष्यति  
 निहत्य रावणं पापं सपुत्रञ्च सवान्धवम् । करिष्यत्यचिरैरेव हे मातस्तवमोक्षणम् ॥

अथ रत्नमयीं लङ्कां निःशङ्कस्त्वत्प्रसादतः ।

भस्मीभूतां करिष्यामि मातः पश्य च सस्मितम् ॥ ७४ ॥

मर्कटीलिङ्गमनुल्याञ्च लङ्कां पश्यामि सुव्रते । मूत्रतुल्यं समुद्रञ्च शरावमिव भूतलम् ॥

पिपीलिकासङ्घमिव ससैन्यं रावणं तथा । संहर्तुञ्च समर्थोऽहं मुहूर्त्तार्धेन लीलया ॥

रामप्रतिज्ञारक्षार्थं न हनिष्यामि साग्रतम् । स्वस्था भवमहाभागे त्यज्य भीतिमदीश्वरि  
 वानरस्य वचः श्रुत्या हरोदोद्यौर्मुहुर्मुहुः । उवाच वचनं भीता सीता रामपतिव्रता ॥ ७८ ॥

सीतोवाच ।

अये जीवति मे रामो मञ्जोकार्णवदारुणात् । अपिमेतुशाली नाथः कौशल्यानन्दनः प्रभुः

कीदृशाश्च श्वाङ्गश्च ज्ञानकार्त्तवीर्योऽपुनः । किमाहारश्चकिमुन्तेमम प्राणाधिकःप्रियः ॥  
अपिपारेसमुद्रस्यसत्यं सीतापतिःस्ययम् । अगिमस्यं ससप्रदो नरोकेन हनः प्रभुः ॥

अपि स्मरति मां पापं म्यागिनो दुःखरूपिणीम् ।

मर्द्यं कति दुःखं वा संप्राप स मदीश्वरः ॥ ८२ ॥

हारो नारोपितः कण्ठे पुरा ह्यवहितो रत्नी । अतुनेयावयोमंभ्यं समुद्रः शतयोजनः ॥

अपिद्रश्यामि तंरामं कण्ठनासागरं प्रभुम् । फान्नं शान्नं नितान्तञ्च धर्मिष्ठं धर्मकर्मणि

अपिसैवां करिष्यमि पाश्र्पमे पुनःप्रमोः । पतिमेवाधिहता या मूढा सा जीयन् वृथा ॥

अपिमे धर्मपुत्रश्च सत्यं जीयति लक्ष्मणः । मय्योक्तमागरे मनोमग्नदर्पो मयाधिता ॥

पीराणां प्रथरो धर्मो देवकल्पश्च देवः । अपि सत्यं स सप्रदो मत्प्रमोरनुन्नःसदा ॥

अपि द्रश्यामि सत्यं तं लक्ष्मणं धर्मलक्ष्मणम् ।

प्राणानामधिकं प्रेम्णा धन्यं पुण्यस्वरूपिणम् ॥ ८८ ॥

इत्येवं धचनं ध्रुत्वा दत्त्वा प्रत्युत्तरं शुभम् । मस्मीभृताञ्च लङ्काञ्च चकारलीलया मुने ॥

पुनःप्रयोधं तस्यै च दत्त्वावायुसुतः कपिः । प्रययौलीलया धेगायत्र राजीवलोचनः ॥

सर्वतत्कथयामासवृत्तान्तं मानुरेवच । सीतामङ्गलवृत्तान्तं ध्रुत्वा रामो रुदोद च ॥

हरोदोद्यैर्लक्ष्मणश्च सुग्रीवश्चापि नारद । धानरा रुद्रदुः सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥ ९२ ॥

नियध्य सेतुंलङ्काञ्च प्रययौ रघुनन्दनः । ससैन्यः सानुजः शीघ्रं सन्नद्धश्चापि नारद ॥

निहत्यरावणं रामो रणंश्रुत्वा सयान्धचम् । चकार मोक्षणं ब्रह्मन् सीतायाश्च शुभेक्षणे

श्रुत्वापुष्पकयानेन सीतां सत्यपरायणाम् । भयोध्यां प्रययौ शीघ्रं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः

क्रीडांचकार भगवान् सीतांश्रुत्वा चवक्षसि । विजहौविरहज्वालांसोतारामश्चतन्क्षणम्

सप्तद्वीपेश्वरो रामो बभूव पृथिवीतले । यभूव निखिला पृथ्वो आधिभ्याधिदिवर्जिता

बभूवतू रामपुत्रो धार्मिको च कुशीलवी । तयोः पुत्रैश्च पौत्रैश्च सूर्यवंशोद्भवा नृपाः ॥

इति ते कथितं घत्स श्रीरामचरितं शुभम् । सुखदं मोक्षदं सारं पारपोतं भवार्णवे ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीरामचरितं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

## त्रिपष्टितमोऽध्यायः

कंसयज्ञकथनम् ।

नारद उवाच ।

अथकंसो विचिन्त्यैवं द्रुप्या दुःस्वप्नमेव च । समुद्विग्नो महाभीतो निराहारो निरुत्सुकः  
पुत्रं मित्रं बन्धुगणं बान्धवञ्च पुरोहितम् । समानाय समामध्ये तानुवाच सुदुःखितः ॥

कंस उवाच

मयाद्रुप्यो निरीधे यो दुःस्वप्नो हि भयप्रदः । नियोधतवुधाः सर्वे बान्धवाश्च पुरोहिताः ॥  
विभ्रती रक्तपुष्पाणां मालां सारक्तचन्दनम् । रक्ताम्बरं खड्गतीक्ष्णं तर्पणञ्च भयङ्करम्  
प्रहृत्याष्टादहासञ्च लोलजिह्वा भयङ्करी । अतीववृद्धा कृष्णाङ्गी नगरे मम नृत्यति ॥ ५ ॥

मुक्तकेशी छिन्ननासा कृष्णा कृष्णाग्वरापि या ।

विधवा सा महाशूद्रा मामालिङ्गितुमिच्छति ॥ ६ ॥

मलिनं चैलखण्डञ्च विभ्रती रुक्षमूर्दजान् । दधती चूर्णतिलकं कपाले मम पशसि ॥  
कृष्णवर्णानि पक्वानि छिन्नमिन्नानि सत्यक । पतन्ति हृत्याशब्दांश्च शब्दस्तालपत्नानि च

कुचैलो विहृताकारो म्लेच्छो हि रुक्षमूर्दजः ।

ददाति महा भूयायां छिन्नमिन्नकपर्दकान् ॥ ६ ॥

महारष्टा च दिव्या स्त्री पतिपुत्रपती सती । वभञ्ज पूर्णकुम्भञ्च सामिश्रप्य पुनः पुनः ॥

मम्लानामूढमालाञ्च रक्तचन्दनचर्चिताम् । ददाति मत्तं विप्रश्च महारष्टोऽतिशय्य च ॥

क्षणमङ्गारवृष्टिश्च भस्मवृष्टिः क्षणं क्षणम् । क्षणं क्षणं रक्तवृष्टिर्भयेद्य नगरे मम ॥ १२ ॥

घानरं धापसं श्यानं भल्लूफं शूकरं त्वरम् । पश्यामि विहृताकारं शब्दं कुर्वन्तमुन्वपणम्

पश्यामि शुष्ककाष्ठानां राशिमम्लानकज्जलम् ।

अरण्योदययैलायां कर्षीन् छिन्ननगानि च ॥ १४ ॥

पातयत्प्रपरीधाना शूरचन्दनचर्चिता । विभ्रती मालतीमालां रक्तभूरणभूषिता ॥ १५ ॥

श्रीहासकमलदम्ता सा सिन्दूरचिन्दुरोमिता ।

दृष्ट्यामिश्रां मां गृष्टा याति मन्मन्दिस्तान् सती ॥ १६ ॥

पाशाहस्तांश्च पुरुषान् मुक्तकेशान् मयद्भ्रान् । भक्तिकशांश्च पश्यामि विरालो नगरं मम ॥

नग्ननारीं मुक्तकेशीं नृत्यन्तीञ्च गृहे गृहे । भगोपचिन्दुराकारं पश्यामि सस्मितां सदा ॥

छिन्ननासा च पिधवा महाशुद्धी दिगम्बरी । सा तैलाभ्यङ्गितं माञ्च करोत्यतिमयद्भुरी

निर्वाणाङ्गायुक्ताश्च भस्मपूर्णां दिगम्बराः ।

भक्तिप्रभातसमये चित्राः पश्यामि सस्मिताः ॥ २० ॥

पश्यामि च विधाहञ्च नृत्यगीतमनोहरम् । रक्तवस्त्रपरीधानान् पुरुषान् रक्तमूर्द्धजान् ॥

रक्तं धमन्तं पुरुषं नृत्यन्तं नाममुल्लषणम् । धावन्तञ्च शयानञ्च पश्यामि सस्मितं सदा ॥

राहुप्रस्तञ्च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । एककाले च पश्यामि सर्वप्रासञ्च चान्धवाः

उल्कापातं धूमकेतुं भूकम्पं राष्ट्रविद्रवम् । ऋषभावातं महोरवातं पश्यामि च पुरोहित

घायुना घूर्णमानांश्च छिन्नस्कन्धान् महीरुहान् ।

पतितान् पर्यतांश्चैव पश्यामि वृथिर्घातले ॥ २५ ॥

पुरुषं छिन्नशिरसं नृत्यन्तं नग्नमुच्छ्रितम् ।

मुण्डमालाकरं घोरं पश्यामि च गृहे गृहे ॥ २६ ॥

दग्धं सर्वाश्रमं भस्मपूर्णमङ्गारसङ्कुलम् । हाहाकारञ्च कुर्वन्तं सर्वे पश्यामि सर्वतः ॥

इत्येवमुक्त्वा राजा स विरराम सभातले । ध्रुत्वा स्वप्नचान्धवाश्च नतवक्त्रानिशश्यसुः

जहार चेतनां सद्यः सत्यकञ्च पुरोहितः । मत्वा विनाशं कंसस्य यजमानस्य नारद ॥

रुदो नारीवर्गाश्च पिता माता च शोफतः । मेने विनाशकालञ्च सद्यः स्वयमुपस्थितम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

कंसदुःस्वप्रकथनं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः ।

## चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कंससत्यकयोः परस्परं परामर्शः ।

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वं कृत्वा परामर्शं सत्यकश्च पुरोहितः । बुद्धिमान् शुक्रः शिष्यश्च तमुवाच हितं मुने ॥  
सत्यक उवाच ।

भयं त्यज महाभाग भयं किं ते मयि स्थिते । कुरु यागं महेशस्य सर्वादिष्टिनाशनम्  
यागो धनुर्मखो नाम बहून्नो बहुदक्षिणः । दुःस्वप्नानां नाशकरः शत्रुभीतिविनाशकः  
आध्यात्मिकमाधिदैवमाधिर्भौतिकमुत्कटम् ।

एषां त्रिविधोत्पातानां यण्डनो भूतिवर्धनः ॥ ४ ॥

यागे समाने शम्भुश्च जरामृत्युहरं वरम् । ददाति साक्षाद्भवति दाता च सर्वसम्पदाम् ॥  
चकारेमश्च यागञ्च पुरा यागो महायत्नः । नन्दी परशुरामश्च महश्च बलिनां वरः ॥ ६ ॥  
पुरा ददौ धनुरिदं शिवो नन्दीश्वराय च ।

यागेन भूत्वा सिद्धः स ददौ याणाय धार्मिकः ॥ ७ ॥

कृत्वा यागं महासिद्धो ददौ रामाय पुष्करे । तुभ्यं ददौ परशुरामः कृपया च कृपानिधिः  
सदश्वदस्तपरिमितं दैर्घ्येऽतिकठिनं नृप । दशदस्तप्रशस्तश्च शङ्करैच्छापनिर्मितम् ॥ ९ ॥  
पशुपतेः पाशुपतं युक्तयानेन दुर्बहम् । सर्वे भङ्गुं न शक्ताश्च देवं नारायणं पिना ॥  
यागे च धनुषः पूजां शङ्करस्य तु शङ्करे । कुरु शीघ्रं शुभाहंश्च सर्पान् कुरु निमग्नप्रणम्  
मस्मिन् यागे धनुर्भङ्गो भवेद्यदि नराधिप । पिनाशो यत्प्रमाणस्य भविष्यति न संशयः

भग्नं धनुषि यागश्च भग्नो भवति निश्चितम् ।

फलं ददाति को पात्रं चानिष्यन्ते च कर्मणि ॥ १३ ॥

प्रदा च धनुषो मूले मध्ये नारायणः स्वयम् ।

अग्रे खोमप्रतापश्च महादेवो महामते ॥ १४ ॥

कात्यायनो याम्रचन्कमोऽप्युतप्यः सौमगिस्ताया ।

पर्यगो देवतश्चैव जैर्मिष्यश्च जैमितिः ॥ ५० ॥

पिप्पामित्रश्च तुलयाः पिप्लवःशाब्टायनः ।

जापालिर्जाह्निलिङ्गैव विशलिश्च शिन्धालिकः ॥ ५१ ॥

भाम्तिश्चभ्रतरकास्तथा बल्ल्याणमित्रकः । दुर्वाभावामदेयश्च प्रुष्यशुद्धोविभाषः

करिष्यःकणादश्च कौशिकःपाणिनिस्तथा । कौरसोऽयमणेश्चैव चान्मार्किल्लोमहा

मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पशुरामश्च साङ्कृतिः ।

यगस्त्यश्च तथापाञ्च तथाऽन्ये मुनयो मुने ॥ ५४ ॥

सशिष्याश्च सपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।

जरासन्धो दन्तवक्रो दाम्भिको द्राघिडाधिपः ॥ ५५ ॥

शिशुपालो भीष्मकश्च भगदत्तश्च मुद्गलः । धृतराष्ट्रो धूमकेतो धूमकेतुश्च शम्भुः

शल्यः सत्राजितः शङ्कुर्नृपाश्चान्ये महाबलाः ।

भीष्मो द्रोणः कृपाचार्यो ह्यवस्थामा महाबलः ॥ ५७ ॥

भूरिध्रवाश्चशाल्वश्च कैकेयःकौशलस्तथा । सर्वान्सम्भाषयामास महाराजोयथोचित

स्तप्यको यज्ञदिवसं चकार च शुभक्षणम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंघादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

कंसयज्ञकथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

५७ सोऽक्रुरो धर्मिणां वरः । उवाच चोद्धवं शान्तं शान्तःप्रहृष्टमानसः

अक्रूर उवाच ।

सुप्रभाताद्य रजनी बभूव मे शुभं दिनम् । तुष्टाश्च गुरवो विप्रा देवा मामिति निश्चितम्  
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं मम स्वयमुपस्थितम् । बभूव मे समुत्पन्नं यद्यत्कर्म शुभाशुभम्  
विच्छेद बन्धनिगडं मम बहस्य कर्मणा । कारागाराश्च संसारान्मुक्तो यामि हरेःपदम्  
सुहृदर्थो वृत्तोऽहञ्च कंसेऽ विदुषा हवा । घरेण तुल्यो देवस्य क्रोधो मम बभूव ह ॥

ब्रजराजं समाहर्त्तं ब्रजं यास्यामि साम्प्रतम् ।

द्रक्ष्यामि परमं पूज्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनम् ॥ ६ ॥

वीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् । पातवस्त्रसमायुक्तकटिदेशविराजितम् ॥ ७ ॥

लिप्सूसरिताङ्गञ्च किंवा चन्दनचर्चितम् । अथवा नवनोताकमङ्गं द्रक्ष्यामि सस्मितम्  
किंवा विनोदमुरलीं घादयन्तं मनोहरम् । किंवा गघां समूहञ्च चारयन्तमितस्ततः ॥

किंवा घसन्तं गच्छन्तं शयानं वा सुनिश्चितम् ।

निदेशं कीदृशञ्चाद्यं सुदृष्टया च शुभे क्षणे ॥ १० ॥

त्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । न हि जानाति यस्यान्तमनन्तोऽनन्तविग्रहः  
यत्प्रभावं न जानन्ति देवाः सन्तश्च सन्ततम् ।

यस्य स्तोत्रे जड़ीभूता भोता देवी सरस्वती ॥ १२ ॥

दासी नियुक्ता यद्दास्ये महालक्ष्मीश्च लक्षिता ।

गङ्गा यस्य पद्माम्भोजान्निःसृता सत्त्वरूपिणी ॥ १३ ॥

ममृत्युजराव्याधिहरा त्रिभुवनत्परा । दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्चनृणां पातकनाशिनी ॥ १४ ॥  
अपते यत्पद्माम्भोजं दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । त्रैलोक्यजननी देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥

लोम्नां कूपेषु विन्धानि महाविष्णोश्च यस्य च ।

असंख्यानानि विचित्राणि स्थूलात् स्थूलतरस्य च ॥ १६ ॥

स च यत्पौडशांशश्च यस्य सर्वेश्वरस्य च । तंद्रष्टुं यामि हे बन्धोमायामानुपरूपिणम्  
सर्वं सर्वान्तरात्मानं सर्वशं प्रकृतेः परम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥

निर्गुणञ्च निरीहञ्च निरानन्दं निराधयम् । परमं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥ १६ ॥



स्येच्छामयं सर्वपरं सर्वबीजं सनातनम् ।

घदन्ति योगिनः शश्वत् ध्यायन्तेऽहर्निशं शिशुम् ॥ २० ॥

मन्वन्तरसहस्रञ्च निराहारः वृशोदरः । पद्मे पाद्मतपस्तेपे पुरा पाद्मे तु यत्कृते ॥ २१ ॥

पुनः कुरु तपस्याञ्च तदा द्रक्ष्यसि मामिति । सरुच्छब्दञ्च शुभाय न ददर्श तथापि तम्

तावत्कालं पुनस्तप्त्वा घरं प्राप ददर्श तम् । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वय ॥ २३ ॥

पुराशम्भुस्तपस्तेपे याचद्वै ब्रह्मणो घयः । ज्योतिर्मण्डलमध्ये च गोलोके तं ददर्श सः

सर्वतत्त्वं सर्वसिद्धं मम तत्त्वं परं घरम् ।

सग्राप तत्पदाम्भोजे भक्तिञ्च निर्मलां पराम् ॥ २५ ॥

चकारात्मसमं तञ्च यो भक्तो भक्तवत्सलः । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वय ॥ २६ ॥

सहस्रशक्रपातान्तं निराहारः वृशोदरः । यस्यानन्तस्तपस्तेपे भतया च परमात्मनः ॥

तदा चात्मसमं ज्ञानं ददौ तस्मै य ईश्वरः । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वय ॥ २८ ॥

सहस्रशक्रपातान्तं धर्मस्तेपे च यत्तपः । तदा बभूव साक्षी स धर्मिणां सर्वकर्मिणाम्

शास्ता च फल्दाता च यत्प्रसादाग्रुणामिह । सर्वेशमीदृशमहो द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वय ॥

अष्टाविंशतिरिन्द्राणां पतने यद्विवानिशम् । एवं क्रमेण मासाध्वैः शताब्दं ब्रह्मणो घयः

अहो यस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वय ॥ ३२ ॥

नास्ति भूरजसां संख्या यथैव ब्रह्मणांतया । तथैवयन्धो विश्वानांतदाधारो महाधिराद्

विश्ये विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवाद्यः । मुनयो मनयःसिद्धा मानपायाधरावराः

यत्सोऽङ्गारांशः स धिराद् गृष्टो गृष्टश्च लीलया । ईदृशं सर्वशास्त्रारं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वय

इत्येवमुक्तयाम्बुध पुलकाञ्जितप्रहः । मूर्च्छां प्राप साधुनेत्रो दध्वो तघटनायुजम् ॥

बभूव भक्तिपूर्णश्च स्मारंस्मारं पदायुजम् । कृषा प्रदक्षिणं धावि कृष्णस्य परमात्मनः

उद्वयश्च तमात्रिष्य प्रशशंस पुनः पुनः । स य शीघ्रं यथो गेहमक्रूरोऽपि स्वयन्दि ॥

इति धाम्प्रद्वैवर्ते महापुराणे नारायणनारद्वर्मपादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे-

मन्मूरहरोत्त्वयंभयनं नाम पञ्चविंशतिमोऽध्यायः ।

## पट्टपण्डितमोऽध्यायः

### श्रीराधाशोकापनोदनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ रासेश्वरीयुक्तो रासे रासेश्वरः स्वयम् । स च रेमे तथा सार्द्धमतीवस्मृणोत्सुकः  
सुखसम्भोगमात्रेण ययौ निद्राञ्च राधिका । दृष्ट्वास्वप्नं समुत्थाय दीनोवाच प्रियंदिने  
राधिकोवाच ।

अहो स्यामिन्निहागच्छ त्वां करोमि स्ववक्षसि ।

परिणामे विधाता मे न जाने किं करिष्यति ॥ ३ ॥

इत्युत्था सा महाभागा प्रियं हृन्त्या स्ववक्षसि । दुःस्वप्नं कथयामास हृदयेन विदूयता  
राधिकोवाच ।

रत्नसिंहासनऽहञ्च रत्नच्छत्रञ्च चिन्नती । तदातपत्रं जग्राह रष्टो विप्रश्च मे प्रभो ॥ ५ ॥

सागरे कज्जलाकारे महाघोरे च दुस्तरे । गर्भीरे प्रेरयामास मामेव दुर्वलां स च ॥ ६ ॥

तत्र स्योतसि शोकार्ता भ्रमामि च मुहुर्मुहुः । महोर्मोणाञ्च येनेन व्याकुला नक्तसङ्कुलैः

ब्राह्मि ब्राह्मीति हे नाथ त्वां पदामि पुनः पुनः ।

त्वां न दृष्ट्वा महाभीता करोमि प्रार्थनां सुरम् ॥ ८ ॥

रुष्ण तत्र निमज्जन्ती पश्यामि चन्द्रमण्डलम् । निपतन्तञ्च गगनाच्छतमण्डलञ्च भूतले ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि गगनात् सूर्यमण्डलम् । बभूव च चतुःखण्डं निपत्य धरणीतले

एककाले च गगने मण्डलं चन्द्रमूर्ध्वयोः । धनीयकज्जलाकारं सर्वं प्रान्तञ्च रादुणा ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि ब्राह्मणो दीप्तिमानिति ।

मत्प्रोद्दश्यसुधाकुम्भं धमञ्च च रूपेति च ॥ १२ ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि महारुष्टञ्च ब्राह्मणम् । गृहीत्वा च प्रतन्तञ्च चतुर्योः पुर्यं मम ॥

कीडाकमलदण्डञ्च हस्तादस्तं मम प्रभो । सहसा खण्डखण्डञ्च बभूव सह हेतुना ॥

हस्ताद्भस्तश्च सहसा सद्रत्नसारदर्पणः । निर्मलः फञ्जलाकारः खण्डखण्डो बभूव ह  
हारो मे रत्नसाराणां लिङ्गो भूत्वा च वक्षसः । अतीवमलिनं पद्मं पपात धरणीतले ।

सौधपुत्तलिकाः सर्वा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।

आस्फोटयन्ति गायन्ति रुदन्ति च क्षणं क्षणम् ॥ १७ ॥

कृष्णवर्णं बृहच्चक्रं खे भ्रमन्तं मुहुर्मुहुः । निपतन्तञ्चोत्पतन्तं पश्यामि च भयङ्करम् ॥ १८ ॥  
प्राणाधिदेवः पुरुषो निःसृत्याभ्यन्तरान्मम । राधे विद्रायं देहीति ततो यामीत्युपाव ह

कृष्णवर्णां च प्रतिमा मामाश्रित्यति चुम्बति ।

कृष्णवल्गुपरीधाना चेति पश्यामि साम्प्रतम् ॥ २० ॥

इतीदं विपरीतञ्च दृष्ट्वा च प्राणवह्निम् । नृत्यन्ति दक्षिणाङ्गानि प्राणा आन्दोलयन्ति मे  
रुदन्ति शोकात्कर्षन्ति समुद्विग्नञ्च मानसम् । किमिदं किमिदं नाथ यद् वेदविदां व

इत्युत्तया राधिकादेर्षी शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।

पपात तत्पदाभ्मोजे भीता सा शोकविह्वला ॥ २३ ॥

श्रुत्वा स्वप्नं जगन्नाथो देर्षी कृत्वा स्वयश्नसि ।

आप्यात्मिकेन योगेन बोधयामास तन्क्षणम् ॥ २४ ॥

तत्याज शोकं सा देर्षी ज्ञानं सम्प्राप्य निर्मलम् ।

शान्तञ्च भगवन्तञ्च कृत्वा कान्तं स्वयश्नसि ॥ २५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीराधारोष्णपनोदनं नाम अष्टाष्टितमोऽध्यायः ।

सप्तपष्टितमोऽध्यायः

आप्यात्मिकयोगकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

.. कामिनी काममोहनः । कृत्वा स्वयश्नसि तां कृष्णो ययोर्कीडासतोपम्

राजराजेश्वरी राधा कृष्णपक्षसि राजते । सौदामिनीव जलदे तर्धाने गगने मुने ॥ २ ॥

रेमे सख्या सादं कृपया च कृपानिधिः । द्वयोर्द्वयोर्वथा स्वर्णमण्योर्मारकतो मणिः

रत्ननिर्माणपर्यङ्के रत्नेन्द्रसारनिर्मिते । रत्नप्रदीपे ज्वलन्ति रत्नभूषणभूषितः ॥ ४ ॥

रत्नभूषणभूषितया रासरत्नश्च कौतुकात् । रासरत्नाकरे रम्ये निमग्नो रतिकेश्वरः ॥ ५ ॥

रासे रासेश्वरी राधा रासेश्वरमुवाच सा । सुरती विरती सत्यां विरते न मनोरथे ॥

राधिकीवाच ।

प्रफुल्लाऽहं त्वया नाथ मृता मृता च त्वां विना ।

यथा मद्द्वीपधिगणः प्रभाते भाति भास्करे ॥ ७ ॥

नक्तं दीपशिखेवाहं त्वया सादं त्वया विना ।

दिने दिने यथा क्षीणा कृष्णपक्षे विधोःकला ॥ ८ ॥

तप घञ्जसि मे दीप्तिःपूर्णचन्द्रप्रभासमा । सद्यो मृता त्वया त्यक्ता कुहां चन्द्रकलायथा

ज्वलद्गिरिशिखेवाहं मृताहुत्या त्वया सह । त्वया विनाहं निर्वाणा शिशिरे पक्षिनी यथा

चिन्तागधरजराप्रस्ता मत्तस्त्वयि गतेऽप्यहम् । भस्तंगतेरर्धचन्द्रे ध्वान्तप्रस्ताधरायथा

भ्रष्टो घेरास्त्यां विना मे रूपं यौवनचेतनम् । तारावली परिभ्रष्टा सूर्यसूतोदये यथा ॥ १२ ॥

त्वमेवात्मा च सर्वेषां मम नाथो विशेषतः । तनुर्यथात्मना त्यक्ता तथाहञ्च त्वया विना

पञ्चपाणात्मकस्त्वं मे मृताहञ्च त्वयाविना । यथा दृष्टिश्च गोलोके दृष्टिपुत्तलिकांविना

त्यलं यथा चित्रयुक्तं त्वया सादंमहं तथा ।

भस्तंसृता त्वया हीना तुणाच्छन्ना यथा मदी ॥ १५ ॥

त्वया सादंमहं कृष्ण चित्रयुक्तेषु मृण्मयी । त्वां विना जलधौताहं विरूपा मृण्मयीपच

गोपाङ्गानां शोभा च त्वया रासेश्वरेण च । हारे स्वर्णविकारे च श्वेतेन मणिना सह

प्रजराज त्वया सादं राजन्ते राजराजयः । यथा चन्द्रेण नभसि तारावलिर्धिराजते ॥

त्वया शोभा यशोदाया नन्दस्य मन्दनन्दन । यथा शाखा फलस्वल्पैस्तद्वराजिर्धिराजते

त्वया सादं गोकुलेश शोभा गोकुलपासिनाम् ।

यथा संघो ह्योकरात्री राजेन्द्रेण धिराजते ॥ २० ॥

रासस्यापि च रासेश त्वया शोभा मनोहरा । राजते देवराजेन यथा स्वर्गोऽमरावता ।  
 घृन्दाघनस्य वृक्षाणां त्वञ्च शोभा पतिर्गतिः । मन्येपाञ्च घनानाञ्च बलवान् केशरीयथा  
 त्वयायिनापशोदाच निमग्ना शोकसागरे । अप्राप्यघत्सं सुरभी क्रोशन्ती व्याकुलापया  
 श्वान्दोलयन्ति नन्दस्यप्राणा दग्धञ्च मानसम् । त्वयायिना तप्तपात्रे यथाधान्यसमूहकः  
 इत्युक्त्वा परमप्रेम्णा सा पतन्ती हरिः पदे । पुनराध्यात्मिकेनैव बोधयामास तां विभुः  
 आध्यात्मिको महायोगो मोहसञ्छेदकारणम् । यथापरशुवृक्षाणां स्तीक्ष्णधारञ्च नारद  
 नारद उवाच ।

आध्यात्मिकं महायोगं घद् वेदविदां पर । शोकच्छेदञ्च लोकानां श्रोतुं कौतूहलं मम ।  
 श्रीनारायण उवाच ।

आध्यात्मिको महायोगो न क्षातो योगिनामपि ।

स च नानाप्रकारञ्च सर्वं वेत्ति हरिः स्वयम् ॥ २८ ॥

किञ्चिदाध्यात्मिकञ्चैव गोलोके राधिकेश्वरः । सुप्रीतः कथयामास त्रिपुरार्तिमहामुने  
 सहस्रेन्द्रनिपातान्तं तपः कुर्यन्तमीश्वरम् । श्रेष्ठं ज्येष्ठं वैष्णवानां षरिष्ठञ्च तपस्थिताम्  
 पुष्करे दुष्करं तप्त्या पात्रे पात्रञ्च पद्मजः । इडा तं सादरं कृत्या उवाच किञ्चिरेष त्व  
 शंतेन्द्रपातपर्यन्तं कठोरेण एशोदत्म् । निश्चेष्टमस्मिस्ताञ्च कृपया च कृपानिधिः ॥३२  
 सिंहक्षेत्रे पुरा धर्मं मत्तातं धर्मिणां परम् । चतुर्दशेन्द्रावच्छिद्यन्तपस्तप्त्या एशोदत्म् ॥

पपाटाध्यात्मिकं किञ्चिन् कृपया च कृपानिधिः ।

किञ्चिच्छतेन्द्रावच्छिद्यन्तपस्तप्त्या उवाच सः ॥ ३४ ॥

किञ्चिन् सनत्कुमारञ्च तपन्तं सुचिरं परम् । सुतपन्तमनन्तञ्च किञ्चिद्योषाच नारद ॥  
 चिरं तपन्तं कपिलं हिमशैले तपस्थिनम् । पुष्करे मास्करे किञ्चित्तपन्तं दुष्करं तपः ॥  
 उवाच किञ्चिन् ब्रह्माद् किञ्चिद् दुर्वाससं भृगुम् । पर्यनिगूढं मत्तञ्चकृपया मत्तवत्सलः  
 ब्रीह्यासरोपरि रम्ये यदुषाच कृपानिधिः । शोकार्तां राधिकतां तद्य कथयामि निशाम्य  
 धिरसां रसिकां इडा वासवित्या च बहसि ।

उषायाध्यात्मिकं किञ्चिद् योगिनीं योगिनीं गुरुः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

तेस्मरे स्मरात्मानं कथं विस्मरसि प्रिये । सर्वं गोलोकवृत्तान्तं सुदाम्नः शापमेवच  
शापात् किञ्चिद्दिनं दीने त्वद्विच्छेदो मया सह ।

भविष्यति महाभागे मेलनं पुनरावयोः ॥ ४१ ॥

वगमिष्यामि गोलोकं तं निजालयम् । गत्वा गोपाङ्गनाभिश्च गोपैर्गोलोकासिभिः

आध्यात्मिकं किञ्चित् त्वां वदामि निशामय । शोकघ्नं हर्षदं सारंसुखदं मानसस्यच

सर्वान्तरात्मा च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु । विद्यमानश्च सर्वेषु सर्वत्रादृष्ट एव च ॥ ४४ ॥

धरति सर्वत्र यथैव सर्ववस्तुषु । न च लिप्तस्तथैवाहं साक्षी च सर्वकर्मणाम् ॥

मत्प्रतिविम्बश्च सर्वः सर्वत्र जीषिषु । भोक्ता शुभाशुभानाञ्च कर्ता च कर्मणांसदा

जलघटेष्वेव मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । भग्नेषु तेषु संश्लिष्टस्तयोरैव तथा मयि ॥ ४७ ॥

श्लेष्टस्तथा काले मृतेषु जीषिषु प्रिये । आयाञ्च विद्यमानौ च सततं सर्वजन्तुषु ।

रक्षाहमाधेयं कार्यञ्च कारणं विना । भये सर्वाणि द्रव्याणि नश्यराणि च सुन्दरि

र्षावाधिकाः कुत्र कुत्रचिन्नूनमेव च । ममांशाः केऽपि देवाश्च केचिद्देवाः कलास्तथा

कलाः कलांशांशास्तदंशांशाश्च केचन । मदंशाः प्रकृतिः सूक्ष्मा सा च मूर्त्या च पञ्चधा

तीव्र कमला दुर्गा त्वञ्चापि वेदसूः । सर्वदेवाः प्राकृतिका यावन्तो मूर्तिधारिणः

मा नित्यदेही भक्तध्यानानुरोधतः । ये ये प्राकृतिका राधे ते नष्टाः प्राकृते लये ॥

समेवाग्रे पश्चादप्यहमेव च । यथाहञ्च तथा त्वञ्च यथा धावत्यदुग्धयोः ॥ ५४ ॥

भेदः कदापि न भवेन्नश्चितञ्च तथावयोः ।

अहं महान्विराट् सृष्टी विश्वानि यस्य लोमसु ॥ ५५ ॥

तत्र महती स्वांशेन तस्य कामिनी । अहं क्षुद्रविराट् सृष्टी विश्वं यन्नामिपन्नतः

अयं विष्णोर्लोमकूपे वासो मे चांशतः सति ।

तस्य ह्री त्वञ्च बृहती स्वांशेन सुभगा तथा ॥ ५७ ॥

वेचप्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । ब्रह्मविष्णुशिवा अंशाद्यान्यांश्चापि चमत्कलाः

शांशकलया सर्वे देवि चराचराः । वैकुण्ठे त्वं महालक्ष्मीरहं तत्र चतुर्भुजः ॥

स च विभ्यादुपहिक्षाद्धं यथा गोलोक एव च ।

सरस्वती त्वं सत्ये च सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥ ६० ॥

शिवलोके शिवा त्वञ्च मूलप्रकृतिरीश्वरी । विनाशय दुर्गं दुर्गाञ्च सर्वदुर्मतिनाशिनौ  
सा एव दक्षकन्या च सा एव शैलकन्यका । कैलासे पार्वती तेन सौमत्या शिववर्षा  
स्यांशेन त्वं सिन्धुकन्या क्षीरोद्रेविष्णुवक्षसि । ब्रह्मंस्यांशेन सृष्टीं च ब्रह्मविष्णुमहेश्वर

त्वञ्च लक्ष्मीः शिवा घात्रो सावित्री च पृथक् पृथक् ।

गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा ॥ ६४ ॥

वृन्दा वृन्दाघने रम्ये विरजा विरजातटे । सा त्वं सुदामशापेन भारतं पुण्यमगता  
पूतं कर्तुं भारतञ्च वृन्दारण्यञ्च सुन्दरि । त्यत्कलां स्वांशकलया विश्वेषु सर्वयोनि

या योपित्सा च भवती यः पुमान् सोऽहमेव च ।

अहं च कलया षड्विस्त्वं स्वाहा दाहिका प्रिया ॥ ६७ ॥

त्वया सह समर्थोऽहं नालं दधुञ्च त्वांविना । अहं दीप्तिमतां सूर्यः कलया त्वंप्रमाक  
संज्ञा त्वञ्च त्वया भामि त्वां विनाऽहं न दीप्तिमान् ।

अहञ्च कलया चन्द्रस्त्वञ्च शोभा च रोहिणी ॥ ६६ ॥

मनोहरस्त्वयासाद्धं त्वां विना न च सुन्दरः । अहमिन्द्रञ्च कलयासर्वलक्ष्मीञ्च त्वंशर्व  
त्वया साद्धं देवराजो हतभ्रीञ्च त्वया विना । अहंधर्मञ्च कलया त्वञ्च मूर्तिञ्च धर्मिणी  
नाहं शक्तो धर्मवृत्त्ये त्वाञ्च धर्मक्रियां विना । अहंयज्ञञ्च कलया त्वं स्वाहांशेनदक्षिणा

त्वया साद्धं च फलदोऽप्यसमर्थस्त्वया विना ।

कलया पितृलोकोऽहं स्वांशेन त्वं स्वधा सती ॥ ७३ ॥

त्वयालं कव्यदाने च सदा नालं त्वयाविना । अहंपुमांस्त्वं प्रकृतिर्न ह्यग्राहं त्वयाविना  
त्वञ्च सम्पत्स्वरूपाहमीश्वरश्च त्वया सह ।

लक्ष्मीयुक्तस्त्वया लक्ष्म्या तिःश्रीकञ्च त्वया विना ॥ ७५ ॥

यथा नालं कुलालञ्च घटं कर्तुं मृदा विना । अहं शेषञ्च कलया स्वांशेन त्वं वस्तुभ्या  
शस्यरत्नाधाराञ्च विमर्षिभूर्जि सुन्दरि । त्वञ्चकान्तिञ्च शान्तिञ्चभूर्तिभूर्तिमतीसती

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा क्षुधा तृष्णा परा दया ।

निद्रा शुद्धा च तन्द्रा च मूर्च्छा च सन्नतिः क्रिया ॥ ७८ ॥

मूर्तिरूपा भक्तिरूपा देहिनां देहरूपिणी । ममाधारा सदा त्वञ्च तथात्माहं परस्परम् ॥  
यथा त्वञ्च तथादञ्च समौ प्रकृतिपूरुषौ । न हि सृष्टिर्भवेद्देवि द्वयोरैकतरं विना ॥ ८० ॥

इत्युत्तया परमात्मा च राधां प्राणाधिकां प्रियाम् ।

वृत्त्वा वक्षसि सुप्रीतो बोधयामास नारद ॥ ८१ ॥

स च क्रीडानियुक्तश्च बभूव रत्नमन्दिरे । तथा च राधया साद्धं कामुक्या सह कामुकः  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भाष्यात्मिकयोगकथनं नाम सप्तपष्टितमोऽध्यायः ।

## अष्टपष्टितमोऽध्यायः

### राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

वृत्त्वाक्रीडांसमुत्थाय पुष्पतल्पात् पुरातनः । निद्रितांप्राणसदृशीं बोधयामासतत्क्षणम्  
ब्रह्माञ्जलेन संस्कृत्य वृत्त्वा तन्निर्मलं मुखम् । उवाच मधुरं शान्तं शान्ताञ्च मधुसूदनः  
श्रीकृष्ण उवाच ।

अयि तिष्ठ क्षणं रासे रासेश्वरि शुचिस्मिते । यज वृन्दावनं घापि यजं यज ब्रजेश्वरि  
रासाधिष्ठातृदेवि त्वं रासं रासे कुरु क्षणम् ।

प्राप्ते प्राप्ते यथा सन्ति सर्वत्र प्राग्देवताः ॥ ४ ॥

प्रियालिनिबह्वैः साद्धं क्षणं चन्दनकाननम् । क्षणं वा चम्पकवनं गच्छ वा तिष्ठ सुन्दरि

क्षणं गृहञ्च यास्यामि विशिष्टं कार्प्यमस्ति मे ।

विरामं देहि मे प्रीत्या क्षणं मां प्राणबहुमे ॥ ६ ॥



प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं प्राणाश्च त्वयि सन्ति मे ।

प्राणी विहाय प्राणांश्च कुत्र स्थानुं क्षमः प्रिये ॥ ७

त्वयि मे मानसंशश्वस्त्रं मे संसारघासना । त्वत्तोममप्रिया नास्ति त्वमेवशङ्करात्प्रिया

प्राणा मे शङ्करः सत्यं त्वञ्च प्राणाधिका सति ।

इत्युत्तया तां समाश्लिष्य भगवान् गन्तुमुद्यतः ॥ ६ ॥

अक्रूरागमनं ज्ञात्वा सर्वज्ञः सर्वसाधनः । आत्मा पाता च सर्वेषां सर्वोपकारकारक  
दृष्ट्वा तमेव गच्छन्तमुत्सुकं भिन्नमानसम् । उवाच राधिका देवी हृदयेनचिद्व्यता ॥ १ ॥

राधिकोवाच ।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठश्च प्रेयसां मम । हे कृष्ण हे रमानाथ ब्रजेश मा ब्रज ब्रजम् ।

अधुना त्वां प्राणनाथ पश्यामि भिन्नमानसम् ।

गतौ त्वयि मम प्रेम गतं सौभाग्यमेव च ॥ १३ ॥

कयासि मां विनिक्षिप्य गम्भीरेशोकसागरे । विरहव्याकुलांक्षीनां त्वय्येवशरणागताम्  
न यास्यामि पुनर्गोहं यास्यामि काननान्तरम् ।

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति गार्थं गार्थं दिवानिशम् ॥ १५ ॥

न यास्याम्यथवारण्यंयाम्यामिकामसागरे । तत्रत्वत्कामनांहृत्वात्यक्ष्यामिचकलेवाम्  
यथाऽऽकाशो यथात्मा च यथा चन्द्रो यथा रविः ।

तथा त्वं यासि मत्पार्श्वे निबद्धो घसनाञ्जले ॥ १७ ॥

अधुनायासि नैराशयंश्रुत्वा मे दीनघत्सल । न युक्तं हि परित्यक्तुंक्षीनां मां शरणागताम्  
यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । त्वां मायया गोपवेशं कथं जानामि मत्सती  
वृत्तं यदेव दुर्नोतमपरायसहस्रकम् । यदुक्तं पतिभावेन चाभिमानेन तन् क्षम ॥ २० ॥

दूरीभूतो मनोरथः । विशातमात्मसौभाग्यं किमन्यत् कथयामि ते  
ज्ञात्वा गर्गमुवाच ॥ त्वा मोहिता त्व मायया ।

त्याञ्च धक्तुं न शक्नोमि प्रेम्णा वा भक्तिपाशतः ॥ २२ ॥

सकलद्वेषो भविष्यसि । त्वत्पुत्रपीशा नश्यन्ति ब्रह्मकोपान्नेत्रव

क्षणं युगशतं मन्ये त्वां विना प्राणवह्नभम् ।

कथं शताब्दं त्वां स्वतया विभर्मि जीपनं प्रभो ॥ २४ ॥

त्युक्त्या राधिका कौपात्पपात धरणीतले । मूर्च्छो संप्राप सहसा जहार चेतनां मुने

कृष्णास्तां मूर्च्छितां दृष्ट्वा कृपया च कृपानिधिः ।

चेतनां कारयित्वा च वासयामास पक्षसि ॥ २६ ॥

तोषयामासपिपिधं योगैःशोकविरण्डनैः । तथापिशोकं त्यक्तुञ्च न शशाकशुचिस्मता

तामान्यपस्तुयित्श्रेयो नृणां शोकायकेवलम् । देहात्मनोश्च विच्छेदः क मुखायप्रकल्पते

ययौ तत्र दिपसे मजराजो मजं प्रति । क्रीडासरोचराभ्यासं प्रययौ राधया सह ॥

त्र गत्वा पुनः क्रीडां चकार च तथा सह । विजहौ विरहज्वालां रासे रासेश्वरी मुदा

धा सा स्वामिना सार्द्धं पुष्पचन्दनचर्चिता । पुष्पचन्दनतल्पे च तस्थौ रहसि नारद

इति श्रीप्रह्लादवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधाशोकविमोचनं नामाष्टपष्टितमोऽध्यायः ।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।

रासक्रीडावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

यतः परं किं रहस्यं राधाकेशवयोर्वद् । निगूढतत्त्वमस्पष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यंपरमाद्भुतम् । गोपनीयञ्च वेदेषु पुराणेषु पुराचिदाम् ॥ २ ॥

पुनः सकामो भगवान् कृष्णःस्वेच्छामयोविभुः । रमे सरमयासार्द्धविदग्धश्चविदग्धया

चतुःपष्टिकलासक्ता यथा कान्ताकलावती । कामशास्त्रेषु निपुणा विदग्धधारसिकेश्वरी

शृङ्गारलीलानिपुणाशश्वन्कामा च कामुकी । सुन्दरोसुन्दरीष्वेव शश्वत्सुस्थिरयोधना

विदुषी मानयो जगता जगता मान्या च मानिनी ।

शब्दोः गित्या ज्ञानयुता शब्दजगतात् ज्ञानिनी ॥ ६ ॥

वेदवेदाङ्गविदुषा वेदगतीतिविदुषा । शब्दात्तत्त्वात् शब्दात् प्रसिद्धा सिद्धा वेदनिनी ।  
 गन्धयोगादिवादेषु मानुजुल्यागकामुर्षी । गन्धानामानामात्मकामुर्षीत्याभ्यासिने प्रति  
 शब्दु-वद्विजगतात् शब्दु-वद्विजगतात् शब्दु-वद्विजगतात् शब्दु-वद्विजगतात् शब्दु-वद्विजगतात् शब्दु-वद्विजगतात्  
 तां गन्धात्प्रसन्नप्रोषी भगवन्तत्त्वात्तत्त्वात् । तुल्यगन्धनकिन्दूरां वादगतिनिनीं स्पर्शु ।  
 सुगन्धसमो गन्धात्तत्त्वात्तत्त्वात्तत्त्वात् । पुनश्चाभिनवशांती निद्रा देवी सन्तर्षी  
 दृष्टानां निद्रितां कृष्णः कृष्णाय कृष्णनिधिः । शब्दु-वद्विजगतात् शब्दु-वद्विजगतात् शब्दु-वद्विजगतात्  
 कृष्णाय भूमि शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात्  
 प्राणाधिवा प्रियत्वां धार्यात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात्  
 कर्षी स्वयामास ददी कुङ्कुमचन्दनम् । तद्गन्धे च गन्धे हाग्मन्तुं स्वनिनिद्रु ।  
 सिन्दूरश्च ददी शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात्  
 चकार पद्मकं गण्डे नानानिप्रविनिप्रकम् । ददी तन्वाद्दशे च गन्धनडांररविद्रु ॥

पादाङ्गित्तत्त्वात्तत्त्वात्तत्त्वात् ॥ १८ ॥

नानामुपेसां जगतां तां निद्राकृष्णितां विमुः । पुनश्चकार मोहेनगाङ्गालिङ्गनीनिद्रु  
 पुनश्च सुम्भनं कृष्ण निवेद्य च भवत्तत्त्वात् । सु-वद्विजगतात्तत्त्वात्तत्त्वात् । शब्दात्तत्त्वात्तत्त्वात्  
 पतन्निन्तरे कालेः प्रक्षा लोकापितामहः । शिवदेवादिभिर्देवैर्मनोन्तैः सार्द्धमाययी  
 आगत्यतत्त्वा शिरसा तुष्टायसम्पुटाञ्जलि । सामवेदोक्तस्तोत्रेण परिपूर्णतमं विमुम् ॥

श्लोकाच्च ।

जय जय जगदीश घन्दित्तरण निर्गुण निराकार स्वेच्छामये भक्तानुग्रह नित्यविग्रह  
 गोपवेश मायया मायेश सुवेश सुशाल शान्त सर्वकालत दान्न निवान्तवानानन्द परात्-  
 परतर प्रष्टनेः पर सर्वान्तरात्तरुय मिलित साक्षिस्वरूप व्यक्ताव्यक्त निरञ्जन  
 भारावतारण पद्मार्णव शोकसन्तापप्रसन्न जरासृष्ट्युभयादिहरण शरणपत्र  
 भक्तानुग्रहकार भक्तवत्सल भक्तसञ्चितधन ओं नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रीणनाय च ।

पुनः पुनरुपाचेदं मूर्च्छितश्च बभूव ह ॥ २४ ॥

इति ब्रह्मवृत्तं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ।

तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येष न संशयः ॥ २५ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम् ।

निर्धनो लभते सत्यं परिपूर्णतमं धनम् ॥ २६ ॥

ह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्दरैः । अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम्  
इति श्रोत्रह्यवैवर्त्ते ब्रह्मवृत्तस्तोत्रम् ।

तुन्वा च जगतां धाता प्रणम्य च पुनः पुनः । शनैःशनैः समुन्धाय भक्त्या पुनरुवाच ह  
ब्रह्मोवाच ।

तिष्ठ देवदेवेश परमानन्दकारण । नन्दनन्दन सानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥२६॥  
ज नन्दालयं नाथ त्यज वृन्दावनं धनम् । स्मर सुदामशापञ्च शतवर्षनिबन्धनम् ॥३०

कशापानुरोधेन शतवर्षं प्रियां त्यज । पुनरेताञ्च सम्प्राप्य गोलोकञ्च गमिष्यसि ॥

त्वा पितृगृहं देव पश्याकूरं समागतम् । पितृव्यमतिधिं मान्यं धन्यं वैष्णवमीश्वरम् ॥

। सादं मधुपुरीं भगवन् गच्छ साम्प्रतम् । कुरु शम्भोर्धनुर्मङ्गं भगनं वैरिगणं हरे ॥

हन कंसं दुरात्मानं तातं बोधय मातरम् ।

निर्माणं द्वारकायाश्च भाराचतरणं भुवः ॥ ३४ ॥

दह वाराणसीं शम्भोः शक्रस्य सदनं विभो ।

शिवस्य जृम्भणं युद्धे वाणस्य भुजवृन्तनम् ॥ ३५ ॥

शक्तिमणीहरणं नाथ धातनं नरकस्य च । पौंड्रशानां सहस्रञ्च स्त्रीणां पाणिग्रहं कुरु ॥  
त्यज प्रियां प्राणसमां ब्रजेश्वर ब्रजं ब्रज । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते यावद्राधा न जाप्रति ॥

त्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च सेन्द्रेर्देवगणैः सह । जगाम ब्रह्मलोकञ्च शेषश्च शङ्करस्तथा ॥  
पुष्पचन्दनवृष्टिञ्च कृष्णस्योपरि देवताः ।

चक्रुः प्रीत्या च भक्त्या च वाग्वभूवाशरीरिणी ॥ ३६ ॥

यथ कंसं यथाहंश्च स्वपित्रोर्मोक्षणं कुत ।

क्षयं कुत भुवो भारं नारदेभ्येयमेव च ॥ ४० ॥

इत्येषं तद्वयः श्रुत्वा भगवान् मृतभाषनः ।

राधां भगवतीं त्यक्त्वा समुत्सर्ग्यो शनैः शनैः ॥ ४१ ॥

यया हरिः कियद्दूरं निरीक्ष्य च पुनः पुनः । क्षणं तस्यो चन्दनानां वने वाससमीपं  
विहाय राधा निद्रां सा समुत्सर्ग्या स्वतन्वयतः ।

न निरोक्ष्य हरिं शान्तं फान्तञ्च प्राणघृणमम् ॥ ४२ ॥

हा नाथ रमणश्रेष्ठ प्राणेश प्राणघृणम् । प्राणचोर प्रियतम क्व गतोऽसीत्युवाच ह ॥४  
क्षणमन्वेयषणं कृत्वा यन्नाम मालतीवनम् । उवास क्षणमुत्सर्ग्या क्षणं सुष्यापमूर्कं  
रुतोद् क्षणमत्युद्योर्विललाप मुहुर्मुहुः । भागच्छागच्छ हे नाथेत्येवमुक्त्वा पुनः पुनः ।

मूर्च्छां सम्प्राप सन्तापात् सन्तता विरहानलैः ।

भूतले च तृणाच्छन्ने पपात च यथा मृता ॥ ४३ ॥

धाययुस्तत्र गोप्यश्च ब्रह्मन् शतसहस्रशः । काञ्चिन्नामरहस्ताश्च गृहीत्वा चन्दनद्रवम् ॥  
तासां मध्ये प्रियालीलाः कृत्वा राधां स्वयक्षसि । मृतामिवप्रियां दृष्ट्वा हरौद् प्रेमविह्वला  
सजलं पङ्कजदलं पङ्कोपरि निधाय च । स्थापयामास तां राधां निश्चेष्टाञ्च मृतामिव ॥  
गोपीमिः सेवितां तत्र रुचिरैःश्वेतचामरैः । चन्दनद्रवयुक्ताञ्च स्निग्धघस्त्रान्वितांसतीम्

ददर्श कृष्णस्तत्रेत्य तामेव प्राणघृणमाम् ।

निवारितश्च गोपीमिर्वलिष्ठामिश्च नारद ॥ ५२ ॥

यथानीतः सापराधो दण्ड्यो राजभयादिभिः ।

चकार राधां क्रोडे च समागत्य कृपानिधिः ॥ ५३ ॥

चेतनां कारयामास बोधयामास बोधनैः । सम्प्राप्य चेतनां देवी ददर्श प्राणघृणम्  
बभूव सुस्थिरा देवी तत्याज विरहज्वरम् ।

चकार कान्तं सा फान्ता गात्रालिङ्गनमीप्सितम् ॥ ५५ ॥

नानाप्रकारशृङ्गारं चकार मधुसूदनः । उवास रत्नतल्पे च राधां कृत्वा स्वयक्षसि ॥

पथासली रत्नमाला विदग्धा सर्वपूजिता । उयाच कृष्णं मधुरं नीतिसारमनुत्तमम् ॥  
रत्नमालोषाच ।

शृणु कृष्ण प्रथक्ष्यामि परिणामसुखावहम् ।

हितं तर्प्यं नीतिसारं दम्पत्योः प्रीतिकारणम् ॥ ५८ ॥

उत्तमं कामशास्त्रेषु नीतीं वेदपुराणयोः । लौकिकव्यषद्वारेषु प्रशस्यं सुयशस्करम् ॥

नारीणाञ्च यथा माता प्रियो भ्राता च यन्धुषु ।

ततः प्रियश्च पुत्रश्च पुत्रादेश्च प्रियः पतिः ॥ ६० ॥

शतपुत्रात् प्रियः स्वामी साध्वीनां साधुसम्मतः ।

रसिकानां विदग्धानां न हि भर्तुः परः प्रियः ॥ ६१ ॥

दि मतां विदग्धश्च विदग्धानां सुप्रापदः । अन्यथा विपतुल्यश्च विपमधोत्खलःखलु  
सारे चानृते परस दम्पत्योः प्रीतिरेष च । परस्परञ्च समता प्रेमसौभाग्यमीप्सितम्  
पत्योः समता नास्ति यत्र यत्र हि मन्दिरे । अलक्ष्मीस्तत्र तत्रैव विफलंजीवनंतयोः

सुस्यामिनां विभेदश्च परं दुःखञ्च योपिताम् ।

शोकसन्तापबीजञ्च जीवितं मरणाधिकम् ॥ ६५ ॥

स्वप्ने जागरणे चापि पतिः प्राणाश्च योपिताम् ।

पतिरेष गुरुः स्त्रीणामिहलोके परत्र च ॥ ६६ ॥

अस्मात्त्वयि गते नाथे मूर्च्छां संप्राप राधिका ।

पपात सहसा भूमौ तृणाच्छन्ने च भूतले ॥ ६७ ॥

दत्तं मुखेऽस्याश्च शीतलं जलमुत्तमम् । तदा श्वासो चभूवास्याश्चेतनं बालपमेवच

क्षणं घटति हे नाथ हे कृष्णेति क्षणं सर्वा ।

क्षणं रोदिति सन्तता मूर्च्छां प्राप्नोति तत्क्षणम् ॥ ६६ ॥

वेकायाः शरीरञ्च सन्तप्तं विरहानलैः । दग्धलोहयष्टिसममस्पृश्यमनलोपमम् ॥७०॥

स्वप्ने जागरणे रात्रौ दिवासु च गृहे घने । जले स्थले चान्तरिक्षेऽभ्युदये चन्द्रसूर्ययोः

नास्तिभेदश्च राधाया मृततुल्या जडाकृतिः । शश्वत्पश्यतिस्थानस्थासर्वविष्णुमयंजगत्

स्निग्धपद्मे पद्मज्ञानां सततलानि दलानि च । निरन्य न्यःकृते कल्पे सुप्याय निग्धातुग  
 नेयिता सा प्रियार्त्ताभिः सततं श्वेतचामरैः । सन्दनद्रथमंसिका स्निग्धपद्मसमन्विता  
 राधाङ्गस्पर्शमात्रेण पद्मःसंप्राय शुष्कताम् । स्निग्धानि पद्मपत्राणि वसुधुर्मम्ममात्मानन  
 सन्दनं शुष्कतां प्राय वर्णाशयकसश्रिभः । वभूय काञ्जलाकारः केरास्य वर्णतो हरे ॥  
 सिन्दूरपिन्दुरनिरःश्यामतांप्रायत्क्षणात् । धेनो विद्यासोमीला च कीडात्यक्ताम्बू ॥  
 रत्नमाला तु तां दृष्ट्वा गन्ध्या कृष्णान्तिकं तदा । उवाच मधुरं वाक्यं राधाहितकरं पद्म  
 रत्नमालोयाच ।

हे कृष्ण कमलाकान्त त्वद्वियोगेन मत्सखी ।

प्राणांस्त्वय्यस्यति शीघ्रं सा यदि नापांस्यसि ध्रुपम् ॥ ७६ ॥

विचार्य्य मनसा कृष्ण यस्तत्समुच्चिनं कुरु । न भवेत् कामिनीहत्या येन नीतिविशाद  
 रत्नमालावचः श्रुत्वा प्रहस्योयाच माधवः । द्विनं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावह  
 श्रीमगवानुवाच ।

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेधं खण्डितुं प्रिये । तथापि न क्षमो रत्ने नियतेनं करोम्यह  
 ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु मर्यादा स्थापिता मया । तथा कर्म प्रकुर्वन्ति मुनयश्च सुरा नराः ॥  
 सुदामशापाद्विच्छेदः शतवर्षमनीप्सिचः । भविष्यत्येव दम्पत्योरावयोरेष सुन्दरि ॥  
 भेदो जागरणेऽस्याश्च मया सह सुमध्यमे । संश्लेषः सन्ततं स्वप्ने मद्वरेण भविष्यति  
 आध्यात्मिकी मया दत्ता शोकच्छेदो भविष्यति ।

राधां बोधय भद्रं ते यास्यामि नन्दमन्दिरम् ॥ ८६ ॥

इत्युत्त्वा जगतां नाथो ययौ नन्दालयं प्रति । राधिकां बोधयामुरालिसंघाश्च नारद ॥  
 गत्वा गृहञ्च पितरं ननाम मातरं तथा । चकार माता क्रोडे च नयनीतश्च नूतनम् ॥८८  
 मातृदत्तश्च ताम्बूलं चक्षाद् शीतलं जलम् । उवास तत्र जगतां नाथो मातृसमापतः ॥  
 सर्वगोपसमूहैश्च सेवितः श्वेतचामरैः । माल्यचन्दनताम्बूलं ते च तस्मै ददुर्मुदा ॥८९

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंघादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णागमनं नामोत्सप्ततितमोऽध्यायः ।

## सप्ततितमोऽध्यायः

अङ्गरूप कृष्णगर्भापे गमनम् ।

धीनासपत्न उवाच ।

यथाऽङ्गः ॥ यथाऽपि गत्या कर्मैव प्रेषितः । यकार शपत्तं तन्मे भुनक्त्या मिष्टाप्रमुत्तमम् ॥  
 सकृन्मय तावन्तं गत्या वारितं जन्तम् । जगाम निद्रां सुरगतः सुरसम्मोहगमाप्रतः ॥  
 ततो ददर्श सुम्बलं पुराजधुनिगमितम् । निशावदोपसमये पादादिपरिषर्जिते ॥ ३ ॥  
 मरोगो यदकेशश्च पद्मप्रयुगलसमन्वितः । सुतन्वतायां सुग्निस्यञ्जितारोक्चिर्षाजितः  
 किरोरुपवनं श्यामं द्विभुजं मुग्धाभयम् । पीतवस्त्रपरीधानं वनमालापिभूषितम् ॥ ४ ॥  
 चन्दनोक्षितमर्षाङ्गं सात्त्विकमालम्बितम् । भूषितं भूषणार्हंश्च सद्रवमनिभूषणैः ॥ ६ ॥  
 मयूरपिच्छमूढश्च सन्मितं पद्मलोचनम् । पयसभूतं द्विजशिरां ददर्श प्रथमं मुने ॥ ७ ॥  
 ततो ददर्श रुचिरां पतिपुत्रपतीं सतीम् । धीनयस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ८ ॥  
 ज्वलत्प्रदीपदन्ताश्च शुक्रधान्यकरां पराम् । शम्भुद्रनिमात्याश्च सन्मितांपरदां शुभाम्  
 ततो ददर्श पित्रश्च प्रभुयन्तं शुभाशिरम् । श्येत्यत्रं राजहंसं सुरगश्च सरोधरम् ॥ १० ॥  
 ददर्श विभ्रितं व्याक कलितंपुष्पितं शुभम् । भाद्रनिम्बनारिकेलशुषार्फकदलीतकम् ॥ ११ ॥  
 दशन्तं श्येत्यत्रंश्च न्याग्मानं पर्यन्म्वितम् । वृक्षगन्धश्च गजस्थश्च तरिन्धं सुरगस्थितम्  
 पांशां वादितवन्तश्च भुक्तवन्तश्च पायसम् । दधिर्क्षीरयुताग्रश्च पद्मप्रस्थमोप्सितम् ॥  
 कृमिचिदमदिताङ्गश्च रुन्तं मोदितं तदा । शुक्रधान्यपुष्पकरं क्षणं चन्दनवर्चितम् ॥ १४ ॥  
 प्रासादस्थं समुद्रस्थमारमानश्च सन्नोदितम् । द्विप्रमिश्रक्षताङ्गश्च मेदपूपसमन्वितम् ॥  
 तथा ददर्श रजतं मणिं शुभ्रश्च काञ्चनम् । मुक्तामणिपवलाश्च पूर्णकुम्भजलं शुभम् ॥  
 सुरमोश्च तत्ररसाश्च वृषभेन्द्रं मयूषम् । शुक्रश्च सारसं हंसं चित्तं सञ्जनमेव च ॥ १७ ॥  
 नाभ्यूर्ध्वं पुष्पमालयं ज्वलद्गन्धिं सुरार्चनम् । पार्थिवीप्रतिमां, कृष्णप्रतिमां शिवलिङ्गकम् ॥  
 विप्रबालाश्च बालाश्च सुवक्रकलितो कृषिम् । देवस्थलोश्च राजेन्द्रं सिंहं व्याघ्रं गुहं सुरम्



दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्तस्थौ चकाराह्निकमीप्सितम् । उद्धवं कथयामास सर्वं वृत्तान्तमेवम् ।

उद्धवाज्ञां समादाय कृत्वा गुरुसुरार्चनम् ।

यात्रां चकार श्रीकृष्णे ध्यात्वा मनसि नारद ॥ २१ ॥

ददर्श घर्त्मन्येवञ्च मङ्गलाहं शुभप्रदम् । पाञ्छाफलप्रदं रम्यं पुरो मङ्गलसूचकम् ॥ २२ ॥

वामे शवं शिवां पूर्णकुम्भं नकुलवासकम् ।

पतिपुत्रवतीं साध्वीं दिव्यामरणभूयिताम् ॥ २३ ॥

शुक्रपुष्पञ्च माल्यञ्च धान्यञ्च खड्गनं शुभम् । दक्षिणे ज्वलदग्निञ्च विप्रञ्च वृषभं गजम्

घत्सप्रयुक्तां घेनुञ्च श्वेताश्वं राजहंसकम् ।

वेश्याञ्च पुष्पमालाञ्च पताकां दधि पायसम् ॥ २४ ॥

मणिं सुवर्णं रजतं मुक्तामणिश्चमीप्सितम् । सद्योमांसं चन्दनञ्च माध्वीकं घृतमुत्तमम्

कृष्णसारं फलं लाजसिद्धादं दर्पणं तथा । विचित्रितं विमानञ्च सुदीप्तं प्रतिमां तथा

शुक्रोत्पलं पद्मवनं शङ्खचिह्नं चकोरकम् । मार्जारं पर्वतं मेघं मयूरं शुक्रसारसम् ॥ २५ ॥

शङ्खकोकिलघाघानां ध्वनिं शुभाय मङ्गलम् ।

विविधं कृष्णसङ्घातं हरिशङ्खं जयध्वनिम् ॥ २६ ॥

षण्मूर्तं शुभं दृष्ट्वा ध्रुत्वा प्रहृष्टमानसः । प्रविशेश हरिं स्मृत्वा पुण्यं घृन्दाघनं यतम् ॥ २७ ॥

ददर्श पुरता रम्यं रामनण्डलमीप्सितम् । चन्द्रनागुदकस्तूरीपुष्पस्यन्दनपायुना ॥ २८ ॥

वासितं मङ्गलघटे रम्भास्तम्भैर्विराजितम् । आघ्रपल्लवसद्द्वैधं पद्मगूत्रविविधितैः ॥ २९ ॥

शोभितैः परितः शशपत् पञ्चरागविनिर्मितम् ।

शोभित शोभनाहंञ्च त्रिकोण्टिरक्षामन्दिरैः ॥ ३० ॥

रम्यैः कुञ्जकुटीरैश्च राजितं शतकोटिमिः । रामं घृन्दाघनं दृष्ट्वा कियदुदूरं पर्यां च स

ददर्श पुरता रम्यं मन्दप्रजमनुत्तमम् । परं यैकुण्ठसद्गारां यैकुण्ठमित्यं शुभम् ॥ ३१ ॥

रत्नसंघानमयुक्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् ।

नाताचित्रविविधाद्यं सद्रत्नयलयान्वितम् ॥ ३२ ॥

मनिभारेण रचितं दिग्दर्शना । द्वाविदृष्टेन मार्गेण राजद्वारं विवेश सा ॥

पलाकारज्जालाद्यं मुक्तामाणिक्यभूषितम् । ररनदर्पणशोभाढ्यं रत्नविभ्रविचित्रितम्

रत्नवीधीविरचितं मङ्गलं मङ्गलैर्घटैः ॥ ३८ ॥

भक्कुरागमनं श्रुत्या साहादो नन्द एव च ।

सहितो रामकृष्णाम्भ्यां जगामानु व्रजाय वै ॥ ३९ ॥

वृकमान्यादिभिर्युक्तः कृत्वा वेश्यांपुरःसराम् । पूर्णकुम्भंगजेन्द्रञ्च कृत्वाऽग्रे शुक्लधान्यकम्

कृष्णां गां मधुपर्कञ्च पायं खासनादिकम् ।

गृहीत्या सादरः शान्तः सस्मितो विनतस्तथा ॥ ४१ ॥

मानन्दयुक्तो नन्दश्च सगणः सहवालकः । दृष्ट्वाऽभ्कूरं महाभागं तूर्णमालिङ्गनं ददौ ॥ ४२ ॥

प्रणोमुः शिरसा सर्वे गोपा जगृहुराशियम् । परस्परञ्च संयोगो बभूव गुणवान् मुने ॥

कोट्टे चकाराभ्कूरश्च कृष्णं रामं क्रमेण च । चुचुम्व गण्डयुगले पुलकाञ्चितविप्रदः ॥

साधुनेत्रोऽतिसाहादः कृतार्थः सिद्धवाञ्छितः ।

ददर्श कृष्णं द्विभुजं क्षणं श्यामलसुन्दरम् ॥ ४५ ॥

पीतवस्त्रपरोधानं मालतीमाल्यभूषितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं परं वंशीधरं धरम् ॥ ४६ ॥

स्तुतं प्रह्लेशोपाधैर्मनीन्द्रैः सनकादिभिः । वीक्षितं गोपकन्याभिः परिपूर्णतमं विभुम्

क्षणं ददर्श कोट्टस्थं सस्मितञ्च चतुर्भुजम् ।

लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तं घनमालाविभूषितम् ॥ ४८ ॥

मुनन्दतन्दकुमुदैः पार्यदैः परिसेवितम् । सेवितं सिद्धसङ्घैश्च भक्तिनम्रैः परात्परम् ॥

क्षणं ददर्श देवं तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । शुद्धरूढिकसङ्काशं नागराजविराजितम् ॥

दिगम्बरं परं ब्रह्म भस्माङ्गञ्च जटायुतम् ।

जपमालाकरं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठञ्च योगिनाम् ॥ ५१ ॥

क्षणं चतुर्मुखं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं मनीषिणाम् । क्षणं धर्मस्वरूपञ्च शेषरूपं क्षणं क्षणम्

क्षणं भास्कररूपञ्च ज्योतीरूपं सनातनम् ।

क्षणं परमशोभाढ्यं कोटिकन्दर्पं निन्दितम् ॥ ५३ ॥

कामिनीकामनीयञ्च कामुकं कामसंयुतम् । एवम्भूतं शिष्यं दृष्ट्वा स्थापयामास वक्षसि

रत्नसिंहासने रम्ये मन्दस्ते च नारद । वृषा प्रदक्षिणं भक्त्या पुन्यकाञ्चनविश्रुतः ।

प्रणम्य शिरसा भूर्मा तुष्टाय पुरगोप्तमम् ॥ ५५ ॥

अक्रूर उवाच ।

नमः फारणरूपाय परमात्मम्यरूपिणे । सर्वैवामपि विश्वानामाश्वराय नमो नमः ॥

पराय प्रहृत्नेरीश परात्परतराय च । निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे ॥ ५७ ॥

सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च । सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे ॥ ५८ ॥

असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

स्वरूपायादिधीजाय तदीशविश्वरूपिणे ॥ ५९ ॥

नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे । नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः ॥ ६० ॥

राधारमणरूपाय राधारूपधराय च । राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च ॥

राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च । राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः ॥

वेदस्तुतात्मवेदरूपिणे वेदिने नमः । वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदधीजाय ते नमः ॥ ६३ ॥

यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः ।

महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः ॥ ६४ ॥

स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः । प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च ॥ ६५ ॥

इत्येवं स्तघनं कृत्वा मूर्च्छामाप सभातले । पपात सहसा भूर्मा पुनरीशं ददर्श सः ॥

बहिस्थं हृदयस्थञ्च परमात्मानमीश्वरम् । परितः श्यामरूपञ्च विश्वस्थं विश्वमेव च

अक्रूरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नन्दः सादरपूर्वकम् । रत्नसिंहासने रम्ये धासयामास नारद ॥ ६८

पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं किञ्चिद्दृष्टमिति त्वया । मिष्टान्नं भोजयामास कुशलञ्च पुनःपुनः

अक्रूरः कथयामास कंसवृत्तान्तमीप्सितम् । स्वपित्रोर्मोक्षणार्थञ्च गमनं रामकृष्णयोः

इत्यक्रूरवृत्तं स्तोत्रं यः पठेत् सुसमाहितः । अपुत्रो लभते पुत्रमभायौ लभते प्रियाम् ॥

निर्मूमिरुर्वरां महीम् । इतप्रजः प्रजां लेभे प्रतिष्ठाञ्च प्रतिष्ठितः ॥

चिपुलमयशस्वी च लीलया ॥ ७२ ॥

इति श्रीप्रहायैवर्त्त महापुराणे अक्रूरस्तोत्रम् ।

प्रथ सुप्याप समये परं संहृष्टमानसः । रम्ये चम्पकतल्पे च कृष्णं कृत्वा स्वपक्षसि ॥  
 प्रातरुत्थाय सहसा कृत्वाह्लिकमनुत्तमम् । स्वरथे स्वापयामास रामं कृष्णं जगत्पतिम्  
 त्वं पञ्चप्रकारञ्च नानाद्रव्यं सुदुर्लभम् । वृषभानुञ्च नन्दञ्च सुनन्दं चन्द्रभानकम्  
 तानाप्रकारं धायञ्च मृदङ्गमुरजादिकम् । पटहं पणवञ्चैव ढकां दुन्दुभिमानकम् ॥७६  
 राज्ञासंनहनीकांस्यपट्टमर्दलमण्डवीम् । धादयामास सानन्दं नन्दगोपो व्रजेश्वरः ॥७७

श्रुत्वा धायञ्च गोप्यश्च गमनं रामकृष्णयोः ।

दृष्ट्वा कृष्णं रथस्थं तमायुः कोपपीडिताः ॥ ७८ ॥

रणेन धारिताः सर्वाः प्रेरिता राधया द्विज । धमञ्जरीश्वररथं पादाघातेन लीलया ॥

त्र सर्वेषु गोपेषु हाहाकारं कृतेषु च । प्रययुर्बलस्यश्च कृष्णं कृत्वा स्वपक्षसि ॥८०॥

काचित्कूरं तमकूरं भर्त्सयामास कोपतः । काश्चिद्व्यदुध्याच वस्त्रेणचाकूरं प्रययुस्ततः

काचित्तं ताडयामास कङ्कणेन करेण च । तद्वस्त्रं हारयामास कृत्वा विवसनं मुने ॥

शतविश्रुतसर्वाङ्गं दृष्ट्वाकूरञ्च माधवः । जगाम राधानिकटं बोधयामास तां पुनः ॥

भाष्यात्मिकेन योगेन विनयेन च सादरम् । अकूरं बोधयामास बोधयामास तां विभुः

आकाशात्पतितं दिव्यं मन्त्रप्रस्थापितं रथम् । विचित्रघस्त्रसंयुक्तं ददर्श पुरतो हरिः ॥

खचितं मणिराजेन रचितं विश्वकर्मणा ।

तं दृष्ट्वा भातृमघनमाजगाम जगत्पतिः ॥ ८६ ॥

भुक्त्वा पीत्वा सुखं सुपत्या गमने सहवाग्वधः । तस्यो मुनोन्द्रदेवेन्द्रब्रह्मेशरीषवन्दितः ॥

सुपुपुगोपिकाः सर्वाः परं संहृष्टमानसाः । पुष्पतल्पे च रम्ये च राधया सह नारद ॥

सर्वे चानन्दयुक्ताश्च जना गोकुलवासिनः । केचिद्रोपाश्च ननूनुः केचित् सर्ङ्गीततत्परः

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

गोपीविषयो नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।

## एकसप्ततितमोऽध्यायः

यात्रामङ्गलवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

राधिकायाञ्च सुसायां सुनासु गोपिकासु च । पुष्पचन्दनतल्पे च वायुना सुरमीकृते  
तृतीयाग्रहरेऽतीति निशायाञ्च शुमशणे । शुमचन्द्रक्षयोगे चामृतयोगसमन्विते ॥ २ ॥  
सौम्यस्वामियुने लग्ने सौम्यग्रहदिलोकिते । पापग्रहसमासकदुष्टदोषादिवर्जिते ॥ ३ ॥

यशोदां योधयामास कारयामास मङ्गलम् ।

यन्धूनाश्वासयामास समुत्थाय हरिः स्वयम् ॥ ४ ॥

घाघं निषेधयामास राधिकाभयभीतघनम् ।

स्वतन्त्रो विश्वकर्ता च पाता भर्ता स्वतन्त्रघत् ॥ ५ ॥

प्रशाल्य पादयुगलं धृत्वा धौतेच घाससी । उवास संस्कृते स्थाने विलिते चन्दनादिना  
फलपल्लवसंयुक्तं संस्कृतं चन्दनादिभिः । घामे कृत्वा पूर्णकुम्भं षड्विं विप्रं स्वदक्षिणे ॥  
पतिपुत्रघर्ती दीपं दर्पणं पुरतस्तथा । दूर्वाकाण्डञ्च सुस्निग्धं पुष्पं धान्यं सितंशुभम्  
शुरुदत्तं गृहीत्वा च प्रददौ मस्तकोपरि । घृतं ददर्श माध्वीकं रजतं काञ्चनं दधि ॥ ६ ॥  
चन्दनं लेपनं कृत्वा पुष्पमालां गले ददौ । गुरुघणं ब्राह्मणञ्च घन्दयामास भक्तिः ॥ ७ ॥  
शङ्खध्वनिं घेदपाठं सङ्गीतं मङ्गलाष्टकम् । विप्राशीर्षचनं रम्यं शुभाच परमादरम् ॥ ८ ॥  
ध्यात्वा मङ्गलरूपञ्च सर्वत्र मङ्गलप्रदम् । विश्लेष दक्षिणं पादं सुन्दरं स्वात्मविग्रहम् ॥  
विधृत्य नासिकां घाममागं मध्यमयाविभुः । विसृज्यघायुं सम्पूर्णं नासादक्षिणतन्त्रनः  
सतो ययौ नन्दनन्दो नन्दस्य ब्राह्मणं घरम् । सानन्दः परमानन्दो नित्यानन्दः सनातनः  
नित्योऽनित्यो नित्ययोजस्यरूपो नित्यपिहः ।

नित्याङ्गभूतो नित्येशो नित्यकृत्यपिशारदः ॥ १५ ॥

नित्यनूतनयोधनः । नित्यनूतनघेशञ्च घयसा नित्यनूतनः ॥ १६ ॥

नित्यनूतनसम्भाषो यत्प्रेम नित्यनूतनम् । नित्यनूतनसम्प्राप्तिःसीभाग्यं नित्यनूतनम् ॥  
सुधारसपरं मिष्टं यद्वाक्यं नित्यनूतनम् । नित्यनूतनभक्तञ्च यत्पदं नित्यनूतनम् ॥

स्थायं स्थायं प्राङ्गणेऽस्मिन् मायेशो मायया युतः ।

अतीवस्ये सुस्निग्धो यभूव गमनोन्मुखः ॥ १६ ॥

एमास्तमसमूहैश्च रसालपट्टवान्वितैः । पट्टसूत्रनिबद्धैश्च सुन्दरैश्च सुसंस्कृते ॥ २० ॥

पद्मरागेण खचिते रचिते विश्वकर्मणा । कस्तूरीकुङ्कुमाकैश्च चन्दनैश्च सुसंस्कृते ॥ २१ ॥

तत्र तस्यै स्वयं कृष्णः सहाकूरः सवान्धवः ।

यशोदया समाश्लिष्टो धामपार्श्वेन मायया ॥ २२ ॥

नन्देनानन्दयुक्तेनाश्लिष्टो दक्षिणपार्श्वतः ।

सम्भाषितो बान्धवैश्च पित्रा मात्रा च चुम्बितः ॥ २३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे यात्रा-  
मङ्गलं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

## द्विसप्ततितमोऽध्यायः

### श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ कृष्णो गुहं भत्वाःनिर्गम्य शिविरान्मुने ।

आरुह्य स्वर्गयानञ्च शुभां मधुपुरीं ययौ ॥ १ ॥

विवेश मथुरां रम्यांसहाकूरगणैसमम् । निर्जित्य शनत्गरीं शोभायुक्तां मनोहराम् ॥

रत्नधेष्टेन खचितां रचितां विश्वकर्मणा । भमूल्यरत्नकल्प्यौ राजिनैश्च पिराजिताम् ॥

राजमार्गशनैरिष्टैर्वैष्टितां रुचिरैर्यरैः । चन्द्राकारैश्चन्द्रसारैर्मणिभिः परिमंष्ट्रैः ॥

षिबिभ्रैर्मणिसारैश्च धीधीशतपिनिर्मितैः । शोभिनेर्यजितैः धेष्टैःपुण्यपद्मसमन्वितैः ॥

सरोपरसहस्रैश्च परितः परिशोमिताम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशीः पद्मरागविराजितैः ॥ ६१ ॥  
 रत्नलङ्कारभूषणैः शोमितां पद्मिनोगणैः । स्थिरयौवनसंयुक्तीर्निमेरुद्वितैः परैः ॥ ६० ॥  
 साक्षतीरुर्ध्वपद्मैः कृष्णदर्शनलालसैः । भ्रूमङ्गलीलालोलैश्च शश्वच्चञ्चललोचनैः ॥ ८१ ॥

शश्वत्कामसमायुक्तैः पानश्रोणिपयोधरैः ।

फोमलाङ्गैर्मध्यकूपै रतिसारविशारदैः ॥ ६ ॥

रत्ननिर्माणयानानां फोटिमिः परिशोमिताम् ।

भ्रूणैर्भूषितामिश्च चित्रितामिश्च चित्रकैः ॥ १० ॥

नानाप्रकारश्रीयुक्तां पुष्पोद्यानत्रिकोटिमिः ।

नानापुष्पैः पुष्पितामिर्द्युक्तामिर्मधुसूदनैः ॥ ११ ॥

माधुर्यमधुसंयुक्तैर्मधुलुब्धैर्मुदान्वितैः । माध्वीकमधुमत्तैश्च युक्तैर्मधुकरीचयैः ॥ १२ ॥

नानाप्रकारदुर्गैश्च दुर्गभ्यां वैरिणां गणैः । रक्षितां रक्षकैः शश्वद्रक्षाशास्त्रविशारदैः ॥

त्रिकोट्याट्टालिकाभिश्च संयुक्तां सुमनोहराम् । रचितामिश्च सद्ब्रह्मैर्विचित्रैर्विश्वकर्मणा

एवम्भूताञ्च मथुरां दृष्ट्वा कमललोचनः । ददर्श पथि कुब्जां तां वृद्धामतिजरातुराम् ॥

यान्तीं दण्डसहायेन चातिनघ्रां नमदुयलीम् ।

रक्षितां विहृताकारां विभ्रतीं चन्दनद्रघम् ॥ १६ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च स्पृष्टमात्रेण नारद । सुगन्धिमकरन्देन गन्धाढ्यं सुमनोहराम् ॥

सा दृष्ट्वासस्मिता वृद्धा श्रीकान्तं शान्तमीश्वरम् ।

श्रीयुक्तं श्रीनिवासं तं श्रीयीजं श्रीनिकेतनम् ॥ १८ ॥

प्रणम्य सहसामूर्ध्ना भक्तिनघ्रा पुटाञ्जलिः । प्रददौ चन्दनं तस्य गात्रे श्यामलसुन्दरे ॥

गात्रेषु तद्गणानाञ्च स्वर्णपात्रकरा घरा । कृत्वा प्रदक्षिणं कृष्णं प्रणनाम पुनःपुनः ॥

श्रीकृष्णदृष्टिमात्रेण श्रीयुक्ता सा वभूव ह । सहसा धीसमा रम्या रूपेण यौवनेन च ॥

घह्निशुद्धा सुवसना रत्नभूषणभूषिता । यथा द्वादशवर्षीया फन्या धन्या मनोहरा ॥२२

विम्योष्ठी सस्मिता श्यामा तप्तकाञ्चनसन्निभा ।

सुश्रोणी सुदतीवित्वफलतुल्यपयोधरा ॥ २३ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणहारसारविराजिता । गजेन्द्रराजगमना रत्नमञ्जीररञ्जिता ॥ २४ ॥  
 विभ्रती कवरीभारं मालतीमाल्यवेष्टितम् । रक्षितं धामभागेन रुचिरं घर्तुलाकृतिम् ॥ २५ ॥  
 सिन्दूरचिन्दुं दधती दाडिम्बकुसुमाकृतिम् । कस्तूरीचिन्दुमुपरि सार्द्धं चन्दनचिन्दुभिः  
 रत्नदर्पणहस्ता च प्रसस्ता रतिकर्मसु । श्रोत्रुष्णं धरयामास लोललोचनकोणतः ॥

श्रीघासस्तां समाश्यास्य ययौ स्थानान्तरं परम् ।

कृतार्थरूपा सा प्रीत्या ययौ पद्मा यथालयम् ॥ २८ ॥

सादर्शं स्वभचनं यथापद्मालयालयम् । रत्नशय्याविरचितं सद्गत्नसारनिर्मितम् ॥ २९ ॥  
 रत्नप्रदीपराजीमीराजतामिश्च राजितम् । रत्नदर्पणराजेश्च राजितं परितस्ततः ॥ ३० ॥  
 सिन्दूरचरुप्रतामूलं श्वेतचामरमाल्यकम् । विभ्रतीमिश्च दासीभिर्वेष्टितं दाससंघकैः ॥  
 तत्र गत्वा च भुक्तवा च मिष्टान्नं परममुदा । सुष्वाप रत्नपर्यङ्के सा दासीमिश्च सेविता  
 सकर्पूरञ्च ताम्बूलं कस्तूरीकुङ्कुमाग्वितम् । चन्दनं स्थापयामास स्वतल्पे हरये सती ॥

मालतीमाल्ययुगलं कर्पूरादिसुवासितम् ।

शीतलं सलिलं स्वाद्दु मिष्टान्नं स्वसमीपतः ॥ ३४ ॥

कर्मणा मनसा घाचा चिन्तयन्ती हरैः पदम् । हरैरागमनञ्चापि मुखचन्द्रं मनोहरम् ॥

जगत्कृष्णमयं शश्वत्पश्यन्ती कामुकी मुने ।

कोटिकन्दर्पलीलाभं कामासक्तञ्च कामुकम् ॥ ३६ ॥

तो ददर्श धीकृष्णो मालाकारं मनोहरम् । मालासमूहं विभ्रन्तं गच्छतं राजमन्दिरम्  
 तोऽपि दृष्ट्वा च धीकान्तं प्रणम्य शिरसाभुवि । ददौ माल्यसमूहञ्च कृष्णाय परमात्मने  
 णस्तस्मै परं दत्त्वा स्वदास्यमतिदुर्लभम् । माल्यं गृहीत्वा प्रययौ राजमार्गं परं परः  
 तो ददर्श रजकं विभ्रन्तं पल्लवपुञ्जकम् । बहश्छतं बलिष्ठञ्च सतनं यौवनोद्धतम् ॥ ४० ॥  
 स्त्रं ययाचे तं कृष्णो चिनयेन महामुने । स तस्मै न ददौ वस्त्रं तमुद्याच न निष्ठुरम्

रजक उपाच ।

रक्षणाणां स्वयोग्यं वस्त्रमेतन् सुदुर्लभम् । राजयोग्यञ्च हे मूढ हे गोपजनवृत्तम् ॥  
 दीत्या गोपकन्याश्च कन्यालोलुपलम्पट । यद्विहात कृतास्तत्र वृन्दारण्येऽप्यराजके ॥



सरोपरसहस्रैश्च परितः परिशोमिताम् । शुद्धम्फटिकसङ्घारैः पद्मरागविराजितैः ॥ ६ ॥  
 रत्नलङ्कारभूषाद्यैः शोमितां परिशीगर्णैः । म्बिरय्योचनसंयुक्तैर्निमेपरहितैः परैः ॥ ७ ॥  
 साक्षतैरुर्ध्वयदनैः कृष्णदर्शनलालमैः । भ्रूमङ्गलीलालोलैश्च ॥ ८ ॥

रतेर्विरतिनांस्ति दम्पती रतिपण्डिता । नानाप्रकारमनन वभूव तत्र नाद ॥ ११ ॥

अश्रोत्रियुगां तस्या विशतश्च चकार ह । भगवान् नमोऽस्ताः पीडशनेश्च चरम् ॥ १२ ॥

शायसानसमये धीर्घ्यांधानं चकार स । मुग्धमनागनागेन मन्त्रामाव च मुन्दरा

तत्राजगाम तां सन्द्रा हृष्यवशःस्थलःस्थलम् ।

सुदमाता च रजनी वभूव रजनापति । पन्थुर्धनिकमेर्णोच लज्जयेव मलामव ॥ १३ ॥

मयाजगाम गोलोकात् रथो रक्षयिनिमित्त । जगाम तेन त लोकाः कृत्रा दि-यकलेचरम्

वह्निमुद्गांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । प्रतप्रकाशनाभाय निन्य जन्मादिवाजतम् ॥ १४ ॥

सा वभूव च तत्रैपगोपी चन्द्रमुग्गामुने । गोप्य कतिविद्यास्तस्या वभूव परिचारिका

मगवानपि तत्रैव हाणं स्थिरया स्वमन्दिरम् । जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नन्दनन्दन

अथ कंसो निशायाश्च निद्रायां भयविह्वलः । ददशं दु पदु स्वप्रमानमनो मृन्थुमूचकम् ॥

ददशं सूर्यं भूमिस्थं चतुःखडं नमश्च्युतम् । दशमण्ड चन्द्रचिम्भं भूमिस्थ पाञ्चस्युतमुने

पुरयान् पिट्टाकारान् रञ्जुहस्तान् दिगम्बरान् ।

विधयां शूद्रपदाश्च नग्राश्च छिन्ननासिकाम् ॥ १५ ॥

सर्ती चूर्णात्किरकां श्वेतकृष्णोद्यमूर्जजाम् । खड्गवपंगहस्ताश्च लोलजिह्वाश्च विन्नतीम्

गुण्डमान्वासमायुक्तां गर्दभं महिष पृथम् । शूकर महक काक गृध्र कडूश्च यानरम् ॥

घोरं कुकुरं नकं शृगालं भस्मपुञ्जकम् । भस्मिगराशि तालफल केशं कार्पासमुल्यणम्

निर्वाणाङ्गारमुल्काश्च शय मर्त्यं चित्ताश्रितम् ।

कुडालतैलकाराणां चक्रं घक्रं कपर्दकम् ॥ १६ ॥

नरान् दग्धकाष्ठश्च शुष्ककाष्ठं कुत्रां तृणम् । गच्छन्तश्च कवचश्च नदन्तं मृतमस्तकम्

अस्थानं भस्मयुतं तद्भागं जलवर्जितम् । दग्धमर्त्यश्च लोहश्च निर्वाणदग्धकाननम् ॥

शुक्लपुष्टं घृणलं नग्नञ्च मुक्तमूर्द्धजम् । अतीवरुष्टं विप्रञ्च शपन्नं गुरुमादृशम् ।

अतीवरुष्टं मिश्रुञ्च योगिनं वीष्णघं नरम् ॥ १७ ॥

दृशु ससुत्पाय कथयामास मातरम् । पितरं भ्रातरं पत्नी रुदन्ती प्रेमविह्वलाम् ॥

मञ्चकान् कारयामास स्थापयामास हस्तिनम्

महं सैन्यञ्च योद्धारं कारयामास मङ्गलम् ॥ ८१ ॥

समाञ्च कारयामास पुण्यं स्वस्त्ययनं शिवम् । यत्नेन योजयामास योगीशुकुंतपुरोहितम्  
उवास मञ्चके रभ्ये धृत्वा खड्गं विलक्षणम् । रणे नियोजयामास योद्धारं युद्धकोविदम्

यासयामास राजेन्द्रान् ब्राह्मणांश्च मुनींश्चरान् ।

ब्राह्मणांश्च सुहृद्गान् धर्मिष्ठान् रणकोविदान् ॥ ८४ ॥

वयाजगाम गोविन्दो रामेण सह नारद । महेशस्य धनुर्मध्यं यमञ्च तत्र लीलया ॥ ८५ ॥  
शब्देन यस्य मथुरा, वधिग च यभूव ह ॥ ८६ ॥

विपादं प्राप कंसश्च मुदञ्च देवकीसुतः । उपस्थितः समामध्ये गजमहं निहत्य च ॥  
योगी ददर्श तं देवं परमात्मानमीश्वरम् । यथा हृत्पद्ममध्यस्थं तादृशं बहिरेव च ॥ ८८

राजेन्द्ररूपं राजानःशास्तरं दण्डधारिणम् ।

विता माता दुग्धमुखं स्तनान्धं बालकं यथा ॥ ८९ ॥

कामिन्यः कोटिकन्दर्पलीलालावण्यधारिणम् । कंसश्चकालपुह्यं वैरिणं तस्यबान्धवा  
महा मृत्युपदञ्चैव प्राणतुल्यञ्च यादवाः ॥ ९० ॥

नमस्कृत्य मुनीन् विप्रान् पितरं मातरं गुरुम् । जगाम मञ्चकाम्यासं हस्तेकृत्वासुदर्शनम्  
दृष्ट्वा भक्तं भक्तवन्धुः कृपया च कृपानिधिः ।

आकृष्य मञ्चकात् कंसं जघान लीलया मुने ॥ ९२ ॥

राजा ददर्श विश्वञ्च सर्वं कृष्णमयं परम् । पुरतो खलवानश्च हीराहारविभूषितम् ॥ ९३ ॥

ययौ विष्णुपदं स्फीतो दिव्यरूपं विधाय च । तेजो विवेश परमं कृष्णपादाम्बुजे मुने

निर्वृत्य तस्य सत्कारं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । ददौ राज्यं राजञ्चलमुप्रसेनाय धीमते  
स यभूव नृपेन्द्रश्च चन्द्रवंशसमुद्भवः । विललाप कंसमाता पत्नीवर्गश्च तत्पिता ॥ ९६ ॥

मातृवर्गश्च मगिनो भ्रातृकामिनी । दर्शनं देहि राजेन्द्र समुत्तिष्ठ नृपासने ॥ ९७ ॥

राज्यं रक्ष धनं रक्ष बान्धवं बलमेव च ।

क्व यासि बान्धवान् हित्वा स्वमनाथान् महाबल ॥ ९८ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमसंख्यं विश्वमेव च । सर्वं चराचराधारं यः सृजत्येव लालया ॥  
 प्रलेशतोपधर्माश्च दिनेशश्च गणेश्वरः । मुनीन्द्रवर्गो देवेन्द्रो ध्यायते यमहर्निशम् ॥

वेदाः स्तुवन्ति यं कृष्णं स्तौति भीता सरस्वती ।  
 स्तौति यं प्रकृतिर्दृष्टा प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥ १०१ ॥

स्वेच्छामयं निरोहश्च निगुंणश्च निरञ्जनम् । परात्परतरं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥ १०२ ॥  
 नित्यं ज्योतिःस्वरूपश्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । नित्यानन्दञ्चनित्यञ्च नित्यमक्षरविग्रहम्  
 सोऽब्रवीत्पीणो हि भगवान् भारावतरणाय च । गोपालबालधेशश्च मायेशो मायया प्रभुः

स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान् ।  
 स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च ॥ १०५ ॥

इत्येवमुक्त्वा सर्वश्च विरराम महामुने । ब्राह्मणान् भोजयामास तेभ्यः सर्वं धनं ददा ॥  
 भगवानपि सर्वात्मा जगाम पितुरन्तिकम् । छिन्त्वा च लोहनिगडं तयोर्मोक्षञ्चकारसः  
 ज्ञानम दण्डवदुभूमौ मातरं पितरं तथा । तुष्टाव भक्त्या देवेशो भक्तिप्रदात्मकन्धरः ॥  
 श्रीभगवानुवाच ।

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेष च । यो न पुष्पाति पुरुषो यावज्जीवञ्च सोऽशुचिः  
 सर्वेषामपि पूज्यानां पिता धन्यो महान् गुरुः । पितुःशतगुणैर्माता गर्भधारणपोषणात्  
 माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैपिणी । नास्ति मातुः परो धन्युः सर्वेषांजगतीतले  
 विद्यामन्त्रप्रदः सत्यं मातुः परतरोगुरुः । न हि तस्मात्परः कोऽपि धन्यः पूज्यश्चवेदतः  
 इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो बलभद्रो ननाम च ।

माता चकार तौ क्रोडे पिता च सादरं मुने ॥ ११३ ॥

मिथारं परमं तौ च भोजयामास सादरम् । नन्दञ्च भोजयामास गोपालान्परमादरम्  
 मूलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान् । वसुधैवकुतुम्बहञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददा मुदा ॥  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मद्भागपुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

कंसवधवसुदेवदेवकीमोक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

## त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

नन्दाय ज्ञानकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथकृष्णश्च सानन्दं नन्दं तं पितरंघलः। योषयामासशोकात्तं दिव्यैराध्यात्मिकादिभिः  
उच्चैरुदन्तं निश्चेष्टं पुत्रविच्छेदकातरम् । गत्वा तस्मै मुनिश्रेष्ठमित्युवाच जगत्पतिः ॥ ३॥

श्रीभगवानुवाच ।

निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ । ज्ञानं गृहाण महत्तं यहत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥ ३॥  
यद्यहत्तञ्च शेषाय गणेशायेश्वराय च । दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे ॥ ४॥

कः कस्य पुत्रः कस्तातः का माता कस्यचित् कुतः ।

आयान्ति यान्ति संसारं परं स्वहृतकर्मणा ॥ ५ ॥

कर्मानुसाराज्जन्तुश्च जायते स्थानभेदतः ।

कर्मणा कोऽपि जन्तुश्च योगीन्द्राणां नृपत्रियाम् ॥ ६ ॥

द्विजपत्न्यांश्चत्रियायां वैश्यायांश्चद्रयोनिषु । तिर्यग्योनिषुकश्चिच्च कश्चित्परघादियोनिषु  
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च । देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे चान्यवस्य च  
प्रजाभूमिधनादीनां विच्छेदो मरणाधिकः ।

नित्यं भयति मूढश्च न च विद्वान् शुचा युतः ॥ ६ ॥

मूढको भक्तियुक्तश्च मद्यार्जा विजितेन्द्रियः । मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरतःशुचिः  
मद्भयाद्भाति घातोऽयं रविर्भाति च नित्यशः । भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्पति

मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु । विभर्ति घृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च  
षायुश्च पाप्याधारश्च कच्छपः । शेषश्च कच्छपाधारः शेषाधाराश्च पर्वताः

तदाधाराश्च पातालाः सत एव हि पङ्क्तिः ।

निश्चलञ्च जलं तस्माज्जलस्थ्या च घसुन्धरा ॥ १४ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ] \* नन्दाय ज्ञानकथनम् \*

सप्तस्वर्गं धराधारं ज्योतिश्चक्रं ब्रह्माश्रयम् । निराधारश्च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डेभ्यः

तत्परश्चापि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।

ऊर्ध्वं निराश्रयश्चापि रत्नसारविनिर्मितः ॥ १६ ॥

सप्तद्वारः सप्तसारः परिखासप्तसंयुतः । लक्षप्राकारयुक्तश्च नद्या विरजया युतः

घेष्टिलो रत्नशीलेन शतशृङ्गेणचारुणा । योजनायुतमानञ्च यस्यैकं शृङ्गमुद

शतकोटियोजनश्च शैल उच्छ्रित एव च ।

दैर्घ्यं तस्य शतगुणं प्रस्थञ्च लक्षयोजनम् ॥ १६ ॥

योजनायुतपिस्तीर्णस्तत्रैव रासमण्डलः । भ्रमूल्यरत्ननिर्माणो घर्तुलक्षग्रवि

पारिजातघनेनैव पुष्पितेन च घेष्टितः । फलयशृङ्गसद्वेषेण पुष्पोद्यानशनेन च

नानाविधैः पुष्पवृक्षैः पुष्पितेन च चारुणा ।

त्रिकोटिरत्नमघनो गोपीलक्षैश्च रक्षितः ॥ २२ ॥

रत्नप्रदीपयुक्तश्च रत्नतल्पसमन्वितः । नानामोगसमायुक्तो मधुधापीशतैर्बृत्तः

पीयूषधापीयुक्तश्च काममोगमसन्वितः । गोलोकः पृथ्वसंख्यानघर्णने वा विशार

न कोऽपि धेदु विद्वान् वा धेदुविद्वान् प्रजेश्वरः ।

भ्रमूल्यरत्ननिर्माणमघनानां त्रिकोटिभिः ॥ २५ ॥

शोभितं सुन्दरं रम्यं राधाशिविरमुत्तमम् । भ्रमूल्यरत्नस्तम्भानां राजिमिध्ववि

नानाविधविचित्रैश्च चित्रितं श्वेतन्वामरैः ॥ २७ ॥

माणिक्यमुक्तासंसक्तं हीराहारसमन्वितम् । रत्नप्रदीपसंसक्तं रत्नसोपानसुन्द

भ्रमूल्यरत्नपारैश्च तल्पराजिपित्तजितम् । भ्रमूल्यरत्नविधैश्च त्रिमिद्विचत्रि

तिचुम्भिः परिष्ठाभिश्च त्रिमिर्द्धारैश्च दुर्गमैः । सुक्तं षोडशकक्षामिः प्रतिधारे

गोर्पापीडशतक्षैश्च सन्नियुक्तैरितरत्नतः । पद्मिगुण्डांगुफाघानैः रत्नभूरणभूषि

तनकाऽमनघर्णभिः शतचन्द्रसमन्वितैः । राधिकाकिङ्कुरैर्धर्मैर्गुण्डामन्यन्तरं पार

भ्रमूल्यरत्ननिर्माणप्राङ्गुणं सुमनोद्दमम् । भ्रमूल्यरत्नस्तम्भानां समूहैश्चतुशीमि

रत्नमण्डलैश्च फलयशृङ्गसंयुतैः । संयुतं रत्नदेदीमिर्यन्तारकाभिरीप्सित

अमूल्यरत्नमुकुरैः शोभिन्नं सुन्दरैरहो । अमूल्यरत्ननिर्माणं भवनानां परं गृहम् ॥ ३५ ॥  
रत्नसिंहासनस्या च गोपीलक्ष्मीं च सेविता ।

कोटिपूर्णेन्दुशोभाद्या श्वेतचम्पकसन्निभा ॥ ३६ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणभूरर्णोश्च विमूषिता । अमूल्यरत्नवसना विभ्रती रत्नदर्पणम् ॥ ३७ ॥  
रत्नपद्मञ्च कविरं सद्यश्दक्षिणहस्ततः । दाडिम्बकुसुमाकारं सिन्दूरसुमनोहरम् ॥ ३८ ॥

सुशामिने मृगमदैरिष्टेश्चन्दनचिन्दुमिः । दधतीकचरीमारं मान्दतीमाल्यमण्डितम् ॥ ३९ ॥  
रचिनं घाममागेन मुनीन्द्राणां मनोहरम् ।

एवम्भूतं तत्र राधा गोपीभिः परिसेविता ॥ ४० ॥

श्वेतचामरहस्ताभिस्तत्तुल्याभिश्च सर्थतः । अमूल्यरत्ननिर्माणैर्मूषिताभिश्च भूषणैः ॥ ४१ ॥  
मत्प्राणाधिष्ठातृदेवी देवीनां प्रवरा घरा । सुदाम्नः सा च शापेन वृषमानसुताऽधुना ॥ ४२ ॥

शताश्लिको हि चिच्छेदो भविष्यति मया सह ।

तेन भारावतरणं करिष्यामि भुवःपिता ॥ ४३ ॥

तदा यास्यामि गोलोकं तथा साङ्गं सुनिश्चितम् ।

त्वया यशोदया चापि गोपैर्गोपीभिरैव च ॥ ४४ ॥

वृषमानेन तत्पत्न्या कलावत्या च दान्धवैः । एवं च नन्दं सानन्दं यशोदां कथयिष्यति  
त्यज शोकं महाभाग धनैःसाङ्गं व्रजं व्रज । अहमात्मा च साक्षी च निर्लिप्तः सर्वजीविषु

जीवो मत्प्रतिविम्बश्च इत्येवं सर्वसम्मतम् ।

प्रकृतिर्मद्विकारा च सात्त्विकं प्रकृतिः स्वयम् ॥ ४७ ॥

यथा दुग्धे च घावत्यं न तयोर्भेद एव च । यथा जले तथाशैत्यं यथा वह्नी च दाहिका  
यथा ऽऽकाशे तथा शब्दो भूमौ गन्धो यथा नृप । यथाशोभा च चन्द्रे च यथादितकरे प्रभा

यथा जीवस्तथात्मानं तथैव राधया सह ।

त्यज त्वं गोपिकाबुद्धिं राधायां मयि पुत्रताम् ॥ ५० ॥

अहं सर्वस्य प्रभवः सा च प्रकृतिर्गेश्वरो । ध्रुवतां नन्द सानन्दं मद्बिभूतिसुखाचहाम् ॥ ५१ ॥  
पुरा या कथिता तावद्भागो ऽव्यक्तजन्मने । कृष्णो ऽहं देवतानाञ्च गोलोके द्विभुजः स्वयम्

चतुर्मुखाऽहं वैकुण्ठेशिवलोके शिवः स्वयम् । ब्रह्मलोकेच ब्रह्माऽहं सूर्यस्तेजस्विनामहम् ।  
पवित्राणामहं षड्विजलमेव द्रवेषु च । इन्द्रियाणां मनश्चास्मि समीरः शीघ्रगामिनाम् ॥

यमोऽहं दण्डकर्तृणां कालः कलयतामहम् ।

अक्षराणामकारोऽस्मि साम्नाञ्च साम एव च ॥५५॥

इन्द्रश्चतुर्दशेन्द्रेषु कुबेरो धनिनामहम् । ईशानोऽहं दिगीशानां व्यापकानां नभस्तथा ॥  
सर्वान्तरात्मा जीवेषु ब्राह्मणश्चाश्रमेषु च । धनानाञ्च रत्नमहममूल्यं सर्वदुर्लभम् ॥

तैजसानां सुवर्णोऽहं मर्णानां कौस्तुभः स्वयम् ।

शालग्रामस्तथाचार्याणां पत्राणां तुलसीति च ॥ ५८ ॥

पुण्याणां पारिजातोऽहं तीर्थानां पुष्करः स्वयम् ।

क्षैष्णवानां कुमारोऽहं योगीन्द्राणां गणेश्वरः ५९ ॥

सेनापतीनां स्कन्दोऽहं लक्ष्मणोऽहं धनुष्मताम् ।

गजेन्द्राणाञ्च रामोऽहं नक्षत्राणामहं शशी ॥ ६० ॥

मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनामस्मि माधवः । धारैश्यादित्यवारोऽहंतिथिष्वेकादशीतिच

सहिष्णूनाञ्च वृषिषी माताहं धान्येषु च । यमृतं भक्षयवस्तूनां गव्येष्व्याज्यमहं तथा

बलपृक्षश्च वृक्षाणां सुरभी कामधेनुषु । गङ्गाऽहं सरितां मध्ये कृत्वापापविनाशिनी ॥

घाणीति पण्डितानाञ्च मन्त्राणां प्रणवस्तथा ।

विद्यासु बीजरूपोऽहं शस्यानां धान्यमेव च ॥ ६४ ॥

अश्वत्थः फलितामेव गुरुणां मन्त्रदः स्वयम् । कश्यपश्च प्रजेशानां गरुडःपक्षिणां तथा

धनन्तोऽहञ्च नागानां नराणाञ्च नराधिरः । ब्रह्मर्षीणां मृगुरहं देवर्षीणाञ्च नारदः ॥६६॥

राजर्षीणाञ्च जनको महर्षीणां शुकस्तथा ।

गन्धर्वाणां विश्वरथः सिद्धानां कपिला मुनिः ॥ ६७ ॥

वृहस्पतिर्बुद्धिमतां कर्षीनां शुकः एव च । ब्रह्मणाञ्च शनिरहं विश्वकर्मां च शिल्पिनाम् ॥

मृगाणाञ्च गृगेन्द्रोऽहं वृषाणां शिवपादनम् । ऐरापतो गजेन्द्राणां गायत्री छन्दसामहम्

वेदाश्च सर्वशास्त्राणां बह्वो पादसामहम् । उर्ध्वश्वस्तासामेव समुद्राणां जन्तारण्यः ॥



शुभैः पर्यतामाञ्च इत्यप्यसु दिमान्तः । दूर्गा च प्रवृत्तिनाञ्च देवता कम्बलाद्या ॥

इत्यस्या च मारीणां त्रिप्रपाणाञ्च राधिका ।

शास्त्रीनामपि शास्त्रिणी यैस्माणा च निश्चिन्त्य ॥ ७२ ॥

प्रह्लादभागि शैत्यानी यत्किञ्चानी यत्किः स्वयम् । नारायणनिर्मलगान् शान्तिनामप्यप्य च  
हनुमान् चानराणाञ्च पाण्डवानां चमत्प्रयः । मनसा मागचरुवार्ता वमूर्ता द्रोण पय न  
द्रोणो जलधराणाञ्च वर्षाणां भारतं तथा । कामिनी कामदेवोऽहं शम्भा च कामुकीपुत्र  
गोतोषभागिम लोकानामुत्तमः सर्वतः परः । मातृकारु शान्तिरहं रतिञ्च सुन्दरीषु च  
धर्मोऽहं साक्षिणां मध्ये सन्ध्या च वासोषु च ।

देवेष्वहञ्च माहेन्द्रो राक्षसेषु विर्मायणः ॥ ७३ ॥

कालाग्निद्रो रूद्राणां संहारो भैरवेषु च । शंभेषु पाञ्चजन्योऽहं मङ्गेष्वपि च प्रसक्तः  
परं पुराणसूत्रेषु ग्राहं भागवतं धम् ।

भारतं चैतिहासेषु पञ्चरात्रेषु काविलम् ॥ ७४ ॥

स्वायम्भुषो मनुनाञ्च मुनीनां व्यासदेशकः । स्वधाऽहं पितृपर्दाषु स्याह । यद्विप्रियासुच  
यज्ञानां राजसूयोऽहं यज्ञपतीषु दक्षिणा । शस्त्राम्बुषु रामोऽहं जमदग्निमुतो महा  
वीराणिकेषु सूतोऽहं नीतिवत्स्यङ्गिरा मुनिः । विष्णुयतं वतानाञ्च बलानां देवमेव च ।  
औपधीनामहं दूर्घां तृणानां कुशमेव च । धर्मकर्मसु सत्यञ्च स्नेहपात्रेषु पुत्रकः ॥ ८३ ॥  
अहं व्याधिश्च शत्रूणाञ्चरो व्याधिष्वहं तथा । मद्भक्तिष्वपि महास्यं धरेषु च धरस्त्वहः  
व्याधमाणां गृहस्थोऽहं सन्यासी च विवेकिनाम् ।

सुदर्शनञ्च शस्त्राणं कुशलञ्च शुभाशिषाम् ॥ ८५ ॥

पेश्वर्याणां महाज्ञानं वीराग्यञ्च सुखेष्वहम् । मिष्टवाक्यं श्रीतिशेषु दानेषु चाहमदानकम्  
सञ्चयेषु धर्मकर्म कर्मणाञ्च मदचैनम् । कठोरेषु तपश्चाहं फलेषुः मोक्ष पद्मं च ॥ ८७ ॥  
अष्टसिद्धिषु प्राकाम्यमहं काशी पुरीषु च । नगरेषु तथा काञ्चीसदेशो यत्र वीक्षण-  
सर्वाधारेषु स्थूलेषु अहमेव महान्विराट् । परमाणुरहं विश्वे महासूत्रेषु नित्यशः ॥ ८९ ॥  
वैद्यानामश्विनीपुत्रो औपधीषु रसायनः । धन्यन्तरिमन्त्रविदां विषादः क्षयकारिणाम्

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ] \* भगवन्नन्दसंवाद्दर्शनम् \*

रागाणां मेघमह्वारः कामोदस्तत्प्रियासु च ।

मत्पार्षदैषु श्रीदामा मद्वग्धुष्वहमुद्धवः ॥ ६१ ॥

पशुजन्तुषु गीश्वाहं चन्दनं काननेषु । तीर्थभूतश्च पूतेषु निःशङ्केषु च वैष्णवः ।  
न वैष्णवात् परः प्राणी मन्मन्त्रोपासकश्च यः । वृक्षेष्वङ्कुररूपोऽहमाकारः सर्वेषु  
अहं च सर्वभूतेषु मयि सर्वे च सन्ततम् । यथा वृक्षे फलान्येव फलेषु चाङ्कुरस्त  
सर्वकारणरूपोऽहं न च मत्कारणे परम् । सर्वेशोऽहं न मेऽपीशो ह्यहं कारणका  
सर्वेषां सर्ववीजानां प्रघदन्ति मनीषिणः । मन्मायामोहितजना मां न जानन्ति पापि  
पापप्रस्तेन दुर्युद्ध्या विधिना वञ्चितेन च ।

स्वात्माहं सर्वजन्तूनां स्वात्माहं नाद्रुतः स्वयम् ॥ ६७ ॥

यत्राहं शक्त्यस्तत्र क्षुत्पिपासादयस्तथा । गते मयि तथा यान्ति नरदेहे यथानु  
दे प्रज्ञेश नन्द तात ज्ञानं ज्ञात्वा ब्रह्मं यज्ञ । कथयस्व च तां राधां यशोदां ज्ञानम  
ज्ञात्वा ज्ञानं यज्ञेशश्च जगाम स्वानुगैः सह । गत्वा च कथयामास ते द्वे च योषि  
ते च सर्वेजद्भुः शोकं महाज्ञानेन नारद । कृष्णो यद्यपि निर्द्विषो मायेशो मायय  
यशोदया प्रेरितश्च पुनरागत्य माधवम् । तुष्टाय परमानन्दं नन्दश्च नन्दनन्दनम् ॥

सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन ब्रह्मणा पुरा ।

पुत्रस्य पुरतः स्थित्वा हरोद च पुनः पुनः ॥ १०३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
नन्दादिशोकप्रमोचनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भगवन्नन्दसंवाद्दर्शनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

भुवो भाराघतरणे निर्गुणः प्रकृतेः परः । परात्परस्तु भगवान् ब्रह्मेशशेषवन्दितः ॥ २ ॥  
तुष्टो नन्दस्त्वयं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः । आगच्छन्तं गोकुलाच्च विरहञ्चरकातलम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

गच्छ नन्द व्रजं नन्द त्यज शोकं भ्रमं भुवि । शृणु सत्यं परं ज्ञानं शोकग्रन्थिनिकृन्तनम् ॥  
षायुश्च भूमिराकाशो जलं तैजश्च पञ्चकम् । उक्तः श्रुतिगणैरतैः पञ्चभूतैश्च नित्याः ॥  
सर्वेषां देहिनां तात देहश्च पाञ्चमीतिकः । मिथ्याभ्रमः कृत्रिमश्च स्वप्नवन्माययान्वितः ॥  
देहं गृह्णन्ति सर्वेषां पञ्चभूतानि नित्यशः । मायासङ्केतरूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम् ॥

को वा कस्य सुतस्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा ।

कर्मणा भ्रमणं शश्वत् सर्वेषां भुवि जन्मनि ॥ ८ ॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते । सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते ॥

केषां वा जन्म स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणो गृहे ।

केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः ॥ १० ॥

अतिनीचेषु केषां वा केषां हृमिषु विदसु च । पशुपक्षिषु केषां वा केषां वा क्षुद्रजन्तुषु ॥  
पुनः पुनर्भ्रमन्त्येष सर्वे तात स्वकर्मणा । करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्तो मत्प्रियः सदा ॥  
हृतं त्रेता द्वापरञ्च कल्शचेति चतुर्युगम् । पञ्चविंशत्सहस्राणां युगान्ते तिघ्नन् मनोः ॥  
मनोःसमं महेन्द्रस्य परमायुर्धिनिर्मितम् । चतुर्दशेन्द्रविच्छिद्येत्तौ ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥

एवं परिमिता रात्रिः कालविद्धिर्धिनिर्मिता ।

एवं परिमिता मासा वर्षञ्च परिनिश्चितम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मणश्च वर्षशतं परमायुर्धिनिर्मितम् । निमेषमात्रं कालोऽयं ब्रह्मणो तिघ्नते मम ॥ १६ ॥

ब्रह्मादितृणपद्व्यन्तं सर्वं विश्वे विनिश्चितम् ।

सत्योऽहं परमात्मा च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ १७ ॥

मन्मन्त्रोपासकः सत्यो देहं त्यक्त्वा धरातु च ।

यान्यत्येष हि गोलोकं हित्वा कर्म पुरातनम् ॥ १८ ॥

असंख्यब्रह्मणां पाते न मयेत्तस्य पातनम् ।

गृह्णाति नित्यं स्वं देहं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ १६ ॥

न नन्द मम भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । नित्यं सुदर्शनं तांश्च परिरक्षति सर्वतः ॥

मत्तो हि बलवान् भक्तश्चिन्तितोऽहं न चिन्तितः ।

अहं स्वामी च तस्यैव न मे स्वामी पिता प्रसूः ॥ २१ ॥

पुत्रबुद्धिं परित्यज्य भज मां ब्रह्मरूपिणम् । छित्त्वा च कर्मनिगडं गोलोकं तद् ब्रजस्वयम्  
कथयस्व यशोदाञ्च गोपीं गोपगणं व्रज । तैश्च सर्वैर्जनैः शोकं त्यज स्वमन्दिरं व्रज  
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च संसदि । पप्रच्छ पुनरैवं तं नन्दश्चानन्दसंप्लुतः ॥

नन्द उवाच ।

षट् सांसारिकं ज्ञानं येन यास्यामि ह्यहंपदम् । मूढोऽहं परमानन्द ध्रुतीनां जनकोभयान्  
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा सर्वेशो भगवान् स्वयम् । आह्विकं कथयामास श्रुतिभिर्नैध्रुतंहियम्  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवन्नन्दसंवादे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

## पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

आह्विकवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि ज्ञानञ्च परमाद्भुतम् । सुगोपनीयं वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम् ॥१॥

न विद्यासो हि नारीषु सन्ततं कुलटासु च । मोक्षमार्गार्गलास्येषु भ्रमयामासुभूमिषु ॥

हरिभक्तेरसाध्वीनां विरुद्धासु युतासु च । शीतरूपासु नाशानां प्रमदासु प्रजेध्वर ॥३॥

नित्यञ्च प्रातःस्नानाय रात्रिवासो विहाय च । अमीष्टदेवं हृत्पद्मे प्रह्ले रन्ध्रे गुह्यं परम् ॥

विचिन्त्य मनसा प्रातःहृत्यं कृत्वा सुनिश्चितम् ।

ज्ञानं करोति सुप्राप्तो निर्मलेषु जलेषु च ॥ ५ ॥



। सुरश्च कांश्यपात्रे च भोजनम् । आर्द्रकं रक्तशाकञ्च रथौ च परिवर्जयेत् ।

। यथा नरकं याति कुम्भीपाकं न संशयः ॥ ६१ ॥

। स्थलान्नं घेश्यान्नं मन्दिरान्नं व्रजेश्वर ।

। भुङ्क्ते ब्राह्मणो देवात् विद्मोजी स भवेदु ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

। कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् । स भवेदशुचिर्नित्यं भस्मान्तं तस्य सूतकम्  
प्रविज्ञेया चतुष्पुष्ट्यगामिनी । पाके च पितृदेवानामधिकारो न तद्भवेत् ॥

। जिनामन्नं शूद्रध्राद्दानभोजनम् । भुक्त्वा च नरकं याति याचञ्चन्द्रदियाकरो  
। ददियसे तदन्नं भुङ्क्ते द्विजाः । कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद् ब्रह्मणः शतम्  
न्यनुशातो भुङ्क्ते धाद्दिनेऽन्यतः । सुरापीति स विज्ञेयः सर्वधर्मवह्निष्कृतः ॥

। मपीजीवी देवलो वृषदाहकः । शूद्राणां शवदाही च यो हि शूद्रार्पतिर्द्विजः ।

। स शूद्रवद् बहिष्कार्यस्तदन्नं चित्समं सताम् ।

। नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपारते यस्तु पश्चिमात् ।

। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ६६ ॥

। नोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदहा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥  
। राममन्त्रविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ७० ॥

। नदीगर्भे च गर्ते च वृक्षमूले जलान्तिके ।

। देधान्तिके शस्यभूमौ पुरीषे नोत्सृजेद् बुधः ॥ ७१ ॥

। पकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा । शौचावशिष्टां गेहाच्च न दद्याल्लेपसम्भवाम्  
। अन्तःप्राणिपिपिल्याञ्च हलोत्खातां व्रजेश्वर ।

। आलघालोस्थि(त्थि)ताञ्चैव शस्यक्षेत्रोत्थितां तथा ॥ ७३ ॥

। त्थितां नन्द नदीगर्भोत्थितां तथा । परित्यजेन्मृदस्त्वेताः सकलाः शौचसाधने

। कुम्भाण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकः पुमान् ।

। सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि ॥ ७५ ॥

। घलिद्भुञ्ज शालग्रामं मणिं तथा । प्रतिमां यश्चूञ्च सुवर्णं शङ्कुमेव च ॥ ७६ ॥

या ग्री मूढा नुरागारा म्यपति हरिरूपिणम् ।

न पश्येत्तर्जनं कृत्वा कुम्भीराके मजेद् ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

पान्तर्जनाद्वयेन् फाको द्विगनात् शुकरो मयेन् । सर्वां मयति कोपेन क्षयेण गर्दभो मवेः

कुयकुरी च कुयाकथेनाप्यग्यध विप्रदर्शनात् ॥ ४४ ॥

पतिप्रता च धैकुण्टं गन्या सह मजेद् ध्रुवम् ।

शिर्यं तुगां गणपतिं मूर्ध्नि विप्रञ्ज धैष्णवम् ॥ ४५ ॥

विष्णुं निन्दति यो मूढो स महारौर्यं मजेत् ।

पितरं मातरं पुत्रं सतीं भार्यां गुणं तथा ॥ ४६ ॥

अनाथां भगिनीं कन्यां विनिग्य नरकं मजेत् ।

विप्रमक्तिविहीनाश्च क्षत्रविट्शूद्रयोनिजाः ॥ ४८ ॥

हरिमक्तिविहीनाश्च पच्यन्ते नरके ध्रुवम् । पतिमक्तिविहीनाश्च युषत्यश्च नराधमाः ॥

शालग्रामजलं विष्णुप्रसादं ये च भुञ्जते । तीर्थं पुनन्ति ते विप्राः शतं पुंसां वसुधराम्

पितृदेषान् समभ्यर्च्य खादन् मांसं द्विजः शुचिः । यो भक्षति वृधामांसं स महारौर्यं मजेत्

मत्स्यांश्च कामतो दग्ध्वा चोपघासं वसेद् द्विजः ।

प्रायश्चित्तं ततः कुर्याद् व्रतं चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ५२ ॥

सोऽशुचिः सततं नन्द हन्ति पुण्यं पुराहतम् । कामतो ब्राह्मणो मत्स्यंभुंक्ते यो हानदुर्लभः

विष्णो हच्छिष्टभोजी यो मत्स्यं मांसेन खादति ।

पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ५४ ॥

एकादशीं ये कुर्वन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मकृतात् पापान् मुच्यतेनात्र संशयः

यद् बाल्ये यच्च कौमार्ये चार्द्धके यच्च यौवने । भस्मीभूतानि कुर्वन्ति पातकानि कृतानि च

एकादशीदिने भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीव्रते । त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्तेन संशयः ॥

३ नियमो न स्यादतिवृद्धे च बालके । भक्तस्य द्विगुणं दत्त्वा ब्राह्मणाय शुचिर्भवेत्

भुङ्क्ते शिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने । उपघासे समर्थश्च स महारौर्यं मजेत् ॥

३ । नरक्याण्डालयोनिः स्यात् स्त्रीतैलमांससेवनात्

मत्स्यं मांसं मसूरञ्च कांश्यपात्रे च भोजनम् । आर्द्रकं रक्तशाकञ्च रवीं च परिधर्जयेत् ।

अन्यथा नरकं याति कुम्भीपाकं न संशयः ॥ ६१ ॥

रजस्वलान्नं वेश्यान्नं मन्दिरान्नं व्रजेश्वर ।

यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो वैघात् विद्मोजी स भवेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

यदहा कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् । स भवेद् शुचिर्नित्यं भस्मान्तं तस्य सूतकम्

नारी वेश्या प्रविशेया चतुष्पुष्पगामिनी । पाके च पितृदेवानामधिकारो न तद्भवेत् ॥

यद् ग्रामयाजितामन्नं शूद्रश्राद्धन्नभोजनम् । भुक्त्वा च नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरी

शूद्राणां श्राद्धदिवसे तदन्नं भुङ्गते द्विजाः । कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्ब्रह्मणः शतम्

यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते श्राद्धदिनेऽन्यतः । सुरापीति स विशेषः सर्वधर्मवहिरकृतः ॥

असिजीघी मयीजीघी देवलो वृषघाहकः । शूद्राणां शघदाही च यो हि शूद्रार्पतिर्द्विजः ।

स शूद्रघट्टु यदिष्कार्यस्तदन्नं चिद्समं सताम् ।

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपारते यस्तु पश्चिमाम् ।

स शूद्रघट्टु घद्विष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ६६ ॥

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदहा कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥

राममन्त्रविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ७० ॥

नदीगर्भे च गर्ते च वृक्षमूले जलान्तिके ।

देवान्तिके शस्यमूर्त्तौ पुरीषं नोत्सृजेद् बुधः ॥ ७१ ॥

घल्मीकमूषकोत्पातां मृद्मन्तर्जलां तथा । शौचाघशिष्टां गेहाद्य न दधान्लेपसम्भवाम्

अन्तःप्राणिपिपिल्याश्च हलोत्पातां व्रजेश्वर ।

भालघालोत्थि(त्थि)ताश्चैव शस्यश्रेत्रोत्थितां तथा ॥ ७२ ॥

वृक्षमूलोत्थितां नन्द नदीगर्भोत्थितां तथा । परित्पजेन्मृदस्त्वेताः सकलाः शौचसाधने

कुष्माण्डघातिका या स्त्रो दीपनिर्वाणकः पुमान् ।

सप्तजन्म भवेद्भोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि ॥ ७५ ॥

प्रदीपे शिपलिङ्गञ्च शालग्रामं मणि तथा । प्रतिमां यज्ञसूत्रञ्च सुपगं शाहूमेव च ॥ ७६ ॥



हीरकञ्च तथा मुक्तां गोमूत्रं गोमयं घृतम् । शालग्रामशिलातोयं भूमौ त्यक्तवा ब्रह्मेश्वरः ।  
 दरिद्रः कृपणः कुप्यो चंशहीनोऽप्यमार्य्यकः । भूमिहीनः प्रजाहीनो बन्धुहीनश्च कुत्सित  
 अन्धः पङ्गुर्वा खरश्च खड्गधैवाङ्गहीनकः । भवेन् कृमेण पापी स ह्येतान् भूमौ त्यजेत्तु य  
 दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगं करोति यः ।

सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥ ८० ॥

उदिते जगतीनाथे यः कुर्याद्दन्तधावनम् । स पापिष्ठः कथं ब्रूने पूजयामि जनार्दनम् ।  
 मृद्वस्मगोशकृत्पिण्डैस्तथा घाल्कयापि वा । शृत्वा लिङ्गं सशृत्पूज्य घसेन् कल्परातंदिधि  
 सहस्रपूजनात् सोऽपि लभते चाञ्छितं फलम् ।

लक्षञ्च पूजयेद्यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

जीवन्मुक्तो भवेद्विप्रो लिङ्गमभ्यर्चयेत्तु यः । शिवपूजाविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं गतेन ।  
 मत्पूजिनं प्रियतमं शिवं निन्दन्ति ये नराः । पच्यन्ते निरये तावद्यापद्वै ब्राह्मणः शतम् ।  
 पूजिते शिवलिङ्गे च यदि स्यात् केशघालुका ।

स महान्धो घालुफया केदो न ययनो भवेत् ॥ ८६ ॥

ध्रुवे दरिद्रः कृपणो ध्याधिः स्यात् कुत्सिते तथा ।

सर्वेभ्यो मानहानिः स्याज्जायते नीचयोनिषु ॥ ८७ ॥

सर्वेषु प्रियमात्रेषु ब्राह्मणश्च मम प्रियः ।

ब्राह्मणाच्च प्रिया लक्ष्मीः सतनं षष्टसि स्थिता ॥ ८८ ॥

ततोऽधिका प्रिया राधा प्रिया मन्तास्तनोऽधिकाः ।

तनोऽधिकः शङ्करो मे नास्ति मे शङ्करान् प्रियः ॥ ८९ ॥

महादेय महादेय महादेयेति धादिनः । पश्चाद्यामि च संतृप्तो नामभयणलोमतः ॥ ९० ॥

मनो मे मन्तमूले च प्राणा राधात्मिका ध्रुवम् ।

मात्मा मे शङ्करम्यानां शिवः प्राणाधिकश्च यः ॥ ९१ ॥

भावा नारायणां शक्तिः सृष्टिमिष्टवन्तकारिणी ।

करोमि च यया सृष्टि यया ब्रह्मादिदेयताः ॥ ९२ ॥

यथा जयति विश्वञ्च यथा सृष्टिःप्रजायते । यथा चिना जगन्नाम्नि मया दत्ताशिवाय सा  
 दया निद्रा च क्षुत्तृप्तिस्तृष्णा श्रद्धा क्षमा धृतिः ।  
 तुष्टिः पुष्टिस्तथा शान्तिर्लज्जाभिदेवता हि सा ॥ ६४ ॥  
 वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका सती ।  
 मर्त्ये लक्ष्मीश्च क्षीरोदे दक्षकन्या सती च सा ॥ ६५ ॥  
 सौ दुर्गा मेनका कन्या दैन्यदुर्गतिनाशिनी ।  
 स्वर्गलक्ष्मीश्च दुर्गा सा शाकादीनां गृहे गृहे ॥ ६६ ॥  
 सा घाणी सा च सावित्री विद्याधिष्ठातृदेवता ।  
 षडौ सा द्वाहिका शक्तिः प्रभाशक्तिश्च भास्करे ॥ ६७ ॥  
 शोभाशक्तिः पूर्णबन्द्रे जले शक्तिश्च शीतता । शस्यप्रसूता शक्तिश्चधारणाचधरासु सा  
 ब्राह्मण्यशक्तिर्विप्रेषु देवशक्तिः सुरेषु सा । तपस्विनां तपस्या सा गृहिणां गृहदेवता ॥  
 मुक्तिशक्तिश्च मुक्तानामाशा सांसारिकस्य सा ।  
 मद्भक्तानां भक्तिशक्तिर्मयि भक्तिप्रदा सदा ॥ १०० ॥  
 नृपाणां राजपलक्ष्मीश्च षणिजांलभ्यरूपिणी । पारे संसारसिन्धूनां त्रयी तत्त्वाघतारिणी  
 सत्सु सद्बुद्धिरूपा सा मेधाशक्तिस्वरूपिणी ।  
 ध्यातव्याशक्तिः धूर्तो शास्त्रे दातृशक्तिश्च दातृषु ॥ १०२ ॥  
 क्षत्रादीनां विप्रभक्तिः पतिभक्तिः सतीषु च । एषंरूपा च या शक्तिर्मया दत्ता शिवाय सा  
 एव ते कथितं सर्वं किं भूयः ध्योतुमिच्छसि ।  
 प्रश्नं करोषि यद्यन्मां तत्सर्वं कथयामि ते ॥ १०४ ॥  
 इति धीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे भग-  
 वन्संवादे पञ्चसततितमोऽध्यायः ।

## पट्सप्ततितमोऽध्यायः

शुभाशुभदर्शनफलम् ।

श्रीनन्द उवाच ।

येषाञ्च दर्शने पुण्यं पापञ्च यस्य दर्शने । तत्सर्वं पद सर्वेश श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥

श्रीमगवानुवाच ।

सुब्राह्मणानां तीर्थानां वैष्णवानाञ्च दर्शने । देवताप्रतिमादर्शां तीर्थस्नार्या भवेन्नरः ॥२

सूर्यस्य दर्शने भक्त्या सतीनां दर्शने तथा । सन्न्यासिनां यतीनाञ्च तथैव ब्रह्मचारिणाम्

भक्त्या गवाञ्चवह्नीनां गुरूणाञ्च विशेषतः । गजेन्द्राणाञ्च सिंहानां श्वेताश्वानां तथैव च

शुकानाञ्च पिकानाञ्च खड्गनाञ्च तथैव च । हंसानाञ्च मयूराणां चायाणां शङ्खपक्षिणाम्

घत्समयुक्तधेनूनामश्वत्थानां तथैव च । पतिपुत्रवतीनाञ्च नराणां तीर्थयायिणाम् ॥ ६ ॥

प्रदीपानां सुवर्णानां मणीनाञ्च विशेषतः । मुक्तानां हीरकाणाञ्च माणिक्यानां महाप्राय

तुलसीशुक्लपुष्पाणां दर्शनं पापनाशनम् । फलानि शुक्लधान्यानि घृतं दधि मधूनि च ॥

पूर्णकुम्भञ्च लाजाञ्च राजेन्द्र दर्पणं जलम् । मालाञ्च शुक्लपुष्पाणां दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥

गोरोचनञ्च कर्पूरं रजतञ्च सरोवरम् । पुष्पोद्यानं पुष्पितञ्च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१०॥

शुक्लपक्षस्य चन्द्रञ्च पीयूषं चन्दनं तथा । कस्तूरीं कुङ्कुमं दृष्ट्वा नन्द पुण्यं लभेन्नरः ॥

पताकामक्षयघटतठं देवोत्थितं शुभम् । देवालयं देवजातं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१२

देवाधितं देवघटं सुगन्धिपवनं तथा । शङ्खञ्च दुन्दुभिं दृष्ट्वा सद्यः पुण्यं लभेन्नरः ॥

शुक्तिप्रवालं रजतं स्फाटिकं कुशमूलकम् । गङ्गामृदं कुशं ताम्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥

पुराणपुस्तकं शुद्धं सर्वज्ञं विष्णुयन्त्रकम् । स्निग्धदूर्वाक्षतं रत्नं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥

तपस्थिनां सिद्धमन्त्रं समुद्रं कृष्णसारकम् । यज्ञं महोत्सवं दृष्ट्वा स पुण्यं लभते नरः ॥

गोमूत्रं गोमयं दुग्धं गोधूलिं गोष्ठगोष्पदम् ।

पञ्चशम्यान्वितं क्षेत्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥

विरां पद्मिनीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् । सुवेशकां सुवसनां दिव्यभूषणभूषिताम्  
श्यां क्षेमकरीं गन्धं सद्दूर्वाक्षततण्डुलम् । सिद्धान्नं परमान्नञ्च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥

कार्तिकीपूर्णाभायाञ्च राधिकाप्रतिमां शुभाम् ।

संपूज्य दृष्ट्वा नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥ २० ॥

हिङ्गुलायां तथाष्टम्यामिषे मासि सिते शुभे ।

ध्रीदुर्गाप्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥ २१ ॥

शिवरात्री च काश्याञ्च विश्वनाथस्य दर्शनम् ।

वृत्थोपवासं पूजाञ्च करोति जन्मखण्डनम् ॥ २२ ॥

जन्माष्टमीदिने भक्तो दृष्ट्वा मां विन्दुमाधवम् ।

प्रणम्य पूजां वृत्थाच करोति जन्मखण्डनम् ॥ २३ ॥

मेासि शुक्लरात्री यत्रयत्र स्थलेनरः । पन्नायाः प्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम्

सप्तजन्म भवेत्तस्य पुत्रः पौत्रो धनेश्वरः ॥ २४ ॥

उपोष्यैकादशीं स्नात्वा प्रभाते द्वादशीदिने ।

दृष्ट्वा काश्यामन्नपूर्णां करोति जन्मखण्डनम् ॥ २५ ॥

चैत्रेमासि चतुर्दश्यां कामरूपेषु पुण्यदे । दृष्ट्वातन्या मद्रकालीं करोति जन्मखण्डनम्

क्षयोध्यायाञ्च रामं मां धोरामनवमीदिने । संपूज्य नत्वादृष्ट्वाच करोति जन्मखण्डनम्

दत्त्वा विष्णुपदेपिण्डं विष्णुंयश्च प्रपूजयेत् । पितृणांस्वात्मनश्चैव करोति जन्मखण्डनम्

प्रयोगे मुण्डनं वृत्त्वा दानञ्च कुरुते यदि । उपोष्य नैमिशारण्ये करोति जन्मखण्डनम् ॥

उपोष्य पुष्करे स्नात्वा किं वा घदरिकाध्रमे ।

संपूज्य दृष्ट्वा मामेकं करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३० ॥

सिद्धिदृष्ट्वाच घदरीं भुङ्क्ते घदरिकाध्रमे । दृष्ट्वा मन्प्रतिमां नन्दकरोति जन्मखण्डनम्

दोलयामानं गोविन्दं पुण्ये घृन्दायने च माम् ।

दृष्ट्वा संपूज्य नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३२ ॥

भाद्रे दृष्ट्वाच मञ्जुस्यं भाभेवमधुमूदनम् । संपूज्य नत्वा भक्तश्च करोति जन्मखण्डनम्



महास्यभक्तिः स लभेद्वैकुण्ठे मोदते चिरम् । न हि पातो भवेत्तस्य यथा मे परमात्मन  
कुमारीमष्टवर्षीयां सुविप्राय ददाति यः । सम्पूज्य सर्वाभरणां दुर्गादानफलं लभेत् ॥  
सर्वं स्वर्ग्यं समालोक्य ब्रह्मलोकेषु पूजितः । लभते मम दास्यञ्च वैकुण्ठे मोदते चिरम्  
विद्याहर्षणे कोटिस्पर्शदानफलं लभेत् । अन्ते स्वर्गं प्रयात्येवमिहैव निश्चलां धियम् ॥  
यः सुविप्रमनाथञ्च हरिद्रञ्च सुपण्डितम् । दृष्ट्वा कुट्यात्तद्विवाहं स मोक्षं लभते ध्रुवम्  
यच्छत्रपादुकादानं शालग्रामस्य योपितः ।

करोति भक्त्या पुण्याद्दे पृथ्वीदानफलं लभेत् ॥ ५८ ॥

गजदाने च तल्लीममानवर्षं धृतौ श्रुतम् । चतुर्गुणं गजेन्द्रे च मोदते मम मन्दिरे ॥५९॥  
गजासुं श्वेतनुरगे तदङ्गश्चेतरे पितः । गजतुल्यं कृष्णगर्घां दाने च तत्फलं लभेत् ॥  
तत्तुल्यं घेनुदाने च अर्द्धं सामान्यगोस्तथा । लभेद्भस्त्रप्रसूतानां दाने दाने फलं भुवः ॥

भूमिदाने रेणुमानवर्षं स्थानञ्च मत्पदे ।

ज्ञानदाने महत् पुण्यं वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥ ६२ ॥

धियं लभेत् स्पर्शदाने राजत्वं रजतेन च । अन्नदाने फलं नाहं कथं जानामि वै श्रुतम्  
लभते सर्वदानस्य फलं ब्राह्मणभोजने । अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥  
नात्र पात्रपरीक्षा साऽन कालनियमः क्वचित् ।

अन्नदाने शुभं पुण्यं दातुः पात्रं त्यपातकी ॥ ६५ ॥

अन्नदानञ्च धन्यं स्याद्भूमौ वैकुण्ठहेतुकम् । वस्त्रं ददाति विप्राय हरिद्राय कुटुम्बिने ॥  
पत्त्रसूत्रमानवर्षं वैकुण्ठे मोदते चिरम् । सुराये चन्द्रलोके च धारणे च तथैव च ॥  
हरया लोहप्रदीपञ्च स्पर्शवर्तिसमन्वितम् । दत्त्वा घृतप्रदीपञ्च हरये परमात्मने ॥ ६८ ॥

अन्धकारञ्च न गृहं यमदृतं यमं तथा ।

न हि पर्यति दाता च प्रयाति मम मन्दिरम् ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणाय च दस्यैव न याति यमयातनाम् । दिव्यवर्षसहस्रञ्च मोदते शक्रमन्दिरे ॥७०॥

भासनं लभते स्वर्गं घस्तुमानानुरूपतः । उत्तमे लक्षवर्षञ्च तदङ्गं चेतरे मज ॥ ७१ ॥

ताम्बूलेन लभेद्दोगं स्वर्गं धर्मशतं द्विज ॥ ७२ ॥

माल्यदाने प्रियं स्वर्गं घन्तुपात्रानुरूपतः । फलदानफलं स्वर्गं लभते नात्र संशयः  
सामान्यशय्यादानेन स्वर्गं वर्गशतं व्रजेत् । चतुर्गुणं प्रकृष्टानां गुणलक्षं विद्वेषणे  
यनापाय सुविप्राय यदि मोहं प्रदीयते । अथैव मानवर्षंश्च शकलोके महीयते ॥ ७१ ॥  
दृष्ट्वा युभुक्षितं विप्रमथ्रं तस्मै प्रदीयते । अचलां ध्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रपिबर्दिनीम् ॥ ७२ ॥  
व्रजनाथ व्रजं गत्वा व्रजभूमौ व्रजाधुना । व्रज भोजय विप्रांश्च व्रज सर्वं व्रजे व्रजे

गोकुले गोकुले घटस घस घटसनिराकुले ।

ध्याकुल्यानां गोकुलानां सङ्कुले च व्रजे व्रजे ॥ ७८ ॥

एतत्त कथितं नन्द सानन्दं पुण्यघर्दनम् । सुस्वप्नदर्शनं पुण्यं यदि नीचं न वक्ति च  
फाण्ययं दुर्गमं नीचं शत्रुमज्ञानिनं स्त्रियम् ।

त्यक्त्वा रात्रिञ्च दिवसे वक्ति विप्रं सुपर्ण्डतम् ॥ ८० ॥

देवालये च देवं घाप्यभ्वत्यतुलसीवटम् । उत्तथा तद्द्विगुणं पुण्यमप्रकाश्यं चतुर्गुणम्  
सुस्वप्नदर्शने प्राप्नो गङ्गास्नानफलं लभेत् । अथं वित्तञ्च भार्याञ्च भूमिं पुत्रं लभेच्च सः

मोक्षञ्च परमैश्वर्यं लभते सर्ववाञ्छितम् ।

इत्येवं कथितं तात किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ८३ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराणे नाटयणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

शुभाशुभदर्शनफलं नाम पद्सप्ततितमोऽध्यायः ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सुस्वप्नदर्शनफलम्

नन्द उवाच ।

केन स्वप्नेन किं पुण्यं केन मोक्षो भवेत् सुखम् ।

कोऽपि कोऽपि च सुस्वप्नस्तत्सर्वं कथय प्रभो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

द्वैतु सामयेद्ध्य प्रशस्तः सर्वकर्मसु । तथैव काण्यशास्त्रायां पुण्यकाण्डे मनोहरं ॥ २॥

त व्यक्तौ यश्च दुःस्वप्नः शश्वत् पुण्यफलप्रदः । तत्सर्वं निखिलं तात कथयामि निशामय  
स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यफलप्रदम् । स्वप्नाध्यायं नरः श्रुत्वा मङ्गलान्फलं लभेत्  
स्वप्नस्तु प्रथमे यामे संवत्सरफलप्रदः । द्वितीये चाष्टमिमांसेस्त्रिमिमांसेस्तृतीयके ॥  
चतुर्थे चार्द्धमासेन स्वप्नः स्वात्मान्फलप्रदः । दशाहे फलदः स्वप्नोऽप्यरुणोदयदर्शने ॥

प्रातःस्वप्नश्च फलदस्तद्दर्शनं यदि बोधितः ।

दिने मतसि यद्दृष्टं तत्सर्वञ्च लभेद्भुषम् ॥ ७ ॥

चिन्ताव्याधिसमायुक्तोनरः स्वप्नञ्च पश्यति । तत्सर्वं निष्फलं तात प्रयात्येव न संशयः  
जडो मूत्रपुरीषेण पण्डितश्च भयाकुलः । दिगम्बरो मुक्तकेशो न लभेत् स्वप्नञ्च फलम्  
दृष्ट्वा स्वप्नञ्च निद्रालुर्यदि निद्रां प्रयाति च ।

विमूढो पक्तिः चेद्राश्रीं न लभेत् स्वप्नञ्च फलम् ॥ १० ॥

वनवा काश्यपगोत्रश्च विवर्त्ति लभते भुषम् । दुर्गते दुर्गतिं याति तं च व्याधिं प्रयाति च  
शश्री मयश्च लभते मूर्खे च कलहं लभेत् । कामिन्यां धनहानिः स्याद्राश्रीं चौरमयं मवेत्  
निद्रायां लभते शोकं पण्डिते पाण्डितं फलम् ।

न प्रकाश्यश्च स स्वप्नः पण्डितैः काश्यपे मज ॥ १३ ॥

गपाञ्च कुञ्जराणाञ्च हपानाञ्च मजेत्पर । प्रासादाणाञ्च शैलानां घृष्टाणाञ्च तथैव च ॥  
भारोहणञ्च धनदं भोजनं रोदनं तथा ।

प्रतिपृष्ट तथा घीणां शम्पाट्यां भूमिमा लभेत् ॥ १५ ॥

शस्त्रास्त्रेण यदा विद्धो मरणेन हृमिना तथा । विष्टयादधिरेणैव स सुक्तोऽप्यर्षवान्मवेत्  
स्वप्नेऽप्यगम्यमनो भार्यासार्धं करोति च । मूत्रसिक्तः पियेन्दुकं नाकञ्च विशल्पयि  
नगरं प्रविशेन्नरं समुद्रं वा सुधीं विधेत् । शूद्रपार्तामपान्जोति विपुलञ्चापमान्भवेत् ॥  
गजं नृपं सुपर्णाञ्च घृषमं धेनुमेव च । दीपमधं पालं पुष्पं कन्यां छत्रं च्यत्रम् ॥

कुट्टयं लभते दृष्ट्वा कीर्तिञ्च विपुलां धियम् ॥ १६ ॥



पूर्णकुम्भं द्विजं वद्वि पुष्यतामूलमन्दिरम् । शुक्रधारायं नटं वेश्यां दृष्ट्वा त्रियमवाप ॥

गोक्षीरस्य गृहं दृष्ट्वा नार्यं पुण्यघनं लभेत् ॥ २१ ॥

पापसं पद्मपत्रे च दधिदुग्धं गृहं मधु । मिष्टान्नं स्वस्तिकं भुक्त्वा ध्रुवं राजा भवि  
पक्षिणां मानुषाणाञ्च भुङ्क्ते मांसं नरोपदि । यद्दयंशुभवार्ताञ्च लभने पाञ्चिर्ष्ये

छत्रं वा पादुकां वापि लब्ध्या धान्यञ्च गच्छति ।

असिञ्च निर्मलं तीक्ष्णं तत्तथैव भविष्यति ॥ २४ ॥

हेलया सन्तरेद्यो हि स प्रधानो भविष्यति । दृष्ट्वा च फलितं वृक्षं धनमाप्नोतिनिधि  
सर्पेणभक्षितो यो हि अर्थलामश्नतद्भवेत् । स्वप्नेसूर्यंविद्युं दृष्ट्वा मुच्यतेव्याधिबन्ध-

घडवां कुक्कुटीं दृष्ट्वा क्रीड्वा भाष्यां लभेद् ध्रुवम् ।

स्वप्ने यो निगडैर्वदः प्रतिष्ठां पुत्रमालभेत् ॥ २७ ॥

दध्यन्नं पायसं भुङ्क्ते पद्मपत्रे नदीतटे । विशोर्णपद्मपत्रेच सोऽपि राजा भविष्यति  
जलौकसं वृश्चिकञ्च सर्पञ्च यदि पश्यति । धनं पुत्रञ्च विजयं प्रतिष्ठां वा लभेदिति

शृङ्गिभिर्दंष्ट्रिभिः कोलैर्वानरैः पाङ्कितो यदि । निश्चितञ्च भवेद्राजा धनञ्च विपुलं लभे  
मत्स्यं मांसं मीकिकञ्च शङ्खं चन्दनहोरकम् ।

यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते विपुलं धनमालभेत् ॥ ३१ ॥

सुराञ्च रुधिरंस्वर्णं दृष्ट्वा विष्ठां धनंलभेत् । प्रतिमां शिबलिङ्गञ्च लभेद् दृष्ट्वा जयंघन  
फलितं पुष्पितं विल्वनाम्नं दृष्ट्वा लभेद्धनम् । दृष्ट्वा च ज्वलदग्निञ्च धनं बुद्धिं धियंलभे

आमलकं धार्त्राफलमुत्पलञ्च धनागमम् ॥ ३३ ॥

देवताञ्च द्विजा गावः पितरो लिङ्गिनस्तथा । यद्दाति मिथः स्वप्ने तत्तथैव भविष्यति  
शुक्राम्बधरा नार्यः शुक्रमाल्यानुलेपनाः ।

समाश्लिष्यन्ति यं स्वप्ने तस्य श्रीः स्वप्नतः सुखम् ॥ ३५ ॥

पीताम्बरधरां नारीं पीतामाल्यानुलेपनाम् । अवगूहति यः स्वप्ने कल्याणं तस्य जायते  
सर्वाणि शुक्रानि प्रशंसितानि भस्मास्थिकापांसविघ्नितानि ।

सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तियाजिद्विजदेवधर्मम् ॥ ३७ ॥

दिव्या स्त्री सस्मिता विप्रा रत्नभूषणभूयिता । यस्य मन्दिरमायाति स प्रियंलभतेध्रुवम्

स्वप्ने च ब्राह्मणो देवो ब्राह्मणी देवकन्दका ।

ब्राह्मणो ब्राह्मणी वापी सन्तुष्टा सस्मिता सती ।

फलं ददाति यस्मै च तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ ३६ ॥

यं स्वप्ने ब्राह्मणा नन्द कुर्वन्ति च शुभाशियम् ।

यद्दन्ति भवेत्तस्य तस्यैश्वर्यं भवेद् ध्रुवम् ॥ ४० ॥

परिनुष्टो द्विजप्रेष्ठभायाति यस्य मन्दिरम् । नारायणःशिवो ब्रह्मा प्रविशेत्तु तदाधयम  
सम्पत्तिस्तस्य भवति यशश्च विपुलं शुभम् । पदे पदे सुखं तस्य स मानं गौरवं लभेत  
धकस्मादपि स्वप्ने तु लभते सुरभिं यदि । भूमिलाभो भवेत्तस्य भार्या चापि पतिव्रता  
करेण हृत्वा हस्तौ यं मस्तके स्थापयेद्यदि । राज्यलाभो भवेत्तस्यनिश्चितं च धूर्तौमत्तम

स्वप्ने तु ब्राह्मणस्तुष्टः समाश्लिष्यति यं व्रज ।

तीर्थस्नायी भवेत्सोऽपि निश्चितञ्च धियाग्नितः ॥ ४१ ॥

स्वप्ने ददाति पुण्यञ्च यस्मै पुण्यवतेऽद्विजः ।

जययुक्तो भवेत् सोऽपि यशस्वी च धनी सुखी ॥ ४६ ॥

स्वप्ने द्रष्टा च तीर्थानि सौधरत्नगृहाणि च । जययुक्तश्च धनवान् तीर्थस्नायी भवेन्नर  
स्वप्नेतु पूर्णकलशं कश्चित्कस्मै ददातिच । पुत्रलाभो भवेत्तस्य सम्पत्तिं वा समालभेत  
हस्ते हृत्वा तु कुड्ममादकं वास्तुन्दरी । यस्य मन्दिरमायाति स लक्ष्मीं लभते ध्रुव  
दिव्यास्त्री यद्गृहं गत्वा पुरीषं विसृजेद् व्रज । अर्थलाभो भवेत्तस्य दाद्विजप्रयाति  
यस्यगेहं समायाति ब्राह्मणो भार्ययासह । पार्वत्यासह शम्भुर्षां लक्ष्मीनारायणोऽथ

ब्राह्मणो ब्राह्मणी वापि स्वप्ने यस्मै ददाति च ।

धान्यं पुष्पाञ्जलिं वापि तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ५२ ॥

मुक्ताहारं पुष्पमाल्यं चन्दनञ्च लभेद् व्रज । स्वप्ने ददाति विप्रश्च तस्यश्रीः सर्वतोमुखं  
गोरोचनं पताकां वा हृदिप्रामिभुदण्डकम् ।

सिद्धाप्रञ्च लभेन् स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ५४ ॥

प्राह्मणो प्राह्मणीयापि ददाति यन्ममस्तके । छत्रं वा शुक्रधान्यं वा स च राजामधिप्यति  
 स्वप्ने रथस्थः पुरुषः शुक्रमाह्वयानुलेपनः । तत्रस्थो दधि भुङ्क्ते च पायसं वा नृपो भवेत्  
 स्वप्ने ददाति विप्रश्च प्राह्मणी वा सुधां दधि ।

प्रशस्तपात्रं यस्मै वा सोऽपि राजा भवेत् ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

कुमारी चाष्टपर्षो वा रत्नभूषणभूषिता । यस्य तुष्टा भवेत् स्वप्ने स भवेत्कविपण्डितः  
 ददाति पुस्तकं स्वप्ने यस्मै पुण्यवते च सा ।

स भवेद्विश्वविख्यातः फर्षाङ्गः पण्डितेश्वरः ॥ ५६ ॥

यं पाठयति स्वप्ने वा मातेव च सुतं यथा । सरस्वतीमुतः सोऽपितत्परो नास्ति पण्डितः  
 प्राह्मणः पाठयेद्यच्च पितेव यज्ञपूर्वकम् । ददाति पुस्तकं प्रीत्या स च तत्सदृशो भवेत् ॥  
 प्राप्नोति पुस्तकं स्वप्ने पथि वा यत्र यत्र वा । स पण्डितो यशस्वी च विख्यातश्च महीतले

स्वप्ने यस्मै महामन्त्रं विप्रा विप्रो ददाति चेत् ।

स भवेत् पुरुषः प्राज्ञो धनवान् गुणवान् सुधीः ॥ ६३ ॥

स्वप्ने ददाति मन्त्रं वा प्रतिमां वा शिलामर्यम् ।

यस्मै ददाति विप्रश्च मन्त्रसिद्धिश्च तद्भवेत् ॥ ६४ ॥

विप्रो विप्रसमूहश्च दृष्ट्वा नत्वाऽऽशिषं लभेत् ।

राजेन्द्रः स भवेद्वापि किंचा च कविपण्डितः ॥ ६५ ॥

शुक्रधान्ययुतां भूमियस्मै विप्रः समुत्सृजेत् । स्वप्नेऽपि परिनुष्टश्च स भवेत् पृथिवीपतिः  
 स्वप्ने विप्रो रथे हत्वा नानास्वगं प्रदर्शयेत् । चिरजीवी भवेदायुर्धनवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम्

विप्राय विप्रः सन्तुष्टो यस्मै कन्यां ददाति च । स्वप्ने च स भवेन्नित्यं धनाढ्यो भूपतिः स्वयम्  
 स्वप्ने सरोधरं दृष्ट्वा समुद्रं वा नदीं नदम् । शुक्लार्हि शुक्लशैलश्च दृष्ट्वा धियमवाप्नुयात्

यः पश्यति मृतं स्वप्ने स भवेच्चिरजीवी च ।

अरोगो रोगिणं दुःखी सुखिनश्च सुखी भवेत् ॥ ७० ॥

दिव्या स्त्री यं प्रयदति मम स्वामी भवानिति ।

स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्ति स च राजा भवेद् दृढम् ॥ ७१ ॥

स्वप्ने वा कालिकां दृष्ट्वा लब्ध्वा स्फुरिकमालिकाम् ।

इन्द्रचापं शक्रयज्ञं च प्रतिष्ठां लभेद् ध्रुवम् ॥ ७२ ॥

स्वप्ने घटति यं विप्रो मम दासो भवेति च ।

हरिदास्यं च मद्रक्तिं स लब्ध्वा चैष्णवो भवेत् ॥ ७३ ॥

स्वप्ने विप्रो हरिःशम्भुर्ब्राह्मणी कमलाशिवा । शुक्लाख्रो वेदमाताया जाह्नवीवासरस्वती  
गोपालिकावेपथरा बालिका राधिका मम । बालश्च बालगोपालः स्वप्नविद्विःप्रकाशितः  
एषते कथितो नन्द सुखमः पुण्यहेतुकः । श्रोतुमिच्छसि किंवा त्वं किं भूयःकथयामि  
एति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणतारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
सुखप्रदर्शनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

## अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

### आध्यात्मिकज्ञानवर्णनम्

नन्द उवाच ।

श्रीकृष्ण जगतां नाथ सुखप्रश्न धृतोमया । वेदसारो नीतिसारो लौकिको वैदिकस्तथा  
अधुना श्रोतुमिच्छामि पापं तेषाञ्चदर्शने । यस्मिन् कर्मणिवा घत्सतन्मां कथितुमर्हसि  
घवनं वेदशास्त्रोक्तं तथा वेदानुयायिनः । श्रोतुमिच्छन्तिसन्तप्तालोकास्त्वन्मुञ्जतस्तथा  
वेदानां जनकस्तद्यञ्च वैदिकानां सतामपि । ब्रह्मादीनां सुराणाञ्च मुनीनां जगतामपि ॥

धृतं यत् त्वन्मुखाभ्योजात् प्रमाणं घवनामृतम् ।

तेन देहोऽमिषिको मे घत्स घिच्छेददाह्न ॥ ५ ॥

स्वप्ने यश्चरणाम्भोजं सर्वकामफलप्रदम् । ब्रह्मादयो न पश्यन्ति तद्यद् दृष्टिगोचरम् ॥

अतः परं त्वत्पदाब्जं क्व पश्यामि च पातकी । विष्णुत्रयादी देहो मे निबद्धश्चस्यकर्मणा  
ईदृशञ्च दिनं घत्स कदा मम भविष्यति । त्वया ब्रह्मादिनाथेन संवादी मम पापिनः ॥ ८

कृपां कुरु कृपानाथ मम क्षीणं क्षमस्य च । यदरावुद्भयान् दुर्भेनं यत् कृतञ्च महेश्वर  
 अशेषशरीरगुणयो ध्यायन्ने यत्पदाभ्युजम् । मरस्यती श्रुतिर्गम्य स्तन्यने जडतां वद्रे,  
 इत्येवमुत्तया मन्द्वा निरानन्दः शुचाकुलः । मून्डार्त्ताय रुदित्या च पुत्रविच्छेदविद्वलः  
 सन्प्रस्तोः भगवान् कृष्णो बोधयामास यदातः ।

परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ददां तम्मै जगत्पतिः ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हे नन्द जनकश्रेष्ठ सर्वश्रेष्ठ वज्रेश्वर । चेतनं कुरु कल्याणज्ञानञ्च परमं शृणु ॥ १३ ॥

परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ज्ञानिनाञ्च सुदुर्लभम् ।

वेदशास्त्रे गोपनीयं तुभ्यमेव ददाम्यहम् ॥ १४ ॥

नियोध श्रूयतां नन्द सानन्दः सुसमाहिनः । जन्ममृत्युजराव्याधि यद्भ्यासान्न जायते  
 स्थिरो भव महाराज वज्रनाथ वज्रं वज्र ।

ज्ञानं लब्ध्या सदानन्दः शोकमोहविचर्जितः ॥ १६ ॥

जलबुद्बुदवदत्सर्वं संसारं सवराचरम् । प्रभाते स्यन्तवन्मिथ्या मोहकारणमेव च ॥ १७ ॥

मिथ्याकृत्रिमनिर्माणहेतुञ्च पाञ्चभौतिकः । मायया सत्यबुद्धया च प्रतीतिं जायते नः  
 कामक्रोधलोभमोहैर्वेष्टितः सर्वकर्मसु । मायया मोहितः शश्वत् ज्ञानहीनञ्च दुर्बलः ॥

निद्रातन्द्राश्रुत्पिपासाक्षमाध्रुवादयादिभिः ।

लज्जा शान्तिर्भृतिः पुष्टिस्तुष्टिश्चाभिश्च वेष्टितः ॥ २० ॥

मनोबुद्धिचेतनाभिः प्राणज्ञानात्मभिः सह । संसक्तः सर्वदेवैश्च यथा वृक्षश्च पायसैः ॥

अहमात्मा च सर्वेशः सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः । मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बद्धिरूपा सनातनी

प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधिदेवता ।

मयि स्थिते स्थिताः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥ २३ ॥

अस्माभिश्च विना देहः सद्यः पततिनिश्चितम् । पाञ्चभूतो विलीनश्च पञ्चभूतेषु तत्क्षणम्

नाम संकेतरूपञ्च निष्कलं मोहकारणम् ।

शोकध्याशानिनां तात ज्ञानिनां नास्ति किञ्चन ॥ २५ ॥

निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । लोभादयो ह्यधर्मांशास्तथाहङ्कारपञ्चमः ॥  
ते ब्रह्मविष्णुशुक्रांशागुणाः सत्त्वादयस्त्रयः । ज्ञानात्मकः शिवो ज्योतिरहमात्मा च निर्गुणः

यदा विशामि प्रकृतौ तदाहं सगुणः स्मृतः ।

सगुणा विषया विष्णुब्रह्मशुक्रादयस्तथा ॥ २८ ॥

धर्मोमदंशो विषयी शेरः सूर्यः कलानिधिः । एवं सर्वे मत्कलांशा मुनिमन्वाद्यः सुराः  
सर्वदेहे प्रविष्टोऽहं न लितः सर्वकर्मसु । जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरः ॥ ३० ॥

सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान् कीर्तिमान् पण्डितः कविः ।

वतुर्स्त्रिशद्विभ्रः सिद्धः सर्वकर्मोपहारकः ॥ ३१ ॥

तमुपैमिस्वयं सिद्धं भक्तस्तपन्यन्नवाञ्छति । द्वाविंशतिविधं सिद्धं सिद्धसाधनकारणम्  
मन्मुखाच्छूयतां नन्द सिद्धमन्त्रं गृहाण च ।

अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ॥ ३३ ॥

ईशित्वञ्च पशित्वञ्च तथा कामावसायिता । दूरध्वजमेवेति परकायप्रवेशनम् ॥ ३४ ॥

मनोयापि तमेवेति सर्वज्ञत्वमभीप्सितम् । घट्स्त्वममं जलस्त्वममं चिरजीविन्त्वमेव च  
कायव्यूहञ्च वाक्सिद्धिं मृतानयनमोप्सितम् । सृष्टोनां करणञ्चैव प्राणाकर्षणमेव च

थो सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुमूदनाय स्वादेति ।

अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः ।

सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः ॥ ३७ ॥

अनेन योगिनः सिद्धा मुनीन्द्राश्च सुरास्तथा । शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्सताम् ॥

यदि नारायणक्षेत्रे हविष्पाशरतो जपेत् ।

गत्वा कुरु जपं तात काशिकां मणिकर्णिकाम् ॥ ३९ ॥

शृणु नारायणक्षेत्रं जलाघस्तद्यनुष्ठयम् । अत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन

प्राणञ्चात्र मृते लोके सिद्धिर्भवति तस्य धी । अतं यिनापि मन्त्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः

अजं कुरु पवित्रञ्च अजनाय अजं अज । पापं यदर्शने तात कथयामि निशामय ॥ ४२ ॥

दुःस्वप्नं पापधीजञ्च केपलं विघ्नकारणम् । गोपञ्च माद्वगन्धं वा कृत्स्नं कुटिलं तथा

देवघ्नं पितृमातृघ्नं पापं विश्वासाघातिनम् ।

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं यज्ञानिष्यविचक्षकम् ॥ ४४ ॥

ग्रामपाजिनमेवेति देवविप्रस्वहारिणम् । अदपत्यघातिनं दुष्टं शिवविष्णुचिनिन्दकम् ॥

अर्थाक्षितमनाचारं सन्ध्याहीनं द्विजं तथा । देवलं वृषवाहञ्च शूद्राणां सूपकारकम् ॥ ४५ ॥

शषदाहिनञ्च शूद्राणां शूद्रभ्रातृन्नमोजिनम् ।

अर्थापारं छिन्ननासाञ्च देवग्राहणनिन्दकाम् ॥ ४६ ॥

पतिभक्तिपिहीनाञ्च विष्णुभक्तिविहीनकाम् ।

शूद्राणां विधवाञ्चैव चाण्डालीं ध्यमिचारिणीम् ॥ ४८ ॥

शश्वत्कोपयुतं दुष्टमृणप्रस्तञ्च जारजम् । चौरं मिथ्यावादिनञ्च शरणागतयायिनम् ॥

मांसापहारिणञ्चैव ब्राह्मणं वृषलोपतिम् । ब्राह्मणार्णगामिनं शूद्रं द्विजं धातुर्धुपिकं तथा ॥

श्वगम्यागामिनं दुष्टं चतुर्वर्णनराधमम् ॥ ५० ॥

माता सपत्नीमाता च श्वश्रूश्च भगिनी तथा । गुरुपत्नी पुत्रपत्नी सोदरस्य प्रिया सती ॥

मातृस्वसा पितृस्वसा भागिनेयप्रिया तथा ।

मातुलानी नवोढा च पितृव्यस्त्री रजस्वला ॥ ५२ ॥

पितृमातृप्रसूश्चैव चागम्याष्टादश स्मृताः । कीर्त्तिताः सामवेदे च परिपाल्याः सतां व्रज ॥

एता दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च ब्रह्महत्यांलभेन्नरः ।

तस्माद्देवेन ता दृष्ट्वा सृप्यं दृष्ट्वा हरिस्मरेत् ॥ ५४ ॥

कामतो यदि पश्यन्ति विनिन्द्यास्ते भवन्ति वै ।

तस्मात्सन्तो न पश्यन्ति शापमोता व्रजेश्वर ॥ ५५ ॥

राहुग्रस्तं रविं सोमं न पश्यन्ति विपश्चिनः । जग्माष्टसतरिःकाङ्कुदशमस्थे दिवाकरे ॥

जन्मर्शेनिधनं चापि चतुर्थेऽपिकलानिधी । नष्टचन्द्रो न दृश्यश्च भाद्रे मासि सितासिते ॥

चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रः परित्यक्तो मनीषिभिः ॥ ५७ ॥

चन्द्रस्तारापहरणं कलङ्कमतिदुष्करम् ।

तस्मै ददाति हे नन्द कामतो यदि पश्यति ॥ ५८ ॥

कामतो नरो दृष्ट्वा मन्त्रपूतं जलं पिवेत् । तदा शुद्धो भवेत्सद्यो निष्कलङ्को महीतले  
संहः प्रसेनमघधीत् सिद्धो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मारोदीस्तव होपः स्यमन्तकः  
ति मन्त्रेण पूतञ्च जलं साधु पिवेदु ध्रुवम् । इति ते कथितं सूर्यमपरं कथयामि ते ॥

इति श्रीग्रहवैयत्तमहापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे

आध्यात्मिकज्ञानवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

## एकोनाशीतितमोऽध्यायः

### सूर्यग्रहणाख्यानम्

श्रीनन्द उवाच ।

राहुग्रस्तः कथं सूर्यंश्चन्द्रो घापिजगत्प्रभो । नष्टश्चन्द्रः कथं भाद्रे चतुर्ध्याञ्जासितेसिते  
वेदानांजनकस्थश्च कं वृच्छामि त्वयाविना । वेदपुराणे गोप्यं यन्न जानन्तिविपश्चितः

इति तद्भवनं ध्रुत्वा वेदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अकथ्यं वचनं वेदं निषिद्धं वैदिकैरपि । शमस्य नन्द भद्रं ते प्रथमत्वं कुरुष्व माम् ॥

चिरवस्तं वचनं तात न प्रकाश्यं मनीषिभिः ।

विप्लवः प्रकारो भवति सतां छिद्रस्य दैवतः ॥ ४ ॥

नन्द उवाच ।

कथयस्व जगन्नाथ न भक्तो घञ्जनं कुरु । अदृश्यां चापि देवेशो राहुग्रस्तो च पुण्यदो

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु नन्द प्रथम्यामि कथामेतां पुरातनीम् । यां ध्रुत्वा निष्कलङ्कञ्च तार्पणार्थीमवेधरः  
सर्वपातकिनं दृष्ट्वा यत्पापं लभते नरः । आख्यानप्रयणेनैव मर्त्यामूर्त्नं भविष्यति ॥ ५ ॥

एकदा जमदग्निश्च महाकौतूहलान्वितः । शैलकासहितस्तुष्टो जगाम नर्मदातटम् ॥ ८ ॥



निर्जने नर्मदातीरे विजहार तथा सह । नवोदया च सुन्दर्या नवयीवनयुक्तया ॥ १६ ॥  
 सुवेशया सुस्मितया रत्नभूषणयुक्तया । नतया स्तनभारेण श्रेणीभारेण मन्दया ॥ १७ ॥  
 सुन्दरीणामतुलया श्वेतवम्पकवर्णया । सुपूर्णचन्द्राननया कटाक्षयुतया तथा ॥ १८ ॥  
 अतीवसूक्ष्माम्बरया कामवाणार्त्तया व्रज । पुलकाञ्जिसर्वाङ्गसम्मोहेनातिमूर्च्छया ॥ १९ ॥  
 पुंस्कोकिलयुते रम्ये शब्दिने सुमधुवने । सुगन्धिसायुसंयुक्ते पुष्पतल्पान्विते शुभे ।  
 चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं घस्त्रमाल्यधरं मुनिम् ।

महारासरसाढ्यं तमुवाच भास्करः स्वयम् ॥ १४ ॥

चेदकर्तुः प्रपौत्रस्त्वं ब्रह्मणश्च जगत्पतेः । चतुर्वेदविधेयेषु सुनिष्णातः सदा शुक्तिः ।  
 वेदाङ्गकर्ता धर्मज्ञः श्रेष्ठो वेदविदां घरः । महातपस्वी तेजस्वी ब्रह्मचारी च सुमी ॥  
 युष्मद्विधोक्तं शास्त्रञ्च पठित्यान्यश्च पण्डितः ।

वेदप्रणिहितो धर्मो हाधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ १७ ॥

धर्मं त्यजति धर्मशी हाधर्मेण रतः कथम् । दियामैथुनदोषञ्च पति वेदो विशेषतः ।  
 अहञ्च धर्मिणां साक्षी तेन त्वां कथयामि च ॥ १८ ॥

मूर्खस्य घननं ध्रुव्या तस्याज मैथुनं द्विजः । दृष्ट्वा पुरो विप्ररूपं मूर्खं तेजस्वितं सुप्र  
 उपाय मूर्खं रक्षाभ्यः कोपटञ्जासमन्वितः । रेणुका लज्जितासत्र विधाय दाससीसौ  
 जमदग्निरवाच ।

को भवान् पण्डितप्रमथो न त्यद्व्योऽस्ति पण्डितः ।

धर्मं भृगोर्भगवत शिष्यस्यै करणस्य च ॥ २१ ॥

चतुर्वेदांश्च जानामि धर्माधर्मनिरूपणे । वेदप्रणिहितो धर्मो हाधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ २२ ॥  
 भजानो पुराणः शरवत्तद्विज्ञश्च ध्यकर्मणा । तेजोयनां न दोषाय वक्रैः सर्षभुजो का  
 भाये भयांश्च धर्मश्च साक्षी सर्वे च कर्मणाम् । पण्डिता न शास्त्रज्ञो यत्कथयन्नतः तदा  
 न वैशेषानां शान्तारो यूयमभ्याक्रमेय च । न वासुदेपभक्तानामशुभं विघने क्वचित् ॥

दरे सुदर्शनश्चक्रं शरवद्वसति घेषणवान् ।

नारायणश्च भगवान् स्वयं प्रया च शङ्करः ॥ २६ ॥

शास्ता यमश्च नास्माकं त्वं वै नापि दिवाकर ।  
 राजपुत्रो यथा स्थाने घयं स्वच्छन्दगामिनः ॥ २७ ॥  
 शक्तोऽहं भस्मसात् कर्तुं यमं सर्वसुरांस्तथा ।  
 महेन्द्रप्रभृतीन् सूर्य्य क्षणेनैवाघलीलया ॥ २८ ॥

कस्त्वं धर्मप्रयक्ता मे याहि स्वस्थानमेव च । मम शास्ता च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः  
 अद्य मे निर्जने स्थाने रसमङ्गस्त्वया कृतः । मम शापात्पापदृश्यो राहुप्रस्तो भविष्यसि

द्रुपुं त्वां ये घनाः सर्वे दूरीभूता भवन्ति ते ।  
 त्वामाच्छन्नं करिष्यन्ति घायुना प्रेरितास्तथा ॥ ३१ ॥  
 स्वतेजसा भवान् गर्वाद्धतेजा भविष्यसि ।  
 मेवाच्छन्नः स्वल्पतेजा राहुप्रस्तो भवान् भव ॥ ३२ ॥  
 ब्राह्मणस्य घ्नः श्रुत्वा भगवान् भास्करः स्वयम् ।  
 ततः पुटाङ्गलिर्मूत्था तुष्टाय मुनिपुङ्गवम् ॥ ३३ ॥

भास्कर उवाच ।

अथर्व्याः सर्वधर्मज्ञ धन्या मान्याः पुरस्कृताः ।  
 नारायणश्च भगवान् शम्भुर्ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥ ३४ ॥

गणेशश्चापि शेषश्च धर्मश्चापि सनातनः । स्तुष्यन्ति ब्राह्मणं सर्वे विप्ररूपिजनार्दनम् ॥  
 विप्रदत्तश्च यो ब्रह्मन् घयमस्मन्मुखा द्विजः । हुतःशान्ध द्विमुखाः सुराः सर्वे द्विजो घत्स्व  
 क्षमस्य वैष्णवः शुद्धः स्वधर्मज्ञ सनाचर ।  
 वैष्णवानां कुतः कोपो हृदि येषां जनार्दनः ॥ ३७ ॥  
 अस्माभिः पूजिता विप्रा युष्माभिः पूजिताः सुराः ।  
 परस्परं स्नेहपात्रं चेदमाचरणं द्विज ॥ ३८ ॥

अहमेव त्वया शप्तो मया शप्तो भवान् भव । अन्यथा मां घदन्त्येवं सूर्यं निस्तेजसं जनाः  
 पराभूतः क्षत्रियेण भविष्यसि द्विजेश्वर । मरणं क्षत्रियास्त्वेण भयतश्च भविष्यति ॥  
 सूर्यस्य घवनं श्रुत्वा युक्तोप ब्राह्मणः पुनः । तं शशापातिरक्तास्यः शम्भुना निर्जितोभयान्

उभयोः कलहं क्वात्वा कश्यपेन सह व्रज । आजगाम स्वयं ब्रह्मा विधाता जगतामपि ।  
 आगत्य ब्रह्मा सन्त्रस्तं बोधयामास भास्करम् । मुनिश्रेष्ठश्च धर्मज्ञं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुः ।  
 ब्रह्मोवाच ।

क्षमस्व भास्कर त्वञ्च साक्षान्तारायणो भवान् ।

युष्माकं परिपाल्यश्चाप्यवध्वो ब्राह्मणाः सदा ॥ ४४ ॥

अहं करोमि भवतो विप्रशापान्तमुल्यवणम् । अत्राहमागतस्त्रस्तो भृगुणा प्रेरितस्तनू ।  
 स्फुटोऽहं प्रेरितश्चापि कश्यपेन मरीचिना । शान्तो भय सुगन्धेष्ट साक्षी त्वं सर्वकर्मणाम् ।  
 कुत्रचिद्दिवसे ब्रह्मन् त्वां तत्र कुत्रचित् क्षणम् ।

भविष्यसि घनाच्छन्नः सद्योमुक्तो भविष्यसि ॥ ४७ ॥

न्यूनातिरिक्ते घर्षे च राहुप्रस्तो भविष्यसि ।

सप्रादृश्यश्च केयाञ्छिन् पुण्यदृश्यो हि कस्यचित् ॥ ४८ ॥

अन्यथा सर्वकालेन पुण्यदृश्यो भवान् भुवि ।

त्वां दृष्ट्वा च नमस्तस्य सर्वेनिष्पापिनोजनाः ॥ ४९ ॥

जन्मसत्ताष्टरिफांफ चतुर्थे दशमे तथा । जन्मर्शे निघनं नृणामदृश्यस्त्वं भविष्यसि ।  
 अस्तकाले घनाच्छन्नमभ्याह्न्ये जलेऽपि वा । अर्द्धेऽक्षिते च काले च पापदृश्यो भविष्यसि ।  
 भार्यादुःखनिमित्तेन भार्यया हेतुभूतया । भ्यशुरेण श्यालकेन हतनेजा भविष्यसि ।  
 वन्यया तप तेजश्च संसा सहितुमक्षमा । मालिसुमालियुद्धे च शम्भुना त्वं पराक्रितः ।  
 इत्येवमुक्त्या मूर्धञ्च बोधयामास ब्राह्मणाम् । नम्रं शापपराभूतं लज्जितं कोपितं व्रज ।

हे विप्र म्यागृहं गच्छ गच्छ घ्नस यथासुखम् ।

त्यक्तेजसा क्षणेनैव मग्मीभूतं भवेत्तजगत् ॥ ५५ ॥

मूर्धन्त्यन्परिपाल्यश्च भवान् मूर्धन्त्य निव्यशाः ।

पाम्परं च पूजयस्व साधन्धः पौश्यपौषकः ॥ ५६ ॥

शशियेण कर्तव्यापांजनेन च । भविष्यसि न मन्देष्टः पराभूतो द्विजो गुणः ।

साधकं त्वं कर्तव्यं हि साधितव्यम् । ताराण्यथा स्पर्शितं तप्यं पत्रो भविष्यसि ।

त्रिःसप्त कृत्वा जगतीं निःक्षत्राञ्च करिष्यति ।

मृत्युस्ते यशसो यीजं भविष्यति महीतले ॥ ५९ ॥

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च ययौ गेहं वजेश्वर ।

प्रययौ जमग्निश्च भास्करश्च स्वमन्दिरम् ॥ ६० ॥

इत्येवं कथितं तात स्वाख्यानं पुण्यकारणम् ।

राहुप्रस्तो भास्करश्चाप्यदृश्यो येन हेतुना ॥ ६१ ॥

चतुर्ध्यामुदितश्चन्द्रो भाद्रे मासि सितासिते । अदृश्यो नष्टरूपश्च ध्रुयतां येन हेतुना ॥  
राहुप्रस्तो कलङ्की वा पुरा शप्तो मया पितः । सर्वं त्वां कथयिष्यामि कथामेतांपुरातनीम्  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
भगवन्नन्दसंवादे सूर्यग्रहणाख्यानवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

## अशीतितमोऽध्यायः

### चन्द्रग्रहणाख्यानवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

रा तारा गुरोः पत्नी नवयौवनसंयुता । रत्नभूषणभूषाढ्या घरसूक्ष्मागवरा सती ॥१॥

द्रुधोणी सस्मिता रम्या सुन्दरी सुमनोहरा । अतीवकवरीरम्या मालतीमाल्यभूषिता ॥

सेन्दूरविन्दुना साकं चारुचन्दनविन्दुभिः । कस्तूरीविन्दुनाथश्च मालमध्यस्थलोऽञ्जला

रत्नेन्द्रसारनिर्माणकणमञ्जीररञ्जिता ।

सुषकलोचना श्यामा सुचारुकजलोऽञ्जला ॥ ४ ॥

सुचारुसारमुक्तामदन्तपंक्तिमनोहरा । रत्नकुण्डलयुग्मेन चारुखण्डस्थलोऽञ्जला ॥ ५ ॥

कामिनीष्वतुला बाला गजेन्द्रमन्दगामिनी ।

सुकोमला चन्द्रमुखी कामाधारा च कामुकी ॥ ६ ॥

इयममम्बाकिनीतीरे स्नाता त्रिगन्धाम्बरापरा । श्यायन्तीगुरुरादे सा स्वगृहं गमनोन्मुनी  
दृष्ट्वा तस्याश्च सपाङ्गमनङ्गयाजपीडितः । मात्रे चतुर्थ्यां चन्द्रश्च जहार केतनां व्रत ।  
दानं क्षणेन संप्राप्य शश्वतो रक्षिको बभूव । रथमारोहयामास करे धृत्या च तात्कालम्

कामोन्मत्तः कामिनीं तां समातिष्ठप्य शुशुभ्य च ।

शृङ्गारं कर्तुमुद्यन्तं तमुवाच गुरुप्रिया ॥ १० ॥

तारोवाच ।

त्यज मां त्यज मां चन्द्र सुरेषु कुलपांसन । गुरुपत्नीं ब्राह्मणीञ्च पतिव्रत्यपरायणाम्

गुरुपत्नीसङ्गमने ब्रह्महत्याशतं भवेत् ॥ ११ ॥

गुरुपत्नीं विप्रपत्नीं यदि सा च पतिव्रता । ब्रह्महत्यासहस्रञ्च तस्याः सङ्गमने भवेत् ॥

पुत्रस्त्वं तव माताऽहं धैर्यं कुरु सुरेश्वर ।

धिक् त्वां धृत्या सुरगुरुर्भस्मीभूतं करिष्यति ॥ १२ ॥

पुत्राधिकश्च शिष्यश्च प्रियो मत्स्वामिनो भवान् ।

स्वधर्मं रक्ष पापिष्ठ मामेवं मातरं त्यज ॥ १४ ॥

दास्यामि स्त्रीधर्मं तुभ्यं यदि मां संग्रहियसि ॥ १५ ॥

चिलङ्घ्य तारावचनंताञ्च सम्भोक्तुमुद्यतम् । शशापतारा कोपेन निष्कामा सा पतिव्रता

राहुग्रस्तोद्यनप्रस्तः पापदृश्यो भवान्भय । कलङ्कीयक्ष्मणा प्रस्तोभविष्यसि न संशयः

चन्द्रं शप्त्या तदा तूर्णं कामदेवं शशाप सा ।

तेजस्विना केनचित् त्वं भस्मीभूतो भविष्यसि ॥ १८ ॥

चन्द्रस्तारां गृहीत्वा च कृत्यापि रमणं व्रज ।

कोडे निधाय प्रययौ रुदन्तीं तां शुचान्विताम् ॥ १९ ॥

निर्जने निर्जने रम्ये शैले शैले मनोहरे । सरोनदनदीनाञ्च तीरे तीरे मनोहरे ॥ २० ॥

मधुव्रतपिकोके च पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । रम्यायां पुष्पशय्यायां स रेमे रामया सह ॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो मधुपानरतः सुरः ।

सुखसम्भोगसंसक्तो बुबुधे न दिधानिशम् ॥ २२ ॥

लये मलयारण्ये मलयानिलसंयुते । स्पन्दते चन्दनवने पश्चिमोदधिसन्निधौ ॥ २३ ॥  
 त्रंकूटे घटमूले च तत्र चन्द्रसरोधरे । सुचारुशतपत्राणां पत्रे चन्दनचर्चिते ॥ २४ ॥  
 सुचारुचम्पकोद्याने चम्पकानिलपूजिते । क्षीरोदकाञ्जनभूमौ कौञ्जकाञ्जनपर्वते ॥ २५ ॥  
 त्नशीले मणिमये मणिमन्दिरसुन्दरे । माणिक्यमुक्तासारेण हीरहारेण शोभिते ॥ २६ ॥  
 सुचारुवस्त्रचित्राढ्ये श्वेतचामरदर्पणैः । भूयिते रत्नदीपैश्च देवकीडे प्रियस्थले ॥ २७ ॥  
 आरुणी मदिरां पीत्वा घरुणानोसमन्वितः । घरुणो रमते यत्र तत्र रमे तथा सह ॥ २८ ॥  
 आवने पवनोद्याने पारिजातानिलेन च । सुगन्धिमोहिते रत्नमालातीरे च निर्मले ॥ २९ ॥  
 मृक्षशीले कल्पवृक्षवने घृष्टिप्रियाश्रमे । पपी च कामधेनूनां क्षीरं क्षीरोदधेस्तटे ॥ ३० ॥  
 वह्निगुह्यांशुकपुगं घृष्टिस्तस्मै ददौ मुदा । घरुणो रत्नमालाञ्च रत्नच्छत्रं समीरणः ॥  
 तत्र दृष्ट्वाऽसुरगुरुं बल्लिोहात् समागतम् । प्रणम्य सर्वमुक्त्वा च चन्द्रस्तं शरणं ययौ  
 शुक्रस्तं बोधयामास धचनं नीतियुक्तिः । निरपेक्षो मुनिश्रेष्ठो धेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३३ ॥

शुक्र उवाच ।

शृणु घत्स प्रवक्ष्यामि गुरवे देहि तारकाम् ।

शम्भोश्च गुरुपुत्राय पौत्राय ब्रह्मणश्च वै ॥ ३४ ॥

पूजिताय सुराणाञ्च देया तस्मै निशापते ।

प्रियाय तत्प्रियां दत्त्वा शीघ्रं त्वं शरणं व्रज ॥ ३५ ॥

गुरुपत्नीं मातृतुल्यां त्यज मद्भवनाद्विधौ । क्रुद्ध पापक्षयं पापनिवृत्तिस्तु महाफला ॥

सतीनां गुरुपत्नीनां प्रहणे च बलेन च । ब्रह्मदत्यासदस्त्राणां पातकं लभते जनः ॥ ३७ ॥

कुम्भीपाके च पच्यन्ते पापद्वै ब्रह्मणः शतम् । साम्यं नारायणस्थाने कृणुष्वथतयोः सुर

कस्त्यं घत्स हरैः स्थाने कर्मभोगोऽस्ति ब्रह्मणः ।

नारायणाश्रिताः सर्वे जीविनस्त्रिभिधा भवे ॥ ३६ ॥

इति धार्मब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंघादे धार्महृणजन्मखण्डे

मगधनन्दसंघादे ताराहरणे चार्शातितमोऽध्यायः ।

## एकाशीतितमोऽध्यायः

ताराऽऽनयनार्थं शुक्रसमीपे देवानां गमनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अन्नन्तरे शुक्रः सुरधेर्जी ददर्श सः । अकाशमार्गादायान्तीं रणशस्त्रास्त्रधारिणीं

पताकानां त्रिकोटिश्च शतकोटिर्महारथम् ।

शतकोटिर्गजेन्द्राणां रथानां तच्चतुर्गुणम् ॥ २ ॥

तां तच्छतगुणं समूहञ्च सुदारुणम् । पदातीनां समूहञ्च तुरगेभ्यश्च पद्मगुणम् ।

दुन्दुभीषाद्यमाण्डानां पञ्चलक्षं तथैव च ।

पट्टानां त्रिलक्षञ्च डिण्डिमानां त्रिलक्षकम् ॥ ३ ॥

त्रे महेन्द्रञ्च श्वेताश्वे घर्ममेव च । कुबेरं घरुणं घर्ङ्गि रथस्थं पवनं तथा ॥ ५ ॥

स्यं यमञ्चैव स्यन्दनस्थं दिषाकरम् । ईशानञ्च गजेन्द्रस्थमनन्तं नागपाहनम् ॥

आदित्यांश्च यसून् रुद्रान् सिद्धगन्धर्वकिन्नरान् ।

जीधन्मुक्तमुनीनाञ्च समूहं सूर्यवर्चसम् ॥ ७ ॥

तान् द्रुप्या निर्मयः शुक्रः समाभ्यास्य निशाकरम् ।

सुराणां द्विगुणं सैव्यमाजुहाय प्रजेश्वर ॥ ८ ॥

रत्नमालानदीतारे हुताशनप्रियाश्रमे । तत्र तस्यो दैत्यसैव्यं पुण्यशीरोदधेस्तटे ॥ ९ ॥

पतस्मिन्नन्तरे शुक्रः समीपे सरसस्तटे । पुण्याश्रमेऽक्षयपटे सुरसैव्यात् समागतम् ॥

ददर्श घृषमन्थञ्च शङ्करं सार्यशङ्करम् । त्रिशूलपट्टिशापरं व्याघ्रचर्माश्वरं वरम् ॥ ११ ॥

तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुप्रविष्टम् । सार्यसङ्करप्रदातारं सार्यञ्च सार्यकारणम् ॥ १२ ॥

सर्वेश्वरं सार्यपूयं सार्यरूपं सनातनम् । शरणागतदिनार्संपत्त्रिणापरायणम् ॥ १३ ॥

सस्मिन्ने परमात्मानं उच्यन्तं ब्रह्मत्रेजसा ।

सन्प्रस्तः सहस्रोऽधाय प्रणनाम पदाभ्युक्ते ॥ १४ ॥

श्रद्धौ शुभाशिवं तस्मै सुप्रसन्नः परात्परः । रत्नसिंहासने तच्च घासयामास सादरम् ॥

अथ तत्रान्तरे विप्र पुरतस्तं ददर्श सः । शान्तं स्वयं विभ्रातारं रत्नस्यन्दनसुन्दरम् ॥

बह्विशुद्धांशुकाधानं रत्नमाढाविभूषितम् । प्रसन्नं सुस्मितं शुद्धं जगतामीश्वरं परम् ॥

कर्मणां फलदातारं तपोरूपं तपस्विनाम् ।

वेदानां जनकं वेदप्रसूकान्तं मनोहरम् ॥ १८ ॥

पुटाञ्जलिस्तदा प्रस्तः प्रणताम सुरेश्वरम् ।

रत्नसिंहासने रभ्ये घासयामास भक्तिः ॥ १९ ॥

पूजां चकार भक्त्या च तयोश्चरणपङ्कजे । नोचितं कुरालप्रथं तयोः कल्याणमेव च ॥

विधाता जगतां शुक्रमाचार्यं पुरतः स्थितम् ।

सुनीतिं कथयामास यत्नतः शम्भुसम्मतः ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु शुक्र प्रयक्ष्यामि दुर्नोति शशिनः सुत । लज्जाकरं त्रिजगतां कर्म वेदबहिष्कृतम् ॥

स्नात्वा गृहोन्मुखीं तारां गुरुपत्नीं पतिव्रताम् ।

गृहीत्वा शरणापन्नस्त्वयि पापञ्च साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

प्रस्तुतं देवसैन्यञ्च पश्य घनस रणोद्यतम् ।

अहं शम्भुस्त्वत्सर्मायं तदर्थञ्च समागतां ॥ २४ ॥

शम्भुश्वाच ।

चन्द्रमानय हे विप्र यथात्मशिवमिच्छसि । संहरिष्ये शिरस्तस्य त्रिशूलेन च पापिनः ॥

अन्यथा संहरिष्यामि सर्वदेवान् क्षणेन च ।

मयि रुष्टे रक्षिता को दैत्यानाञ्च भवेद् द्विज ॥ २६ ॥

सद्यः पाशुपतेनैव पाप्यान्ध्रेण च साम्प्रतम् । सुराणां त्रिपुवर्गञ्च हरिष्यामि च लीलया

दुर्वाससो मदंशस्य गुरुस्तस्याङ्गिरा मुनिः । परस्परञ्च सम्बन्धाद् गुरुपुत्रो गुरुर्मम ॥

गृहस्पतिश्च तेजस्यो तं मस्मोक्तुमीश्वरः । न चकार कृपालुश्चेन् प्रियशिष्येण हेतुना

उत्तथ्यपदां दृष्ट्या स पुरा रमे स्वकामतः । तत्पतेः शापतोऽस्यैव पंचमस्ता प्रियासतो



नी मद्गुणमुप्रम्य देदि तागं मनोहराम् । मण्डेरिणञ्च चन्द्रञ्च भ्रान्तुमाख्यापहारिणम् ।  
 रणागतदीनातं न हि रक्षेद्यदीश्वरः । पच्यते निरये तावथापदिन्द्राद्यनुर्देश ॥ ३२ ।  
 अत्र नास्ति विनारो मे पापिष्ठे शरणागते । पारी यं शरणं याति न पारीच न संशय  
 दितं विप्रसार्दूल पापिनं मानृगामिनम् । पदिष्ट्य स्याप्रमाथ तारासाञ्चीसमन्वित्र

शुक्र उवाच ।

सुराणामसुराणाञ्च सर्वेषां जगतामपि । रथमेवशास्ता भगवान् क्रोधाशान्ति सुरेऽमुं

एतया सुराणां साहाय्यं कथं दैत्यान् हनिष्यसि ।

संहतुः सर्वजगतां दैत्यैर्वि कश्च पौरुषम् ॥ ३६ ॥

त्वं उयोतिः परमं ब्रह्म सगुणो निर्गुणः स्वयम् ।

गुणभेदानमूर्तिभेदो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ ३७ ॥

पल्लिद्वारे गदापाणिः स्वयमेव भवान् प्रभो । स्वयं प्रदत्ता शुक्राय तस्मै शौरपि लीलया

क्षमस्व भगवन् शम्भो हर क्रोधञ्च संहर । कि पौरुषञ्च भवतो ब्राह्मणस्यापि हिसया

अहं जीयन् शरीरेण न दास्यामि निशाकरम् । शरणागतदीनातं लज्जितं पापसंयुतम् ॥

अहञ्च त्वत्पदाम्भोजे शरणं यामि शङ्कर । यद्योचितं कुरु विभो जगत्सर्वं तयैव च ॥

शुक्रस्य घबनंश्रुत्वा प्रसन्नो भगवान् शिवः । इत्युत्थाञ्च निशानाथं समानय शुभंभवेन

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयित्वा कविं विभुः । समानीय निशानाथं तारकासहितं व्रज

शम्भोश्च चरणाम्भोजे चकारच समर्पणम् । शम्भुस्तं प्रीतियुक्तञ्च वासयामास वक्षसि

दत्त्वा तस्मै पादरेणुं निष्पापञ्च चकार सः । दत्त्वा तन्मस्तके हस्तं कृपालुरभयं ददौ ॥

क्षीरोदे स्नापयित्वा च प्रायश्चित्तेन शङ्करः । चकारचन्द्रं निष्पापं ब्रह्मणा सहितःशुचिम  
 योगेन चन्द्रं योगीन्द्रो द्विखण्डं तं चकार सः । ररक्षार्धं ललाटेच सोऽप्यदं ब्रह्मण पुरः  
 पयमेव महोदेवो यभूव चन्द्रशेखरः । मृगाङ्को लज्जितस्तत्र कलङ्की देवसंसदि ॥ ४८ ॥  
 लज्जया च स्वयोगेन देहत्यागं चकार सः । तच्छरीरञ्च क्षीरोदे ब्रह्मणा च समर्पितम्  
 हरोदात्रिंश च रूपया शुचा क्षीरोदधेस्तटे ॥ ४९ ॥  
 जलं तस्य पपात च जले व्रज । तस्मादुपभूव चन्द्रश्च निष्पापो देवसंसदि ॥५०

ब्रह्मा च भगवान् शम्भुरभिवेकं चकार तम् । उवाच तं महादेवो निर्मयं देवसंसदि ॥  
महादेव उवाच ।

स्वस्थानं गच्छ पुत्र त्वं कुरुष्व विषयं मुदा ।

पश्चात्तस्याश्च शापेन यश्मग्रस्तो भविष्यसि ॥ ५२ ॥

व्यथं पतिव्रताशापं फर्तुमीशश्च को भुवि । मदाशिषा यश्मणश्च प्रतीकारो भविष्यति  
यस्माद्वाद्भवतुर्ध्यान्तु गुरुपत्नीक्षतिःकृता । तस्मात्तस्मिन् दिने घत्स पापदृश्यो युगे युगे  
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ५५ ॥  
देहस्थानेन हे घत्स कर्मभोगो न तश्यति । प्रायश्चित्तान्न सन्देहो ह्यस्तमेव भविष्यति  
तारापहरणाद्घत्स कलङ्कश्चन्द्रमण्डले । मृगाकृतिविलग्नश्च भविष्यति युगे युगे ॥ ५७ ॥  
शृणु वाक्पमिद्वागच्छ तारके च पतिव्रते । सत्यंब्रूहि कस्य गर्भं त्यक्त्वा शुद्धा भव प्रिये  
अकामतो बलात् साध्वी न स्त्री जारेण दुष्यति ।

कामतो नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ ५६ ॥

उवाच तारा ब्रह्माणं गर्भं चन्द्रस्य सस्मितम् । जहसुर्देवताः सर्वाः शम्भुश्च मुनिसङ्घकाः  
ददौ ताराञ्च गुरवे लज्जिताय प्रजेश्वरः । बृहस्पतिर्ययौ गेहं गृहीत्वा च पतिव्रताम् ॥  
तया प्रसूतं पुत्रञ्च सुन्दरं कनकप्रभम् । गृहीत्वा प्रययौ चन्द्रो नमस्कृत्य चिधिं शिवम्  
ययुर्देवाश्च मुनयः शम्भुश्च कमलोद्भवः । प्रययौ स्वगृहं शुको दैत्ययुक्तो मुदान्वितः ॥

एतत्ते कथितं नन्द ह्याख्यानं पुण्यदं शुभम् ।

एतच्छ्रुत्वा तु निष्पापो निष्कलङ्की नरो भवेत् ॥ ६४ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वसम्पत्करं परम् । शोकापनोदनं हर्षकरं सर्वत्र मङ्गलम् ॥ ६५ ॥  
त्यज शोकं सदा नन्द गृहं मज प्रजेश्वर । ब्रूहि सर्वं यशोदाञ्च मत्प्रसूं गोपिकागणाम्  
बोधयिष्यसि सर्वां तां स्त्रीजालिं शोकसंयुताम् । मदीयज्ञानदत्तेन हर्षयुक्तः सदा भव ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

ताराहर्षणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

## द्वयशीतितमोऽध्यायः

दुःस्वप्नवर्णनम् ।

नन्द उवाच ।

श्रुतं सर्वं महाभाग दुःस्वप्नं कथय प्रभो ।

उवाच तं वै भगवान् श्रूयतामिति तद्वचः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति । नर्तनं गीतमिष्टञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥  
दन्ता यस्य विपीड्यन्ते विचरन्तश्च पश्यति । धनहानिर्मवेत्तस्य पीडा चापि शरीरजा  
धम्यद्भित्तस्तु तैलेन यो गच्छेद्दक्षिणां दिशम् । स्वरोष्मद्विपाकृदो मृत्युस्तस्य न संशयः  
स्वप्ने कर्णे जपापुष्पमशोकं करवीरफम् । विपत्तिस्तस्य तैलञ्च लघणं यदि पश्यति ॥

नग्नां कृष्णां छिन्ननासां शूद्रस्य विधवां तथा ।

कपर्दकं तालफलं दृष्ट्वा शोकमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥

स्वप्ने रुष्टं ब्राह्मणञ्च ब्राह्मणीं कोपसंयुताम् ।

विपत्तिश्च मवेत्तस्य लक्ष्मीर्याति गुहाद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

यत्पुष्पं रक्तपुष्पं पलाशञ्च सुपुष्पितम् । कार्पासं शुक्रयत्नञ्च दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्

गायन्तीञ्च हसन्तीञ्च कृष्णाश्वरधरां स्त्रियम् ।

दृष्ट्वा कृष्णाञ्च विधवां नरो मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥

देवता यत्र नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च । भास्फोटयन्ति धापन्ति तस्य देही मर्त्यिष्यति

घानं मूत्रं पुरीषञ्च घैर्यं रौप्यं सुवर्णकम् । प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं व्रामारिकम् ॥

कृष्णाश्वरधरां नारीं कृष्णमाल्यानुलेपनाम् । उपगृह्णति यः स्वप्ने तस्य मृत्युमपिष्यति

मृगवत्सञ्च मुण्डञ्च मृगस्य च नरस्य च ।

प्राप्नोष्वश्विमालाञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥ १३ ॥

रथं खरोप्लसंयुक्तमेकाकी योऽधिरोहयेत् । तत्रस्योऽपि च जागर्ति मृत्युरेव न संशयः  
 बभ्यङ्गितस्तु हविषा क्षीरेण मधुनापि च । तत्रेणापि गुड्नेव पीडा तस्य विनिश्चितम्  
 रक्ताम्बरधरां नारीं रक्तमालयानुलेपनाम् ।

उपगृहति यः स्वप्ने तस्य व्याधिर्विनिश्चितम् ॥ १६ ॥

पतिताश्रवकेशाश्च निर्वाणाङ्गारमेव च । मस्मपूर्णाञ्जितां हृष्ट्या लभते मृत्युमेव च ॥  
 श्मशानं शुष्ककाष्ठञ्च तृणानि लौहमेव च ।

शमीञ्च किञ्चित्कृष्णाश्वं हृष्ट्या दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥ १८ ॥

पादुकां फलकं रक्तं पुष्पमाल्यं भयानकम् । मायं मसूरं मुद्गं वा हृष्ट्यासद्योवर्णं लभेत्  
 कटकं सट्टं काकं भल्लूकं धानरं गवम् । पूयं गात्रमलं स्वप्ने केवलं व्याधिकारणम्  
 भग्नमाण्डं क्षतं शूद्रं गलत्कुष्ठञ्च रोगिणम् । रक्ताम्बरञ्च जटिलं शूकरं महिषं खरम् ॥  
 बन्धकारं महाघोरमृतं जीवं भयङ्करम् ।

हृष्ट्या स्वप्ने योनिलिङ्गं विपत्तिं लभते ध्रुवम् ॥ २२ ॥

कुवेशरूपं म्लेच्छञ्च यमदृतं भयङ्करम् । पाशाहस्तं पाशाशस्त्रं हृष्ट्या मृत्युं लभेन्नरः ॥  
 ब्राह्मणो ब्राह्मणी बाला बालकी वा सुतं सुता ।

विलापं कुरुते कोपाद् हृष्ट्या दुःखमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

कृष्णं पुष्पञ्च तमाल्यं सैन्यं शस्त्रास्त्रधारिणम् ।

म्लेच्छाञ्च विहृताकारां हृष्ट्या मृत्युं लभेद् ध्रुवम् ॥ २५ ॥

घातञ्च नर्तनं गीतं गायनं रक्तवाससम् । मृदङ्गं वाद्यमानं तं हृष्ट्या दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥  
 त्यक्तप्राणं मृतं हृष्ट्या मृत्युञ्च लभते ध्रुवम् ।

मत्स्यादि धारयेद्यो हि तदुन्नानुमरणं ध्रुवम् ॥ २७ ॥

छिन्नं घापि कबन्धं वा विहृतं मुक्तकेशिनम् । क्षिप्रं नृत्यञ्च कुर्षन्तं हृष्ट्या मृत्युं लभेन्नरः  
 मृतो घापि मृता घापि कृष्णम्लेच्छा भयानका ।

उपगृहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युर्विनिश्चितम् ॥ २९ ॥

वेपथुं दन्ताद्य मप्राद्य केशाभ्यापि पतन्ति हि । धनहानिर्नवेत्तस्य पीडा वा तच्छरीरजा ॥

## अशीतितमोऽध्यायः

### विप्रादीनां धर्मकथनम्

नन्द उवाच ।

वेदानां कारणं त्वञ्च ब्रह्मादीनाञ्च पुत्रक । सर्वं कथय भद्रं ते कं पृच्छामि त्वया विना  
विप्राणां यो हि धर्मश्च क्षत्रविद्भृशद्रकर्मणाम् ।  
सन्यासिनाञ्च यो धर्मो यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ २ ॥

विप्राणां विधवास्त्रीणां वैष्णवानांसतामपि । पतिव्रतानां स्त्रीणाञ्च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि  
गृहिणां गृहिणीनाञ्च शिष्याणाञ्च विशेषतः ।  
पुत्राणाञ्चापि कन्यानां पितरं मातरं प्रति ॥ ४ ॥  
स्त्रीजातिश्च कतिविधा भक्तः कतिविधः प्रभो ।  
ब्रह्माण्डञ्च कतिविधं धद नश्च किमात्मकम् ।  
किं नित्यं कृत्रिमं किञ्च ब्रूहि सर्वं क्रमेण च ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सन्ध्यापूतः सदा विप्रः कुरुते मम सेवनम् । नित्यं भुंक्ते मत्प्रसादमनियेद्य कदाचन  
अन्नचिष्टा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनियेदितम् । विष्णुप्रसादभोजी च जीवन्मुक्तश्च ब्राह्म  
नित्यं तपस्थानिरतः शुचिः शान्तश्च शास्त्रवित् ।  
व्रततीर्थाश्रितो धर्मो नानाध्यापनसंयुतः ॥ ८ ॥  
विष्णुमन्त्रं गृहीत्वा च कृत्वा च गुरुसेवनम् ।  
गृहीत्वा तदनुज्ञाञ्च पश्चाद्भवति संगृही ॥ ९ ॥

नित्यपूजानां गुरुत्वे च नियेदयेत् । गुरूणां पोषणं नित्यं कर्तव्यं नात्र संश  
धन्यानां पिता चैव महान् गुरुः । पितुः शतगुणैर्माता मातुः शतगुणैः पु  
सुराणाञ्च चतुर्गुणः । नारायणश्च भगवान् गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वर

उद्देशे दीयते तस्मै सुरायेति धृतौ धृतम् ।

प्रत्यक्षमोक्ता स्वगुरुः स्वयं देही जनार्दनः ॥ १३ ॥

गुरुर्वद्वा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्वे स्वयं शिवः । गुरौ च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा ॥१४॥

रौ तुष्टे हरिस्तुष्टो यस्मिस्तुष्टे च देवताः । गुरुः पुत्रसमं स्नेहं शिष्येषु न करिष्यति

लभते ब्रह्महत्याञ्च भुंक्ते कृत्वा च नाशियम् ॥ १४ ॥

यधर्मनिरतोविप्रो ब्राह्मणश्चसदा शुचिः । विष्णुसेधोसदा विप्रस्तदन्योऽप्यशुचिःसदा

ग्न्यो वृषधाहश्च शूद्राणां सूपकारकः । ब्राह्मणो देवलयचैव सन्ध्याहीनश्च दुर्धलः ॥

ब्राह्मणश्च दिवाशायी शूद्रभ्राह्मणभोजकः ।

शूद्राणां शयदाही च ते च शूद्रसमा द्विजाः ॥ १८ ॥

शालग्राममहामन्त्रं कृत्वा पूजां विधानतः । भुंक्ते नैवेद्यशेषश्च तत्पादोदकमेव च ॥१६॥

रैःपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नानी भवेन्नरः । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति

ऽस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातीर्थेषोऽभियेकं समाचरेत् ॥

गङ्गाजलादशगुणं शालग्रामजलं व्रज ।

नित्यं भुंक्ते च यो विप्रो जीवन्मुक्तः सुरैः समः ॥ २२ ॥

विप्राणां नित्यकृत्यञ्च विष्णोर्नैवेद्यभोजनम् । यत्नेन पूजनं तस्य तत्पादोदकसेवनम् ॥

नित्यं त्रिसन्ध्यं कुर्वते भक्त्या च मम पूजनम् ।

एकादश्यां न भुंक्ते च मम चै जन्मवासरे ॥ २४ ॥

शिघरात्री च हे तात श्रीरामनवमीदिने ।

न च भुंक्ते व्रती यो हि जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २५ ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तस्य पादे नतानि च ।

विप्रपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नानी भवेन्नरः ॥ २६ ॥

विप्रपादोदकङ्गिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥

विष्णुप्रसादभोजी च पवित्रं कुर्वते महीम् ।

तीर्थानि च नरांश्चैव जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २८ ॥

सर्वभूतानि च ज्ञानो यथाज्ञानं कर्तुं शक्नुते । तदेतन्मन्त्रोपसंगमस्य त्रिभिर्ननु  
 यद्विद्यायुगलम् । पूजनेनैव भास्करोपसंगः । यमपूजं यमं चैव न न ज्ञाने न परमं  
 येदुपदे मोक्षने मोक्षिणोऽपि यार्थोऽपि दक्षिणा ननु । न भवेत्तस्य ज्ञानो हि विद्यया दक्षिणेन

विष्णुमन्त्रीयामरुध न तस्य वैश्वानरो द्विजः ।

प्राज्ञानो वैश्वानरः प्राज्ञो न हि तस्मान्मन्त्रः पुमान् ॥ ३२ ॥

येदोक्तो वा पुराणोक्तमन्त्रोक्तो वा मनुः शुचिः ।

विचारतो गृहीत्या न शेषः शान्तिश्च वैश्वानरः ॥ ३३ ॥

गुरुरवश्याद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्तुं विद्ययायम् । न वैश्वानं महापूजं प्रयत्नितं मन्त्रि-  
 मन्त्रप्रदणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । मित्या प्रद्वान्मन्त्रमिच्छेत् याम्कथ्येऽहोः पर-  
 पूर्यान् सन्न परान् सन्न मन मातामहादिकान् ।

सोदरानुदरेद्वान्तमन्त्रं तन्मन्त्रं तथा ॥ ३४ ॥

जपेन्नाशयणं क्षेत्रे पुरश्चरणपूर्वकम् । पुरश्चरणं महत्प्रज्ञं लीलायात्मानमुदरेत् ॥ ३५ ॥  
 मन्त्रप्रदणमात्रेण कल्पितेऽपि मन्त्रेश्वर । पुरश्चरणसावकान् पुरश्चरणं शनं शनम् ॥ ३६ ॥

पेकान्तिको वैष्णवश्च पुंसां लक्षणं समुदरेत् ।

क्रिया विष्णुपदे यस्य सद्रूपवाच्यं बहिष्कृताः ॥ ३६ ॥

द्विजाः सुरा मम प्राणा भक्तः प्राणान् परः प्रियः ।

विश्वेषु प्रियपात्रेषु न मे भक्तान् परः प्रियः ॥ ४० ॥

तेजीयांसं गुरुं दृष्ट्वा सर्वत्र रक्षितुं क्षमम् । करोति मन्त्रप्रदणं तस्माद् भूयाद्विद्वान्-  
 घयोहीनाज्ञानहीनाद्विद्याहीनात्तथैव च । जातिहीनाद् गुरोर्मन्त्रं गृह्णीयान्न कदाचन ॥

शास्त्रार्थज्ञाक्षतं मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन ।

सूर्वादाश्रमहीनाश्च पितुः सन्यासिनस्तथा ॥ ४३ ॥

रोगिणो वंशहीनाश्च भार्याहीनात्तथैव च । मन्त्रक्षितात्तथा मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन  
 विष्णुमन्त्रं न गृह्णीयाद्विष्णुमक्तिविहीनतः ।

न च शैवान्न शाक्ताश्च गृह्णीयाद्वैष्णवात् द्विजात् ॥ ४५ ॥

घयोहीनात्तपाल्यापुर्जानहीनादपण्डितः ।

विद्याहीनाद्भवेन्मूढो जातिहीनात् क्षयो भवेत् ॥ ४६ ॥

मूर्खान् मूर्खो भवेत् सद्यो दुःखी स्वाधर्महीनतः ।

यशोहानिः पितृश्चैव मृत्युः सन्व्यासिनस्तथा ॥ ४७ ॥

रोगिणोऽव्याधियुक्तश्चनिर्यशोऽंशहीनतः । भार्याहीनोऽपिर्त्वाहीनान्मन्त्रक्षित्तात्तत्समः

विष्णुभक्तिविहीनाश्च भक्तिहीनोभवेन्नरः । शैयाच्छाकाद् गृहीत्या च हरीं भक्तिर्नयद्भते

ब्राह्मणो वैष्णवः शुद्धः पकान्तं-दातुमीश्वरः । पकाश्रं हरये दातुमशमश्चेतरो जनः ॥

शोकरोश्चरणाद्भोमाच्छालप्रामशिलार्चनात् ।

मद्यं पकान्तदाताश्च विप्रादन्यो व्रजेदपः ॥ ५१ ॥

उदासीनाद्दुराचारान्न गृह्णीयान्मनु' सुधोः ।

देवाद्यदि च गृह्णीयाद्धनहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

ब्राह्मणानां सदा भक्ष्यं हविष्यञ्च निरामिषम् ।

भामिषस्य परित्यागात् सूर्य्यवत्तेजसा भवेत् ॥ ५३ ॥

नित्यं नूतनभाण्डेन कर्तव्यः पाक एव च । अथवा पक्षपर्यन्तं ततस्त्वयाज्यं मनीषिभिः

स्थानंस्तुसंस्कृतं कृत्वापाकं निवृत्त्यपूजकः । स्थानेपरिष्कृते विप्रोदत्त्वा महाञ्चभक्तितः

तदा निवेद्य भुङ्क्ते च दत्त्वा विप्राय सादरम् ।

अनिवेद्य च भुक्त्या च सुरापीति भवेद् द्विजः ॥ ५६ ॥

चन्द्रसूर्योपरानो वै षाशोचे मृतजातयोः । स्पृष्टेनाशुचिना सद्यः पाकभाण्डं परित्यजेत्

ब्रह्मद्रव्यं तद्यान्नञ्च धृत्वा धीते च घासती । पादप्रक्षालनं कृत्वा भुङ्क्ते स्थानेपरिष्कृते

द्विर्भोजनं न कर्तव्यं स्थिते सूर्य्ये द्विजातिभिः ।

निष्फलं तद्भवेत् कर्म भुक्त्या च नरकं व्रजेत् ॥ ५९ ॥

यात्रो युद्धं नदीतीरं पुनर्भोजनमैधुने । वर्जयेत् ध्याद्ददियसे हविष्याशो च-संयमी ॥६०॥

द्विजाय विष्णुभक्ताय पात्रं दद्याद् बुधाय च । वृषलीपतये चैव न दद्याच्छूद्रयाजिने ॥

सन्ध्याहीनाय दुष्टाय वृषवाहाय यन्नतः । शुक्रचिकयिणे चैव देवलाय कदाचन ॥६२॥



प्रदत्तं पात्रमेतेभ्यो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् । पात्रं भुक्त्वा तद्विचसे मैथुनाभरकं व्रजेत् ।

सर्वेभ्यः पातकी तात कन्याधिक्यकारकः ।

मृत्यं गृहीत्वा यो दद्यात्स महारौरवं व्रजेत् ॥ ६४ ॥

कन्यालोमप्रमाणान्तं वर्षञ्च पितुभिः सह । कुम्भीपाके पच्यते च पुत्रश्चापि पुरोहितः ।  
तस्मात्कन्यां सुपुत्राय प्रदद्याच्च विचक्षणः । शूद्रवद् ब्राह्मणेभ्यश्च नैव तद्वंशजाय च ।

विप्रवैष्णवयोर्धर्मः कथितश्च व्रजेश्वर । यदुक्तञ्च पुराणैश्च चतुर्भिः श्रुतिभिस्तथा ।

द्विजार्चनं क्षत्रियाणां तथा नारायणार्चनम् ।

राज्यानां पालनञ्चैव रणे निर्भयता तथा ॥ ६८ ॥

नित्यं दानं ब्राह्मणेभ्यः शरणागतरक्षणम् । पुत्रतुल्यं प्रजानाञ्च दुःखिनां परिपालनम् ।  
शस्त्रास्त्राणाञ्च नैपुण्यं रणे सौन्दर्यमेव च । तपश्च धर्मकृत्यञ्च यत्नतः कुरुते सदा ।

पण्डितं नीतिशास्त्रज्ञं नित्यञ्च परिपालयेत् ।

नियोजयेत्सभामध्ये नित्यं सद्भिश्च संयुते ॥ ७१ ॥

हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गञ्च चतुष्टयम् । पालयेद्यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान् ।  
रणे निमन्त्रितश्चैव दानेन विमुखो भवेत् ।

रणे वा यस्त्यजेत् प्राणान् तस्य स्वर्गो यशस्करः ॥ ७३ ॥

वेश्यानामपि घाणिज्यर्माश्वरः कृपिपालने । विप्रदेशार्चनं दानं तपस्या द्रतसेवनम् ।  
विप्राणामर्चनं नित्यं शूद्रधर्मो विधीयते । तत्कुर्यात्तद्धनप्राप्तिं शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥

शूद्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो विप्रधनापदः ॥

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी मातृगामी च पातकी ।

कुम्भीपाके पच्यते स यावद्दे प्रहणः शतम् ॥ ७७ ॥

कुम्भीपाके तप्तनेत्रे भुक्तः सर्पैरहर्निशम् । शय्यञ्च विरताकारं कुरुते यमताडनात् ॥

तत्रश्चाण्डालयोनिः स्यात् सप्तजन्मसु पातकी ।

सप्तजन्मसु सर्पश्च जलोकाः सप्तजन्मसु ॥ ७९ ॥

विष्टायां जायते कृमिः । गुंध्यलीनां योनिः कृमिः स भवेत् सप्तजन्मसु

गवां द्रवणकृमिः स्याच्च पातकी सप्तजनमसु । योनीं योनीं ध्रमत्येव न पुनर्जायते नरः  
सन्न्यासिनाञ्च यो धर्मो मनुष्याच्च निशामय । दण्डग्रहणमात्रेण नरोनारायणो भवेत्  
पूर्वकर्माणि दग्ध्वा च परकर्मनिवृत्तनम् । कुर्वते चिन्तयेन्माञ्च ह्यायाति मम मन्दिरम्

सन्न्यासिनः पदः स्पर्शात् सद्यःपूता वसुन्धरा ।

सद्यः पुनन्ति तीर्थानि वैष्णवस्य यथा व्रज ॥ ८४ ॥

सन्न्यासिनश्च स्पर्शेन निष्पापो जायते नरः ।

सन्न्यासिनं भोजयित्वा चाप्यमेधफलं लभेत् ॥ ८५ ॥

नत्वा च कामतो दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत् ।

फलं सन्न्यासिनां तुल्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८६ ॥

सन्न्यासीयाति सायाह्ने क्षुधितोगृहिणांगृहम् । सन्नं वा कन्नं वा तदन्तर्नैव वर्जयेत्  
न याचते च मिष्टान्नं न कुर्व्यात्कोपमेध च । न धनग्रहणं कुर्व्यादेकवासा निरीहितः ॥  
शीतग्रीष्मे समानश्च लोभमोहपिषर्जितः । तत्र स्थितवैकरात्रञ्च प्रातरन्यत्स्थलं व्रजेत् ॥

यानस्यारोहणं कृत्वा गृहीत्वा गृहिणो धनम् ।

गृहं कृत्वा गृही रम्यात् स्वधर्मात् पतितो भवेत् ॥ ९० ॥

कृत्वा च हृषिद्याजिज्यं कुर्वति कुर्वते च यः ।

स सन्न्यासी हताचारः स्वधर्मात्पतितो भवेत् ॥ ९१ ॥

अशुभञ्च शुभं पापि स्वकर्म कुर्वते यदि । बहिष्कृतः स्वधर्मो धाप्युपहास्यश्च वै भवेत्  
ब्राह्मणीपतिर्हीना वा भवेन्निष्कामिनो सदा ।

एकमुक्ता दिनान्ते सा हृषिष्यान्नरता सदा ॥ ९३ ॥

न धत्ते दिव्यवस्त्रञ्च गन्धद्रव्यं सुतीलकम् । व्रजञ्च चन्दनञ्चैव शङ्खसिन्दूरभूषणम् ॥ ९४ ॥  
त्यक्त्वा मलिनपत्रा स्याद्वित्तं नारायणं स्मरेत् । नारायणस्य सेवाञ्च कुर्वते नित्यमेध स  
तन्नामोच्चारणं शशपत् कुर्वतेऽनन्यमक्तिः । पुत्रतुल्यञ्च पुत्रं सदा पश्यति धर्मतः ॥  
मिष्टान्नं न च भुङ्क्ते सा न कुर्व्याद्विभर्षव्रज । एकादश्यां न भोक्तव्यं कृष्णजलमाष्टर्मादिने  
धीरामस्य नथभ्यान्तु शिवरात्रौ पवित्रया । अघोरायाञ्च प्रेतायां चन्द्रसूर्योपरातयोः ॥

भ्रष्टं द्रव्यं परित्यज्य भुज्यते परमेव च । ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्  
सन्न्यासिनाञ्च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम् । रक्तशाकं मसूरञ्च जम्बीरं पर्णमेव च ॥

अलायु घर्तुलाकारं घर्जनीयं च तैरपि ।

पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम् ॥ १०१ ॥

यानस्यारोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत् ।

न कुर्यात् केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च ॥ १०२ ॥

केशवेणाजटारूप सत्क्षौरं तीर्थकं विना । तैलाभ्यङ्गं न कुर्यात् न हि पश्यति दर्पणम् ।  
मुखञ्च परपुंसाञ्च यात्रां नृत्यं महोत्सवम् । नर्तनं गायनं चैव सुवेशं पुरुषं शुभम् ।  
शृणुयाच्च सतां धर्मं सामवेदनिरूपितम् । परमार्थं परञ्चैव निबोध कथयामि ते ।  
अध्यापनमध्ययनं शिष्याणां परिपालनम् । गुरुणां सेवनं नित्यं द्विजदेवार्चनं तथा ॥

सिद्धान्तशास्त्रनैपुण्यं भावनं स्वात्मतोषणम् ।

व्याख्यानं परिशुद्धञ्च प्रत्याभ्यस्तञ्च सन्ततम् ॥ १०७ ॥

ध्ववस्थापरिशुद्धयर्थं विचारो वेदसम्मतः । शास्त्रार्थाचरणञ्चैव कर्तव्यं स्वयमेव च ॥  
देवाह्निकेषु नैपुण्यं वेदाचरणमीक्षितम् । वेदोक्तभक्षणञ्चैव पवित्राचरणं सदा ॥१०८॥  
पतिव्रतानां यं धर्मं तन्निबोध व्रजेध्वर । नित्यन्तु भर्तव्योत्सुक्त्वात्तत्पादोदकमीप्सिन्  
भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुशया । व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः ॥  
कुट्याश्चरणसेवाञ्च स्तवनं परितोषणम् । तदाक्षरहितं कर्म न कुर्याद्द्वैरक्तःसती ॥११२॥  
नारायणात् परं भान्तं ध्यायते सततं सती । परपुंसां मुखञ्चैव सुवेशं पुरुषं परम् ॥  
यात्रां महोत्सवं नृत्यं नर्तकं गायनं व्रज । पर्यङ्काञ्च सततं न हि पश्यति सुव्रता ॥

यद्ब्रह्मं स्वामिनां नित्यं तदेवमपि योषिताम् ।

न हि त्यजेत्तु तत्सङ्गं क्षणमेव च सुव्रता ॥ ११५ ॥

दद्यात् स्वामिनश्च-पतिव्रता । न कोपं कुर्यात् शुद्धा साङ्गिता चापि कोप-  
धुधिनं भोजयेत् भान्तं दद्यात् पानञ्च भोजनम् ।

न बोधयेत् तं निद्रालुं प्रेरयेन्नैव कर्मसु ॥ ११७ ॥

पुत्राणाञ्च शतगुणं स्नेहं कुर्यात्पतिं सती । पतिर्त्र्यगुर्मातिर्मर्त्तां द्वैषतं कुलयोपितः ॥  
 शुभं दृष्ट्वा सुधातुल्यं कान्तं पश्यति सुन्दरी । सस्मितं धदनं हृत्वा भक्तिभावेन यत्नतः  
 पुरुषाणां सहस्रञ्च सती स्त्री च समुदरेत् । पतिः पतिप्रतानाञ्च मुच्यते सर्वपातकात्  
 नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां यततेजसा । तथा सार्द्धञ्च निष्कर्मा मोदते हरिमन्दिरे  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि । तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनाञ्च सतीषु च  
 तपस्थिनां तपः सर्वं यतिनां यत् फलं यत् । दाने फलं यद्दातॄणां तत्सर्वं तासु सन्ततम्  
 स्वयं नारायणः शम्भुर्विधाता जगतामपि ।

सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताम्यश्च सन्ततम् ॥ १२४ ॥

सतीनां पादरजसा सद्यःपूता यमुग्धरा । पतिप्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्नरः ॥  
 त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुं क्षणेनैव पतिप्रता । स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यधतीसदा  
 सतीनाञ्च पतिः साधुः पुत्रो निःशङ्क एव च । नहि तस्य भयं किञ्चिद्देवेभ्यश्च यमादपि  
 शतशतम् पुण्यधतां गेहे जाता पतिप्रता । पतिप्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा ॥

सती स्त्री प्रातःप्रथमं त्यक्त्वा च रात्रिवाससम् ।

भर्तारञ्च नमस्कृत्य करोति स्तवनं मुदा ॥ १२६ ॥

गृहकार्यं ततः कृत्वा स्नात्वा धीते च वाससी ।

गृहीत्वा शुक्लपुष्पञ्च भक्तितः पूजयेत्पतिम् ॥ १३० ॥

स्नापयित्वा च पूतेन जलेन निर्मलेन च । तस्मैदत्त्वा ॥ १३१ ॥ ॥ क्षालयेन्मुदा

भासने वासयित्वा च दत्त्वा भाले

सर्षपङ्गुलेपनं कृत्वा दत्त्वा ॥ १३२ ॥

सामवेदोक्तमन्त्रेण भोगद्रव्यैःसुधीपमैः ।

ओं

इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा पुष्पञ्च

पादाभ्यं धूपदीपौ चःवस्त्रनैवेद्यमुत्तमम् । जलं

दत्त्वास्तोत्रं प्रदेयत् कृतं वै पाठ्यमेव च । ॐ

अष्टं द्रव्यं परित्यज्य भुञ्जते परमेय च । ताम्बूलं विधवाग्नीजां यतीनां ब्रह्म  
सन्न्यासिनाञ्च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम् । रक्तशाकं ममूरञ्च जम्बीरं पप

मलायु पर्नुलाफारं पर्जन्यं च तैरपि ।

पत्यङ्कुशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम् ॥ १०१ ॥

यानस्यारोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत् ।

न कुर्व्यात् केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च ॥ १०२ ॥

केशवेणांजटारूप तत्क्षौरं तीर्थकं विना । तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत न हि पश्यति ब्रह्म  
मुखञ्च परपुंसाञ्च यात्रां नृत्यं महोत्सवम् । नर्तनं गायनं चैव सुवेशं पुरुष  
शृणुयाच्च सतां धर्मं सामवेदनिरूपितम् । परमार्थं परञ्चैव निबोध कथयति  
अध्यापनमध्ययनं शिष्याणां परिपालनम् । गुरुणां सेवनं नित्यं द्विजदेवार्चनं

सिद्धान्तशास्त्रनैपुण्यं भावनं स्वात्मतोषणम् ।

व्याख्यानं परिशुद्धञ्च द्रव्याभ्यस्तञ्च सन्ततम् ॥ १०३ ॥

व्यवस्थापरिशुद्ध्यर्थं विचारो वेदसम्मतः । शास्त्रार्थाचरणञ्चैव कर्तव्यं स्वयमेव  
देवाह्निकेषु नैपुण्यं वेदाचरणमीक्षितम् । वेदोक्तभक्षणञ्चैव पवित्राचरणं सदा  
पतिव्रतानां यं धर्मं तन्निबोध व्रजेश्वर । नित्यन्तु भर्तृप्योत्सुफनात्तत्पादोदकमी  
भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुज्ञया । व्रतं तपस्यां देवात्वां परित्यज्य प्रय  
हुर्त्याश्चरणसेवाञ्च स्तवनं परितोषणम् । तदाज्ञारहितं कर्म न कुर्व्याद्वैरतःसती  
सारायणात् परं कान्तं ध्यायते सततं सती । परपुंसां मुखञ्चैव सुवेशं पुरुषं प  
शात्रां महोत्सवं नृत्यं नर्तकं गायनं व्रज । परकीडाञ्च सततं न हि पश्यति सुद

यद्गर्ह्यं स्वामिनां नित्यं तदेवमपि योपिताम् ।

पुत्राणाञ्च शतयुगं स्नेहं कुर्व्यात्पतिं सती । पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैषतं कुलयोषितः ॥  
 शुभं हृद्वा सुधातुल्यं कान्तं पश्यति सुन्दरी । सस्मितं पदनं हृत्वा भक्तिभावेन यत्नतः  
 पुरुषाणां सहस्रञ्च सती स्त्री च समुदरेत् । पतिः पतिव्रतानाञ्च मुख्यते सर्वपातकात्  
 नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा । तथा सार्द्धञ्च निष्कर्मो मोदते हृदिमन्दिरे  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि । तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनाञ्च सतीषु च  
 तपस्विनां तपः सर्वं व्रतिनां यत् फलं व्रज । दाने फलं यद्वातृणां तत्सर्वं तासु सन्ततम्  
 स्वयं नारायणः शम्भुर्विधाता जगतामपि ।

सुराः सर्वे च मुनयो मीतास्ताम्यश्च सन्ततम् ॥ १२४ ॥

सतीनां पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा । पतिव्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्तरः ॥  
 त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुं क्षणेनैव पतिव्रता । स्वतेजसा समर्था सा महापुण्ययतीसदा  
 सतीनाञ्च पतिः साधुः पुत्रो निःशङ्क एव च । नहि तस्य भयं किञ्चिद्देवेष्वथ यमादपि  
 शतजन्म पुण्यव्रतां गेहे जाता पतिव्रता । पतिव्रताप्रसूः पूता जीवनमुक्तः पिता तपा ॥  
 सती स्त्री प्रातस्प्रयाय त्यक्त्वा च रात्रिवाससम् ।

भर्तारञ्च नमस्कृत्य करोति स्तवर्नं मुदा ॥ १२६ ॥

गृहकार्यं ततः कृत्वा स्नात्वा घीते च वाससी ।

गृहीत्वा शुकपुष्पञ्च भक्तितः पूजयेत्पतिम् ॥ १२७ ॥

स्नापयित्वा च पूतेन जलेन निर्मलेन च । तस्मैदत्त्वा घीतपस्त्रं तत्पादौ क्षालयेन्मुदा  
 आसने वासयित्वा च दत्त्वा माले च चन्दनम् ।

सर्पाङ्गुलेपनं कृत्वा दत्त्वा माल्यं गलेऽपि च ॥ १२८ ॥

सामवेदोक्तमन्त्रेण भोगद्रव्यैःसुधोपमैः । संपूज्य भक्तितः कान्तं स्तुत्वा च प्रणमेन्मुदा  
 भौं नमः कान्ताय शान्ताय सर्षदेवाश्रयाय स्थाह्य ।

इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा पुष्पञ्च चन्दनम् ॥ १२९ ॥

पादाभ्यां धूपदीपौ चःपस्त्रनेत्रेषामुत्तमम् । जलं सुपासितं शुद्धं ताम्बूलञ्चसुपासितम्  
 दत्त्वास्तोत्रपठेययत् कर्तव्यं पाठयमेव च । भौं नमःशान्ताय भर्ते च शिखिन्द्रस्यरूपिणे

नमः शान्ताय दान्ताय सत्यदेवाश्रयाय च । नमो ब्रह्मस्वरोपाय सतीप्राणपराय च ॥  
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः । पद्मप्राणाधिदेवाय चक्षुरस्तारकाय च ॥

ज्ञानाधाराय परांनानां परमानन्दरूपिणे ॥ १३८ ॥

पतिश्रंला पतिरिष्णुः पतिरेव महेश्वरः ।

पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूपो नमोऽस्तु ते ॥ १३९ ॥

क्षमस्य भगवन् दीपं ज्ञानासान्तराचयत् । पत्नीयन्धोदयासिन्धो दासीदीपं क्षमस्य मे  
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यार्थं पद्मया कृतम् । सरस्वत्या च धरत्या गङ्गया च पुरा व्रत  
सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः ।

पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शङ्कराय च ॥ १४० ॥

मुनोनाञ्च सुराणाञ्च पत्नीभिश्च कृतं पुरा । पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभायहम्  
इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता ।

नरोऽन्यो वापि नारी वा लभते सर्वधाञ्जितम् ॥ १४१ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम् ।

रोगी च मुच्यते रोगाद् वद्धो मुच्येत वन्धनात् ॥ १४२ ॥

पतिव्रता च स्तुत्या च तीर्थस्नानफलं लभेत् । फलञ्च सर्वं तपसां व्रतानाञ्च व्रजेश्वर  
इदं स्तुत्या नमस्कृत्य भुङ्क्ते सा तदनुश्रया । उक्तः पतिव्रताधर्मो गृहिणां धूपतां व्रज

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम  
व्यंशतितमोऽध्यायः ।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

गृहीणां धर्मवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

करोति सततं गृही । स्वधर्माचरणञ्चैव चातुर्यपर्यञ्च नित्यशः ॥१॥

कुर्वन्ति गृहिणामाशां सर्वे देवादयस्तथा । विधायातिथिपूजाञ्च गृहस्य च सदा शुचिः  
पितरः कर्मकाले च तिथिकाले च देवताः । सर्वं गृहस्यमायान्ति निपातमिव धेनवः  
समायाति प्रयत्नेन सायाह्ने क्षुधितोऽतिथिः ।

पूजां कृत्वाशिरं लब्ध्वा प्रयाति गृहिणी गृहात् ॥ ४ ॥

अकृत्वाऽतिथिपूजाञ्च गृही भवति पातकी । प्रैलोक्यजनितं पापं लभते नात्र संशयः ॥  
अतिथिर्वस्य भद्राशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य देवाश्च घृह्यश्च तथैव च ॥ ६ ॥

निराशाः प्रतिगच्छन्ति गृहिणीऽतिथयो गृहात् ।

स्त्रीधर्मैर्गोऽनैः कृतघ्नेश्च ब्राह्मणैर्गुरुतल्पगैः ॥ ७ ॥

तुल्यदोषो भवत्येव येनातिथिरर्चितः । स्वात्मनः पातकं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति  
तस्मात् कृत्वा सर्वसेवां देवार्दाश्च शुभाशयः ।

पोष्याणां भरणं कृत्वा पश्चाद् भुङ्क्ते स धर्मवित् ॥ ९ ॥

यस्य माता गृहेऽनास्ति भार्या च पुंश्चली तथा ।

अरण्यं तेन गन्तव्यमरण्याद् दुःखदं गृहम् ॥ १० ॥

पतिं ह्येष्टि सदा दुष्टा विपतुल्यञ्च पश्यति । ददाति तस्मै नाहारं मत्सर्नं कुरुते सदा ॥  
पूजितं मुनितुल्यञ्च सा च पापीपत्नी पम् । सन्ततं तुणयन्मत्या न्यङ्कारं कुरुते सदा  
दुर्षांश्चपह्निना दग्धो मृततुल्यश्च जीवति । यावज्जीवनपर्यन्तं सम्प्राप्य दुष्ट्यंशताम् ॥

गृहिणीनां सदावारं धूयतां तच्छुद्धौ धृतम् ।

गृहिणी पतिमक्ता च देवग्राहणपूजिता ॥ १४ ॥

सा शुद्धा प्रातरुत्थाय नमस्कृत्य पतिं सुरम् । प्राङ्गणे मङ्गलं दद्याद्रीमयेन जलेन च ॥  
गृहस्त्यञ्च कृत्वा च स्नात्वागत्य गृहं सती । सुरं विप्रं पतिं नत्वापूजयेद् गृहदेवताम्  
गृहस्त्यं सुनिवृत्त्य भोजयित्वा पतिं सती । अतिथिं पूजयित्वा च स्वर्गभुङ्क्तेसुखं सती  
पुत्रैश्च पूजितः स्नातो शिष्यैश्च पूजितो गुरुः । आश्रया कुरुते कर्म पुत्रः शिष्यश्च भृत्यश्च  
न प्रेत्यद् गुरुं तातं पुत्रः शिष्यश्च कर्मसु । विभ्रे च गुरुवे नित्यं सर्वस्य च समर्पयेत् ॥  
न कुर्यान्नरयुद्धिश्च गुरो पितरि सन्तनम् । कृत्वा च नरकुद्धिश्च ब्रह्महत्यां लभेद् ध्रुवम्



मातरं पूजयेत्तसया पितृभ्रातृपथिका तथा । मातुः करं शुक्रस्यैव पूजयेत्पितृयोगतः ॥  
पिता माता शुक्रमाद्या शिष्यः पुत्रः सदाक्षयः ।

भगवत्या भगिनी कन्या नित्यं योष्या शुक्रमिया ॥ २२ ॥

पण्डितकथितं तात सत्यं धर्मगुणमम् । स्त्रीजातिर्वास्तथी शुद्धा ताभ्य सर्वाःपतिवताः  
सर्वा जसतिरेकविधा स्याद् वृष्टा च प्रकृता ।

ताः सर्वाः प्रहतेरशाः पवित्राः पण्डिताधिकाः ॥ २४ ॥

केदारकन्याशापेन स हि धर्मः क्षयं गतः ।

तदा कोयेन धोत्रा च कृत्वा स्त्री च पिनिर्मिता ॥ २५ ॥

कृत्वा स्त्री त्रिविधाजातिर्ब्रह्मणा निर्मिता गुरा ।

उत्तमा प्रथमा सा च मध्यमा चाधमा मज ॥ २६ ॥

उत्तमा पतिवता सा किञ्चिद्दार्ढ्यमपिता । प्रानामन्तेऽपि न पुत्रं तं जायमपशयपरम्  
पूजयेत् सा यथा कायं तथा देवद्विजातिर्धीन ।

प्रतानि योपपास्ताश्च कुम्भे सत्यपूजनम् ॥ २८ ॥

शुद्धा रक्षिता यदाज्ञास्य न भजेद्गुणम् ।

सा कृत्रिमा मध्यमा च यथा किञ्चिन् पति भजेत् ॥ २९ ॥

स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिष्या मरः ।

नेन हे मन्त्र तासाश्च शर्माद्यगुणजायते ॥ ३० ॥

अधमा परमा युष्टाऽप्यन्तारंशक्ता तथा । अथमंशीला दुःशीला दुर्मुखा कलहापिना ॥  
यति भर्तापते नित्यं जास्य संवते राक्षः । दुःरा दुःशानि कामलाय विषमुत्पद्य प्रवृत्तिः ॥

जाय्यात्पुत्रायेन दर्शनं कामं मनोदम् । धर्मिष्ठश्च धर्मिष्ठश्च धर्मिष्ठश्च मदीत्यर्थे ॥ ३३ ॥

कामदेपरामं व्यापि तारं पश्यति कामलः । शृणुदृष्ट्या कटाक्षेण शोचन्पार्श्ववती शुभा ॥

सुधैरं पुत्रं दृष्ट्वा सुधामं स्निग्धकम् ।

योनिः त्रिचलि नारीणां कामिनीनां निरालम् ॥ ३५ ॥

३. मर्षे नन्दारं विचोक्तिः पतिः राजलम् । अधर्मश्चिन्मर्षश्चोच्यतेऽत्र परमं शुभा ॥

गुरुमिर्मत्सिता सा च रक्षिता च शतेन च ।  
 तथापि जारं कुरुते नापि साध्यां नृपैरपि ॥ ३७ ॥  
 नास्ति तस्याः प्रियं किञ्चिन् सयं फार्य्यवशेन च ।  
 गायस्त्वणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥ ३८ ॥

विद्युदामा जले रेखा तस्याः प्रीतिस्तथैव च । अधर्मयुक्ता सततं कष्टं घक्ति निश्चितम्  
 मते तपसि धर्मं च न मनो गृहकर्मणि । न गुरो न च देवेषु जारं स्निग्धञ्च चञ्चलम् ॥

स्त्रीजातित्रिविधानाञ्च कथा च कथिता मया ।

भक्तानां त्रिविधानाञ्च लक्षणं श्रूयतामिति ॥ ४१ ॥

तृणशप्यारतो भक्तो मन्नामगुणकीर्तिषु । मनो निवेशयेत् भक्त्या संसारसुखकारणम् ॥

ध्यायते भत्पदाब्जञ्च पूजयेद्भक्तिभायतः । बहैतुकीं तस्य देवाः सङ्कल्परहितस्य च ॥

सर्वसिद्धिं न वाञ्छन्ति तेऽणिमादिकमीप्सिताम् ।

ब्रह्मत्यममरत्वं वा सुरत्वं सुखकारणम् ॥ ४३ ॥

दास्यं पिता न हीच्छन्ति सालोबयादिचतुष्टयम् ।

नैव निर्वाणमुक्तिञ्च सुधापानमभीप्सितम् ॥ ४५ ॥

वाञ्छन्तिनिश्चलां भक्तिं मदीयामतुलामपि । स्त्रीपुंविभेदोनास्त्येव सर्वजीवेषु मिथता

तेषां सिद्धेश्वराणाञ्च प्रघराणां ब्रजेश्वर ।

क्षुत्पिपासादिकं निद्रां लोभमोहादिकं त्पिम् ॥ ४७ ॥

त्यक्त्वा दिवान्निशं माञ्च ध्यायन्ते च दिगम्यताः ।

स भद्रक्तमो नन्द श्रुपतां भश्यमादिकम् ॥ ४८ ॥

नासक्तः कर्मसु गृही पूर्वप्राक्तनतः शुचिः । करोति सततं कर्म पूर्वकर्मनिवृत्तनम् ॥

न करोत्यपरं यत्नात् सङ्कल्परहितः स च ।

सयं कृष्णस्य यत्किञ्चिन्नाहं कर्ता च कर्मणः ॥ ५० ॥

कर्मणा मनसा वाचा सततं चिन्तयेदिति । न्यूनमक्तश्च तन्यूनः स च प्राकृतिकः श्रुतौ

यमं वा यमदूतं वा स्वप्नेन च न पश्यति । पुरुषाणां सहस्रञ्च पूर्वमक्तः समुदरेत् ॥

पुंसां शतं मध्यमश्च तच्चतुर्थञ्च प्राकृतः । भक्तश्च त्रिविधस्तात फथितश्च तवाहया ॥  
 ब्रह्माण्डरचनाख्यानं श्रूयतां सावधानतः । ब्रह्माण्डरचनार्थञ्च भक्ता जानन्ति यत्नतः ॥

मुनयश्च सुराः सन्तः किञ्चिज्जानन्ति दुःखतः ।

जानामि विश्वं सर्वार्थं ब्रह्मातन्तो महेश्वरः ॥ ५५ ॥

धर्मः सनत्कुमारश्च नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती ॥

वेदाश्च वेदमाता च सर्वज्ञा राधिका स्वयम् ।

एते जानन्ति विश्वार्थं नान्यो जानाति कश्चन ॥ ५७ ॥

वैषम्यार्थञ्च सुधियः सर्वे विज्ञातुमक्षमाः ।

नित्याकाशो यथात्मा च तथा नित्या दिशो दश ॥ ५८ ॥

यथा नित्या च प्रकृतिस्तथैव विश्वगोलकः । गोलोकश्चयथा नित्यस्तथा वैकुण्ठपयव

एकदा मयि गोलोके रासे नित्यं प्रकुर्वति ।

आविर्भूता च घामाङ्गाद्बुधाला षोडशवार्षिकी ॥ ६० ॥

श्वेतचम्पकपर्णाभा शरशन्त्रसमप्रभा । अतीवसुन्दरी रामा रमणीनां पराधरा ॥ ६१ ॥

ईयक्षास्यप्रसन्नास्या कोमलाङ्गी मनोहरा । बह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नाभरणभूषिता ॥

यथा जलदपङ्क्तिश्च बलाकामिर्बिभूषिता ।

सिन्दूरविन्दुना चारुचन्द्रचन्द्रविन्दुभिः ॥ ६३ ॥

कस्तूरीविन्दुभिः सार्धं सीमन्ताघःस्थलोऽञ्जला ।

ममूल्यरत्ननिर्माणसुस्निग्धकिरणोऽञ्जला ॥ ६४ ॥

तलकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसमुऽञ्जला । बुद्धमालतकस्तूरीचारुचन्द्रपत्रकैः ॥ ६५ ॥

विचित्रैश्च सुवित्रैश्च सुफपोलस्थलोऽञ्जला ।

सगोन्द्रचम्पुपिजितनासा मौक्तिकशोमिता ॥ ६६ ॥

लेन्द्रगण्डनिर्मुक्तमुक्ताभूषणभूषिता । शुक्लापिमुक्तमुक्ताभद्रतपङ्क्तिमनोहरा ॥ ६७ ॥

वल्लिता कलितातीव पद्मविम्बाधरा धरा ।

शश्वन्पूर्णेन्दुनिन्दास्या पद्मनिन्दितलोयता ॥ ६८ ॥

चतुष्पदीतितमोऽध्यायः ] \* कृष्णस्य धाममागाद् भगवत्या उत्पत्तिः \* ६८३

कृष्णसारनिमोद्भिन्नसुचारुकञ्जलोज्ज्वला । भ्रूल्यरत्ननिर्माणकैयूरकङ्कणोज्ज्वला ॥

मणीन्द्राजिराजोमिः शङ्खयुग्मकरोज्ज्वला ।

रत्नाङ्गुलीयकैरेमिरमृताङ्गुलिभूषिता ॥ ७० ॥

रत्नेन्द्राजराजेन कृष्णन्मञ्जोररञ्जिता । रत्नपाशकराजोमिः पादाङ्गुलिविराजिता ॥ ७१ ॥

सुन्दरालकरागेण चरणाधःखलोज्ज्वला । गजेन्द्रगामिनी रामा कामिनीयामलोचना ॥

मां ददर्श कटाक्षेण रमणी रमणोत्सुका । रासे संभूय रामा सा दधार पुरतो मम ॥

तेन राधा समाख्याता पुराविद्धिः प्रपूजिता ।

प्रहृष्टा प्रकृतिश्चास्यास्तेन प्रकृतिरीश्वरी ॥ ७४ ॥

शक्ता स्यात् सर्वकार्येषु तेन शक्तिः प्रकीर्तिता ।

सर्वाधारा सर्वरूपा मङ्गलार्हा च सर्वतः ॥ ७५ ॥

सर्वमङ्गलदक्षा सा तेन स्यात् सर्वमङ्गला । वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्मूर्तिभेदे सरस्वती ॥

प्रसूय वेदान् विदिता वेदमाता च सा सदा ।

सावित्री सा च गायत्री धात्री त्रिजगतामपि ॥ ७७ ॥

पुरा संहृत्य दुर्गञ्च सा दुर्गा च प्रकीर्तिता । तेजसः सर्वदेवानामाधिभूता पुरा सती ॥

तेनाद्या प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वासुरधिमर्दिनी । सर्वानन्दा च सानन्दा दुःखदाखिद्यनाशिनी ॥

शत्रूणां भयदाता च भक्तानां भयहारिणी । दक्षकन्या सती सा च शैलजातेति पार्वती ॥

सर्वाधारस्वरूपा सा कल्या सा धस्तुन्धरा । कल्या तुलसी गङ्गा कल्या सर्वभोषितः ॥

सृष्टिं करोमि च यथा तात शक्त्या पुनः पुनः ।

हृद्य तां रासमध्यस्थां मम क्रीडां तथा सह ॥ ८२ ॥

बभूव सुचिरं तात यावद्दे प्रह्वणः शतम् । अत्यहुतं कौतुकञ्च महाभृङ्गारमीप्सितम् ॥

तयोद्भ्रंषोर्धर्मराशिः सुस्नाय रासमण्डले । तस्मान्मनोहरं जहे नाम्नाकारसरोधरम् ॥

पपात धर्मधाराधोधेगेन विश्वगोलके । बभूव जलपूर्णञ्च ब्रह्माण्डानाञ्च गोलकम् ॥

जलपूर्णं पुरा सर्वं सृष्टिग्नान्यं प्रजेश्वर ।

भृङ्गारान्ते च तस्याञ्च धीर्याधानं मया हृतम् ॥ ८६ ॥

दधार शर्मै सा राधा धायद्वै प्रत्ययः शतम् ।

सुभ्राय सा तद्गते च दिव्यञ्च परमाद्भुतम् ॥ ८७ ॥

शुकोप देर्षी तं दृष्ट्वा रतोद् विपसाद् सा ।

पादेन प्रेत्यामास तमघो विश्वगोलके ॥ ८८ ॥

स पपात जले तात सर्वाधाते महान् विराट् ।

दृष्ट्वाऽपत्यं जलम्पञ्च मया शक्ता च सा पुरा ॥ ८९ ॥

मनपत्या च सा राधा मच्छापेन पुरा विमो । तेन प्रमृता प्रमृतो दुर्गा लक्ष्मीःसरस्वती  
चतस्रः परिपूर्णास्ताःप्रमृताश्चसुनिश्चितम् । देव्योऽन्याश्चापिकामिन्योताःप्रमृताश्चनेश्वर  
कलया प्रभयं यासां कलशांशोनेन चा प्रत्त । जज्ञे महान् विराडूयेन दिव्येन कलयाधयः  
अमृताद्गुह्यीयूयं मया दत्तं पपी च सः । जले श्वावररूपश्च शेते च निजकर्मणः ॥ ९३ ॥

उपाधानं जलं तस्यं तस्य योग यलेन च ।

तस्य लोघ्राञ्च कूपानि जलपूर्णानि सन्ततम् ॥ ९४ ॥

त्येकं कामतस्तेषु शेते क्षुद्रविराट् पुनः । सदस्त्रपत्रं कमलं जज्ञे क्षुद्रस्य नामितः

जज्ञे धरो ब्रह्मा तेनायं कमलोद्भवः । तत्राविर्भूय स विधिश्चिन्ताप्रस्तो बभूव सः

कस्माद्देहः क माता मे पिता वा क्व च धान्यधः ।

दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च धम्माम कमलान्तरे ॥ ९७ ॥

ततो दिव्यं पञ्चलक्षं सस्मार तपसा च माम् ।

तदा मया दत्तमन्त्रं जज्ञाप कमलान्तरे ॥ ९८ ॥

व्यसतवर्षलक्षं नियतं संयतः शुचिः । तदा मत्तो धरं लब्ध्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः

मायया प्रतिप्रज्ञाण्डे ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।

दिक्पाला द्वादशादित्या ख्द्राश्चैकादशापि च ॥ १०० ॥

प्रहाणौ वसयो देवाः कोटिभयं तथा । प्राह्यणक्षत्रविद्रुद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥

रादयो राक्षसाश्चाप्येवंसर्वं चराचरम् । विश्वे विश्वे विनिर्माणस्वर्गाःसप्त क्रमेण च

ससागरसंयुक्ता सप्तद्वीपधसुन्धरा । काञ्चनीमूमिसंयुक्ता तमोयुक्तं स्थलं तथा ॥

पातालाश्च तथा सप्त प्रज्ञापट्टमेभिरेव च । पिरध्वे पिरध्वे चन्द्रसूक्तौ पुण्यक्षेत्रञ्जमारत्नम्  
तीर्थान्येतानि सर्वत्र गङ्गादीनि प्रज्ञेश्वर । थापन्ति लोमकृपानि महापिप्प्लोः क्रमेण च

विद्यान्येव हि तापन्ति हासंख्यातानि च ध्रुवम् ।

विद्वेषामुद्बुध्यमानो च वैकुण्ठश्च निराश्रयः ॥ १०६ ॥

मदिच्छया पिनिर्माणो चेदाः फपित्तुमक्षमाः ।

कुयोगिनामदृष्टधामकानाञ्च विनिश्चितम् ॥ १०७ ॥

तस्मादुपरि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः । वायुना धार्यमाणश्च विचित्रः परमाश्रयः  
भस्तीपरम्यनिर्माणो नित्यरूपो मदिच्छया । शतशृङ्गेण शीलेन पुण्यवृन्दापनेन च ॥ १०८ ॥

सुरासमण्डलेनावि'तया पिरञ्जया युतः । कोटियोजनविस्तीर्णा प्रस्थेन विरजा यज ॥  
दैर्घ्यं सप्तशतगुणं पतितः परमा शुभा । समूल्यरत्ननिफरेर्हो'रमाणिक्मयोस्तथा ॥ १११ ॥

मर्णानां कौस्तुभादीनामसंख्यानां मनोहरा । समूल्यरत्ननिर्माणं सत्रापि प्रतिमन्दिरम् ॥  
मनोहरञ्च प्राकारमदृष्टं विश्वकर्मणा । गोपीमिर्गा'पनिकरैर्वेष्टितं कामधेनुमिः ॥ ११३ ॥

कल्पवृक्षैः पारिजातैरसंख्यैश्च सरोधरैः । पुण्योद्यानैः कोटिमिश्च संयुतं रासमण्डलम्  
चेष्टितं वेष्टितैर्गोपैर्मन्दिरैः शतकोटिमिः । रत्नप्रदीपयुक्तैश्च पुष्पतल्पसमन्वितैः ॥ ११५ ॥

सुगन्धिचन्दनामोदैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः । क्रीडोपयुक्तैर्मौगैश्च ताम्बूलैर्पासितैर्जलैः ॥  
धूपैः सुरमिरम्यैश्च माल्यैश्च रत्नदर्पणैः । रत्नकैरक्षितं शदचद्राधाशालीत्रिकोटिमिः ॥

समूल्यरत्नाभरणैर्वह्निशुद्धांशुकैरपि ।

लक्षमत्तगजेन्द्राणां वेष्टितञ्च यलैः क्रमात् ॥ ११८ ॥

नवयौवनसम्पन्ने रूपैर्निरुपमैरपि । रम्यञ्च वर्तुलाकारं चन्द्रविभ्यं यथा यज ॥ ११९ ॥  
समूल्यरत्नरचितं दशयोजनविस्तृतम् । कस्तूरीकुङ्कुमै रम्यैः सुगन्धिचन्दनांबतम् ॥

आवृतं महूलघटैः फलपल्लवसंयुतैः । दधिलाजैश्च पर्णैश्च स्निग्धदूर्वाङ्कुरैः फलैः ॥  
धीरामकदलोस्तम्भैरसंख्यैश्च मनोहरैः । पट्टसूत्रनिवद्धैश्च स्निग्धैश्चन्दनपल्लवैः ॥ १२२ ॥

चन्दनासक्तमाल्यैश्च भूषणैश्च विभूषितम् । समूल्यरत्नरचितं शतशृङ्गमनोहरम् ॥ १२३ ॥  
कोटियोजनमुद्बुध्यञ्च दैर्घ्यं दशगुणोत्तरम् । शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम्

विषयं चेशानिर्वर्तनीयकम् । प्राकारमिष तस्यापि गीतोकल्प मनोहरम्  
 त्वं स्वयं हीरहाससमन्वितम् । तत्र मृन्दापनं स्वयं गुणं वन्दनपादौ ॥१२  
 कल्पवृक्षश्च स्वयंश्च मन्दारैः कामवेनुभिः ।

शोभितं शोभनादौश्च पुण्योद्यानैर्मनोहरैः ॥ १२७ ॥

परै स्वयैः सुरम्यै रतिमन्दिरैः । धर्मापरस्वयं रहसि रासयोग्यम्बुजान्वितम् ।

एते स्वयैस्संख्यैर्गोपिकागणैः । परितो घनंलाकारं त्रिलक्ष्योत्तमं धरम् ॥१२९

नेसंयुक्तं पुंसकोकिलरत्नान्वितम् । तत्राश्रयो घटो स्वयो रहस्ये बहुविस्तृतः ॥

तनोदुर्ध्वश्च परितश्च चतुर्गुणः । गोपीनां कल्पवृक्षश्च सर्ववाञ्छाफलप्रदः ॥

तेरावृत्तश्च राधादासीत्रिलक्षकैः । विरजातीरनीराणां वायुना शीतलेन च ॥

तेन मन्देन पवित्रश्च सुगन्धना । दार्सागणैरसंख्यैश्च मृन्दाघनविनोदिनी ॥

ति राधा सा मम प्राणाधिदेवता । सेवं श्रीदामशापेन वृषभानुसुताऽधुना ॥

वेः सिद्धेन्द्रैर्मुनीन्द्रैः पूजिता मज्ज । सिद्धैर्गुणैर्वलैर्वुद्ध्या ज्ञानयोगीश्च विद्यया ॥

तात स्वर्णप्रकारेण घन्या मत्सदृशी प्रिया ॥ १३५ ॥

इत्येवं कथितं नन्दं ब्रह्माण्डानाञ्च घर्षणम् ।

यथोचितं परिमितं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवन्नन्दसंवादे ब्रह्माण्डघर्षणं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।

## पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

चतुर्णां घर्षणानां भक्ष्याभक्ष्यघर्षणम् ।

नन्द उवाच ।

इति चतुर्णाञ्च भक्ष्याभक्ष्यञ्चसाम्प्रतम् । विवाकं कर्मणाञ्चैव सर्वेषां प्राणिनामपि

- कथयस्व महाभाग कारणानाञ्च कारणम् ।

त्वत्तोऽन्यं कं च पृच्छामि नितान्तं सन्तमीश्वरम् ॥ २ ॥

- श्रीभगवानुवाच ।

भक्ष्याभक्ष्यं चतुर्णाञ्च घर्जानाञ्च यथोचितम् ।

वेदोक्तं श्रूयतां तात साधधानं निशामय ॥ ३ ॥

अयःपात्रे पयःपानं गन्धं सिद्धाश्रमेव च । भ्रष्टादिकं मधु गुडं नारिकेलीदकं तथा ॥४॥

फलं मूलञ्च यत्किञ्चिदभक्ष्यं मनुष्यवीत् । दधानं ततसौधीरमभक्ष्यं ब्रह्मनिर्मितम् ॥

नारिकेलीदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । गन्धञ्च ताम्रपात्रस्यं सर्वं मयं घृतं विना ॥

ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टं घृतभोजनम् । दुग्धं सलवणञ्चैव सद्यो गोमांसभक्षणम् ॥

अभक्ष्यं मधुमिश्रञ्च घृतं तैलं गुडं तथा । आर्द्रकं गुडसंयुक्तमभक्ष्यं श्रुतिसम्मतम् ॥ ८ ॥

पीतशेषजलञ्चैव माघे च मूलकं तथा । उपोदिकाञ्च शयने सदा प्राज्ञः परित्यजेत् ॥९॥

द्विभोजनञ्च दिपसे सन्ध्ययोर्भोजनं तथा ।

भक्ष्यञ्च रात्रिशेषे च ध्रुवं प्राज्ञः परित्यजेत् ॥ १० ॥

पानीयं पायसं चूर्णं घृतं लवणमेव च ।

स्वस्तिकं गुडकञ्चैव क्षीरं तर्कं तथा मधु ॥ ११ ॥

इत्तादस्तगृहीतञ्च सद्यो गोमांसमेव च ।

कर्पूरं रौप्यपात्रमभक्ष्यं श्रुतिसम्मतम् ॥ १२ ॥

परिवेषणकारी वेद्भोक्तारं स्पृशते यदि । अभक्ष्यञ्च तदघ्नञ्च सर्वेषामेव सम्मतम् ॥

नकुलानां गण्डकानां महिषाणाञ्च पक्षिणाम् ।

सर्पाणां शूकराणाञ्च गर्दमानां विशेषतः ॥ १४ ॥

मार्जारानां शृगालानां कुक्कुटानां यजेश्वर ।

व्याघ्राणामपि सिंहानां त्वान्यं मांसं नृणां सदा ॥ १५ ॥

जलोफसाञ्च भक्षाणां गोधिकानां तथैव च ।

मण्डुफानां कर्कटीनां चुम्बुफानाञ्च निश्चितम् ॥ १६ ॥



गण्डमन्त्राणाञ्च न कर्त्तव्यं मांसमहासाम् । दक्षिणां गोदक्षिणाञ्च नृणांमेव नृणांमेव  
 वृंशच्च महासाम्नाय मक्षिका न पिपीलिका । मन्त्रेणाञ्च निगिज्ञानं श्लोके वेदे मन्त्रेण  
 घामराणां मन्त्रुकानां शम्भानां तपोव च । निभिद्धं शुभतामिनां गर्हमानाञ्च मांसकम्  
 भ्रमह्यं महिर्गणाञ्च दूष्यं दूषि घृणं तथा । मन्त्रिकञ्च तथा तत्र विद्यानां मन्त्रिकम्  
 मांसमुष्यैः भवत्सकं तस्य दुष्प्रादिकं तथा । यन्नांताञ्च मनुष्यांश्चाप्यमह्यञ्च धूर्तां धृक्  
 भ्रमह्यमार्द्रकञ्चैव सर्वेषाञ्च रवेर्दिने । पण्डितं जतं चान्नं विद्यानां दुष्पमेव च ॥२२॥  
 यन्नांताञ्च मनुष्यांश्चाप्यर्वागप्रम्य भक्षणम् ।

तद्व्यञ्जं सुरातुल्यं गोमांसाधिकमेव च ॥ २३ ॥

अर्वागप्रञ्च यो मुंते प्राहणो ब्रान्दुर्बलः । पिनुदेवार्यनं तस्य निष्कलं मनुष्यवीन् ॥  
 प्राहणानां घैष्णयानाममह्यं मत्स्यमेव च । हरेरेगममह्यञ्च पञ्चपर्यसु निश्चितम् ॥  
 पिनुदेवापशोरे च मह्यं मांसं न दूषितम् । पञ्चपर्यसु स्याम्यञ्च सर्वेषां मनुष्यवीन् ॥  
 असंस्कृतञ्च लयणं तैलञ्चामह्यमेव च । मह्यं पयित्रं सर्वेषां ध्यजनं घट्टिमंस्कृतम् ॥  
 एकहस्ते धृतं तोयममह्यं सर्वसम्मतम् । आपिलं हृमियुक्तञ्चापरिशुद्धञ्च निर्मलम् ॥  
 भ्रमह्यं प्राहणानाञ्च घैष्णयानां विशेषतः । अनियेद्यं हरेरेव यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥  
 पिपीलिकामिश्रितञ्च मधु गव्यं गुडं तथा ।

यत्किञ्चिद्दस्तु वा तात न भक्ष्यञ्च धूर्तां धृत्तम् ॥ ३० ॥

पक्षिमह्यं कीटमह्यं शुद्धं पकफलं तथा । काकमह्यममह्यञ्च सर्वेषां द्रव्यमेव च ॥  
 घृतपक्कं तैलपक्कं मिष्टान्नं शूद्रसंस्कृतम् । भ्रमह्यं प्राहणानाञ्च शूद्रमह्यञ्च पीठकम्  
 सर्वेषामशुचीनाञ्च जलमन्नं परित्यजेत् । अशौचान्तात्परदिने शुद्धमेव न संशयः ॥  
 विपाकं कर्मणामेव दुष्करं धृत्तिसम्मतम् । मह्यमह्यञ्च कथितं यथाज्ञानं मन्त्रेश्वर ॥  
 कर्माश्चतुर्षु वेदेषु चोक्तं मतवतुष्टयम् । सर्वेषां सारभूतञ्च कथयामि पितः शृणु ॥३१॥  
 नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥  
 तीर्थानाञ्च सुराणाञ्च साहाय्येन नृणामपि । किञ्चिद्भवति साहाय्यं कायव्यूहेन सर्वतः  
 प्रापञ्चितानि चीर्णानि निश्चितं मत्पराडमुष्टम् ।

न निष्पुनन्ति हे तात सुराकुम्भमिवापगाः ॥ ३८ ॥

प्रायश्चित्तेन पुण्येन न हि शुध्यन्ति मानवाः । सर्दारम्भेण वैश्येन्द्र दानेन योगतोपि वा  
शुभाशुभञ्च यत् कर्म पिना भोगान्न च क्षयः ।

भोगेन शुद्धिमाप्नोति ततो मुक्तिर्भवेद्भृणाम् ॥ ४० ॥

न नष्टं दुष्कृतं कर्म सुकृतेन च कर्मणा । न नष्टं सुकृतं कर्म कृतेन दुष्कृतेन च ॥ ४१ ॥

यज्ञेन तपसा वापि व्रतेतानशनेन च । तीर्थस्नानेन दानेन जपेन नियमेन च ॥ ४२ ॥

भुवः प्रदक्षिणेनैव पुराणश्रवणेन च । उपदेशेन पुण्येन पूजया गुरुदेवयोः ॥ ४३ ॥

स्वधर्मा वरणेनैवातिथीनां पूजनेन च । ब्राह्मणां पूजनेनैव भोजनेन विशेषतः ॥ ४४ ॥

यद्दत्तमपि विप्राय तत् प्राप्तं पूर्णरूपतः । धीजरूपञ्च तद्दानं क्षेत्ररूपञ्च ब्राह्मणः ॥ ४५ ॥

एकेन कर्मणा तात स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ।

कर्मणा न हि मोक्षञ्च तदैव मम सेवया ॥ ४६ ॥

स्वर्गञ्च सुकृतेनैव नरकं दुष्कृतेन च । व्याधिर्जन्म च योनी च कुत्सिते न ततः शुचिः

सोप्रो यो ब्राह्मणानाञ्च कामतश्चोपपातकी ।

दन्दशूकत्वमाप्नोति गोलोमसमवर्षकम् ॥ ४८ ॥

सर्वेण भक्षितस्तेन उवाचया गरलस्य च । तृपितो व्यथितश्चैव निराहारः कृशोदरः ॥

ततः कुण्डात् समुत्थाय गोर्मवेहोमवर्षकम् ।

ततः कुष्ठी च चाण्डालो घर्षलक्षं ततो तरः ॥ ५० ॥

तदा भवेद् ब्राह्मणश्च कुष्ठयुक्तो हि कर्मणा ।

भोजयित्वा घिप्रलक्षं निर्व्याधिश्च भवेच्छुचिः ॥ ५१ ॥

अकामतस्तदर्धञ्च क्षत्रियस्यापि कामतः । अकामतस्तदर्धञ्च तदर्धञ्च विशस्तया ॥ ५२ ॥

तदर्धं शूद्रगोम्रश्च भुंक्ते पापं न संशयः । प्रायश्चित्तेन शुद्धश्च भुंक्ते शेषञ्च कर्मणः ॥ ५३ ॥

अनुकल्पे चतुर्थञ्च पापं भुंक्ते न संशयः । चतुर्गुणञ्च गोघ्राणां ब्राह्मणानाञ्च पातकम् ॥

भुंक्ते पापञ्च ब्रह्मन्तो ब्राह्मणश्चेतरोऽपि वा ।

क्रमेणानेन बोध्यञ्च कामतोऽकामतोऽपि वा ॥ ५५ ॥

प्रायश्चित्तं जन्मकर्मव्याधिरपि न शंशयः ।

गोत्रो मयति गोत्रापि पापद्वर्षञ्च मिथियम् ॥ ५६ ॥

चतुर्गुणञ्च तेषाञ्च प्रत्यक्षो विश्रुतिर्गणैश्च । ततोमयति भ्लेच्छश्च सायद्वर्षचतुर्गुणम् ॥

तत्रगोत्रो मयेष्टिप्रः पूर्वपात्र चतुर्गुणम् । ब्राह्मणानां चतुर्लक्षं भोजयित्वा शुक्तिर्मवेत् ।

शुष्मादग्नयशस्यी च मयेत्सोऽप्यतिपातकान् ।

स्त्रीघ्नश्चतुर्गो घर्षाणां येदे सोऽप्यतिपातको ॥ ५६ ॥

कालपूत्रञ्च प्राप्नोति श्रीलोमसमपर्वकम् । भक्षितः कृमिणा तत्र निराहारो व्याधुतः

ततो मयति लोके च सायद्वर्षञ्च पातको ।

ततः पापी भवेत्सोऽपि यक्ष्मप्रस्तरच कर्मणा ॥ ६१ ॥

घर्षाणां शतकञ्चैव विप्रलक्षञ्च भोजयेत् । ततः शुद्धो ब्राह्मणश्च विद्रांस्तपसि संयतः

किञ्चिद्भुङ्क्ते पापशेषं स्वर्णदानाब्जुचिर्मवेत् ।

गर्मघ्नश्च महापापी संप्राप्नोति शुनीमुखम् ॥ ६३ ॥

घर्षाणां शतकञ्चैव घोटकश्च भवेद्भुवम् । घर्षाणां शतकञ्चैव सूक्ष्मशस्त्रेण पीडितः

ततः पापी भवेद्वैश्यो द्रव्ययुक्तो हि कर्मणा ।

पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं स्वर्णदानाद्भवेच्छुचिः ॥ ६५ ॥

ततः स्वकुलजातोऽपि निर्व्याधिर्ब्राह्मणः शुचिः ।

ब्राह्मणः क्षत्रियघ्नश्च क्षत्रियो वा विना रणात् ॥ ६६ ॥

ततश्चलञ्च प्राप्नोति घर्षाणाञ्च सहस्रकम् । कथितं तप्तलोहेन चार्तनादं करोति च ॥ ६७ ॥

ततो भवेन्मत्तगजो घर्षाणां शतकं तथा । ततो रक्तविकारी च शूद्रो वर्षशतं तथा ॥

गजदानेन मुक्तश्च व्याधितश्च ततो द्विजः ।

वैश्यघ्नश्चापि वैश्यश्च शूद्रघ्नो वैश्य एव च ॥ ६८ ॥

वैश्यघ्नश्चापि शूद्रश्च समपापं लभेद्भुवम् । कृमिकुण्डञ्च प्राप्नोति घर्षाणां शतकं तथा

कृमिर्मिक्षितो दुःखी किरातश्च भवेत्ततः । घर्षाणां शतकञ्चैव कृमिव्याधिसमन्वितः ॥

मन्दाग्नियुक्तश्च ब्राह्मणो दैन्यवान् प्रज । पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं दुर्बलश्च कृशोदरः ॥

मुक्तिर्भवति युक्तेन तीर्थे चाश्वप्रदानतः । शूद्रभ्नो ब्राह्मणञ्चैव कामतोऽकामतोऽपि वा  
सावित्रीलक्षजाप्येन तदर्धेन शुचिर्मवेत् । चतुर्वर्णः कुक्कुटभ्नो ह्यविशतश्च शम्भुना ॥  
वर्षाणां शतकञ्चैव प्राप्नोति रौरवं नरः । ततो भुङ्क्ते कुक्कुटश्च वर्षाणामपि योऽश ॥  
ऋतः शुद्धो भवेद्विप्रो भक्षितः कुक्कुटेन च । गङ्गास्नानेन दानेन स्वर्णस्यापि भवेच्छुचिः  
नार्जारभ्नश्चतुर्वर्णो गङ्गास्नानाद्भवेच्छुचिः । विप्राय लघणं दत्त्वा पद्मलञ्च प्रमुच्यते  
हत्वा सर्पांश्चतुर्वर्णो मम पादेन चिह्नितः । ब्रह्महत्याचतुर्थञ्च पातकञ्च लभेद् ध्रुवम् ॥

असिपत्रञ्च नरकं वर्षाणां शतकं तथा ।

प्राप्नोति घातनां युक्तो विच्छिन्नस्तीक्ष्णधारया ॥ ७६ ॥

ततो भवति सर्पश्च दुग्दुभो वर्षेपञ्चकम् । नरेण तारितो दुःखी मृत्योर्भवति पीडितः  
ततो भवेन्नरः पापी उग्रयुक्तो हि दुर्वलः । वर्षाणां पञ्चकेनैव मृती भवति कर्मणा ॥

ततो भवति हस्ती च घोडकी वा मजेश्वर ।

यावद्विंशतिवर्षञ्च ततः शूद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८२ ॥

अहङ्कृतीव्याधियुक्तो रीष्यदानेन मुच्यते । ब्राह्मणानाञ्च शतकं भोजयित्वाशुचिर्मवेत्  
धुद्रजन्तुघर्षेणैव धुद्रजन्तुर्भवेन्नरः । वर्षाणां शतकञ्चैव धुद्रव्याधिं तरेत्ततः ॥ ८४ ॥

हृषा कार्या, सता शश्वद्विंश्रेषु च जन्तुषु ।

हिंसायां न हि दोषञ्च हिंसाणञ्च मजेश्वर ॥ ८५ ॥

अश्वत्थमश्चतुर्वर्णा ब्रह्महत्याचतुर्थकम् । पापञ्च लभते तात चासिपत्रं मजेद् ध्रुवम् ॥

स तीक्ष्णेनापि शस्त्रेण विच्छिन्नश्च दिवानिशम् ।

वर्षाणां शतकञ्चैव भुङ्क्ते परमयातनाम् ॥ ८७ ॥

ततो भवति वृक्षश्च शात्मलिव्यर्षलक्षकम् । ततो भवति शूद्रश्च छिन्नाङ्गो व्याधिसंयुतः  
यापजीवनपर्यन्तं ततो विप्रो भवेद् ध्रुवम् । घणव्याधिसमायुक्तो मुच्यते स्वर्णदानतः

मिथ्यासाक्ष्यप्रदाता च हृतप्रोऽतिदृष्टप्रकः ।

विश्वासघाती मित्रप्रो विप्राणां घनहारकः ॥ ९० ॥

शूद्रधादान्बभोजी च शूद्राणां शश्वदादकः । शूद्राणां स्युक्तञ्चैव वृष्याहकपातकी ॥ ९१ ॥

घायको देपलधापि चीतेऽतिपापिनस्तथा ।  
 शुम्भीपाकः प्रयान्थेय पर्वाणाञ्च सहस्रकम् ॥ १२ ॥  
 ततैलेन सन्ततश्च दिवानिशम् । भक्षितो व्याधितश्चैव सर्पाकारेण जन्तुना ॥  
 गृध्रः फोटिसहस्राणि शतजन्मानि शृकरः ।  
 श्यापद्ः शतजन्मानि शूद्रो रोगी भवेत्ततः ॥ १४ ॥  
 अपरसंयुक्तः पञ्चाशद्वर्गकं तथा । सुवर्णानां शतपलं दत्त्वा शुद्धो भवेद् ध्रुवम्  
 र्णो पस्त्रहारी गव्यहारी च मानवः । रौप्यमुक्तापहारी च शूद्रद्रव्यापहारकः ॥  
 पर्वणाञ्च सहस्रञ्च एकजातिर्मवेद् ध्रुवम् ।  
 मूत्रकुण्डञ्च वै भुक्त्या वर्णाणां शतकं तथा ॥ १७ ॥  
 भवेच्छूद्रजातिर्वर्णाणां शतकं व्रज । कुष्ठव्याधिसमायुक्तो गलितश्चैव पातकी ॥  
 भवेद् ब्राह्मणश्च कुष्ठावशेषसंयुतः । स्वर्णपट्पलदानेन व्याधितो मुच्यते शुक्तिः ॥  
 आपहारकश्चैव फलापहारकस्तथा । यक्षः पृथिव्यां सम्भूतो लीलाद्रव्यापहारकः ॥  
 णां शतकञ्चैव चापपक्षी भवेद् ध्रुवम् । ततो भवेत् कृष्णवर्णः शूद्रश्च भारते भुवि  
 ततो भवेद् ब्राह्मणश्चाप्यधिकान्द्रोऽपि जन्मभिः ।  
 पुनर्जन्म द्विजो भूत्वा मुच्यते विप्रभोजनात् ॥ १०२ ॥  
 पक्षद्रव्यापहारी च पशुयोनिर्मवेद् ध्रुवम् ।  
 यस्याण्डकोशो गन्धाक्तः कस्तूरी यस्य नाम च ॥ १०३ ॥  
 तजन्म मृगो भूत्वा ततो भवति गन्धकः । जन्मैकञ्च ततः शूद्रो गलत्कुर्ष्यावजन्मनि  
 तो रोगावशेषेण संयुतो ब्राह्मणः कृशः । स्वर्णपट्पलदानेन मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 धान्यापहारी दुःखी च कृपणः सप्तजन्मसु ।  
 विष्ठाकुण्डं वर्षशतं सम्प्राप्य मुच्यते भिया ॥ १०६ ॥  
 स्वर्णापहारी कुष्ठो च मानवः पतितो भवेत् ।  
 स्वर्णदानप्रतिप्राही विद्कुण्डञ्च प्रयाति च ॥ १०७ ॥  
 पुरीपञ्च दिवानिशम् । ततो व्याधो भवेच्छूद्रो रक्तदोषेण संयुतः

तज्जन्म पातकं भुक्त्वा ब्राह्मणश्च पुनर्भवेत् । व्याधिरोपोपयुक्तश्च मुच्यते स्वर्णदानतः

अगम्यानाञ्च गामी च पूर्वोक्तं रौरवं व्रजेत् ।

कुम्भोपाकं महाघोरं घर्षणाञ्चवाप्यसंख्यकम् ॥ ११० ॥

ततो भवेत् पुंश्चलीनां योनीनाञ्च कृमिस्तथा ।

घर्षणाञ्च सहस्रञ्च विट्कृमिर्वर्षलक्षकम् ॥ १११ ॥

पशुयोनिर्भवेत्तस्मात्तस्माद्य क्षुद्रजन्तवः ।

ततो भवेन्मलेच्छजातिस्ततः शूद्रोऽधमस्तदा ॥ ११२ ॥

ततो भवति विप्रश्च व्याधियुक्तो नृपुंसकः । पुनश्च ब्राह्मणो भूत्वा तीर्थपट्व्यटनेन च ॥

कमेण शुद्धो भवति वंशहीनश्च पातकात् । भोजयित्वा विप्रलक्षं पुत्रश्च लभते शुचिः ॥

मानवः क्रोधयुक्तश्च गर्दभः सप्तजन्मसु । मानवः कलहाविष्टः सप्तजन्मसु वायसः ॥

शालग्रामप्रतिप्राही कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ।

घर्षाणां शतकञ्चैव खड्गराटी भवेत्ततः ॥ ११६ ॥

लोहचोरश्च निर्वंशो मपीचोरश्च कोकिलः ।

शुकोऽप्यङ्गनचोरश्च मिष्टचोरः कृमिर्भवेत् ॥ ११७ ॥

विप्रद्वेषी गुरुद्वेषी शिरसाञ्च कृमिर्भवेत् । पुंश्चलीं कामिनीं तात भुक्त्वा च रौरवं व्रजेत्

ततो वृथाकृमिश्चैव घर्षाणां शतकं तथा ।

ततोऽपि विधवा चैव कण्ठ्या च सप्तजन्मसु ॥ ११६ ॥

अस्पृश्या जातिहीना च छिन्ननासा भवेत् कमात् ।

रक्तद्रव्यापहारी च रक्तदोषान्वितो भवेत् ॥ १२० ॥

आचारहीनो यवनः खड्गो भवति हिंसकः । अदीक्षितो घड्ढश्च दुष्टदर्शी च फाणकः ॥

बहद्द्वारी कर्णहीनो घग्निरो वेदनिन्दकः । वाच्यहर्ता च सूक्ष्म हिंसकः केशहीनकः ॥

मिथ्यावादी श्मश्रुहीनो दुर्षाक्षो दन्तहीनकः ।

जिह्वाहीनः सत्यहारी दुष्टोऽप्यङ्गुलिहीनकः ॥ १२३ ॥

ग्रन्थापहारी मूर्खश्च व्याधियुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।

अक्षरप्रादी न तथोरो म्नात्पूर्व प्रजेरिति ॥ १२४ ॥

वर्णलाश शनं स्थित्या गोदकञ्च भवेद् ध्रुवम् ।

गतगोरो गतप्रादी विदूकुण्डे न सदक्षकम् ॥ १२५ ॥

विभन्धा वने भवेदम्नी तन्पञ्चातु वृषन्तीमयेत् । भगजे छागहन्ता न छागचोत्प्रनिप्र

पूयकुण्डे वर्षशतं स्थित्या नावृष्टान्ता प्रजेत् । छागञ्च वर्षदर्वन्तं कदा भवति मानव

शतुशस्त्रेण तिष्ठन्त तदा मुक्तो भवेद् द्वितः ।

दृसापदादि धादानं कृत्वाऽपदरते पुनः ॥ १२८ ॥

स भयन्तेच्छयोनी न मुक्त्या न नरकं प्रजेत् ।

एकाकी मिष्टमभ्राति कालपूर्व प्रजेद् ध्रुवम् ॥ १२९ ॥

तत्र वर्षशतं स्थित्या प्रेतो वर्षसदक्षकम् ।

तदा भपति जन्मैकं मक्षिका च पिपोलिका ॥ १३० ॥

जन्मैकं समरक्षीष जन्मैकं मधुमक्षिका । जन्मैकं परलक्ष्मैव जन्मैकं दंश पच च ॥

जन्मैकं मशकश्चैष जन्मैकं पूतिकः स्मृतः ।

जन्मैकं तल्पकीटञ्च तदा शूद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ १३२ ॥

असद्व्युदिव्यांधियुक्तो तदा मुक्तो भवेद् द्विजः ।

तैलचोरस्तैलकारो भूर्ध्न कौटस्त्रिजन्मकम् ॥ १३३ ॥

तदा भवेत् स्वर्णकारो जन्मैकं दुष्टमानसः । विश्वैकलिपिकर्ता च भक्ष्यदातुर्वर्धनं हरेत्

समःकुण्डे वर्षशतं स्थित्या स्वर्णवणिग् भवेत् ।

जन्मैकञ्च दुराचारो जन्मैकं करणो भवेत् ॥ १३५ ॥

कायस्थेनोदरस्थेन मातुर्मांसं न खादितम् ।

तत्र नास्ति कृपा तस्य दन्ताभायेन केवलम् ॥ १३६ ॥

स्वर्णकारः स्वर्णवणिक् कायस्थश्च व्रजेश्वर । नरेषु मध्ये ते धूर्ताः कृपाहीना महीतले

हृदयं क्षुरधारामं तेषां नास्ति च सादरम् ।

शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतव्यं च तौ ॥ १३८ ॥

सुबुद्धिः शिष्ययुक्तश्च शास्त्रज्ञो धर्ममानसः । न विश्वसेत्तेषु तात स्वात्मबल्याणहेतवे  
सीमापहारो दुष्टश्च भूमिचोरश्च हिंसकः ।

भूमिदानापहारी च कालसूत्रं ब्रजेद् ध्रुवम् ॥ १४० ॥

पष्टिवर्षसहस्राणि क्षुत्पिपासार्दितः स्थितः ।

ततोऽपि तानि नामानि विष्टायां जायते कृमिः ॥ १४१ ॥

ततो भवेदसच्छूद्रो जन्मैकश्च ततः शुचिः । तस्माज्जानैः साधधानं भवेत्प्राज्ञश्च यत्नतः  
रक्तवस्त्रापहारी च जन्मैकं रक्तकीटकः । ततः शूद्रश्च जन्मैकं ततो विप्रो भवेच्छुचिः

त्रिसन्धपहीनो विप्रश्च प्रातःशायी च यो नरः ।

सन्ध्याशायी दिवाशायी यज्ञसूत्रापहारकः ॥ १४४ ॥

अशुद्धसन्ध्याकारी च वेदवेदाङ्गनिन्दकः । तद्विद्वदः स्वर्गमार्गस्त्रिजन्म पतितो द्विजः ॥

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी कुम्भीपाके ब्रजेद् ध्रुवम् ।

वर्षाणाञ्च त्रिलक्षञ्च पच्यते तत्र पीडितः ॥ १४६ ॥

दिवानिशं प्रदग्धश्च तत्तैले च दारुणे । ततो भवेद्योनिकीटो पुंश्चलीनाञ्च पातकी ॥  
पष्टिवर्षसहस्राणि चाहारं तस्य तन्मलम् ।

ततो भवति चाण्डालो जन्मलक्षं पमेण च ॥ १४८ ॥

ततः शूद्रो मलकुष्ठं जन्मैकश्च ततः शुचिः ।

सोऽपि विप्रो व्याधिशेषस्वीर्षपर्वण्टनाच्छुचिः ॥ १४९ ॥

असच्छूद्रश्च भवति सोऽस्थाने सुरपूजिते । दत्त्वा देवाय नैवेद्यमपवित्रञ्च मानयः ॥  
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं संपूज्य यपतो भवेत् । दुर्बलेन भवेदग्धः कुत्सितेन च कुत्सितः

अङ्गहानो दग्धिरव व्याधियुक्तरव मानयः ।

मध्रदद्या च निर्माणे निर्माणसदृशं फलम् ॥ १५२ ॥

सृष्टस्वगोशकृत्पिण्डैस्तथा बालुक्यापि वा ।

दृत्या लिङ्गं सहस्रपूज्य यसेत् फलरायुषं दिधि ॥ १५३ ॥

ततो भवति विप्रश्च महाप्राज्ञश्च भूमिमान् । राजा भवेद्भारते च लिङ्गानां शतपूजनात्



सहस्रवृत्तनाम्नोऽपि लग्ने निश्चिनं पश्यत् ।

विभक्त्या च सुनिर्गम्योऽपि शत्रोर्भागे भवेत् ॥ १५१ ॥

न तदीशान्तरं गच्छेत् न पूजिपीडयाः । वृत्तने चान्निवृत्तया चाप्यनिरिक्तं पश्यन्तं  
मानेन दानेन विप्राणां भोजनेन च । नारायणार्जुनयोश्च विप्रजातिभ्यश्च कर्मणा  
भग्निरिक्तेन तपसा षण्डितो ब्राह्मणो भवेत् ।

षण्डितो ब्राह्मणश्चैव वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥ १५२ ॥

जन्मपुण्येन जायते भग्नं भुवि । तस्योद्भिर्स्पर्शनेनैव सद्यःपूता वसुन्धरा ॥१५३॥  
तीर्थाः कृपन्ति तीर्थानि जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः ।

स्वपुंसाश्च सहस्रञ्च पुनर्नानि श्रुतां धृतम् ॥ १६० ॥

पापेन वैद्यजन्मैव दुष्कृतसोऽपि ब्राह्मणः ।

दुष्कृतसस्तथा वैद्यो व्यालप्राही त्रिजन्मसु ॥ १६१ ॥

क्रूरो दुराचारी द्वेषा च सुरविप्रयोः । स भवेन् कुटिलव्यालो वर्षाणाञ्चसहस्रकम्  
पुंश्लीलम्पटानाञ्च दूर्ता या कामिनी व्रज ।

कालसूत्रे पर्वशतं स्थित्वा च गोधिका भवेन् ॥ १६३ ॥

वेकंगोधिका भूष्या हरिणश्च त्रिजन्मसु । जन्मैकं महिषश्चैव जन्मैकं महृकोभवेत्  
वेकं गण्डकश्चैव शृगालश्च त्रिजन्मसु । परकीयतडागश्च सूत्रशस्यं ददाति च ॥

स भवेन्नरजातिश्च कच्छपश्च त्रिजन्मसु ।

वृषामांसश्च यो भुङ्क्ते मत्स्यलुब्धश्च ब्राह्मणः ॥ १६६ ॥

भुङ्क्ते मांसमदत्तश्च स मीनश्च मृगो भवेत् ।

वर्षाणाञ्च सहस्रञ्च तात भुक्त्वा च किस्मिपम् ॥ १६७ ॥

रोगोवाच्युचिर्मूढा स पुनर्ब्राह्मणोभवेत् । एकादशीचिहीनश्च ब्राह्मणः पठितोभवेत्  
ह्यस्य द्विगुणं दत्त्वा तेन पापेन मुच्यते । ममजन्मदिने चैव यो भुङ्क्ते मानवोऽपि

श्रीलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ।

भुक्त्वा च नरकं सर्वं पश्चाद्याण्डालतरं व्रजेत् ॥ १७० ॥

एवञ्चशिवरात्रौ च धीरामनवमीदिने । उपचासासमर्पश्च हविष्यान्नं समाचरेत् ॥

ततो शक्ती दुर्बलश्च भोजयेद्ब्राह्मणानपि ।

हृत्वा महोत्सवं पुण्यं मदीयं पातकाच्छुचि ॥ १७२ ॥

तस्माच्चलेन कर्तव्यं नामसङ्कीर्तनं मम । गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः ॥

श्वापदः शतजन्मानि भवेच्च निशि भोजनात् ।

अदीक्षितो द्विजश्चैव शङ्खचिह्नः शुको भवेत् ॥ १७४ ॥

अनुद्धाही द्विजश्चैव राजहंसो भवेद्ध्रुवम् । त्रिचक्रापहारी च मयूरश्च त्रिजन्मसु

तैजःपात्रापहारी च भवेत्कारण्डवक्षिरम् । सुराणां प्रतिमाचरोऽप्यन्धश्च सप्तजन्मसु

दक्षिणे व्याधियुक्तश्च चधिरध्यापि कुट्टकः । स्त्रीतैलमधुमांसञ्च रवौ वा पञ्चपर्वसु ॥

सेवते यो महामूढो घञदंष्ट्रं व्रजेद्ध्रुवम् ।

पातकी दुःखितस्तत्र वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥ १७८ ॥

ततो भवति म्लेच्छश्च चाण्डालः सप्तजन्मसु ।

व्याधियुक्तस्ततः शूद्रो ब्राह्मणश्च ततः शुचिः ॥ १७९ ॥

तस्माच्चज्ञानं भोक्तव्यं भारते धर्मभीरुणा । ब्राह्मणञ्च सुरं दृष्ट्वा न नमैद्यो नराधमः ॥

याचज्जीवनपर्यन्तमशुचिर्षयनो भवेत् । अभ्युत्थानं न कुर्वते दृष्ट्वा चागतब्राह्मणम् ॥

स भवेद्ब्रह्मघाती च सप्तजन्मसु निश्चितम् । शिवद्वेषी कुक्कुटश्च देवलः सप्तजन्मसु ॥

पितृदेवार्चनं हन्ति वेदोक्तं ज्ञानदुर्बलः । स याति नरकं पापी वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥

ततश्च शीर्यं भुक्त्या तीर्थकाकस्त्रिजन्मसु । त्रिजन्मसु शृगालश्च तीर्थे भुङ्क्ते शयं यज

त्रिजन्मसु भवेत् सोऽपि तीर्थेषु शयनक्षकः ।

शवानां करमादत्ते कर्मणा कृतपातकी ॥ १८५ ॥

नित्यं सुरार्चनं हृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः । मुग्धश्च नार्चयेद्भक्त्या तस्मै नाश्रं ददाति यः

स भवेद्देषलो दुःखी देवरापेन पातकी । नित्यं सुरार्चनं हृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः

पूजाफलं न लभते देवद्रोही स दारुणः । दीपनिर्घाणकर्ता च खद्योतः सप्तजन्मसु ॥

भतीधमत्स्यलुब्धध्याप्यनैवेद्यञ्च खादति ॥ १८८ ॥

स भवेन्मन्त्रपाङ्गुल मातारः सप्तजन्मसु ।

गोर्णाहर्गा कर्णोत्तमा भ्रातृपत्नी विहङ्गमः ॥ १८१ ॥

षट्को धान्यभोरश्च मांसभोरश्च कुञ्जरः । कविप्रहर्ता विदुषो मण्डुकः सप्तजन्मसु ।

असत्कविप्रोमविप्रो मनुजः सप्तजन्मसु । कुप्री मवेश जन्मैकं कृकत्यासद्विजन्मसु ।

जन्मैकं परलभ्ये ततो वृक्षपिर्वालिका । ततः शूद्रश्च घैश्यश्च क्षत्रियो ब्राह्मणस्तथा ।

कन्यापिकपकारी च अत्रुयर्णो हि मानवः ।

सद्यः प्रयाति तामिस्रं यावन्वन्द्रदिवाकरौ ॥ १८३ ॥

ततो भवति ध्यायन् मांसपिकपकारकः । ततो व्याधिर्मयेत्पश्चाद्यो यथा पूर्वजन्मनि

मन्नामधिकर्यो विप्रो न हि मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।

मृत्युलोके च मन्नाम स्मृतिमात्रं न विद्यते ॥ १८५ ॥

पश्चाद्भवेत्सो गोयोनी जन्मैकं ज्ञानदुर्बलः ।

ततश्छागास्ततो मेयो महिषः सप्तजन्मसु ॥ १८६ ॥

महाचक्षी च कुटिलो धर्महीनश्च मानवः । जन्मैकं तैलकारश्च कुम्भकारस्तथैव च ॥

मिथ्याकलङ्कचका च देवब्राह्मणनिन्दकः । स भवेत् स्वर्णकारश्च रजकः सप्तजन्मसु

ब्राह्मणक्षत्रविदूशूद्राः कुरिसताः शौचघर्जिताः ।

जन्म तेषां म्लेच्छयोनीं घर्षाणामयुतं तथा ॥ १८९ ॥

कामतो योपितां श्रीणीस्तनास्यं यश्च पश्यति ।

स भवेद् दृष्टिहीनश्च परत्रापि नपुंसकः ॥ २०० ॥

विप्रोऽभिचारकर्ता च हिंसको ज्ञानदुर्बलः । यात्येवमन्धतामिखं घर्षाणामयुतं तथा

तदा भवति दैवज्ञोऽप्यप्रदानी च दुर्मतिः । ततः शूद्रो भवेद्विप्रो भोगेन कर्मणस्तथा ॥

शास्त्रज्ञाता च दैवज्ञो मिथ्या घटति लोभतः ।

स भवेश ध्रुवं ज्येष्ठो वानरः सप्तजन्मसु ॥ २०३ ॥

अनेकजन्म तपसा भारते ब्राह्मणो भवेत् ।

सुबुद्धिरतिधर्मिष्ठो धर्महीनश्च पातकी ॥ २०४ ॥

स्यधर्मनिरतो विप्रः वरमाद्य द्रुताशानाम् ।  
पवित्रश्रमातिनेतृभ्यो लग्नाद्गीतः सुरः सदा  
मदीयु च यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा ।  
पुरीषु च यथा क्षारी यथा ज्ञानिषु शङ्कटः ॥

शास्त्रेषु च यथा वेदा यथाश्पत्तयश्च पार्थ्वे ।

मम पूजा तपस्यासु प्रनेष्यतरानं तथा ॥ २०३ ॥

तथा जातिषु सर्पासु प्राह्वजः धेनु घष च ।

विप्रपादेषु तीर्थानि पुण्यानि च प्रतानि च ॥ २०८ ॥

विप्रपादरजः शुद्धं पापध्याधिपिमर्दनम् ।  
शुभार्शार्थघनं तेषां सर्वकल्याणकारणम् ॥

एतत्ते कथितं तात विपाकः कर्मणामहो ।  
यथाधुनं यथाज्ञानं तद्दीर्घं निशामय ॥२१०॥

धृत्या धर्मविपाकश्च पात्रकृत्य सुवर्णकम् ।

दपासस्मै च रौप्यञ्च वस्त्रं साम्यूर्मप च ॥ २११ ॥

सुवर्णशतकं दपात् सद्यो देही च गोबुज्यम् ।

रौप्यं वस्त्रञ्च सामूलं मत्प्रोत्था प्राह्वजाय च ॥ २१२ ॥

इति धीमद्वैवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीरुणजन्मखण्डे

मगधप्रदसंवादे कर्मविपाकवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

## पङ्कशीतितमोऽध्यायः

### केदारकन्याविचरणम् ।

नन्द उवाच ।

केदारकन्याप्रस्तावात् कथितं कर्मकर्तनम् ।

वृत्त्या वृथीणां प्रसङ्गेन तद्गु ध्यासेन पद प्रभो ॥ १ ॥

केदारकन्या सा का वा को वा केदारभूवतिः ।

कस्य वंशो च तज्जन्म तन्मे ध्याध्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

• ब्रह्मवैवर्तपुराणम् •

श्रीमगवानुवाच ।

पुरादौ ब्रह्मणः पुत्रौ मनुः स्वयम्भुवस्तथा ।

तस्य हस्त्री शतरूपा च धन्या मान्या च योषिताम् ॥ ३ ॥

तौत्तानपादौ तयोः पुत्रौ यभूवतुः । उत्तानपादपुत्रश्च ध्रुव एव महायशः ॥४॥  
तौ नन्दसावर्णिः केदारश्च तदात्मजः । सतद्वीरपतिः श्रीमान् केदारो वीर्यवः स्वयम्

रक्षानिमित्तेन तत्सभायां सुदर्शनम् । गवां लक्षं नवं शुद्धं स्वर्णं ऋद्धञ्च भूषितम् ॥

घह्निशुद्धानि घस्त्राणि दत्तानि घरुणेन च ।

सुघर्णानां तथा लक्षं सर्वशस्यां घसुन्धराम् ॥ ७ ॥

रत्नञ्च मुक्ताञ्च हीरकं परमं तथा । माणिक्यमश्वरत्नानां लक्षं लक्षञ्च हस्तिनाम् ॥

यं प्रवालं मिष्टान्नं शतधान्याचलं घरम् । नित्यं नित्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ च रत्नभूषणम्

लक्षं ब्राह्मणानां भोजयामास नित्यशः । जलभोजनपात्राणि सुघर्णानां ददौ नृपः ॥

घर्णानां यज्ञसूत्रमङ्गुलीयकमुत्तमम् । भासनं स्वर्णरत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥१॥

ब्राह्मणानाञ्च लक्षञ्च सूपकारं नृपस्य च । ब्राह्मणानां द्विलक्षञ्च परिवेषणकारकम् ।

पुत्रदुःख्या मधुदुःख्या दधिदुःख्या मनोहराः ।

गुह्यदुःख्या दुग्धदुःख्या नित्यं प्रार्थनमीप्सितम् ॥ १३ ॥

प्रातरारम्य सन्ध्यान्तं विप्राणां भोजनं तथा ।

दुःखिनां मिश्रुक्ताणाञ्च धनदानं यद्योचितम् ॥ १४ ॥

जन्ममूलाशनो राजा वैष्णवश्च जितेन्द्रियः । सर्वं मर्दणं कृत्वा जपेन्माञ्च दिवानि

एकदा गृहकारश्च तमुवाच नृपेभ्यग्म् । विप्राणां भोजनायैव दशलक्षमुपस्थितम् ॥१॥

ब्राह्मणाभाय रुशमन्नं यद् प्रभो । कुर्यन्तु भक्षणं ते ये विप्राः स्यादित्ता नृ

पण्य च । यो राजा तच्छ्रुतगुणः स एव मण्डलेभ्य

मलदशगुणो राजा राजेन्द्रः परिकीर्तितः ।

राजेन्द्रानां पञ्चलक्षं नित्यं केदारसंसदि ॥ १६ ॥

प्रभृत्यारत्नमानिषयं मुक्ताहारं मर्गाश्वरम् । गजराजमश्वरत्नं केदाराय करं ददौ ॥

कमला कलया जाता यश्चकुण्डसमुद्रवा । घह्निशुद्धांशुकाभाना रत्नभूषणभूषिता ॥२१॥

कामुकी कामिनीध्रेष्ठा कन्या कामललोचना ।

कन्याऽस्मि ते महाराजेत्युपाच नूपतिञ्च सा ॥ २२ ॥

राजा सम्पूज्यतां भक्त्या तस्यौ पत्नी सम्प्यं च ।

सा विशाय प्रभूं तातं कृत्वा च विनयं मुदा ॥ २३ ॥

ययौ पुण्यधनं रम्यं तपसे यमुनान्तिकम् । तत्तपस्यावनं यस्मात् तस्माद्दृष्ट्वावनंस्मृतम्

तपसा वरयामास मां वरञ्च धरं धरम् । प्रह्ला ददौ धरं तस्यै पश्चात् कृष्णं लभिष्यसि

सा चैकदा नदीतीरे घसन्ते सस्मिता सती । शयाना पुष्पशय्यायां रत्नाभरणभूषिता ॥

प्रह्ला परीक्षितुं ताञ्च साध्वोञ्च सुमनोहराम् । ददर्श कन्या रहसि युवानं पुरुषं परम् ॥

चन्द्रनीक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । सस्मितं कामुकं रम्यं रमणीनाञ्च वाञ्छितम् ॥

यथा वोड्दशवर्षीयं कुमारं कनकप्रभम् । कीटिकन्दर्पलीलामं पीताम्बरधरं धरम् ॥

शरत्पार्यणचन्द्रास्यं शरत्पद्मसुलोचनम् । दृष्ट्वा तञ्च समुत्थाय वासयामास सत्रिधौ

पूजयामास भक्त्या च फलं मूल ददौ मुदा ।

सुवासितं जलं दत्त्वा प्रणनाम मुदान्विता ॥ ३१ ॥

पूजां गृहीत्वा मुदितः सादरं तामुवाच ह ।

विप्ररूरी च भगवान् प्रज्वलन् प्रह्लतेजसा ।

कामुकीनाञ्च काम्यञ्च सर्तीनां दुष्करं व्रज ॥ ३२ ॥

धर्म उवाच ।

भवती कस्य कन्या वा किं ते नाम मनोहरे ।

किं करोषि रहस्येव तन्मे कथितुमर्हसि ॥ ३३ ॥

कस्य हेतोस्तपस्या ते किं वा वाञ्छसि सुन्दरि ।

धरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ३४ ॥

वृन्दोवाच ।

विप्र केदारकन्याऽहं वृन्दा वृन्दावने स्थिता । तपःकरोमि रहसि चिन्तयामि हरिपतिम्

वसुभंश २ द्वे भाग्ये हरेयंकुण्डलादिः ४ ३८ ४  
भोजीके त्रिभुज्यासि भीरवशीपदगत्य च । किञ्चिन्मोक्षोन्मन्य परिपूर्णत

ब्रह्मस्वरूपा परमा मूलप्रकृतिरीश्वरी । नारायणी चिष्णुमाया वैष्णवी सा सनातनी ॥

यन्मायया जगद् भ्रान्तमनित्ये भ्रमते सदा ।

सा स्तौति भक्त्या यं देवं बृन्देऽप्यङ्गे दिवानिशम् ॥ ५५ ॥

स्तौति भक्त्या स्वशक्त्या च गजवध्नः पङ्कतनः ।

ध्यायतेऽयं गणेशश्च सर्वादी यस्य पूजनम् ॥ ५६ ॥

भगवान् सर्वदेशो ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः । सिद्धेन्द्रेषु च देवेन्द्रे योगीन्द्रे ज्ञानिनां गुरोर्

नगणेशात् परो विद्वान् गणेशश्च सुराधिपः । सरस्वतीं च यं स्तोतुमशक्ता परमेश्वरी

दिवानिशं पादपद्मं भक्त्या पद्मां न सेवते । यत्कटाक्षाज्ञात्सर्वं परिपूर्णतमं शिवम् ॥

यद्गयाद्वाति घातोऽयं सूर्यस्तपति यद्गयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निमृत्युश्चरति जन्तुषु

पृथ्वी सेवया यस्य सर्वाधारावसुन्धरा । समुद्रानिश्चलाःशैला यस्य भीताश्च सुन्दरि ॥

सीर्यंसारा च सा गङ्गा पवित्रा मुक्तिदायिनी । जगतां पावनी देवी यस्य पादाब्जसेवया

पवित्रा तुलसी देवी स्मरणाद्यस्य सेवनात् ।

नवग्रहाश्च दिक्पाला भीता यस्य प्रतापवतः ॥ ६३ ॥

ग्रहाण्डेषु च सर्वेषु ब्रह्मचिष्णुशिवात्मकाः । अन्ये ये ये सुरेशाश्च शैवाद्या मुनयस्तथा

केचित्कलास्वरूपाश्चाप्यंशरूपाश्च वेतनः । केचित्कलांशाः कृष्णस्य केचिश्च परमात्मनः

पतिमिच्छसि कल्याणि प्रकृतेः परमीश्वरम् ।

गोलोके राधिकासाध्यो नान्येषाञ्च कदाचन ॥ ६६ ॥

मां भजस्य महाभागे नृपाणामीश्वरं पतिम् । यलघन्तश्च देवेभ्यो दैत्येभ्यश्च धरानने ॥

सुखानि यानि कल्याणि त्रिषु लोकेषु सन्ति वै ।

भुञ्च तान्येव सर्वाणि मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ६८ ॥

सप्तसामर्यपारे च काञ्चनी रुचिरा घरे । देवानां क्रीडनार्थाय विधात्रा निर्मिता पुरी ॥

सत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह । महेन्द्रस्यप्रियवचनं पुष्पोद्यानसमन्वितम् ॥ ७० ॥

गच्छ स्वर्णमयीं लड्डुं नानारत्नविभूषिताम् ।

सत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७१ ॥



कं सुवसनं नन्दकं पुष्पभद्रकम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७२ ॥

हरं वापि क्षीरोदं वा मनोहरम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७३ ॥

कं ब्रह्मलोकं रम्यं सन्न रहस्थलम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥

नेलयं रम्यं महेन्द्रसारनिर्मितम् । सुगन्धिगुक्तं सततं शुद्धञ्चन्दनवायुना ॥ ७५ ॥

मालती यूथिका रम्या केतकी माधवी तथा

चारुचम्पकपुष्पाणां गन्धेन सुमनोहरम् ।

तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥ ७६ ॥

तां भ्रमराणाञ्च मधुरध्वनिसंयुताम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥

। वरुणास्यैश्च वायोरिव यमस्य च । धनेश्वरस्य षष्ठेश्च धर्मस्य शशिनस्तथा ॥

सुरस्यं लोकमेतेषां मध्ये देवि यथेच्छसि ।

तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७८ ॥

पि मणिद्वीपं रम्यं चन्द्रसरोवरम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ८० ॥

इत्येवमुक्त्वा सम्भोक्तुं गच्छन्तं तं छलेन च ।

न वास्तवपरिक्षार्थं सतीत्यं योधितुं प्रज ॥ ८१ ॥

उवाच सा नृपसुता कोपचक्रास्यलोचना ।

द्वितं सत्यं योगयुक्तं धर्मार्थञ्चय शस्करम् ॥ ८२ ॥

धीशून्दीषाच ।

कुलमहामाग धेष्टो जातियु ब्राह्मणः । ब्राह्मणानां तपोमूलं सत्यं वेदमत्तं धृतिः ॥

परस्त्रीसहसम्भोगः स्वभावध्याप्यधर्मिणाम् ।

अधर्मेणैव हे विप्र दुष्टो भद्राणि पश्यति ।

मत्तः सपत्ने जपति समूलस्यो वितरयति ॥ ८४ ॥

प्रतानां गमने यत्नात्कारेण निश्चितम् । मानुषाणां मयैरसद्यो ब्रह्महरपाशर्तमयेन

तोषाके पश्यते च यापयन्नुदिषाकरौ । प्रदग्धस्त्रैलतलेषु न मृतःसूक्ष्मरेहनः ॥ ८६ ॥

यमनृतेषु लोहदण्डे न मूर्धनि । क्षणं सुखं विदुः सर्वनाशस्य कारणम् ॥

अगम्यागमनं दुःखं धर्मिणी नैव चाऽऽहति । क्षमस्व गच्छ भद्रन्ते ब्राह्मण ज्ञानदुर्लभ ॥

यथा दीपशिलां दृष्ट्वा कीटः पतति निश्चितम् ।

मिष्टं दृष्ट्वा यद्दिशाग्रे लुब्धमीनो मृगो यथा ॥ ६० ॥

यथा विपाक्तं भक्ष्यञ्च भुङ्क्ते भोक्ता बुभुक्षितः ।

गृह्णाति दुष्टो दुष्टञ्च विपकुम्भं पयोमुखम् ॥ ६१ ॥

तथा दृष्ट्वा परस्त्रीणां मुखपद्मं मनोहरम् । विनाशवीजं मोहेन भ्रान्तीं भवति लग्नपटः ॥

मुखञ्च रुचिरं स्त्रीणां धोणीयुग्मं स्तनं तथा । कामाधारं नाशवीजमधर्मस्थलमेव च ॥

भगं नरककुण्डञ्च लालामूत्रसमन्वितम् । दुर्गन्धियुक्तं पापञ्च यमदण्डस्य कारणम् ॥

यथा लिङ्गं विशत्येव पापयोर्नो च योषिताम् ।

तथा पुमान् विशत्येव रौरवे च युगे युगे ॥ ६५ ॥

रहस्यज्ञापदं दृष्ट्वा मां त्वं धर्षितुमिच्छसि । अत्रैव सर्वदेवाश्च लोकपालाश्च ब्राह्मण ॥

जाज्वल्यमानो धर्मश्च साक्षी शास्ता च कर्मणाम् ।

यमश्च दण्डकर्त्ता च सर्वापत्तौ हरिणा स्वयम् ॥ ६७ ॥

स्वयंकृष्णश्च धर्मात्मा ज्ञानरूपोमहेश्वरः । दुर्गाबुद्धिर्मनो ब्रह्मा चेन्द्रियाणि सुरास्तथा

सर्वप्राणिषु तिष्ठन्ति साक्षिणः कर्मणां द्विज ।

क गुप्तं क रहस्यं वा ब्राह्मण ज्ञानदुर्लभ ॥ ६६ ॥

क्षमस्वगच्छभद्रन्ते अवध्याश्चद्विजातयः । शक्ताऽहंभस्मसात् कर्तुं गच्छयत्सयथासुखम्

तपस्यासु मम गतमष्टोत्तरशतं युगम् । नास्ति गोत्रं मत्पितृश्च न माता न पिता मम

सर्वान्तरात्मा भगवान् कृष्णो रक्षति मां द्विज ।

कृष्णेन स्थापितो धर्मो माञ्च रक्षति नित्यशः ॥ १०२ ॥

आदित्यश्च तथा चन्द्रः पवनश्च हुताशनः । ब्रह्मा शम्भुर्मगवती दुर्गा रक्षति मां सदा

येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः । मयूराश्चित्रिता येन स मे रक्षांकरिष्यति

अनाथबालवृद्धानां रक्षकाः सर्वदेवताः ।

नारीबुद्ध्या न मां धर्मस्त्यक्त्या गच्छेद्दि सर्वदा ॥ १०५ ॥

मां मातुर्परित्याग्य मन्त्रं क्लृप्तं यथास्तुतम् ।

इत्येवमुक्त्वा देवी सा मन्त्रोक्तं तत्र धमं यथा ॥ १०६ ॥

भाग्यान्तममममोक्तं वा गानं बोधनेनच । शत्रोर्धेतिन सा कोपात् प्रत्यक्षोऽप्यगोमय

क्षयो मय दुरागात् हे पारितु क्षयो मय । पुनः शत्रुं स्वयं गुरों धारयामाम यत्नः ॥

धममिमममारे तान् तथैव जगदीश्वराः । मातृगुरुरितिसम्भवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

धर्मो द्रष्टुं कलाकारं मन्त्रमुच्चिद्दोश्वराः ॥ १०७ ॥

कृत्वा मोदेर्लागदृशं बुद्ध्या भीतं यथा विष्णुम् ।

निश्चेष्टं मन्त्रिनं क्षयं स्त्रीकोपाग्निना यत्न ॥ ११० ॥

धर्मगयानुवाच ।

क्षमस्य पुन्द्रे मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरे । धर्मं जीवय मद्भक्तं रक्ष धर्मं पतिव्रते ॥१११॥

प्रार्थोपाच ।

ध्यान्तपूर्णं जगत् सूर्यं पिना धर्मं कभूष ह ।

कभिपती चन्द्रसूर्यो च शोभस्वापि यस्तुन्धरा ॥ ११२ ॥

महादेव उवाच ।

प्रनष्टञ्च जगत्सूर्यं पिना धर्मेण सुन्दरि । धर्मं जीवय मद्भक्ते स्वस्ति तेऽस्तु धरानने ॥

सूर्य उवाच ।

धरं धृणीष्व मद्भक्ते यत्ते मतसि धाम्भितम् । धर्मं जीवय मद्भक्ते रक्ष सृष्टिं पतिव्रते

अनन्त उवाच ।

धर्मं करोषि तपसा कथं धर्मं विहिंसि च । धर्मं जीवय मद्भक्ते सर्वधर्मो भवेत्तव ॥११५॥

चन्द्र उवाच ।

द्वेजकपधरो धर्मस्त्वां परीक्षितुमागतः । ब्रह्मणा प्रेरितश्चैव निर्दोषश्च विहिंसितः ॥

महेन्द्र उवाच ।

तपसोपार्जितो धर्मो धर्मेण च फलं नृणाम् ।

कथं फलञ्च तपसां यदि धर्मः क्षयं गतः ॥ ११७ ॥

घरण उवाच ।

धर्मं जीवय धर्मिष्ठे धर्मं रक्ष सनातनम् । निष्फलं कर्मिणां कर्म विना धर्मेण धार्मिके  
पवन उवाच ।

जगत् पूतं कुह शुभे धर्मं जीवय स्वाग्रनम् । धर्मं प्रतटे तपसां तवापूर्यं विनङ्क्ष्यति ॥  
घड्डिरुवाच ।

स्वधर्मोपार्जनं कर्तुमागतासि च भारतम् । विहंसि धर्ममहात्वा पुनर्जीवय सुन्दरि ॥  
यम उवाच ।

वेदोक्तकर्मकर्तृणामहं विश्वे परानने । धर्मानुसारात् फलदो धर्मं जीवय सत्वरम् ॥  
पानां पवनं ध्रुत्वा समुत्थाप पतिप्रता । नमस्कृत्य सुरेशांश्च तानुवाच तपस्विनी ॥  
धृन्दोवाच ।

महं देव न जानामि धर्मं ब्राह्मणरूपिणम् । हृतः क्षयो मया कोपाग्नां परोक्षितुभागतः  
तीक्ष्णयामि ध्रुवं धर्मं युष्माकञ्च प्रसादतः । इत्येवमुक्त्वा सा धृन्दा चेत्युवाच प्रजेश्वर  
ः सत्यं यदि मम सत्यञ्च विष्णुपूजनम् । तेन पुण्येन सवोऽत्र द्विजो भवतु विज्वरः  
यदि मे च भवेत्सत्यं ब्रतं सत्यं तपः शुचिः । तेन पुण्येन सत्येन द्विजो भवतु विज्वरः  
यदि नारायणः सत्यः सर्वात्मानित्यविग्रहः । ज्ञानात्मकः शिवः सत्यो द्विजो भवतु विज्वरः  
ब्रह्म सत्यञ्च ते देवाः प्रकृतिः परमा यदि । यज्ञः सत्यस्तपः सत्यं द्विजो भवतु विज्वरः  
इत्येवमुक्त्वा सा धृन्दा धर्मं कोद्रे चकार च । तं दृष्ट्वा च फलाक्षयं करोद् हृदया सती ॥  
पतस्मिन्नन्तरे मूर्त्तिधर्मभाष्यां शुचाकुला । निपत्य विष्णुपादे च शिरसा येन्युवाचसा  
मूर्त्तिदयाच ।

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो ह्यर्पां कुह । तूष्णं जीवय कान्तं मे जगन्नाथ हृदयस्य  
पतिर्दीना च या नारी पापिनी सा भयार्णवे । यथास्थं चक्षुर्विरतं प्राणदीना यथातनूः  
मित्रं ददाति द्वि पिता मित्रं भ्राता मित्रं सुतः ।

मित्रं बन्धुमित्रं माता सर्वदाता पतिः प्रभुः ॥ १३३ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्र तस्थौ करोद् च । उवाच धृन्दाभगवान् सर्वात्मा प्रकृतेः परः

श्रीमगधानुवाच ।

एषयागुम्भसता लब्धं वापदागुम्भ प्रह्लादः । तदेव देहि धर्माय गोलोकं गच्छ सुन्दरि  
तपानया च तपसा पदचान्माञ्च लभिष्यसि । पद्माद्गोलोकमागत्य धारादे च परातने

पृथमानुमुता एषञ्च राधाच्छाया भविष्यसि ।

मत्पत्नीशश्च रापाणस्त्वां विवाहे प्रदिष्यति ।

मां लभिष्यसि रामे च गोपीनी राधया सह ॥ १३७ ॥

राधा श्रीदामशापेन पृथमानुमुता यदा । सा चैव वास्तवीराधा एषञ्चछायास्वरूपिणी  
विवाहफाले रापाणस्त्वाञ्च छायां प्रदिष्यति ।

त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा सान्तरधाना भविष्यति ॥ १३६ ॥

राधेवेति विमूढाश्च विशास्यन्ति च गोकुले ।

स्वप्ने राधापदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बहूयाः ॥ १४० ॥

स्वयंराधा मम क्रीडे छायारापाणफामिनी । विष्णोश्चवचनं ध्रुत्वाददापायुश्चसुन्दरि  
उत्तस्थौ पूर्णधर्मश्च ततकाञ्चनसन्निभः । पूर्वस्मात्सुन्दरः श्रीमान् प्रणाम परात्परम्  
वृन्दोषाच ।

देवाः शृणुत मद्वाक्यं दुर्लभ्यं सावधानतः ।

न हि मिथ्या भवेद्वाक्यं मदीयञ्च निशामय ॥ १४३ ॥

क्षयो भवेतिवाक्चञ्च मयोक्तं कोपमीतया । धारत्रयं पुनर्वक्तुं धारयामास भास्करः  
सत्ये च परिपूर्णोऽयं यथा पूर्णो यथाऽधुना । त्रिपादश्चापि त्रेतायां द्विपादो ह्यपरेतथ  
एकपादश्च धर्माऽयं कलेश्च प्रथमे हरे । शेषः कलापोद्दशांशः पुनः सत्ये यथा पुरा ॥

त्रिनिर्गतं मम मुखात् क्षयस्तेन ततः क्रमात् ।

पुनरुक्ते च मनसि धारयामास भास्करः ॥ १४७ ॥

तेनैव हेतुनायञ्च कलिशेषे कलामयः । तथा शतः स्थितो दुर्गे कलिशेषे तथा ध्रुवम्  
एतस्मिन्नन्तरे नन्द दहशुद्धैतारथम् । गोलोकादागतं वैगादतीवसुन्दरं शुभम् ॥ १४६ ॥

अन्तर्गतं श्रीकृष्णविक्रमम् । त्रिपादत्रिपादमन्ताभिर्यत्रैश्वर्यं श्येतचामरैः ॥

सप्तशतितमोऽध्यायः ] \* सनत्कुमारादिभिः सह कृष्णस्य समागमः \* १००६

विभूयितं भूषणैश्च रुचिरै रत्नदर्पणैः । नत्वा हरिं हरं वृन्दा ब्रह्माणं सर्वदेवताः ॥ १५१ ॥

समारह्य रथं द्रष्टुं गोलोकञ्च जगाम सा ।

देवा जग्मुश्च स्थस्थानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १५२ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
महासप्तदशोऽध्यायः ।

## सप्तशतितमोऽध्यायः

सनत्कुमारादिभिः सह कृष्णस्य समागमः ।

नन्द उवाच ।

त्वां क्षातुं न हि शक्ताश्च वेदा वेदप्रभुं स्वयम् । सुरा ब्रह्मोराशेवाद्या मुनिसिद्धान्यस्तथा  
को भवानिति विशातुं परं कौतूहलं मम । तत्सर्वं स्वात्मपाथाध्यं निर्जने कथय प्रभो  
श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णं द्रष्टुं मुनीश्वराः । आजग्मुः सहसा घटस उचलन्तो ब्रह्मतेजसा  
पुलहश्च पुलस्त्यश्च क्रतुश्च भृगुरङ्गिराः । प्रचेताश्च वशिष्ठश्च दुर्वासाः कण्व एव च ॥  
कात्यायनः पाणिनिश्च फणादो गौतमस्तथा । सनकश्चसनन्दश्च तृतीयश्चसनात्तनः

कपिलश्चासुखिश्चैव घायुः (घोहुः) पञ्चशिखस्तथा ।

विश्वामित्रो वाल्मीकिश्च कश्यपश्च पराशरः ॥ ६ ॥

विभाण्डको मरीचिश्च शुक्रोऽत्रिश्च बृहस्पतिः ।

गार्ग्यश्चापि तथा घात्स्यो व्यासश्च जैमिनिस्तथा ॥ ७

मितपाक् ऋष्यशृङ्गश्च याज्ञवल्क्यःशुकस्तथा । सीमरिःशुद्धजटिलो भरद्वाजः सुमद्रकः  
मार्कण्डेयो लोमशश्च आसुरिश्च विट्कृष्णः । अष्टाचक्रः शतानन्दो घामदेवश्च भागुरिः  
संयत्तश्चाप्युत्तम्यश्च नरोऽहञ्जापि नारदः । जाबालिः परशुरामश्चाप्यगस्त्यः पैल एव च

मुषामन्तुर्गोमुषोऽप्युषामन्तुः धृतप्रथाः । मैत्रेयश्चन्द्रगववर्णेन परब्रह्मविरिण्ये च ॥ ११ ॥

तान् हृद्वा सहस्रोत्थाय ममाश्रय पुत्रात्रलिः ।

मिहासनेषु श्येषु घासयामास सादरम् ॥ १२ ॥

पूजयामास विधिषु कुशालप्रभ्रपूर्वकम् । परत्प्राञ्ज सम्भाष्य मध्ये कृष्ण उवाच सः  
एतस्मिन्नन्तरेकृष्णस्नेतोराशिं ददर्श सः । दृष्ट्वाग्ने च मुनयोऽप्याकाशे च समुत्थ्वल्म्  
तेजसोऽप्यन्तरे घनस कुमार् फलकप्रभम् । यथैवं पञ्चयणैवं ज्ञानं बालकमीप्सितम् ॥  
आयिषंभूय सहसा समाप्यये च नारद । उल्लिखमानं सहसा तं हृद्वा मुनिपुंगवाः ॥ १३ ॥  
पणेमुर्गुणयः सर्वे शौरिश्च प्रणनाम तम् । सन्मिनं श्लिष्यनेत्रञ्च वृत्त्या युक्तिञ्च सादरम्  
स सर्पान्नाशिषं वृत्त्या समुपास च संसदि । उवाच तांश्च शौरिश्च भगवन्तं सनातनम्  
सनत्कुमार उवाच ।

मद्रं धो मुनयः शश्वत्पसां फलमीप्सितम् ।

कृष्णस्य कुशलप्रश्नं शिष्यीजस्य निष्फलम् ॥ १६ ॥

नांप्रतं कुशलं घञ्च दर्शनं परमात्मनः । भक्तानुरोधाद्देहस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥ २० ॥  
नेर्गुणस्य निरीहस्य सर्वपीजस्य तेजसः । माराधतरणायैव चादिर्मूलस्य साग्रतम् ॥  
श्रीकृष्ण उवाच ।

तीरधारिणश्चापि कुशलप्रश्नमीप्सितम् । तत्कथं कुशलप्रश्नं मयि विप्र न विद्यते ॥  
सनत्कुमार उवाच ।

तीरे प्राकृते नाथ सन्ततञ्च शुभायहम् । नित्यदेहे क्षेमबीजे शिवप्रश्नमनर्थकम् ॥ २३ ॥  
श्रीभगवानुवाच ।

यो यो विप्रहकारी च स च प्राकृतिकः स्मृतः ।

देहो न विद्यते विप्र तां नित्यां प्रकृतिं विना ॥ २४ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

कविन्दृग्धवा देहास्ते च प्राकृतिकाः स्मृताः । कथं प्रकृतिनाथस्य पीजस्य प्राकृतं ययुः  
र्वपीजस्य सर्वादिर्मथांश्च भगवान् स्थयम् । सर्वेषामवताराणां प्रधानं धीजमव्ययम्

हृत्वा घदन्ति वेदाश्च नित्यं नित्यं सतातनम् ।

ज्योतिःस्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम् ॥ २७ ॥

मायया सगुणञ्चैव मायेशं निर्गुणं परम् । प्रवदन्ति च वेदाङ्गास्तथा वेदविदः प्रभो ॥  
श्रीकृष्ण उवाच ।

साम्प्रतं वासुदेवोऽहं रक्तवीर्याश्रितं विभुः । कथं न प्राकृतो विप्र शिवप्रथमभीष्टितम्  
सनत्कुमार उवाच ।

वासुः सर्वनिवासश्च किम्बानि यस्य लोमसु । तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतीरितः  
वासुदेवेति तन्नाम वेदेषु च चतुर्षु च । पुराणेष्वितिहासेषु यात्रादिषु च दृश्यते ॥ ३१ ॥  
रक्तवीर्याश्रितो देहः क्व ते वेदे निरूपितः । साक्षिणो मुनयश्चैव धर्मः सर्वत्र एव च ।  
साक्षिणो मम वेदाश्च रविबन्द्री च साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥

शृगुरवाच ।

सत्यं घदसि विप्रेन्द्र त्वमेव वैष्णवाग्रणीः । स्वागतं कुशलं शश्वत्किं निमित्तमिहागतः  
सनत्कुमार उवाच ।

ध्रुवतां मुनयः सर्वे ध्रुवतां कृष्ण साम्प्रतम् । अहो येन निमित्तेन चातिशीघ्रमिहागतः  
श्रीकृष्ण उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ किन्निमित्तमिहागतः । सर्वं जानासि सर्वज्ञ त्वमेव विदुषां पर ॥  
सनत्कुमार उवाच ।

धन्योऽसि भगवन् शश्वन्मान्योऽसि जगतामपि ।

सर्वेश्वरेश्वरोऽसि त्वं त्वत्परो नास्ति पितृवतः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

यज्ञानाञ्च प्रतानाञ्च तपस्यानां द्विजेभ्यः । सततं फलदाताऽहं दक्षिणाभिः सहेति च  
इति श्रुत्या कुमारश्च जवेन प्रथमो च ते । मर्यादाऽऽभ्यर्थञ्च घवनं धारयामासतेऽपितम्  
श्रुय ऊचुः ।

हे सिद्धेन्द्र महाभाग-कुमार-करुणामय । का शङ्कितकथा प्रोक्ता भगवत्कृष्णसन्निधी



तं पुत्रं दृष्ट्वाभ्यां धुमं किमपि कुत्रचिन् । अर्गीय इत्या पिस्तीर्णमम्भारं पशुमर्हः  
 तस्मिन्प्रसारे वामा पार्यंत्या मह शङ्करः । भगवन्तभ्यामि धर्मश्च श्रीगूर्णश्च निशाकरः  
 भाक्षित्या यस्यो रद्रा दिक्पालायाश्च देवताः ।

श्रीकृष्णं सहस्रोत्थाय सम्भाष्य च वृषभ्यः वृषभ्यः ॥ ४२ ॥

पुष्पाक्षिप्तं दृष्ट्वा वृषयामास भक्तिजः । प्रणेमुर्मुग्धयः सर्वे शीघ्रं शम्भुं विधिश्चिया  
 स्पर्श सग्भागा यभूप द्विजदेवयोः । समुपासासने मय्यैः कुमारः फलकप्रभः ।  
 कथां कथितुमार्भे संसदि द्विजदेवयोः ॥ ४३ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

शतञ्च गोलोके न दृष्टो राधिकापतिः । ततो गतञ्च वीकुण्डे तत्र नास्ति चतुर्भुजः  
 गतश्च क्षीरोदस्तत्र नास्ति हरिःस्वयम् । परिध्रान्तोविषण्णश्च स्नानक्षीरोदधेस्तटे  
 पिस्तीर्णं बालुकामध्ये फच्छपः शतयोजनः ।

भीतश्च कम्पितस्तत्र दुष्टो दुःखी च शुष्कितः ॥ ४४ ॥

सारितो राघवेण मीनेन च महात्मना । धन्योऽस्मीति मयोक्तश्चनाहंधन्य उवाच सः  
 क्षीरोदसागरो धन्यो जन्तवो यत्र महिधाः । मत्तोमहत्तराश्चापि हासंस्याश्च महामुने  
 धन्योऽसि क्षीरोद तैर्नोक्तो नाहमेव च । धन्या यसुन्धरादेर्षी यत्रैव सतसागराः  
 धन्याऽसि यसुधेत्युत्तवा नाहमेवेत्युवाच ता ।

धन्योऽनन्तो ममाधारः कृष्णांशो नागराङ्घ्रिभुः ॥ ५१ ॥

प्रमूर्धनां मध्येऽहं मूर्ध्नि शूर्यं च सर्वपः । धन्योऽसि शेषेत्युक्तोऽयंधन्योनाहमुवाच वै  
 धन्यः कूर्मो ममाधारो गच्छ तत्रैव वै मुने ! ।

धन्योऽसि कूर्मेत्युक्तोऽयं नाहं धन्योऽस्मि वै मुने ! ॥ ५३ ॥

नाधार्यमाणोऽहं मत्तो धन्यतमश्च सः । धन्योऽसित्युक्तः पवनो धन्योनाहमुवाच सः  
 धन्यश्च भगवान् ब्रह्मा विधाता जगतामपि ॥ ५४ ॥

धन्योऽसि तत्र धाता च धन्यो नाहमुवाच सः ।

धन्यो महेश्वरो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ५५ ॥

सर्वाराध्यः सर्वपूज्यो धर्मरूपः सनातनः । कालकालश्च संहर्ता स्वयं मृत्पुञ्जवः प्रभुः  
धन्योऽसि तत्र शम्भुश्च धन्यो नाहमुवाच सः ॥ ५६ ॥

सर्वादी पूजनं यस्य ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ।

धन्यो गणेश्वरो देवो देवानां प्रवरः परः ॥ ५७ ॥

सिद्धेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवेन्द्रेषु धृती धृतम् । योगीन्द्रेषु च प्राज्ञेषु न गणेशात् परः पुमान्  
तिम्रगास्तु यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा । वेदप्रणिहितो धर्मोऽहं धर्मस्तद्विपर्ययः ॥

वेदो नारायणः साक्षाद्भयं पूज्या व्यवस्थया ।

तस्माच्छास्त्राणि सर्वाणि पुराणानि च सन्ति वै ॥ ६० ॥

तस्मान्निरूपितो धर्मो चेतिहासश्च संहिताः ।

तस्माद् धन्याश्च ते वेदा षडन्यत्र मनीषिणः ॥ ६१ ॥

चूर्यं धन्याश्च मान्याश्चेत्युक्ता वेदा मया ततः । ऊचुस्तेन धर्मं धन्या यज्ञसङ्घञ्जसांप्रतम्  
धर्मं व्यवस्थाकर्तारो यज्ञोद्यः फलदः स्वयम् ।

तस्माद्भग्न्यः स एवापि गच्छ गच्छ महामुने ॥ ६३ ॥

धन्योऽसि यज्ञसङ्घोऽसौत्युक्तस्तत्र मया विमो ।

ऊचुस्ते न धर्मं धन्या धर्म्यं कर्म शुभं मुने ॥ ६४ ॥

शुभकर्मासि धर्म्यं त्वं नाहं धन्यमुवाच तन् । कर्मणो फलदातारो कर्महेतुश्च साम्प्रतम्  
धातुर्विधाता भगवान् सर्वादिः सर्वकारकः ।

श्रीगुरुणः परमात्मा च धन्यो मान्यश्च निश्चितम् ॥ ६६ ॥

धर्मालयं ततो गत्वा न द्रुवा जगदीश्वरम् । मधुरामागतं द्रष्टुं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥  
यज्ञानां रूपसां चैव यतानां शुभकर्मणाम् । ईश्वरं फलदातारं परमात्मानमेव च ॥ ६८ ॥

कारणं कारणानाञ्च ब्रह्मादीनां पुरःसरम् ।

धन्योऽसीति मयोक्तश्च दक्षिणामिः सदेति च ॥ ६९ ॥

इत्युक्तेन भगवता कथितं सर्वकारणम् । दक्षिणामिश्च फलदो हृत्पत्नी ह्यदक्षिणः ॥  
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य सत्काले तु न दीयते । एकरात्रे व्यतीते तु तद्वानं द्विपुणं भवेत्

मासे शतगुणं प्रोक्तं क्रिमासे तु सद्व्रतकम् । सर्वदसरे षण्तीने तु स द्वाता नरकंयं  
 पर्याणाञ्च सद्व्रतञ्च भूत्रकुण्डे निपात्य च । ततश्चाण्डालतां याति ध्याधियुञ्च पातकी  
 दात्रा न दीयते दानं गृहीत्रा चेन्न गृह्यते । उर्मां स्त्री नरकं प्राप्ती पर्याणाञ्च सद्व्रतकम्  
 यजमानश्च चाण्डालो प्राह्मणस्तत्पुरोहितः ।

ध्याधियुक्तायुर्मां स्त्री च पापिनो कर्मणः फलात् ॥ ७१ ॥

सर्वे देषाश्च मुनयो जहसुर्घिस्मयं ययुः । घिस्मयञ्च ययौ नन्दस्तस्याज पुत्रमाचकम् ।  
 दरोद च समामध्ये लज्जाह्रीनः शुचाकुलः । त्यज मोहमितीत्युक्त्वा बोधयामास पार्वतं  
 श्रीनन्द उवाच ।

धमूल्यरत्नं माणिक्यं यथा कुज्जन्मनो गृहे । स्थितं तेन च देवेश तथाहं घञ्चितः प्रभो  
 ममापरार्धं भगवन् क्षमस्य प्रवृत्तेः परः । यास्यामि न पुनर्गोहं गोकुलं यमुनातटम् ॥  
 घृन्दावनं तथा घासं क्रीडाघासं गदाप्रज । तत्सर्वं च यशोदाया गोपिकान्तिकमेव च  
 किं प्रवीमि यशोदां च प्रेयसीं राधिकामपि । प्रेमपात्रञ्चगालौघं घद भो कथयामिकिम्  
 इत्युक्त्वा च समामध्ये मूर्च्छां संप्राप नारद ।

क्रोडे कृत्वा जगन्नाथो बोधयामास तत्क्षणम् ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भग-  
 वन्नन्दसंवादे यज्ञादौ दक्षिणाकालनियमवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कृष्णस्य शक्तिदर्शनेन नन्दस्य मोहः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

चेतनं कुरु हे तात हे तात चेतनं कुरु । जलबुद्बुदघत् सर्वं संसारं सचराचरम् ॥ १ ॥

त्यज मोहं महामाग मायां स्तौहि परात्पराम् ।

ब्रह्मास्वरूपां परमां सर्वमोहनिवृन्तनीम् ॥ २ ॥

मुक्तिप्रदो महाभागो विष्णुमायां सनातनीम् । त्रिपुरस्य वधे घोरे महायुद्धे भयाकुले ॥

येन स्तोत्रेण शम्भुश्च तथा दैत्यं जघान सः ॥ ३ ॥

स्तोत्रराजं प्रदास्यामि सर्वमोहनिवृन्तनम् । सर्वबाञ्छाप्रदं तन्द श्रूयतामत्र संसदि ॥

श्रीतन्द उवाच ।

सर्वविघ्नविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । विभूतये च यशसे नृणां वाञ्छितसिद्धये ॥ ५ ॥

स्तोत्रमेकं महादेव्या जगन्मातुर्जगतप्रभो । परं दुर्गतिनाशिण्या गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥

देहि मह्यं विनीताय भक्त्याय भक्त्यत्सल । वेदानां जनकस्त्वञ्च निर्गणश्च परात्परः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु वक्ष्यामि वैश्वेन्द्र स्तोत्रं यत्परमाद्भुतम् । सर्वविघ्नविनाशायं मोहपाशनिवृन्तनम्

रणव्रस्तेन विमुना शङ्करेण पुराकृतम् । नारायणोपदेशेन प्रेरितेन च ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

शत्रुप्रस्तं शिवं द्रष्ट्वा स ब्रह्माणमुवाच ह । उवाच शङ्करं ब्रह्मा रथस्थं पतितं रणे ॥

शूरसङ्कुटशान्त्यर्थं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । मूलप्रकृतिमायां तां स्तीहि ब्रह्मस्वरूपिणीम्

हरिणाप्रेरितोऽहं च त्वां वदामि सुरेश्वर । विना शक्तिसहायेन को वा कं जेतुमाश्वरः

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा दुर्गां संस्मार शङ्करः । पुटाञ्जलिपरोभूत्वा भक्तिप्रदात्मकन्धरः

स्नातः पादौ च प्रक्षाल्य धृत्वा धीते च पाससी ।

आचान्तः कुराहस्तश्च शुचिर्विष्णुं च संस्मरन् ॥ १४ ॥

[श्रीमहादेव उवाच ।

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गतिनाशिनि । मां भक्तमनुरक्तञ्च शत्रुप्रस्ते कृपामयि ॥ १५ ॥

विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि । ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि ॥ १६ ॥

त्वञ्च ब्रह्माद्रिदेवानामम्बिके जगदम्बिके । त्वं साकारे च गुणतो निराकारेचनिर्गुणात्

मायया पुरयस्त्वञ्च मायया प्रकृतिः स्वयम् । तयोः परं ब्रह्म परं त्वं विमरि सनातनि

वेदानां जननी त्वञ्च साधित्री च परात्परा ।

धैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥ १६ ॥

मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोन्दे कामिनी शेषशायिनः ।

स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीम्व्यं राजलक्ष्मीश्च भूकले ॥ २० ॥

नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदैयता । सूर्यशस्यस्वरूपा त्वं  
रागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती । प्राणानामधिदेवी त्वं  
गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि । गोलोकाधिष्ठातृदेवी  
धीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी । शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना त्वि  
दक्षकन्या कुत्र कल्पे कुत्र कल्पे च शैलजा ।  
त्वमेव गङ्गा तुलसां त्वञ्च स्वाहा स्वधा सती ।  
त्वदंशांशांशकलया सर्वदेवादियोपितः ॥ २६ ॥

स्त्रीरूपञ्चातिपुरतः देवि त्वञ्च नपुंसकम् । वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा  
षट्को च दाहिका शक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी । सूर्य्यतेजःस्वरूपा च प्रभाकरा  
गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी ।  
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसङ्घे च निश्चितम् ॥ २६ ॥

सृष्टौ सृष्टिम्यरूपा च पालने परिपालिका । महामारी च संहारे जले च जल  
ध्रुत्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी ।  
तुष्टिम्यञ्चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धा त्वञ्च क्षमा स्वयम् ॥ ३१ ॥  
शान्तिस्त्यञ्च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्तिरेव च ।  
राजा त्वञ्च तथा माया भुक्तिमुक्तिस्वरूपिणी ॥ ३२ ॥

सूर्यशक्तिम्यरूपा त्वं सूर्यसम्पत्प्रदायिनी ।  
वेदेऽनिर्यचनीया त्वं त्वां न जानाति कश्चन ॥ ३३ ॥  
महप्रपक्वस्त्रयां स्तोतुं न च शक्तः सुरैश्वरि ।  
वेदा न शक्ताः को विद्वान् न च शक्ता सरस्वती ॥ ३४ ॥  
स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः ।  
विः स्तोमि पद्मपत्रेण रणत्रस्तो महेश्वरि ॥ ३५ ॥

कृपां कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु । इत्युक्त्वा च सकरुणं रथस्थे पतिते रणे ॥३६॥  
 आचिर्धभूष सा दुर्गा सूर्यकोटिसमप्रभा । नारायणेन कृपया प्रेरिता परमात्मना ॥३७॥  
 शिवस्य पुरतः शीघ्रं शिवाय च जयाय च । इत्युवाच महादेवी मायाशक्तयाऽसुरं जहि  
 धीदुर्गोवाच ।

घरं वृणीष्व भद्रन्ते यस्ते मनसि वाञ्छितम् । भवान् वर, सुराणाञ्च जयं तुभ्यं ददाम्यहम्  
 धीमहादेव उवाच ।

सप्तो भवतु दैत्यस्य इति मे वरमीश्वरि । देहीति वाञ्छितं दुर्गे परमाये सनातनि ॥  
 भगवत्युवाच ।

हरिस्मर महाभाग जयदैत्यं जगद्गुरो । स्वयं विधाता भगवान् त्वमेव ज्योतिरीश्वरः  
 एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्ब्रह्मरूपो बभूव ह । दधार कलया मूर्ध्ना शूलपाणे रथं विभुः ॥  
 ऊर्ध्ववक्रमथोप्रञ्च प्रकृतिञ्च चकार सः । शस्त्रं ददौ मन्त्रपूतमुद्धार ततो रथम् ॥  
 शिवः शस्त्रं गृहीत्वा च ध्यात्वा विष्णुं महेश्वरीम् ।

जघान त्रिपुरं शीघ्रं स पपात महीतले ॥ ४४ ॥

तुष्टुः शङ्करं देवाश्चक्रुश्च पुष्पवर्षणम् । दुर्गा तस्मै ददौशूलं पिनाकं विष्णुरैव च ॥  
 ब्रह्मा शुभाशिपञ्चैव मुनयश्चापि हर्षिताः । ननृतुर्देवताः सर्वा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे तात स्तवराजमनुत्तमम् । विष्णुं चिन्मकरं शीघ्रं शत्रुसंहारकारणम् ॥  
 परमेश्वर्यजनकं सुखदं परमं शुभम् । निर्वाणमोक्षदञ्चैव हरिभक्तिप्रदं ध्रुवम् ॥४८॥  
 गोलोकयासदञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदं धरम् । स्तोत्रराजप्रपठनात् प्रसन्ना पार्वती सदा ॥  
 लोममोहकामक्रोधकर्मूलनिहन्तनम् । बलबुद्धिकरञ्चैव जन्ममृत्युधिगारणम् ॥ ५० ॥  
 धनपुत्रप्रियामृमिसर्वसम्पत्प्रदं नृणाम् । शोकदुःखहरञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदं धरम् ॥ ५१ ॥  
 स्तोत्रराजप्रपठनात् महाबन्ध्या प्रसूयते । कथनान्मुच्यते दुःखी भयान्मुच्येत निश्चितम्  
 रोगाद्भिमुच्यते रोगी दरिद्रश्च धनी भवेत् ।

दायाग्निमध्ये न मृतो मग्नः पीतो महार्णवे ॥ ५३ ॥

दस्युप्रस्तो रिपुप्रस्तो द्विभ्रजन्तुसमन्वितः । स्तोत्रेणानेन घैश्वेन्द्र कल्याणं लभते नरः

तैजसानां यथा रत्नमाश्रमाणां द्विजो यथा । नदीनाञ्च यथा गङ्गा मन्त्राणां प्रचरो यथा  
 तुलसी सर्वपत्राणां धराणाञ्च वसुन्धरा पुष्पाणां पारिजातञ्च काष्ठानां चन्दनं यथा  
 विष्णुपूजा च तपसां व्रतेश्चैकादशी यथा । ज्ञानिनाञ्च यथा शम्भुःसिद्धानाञ्च गणेश्वरः  
 देवानाञ्च यथा विष्णुर्वेदा शास्त्रेषु तन्त्रतः । देवीनाञ्च यथादुर्गा शान्तानां कमला  
 सरस्वती च विदुषां राधिका सुन्दरीषु च । तथा स्तोत्रेष्विदं स्तोत्रं नातः परतरं ।  
 पुरा दत्तं ब्रह्मणे च पुष्करे सूर्यपर्वणि । दैत्यप्रस्ताय भीताय सर्वदुर्गहरं परम् ॥ ६६ ॥  
 शिवाय शत्रुप्रस्ताय ददौ ब्रह्मा मदाज्ञया । शिवश्च सनकादिभ्यः पुरा दुर्घाससे ददौ  
 सनत्कुमारो भगवान् रूपया भीतमाय च । पुलहाय पुलस्त्याय ददौ चाङ्गिरसे मुदा  
 तथा चन्द्राय सूर्याय सूर्यश्वापि यमाय च । यमश्च चित्रगुप्ताय रूपया च पुरा द  
 नित्यं पठिष्यसि स्तोत्रं गोलोकगमनाय वै ।

साक्षात्पश्यसि भो सात तामेव पार्वतीमिह ॥ ६४ ॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं पापिने गोपने कुरु । नारायणस्य भक्ताय शान्ताय विदुषे तत्  
 सर्वज्ञाय च विप्राय प्रदातव्यं प्रयत्नतः । विप्राय वृषवाहाय वृषलीपतये तथा ॥ ६६ ॥  
 शूद्राणां सूपकाराय शूद्रश्रद्धाभ्रभोजिने । कन्यायिक्रयिणे चैव ब्राह्मणाय विशेषतः ।  
 सर्वसिद्धिञ्च लभते सिद्धस्तोत्रो भयेद्यदि । दशायुतजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भयेश्वरः ।  
 अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृत्स्तम्भं मनसस्तथा । अश्वमेधसहस्राद्य पृथिव्याद्यप्रदक्षिणात्  
 स्नाभाच्च सर्वतीर्थानां स्तोत्रमेतच्च पुण्यदम् ॥ ६६ ॥

दत्तं तुभ्यं मया सात मम प्राणसमं ब्रह्म । स्तवर्नं कुरु पार्वत्याश्चेदानीं मम संसदि ॥  
 श्रीकृष्णस्य वचः ध्रुवा नन्दस्तुष्टाय पार्वतीम् ।

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वसम्पत्प्रदायिनीम् ॥ ७१ ॥

ददौ दुर्गां गोलोकयासमीप्सितम् । दुर्लभं परमं ज्ञानं धेद्वे यद्य धृते मुने ॥

गोकुण्डे च कृष्णभक्तिः सुदुर्लभाम् । तदास्यञ्चाप परतो महर्षेः सिद्धमेव च  
 परं दत्त्वा ययौ दुर्गां संभाव्य शम्भुना सह ।

जगुर्द्विपारथ मुनयः स्तुभ्या च नन्दनन्दनम् ॥ ७५ ॥

उवाच नन्दं श्रीकृष्णो ब्रज नन्दं प्रजान्वितः । प्रहृष्टस्त्वक्तमोहश्च षोडशेन दुर्लभेन च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
भगवत्प्रन्दसंवादे दुर्गाया वरप्रदानं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

## नवाशीतितमोऽध्यायः

नन्दं प्रति श्रीकृष्णवाक्यम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

गच्छ गच्छ गृहं गच्छ ब्रजराज ब्रजं ब्रज । सर्वतत्त्वं त्वया ज्ञातं दृष्टाञ्च मुनयः सुराः  
श्रुतं मे धन्यमाख्यानं नानाख्यानं सुदुर्लभम् ।

दुर्गायाः स्तोत्रराजञ्च जन्मपापनिहन्तम् ॥ २ ॥

स्थितं तत्त्वे निगदितं हर्षेण च सुखेन च । यत् कृतं बालभावेन चापराधञ्च तत्क्षम ॥३  
यत् सुखं न कृतं तात पित्रोश्च नृपमन्दिरे । कृतं सुखं तत्परञ्च स्वर्गादपि सुदुर्लभम् ॥

मर्दायं प्रियवाक्यञ्च प्रहृत्यं विनयं भयम् । परिहासं बहुतरं यशोदां गोपिकागणम् ॥५

बालकानां समूहञ्च राधाञ्चापि विशेषतः । एकत्र च स्थितं तेषु बन्धुधर्मेषु कर्मणा ॥६

इहैषापि सुखं भुक्त्वा गच्छ गोलोकमुत्तमम् ।

साह्रं यशोदया तात रोहिण्या गोपिकागणैः ॥ ७ ॥

गोपानां बालकैः साह्रं वृषभानेन गोपकैः

राधामात्रा कलाबल्या राधया सह यास्यसि ॥ ८ ॥

रथानां शतलक्षञ्च गोलोकादागतं पितः । अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम् ॥९॥

मणिमाणिक्यमुक्तानां मालाजालविभूषितम् ।

षड्विंशद्भागैश्चै रथैराच्छिन्नं पीतवर्णकैः ॥ १० ॥



तैत्तरीयानां यथा यज्ञमाध्रमाणां द्वित्रो यथा । नदीनाञ्च यथा गङ्गा मन्त्राणां प्रथो यथा  
 तुन्दरी सर्षपप्राजां पराजाञ्च वसुधरा पुण्यानां पारिजातञ्च काष्ठानां चन्दनं यथा  
 विष्णुपूजा च तपसां धनेभ्येकार्दमी यथा । ज्ञानिनाञ्च यथा शम्भुःसिदानाञ्च गणेश्वरः  
 देवानाञ्च यथा विष्णुर्वेदा शास्त्रेषु तन्त्रकः । देवीनाञ्च यथादुर्गा शान्तानां कमन्दा यथा  
 सारथ्याणां च विदुषां राधिका तुन्दरीणि च । तथा स्तोत्रेष्विदं स्तोत्रं नामः परतरं व्रज  
 पुरा दत्तं प्रहसनं च पुष्करे सूर्योपर्यंजि । दैत्यप्रस्ताय भीताय सर्वदुर्गहरं परम् ॥ ६० ॥  
 शिवाय शत्रुप्रस्ताय ददौ प्रह्ला मदाप्रया । शिवश्च सनकादिभ्यः पुरा दुर्वासमे ददौ ॥  
 शनत्पुमारो भगवान् कृपया भीतमाय च । पुण्ड्राय पुण्ड्रियाय ददौ चाङ्गिरसे मुदा ॥  
 तथा चन्द्राय सूर्योय सूर्योदयापि यमाय च । यमस्य निव्रजुताय कृपया च पुरा ददौ  
 निरयं पट्टिधसि स्तोत्रं गोलोकगमनाय ये ।

साक्षात्पश्यसि भो तात तामेव पार्वतीमिह ॥ ६४ ॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं पापिने गोपनं कुरु । नारायणस्य मत्तया शान्ताय विदुषे तय  
 सर्वज्ञाय च विप्राय प्रदातव्यं प्रयत्नतः । विप्राय वृषपाहाय वृषलीपतये तथा ॥ ६६ ॥  
 शूद्राणां सूपकाराय शूद्रधन्दाप्रमोजिने । कन्याविक्रयिणे चैव ब्राह्मणाय विशेषतः ।  
 सर्वसिद्धिञ्च लभते सिद्धस्तोत्रो भवेद्यदि । दशायुतत्रपेनेद्य सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः ।  
 अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृत्स्तम्भं मनसस्तथा । अश्वमेधसदस्याश्च पृथिव्याश्चप्रदक्षिणात्  
 स्नाभाञ्च सर्वतीर्थानां स्तोत्रमेतच्च पुण्यदम् ॥ ६६ ॥

दत्तं तुभ्यं मया तात मम प्राणसमं व्रज । स्तवनं कुरु पार्वत्याश्चेदानीं मम संसदि ॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा नन्दस्तुष्टाव पार्वतीम् ।

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वसम्पत्प्रदायिनीम् ॥ ७१ ॥

धरं तस्मै ददौ दुर्गा गोलोकवासिनीप्सितम् । दुर्लभं परमं ज्ञानं वेदे यन्न धृतं मुने ॥  
 राजेन्द्रत्वं गोकुले च कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम् । तदास्यज्ञाय परतो महत्त्वं सिद्धमेव च  
 धरं दत्त्वा ययौ दुर्गासंभाष्य शम्भुना सह ।  
 जामुर्वेवाश्च मुनयः स्तुत्या च नन्दनन्दनम् ॥ ७४ ॥

उवाच नन्दं श्रीकृष्णो व्रज नन्दं व्रजान्वितः । प्रहृष्टस्त्यक्तमोहश्च योधेन दुर्लभेन च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
भगवन्नन्दसंवादे दुर्गाया धरप्रदानं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

## नवाशीतितमोऽध्यायः

नन्दम्प्रति श्रीकृष्णवाक्यम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

गच्छ गच्छ गृहं गच्छ व्रजराज व्रजं व्रज । सर्वतस्त्वं त्वया ज्ञातं हृष्टाश्च मुनयः सुराः  
श्रुतं मे धन्यमाख्यानं नाताख्यानं सुदुर्लभम् ।

दुर्गायाः स्तोत्रराजञ्च जन्मपापनिवृत्तनम् ॥ २ ॥

स्थितं तत्ते निगदितं हर्षेण च सुखेन च । यत् कृतं बालभावेन चापराधञ्च तत्क्षम ॥ ३ ॥

यत् सुखं न कृतं तात पित्रोश्च नृपमन्दिरे । कृतं सुखं तत्परञ्च स्वर्गादपि सुदुर्लभम् ॥

मदीयं प्रियवाक्यञ्च प्रहृष्ट्वं विनयं भयम् । परिहासं बहुतरं यशोदां गोपिकागणम् ॥ ५ ॥

बालकानां समूहञ्च राधाञ्चापि विशेषतः । एकत्र च स्थितं तेषु बन्धुवर्गेषु कर्मणा ॥ ६ ॥

इहीयापि सुखं भुक्त्वा गच्छ गोलोकमुत्तमम् ।

सादं यशोदया तात रोहिण्या गोपिकागणैः ॥ ७ ॥

गोपानां बालकैः सादं धृपमानेन गोपकैः

राधामात्रा कलायत्या राधया सह यास्यसि ॥ ८ ॥

स्यानां शतलक्षञ्च गोलोकादागतं पितः । भ्रूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम् ॥ ९ ॥

भणिमानिष्यमुत्तानां मालाजालविभूषितम् ।

घहिरुद्रांशुषु रघुराच्छिन्नं पीतवर्णकैः ॥ १० ॥

चरै रम्यैर्वेष्टितं श्वेतचामरैः । सद्रत्नदर्पणैरभ्यैर्गोपिकामिष्य गोपकैः ॥ १० ॥

वेष्टितञ्च तदादृष्ट्वा कौतुकाद्याम्यसि ध्रुवम् ॥ ११ ॥

त्यक्तवा च पार्थिवं देहं दिव्यदेहं विधाय च ।

अयोनिसम्भवा राधा राधामाता कलावती ॥ १२ ॥

यास्यत्येव हि तेनैव नित्यदेहेन निश्चितम् ।

पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या कलावती ॥ १३ ॥

धन्या च सीतामाता च दुर्गामाता च मेनका ।

अयोनिसम्भवा दुर्गा तारा सीता च सुन्दरी ॥ १४ ॥

नेसम्भवास्ताश्च धन्या मेना कलावती । इत्येवं कथितं तात गोपनीयं सुदुर्लभम्

परोऽयं दत्तस्तुभ्यञ्च मया च दुर्गया तथा ॥ १५ ॥

नस्य घञः श्रुत्वा प्रत्युवाच ब्रजेश्वरः । पुनरेव जगन्नाथं तद्वक्तो भक्तपत्सलम्  
नन्द उवाच ।

राञ्च चतुर्णाञ्च यं यं धर्मं सनातनम् । क्रमेण कृष्ण विस्तीर्णं कृत्वा मां कथय प्रभो  
तोये मवेद्यद्यद्गुणदोषं कलेस्तथा । का गतिर्वा पृथिव्याश्च धर्मस्य प्राणिनां तथा  
य घञं श्रुत्वा हृष्टः कमललोचनः । कथां कथितुमारंभे विचित्रां मधुरान्विताम्  
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मवर्णने  
भगवन्नन्दसंवादे नवाशीतितमोऽध्यायः ।

नवतितमोऽध्यायः

चतुर्षु गानां धर्मादिकथनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

नन्द प्रवक्ष्यामि सानन्दमानसं यथा । कथां रम्यां तुमचुरां पुराणेषु परिष्कृताम्

परिपूर्णतमो धर्मो धार्मिकाश्च हृते युगे । परिपूर्णतमं सत्यं परिपूर्णतमा दया ॥ २ ॥

अतीवप्रज्वलद्गूपा वेदाश्चत्वार एव च । वेदाङ्गाश्चापि विविधाश्चेतिहासश्च संहिताः ॥

पुराणानि सुख्याणि पञ्चरात्राणि पञ्च च ।

रुचिराणि सुभद्राणि धर्मशास्त्राणि यानि च ॥ ४ ॥

विप्रा वेदविदः सर्वे पुण्यवन्तस्तपस्विनः । नारायणं ते ध्यायन्ते तन्मनस्का जपन्ति च

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्चतुर्वर्णाश्च वैष्णवाः । शूद्रा ब्राह्मणभृत्याश्च सत्यधर्मपरायणाः

राजानो धार्मिकाश्चैव प्रजापालनतत्पराः । गृहन्त्येव प्रजाताञ्च षोडशांशकलां नृपाः

करशून्याश्च विप्राश्च पूज्याः स्वच्छन्दगामिनः ।

सन्ततं सर्वशस्यादया रक्षाधारा वसुन्धरा ॥ ८ ॥

गुरुमक्ताश्च शिष्याश्च पितृमक्ताः सुतास्तथा । योपितः पतिमक्ताश्च पतिव्रतपरायणाः

ऋतौ सम्मोगिनः सर्वे न स्त्रीलुब्धा न लम्पटाः ।

न भयं दस्युर्बोर्घाणां न तत्र पारदारिकाः ॥ १० ॥

सत्यः पूर्णफलिनः पूर्णक्षीराश्च धेनवः । चलवन्तो जनाः सर्वे दीर्घाः सौन्दर्यसंयुताः ॥

लक्षवर्षायुषः केचित् पुण्यवन्तो ह्यरोणिणः ।

यथा विप्रा विष्णुभक्तास्त्रिवर्णा विष्णुसेविनः ॥ १२ ॥

जलपूर्णां नदा नद्यः सन्ततं कन्दरास्तथा । तीर्थपुनारश्चतुर्वर्णांस्तपःपूता द्विजातयः ॥

मनःपूताश्च निखिला खलहीने जगत्त्रयम् । सत्कीर्तिपरिपूर्णञ्च यशस्यं मङ्गलान्वितम्

पितरः सर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः । सर्वकालेष्वतिथयः पूजिताश्च गृहे गृहे ॥ १५ ॥

त्रिवर्णा विप्रमक्ताश्च विप्रमोजनतत्पराः । ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रमनूपरमकण्ठकम् ॥ १६ ॥

नारायणोत्कीर्तनेन हर्षयुक्तास्तदुत्सवे । न देवानां द्विजानाञ्च विदुषां तत्र निन्दकाः

नात्मप्रशंसकाः केचित्सर्वे परगुणोत्सुकाः । न शत्रवो जनानाञ्च सर्वे सर्वहितैषिणः ॥

पुष्ट्या घोषितश्चापि न हि भूर्खाश्च पण्डिताः ।

न दुःखिनो जनाः सर्वे सर्वेषां रक्षमन्दिणम् ॥ १६ ॥

मणिमार्णववरतनौघरत्नस्वर्णसमन्वितम् । न भिक्षुकां न रोगार्ताः शोकहीनाश्च हर्षिता

न हि भूयणहीनाश्च नरा नार्यश्च केचन । न पापिनो न घूर्ताश्च न क्षुधार्ता न कुत्सिताः  
जराहीनाः प्राणिनश्च शश्वद्यौवनसंस्थिताः । आधिभ्याधिविहीनाश्च निर्विकाराश्च देहितः  
यदुक्तो वै सत्ययुगे धर्मः सत्यं दयादिकम् । यादहीनश्च वेतायां सत्याहं द्वापेटपि च  
धर्मकपाच्च प्रथमे कलेश्चापि कृशो बलः । दुष्टानां दस्युर्चायां नामङ्कृतः प्रभवेद् वन ॥

अधर्मनिरताः केचिद्धीताः सङ्गोपिनस्तथा ।

भीता गुप्ताश्च पुंश्चलयो भीताश्च पारदारिकाः ॥ २५ ॥

धर्मिष्ठानां भयं शश्वदधर्मिष्ठाश्च कम्पिताः । स्वल्पधर्मरता भूपाः स्वल्पवेदरता द्विजाः ॥

व्रतधर्मरताः केचित्सर्वे स्वच्छन्द्यामिनः ।

यावत्तिष्ठन्ति तीर्थानि यावत्तिष्ठन्ति साधवः ॥ २७ ॥

यावत्तिष्ठन्ति ग्रामाणां देवाः शास्त्राणि पूजनम् ।

तावत्किञ्चित्तपः सत्यं स्वर्गधर्मांश एव च ॥ २८ ॥

कलेर्दोषनिषेस्तात गुण एको महानपि ।

मानसञ्च भवेत् पुण्यं सुकृतं न हि दुष्टतम् ॥ २९ ॥

तीर्थादिके गते तात नष्टो धर्मांश एव च । कलारूपश्च धर्मश्च यथा कुक्कां निशाकरः ॥

मन्द उपाय ।

तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्ठन्त्येष कियद्दिनम् ।

साधयो ग्राम्यदेवाश्च शास्त्राण्येतानि परसक ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कर्तो दशसहस्राणि हरिग्निष्ठति मेदिनीम् ।

देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम् ॥ ३२ ॥

तदर्धमपि तीर्थानि गङ्गादीनि मुनिश्चितम् । तदर्धं ग्रामदेवाश्च देवाश्च विभुवामपि ॥ ३३ ॥

अधर्मः परिपूर्णश्च तदग्ने च कर्तो पितः । एकवर्णां भविष्यन्ति वर्णाश्चात्पार एव च ॥

न मन्त्रपूनाडादश्च न हि सत्यं न च क्षमा । त्वीर्वांकागतो नित्यं ग्राम्यधर्मप्रधानः

न यज्ञसूत्रं क्रिष्टकं ब्राह्मणानाञ्च नित्यतः । सगव्याशास्त्रविहीनाश्च विप्रवशा धृता धमि

सर्वैःसार्धञ्च सर्वेषां भक्षणं नियमच्युतम् । अमध्यमक्षा लोकाश्च चतुर्वर्णाश्च लम्पटाः  
नारीषु न सती काचित् पुंश्चली च गृहे गृहे ।

करोतिःतर्जनं कान्तं भृत्यतुल्यञ्च कम्पितम् ॥ ३८ ॥

जारायदस्या मिष्टान्नं ताम्बूलं चस्त्रचन्दनम् । न ददात्येव चाहारं स्वामिने दुःखिनेपितः  
पुत्रेण मर्दिसतस्तातः शिष्येण भर्त्सितो गुहः ।

प्रजामिस्ताडितो भूपो भूपेन ताडिताः प्रजाः ॥ ४० ॥

दस्युचोरैश्च दुष्टैश्च शिष्टाश्च परिपीडिताः । शस्यहीना च वसुधा क्षीरहीनाश्च घेनवः ॥  
स्वल्पक्षीरं घृतं नास्ति नवनीतञ्च नित्यशः ।

सत्यहीना जनाः सर्वे नित्यं मिथ्या घदन्ति च ॥ ४२ ॥

शौचसन्ध्याशास्त्रहीना ब्राह्मणा वृषबाहकाः । सूपकाराश्च शूद्राणां शूद्राणां शयदाहकाः  
शूद्रह्योनिरताः शश्वच्छूद्रा विप्रबधूस्ताः । खादन्ति यस्य विप्रस्य भक्ष्यञ्च परिपावकाः  
मातुः परां तस्य पत्नीं-शूद्रा गृह्णन्ति लम्पटाः ।

भृत्यश्च हत्वा राजानं स्वयं राजा भविष्यति ॥ ४५ ॥

नारी हत्वा पतिं कामाद्भजेजारञ्च कौतुकात् ।

पुत्रश्च पितरं हत्वा स्वयं भूपो भविष्यति ॥ ४६ ॥

सर्वे स्वच्छन्दनिताःशिशुनोदरपरायणाः । बहूरा व्याधियुक्ताश्च कुतिसताश्च कुचैलकाः  
विभ्रुष्णमन्त्रलिप्ताश्च मिथ्यामन्त्रप्रचारकाः ।

जान्दिहीनाश्च गुरवो वयोहीनाश्च निन्दकाः ॥ ४८ ॥

राजानश्चापि भ्लेच्छाश्च यचना धर्मनिन्दकाः ।

सत्कीर्तिमपि साधूनां कुर्वन्त्युन्मूलनं मुदा ॥ ४९ ॥

पितृदेषद्विजातीनामतिथीनाञ्च नित्यशः । पूजा नास्ति गुरुणाञ्च पित्रोश्च पूजनंस्त्रियः  
स्त्रीयन्धूनां गौर्यञ्च स्त्रीणाञ्च सततं पितः ।

चौरः सत्कुलजातिश्च ब्राह्मणो देपहारकः ॥ ५१ ॥

मानं घहन्ति लोभेन युगे धर्मेण कौतुकात् । देषायतनहीनञ्च जगत्सर्वं मयाकुलम् ॥

वसुदेवउवाच ।

नन्द त्वं बलवान्बार्ता सद्व्यन्तुभ्य रम्या मम । त्वय्य मोहंशृङ्गञ्जयत्सख्यं  
प्राग्भूता गोकुल्याच्च मगुरा नास्मि वाच्यः । महोत्सवे सर्वानन्दे नन्द द्रष्टुं

धीदेवगुपान् ।

यथायमाययोः पुत्रस्तथैव भयतो ध्रुवम् । सालसः केन हे नन्द शुन्या देवो  
एकादशाब्दं सपन्तः स्थित्वा ते मन्दिरेसुप्तम् । कथंस्थन्नादिनेनैवशोकप्रस्तो  
तिष्ठ पुत्रेण सादंश्च मगुरायां कियद्दिनम् । पूर्णचन्द्राननं पश्य जन्म त्वं स

धीमगपानुपान् ।

गच्छोद्धप सुखंमद् भविष्यति तव प्रियम् । प्रह्वं गोकुलं गत्वा यशोदां रो  
गोपबालसमूहश्च राधिकां गोपिकागणम् ।

प्रधोधयाध्यात्मिकेन महत्तेन च शुचिच्छिदा ॥ ११ ॥

नन्दस्तिष्ठतु सानन्दं मन्मानुराग्नया शुचा । नन्दस्थितिं मद्दिनयं यशोदां कथ  
इत्येवमुवत्वा श्रीऋष्णः पित्रा मात्रा बलेन च ।

अकूरेण समं तूर्णं यथावाच्यन्तरे गृहम् ॥ १३ ॥

उद्धयो रजनीं स्थित्वा मथुरायाञ्च नारद । प्रमाते प्रययौ शीघ्रं रम्यं वृन्दावनं  
इति श्रीब्रह्मवैवर्तेमहापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीऋष्णजन्मखण्डे  
उद्धयप्रेषणं नाम चौकनघतितमोऽध्यायः ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

गोकुलं गत्वा तत् शोमादिदर्शनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गङ्गाञ्च मनसि ध्यात्वा दिगीशं तं महेश्वरम् ।

प्रजगामोद्भवश्चैव दृष्ट्वा मङ्गलसुखकम् ॥ २ ॥

शुभावदुन्दुभि घण्टां नादं शङ्खध्वनिं तथा । हरिशब्दञ्च संगीतं शुभाव मङ्गलध्वनिम् ।

पतिपुत्रयतीं सार्ध्वीं प्रदीपमाल्यदर्पणम् । पत्तिपूर्णतमं कुम्भं दधिलाजफलानि च ॥ ४ ॥

दूर्वाङ्कुरं शुक्रधान्यं रजतं काञ्चनं मधु । प्राह्वणानां समूहञ्च कृष्णसारं वृषं घृतम् ॥ ५ ॥

सयोमांसं गजेन्द्रञ्च नृपेन्द्रं श्वेतघोटकम् । पताकां नकुलं चायं शुक्रपुष्पञ्च चन्दनम् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वैवं पथि कल्याणं प्राप वृन्दावनं वनम् । ददर्श पुरतो वृक्षं भाण्डीरपटमक्षयम् ॥ ७ ॥

स्निग्धपूर्णं रक्तवर्णं पुण्यदं तीर्थमोप्सितम् ।

सुयेयान् बालकांश्चैव रक्तभूषणभूषितान् ॥ ८ ॥

घटतो बलहृत्प्रेति रुदनञ्चःशुचान्वितान् । तानाग्वास्य ययो दूरं प्रविश्य नगरं मुदा ॥

ददर्श नन्द शिविरं रचितं विश्वकर्मणा । मणिरत्नविनिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥

परिच्छिन्नं मनोरम्यं सद्भक्तकल्याणवितम् ।

द्वारं चित्रं चित्रित्राद्यं दृष्ट्वा च प्रविवेश सः ॥ ११ ॥

भवच्छ रघात्तुणं तस्थी तन्प्राङ्गणे मुदा । यशोदा रोहिणी शीघ्रं पप्रच्छ कुशलं परम् ।

प्रासनञ्च जलं गाञ्च मधुपर्कं दर्शो मुदा । क नन्दः क बलः कृष्णः सत्यं तन् कथयोद्धय ।

उद्धयः कथयामास सर्वं मद्रं क्रमेण च । सार्द्धञ्च बलहृत्पणाभ्यां नन्दः सानन्दपूर्वकम् ।

गायास्यति विलम्बेन कृष्णोपनयनापथि । युष्माकं कुशलं तत्त्वं पित्राय विधिपूर्वकम् ।

अहं यास्यामि मधुरां यशोदे शृगु साम्प्रतम् ।

धृत्या मङ्गलघाताञ्च यशोदा रोहिणी मुदा ॥ १६ ॥

प्राह्वणाय दर्शो रत्नं सुवर्णं षड्यमोप्सितम् । उद्धयं भोजयामास मिष्टान्नञ्च सुधोषणम् ।

मणिधोषुञ्च रत्नञ्च दर्शो तस्मै च हीरकम् । पाद्यञ्च पादयामास मद्रं नानाविधं तथा ॥

प्राह्वणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास परमानन्दपूर्वकम् ॥

शङ्करं पूजयामास विप्रद्वारा परं विभुम् । नानोपहारैर्नैवेद्यैः पुष्पपूजार्द्रापकैः ॥ २० ॥

चन्दनैर्षस्त्रताम्रलैर्मैयुगल्यपुत्रादिभिः । भयातो पूजयामास श्रोत्रन्दारण्यदेवताम् ॥



पोङ्गशोपचारैर्द्रव्यैश्च बलिभिर्विधिधैर्मुने ।

महिषाणां शतं शुद्धं छागलानां सहस्रकम् ॥ २२ ॥

मैषाणामयुतं शुद्धं युक्तमादाय पञ्चकम् । ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णशतं धेनूनाञ्च शतं तथा ॥  
प्रददौ दक्षिणां तूर्णं कृष्णकल्याणहेतवे । उद्धवं पूजयामास सादरञ्च पुनः पुनः ॥२४॥

समाशवास्य यशोदाञ्च रोहिणीं गोपबालकान् ।

बृहन्न गोपालिकाः सर्वाः प्रययू रासमण्डलम् ॥ २५ ॥

ददर्श रासं यच्चिरं चन्द्रमण्डलवर्तुलम् । श्रीरामकदलीस्तम्भैः शतकैरुपशोमितम् ॥२६॥

युक्तैश्च स्निग्धवसनैश्चन्दनानाञ्च पल्लवैः । पट्टस्त्रनिबद्धैश्च ध्रीयुक्तमाल्यजालकैः ॥२७॥

दधिलाजफलैः पट्टैः पुष्पैर्दूर्घाङ्कुरैरपि । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः परिसंस्वृतम् ॥ २८ ॥

वेष्टितं रक्षितं यद्वाद्गोपिकानां त्रिकोटिभिः ।

त्रिलम्बैः सुन्दरै रम्यैः संसिक्तं रतिमन्दिरे ॥ २९ ॥

लक्षगोपैः परिवृतं कृष्णागमनशङ्कितैः । यमुनां दक्षिणां कृत्वा प्रययौ मालतीवनम् ॥

चन्दनानां चम्पकानां यूथिकानां तथैव च ।

केतकीमाधवीनाञ्च घनं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३१ ॥

घकुलानां वज्रुलानामशोफानाञ्च फाननम् ।

महिकानां पलाशानां शिरीषाणां तथैव च ॥ ३२ ॥

धार्त्रीणां फाञ्जानानाञ्च फणिकानां घनं तथा ।

नागेश्वराणां विपिनं लघुङ्गानां तथैव च ॥ ३३ ॥

घनञ्च शाललाटानां द्वितालानां घनं तथा । पनसानां रसाटानां लाङ्गलीनां मनोहा

मन्दारफाननं रम्यं वार्मं कृत्वा च सन्धरम् । दृष्ट्वा कुन्दघनं रम्यं समप्राप्य मधुफानन

पुष्कोफिलानां शम्भेन मधुरैण समन्वितम् । मधुव्रतसम्पूहानां मधुरज्यनिर्गृतम् ॥३६॥

घन्यवृक्षैः परिवृतं माध्याकाधारमीप्सितम् ।

घानेन घन्यपुष्पाणां परितः सुरभीकृतम् ॥ ३७ ॥

लङ्कृष्ट्वा राजमार्गेण यशोदोक्तेन रागव्रतम् । ययौ शीघ्रं निरश्रितं बहस्यं वद्रीवनम् ॥

धीफलानाञ्च निम्बानां नारिद्राणां पत्रं तथा ।

दृष्ट्वा रक्तिमवर्णञ्च सुपक्वफलमीप्सितम् ॥ ३६ ॥

तदेव घामतः कृत्या विवेश कदलोवनम् । अतीवनिर्जने रम्ये ददर्श राधिकाश्रमम् ॥४०॥

मर्षान्द्राणाञ्च प्राकारं परिखादुर्गवेष्टितम् । अत्यगम्यं रिपूणाञ्च मित्राणां सुगमं सुखम्

गोप्यं सद्द्वेतमार्गाञ्च रक्षकैः परिरक्षितम् ।

नानाचित्रविचित्राद्वयं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥

मर्षान्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारोज्ज्वलं परम् । रत्नोद्धाररचितं रत्नास्तम्भैः सुशोभितम् ॥

रत्नसोपानसंसक्तमन्दिरेण मनोहरम् । भ्रूक्ष्यरत्नरचितं कलशैः परिशोभितम् ॥ ४४ ॥

घङ्गिगुह्यांशुकाभिश्च पताकामिः परिपृष्टम् । सद्गजदर्शणोत्कृष्टं चर्चितं श्वेतचामरैः ॥

ददर्श सिद्धद्वारञ्च युक्तं रत्नकपाटकैः । द्वारोपरि विचित्रञ्च रम्यं घृन्दाघनं घनम् ॥४६॥

कदम्बकाननं रम्यं तद्गङ्गाहरणादिकम् । विश्वकर्मविरचितं सुरम्यं रासमण्डलम् ॥४७॥

नानारत्नकुटीरञ्च गोपगोपीसमन्वितम् । रक्षितं गोपिकालशैर्वैश्रहस्तेर्मनोहरैः ॥ ४८ ॥

स्वच्छन्दाचरणीः शश्वदमीतैर्वलिभिर्मुदा । तद्द्वारं पुरतो दृष्ट्वा विलङ्घ्य च जगाम सः

द्वितीयद्वारमुल्लङ्घ्य तस्मादुत्तममीप्सितम् ।

द्वारं चतुर्थं सम्प्राप्य सर्वस्माच्च विलक्षणम् ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् पञ्चमं द्वारं ददर्श चित्रमुत्तमम् । द्वारपङ्कञ्च प्रथमो सर्वतो रुविरं परम् ॥

रामरावणयोर्युद्धं भित्तिचित्रं मनोहरम् । दशावतारं विष्णोश्च कृत्रिमं रासमण्डलम् ॥

यमुनां जलकेलीञ्च रचितां विश्वकर्मणा । गोपिकानां सहस्रेण पण्डितैश्च रक्षितम् ॥

रत्नोद्धारनिर्माणभूषणैर्भूषितेन च । सद्गजदण्डहस्तेन हीरकैर्भूषितेन च ॥ ५४ ॥

मर्षान्द्रमुक्तामाणिक्यहीराहारान्वितेन च ।

माधवी तत्प्रधाना सा पञ्चञ्च साम्प्रतं शिवम् ॥ ५५ ॥

ददौ प्रत्युत्तरं सर्वं क्रमेण च स उद्वहः । गत्वा विज्ञापयामास राधाप्रियसखीगणम् ॥

सा माधवी महादृष्टा तत्र संस्थाप्य तं मुदा ॥ ५६ ॥

श्रुत्वा मङ्गलवार्ताञ्च राधाप्रियसखीगणैः । कृत्वा शङ्खध्वनिं घण्टामृदङ्गपणहस्वनम् ॥

हृत्पा निर्माप्रानं शीघ्रमुदरं त्रिणमागतम् । हृष्टाप्रवेशायामास राधाप्यन्तर्गुणमम् ॥ १८ ॥  
 धूमन्यरावनिर्माणं शय्या मन्दिरमुत्तमम् । ददर्श पुरतो राधां कुरुं चन्द्रकलोपमाम् ॥  
 सुपकरप्रवेशाञ्च शय्यानां शोकमूर्च्छिताम् । श्रद्धन्ती रक्तवदनां द्विष्टाञ्च स्वतन्मूरणाम् ॥  
 निदयेष्टाञ्च निराहारां सुवर्णवर्णांकुण्डलाम् ।

शुष्किताभरकण्ठाञ्च किञ्चिन्निःश्वाससंगुताम् ॥ १९ ॥

प्रणनाम च तां दृष्ट्वा मत्तिलघ्रात्प्रकण्ठरः । पुलकाञ्चिनसर्पाङ्गो भक्त्या भक्तः स उद्वेगः  
 उदय उपाय ।

धन्दे राधापदाम्भोजं प्रह्लादिसुरवन्दितम् । यत्कीर्तिकर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम् ॥ २१ ॥  
 नमो गोकुलवासिन्यै राधिकायै नमो नमः । शल्यदृष्टनिघासिन्यै चन्द्रवत्यै नमो नमः ॥  
 तुलसीपनघासिन्यै घृन्दारण्यै नमो नमः । रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः  
 धिरजातीरघासिन्यै घृन्दायै च नमो नमः । घृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः  
 नमः हृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः ।

कृष्णघक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै च नमो नमः ॥ २७ ॥

नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः । विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः  
 सर्वेश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः । पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः ।

महाविष्णोश्च मात्रे च पराशायै नमो नमः ।

नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः ॥ ३० ॥

नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमोनमः । नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमोनमः  
 महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः । नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः ॥  
 मात्रे चतुर्णां घेदानां सावित्र्यै च नमो नमः ।

नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥ ३२ ॥

नेजःसु सर्वदेवानां पुरा हृतपुगे मुदा । अधिष्ठानहृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः ॥ ३४ ॥  
 नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः । सुन्दरीयु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः ॥  
 नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः । नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः ॥

तिलमुताये च पार्वत्यै च नमो नमः । नमो नमस्तपस्विन्यै ह्यमाये च नमो नमः ॥

हरस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः । गौरीलोकचिलासिन्यै नमो गौरीयै नमो नमः

नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः ।

निद्रायै च दयायै च धृदायै च नमो नमः ॥ ७६ ॥

नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः ।

तृष्णायै क्षुब्धस्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः ॥ ८० ॥

हृत्कारपिण्यै महामार्यै नमो नमः । भषायै चामषायै च मुक्तिदायै नमो नमः ॥

नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः ।

नमस्तुष्यै च पुष्यै च दयायै च नमो नमः ॥ ८२ ॥

द्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः । क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः

त्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः । सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः ॥

हृत्स्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः । शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्मे नमो नमः ॥

नास्ति भेदो यथा देधि दुग्धधावद्वयोः सदा ।

यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः ॥ ८६ ॥

धनमसोज्योतिःसूर्यकयोर्षथा । लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा ॥

६ कल्याणि देहि मामुत्तरं सति । इत्युक्त्वा चोद्भवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः ॥

इतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिपूर्वकम् । इह लोके सुखं मुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्

न भवेद्दुःखं चन्द्रविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः ।

प्रोषिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम् ॥ ९० ॥

भते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम् । निर्मूल्लभते भूमिप्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्

च्यतेरोगी बह्वो मुच्येतबन्धनात् । भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्नआपदः

अस्पष्टकीर्तिः सुवशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ ९३ ॥

ते श्रीप्रह्लादवैधर्षं महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधास्तोत्रे द्विनवतितमोऽध्यायः ।

## त्रिनवतितमोऽध्यायः

राघोद्वयमंवादाकथनम् ।

श्रीभारापण उवाच ।

उद्यमस्तयनं ध्रुव्या चेतनं प्राप्य राधिका । विलोक्य कृष्णाफाञ्च तमुवाच शुभान्विता

श्रीराधिकोपाय ।

किन्नाम भवतो परस केन वा प्रेरितो भवान् ।

मागतो वा कुत इति श्रूयि मां केन हेतुना ॥ २ ॥

कृष्णाकृतिस्त्वं सर्वाङ्गैर्मन्ये रथां कृष्णपार्षदम् । कृष्णस्यकुमालंबूद्विवलदेवस्यसाम्प्रतम्

मन्दस्तिष्ठति तत्रैव हेतुना केन तद्वद् । समायास्यति गोविन्दो रम्यं वृन्दावनं धनम् ॥

पुनर्द्रक्ष्यामि तस्यैव पूर्णचन्द्रमुखं शुभम् । पुनः क्रीडां करिष्यामि तेनाहं रासमण्डले

जले च विहरिष्यामि पुनर्था सर्वाभिःसह । श्रीनन्दनन्दनाङ्गे च पुनर्दास्यामि चन्दनम्

उदय उवाच ।

उदयेत्यभिधानं मे क्षत्रियोऽहं वरानने । प्रेषितः शुभवार्तायै कृष्णेन परमात्मना ॥ ७ ॥

तवान्तिकं समायातः पार्षदोऽहं हरेरपि । कृष्णस्य बलदेवस्य शिवं नन्दस्य साम्प्रतम्

श्रीराधिकोपाय ।

अस्ति तद्दु यमुनाकूलं सुगन्धिपवनोऽस्ति सः ।

तस्य केलिकदम्बानां मूलमस्त्येव साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

पुण्यं वृन्दावनं रम्यं तद्विद्यमानमीप्सितम् । पुंस्कोकिलानां विस्तृतं तल्यं चन्दनचर्चितम्

चतुर्विधञ्च भोज्यञ्च मधुपानञ्चसुन्दरम् । दुरन्तोदुःखदोऽप्यस्ति पापिष्ठो मन्मथस्तथा

ते च रत्नप्रदीपाश्च ज्वलन्ति रासमण्डले । मणीन्द्रसारनिर्माणमस्त्येव रतिमन्दिरम् ॥

गोपाङ्गनागणोऽस्त्येव पूर्णचन्द्रोऽस्ति शोभितः ।

सुगन्धिपुष्परचितं तल्यं चन्दनचर्चितम् ॥ १३ ॥

ताम्बूलं रतिभोगाहं कर्पूरादिसुवासंस्कृतम् । सुगन्धिमालतीमाल्यं श्वेतचामरदर्पणम् ॥  
मुक्तामाणिक्यसंसक्तहीरहारमनोहरम् ।

नानोपकाननं रम्यं रम्यकीड़ासरोधरम् ॥ १५ ॥

सुगन्धिपुष्पोद्यानञ्च पद्मश्रेणीमनोहरम् । अस्त्येव सर्वविभवः प्राणनाथः कुतो मम ॥  
हा कृष्ण हा रमानाथ कासि मे प्राणबद्धम ।

इ घापराधो दास्याश्च दासीशेपः पदे पदे ॥ १७ ॥

इत्येषमुक्त्वा सा देवी पुनर्मूर्च्छामवाप सा । चेतनं कारयामास पुनरैव स उद्धवः ॥  
तां दृष्ट्वा परमाश्चर्यं मेने क्षत्रियपुङ्गवः ॥ १८ ॥

सखीभिः सप्तभिः शश्वत् सेवितां श्वेतचामरैः ।

गोपीनाञ्च त्रिलक्षैश्च सुप्रियैः प्रियसेविताम् ॥ १९ ॥

दिवानिशं वेष्टिताञ्च गोपीनां शतकोटिभिः । काचित् कञ्जलहस्ता च काचिन्माल्यधरापरा  
काचित् सिन्दूरहस्ता च काचिद्रोचनकरा ।

काचिश्चन्दनपात्रञ्च हस्ते श्रुत्या च तिष्ठति ॥ २१ ॥

काचिदर्पणहस्ता च काचित् कुङ्कुमवाहिका । कस्तूरीपात्रमिष्टञ्च काचिद्ब्रह्मति तत्र च ॥  
काचिश्चम्बकपात्रञ्च करे धृत्वा च तिष्ठति । मधुभिर्मधुरैः पूर्णपात्रं धृत्वा शुचान्विता ॥

काचिन् सुगन्धितैलञ्च शृङ्गीत्या परितिष्ठति । काचिद्ब्रह्मति ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम्  
काचिद्वासितमिष्टञ्च जलं धृत्वा च तिष्ठति । कीड़ापुस्तिकां काचिद्विभ्राज्यां परिरक्षति

काचिद्ब्रह्मति कन्दुकं काचिश्च रत्नभूषणम् । चङ्घिगुदांशुकं काचिद्मूल्यं परिरक्षति ॥  
काचिद्भूयोपहारञ्च शृङ्गीत्या परिषर्तते ।

काचिश्च फेरावेशार्थं करोति माल्यर्भाप्सितम् ॥ २७ ॥

काचिन् कङ्कृतिकां धृत्वा पुरतः परितिष्ठति ।

काचिद्यापकहस्ता च काचिद्दात्रीरसं मुदा ॥ २८ ॥

दूरतोऽपि घटत्येवं भ्रंता च परितिष्ठति ।

काचिद्गीता मिया स्तौति काचिद्रोदिति शोफतः ॥ २९ ॥

कागिस्तां योषणरयेष विदग्धा विगदातुराम् ।

कानिदुशापताया च स्निग्धकृतं मनोहरे ॥ ३० ॥

स्थापयेद्देहदूरायं स्निग्धप्रभृते शुभे । एषमूनाश्च तां दृष्ट्वा प्रोवाच पुनस्तद्वचः ॥

सुप्रियं कर्णपीयूषं यिनयेन च मीलयत् ॥ ३१ ॥

उदय उवाच ।

जाने त्वां देवदेवीशां सुस्निग्धां सिद्धयोगिनीम् ।

सर्वशक्तिस्वरूपाश्च मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ ३२ ॥

धीदामशापाद्धरणीं प्रातां गोलोककामिनीम् ।

कृष्णप्राणाधिकां देवि तद्वक्षःस्पलपासिनीम् ॥ ३३ ॥

शृणु देवि प्रपश्यामि शुभवार्ताममीप्सिताम् ।

सुस्वियं सखीमिः सार्द्धं हृदयस्निग्धकारिणीम् ॥ ३४ ॥

दुःखदावाग्निदग्धायाः सुधावर्षणरूपिणीम् । विरहद्व्याधियुक्ताया रसायनसमां शुभाम्

सत्र तिष्ठति नन्दोऽयं सानन्दो मुदितः सदा । निमन्त्रितश्च घसुना कृष्णोपनयनावधि ॥

गृहीत्वा स घलं कृष्णं सार्द्धं मङ्गलकर्मणि ।

स नन्दो परमानन्दो मुदा यास्यति गोकुलम् ॥ ३७ ॥

आगत्य कृष्णो मुदितः प्रणम्य मातरं पुनः । नक्तमायास्यति मुदा पुण्यं धृन्दावनं घनम

अचिराद्द्रक्ष्यसि सति श्रीकृष्णमुखपङ्कजम् । सर्वं विरहदुःखञ्च सन्त्यक्ष्यसि च साम्प्रतम

सुस्विरा भव मातस्त्वं त्यज शोकं मुदाऽहम् ।

घडिशुद्धांशुकं रम्यं परिधाय प्रहर्षिता ॥ ४० ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणप्रहणं कुरु । गृहाण चन्दनं क्षिग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥ ४१ ॥

कुरुष्व केशसंस्कारं मालतीमाल्यभूषितम् । सुवेशं कुरु कल्याणि गण्डे च चित्रपत्रकम्

सिन्दूरचिन्दुं सीमन्ते कस्तूरीचन्दनान्वितम् । बलककाकं चरणं युक्तं याघकभूषणैः ॥

कुरुष्व तिष्ठ चोत्तिष्ठ रत्नसिंहासने घरे । सपङ्कपङ्कजं तल्पं त्यज सार्द्धं शुभा सति ॥

कृष्णेन मनसा विशुद्धं मधुरं मधु । संस्कृतं भासितं तोयं ताम्बूलञ्च सुपासितम्

रत्नेन्द्रसारनिर्माणपर्यङ्के सुमनोहरे । वह्निशुद्धांशुकान्ते च मालतीमाल्यभूषिते ॥ ४६ ॥  
 सुगन्धिसुक्तेः कस्तूरीजातीचम्पकचन्दनैः । परितो मालतीमाल्यहीरहारविभूषिते ॥४७॥  
 मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यरत्नद्वरैश्च परिष्कृते । पुष्पमाल्योपधाने च मङ्गलाहं मुदान्विता ॥  
 शयनं कुण्ठ देधेशि गोपीभिः सेविता सदा । करोति सेषनं शयत् प्रियवली श्येतवामरैः  
 पदारविन्दसेषाञ्च गोपी भक्ता मनोहरे ।

सद्रत्नसारनिर्माणपर्यङ्के सुमनोहरे ॥ ५० ॥

इत्येवमुक्त्वा स मुने पुनस्तूष्णीं यभूय ह । प्रणम्य पादपद्मञ्च ब्रह्माद्रिसुरथन्दितम् ॥५१॥  
 उदयस्य यचः धृत्या सस्मिता राधिका सर्ता ।  
 कौतुकञ्च दर्शो तस्मै रत्नसाराङ्गुलीयकम् ॥ ५२ ॥  
 अमूल्यं सुन्दरं रम्यं चिश्यकर्मविनिर्मितम् ।  
 सुरशोभं पीतवर्णं सुदीप्तं सुवर्दीपयन् ॥ ५३ ॥

कृष्णाय वह्निना दत्तमपूर्यं रासमण्डले । मणिकुण्डलयुगमञ्चामूल्यरत्नविनिर्मितम् ॥५४॥  
 अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वभूषणमोप्सितम् । वह्निशुद्धांशुकपुगं रत्ननिर्माणनायकम् ॥५५॥  
 हीरहारविनिर्माणं हाञ्च सुमनोहरम् । पुरा दत्तञ्च सुप्रतीत्या कृष्णाय घटणेन च ॥५६॥  
 श्रीसूर्येण च यदत्तं श्रीकृष्णाय स्वमन्तकम् । प्रदत्तं कौतुकं तस्मै यदत्तं हरिणा पुरा  
 यदत्तञ्च महेंद्रेण रत्नसिंहासनं परम् । तत् प्रदत्तं मुदा देव्या तस्मै प्रीत्या च राधया  
 मणीन्द्रसारनिर्माणं छत्ररत्नं मनोहरम् । मुक्तामाणिक्यसारेण हीरहारसमन्वितम् ॥५६॥  
 विविधरत्नपद्मेन विभ्रितं घाटणं सदा । शोभितं परितश्चान्यै रत्ननिर्माणद्वर्षिणैः ॥६०॥  
 यदत्तं ब्रह्मणा प्रीत्या हरये रासमण्डले । सुप्रतीत्या राधया तत्र प्रदत्तमुद्धवाय च ॥६१॥  
 मणिसारविनिर्माणं मणिराजविराजितम् । जयामाल्यं संल्लुतञ्च यदत्तं शम्भुना पुरा ॥

तदेव दत्तं तस्मै चाप्यमूल्यं पुण्यदं शुभम् ।

जन्ममृत्युजराव्याधिहरञ्चातिमनोहरम् ॥ ६३ ॥

चन्द्रकान्तमणिं रम्यं चन्द्रदत्तं परिष्कृतम् । चन्द्रावली दर्शो तस्मै सुदीप्तं पूर्णचन्द्रघत्  
 विशुद्धं मधुपर्कञ्च मधुपात्रं यदक्षयम् । धर्मेण यत् प्रदत्तञ्च तदत्तं प्रियया हरेः ॥ ६५ ॥



जलभोजनपात्रञ्च शुद्धं स्वर्णचिनिर्मितम् । मिष्टान्नं परमान्नञ्च ददौ सुखाद्दु मिष्टकम् ॥

भोजनं कारयित्वा च फंपूरादिसुवासितम् ।

ताम्बूलञ्च ददौ शीघ्रं माल्यं सुस्निग्धवन्दनम् ॥ ६७

शुमाशिपञ्च प्रददौ धाञ्छितं भवरं वरम् । ज्ञानरूपेण यद्वत्तं गोलोके रासमण्डले ॥

पुरुपाणां शतं यावन्निधलां कमलां ददौ ।

विद्यां यशस्करीं शुद्धां यशः कीर्तिं सुनिर्मलाम् ॥ ६८ ॥

सर्वसिद्धिं हरेर्दास्यं हरिमिकिञ्च निश्चलाम् । पार्यदपवरत्वञ्च पार्यदञ्च हरेरिति ॥ ७० ॥

घरं प्रसादं दत्त्वा च समुत्थाय मुदान्वितम् । घडिशुद्धाशुके धृत्वा चामूल्यं रत्नभूषणम्

हीरहारं रत्नमालां परिधाय मनोहराम् । सिन्दूरं फञ्जलं पुष्पमाल्यं सुस्निग्धवन्दनम्

रत्नासिंहासनस्थं तं पूजिता पूजितं मुदा । वेष्टिता हर्षनिरतं गोपीनां शतकीटिमिः ।

ततकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥ ७३ ॥

धीराधिकोवाच ।

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं विष्कण्ठं पद । पदं तद्व्यं भयं त्यक्त्वा सत्यं ब्रूहि सुसंसदि

घरं कृपशताद्वापी घरं वापीशतात् क्रतुः । घरं क्रतुशतात् पुत्रः सत्यं पुत्रशतात्किल ॥

न हि सत्यात्परो धर्मो नानुतात्पातकं परम् ॥ ७५ ॥

उत्सव उपाच ।

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं द्रक्ष्यसितुन्दरि । ध्रुवत्यक्ष्यसि रान्तापं दृष्ट्वा चन्द्रमुखं हं

मदरीनाम्महामाने गतस्ते विरहाघरः ।

नातामोगं सुखं मुंक्ष्य त्यज विन्तां दुरत्ययाम् ॥ ७७ ॥

अहं प्रस्थापयिष्यामि गन्धा मधुपुरींहरिम् । विधाय तत्प्रबोधञ्च कार्यमग्न्यत्कटित्वर्क

पिदायं कुट मे मालयांम्यामि हरिसन्निधिम् ।

सर्वं नं कथयिष्यामि तद्गृहान्नं यथोचितम् ॥ ७९ ॥

धीराधिकोवाच ।

गमिष्यति यदा वत्स मधुरांगुमनोहराम् । गृह्णतुःसकथां काञ्चित्पिष्टं वासविधायोमव

मां विस्मृतो न भवसि चिरहृत्परफातराम् ।  
 कथयिष्यामि मत्कान्तं ध्रुवं प्रस्थापयिष्यसि ॥ ८१ ॥  
 नारीणां मनसो वार्तां को वा जानाति पण्डितः ।  
 किञ्चिच्छास्त्रानुसारेण प्रकरोति निरूपणम् ॥ ८२ ॥  
 वेदा वक्तुं न शक्ताश्च शास्त्राणि किं वदन्ति च ।  
 कथयिष्यामि त्वां सर्वं पुत्र कृष्णञ्च पश्यसि ॥ ८३ ॥

गेहे वने न भेदो मे पश्चादपि यथा नृपु । किंवा जलं किमु स्वप्रमज्ञानञ्च दिवानिशम्  
 आत्मानञ्च न जानामि न्योदयं चन्द्रसूर्ययोः । क्षणं प्राप्य हरेर्वार्तां चेतनं मे यभूव ह  
 कृष्णाकृतिञ्च पश्यामि शृणोमि सुरलीध्वनिम् ।

कुलं लज्जां भयं त्यक्त्वा चिन्तयामि हरेः पदम् ॥ ८६ ॥

सम्प्राप्य सर्वजगतामीश्वरं प्रकृतेः परम् । न ज्ञानं मायया तस्य ज्ञात्वा गोपपतेर्मम ॥  
 ध्यामन्ते यत्पदाम्भोजं वेदा ब्रह्मादयः सुराः ।

स भर्त्सितो मया कोपात् हृदि शल्यमिदं मम ॥ ८८ ॥

तत्पदाम्भोजसेवाभिर्गुणप्रस्तावतोऽपि वा । तद्भक्त्यापत्क्षणेनीतो ध्यानेन पूजयाऽथवा-  
 तत्रापि मङ्गलं सर्वं हर्षमायुर्व्यपस्थितम् । विभ्रञ्च हृदि सन्तापस्तद्विच्छेदे सदोदध ॥  
 कीड़ाप्रीतिर्न भविता तादृशीष्टा पुनर्मम । तादृशं प्रेमसौभाग्यं निर्जनेन च सङ्गमः ॥ ९१ ॥  
 वृन्दावनं न यास्यामि तत्सङ्गे पुनरुदध । चन्दनं वा न दास्यामि नन्दनन्दनवक्षसि ॥

मालां तस्मै न दास्यामि न द्रक्ष्यामि मुखाभ्युजम् ।

मालतीनां केतकीनां चम्पकानाञ्च काननम् ॥ ९३ ॥

पुनरेव न यास्यामि सुन्दरं रासमण्डलम् । हरिसङ्गे न यास्यामि रम्यं चन्दनकाननम्  
 पुनरेव न यास्यामि मलयं रत्नमन्दिरम् । माधवीनां वनं रम्यं रहस्यं मधुकाननम् ॥  
 भोसण्डकाननं रम्यं स्वच्छं चन्द्रसरोवरम् । विस्पन्दकं सुरवर्गं नन्दनं पुष्पमद्रकम् ॥

मद्रकं हरिणा सादं न यास्यामि पुनः पुनः ।

ऋ सा रम्या विकसिता माधवे माधवीलता ॥ ९७ ॥

क गता माधवी रात्रिः क मनुः कानि माधवाः ।

इत्येवमुक्त्वा सा राधा कथञ्च कृष्णवर्णामुक्त्वा ।

पुनर्मुञ्चाम्भ माधवाण्य इत्यादि पुलकान्विता ॥ १८ ॥

इति श्रीमद्भरतवर्मणो मद्भागवतो नारायणनारायणवन्दे श्रीकृष्णव्रजमण्डले  
राधोद्धारमन्त्रादे त्रिनवन्तितमोऽध्यायः ।

### चतुर्नवतितमोऽध्यायः

मूर्च्छितां राधां दृष्ट्वा उद्धवकृत सान्त्वनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

उद्धयो विस्मयं प्राप्य भयञ्च विपुलं मुने । चेतनं कारयामास तामुवाच मुतामिव ॥ १ ॥

सद्भक्तिसममिजाय स्यात्मानं भक्तमन्वयकम् । तुच्छं मेने जगत्सर्वं दृष्ट्वा भाष्यवतीसती

उद्धय उवाच ।

चेतनंकुरु कल्याणि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते । त्वमेवप्राक्तनंसर्वं कृष्णं द्रक्ष्यसि साम्प्रत्य

त्वत्तो विश्वं पथिप्रञ्च त्वत्पादरजसा मर्दा । सुपवित्रं त्वद्भजनं पुण्यवत्यश्च गोपिका

लोकास्त्वामेवगायन्ति गीतेर्मङ्गलसंस्तवैः । त्वत्सुकीर्तिञ्चयेदाश्च सनकाद्याश्चसन्ततम

कृतपापहरां पुण्यां तीर्थपूजाञ्च निर्मलाम् । हरिमक्तिमदां भद्रां सर्वविघ्नघिनाशिनीम् ॥

त्वमेवराधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान् प्रकृतिःपरा । राधाभाष्ययोर्भेदो न पुराणे श्रुतीतथा

राधिकांमूर्च्छितां दृष्ट्वा पश्चात्कृत्वातमुद्धवम् । उवाचमाधवीगोपीराधायाःपुरतःस्थिता

माधव्युवाच ।

किंवाचोरस्य कृष्णस्वरूपं वा वेशमुत्तमम् । किं सुखंविभवं किंवा गौरवञ्चाप्यनुत्तमम्

किंवा सद्गोप्यमैश्वर्यं शौच्यं वा दुरतिक्रमम् ।

किंवा सिद्धं प्रसिद्धं वा किंवा तुल्यं गुणोत्तमम् ॥ १० ॥

चतुर्नवतितमो ऽध्यायः ] \* गोपीकृत राधासान्त्वनम् \*

इतो धा कुत भायातः पुनरेव कुतो गतः । बालको गोपवेशश्च न हि राजात्मजःपुमान्  
त्वं किं स्मरसि कल्याणि गोपालं नन्दनन्दनम् ।

आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥ १२ ॥

मालत्युवाच ।

धिक् त्वां राधेति निर्लज्जां तवैव जीवतंकृथा । जगतोयुवतीनाञ्च करोपि सुयशःक्षयम्  
नारीणां गोपनं काव्यं व्यक्तैऽपि स्वयशःक्षये ।

यत्नेन चक्षुषो यार्हं सखि सञ्चरणं कुरु ॥ १४ ॥

अन्तरे पतिमाचञ्च सङ्गोप्य भावनं कुरु । न वै जातिश्च शत्रूणां मित्राणाञ्च सुरेश्वरि  
शत्रुः कार्य्ययशेनैव मित्रञ्च कर्मणा भवेत् । स्वकार्य्यमुद्धरेत्प्राक्कः कार्य्यध्वंसेन मूर्खता  
कः कस्य पतुभो राधे कः कस्याप्रिय एष च ।

कार्य्यञ्च समयं क्षात्या सन्तः कुर्वन्ति सन्ततम् ॥ १७ ॥

शत्रुर्धनापहारी च प्राणहर्ता ततः परः । कटुघटा दुःखदाता शत्रूणां लक्षणं शृणु ॥ १८  
स्वकुलात् त्वां यद्विद्वृष्ट्य विसृज्य शोकसागरे । गृहीत्या चेतनंप्राणाग्निष्पुरो दारुणो गतः  
किं किं स्मरसि मूढे हि त्वज शोकं सुदारुणम् ।

आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥ २० ॥

पद्मापत्युवाच ।

भयता कथितं पूर्णं यमुनाजलसन्निधौ । अरसस्य रतिदूरं नारीणां न सुखं प्रिये ॥ २१  
विचुञ्जाला जले रेखा खलानां प्रीतिरेव च । न नीतिनांतिशास्त्रेषुसुविश्वासःखलेषु च  
यदा त्वं यमुनाकूले मुखं पीक्ष्यं हरैरदो । सस्मिन् सुकटाक्षञ्च पुनः हृत्वास्यगोपनम्  
पुनःपुनस्त्वयं संघीक्ष्य त्वया त्यक्तञ्च चेतनम् । गृहं त्यक्त्वा गुरुभयं सर्वाङ्गानां यच्चनंशुभम्  
सन्ततं ध्यायते कृष्णं नाहारं जीघनं तथा ।

क कृष्णो मथुरायाञ्च ह्यपि त्वं कदलीघनं ॥ २५ ॥

त्वं यदि त्यजसि प्राणान्नाधिर्भवति सोऽपुना ।

काले द्रक्ष्यसि स्वात्मानं यदि रक्षसि सुन्दरि ॥ २६ ॥

चन्द्रमुख्युवाच ।

प्राक्तनेन शुभं सर्वं सुखञ्च विभषश्चिरम् । दुःखं शोकं प्राक्तनेन विपत्सम्पद्य साम्प्रतम्  
भारते पुण्यभूमौ च सर्वेषामीप्सिते वरे । लभेत् पतिं हरिं कान्तं तपसा प्रकृतेः परम्  
तथा विप्रदहेद्गात्रं कामधाणेन साम्प्रतम् । अस्याः शत्रुः कथं चन्द्रो मधुर्वा मधुमाधवा  
शङ्करेण प्रदग्धोऽभूत् पुनरेव स मन्मथः । चन्द्रं भक्षतु राहुश्च पुनश्चोद्धमनं तथा ॥ ३० ॥

मधुश्च मित्रशोकेन प्राणांस्त्वत्तथा यया घनम् ।

सुधासिन्धुश्च चेन्दुर्यो विपसिन्धुश्च मां प्रति ॥ ३१ ॥

सुवेशोऽस्या उचलद्वद्विभन्दनं तद्गुणतद्गुणः । सन्ततं प्रदहेद्गात्रं सुगन्धिश्च समीरणः ॥  
त्यक्त्वाहारा मम सर्वा पश्य श्वसितजीवतीम् । प्रशंसां कुरुकृष्णस्य मुखेन कुरुनन्दन ॥  
तन्नामस्मृतिमात्रेण तद्गुणध्रुवणेन च । तद्द्वार्तया च शुभया सहसा चेतनं भवेत् ॥ ३४ ॥

शशिकलोवाच ।

त्वं किं माधवि जानासि कृष्णमात्मानमीश्वरम् ।

यं तं ब्रह्मादयो देवा वेदाश्चत्वार एव च ॥ ३५ ॥

ध्यायन्ति सन्ततं सन्तः पादपद्मं सुरेप्सितम् ।

पद्मा सरस्वती दुर्गा सोऽनन्तोऽपि महेश्वरः ॥ ३६ ॥

यं न जानन्ति सिद्धेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवस्तथा ।

सर्वात्मनः कुतो रूपं निर्गुणस्य कुतो गुणाः ॥ ३७ ॥

त्यमुकञ्च सत्यस्य पत्तदेष यथोचितम् । घृते भारापतरणे पृथिव्याश्च मनोहरम् ।  
समाहादृक् रम्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् । किमनिर्यचनीयञ्च रूपं जनमनोहरम् ॥ ३८ ॥  
तेतिक्न्दर्पलायणं ललाधाम शुभाश्रयम् । यत्पादपद्मधुरं मधु मन्दाकिनीजलम् ॥

दध्ने शिरसि भक्तया च सर्वेशः शङ्करः परः ।

शशम् करोति पौराणी तीर्थकर्त्तव्यं कीर्तनम् ॥ ४१ ॥

न नृत्यति मनया च पञ्चवक्त्रेण गायति । आहारं भूयर्षं वस्त्रं परित्यज्य दिग्भवाः  
५. १ ॥ १ ॥ ग्यात्वा शुभं सुनिर्मलम् । ब्रह्मा च तपसा जन्म नवत्येष दि रोपया

शेषः सनत्कुमारश्च सिद्धसङ्घश्च योगवित् ॥ ४३ ॥

सुशीलोवाच ।

निर्मन्थनाहं न भवेत्तस्य कामशतं शतम् । चन्द्रोऽश्विनीकुमारी एा रूपेषु केन गुण्यते  
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मुनयो मनवःसिद्धाभक्ताः सन्तश्च सन्ततम्  
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं निर्गुणस्यात्मनश्च वै ।

वेदाः स्तोतुं न शक्ताश्चयमीशञ्च सरस्वती ॥ ४६ ॥

जड्डीभूता च भीता च स्तघनेन क्षमापयेत् । सहस्रयत्त्रस्तघने कम्पितश्च निरुतरम् ॥  
वेदानां जनको ब्रह्मा स्तोत्रेण तस्य हीश्वरः । तं सत्यंनित्यमीशञ्चमाधवी परिनन्दति  
अपवित्रासमाभूता गोपीनां जीघनं वृथा । तासु पुण्यवती राधा ध्यायते यं दिवानिशम्  
यन्नामस्मृतिमात्रेण कोटिजन्मार्जितं सखि । कृतं पापभयं शोकः प्रणश्यति न संशयः ॥

रत्नमालोवाच ।

दधार धामहस्तेन शैलं गोवर्धनं हरिः ।

ततः किं तद्यशः शौर्यं जगतां जनकस्य च ॥ ५१ ॥

शैलानाञ्च सहस्रं यो भेत्तुं शक्तश्च दैत्यराट् ।

लीलामात्रेण तेषाञ्च लक्षं हन्तुं क्षमो हरिः ॥ ५२ ॥

यद्दशकलया जातः शूकरो विष्णुरीश्वरः । वसुधां दशमात्रेण चोद्धार च लीलया ॥  
शैलानाञ्च सहस्राणि यत्र सन्ति महीतले । दैत्याश्चवाप्यसंख्याश्चवीराःशूरास्तथैष्वच  
तेनैव कर्मणा तस्य न शौर्यं न च पीरुपम् । न यशश्च प्रशंसायासखि सर्धात्मनात्मना  
पारिजातोवाच ।

सतद्गीपा च घमुद्या सशैलवनसागरा । काञ्चनीभूमिसहिता सर्धाधारा मनोहरा ॥  
सतस्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकावधि प्रिये । विचित्राः सुन्दराश्चैष पातालानाञ्चसतच  
पतीपरिमितं विश्वं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । महद्विष्णोर्लोकमकूपे तदेवं बाणुवत् स्थितम्  
तस्य पाचन्ति लोमानि तानि विश्वानि सन्ति च ।

स एष पौडशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ५६ ॥

तमेव किं वाः शौर्षं मदिमानमनूत्तम् ।

यन्मरी गोपकण्या च किंवा जानामि मायरी ॥ ६० ॥

मायानुवाच ।

मया यदुक्तं न शान्धः मूढा जगन्नि गोपिकाः ।

उदय शृणु मे वाक्यं यमया कर्णं गुणम् ॥ ६१ ॥

स्येच्छया रागुणो विष्णुः स्येच्छया निर्गुणो भवेत् ।

भुयो भारवगण्ये गोपयेशः शिशुर्षिषुः ॥ ६२ ॥

यदि येशः पुराणानि सिद्धाः सन्तश्च सन्तम् ।

प्राय शरीरमगाश्च न जानन्ति यमीरवरम् ॥ ६३ ॥

तं किं जानामि मूढाहं यस्मरी गोपकन्दका ।

तथापि मद्रयः सरयं धूपतो परस तद्व्यगम् ॥ ६४ ॥

किमनिर्वचनीयञ्च रूपं शौध्यं यशो यलम् ।

धीर्षं येशस्य सिद्धिं चाप्यगो वा यो गुणो हरेः ॥ ६५ ॥

स्येच्छामपस्य तस्यैव सगुणस्य च साग्रतम् । किमनिर्वचनीयञ्च घर्तते तद्विशेषम्

निर्गुणस्यच विष्णोश्च देहहीनश्चात्मघान् । घर्ततेचकिमाख्येयं तस्यरूपादिकञ्चकिम्

मां निन्दति महामूढा न बुद्ध्या यचनं मम । एया जानाति किं मूढा तं सत्यं प्रकृतेः परम्

उवोतिः स्वरूपं परमं परमात्मानमीरवरम् ।

तमनिर्वचनीयञ्च भक्तानुग्रहयिग्रहम् ॥ ६६ ॥

यत्पादपद्मं पद्मं सा त्रैलोक्यजननी परा । सेवते कम्पिता भीता दासीवत् सततं भिया

विष्णुमाया च प्रकृतिर्मूलरूपा सनातनी । ब्रह्मस्वरूपा परमा भीता दक्षिणपार्श्वतः ॥

सरस्वती जङ्गीभूता भीता च परमेश्वरी । स्तोतुं न शक्ता वेदाः किंस्तुवन्तिपरमेश्वरम्

तासां तद्वचनं श्रुत्वा चोद्बोधो भक्तिचिह्नलः । पुलकाञ्चितसर्षाङ्गो हरोद् च पपात च ॥

मूर्च्छां सम्प्राप्य भक्त्या च ध्यात्वा तं परमेश्वरम् ।

तुच्छं मेने स चात्मानं गोपीं भक्त्याप्युवाच सः ॥ ७४ ॥

उद्धय उवाच ।

धन्यं यशस्यं द्वीपानां जम्बूद्वीपं मनोहयम् । यत्र भारतवर्षञ्च पुण्यदं शुभदं तथा ॥  
घणिजाञ्च पुण्यकृतं घाणिज्यफलमाप्सितम् ।

अत्र कृत्वा सुपुण्यञ्च मुहुक्तेऽन्यत्र शुभं फलम् ॥ ७६ ॥

धन्यं भारतवर्षञ्च पुण्यदं शुभदं धरम् । गोपीपादाब्जरजसा पूर्तं परमनिर्मलम् ॥ ७७ ॥  
ततोऽपि गोपिका धन्या मान्या योषित्सु भारते ।

नित्यं पश्यन्ति राधायाः पादपद्मं सुपुण्यदम् ॥ ७८ ॥

पट्टिवर्षसहस्राणि तपस्तपञ्च ब्रह्मणा । राधिकापादपद्मस्य रेणूनामुपलब्धये ॥ ७९ ॥  
गोलोकवासिनी राधा कृष्णप्राणाधिका परा । तत्र श्रीदामशापेन वृषभानसुताधुना ॥

ये ये भक्ताश्चकृष्णस्य देवाब्रह्मादयस्तथा । राधायाश्चापिगोपीनांकलांनार्हन्तिपौङ्गशीम्  
कृष्णेभक्तिं विजानाति योगीन्द्रश्चमहेश्वरः । राधागोप्यश्चगोपाश्चगोलोकवासिनश्चये

किञ्चित्सनत्कुमारश्च ब्रह्मन्वेद्विषयीतया । किञ्चिदेषविजानन्तिसिद्धाभक्ताश्च निश्चितम्  
धन्योऽहंकृतकृत्योऽहमागतो गोकुलं यतः । गोपिकाम्यो गुरुभ्यश्चहरिभक्तिलभेऽवलाम्

मधुरां च न यास्यामि स्तीर्षकीर्त्तेश्च फीर्त्तनम् ।

श्रोष्यामि किङ्करो भूत्या गोपीनां जन्मजन्मनि ॥ ८५ ॥

न गोपीभ्यः परोभक्तो हरेश्च परमात्मनः ।

पादशो लेभिरे गोप्यो भक्तिं नान्ये च तादृशीम् ॥ ८६ ॥

कलावत्युवाच ।

पितृणां मानसीकन्या धन्या मेना कलावती । धर्यं तिस्रोभगिन्यश्च भ्रमामः पृथिवीतले  
धन्याजमकपत्नी च सीतामाता पतिव्रता । नयोनिसम्मया राधा महं चायोनिसम्मया

राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता भुवि । सनत्कुमाशापेन घयमेघ महीतले ॥ ८९ ॥  
क्षीरोदसागरं रम्यं श्वेतद्वीपं मनोहयम् । तिस्रो भगिन्यो भक्त्या च विष्णुं द्रष्टुं गतावयम्

धम्युत्यानादि न कृतं कोपादस्मान् शशाव ह ।

सनत्कुमारो भगवान् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ९१ ॥



सनत्कुमार उवाच ।

मूढास्तिष्ठतभूमौ च पुनः स्वर्गं न यास्यथ । मर्त्यप्राणिप्रिया भूत्वा चाहंकारेण हेतुना  
पुनर्वरञ्च प्रत्येकं ददौ तुष्टो द्विजेश्वरः । विष्णोर्वंशस्य शीलस्य हिमाधारस्य कामिनी  
ज्येष्ठामवतु त्वत्कन्या भविष्यत्येव पार्थिवी । धर्म्याप्रिया तु भवतु योगिनोजनकस्य च  
तस्यकन्या महालक्ष्मीःसीतादेवीभविष्यति । वृषभानस्य वैश्यस्य योगिनां प्रवरस्य च  
दुर्वाससश्च शिष्यश्च कनिष्ठाचकलाघती । भविष्यति प्रिया साध्वी द्वापरान्तेचगोकुले  
कलाघतीसुता राधा देवो गोलोकवासिनी । श्रीदामगोपशापेन भविष्यति न संशयः  
ईशो ब्रह्मेशशेषाणां भारवतारणेन च । आगमिष्यति पृथ्वीञ्च पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् ॥

कलाघती वृषभानः कौतुकात् कन्यया सह ।

जीवन्मुक्तश्च गोलोकं गमिष्यति न संशयः ॥ ९६ ॥

धन्या च सीतया साङ्गवैकुण्ठश्च गमिष्यति । मेनकाय्योगिनी सिद्धापार्वत्याश्चवरेण च  
कल्पान्ते विष्णुलोके च लक्ष्मीवन्मोदते विरम् ।

दिना विपस्या महिमा केषां कुत्र भविष्यति ॥ १०१ ॥

कर्मणा च गते दुःखे प्रभवेद्दुर्लभं सुखम् । पुरापितृणां कन्याश्चस्वर्गं भोगविलासिकाः  
लक्ष्मीसमाचरेणापि विप्रस्य विष्णुदर्शनात् । कर्मक्षयञ्चाप्यस्माकं यभूवविष्णुदर्शनात्  
पुण्येन तेन ताम्रेण कुमारस्यापि दर्शनम् । धृतं तत्र कुमारास्यात् ज्ञानं परमदुर्लभम् ॥  
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सिद्धानां जगतामपि । ईश्वरः परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥

निर्गुणश्च निरीहश्च परः स्वच्छामयो वरः ॥ १०५ ॥

तुलस्युवाच ।

सर्वप्राणिषु देवाश्च तिष्ठन्त्येव पृथक् पृथक् ।

प्राणो विष्णुश्च विपरी मनो ब्रह्मा च चेतना ॥ १०६ ॥

प्रकृतिर्युद्धिरूपा च सर्वशक्त्याधिदेवता । ज्ञानस्वरूपः शम्भुश्च स्वयं धर्मश्च पुण्यः ।

निर्गुणः परमात्मा च तद्वत्प्रह्य प्रकृतेः परम् ।

स एव कृष्णः साक्षी च कर्मणां जीविनामपि ॥ १०८ ॥

मोकाच्च सुखदुःखानां जीवस्तत्प्रतिविम्बकः । चक्षुषोश्चन्द्रसूर्यौ च जिह्वायाञ्च सरस्वती  
वसुन्धरात्त्वचि सदा बाह्वोस्ते लोकपालकाः । आत्मनश्चापि ते सर्वे परिवारकरुपिणः  
आत्मन्येव प्रियास्ते च सर्वे गच्छन्ति जीविनः । यथा संसदि संसारे नरदेहमिवागुगाः  
तस्मात्सर्वात्मनाऽऽत्मानं भजन्ति सन्ततं सदा ।

सन्तश्च परया भक्त्या ध्यायन्ते योगिनो मुदा ॥ ११२ ॥

कर्मिणां कर्मणा साक्षी कुतः कर्म च गोपनम् । अन्तर्यामी च हृष्णश्च प्रचारं कुरुते मुदा  
फालिकोधाच ।

नराबालाश्च वृद्धाश्च युवानस्त्रिविधास्तथा । देवादयश्च ये सिद्धाः सर्वे जानन्ति तं परम्  
साम्प्रतं मूर्च्छितां राधां युक्तो बोधयितुं बुधः ।

अथ युक्तिः प्रधाना न्न तां प्रयोधय चोद्धव ॥ ११५ ॥

उद्धव उवाच ।

चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मातर्निबोध माम् ।

उद्धयं हृष्णभक्तस्य किङ्करस्यापि किङ्करम् ॥ ११६ ॥

प्रसादं कुरु मातर्मां यास्यामि मधुरां पुनः । न स्वतन्त्रः परार्थीनो यो वा दास्यमीयथा  
यथा वृषो घशीभूतो वृषघाहस्य सन्ततम् ॥ ११७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीहृष्णजन्मखण्डे

राधोद्धवसंवादे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

राधोद्धवसंवाद्दर्शनम् ।

धर्मागतायण उवाच ।

उद्धवस्य वचः धृत्या चेतनं प्राप्य राधिका । सा घोषाच्च समुन्ध्याय रत्नसिंहासने वरे

अपान मधुरं देही हृदयेन विदूषता । गोपीभिः सनमिर्मनया सेविता श्येतन्नामरैः ॥  
धोराधिकोपान ।

गुणगच्छ घास एवं माञ्जु विम्बरसम्पदा । मनोऽप्यधर्मोनाम्नयेव भवतोमयसागरे  
सरोर्यं घनं सार्यं गन्धा कण्ठ्य साम्प्रतम् । श्रीकृष्णं परमानन्दं शीघ्रमानय मत्प्रभुम् ॥  
योगिञ्जन्मनि योगिरसु सम्प्राप्य सादृशं पतिम् ।

भेदो बभूव कन्या वा मदन्या कापि दुःखिनी ॥ ५ ॥

किं ददासि प्रथमं मे नास्ति मे बोधमोचितम् ।

निष्कलो देहिनां देहो विनात्मानं सदोदय ॥ ६ ॥

प्रीत्या सह सौभाग्यं गौरवं निरयनूतनम् । भतीचदुर्लभं प्रेमरहस्यं नवसङ्गमम् ॥ ७ ॥

ररामि मनसा शश्वभ्रान्यो मनसि घर्तते । रात्रौनिद्रां परित्यज्य स्मरणं शोकवर्धनम्

मुद्गर भ्रुवं घास निमग्नं शोकसागरे । जीवाभयप्रदानेन तीर्थं स्नानफलं नृणाम् ॥

योगितुं न शक्नोमि दुर्निवारञ्च मानसम् । चिन्तये चरणाम्मोजं कृष्णस्य परमात्मनः  
सद्गुणं महिमानञ्च प्रीतिञ्च प्रेमसागरम् ।

स्मारं स्मारञ्च सौभाग्यं मनो मे न स्थिरं विरम् ॥ ११ ॥

जगतां युवतीनाञ्च कासां वा दुःखमीदृशम् ।

श्रीकृष्णभेददुःखञ्च का वा जानाति मां विना ॥ १२ ॥

किञ्चिज्जानाति सीता साप्यहञ्च विधियोधितम् ।

मत्परा दुःखिनी नास्ति कामिनीषु जगत्त्रये ॥ १३ ॥

का वा याति प्रतीतिं मे ध्रुत्वा च मानसीं व्यथाम् ।

कासां वा मत्समं दुःखं युवतीनां सुतोदय ॥ १४ ॥

कासदृशीस्त्रीषु न भूता न भविष्यति । दुःखिनीविरहातता सुखसौभाग्यवर्जिता

सम्प्राप्य कल्पवृक्षञ्च पतिञ्च जगतां पतिम् ।

पञ्चिताऽहं विधात्रा च निर्दयेन च पापिना ॥ १६ ॥

न सफलं जन्म सुस्निग्धं चक्षुषी मनः । तत्पादपद्मपत्रेन्दुरूपवेशयदर्शनात् ॥ १७ ॥

यज्ञामश्रुतिमात्रेण पञ्चप्राणाः प्रदर्यिताः ।

स्मृतिमात्रात् प्रफुल्लयन्ते आत्मा सुस्निग्ध एव च ॥ १८ ॥

यश्च पस्पर्श सुरती यशस्त्रिभुघनेष्वपि । कया वा सम्पदा घत्स विस्मरामि तमीश्वरम्

त्रैलोक्यविजयं रूपं गुणमेघ विमर्ति यत् ।

न निर्मितो यो विधिना तेनैव निर्मितो विधिः ॥ २० ॥

तं विधेश्च विधातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।

कल्पवृक्षात्परं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥ २१ ॥

सर्वेशं सर्ववीजञ्च परमात्मानमीश्वरम् ।

कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं पतिम् ॥ २२ ॥

यस्यनिर्मन्धनाहंञ्च न चन्द्रो न च मन्मथः । नैवाश्विनीकुमारश्च गुणसाम्यं न विश्वतः

ध्यायन्ते घत्पदाभोजं ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः ।

कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं प्रभुम् ॥ २४ ॥

स्वप्ने पश्यन्ति ये रूपमनुलञ्च मनोहरम् । तेऽपि सर्वं परित्यज्य ध्यायन्ते तमहर्निशम्

गुणेन शैलः सलिलं शुष्ककाष्ठं द्वयेदिति । मृतवृक्षो मुकुलितः स्तम्भितश्च समीरणः

सूर्यश्च जलधिर्धैव स्थगितो भक्तिभावतः ।

कया वा सम्पदा पुत्र विस्मरामि च तं प्रियम् ॥ २७ ॥

यद्गयाद्वाति घातोऽयं सूर्यस्तपति यद्गयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मुं त्युश्चरति जन्तुषु ॥

यद्गयात्फलिता वृक्षाः पुष्पिताःसमयेऽपि च । समुद्राःस्वात्मविषये प्रहास्य मुनयःसुराः

कालस्य कालः संपर्तः संहर्ता क्षपुर्गिभ्वरः । स्पर्धीनश्च स्वतन्त्रश्च स्वयमेवात्मसंज्ञकः

कया वा सम्पदा भक्त विस्मरामि च तं प्रभुम् ।

प्रबोधो नास्ति तद्भेदे येन मां बोधयेदु दुषः ॥ ३१ ॥

माञ्च बोधयितुं शक्ता न साधित्री सरस्वती ।

न वेदा न च वेदाङ्गाः के वा सन्तश्च के सुराः ॥ ३२ ॥

सहस्रपञ्चोऽनन्तश्च वेदानां जनको विधिः । न शम्भुर्न गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्नरः

स्मिन्नेर्गतिभिन्नतोया मानंरुग्णे कुर्वांगतिः । बालसाध्यसर्वज्ञं सुन्दु.संगुमागुनम्  
 दुर्नियारः स बालश्च बालसाध्यजगत्सुम् । उत्तिष्ठ मधुरं गच्छ सुखं वरस मनोहम्  
 यजपासं परित्यज्य मयाश्च गमनोत्सुकः । सुनिरंकृष्णपिच्छेदो दुःखाय न सुखाय च  
 पश्य चन्द्रमुखं तस्य अग्नमृत्युजरापहम् । राधिकायचनं श्रुत्वा शरोद् भृशमुद्वयः ।

रदन्ती राधिकां दृष्ट्वा पञ्चुपिच्छेदकातराम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीप्रह्लादपर्वत महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधोद्धवसंवादे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।

## पणव्रतितमोऽध्यायः

राधोद्धवसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णस्मरणं कृत्वा गमनोन्मुखमुद्धवम् । नतं राधापदाम्भोजे शिरसा पुलकाञ्चितम्  
 उवाच माधवो गोपी रदन्ती प्रेमविह्वला । मर्दं रदन्तमुद्धैश्च राधाविच्छेदकातरम् ॥

माधव्युवाच ।

उद्धव शृणु वक्ष्यामि क्षणं तिष्ठ यथोचितम् ।

निगूढं परमं ज्ञानं यत्ते मनसि धाञ्छितम् ॥ ३ ॥

उदुर्लभं पुराणेषु वेदेषु गोपनीयकम् । प्रश्नं कुरु महामारा राधिकां त्रिजगत्प्रसूम् ॥  
 ह्युत्तवा सा च गोपीशा समुवाससुसंसदि । उवाचमधुरं शान्तामुद्धवश्चापिराधिकाम्

उद्धव उवाच ।

एकाकी भवमायाति यात्येकाकी पुनः पुनः ।

प्राणी कर्मानुरोधेन स्वकर्मफलमुक् पुमान् ॥ ६ ॥

जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलयते । सुखं दुःखं मयं शोकः कर्मणैवामिपद्यते ॥

जन्तुर्मोगाघरोपेण भोगं भुङ्क्ते भवेपु च ।  
 पुनश्च कर्मणो भोगात्समायाति स याति च ॥ ८ ॥  
 रक्षादिकञ्च यत् किञ्चित् मह्यं दत्तं स्वया सति ।  
 मया सादं न यात्येव तेन मे किं प्रयोजनम् ॥ ९ ॥

भवाधिपतारणे देवी भवती तरणीवरा । कर्णधारः स्वयं कृष्णः सर्वेषां पारकारकः ॥  
 किञ्चिदानं देहि मह्यं भवाधिपारकारणम् ।

प्राप्य प्रसादं यास्यामि मथुरां कृष्णमूलकम् ॥ ११ ॥

यां यां कालगतिं मातः सुराणाञ्जनृणामपि । पितॄणां ब्रह्मलोकस्य तदूर्ध्वस्य च तां पद  
 तामेव दुस्तरां घोरां तीर्त्वा यामि हरेः पदम् । पद्ममूतमुपायञ्च देहि मे कमलालये ॥  
 दूरतोऽयत्पदाम्भोजं ध्यायन्तेऽविद्यानिशम् । देया ब्रह्मेशरीयाद्यास्त्वर्धतद्वक्षःस्वलस्थिता  
 उद्भवस्य घनः श्रुत्वा जहास कमलालया । घाससा नेत्रनीरञ्च संमार्जितमुषाच सा ॥  
 माधवीपचनेनैव करोषि प्रश्नमुद्भव । स्त्रीजातिरखला लोके किं वा ज्ञानं ददामि ते ॥  
 शुद्धां कालगतिं वत्स ज्ञानातिभगवान् हरिः । ब्रह्मा महेशः शेषश्च वेदाश्चत्वार पय च  
 किञ्चिद्भेदानुसारेण सन्तां जानन्ति पुत्रक । ध्रुवतांकृष्णवक्त्रेण गोलोके रासमण्डले ॥  
 गोलोके चापि वैकुण्ठे ब्रह्मलोके च साम्प्रतम् । या च दृष्टाकालगतिस्तामेव कथयामिते  
 नृणां पितॄणां देवानां ब्रह्मलोकादिकस्य च ।

चहिलोकस्य ब्रह्माण्डात् पातालानाञ्च निश्चितम् ॥ २० ॥

दुरत्ययां कालगतिं येनोपायेन पण्डिताः । निस्तरन्ति बुधध्रेष्ठ कथयामि निशामय ॥

श्रीराधोवाच

भजन्ति जगतां नाथं कालकालं जगद्गुरुम् । निर्गुणञ्च निरीदञ्च परमात्मानमीश्वरम् ॥  
 सद्यःपतति देहोऽयं विनाये न सदात्मना । तं निषेव्य कालगतिं तरत्येव हि केवलम् ॥  
 वायुर्हरति सर्वेषां प्राणिनां रविरेव च । श्रीहरेः शुद्धभक्तानां सतांपुण्यघतांघिना ॥  
 विधेर्मानसिकान् पुत्रान्घतुरः पश्यपुत्रक । सनकादीन्भागवतान् येषां च सुस्थिरं धयः  
 रूद्रायान्वयसादित्वान् ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुन् । बालाननुपनीतोश्च पञ्चवर्षशिषून् यथा ॥

धाम्यन्तरेमहास्तीगान्सम्मिताश्चरिगम्यरान् । श्रीकृष्णप्यानूपांश्चनीर्यपूनांश्चवैष्णवान्

धैर्येवाङ्गशास्त्राणां निन्ताहीनान् प्रकृद्भिगान् ।

भगवया दिवानिशं शश्वन् हरिभावेन तत्परान् ॥ २८ ॥

बाहापूजापिहीनाश्च पूतान् मानसिकांस्तथा ।

शृणुञ्जयान् महामागान् कालव्यालजितस्तथा ॥ २९ ॥

सनकश्च सनदश्च तृतीयश्च सनातनम् । परं सनत्कुमारश्च ये स्मरन्ति च सर्वशः ॥

तीर्थस्नानफलं लब्ध्वा मुच्यन्ते कृतपातकात् । हरिभक्तिर्मपत्येषां हरिदाम्यं लभन्ति च

मृकण्डुवालकं पश्य कर्मणा च द्विजोत्तमम् । द्वाषर्षायुतं तीर्थंश्चलन्तं प्रहृतेजसा ॥

हरिसेवनतः पश्चात् सप्तकल्पान्तर्जीवनम् । षोड्शं पञ्चशिवं पश्य लोमकञ्चामुरिं तथा ॥

सर्वकर्मविहीनश्च हरिसेवनतन्परम् । शतकल्याणुपश्चैव ध्यायमानं हरैः पद्म् ॥ ३५ ॥

जमदग्नेः सुतं पश्य रामं तं चिरजीविनम् । हनुमन्तं बलिं व्यासमश्वत्थामानमेव च ॥

विभीषणं कृपं विप्रं आम्बवन्तश्चमल्लुकम् । हरिभावनया चैते शुद्धाः सुचिरजीविनः ॥

सिद्धेन्द्रेषु नरन्द्रेषु नरेष्वन्येषु बौद्धेषु । हरिभावनशुद्धाश्च सर्वे ते चिरजीविनः ॥ ३७ ॥

ग्रहाद् पश्य दैत्येषु हिरण्यकशिपोः सुतम् ।

हरिद्विपो दुरन्तस्य हरिभावनतत्परम् ॥ ३८ ॥

चिरायुषं कालजितं पश्यान्वञ्चाप्यसंज्ञकम् । अनेकजन्मतपसा लब्ध्वा जन्म च भारते

ये हरिं तं न सेवन्ते ते मूढाः कृतपापिनः । वामुदेवं परित्यज्य विषये निरतो जनः ॥

त्यक्तयामृतं महामूढो धियं भुङ्क्ते निजेच्छया ।

कस्य स्त्री कस्य वा पुत्रः कस्य वा बान्धवास्तथा ॥ ४१ ॥

कः कस्य बन्धुर्विपदि श्रीकृष्णेन विना भुवि ।

तस्मात्सन्तः सदा कृष्णं भजन्त्येव दिवानिशम् ॥ ४२ ॥

जन्मृत्युजराव्याधिहरं सर्वहरं परम् । कालस्य तरणोपायं भजनं परमात्मनः ॥ ४३ ॥

मानन्दनन्दनस्यैव परिपूर्णतमस्य च । शृणु कालपतिं वत्स मदीयज्ञानगोचराम् ॥ ४४ ॥

नराणाञ्च पितृणाञ्च सुराणाञ्चापि ब्रह्मणः । नागानां राक्षसादीनां तत्परेषाञ्च पुत्रक ॥

कथयामि निगूढार्थं सावधानं निशामय । सर्वस्माच्च परस्थानः सर्वाधारोमहान्विराट्  
यस्य लोमसु विश्वानि चासंब्यानि च तानि च ।

सर्वस्माच्च परं सूक्ष्मं परमाणुं निशामय ॥ ४७ ॥

कालारम्भात्मकं सर्वमनूहं परमीप्सितम् । परमः सद्विशेषाणामनेको संयुतः सदा ॥

परमाणुः स चिह्नयो नृणामैश्वर्यमो यतः । परमाणुद्वयेनाणुस्त्रसरेणुस्तु ते त्रयः ॥४६॥

त्रसरेणुत्रिकेणापि पुष्टिरुक्ता मनीषिभिः । वेधस्त्रुटिशतेनैव त्रिवेधेन लयस्तथा ॥ ५०॥

त्रिलयेन निमेषश्च त्रिनिमेषेण च क्षणः । काष्ठा पञ्चक्षणेनैव लघुश्च दशकाष्ठया ॥५१॥

लघु पञ्चदशं दण्डस्तत्प्रमाणं निशामय । द्वादशाद्वंपलोन्मानं चतुर्मिश्चतुरङ्गुलैः ॥५२॥

स्वर्णमापैः कृतच्छिद्रं यापत्प्रस्थजलन्लुतम् ।

दण्डद्वये मुहूर्तः स्यात् षष्टिदण्डात्मिका तिथिः ॥ ५३ ॥

सदृष्टभागः प्रहरः प्रमाणश्च निरूपणम् । चतुर्मिः प्रहरै रात्रिश्चतुर्मिर्दिनमुच्यते ॥ ५४ ॥

तिथिपञ्चदशेनैव पक्षमासं प्रकीर्तितम् । पक्षद्वयेन मासः स्याच्छुक्लकृष्णामिधेन च ॥

श्रतुर्मासद्वयेनैव तत्पट्केनैव वासरः ॥ ५६ ॥

वसन्तो ग्रीष्मवर्षाश्च शरद्धेमन्तशीतकः ।

वर्षाः पञ्चविधा ज्ञेयाः कालविद्विर्निरूपिताः ॥ ५७ ॥

संवत्सरः प्रवत्सर इलापत्सर एव च । अनुपत्सरो वत्सरोऽयमिति कालविदो विदुः

अथो द्विपट्कमासैश्च तन्नाम शृणु चोद्धव ।

वैशाखो ज्यैष्ठ भाषादः धावणो भाद्र एव च ॥ ५६ ॥

आश्विनः कार्तिको मार्गः पौषो माघस्तु फाल्गुनः ।

चैत्रस्तु चरमो ज्ञेयो वर्षंशेषो निरूपितः ॥ ६० ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखमासयुग्मेन कीर्तितः । ज्यैष्ठ्यापादद्वयेनैव ग्रीष्मस्तु परिकीर्तितः ॥६१॥

वर्षा धावणमात्रे च ह्याश्विने कार्तिके शरत् ।

मार्गं पौषे च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुने ॥ ६२ ॥

शरदस्तु चावने द्वे वै चोत्तरे दक्षिणायने । माघादियत्चिनिर्मितमुत्तरावणमोप्सितम् ।



श्रावणादिमसपर्यन्तं दक्षिणायनमेव च ॥ ६३ ॥  
 श्रावणाद्यः पूर्वापर्यन्तमेव च । प्रतिपन्पूर्वाणामां तस्य शुक्रपक्षः प्रकीर्तितः ॥ ६४ ॥  
 श्रावणाः प्रतिपद्भ्यामावास्यान्त एव च । कृष्णपक्षस्तु विज्ञेयो वेदविद्विन्निरूपितः ॥  
 द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ।  
 षष्ठी च सप्तमी चैव हाष्टमी नवमी तथा ॥ ६६ ॥  
 दशमी चापि द्वादशी च त्रयोदशी । चतुर्दशी कुह्याद्यदिनन्तु गणनं स्मृतम् ॥  
 अश्विनी भरणी नापि कृत्तिका रोहिणी तथा ।  
 मृगशिरा तथाद्रा च नक्षत्रे द्वे पुनर्वसू ॥ ६८ ॥  
 पुष्याश्लेषे मघा चैव पूर्वा चोत्तरफाल्गुनी ।  
 हस्तचित्रे तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका ॥ ६९ ॥  
 मूलं तथा ज्येष्ठा पूर्वाषाढोत्तरा तथा । श्रवणामिजिते चैव धनिष्ठा च प्रकीर्तिता  
 शतमिया ज्येष्ठा पूर्वाभाद्रपदस्तथा । तथोत्तरा तु विज्ञेया रेवती चरमा स्मृता ।  
 विशति नक्षत्रं कलत्रं शशिनस्तथा । क्रमेण तामिः सार्द्धञ्च चन्द्रस्तिष्ठति नित्यश  
 विशतिनक्षत्रं कलत्रञ्च धृतौ धृतम् । अभिजिच्छ्रवणच्छाया तेनाष्टाविंशतिः स्मृता  
 एकदा च मघी चन्द्रो रोहिण्या घामया सह ।  
 र्मे दिवानिशं नित्यं श्रवणा च चुकोप सा ॥ ७४ ॥  
 छायाञ्च दत्त्वा चन्द्राय ययौ तातान्तिकं मिया ।  
 ततो पितरमादाय सा चक्रे च विभागकम् ॥ ७५ ॥  
 त्वेन नक्षत्रमभिजिज्ञामकं पुरा । एतच्छ्रुत्वा कृष्णमुखोच्छ्रितश्रुद्धे च पर्वते  
 त्वं कथितं घत्सु तिथ्या भ्रमति नित्यशः । योगञ्च करणञ्चैव मद्रक्षत्रेण निशामय  
 प्कम्मः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यशोभनस्तथा । अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव  
 षडोवृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातोहरणस्तथा । घञंसिद्धिर्ध्वंतीपातो घरीयान्परिघः शि  
 सिद्धिः साध्यः शुभः शुको ब्रह्मेन्द्रो वैधृतिस्तथा ।  
 कीर्तितस्त्रे योगगणो करणं भूयतामिति ॥ ८० ॥

यवश्च बालवश्चैव कौलवस्तैतिलस्तथा । गरुडश्च वणिजश्चापि विष्टिश्च शकुनिस्तथा ॥  
 वतुष्पाद्यापिनागश्च किन्तुष्ण इतिकीर्तितम् । नराणाञ्चापिभासेन पितृणाञ्चदिवानिशाम्  
 शुक्ले चापि दिनन्तेषां कृष्णे नक्तं प्रकीर्तितम् ।

पत्सरेण नराणाञ्च सुराणाञ्च दिवानिशाम् ॥ ८३ ॥

दिनन्तेषामुत्तरे च नक्तञ्च दक्षिणापने । मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसततिः ॥ ८४ ॥

मतौरायुःपरिमितं शक्रस्यायुः प्रकीर्तितम् । पञ्चविंशत् सहस्रञ्च तथा पञ्चशतं परम् ॥

तत्र सूर्यगतिर्नास्ति शक्रपातानुसारतः । दिवानिशञ्च जानन्ति ब्रह्मलोकनिवासिनः ॥

दण्डद्वयं नरपलं शक्रपातेन तत्पलम् । एवं त्रिंशद्दिनेनैव घातुर्मासः प्रकीर्तितः ॥ ८७ ॥

बभूवो द्वादशभिर्मासै र्वं तस्य शतायुषः । ब्रह्मणः पतनेनैव निमेषात् श्रीहरैरपि ॥ ८८ ॥

घातुः पातानुसारेण वैकुण्ठेन दिवानिशाम् ।

तत्र सूर्यगतिर्नास्ति चैवं गोलोकतः स्मृतम् ॥ ८९ ॥

वैकुण्ठवासिनः सर्वे न धै जानन्त्यहर्निशाम् ।

चन्द्रस्यापि ग्रहाणाञ्च गतिर्नास्ति च तत्र वै ॥ ९० ॥

चक्रं नैव समत्येष राशीनामिच्छया हरैः । दिनञ्च तेजसा दीप्तं कृष्णस्य परमात्मनः ॥

नक्तं तेजोविहीनञ्च हरौ च मन्दिरं गते । एवं कालगतस्तत्र विष्णुलोकेऽस्ति सन्ततम्

कालस्यरूपो भगवान् परमात्मा निराकृतिः । चन्द्रसूर्यगतिर्नास्ति पातालेषु च सतसु

तद्वासिनश्च जानन्ति शङ्कन्ते न दिवानिशाम् ।

दिने च मूर्ध्नि नागानां मणिऽर्धेलति नित्यशः ॥ ९४ ॥

सन्ध्यायां दीप्तमग्निश्च रात्रिश्च समसावृता । कालन्ताग्नीप्रमाणेन जानन्ति तत्रिवासिनः

यथा भुवि तथा तत्र परिमाणं प्रकीर्तितम् । हृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिद्वेति वतुर्युगम् ॥

दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्धत्सरेश्चापि तन्मितम् । अष्टौ शतान्यप्यधिकं सहस्राणां वतुष्टयम्

दिव्यैर्धत्सैः हृतयुगं कालविद्विर्निरूपितम् ।

अष्टाविंशत् सहस्राण्यप्यधिकं परिमाणकम् ॥ ९८ ॥

लक्षणाञ्च सप्तदशानुमाणं परिकीर्तितम् । अधिकं पद्मशतान्येव सद्व्राणां शतं तथा ॥

दिव्यैर्षपैश्च त्रेतेति घटस कालविदो विदुः । यष्णवतिसहस्राणि लक्षैर्द्वादशभिः स  
 नृणां षपैश्च त्रेतेति कालविद्भिः प्रकीर्तितः । चतुष्टयं शतानाञ्चाप्यधिकं द्विसहस्र  
 षपं दिव्यं द्वापरश्च कालज्ञैः परिकीर्तितम् ।

चतुःषष्टिसहस्राणि लक्षैरष्टभिरेव च ॥ १०२ ॥

नृणां षपैर्द्वापरश्च कालज्ञैः परिकीर्तितम् । अधिकं द्विशतञ्चैव दिव्यं षपंसहस्रकम्  
 एवं मितं कलियुगं घटस शान्तिरूपितम् । द्वात्रिंशच्च सहस्रञ्च चतुर्लक्षं नृमाणकम्  
 षपैश्चेति कलियुगे चकार कालकोविदः । लक्षैर्द्विचत्वारिंशद्भिः सह पिशत्सहस्रकैः  
 नृमाणवयैः कालज्ञैर्व्यक्तमेव चतुर्गुणम् । इति ते कथितं घटस कालसंख्यानिरूपणम्

यथाधृतं यथाज्ञानं गच्छ घटस हरेः पुरम् ॥ १०३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 राघोद्वयसंवादे कालनिरूपणं नाम यष्णवतितमोऽध्यायः ।

## सप्तनवतितमोऽध्यायः

राघोद्वयसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गच्छन्तमुदये इहा सप्तमत्ता धीहरेः त्रिधा । समुत्थायासनात् शोभं हृदयेन विदूषणा

गोपीभिः सहिता शीघ्रं समुद्रिणा महासती ।

दर्शो गुमाशिलं तस्मै तस्य मूर्तिं करं तथा ॥ २ ॥

द्विगन्धदूषाशनं गुह्यपाप्यं पुष्पञ्च मङ्गलम् ।

त्रेयवामास स्थाज्जांश्च पल्लं पर्णं तथा वधि ॥ ३ ॥

१. दर्शयामास पूर्णकृष्णं सारलकम् । सारलं गन्धसिन्दूरकम् नृसिखन्दान्वितम् ॥४॥

२. दर्शयामास पल्लगन्धं द्विजोत्तम । पत्तिपुत्रवर्णा सारली काञ्चनं वनं तथा ॥

एव महासाध्वी हितं सत्यञ्च मङ्गलम् । सङ्गोप्यं साधुनेत्रञ्च पतितं दुःखिता हृदि  
राधिकोपाय ।

शुभं भवतु मार्गस्ते कल्याणमस्तु सन्ततम् ।

ज्ञानं लभ हरैः स्थानात् कृष्णस्य सुप्रियो भव ॥ ७ ॥

भक्तिः कृष्णदास्यं घरेषु च घरं घरम् । श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ॥

।।दपि द्वैपत्यादिन्द्रत्वादमरादपि । अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥

तन्मतपसा सम्भूय भारते द्विज । हरिभक्तिर्पदि लभेत्तस्य जन्म सुदुर्लभम् ॥१०

जीवनं तस्य कुर्वतः कर्मणः क्षयम् । पितृणाञ्च सहस्राणि स्थस्य मातुश्चनिश्चितम्

हानां पुंसांच शतानां सोदरस्य च । बान्धवस्यापिपत्न्याश्चगुरूणांशिष्यभृत्ययोः

शोभनं घत्स यद्य कृष्णे समर्पणम् । तत्कर्म शोभनं शुद्धं कृष्णसन्तोषणं यतः

साधनं कर्म सम्प्रोतिविधिपूर्वकम् । तदेष मङ्गलं धन्यं परिणामसुखाद्यहम् ॥

तत्तपः सत्यं तद्भक्तिः पूजनं तथा । तदुद्देश्यमनशनं केवलं दास्यकारणम् ॥१५॥

।।धिवीदानं प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । समस्ततीर्थस्नानञ्च समस्तञ्च घतं तपः ॥

।।हकरणं सर्वदानफलं तथा । समस्तवेदवेदाङ्गपठनं पाठनं तथा ॥ १७ ॥

रक्षणञ्चैव ज्ञानदानं सुदुर्लभम् । अतिथीनां पूजनञ्च शरणागतरक्षणम् ॥ १८॥

र्वनञ्चैव घन्दनं जपनं मनोः । भोजनं विप्रदेधानां पुरश्चरणपूर्वकम् ॥ १९ ॥

।।णञ्चैव पित्रोर्मेकिश्चयोपणम् । सर्वं श्रीकृष्णदासस्य कलां नार्हति षोडशीम्

।।य यत्नैत भज कृष्णं परात्परम् । निर्गुणञ्च निरीहञ्च परमात्मानमीश्वरम् ॥

।।यं परं ब्रह्म प्रकृतेः परमीश्वरम् । परिपूर्णात्मं शुद्धं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२२॥

कर्मणां साहचर्यदं निर्लिप्तमेव च । ज्योतिःस्वरूपं परमं कारणानाञ्च कारणम्

।।सर्वेशं सत्यं सत्प्रदं शुभम् । भक्तिदं दास्यदं स्वस्य निजसम्पत्पदप्रदम् ॥

।।तिबुद्धिञ्च मात्सर्वमशुभप्रदम् । भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥

वेदे कौषुमिशिक्षायां तस्य नाम्नां सहस्रकम् ।

नन्दनन्दनामोक्तं कृतविघ्नसुदुर्लभम् ॥ २६ ॥

उद्धवः सर्वमाकर्ण्य परमं विस्मयं ययौ । भानं सम्प्राप्य संपूर्णं परिपूर्णो बभूव ह ॥ २३ ॥

व्यपन्त्रञ्च गले वदुध्या दण्डवत् प्रणनाम ताम् ।

मूर्ध्नः केशीञ्च तत्पादं निबध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥

पुण्ड्राक्षिनसर्वाङ्गः साधुनेत्रश्च भक्तिः । तद्विच्छेदशुभा प्रेम्णा कुरोदोच्चैश्च ना  
कुरोद् गथा तत्प्रेम्णा कुरोद् बहुवीरणः । उद्धवस्य गलं धृत्वा स्थापयामास तं  
उद्धव्यं मूर्च्छितं दृष्ट्वा जृम्भितं त्यक्तचेतनम् । शीघ्रमुत्थापयामास राधिकाकृष्णमा  
चेतनं फारयामास जलं दत्त्वा मुन्नाम्युजे । शुभाशिवञ्च प्रदर्शयत्स जीवेति ना  
उद्धवश्चेतनं प्राप्य तामुवाच सुसंसदि । रुदन्तीनाञ्च गोपीनां पुरतः परमार्थदम्  
उद्धव उवाच ।

धन्यं वशस्यं द्वीपानां जम्बुद्वीपः सुदुर्लभः ।

यत्र भारतवर्षन्तु सर्वेषामोप्सितं धरम् ॥ ३४ ॥

शदो भारतवर्षेषु पुण्यं घृन्दावनं धनम् । राधापादाब्जसंस्पर्शरजःपूतं सुरोप्सितम्

धन्या मान्या च पृथिवी त्रिषु लोकेषु पूजिता ।

राधावास्तीर्णपूतायाः पादाब्जरजसा धरा ॥ ३६ ॥

पट्टिष्वंसहस्राणि दिव्यानि पुष्करे पुरा ।

ब्रह्मणा च तपस्तां वेदोक्तं भक्तिपूर्वकम् ॥ ३७ ॥

गोलोके राधिकाकृष्णदर्शनार्थं मनोरमात् ।

गोलोके राधिकाकृष्णो न दृष्टः स्वप्रतस्तदा ॥ ३८ ॥

धृता तेषांकाशघाणी सत्यरूपा च लीलया । धाराहे भारते वर्षे पुण्ये घृन्दावने धने  
रासोरसधे महारम्ये तत्रैव रासमण्डले । द्रश्यसीति च देवानां मध्ये सुखो न संशय  
धृत्या च पिरतो ब्रह्मा तपसः स्वगृहं गतः । कृष्णो दृष्टश्च दृष्टश्च परिपूर्णमनोरथः ।

गोवानां गोपिकानाञ्च सखलं जन्म जीयतम् ।

नित्यं पश्यन्ति ते पादपद्मं ब्रह्मादिदुर्लभम् ॥ ४२ ॥

मात्रिणी राधिका सन्तः सदा सेवन्ति नित्यशः ।

योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा वैष्णवास्तथा ॥ ४३ ॥

सतीं पुण्यां तीर्थपूतां स्वतःशुद्धां सुदुर्लभाम् ।

सुलभं यत्पदात्मभोजं प्रह्लादीनां सुदुर्लभम् ॥ ४४ ॥

यत्पादपद्मनखरं हृतं पाचकविहितम् । सर्वेश्वरेश्वरैर्णवै कृष्णेन परमात्मना ॥ ४५ ॥

चकार यस्याः पूजाञ्च स्तोत्रराजं सुदुर्लभम् ।

शतशृङ्गे स्वयं कृष्णो मोलुके रासमण्डले ॥ ४६ ॥

पारिजातप्रसूनातामञ्जलिं गन्धचन्दनम् । दशैर्दूर्वाक्षरं क्षिप्रं यस्याः पादारविन्दयोः

त्रिशतसहस्रकोटीनां गोपीनामीश्वरी च या ।

तत्पद्त्रिशतसखीनाञ्च ईश्वरी राधिकाभिधा ॥ ४८ ॥

ये वा द्विपन्ति निन्दन्ति पापिनश्च हसन्ति च ।

कृष्णप्राणाधिकां देवदेवीञ्च राधिकां वराम् ॥ ४९ ॥

प्रह्लाद्व्याश्रतं ते च लभन्ते नात्र संशयः । तत्पापेन च पच्यन्ते कुम्भीपाके च शीरेषु ॥

ततैले महाघोरे ध्वान्ते कीटे च यन्त्रके । चतुर्दशेन्द्रायच्छिन्नं पितृभिः सप्तभिः सह

ततः परञ्च जायन्ते जन्मैकं लोकजन्मतः । दिव्यं धर्मसहस्रञ्च विष्ठाकीटाश्च पापतः ॥

पुंश्चर्लीनां योनिकीटास्तद्रक्तमलमक्षकाः । मलकीटाश्च तन्मानवर्गञ्च पूयमक्षकाः ॥

वेदे च काण्वशाखायामित्याह कमलोद्भवः ॥ ५३ ॥

इत्युक्तवन्तं तं यान्तमुपाच राधिका पुनः ।

रदन्तञ्च रदन्ती सा कृष्णविच्छेदकातरा ॥ ५४ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

गच्छ घत्स मधुपुरीं सर्वं योधय माधवम् । यथा पश्यामि गोविन्दं प्रयत्नेन तथा कुत

निष्कलञ्च गतं जग्म गच्छ मिथ्या दुराशया ।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ ५६ ॥

पश्चाद्विस्म्य गोविन्दं जीवन्मुक्ता यभूव सा ॥ ५७ ॥

इत्युक्त्वा राधिका तत्र शरोदं च भृशं पुनः । प्रणम्य तां रदन्तीं च यशोदामचनं ययी

अथोद्धवे गते राधा मूर्छां सम्प्राप नारद । तत्प्राज चेतनं शश्वद् वभूव ध्यानतत्परा  
पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले शयने मुने । गोप्यस्तां स्थापयामासुः साधुनेत्रोत्पला वा  
तत्स्पर्शमात्राच्छयनं भस्मीभृतं वभूव ह । पुनःस्निग्धस्थले स्निग्धनिचोले बन्दनान्ति  
पुनस्तां स्थापयामासुर्विरहज्वरकातराम् ।

सहस्रा शुष्कतां प्राप सुगन्धियन्दनोदकम् ॥ ६२ ॥

निमेषेण शतयुगं तद् वभूवोद्धवं विना । हाहोद्धयोद्धव हरिं शीघ्रं गत्वा घदेति च ॥ ६३ ॥  
समानय हरिं शीघ्रं यत् प्राणेश्वरमित्यपि । इत्युक्तवचनां दीनां सन्तापहतचेतनाम् ।

रुदुर्गोपिकाः सर्वा राधां कृत्वा स्ववक्षसि ।

चेतनां कारयामासुर्वोधयामासुरीप्सितम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
राधोद्धवसंवादे सप्तमवतितमोऽध्यायः ।

अष्टमवतितमोऽध्यायः

कृष्णोद्धवसम्वादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथोद्धवो यशोदाञ्च प्रणम्य त्वरया मुदा । खजूरफालनं धामे कृत्वा च यमुनां यया ।  
स्नात्वा मुक्त्वा च तत्रैव जगाम मथुरां पुनः । ददर्श घटमूले च गोविन्दं रहसिन्धिम  
प्रसूतोऽप्युद्धवं दृष्ट्वा संस्मितं तमुवाच सः । रदन्तं शोफदग्धञ्च साधुनेत्रञ्च कान्तम्  
श्रीभागयानुपाच ।

भाग्युद्धोद्धव कल्याणं राधा जीयति जीयति ।

३५ गोप्यञ्च जीयन्ति विरहम्पराम् ॥ ४ ॥

यत्सानाञ्च गवामपि । माता मे पुत्रपिरदायरोदा कीदृशी च सा

यद् वन्धो यथार्थं तत्त्वां दृष्ट्वा किमुवाच च सा ।

त्वयोक्तं जननी किं वा पुनः सा किमुवाच माम् ॥ ६ ॥

तद्यमुनाकुलं पुण्यं वृन्दावनं धनम् । निर्जनी पवनोद्येश्च सुरस्यं रासमण्डलम् ॥७॥

१ कुञ्जकुटीरीयै रस्यं कीडासरोवरम् । पुण्योद्यानं विकसितं सङ्कुलञ्च मधुमतीः ॥८॥

भाण्डीरे च घटो दृष्टः सुस्निग्धो बालकान्वितः ।

दृष्टो गोष्ठो गयां दृष्टं गोकुलं गोकुलव्रजम् ॥ ९ ॥

यदि जीवति राधा सा दृष्ट्वा तां किमुवाच माम् ।

तत्सर्वं यद् हे वन्धो चान्दोलपति मे मनः ॥ १० ॥

चुर्गोपिकाःसर्वाःकिमूचुर्गोपबालकाः । गोपाश्च वृद्धाःकिञ्चोचुर्वयस्याजनकस्य मे

वस्य जननी किमूचे रोहिणी सती । किमूचुरपरास्तात वन्धुवल्लभचङ्गवाः ॥ ११॥

किं भुक्तं किमपूर्वं वा दत्तं माया च राधया ।

कीदृक् पात्र्यं सुमधुरं सम्भाषा कीदृशीति च ॥ १२ ॥

गोपानां गोपिकानाञ्च शिशूनां मातुरेष च ।

राधायाश्चापि कीदृग् वा मयि प्रेमोद्भवादिकम् ॥ १४ ॥

परति माता मे माञ्चस्मरति रोहिणी । माञ्चस्मरति सा राधा मत्प्रेमविरहाकुला

माञ्च स्मरन्ति गोप्यश्च गोपाश्च गोपबालकाः ।

भाण्डीरे घटमूले च पालाः फ्रीडमिति मां विना ॥ १६ ॥

१ ब्राह्मणोभिर्यत्र भुक्तं सुधोषमम् । प्रमदाबालकैःसादे यत्तद्दृष्टं परीक्षितम् ॥

२ स्थलं दृष्टं दृष्टं गोवर्धनं धरम् । ब्राह्मणा च हता गावो यत्र सद् दृष्टमुत्तमम्

स्य-वचः धृत्वा शोकोक्तं मधुरान्वितम् । उद्धवःसमुवाचेर्दं मगवन्तं सनातनम्

उद्धव उवाच ।

त्वया नाथ सर्वं दृष्टं धर्षेऽस्मितम् । सरलं जीवनं जन्म कृतमश्रेय मारते ॥

तत्सारञ्च पुण्यं वृन्दावनं धनम् । तत्सारं प्रजभूमी च सुरस्यं रासमण्डलम् ॥

३ ता गोलोकवासिन्यो गोपिका वराः । दृष्ट्वा तत्सारभूता च राधारामेश्वरीपरा



पमगात्रे च निर्वर्तने सुदृग्स्थिते । पदुष्णे पदुज्ज्वले सन्नले मन्दतानिते ॥ २३ ॥

तिपिगण्णा सा स्नभूरणवर्जिता । मनीषमन्दिना क्षीणा छादिता शुक्रवाससा

। सर्वाभिस्तत्र सगणं श्रेतवामरीः । वृशोर्द्री निगहारा क्षणं भवसिति च स्नन्

क्षणं जीयति किं सा वा गिरहावर्णाङ्गिता ।

किं वा जलं स्थलं किं वा मत्तं किं वा दिनं हरे ॥ २६ ॥

तुं न जानाति किं परं किमु बान्धवम् । षाहजानपिरदिता ध्यायमाना पदं तव

भये यशसामाति तन्मृत्गुणंशसम्मपः । त्रीहत्यां गैय वाच्छन्ति ज्ञानर्हीनाश्चन्द्रक-

शीघ्रं जगन्नाथ कर्त्तृपनमीप्सितम् । पहिमुंता न जगतां सा राधा त्वन्यरायणा

भतीपभक्ता न त्याज्या प्रभुणा रक्षिता सदा ।

न हि राधापरा भक्ता न भूता न भविष्यति ॥ ३० ॥

शङ्करादुमीतो भयांश्च तत्पुरःसरः । भयद्विधं पतिं प्राप्य कामदग्धा च राधिका

त्सर्वपरं कर्म तच्च केनापि धार्यते । मधुर्दहति चन्द्रश्च सततं किरणेन च ॥ ३२

सुगन्धिवायुश्चाप्यनाथा सर्वपीडिता । ततकाञ्चनवर्णांमा साधुना कञ्जलोपना ॥

वर्णकेशी च घासोवेशविषर्जिता । भयं विधाता त्वद्भक्तः सुराणां प्रवरो विभुः

कः शङ्करो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । सनत्कुमारस्त्वद्भक्तो गणेशो ज्ञानिनां वरः

द्राश्च कतिविधास्त्वद्भक्ता धरणीतले । त्वद्भक्ता यादृशीराधा न भक्तस्तादृशोऽप्य-

ते यादृशी राधा स्वयं लक्ष्मीर्नतादृशी । हरिरायाति चेत्येवं राधाप्रे स्वीकृतंमया

शीघ्रं गच्छ महाभाग तदेव सार्थकं कुरु ॥ ३७ ॥

स्य वचः श्रुत्वा जहासोवाच माधवः । वेदोक्तं कथयामास सहितं सत्यसुव्रतम्

श्रीभगवानुवाच ।

धर्मविधाहेषु बृहत्स्ये प्राणसङ्कटे । गधामर्थे ब्राह्मणार्थं नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥

वीकारविहीनेन कुतस्त्वं नरकं कुतः । गोलोकं यातिमद्भक्तो नरकं न हि पश्यति

वीकारसाफल्यंकरिष्यामि तथापि च । यास्यामि स्वप्ने तन्मूलंगोपीनांमानुरैव च

अकर्ण्य यथौ मेहमुद्भवश्च महायशाः । हरिर्जगाम स्वप्ने च गोकुलं विरहाकुलम् ॥

स्थप्ते राधां समाश्वास्य दत्त्वा ज्ञानं सुदुर्लभम् ।  
 सन्तोष्य कीड्या ताञ्च गोपिकाश्च ययोचितम् ॥ ४३ ॥  
 बोधयित्वा यशोदाञ्च स्तनं पीत्वा च निद्रिताम् ।  
 गोपान् गोपशिर्शुश्चैव बोधयित्वा ययौ पुनः ॥ ४४ ॥  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 कृष्णोद्धवसंवाद्घर्षणं नामाष्टमवतितमोऽध्यायः ।

## नवनवतितमोऽध्यायः

भगवदुपनयनघर्षणम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

पतस्मिन्नन्तरे गर्गो वसुदेवाश्रमं ययौ । दण्डी क्षत्री च जटिलो दीतञ्च ब्रह्मतेजसा ॥ १ ॥  
 शुक्यश्लोषवीथी च तपस्वी संयतः सदा । शुकुदन्तः शुकुचासा यदोः कुलपुरोहितः ॥ २ ॥  
 तं दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय देवकी प्रणताम च । वसुदेवञ्च भक्त्या च रत्नसिंहासनं ददौ ॥ ३ ॥  
 मधुपर्कं कामधेनुं वह्निशुद्धांशुकं तथा । दत्त्वा गन्धं पुष्पमाल्यं पूजयामास भक्तितः ॥ ४ ॥  
 मिष्टान्नं परमाश्रुञ्च पिष्टकं मधुरं मधु । भीजयामास यत्नेन ताम्बूलं चासितं ददौ ॥ ५ ॥  
 प्रणम्य कृष्णं मनसा सखलञ्च विलोक्य च । उवाच वसुदेवञ्च देवकीञ्च पतिव्रताम् ॥  
 गर्ग उवाच ।

वसुदेव निबोधेद् सखलं पश्य पुत्रकम् । उपनीतोचितं शुद्धं घणसा साभ्रतं धरम् ॥

वसुदेव उवाच ।

शुभक्षणं बुरु शुरो यदूनां पूज्यदैवते । उपनीतोचितं शुद्धं प्रशस्यञ्च सतामपि ॥ ८ ॥

गर्ग उवाच ।

सर्वेभ्यो बान्धवेभ्योऽपि देह्यामन्त्रणपरिकाम् । संमारं बुरु यत्नेन वसुदेव ! वसूषम् ।

परप्रथः शुभमेवास्ति चोपनेतुमिदार्हसि । दिनं सतामपि मतं विशुद्धं चन्द्रतारयोः ॥१०  
 गर्गस्य घचनं धृत्वा घसुदेवो घसूपमः । प्रस्थापयामास सर्षान् वन्धून्मङ्गलपत्रिकाम् ॥  
 घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां दधिकुल्यां मनोहराम् । मधुकुल्यां गुडकुल्यां प्रघकारसमन्विता  
 राशिं नामोपहारानां मणिरत्नं सुवर्णकम् । नानालङ्कारवस्त्रञ्च मुक्तामणिष्वहीरकम् ॥  
 श्रीकृष्णो देवगर्गांश्च मुनीन्द्रान्सिद्धपुङ्गवान् । सस्मारमनसाभक्त्याभक्तांश्चमत्तवत्सलः  
 शुभेदिने च संप्राप्ते ते च सर्वे समाययुः । मुनीन्द्रा वान्धवा देवा राजानो बहुशस्तः  
 देवकन्या नागकन्या राजकन्याश्च सर्वशः । विद्याधर्यश्च गन्धर्वाश्चायुर्वाद्यभाण्डक  
 ब्राह्मणा भिक्षुका भट्टा यतयो ब्रह्मचारिणः । सन्व्यासिनश्चावधृता योगिनश्च समाययु  
 स्त्रीवान्धवाःस्वयन्धूनावर्गा मातामहस्य च । वन्धूनां वान्धवाःसर्वे स्वाययुःशुभकर्मणि  
 भीष्मो द्रोणश्चकर्णश्चाप्यश्वत्थामारूपो द्विजः । सपुत्रो धृतराष्ट्रश्चसभापर्यश्च समाययी

कुन्ती सपुत्रा विधवा हर्षशोकसमाप्लुता ।

नानादेशोद्भवा योग्या राजानो राजपुत्रकाः ॥ २० ॥

अत्रिवंशिष्टश्चघनो भरद्वाजो महातपाः । याज्ञवल्क्यश्च भीमश्च गार्गा गर्गो महातपाः  
 घटसः सपुत्रश्च घर्मो जैगीपत्यः पराशरः । पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यवगस्त्यश्चापि सौभरिः  
 सनफश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनरकुमारो भगवान् षोडुः पञ्चशिक्षस्तथा ॥

दुर्घासाश्चाङ्गिरा ध्यासो ध्यासपुत्रः शुकस्तथा ।

कुशिकः कौशिको राम ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ २४ ॥

शृङ्गी च घामदेपश्च गौतमश्च गुणार्णवः । क्रतुर्यतिश्चारुणिश्च शुक्राचार्यो वृहस्पतिः  
 शशापत्रो घामतश्च पारिमद्रश्च घाल्मिकिः । गैलो घैशम्पायनश्च प्रचेताः पुरजित् तथा  
 भृगुर्मैरीचिर्मधुजित् कश्यपश्च प्रजापतिः । अदितिर्देवमाता च दितिर्देवप्रसूता ॥  
 सुमन्तुश्च सुमानुश्च एकः कात्यायनस्तथा । मार्कण्डेयो लोमशाश्च कपिलश्च पराशरः  
 पाणिनिः पारियात्रश्च पारिमद्रश्च पुङ्गवः । संघर्षश्चाप्युतप्यश्च नरोऽहञ्जापि नारदः ॥

पितृपामित्रः शतानन्दो जाबालिस्तेतिलस्तथा ।

सान्दीपिनिश्च षड्भांशो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥ ३० ॥

उपमन्सुर्गोर्मुखो मीत्रेयश्च धृतधवाः । कठः कचश्च करखो भरद्वाजश्च धर्मचित् ॥ ३१ ॥  
सशिष्या मुनयः सर्वे घसुदेवाश्रमं ययुः । घसुदेवश्च तान् दृष्ट्वा घचन्द्रे दण्डघद्गुषि ॥  
अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सस्मितो हंसवाहनः । रत्ननिर्माणयानेन पार्वत्या सह शङ्करः ॥

नन्दी स्वयं महाकालो वीरभद्रः सुभद्रकः ।

मणिभद्रः पारिभद्रः कार्तिकेयो गणेश्वरः ॥ ३४ ॥

गजेन्द्रेण ब्रह्मेन्द्रश्च धर्मश्चन्द्रो रघिस्तथा । कुबेरो घरुणश्चैव पवनो घद्विरेष च ॥ ३५ ॥

यमः संयमिनीनाथो जयन्तो नलकृवरः । सर्वे ब्रह्माश्च घसवो रुद्राश्च सगणास्तथा ॥

आदित्याश्च तथा शेषो नानादेवाः समाययुः ।

घसुदेवश्च भक्त्या च घचन्द्रे शिरसा भुवि ॥ ३७ ॥

तुष्टाव परया भक्त्या देवेन्द्रांश्च तथा सुरान् । भक्तिप्रदात्ममूर्ध्ना च पुलकाञ्चितघिम्रहः

घसुदेव उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परमेशः परात्परः । स्वयं विधाता मनुमेहे जगतां परिपालकः ॥ ३८ ॥

वेदानां जनकः स्रष्टा सृष्टिहेतुः सनातनः । सुराणाञ्च मुनीन्द्राणां सिद्धेन्द्राणांशुरोर्गुरुः

स्वप्ने यत्पादपद्मञ्च क्षणं द्रष्टुं सुदुर्लभम् । शिवस्मरणमात्रेण सर्वानिष्टाः पलायिताः

सर्वसङ्कटमुत्तीर्य कल्याणं लभते नरः । सर्वाग्ने पूजनं यस्य देवानामग्रणीः परः ॥ ४२ ॥

घटेषु मङ्गलं मन्त्रैर्भक्त्या चावाहनेन च । स्वयं गणेशो भगवान् स साक्षाद्विप्रनायकः

कार्तिकेयश्च भगवान् देवादीनाञ्च पूजितः ।

देवानां प्रवरा पूज्या महालक्ष्मीः परात्परा ॥ ४४ ॥

मद्गृहे पार्वती माता जगतामादिरूपिणी । सर्वशक्तिस्वरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ४५ ॥

परापराणां परमा परब्रह्मस्वरूपिणी । यस्या भर्त्सा समाराध्य घाम्बितं लभते नरः ॥

शरत्काले च भक्त्या च सा साशागमम मन्दिरे ।

सधर्देवैश्च सहिता सगणा भक्त्यत्सला ॥ ४७ ॥

हृष्यामयी च हृष्या घामिमृता च मारुते । धन्योऽहं हृतदृश्योऽहं सफलं जीवनं मम ॥

भागतासि यतो दुर्गे परमाद्या च मद्गृहम् ।

एयं सर्वांश्च तुष्टाय क्रमेण च परम्यम् ॥ ५६ ॥

सर्पान् मुनीन्द्रान् विप्रांश्च गले यदांशुकं मुदा ।

प्रत्येकं वासयामास रत्नासिंहासने घरे ॥ ५७ ॥

पूजयामास विधिद्यु क्रमेण च पूषक् पृथक् । प्रत्येकं धरयामास प्रत्यादींश्च सुगर्भ

मुनिवर्गान् प्राप्सणांश्च मत्तथा गर्गं पुरोहितम् ।

रथैः प्रयालैर्मणिभिर्मुक्तामणिष्यद्दोरकोः ॥ ५८ ॥

भूयर्णयंसनेश्चैव माल्यैश्च गन्धचन्दनैः । रत्नासिंहासने रम्ये सर्वेषां मध्यदेशतः ॥ ५९ ॥

गणेशं धरयामास पूजार्थं शुभकर्मणि । सप्ततीर्थोदकेनैव सुवर्णकलशेन च ॥ ६० ॥

पुष्पचन्दनयुक्तेन शीनेन पासितेन च । स्वर्गगङ्गाजलेनैव पुष्करोदकपुण्यतः ॥ ६१ ॥

पञ्चामृतैश्च शुद्धैश्च पञ्चगव्यैश्च भक्तिनः । हेरम्यं स्नापयामास समुद्रोदेन मन्त्रतः ॥ ६२ ॥

धरयामास माल्येन पारिजातस्य नारद ! । रत्नेन्द्रभूषणेनैव वह्निशुद्धेन वाससा ॥ ६३ ॥

गन्धचन्दनपुष्पैश्च रत्नमाल्याङ्गुलीयकम् । तुष्टाय पार्श्वतीपुत्रं सर्वदेवाधिपं शुभम् ।

विप्रनिघ्नकरं शान्तं भगवन्तं सनातनम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवदुपनयने गणेशामिषेके नवमवतितमोऽध्यायः ।

## शततमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथादितिर्दितिश्चैव देवकी रोहिणी रतिः । सरस्वती च सावित्री यशोदा च पत्न्यता  
लोपामुद्रास्त्वती च अहल्या तारका तथा । ययुस्ताः पार्वतीं दृष्ट्वा वेगेन मन्दिरादपि  
परस्परञ्च संभाष्य समाश्लिष्य पुनः पुनः । प्रणम्य वेशयामासुर्मन्दिरं रत्ननिर्मितम् ॥

एवं सर्वांश्च तुष्टाय क्रमेण च परस्परम् ॥ ४६ ॥

सर्धान् मुनीन्द्रान् विप्रांश्च गले यद्वाशुकं मुदा ।

प्रत्येकं वासयामास रत्नसिंहासने घरे ॥ ५० ॥

पूजयामास विधिवत् क्रमेण च पृथक् पृथक् । प्रत्येकं धरयामास ब्रह्मादींश्च मुनिं

मुनिवर्गान् ब्राह्मणांश्च भक्त्या गर्गं पुरोहितम् ।

रत्नैः प्रचालैर्मणिभिर्मुक्तामाणिक्यहोरकैः ॥ ५२ ॥

भूषणैर्वसनैश्चैव माल्यैश्च गन्धचन्दनैः । रत्नसिंहासने रम्ये सर्वेषां मध्यदेशतः ॥ ५३ ॥

गणेशं धरयामास पूजार्थं शुभकर्मणि । सप्ततीर्थोदकेनैव सुवर्णकलशेन च ॥ ५४ ॥

पुष्पचन्दनयुक्तेन शीतेन वासितेन च । स्वर्गगङ्गाजलेनैव पुष्करोदकपुष्पतः ॥ ५५ ॥

पञ्चामृतेन शुद्धेन पञ्चगव्येन भक्तितः । हेस्वर्गं स्नापयामास समुद्रोदकेन मन्त्रतः ॥ ५६ ॥

धरयामास माल्येन पारिजातस्य नारद ! । रत्नेन्द्रभूषणेनैव चङ्घ्रिशुद्धेन वाससा ॥ ५७ ॥

गन्धचन्दनपुष्पैश्च रत्नमाल्याङ्गुलीयकम् । तुष्टाय पार्वतीपुत्रं सर्वदेवाधिपं शुभम् ।

विघ्ननिघ्नकरं शान्तं भगवन्तं सनातनम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धौकृष्णजन्मखण्डे

भगवदुपनयने गणेशाभिषेके नवनवतितमोऽध्यायः ।

शततमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

क्षमादितिर्वितिश्चैव देवकी रोहिणी रतिः ।

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

धीनारायण उवाच ।

संस्तूप देवा मुनयो विरमुश्चैव मानसे । वदन्तुः प्राङ्गणे कृष्णं शोभितं पातवाससा ॥  
यथा सौदामिनीयुक्तं नवीनजलदं मुने ! । यकपङ्क्तिर्युतञ्चैव मालतीमालया तथा ॥  
कपाले मण्डलाकारकस्तूरीयुक्तचन्दनम् । सकलद्रुं मृगाद्रुञ्च शोभितं जलदे तथा ॥३॥

द्विभुजं श्यामलं फान्तं राधाकान्तं मनोहरम् ।

ईषद्भास्यप्रसन्नास्वं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ४ ॥

रत्नकैयूरपलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रुदन्तं पितुस्तसङ्गे बलेन सहितं परम् ॥ ५ ॥  
यथ मङ्गलकाले च शुभलाने मनोरमे । संवाक्षिते प्रहैः सौम्यैर्जाग्रदग्राण्ये स्थितं ॥६॥  
असदुग्रहैरुद्रे च सदुग्रहेक्षित एव च । शुभकर्मसमारम्भं स्थस्त्वित्वाचनपूर्वकम् ॥ ७ ॥  
चकार वसुदेवध्याप्याश्रयासुरधिप्रयोः । दत्त्वा सुपर्णशतकं प्राह्वजाय च सादरम् ॥८॥  
देवेन्द्राञ्च मुनीन्द्राञ्च तमसृष्टस्य पुरोहितम् । गणेशञ्च दिनेशञ्च पङ्क्तिञ्च शङ्करं शिवाम्  
सम्पूज्य देवयत्कञ्च साक्षतैर्द्वेषसंसदि ।

उपचारैः षोडशभिः संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥ १० ॥

पुत्राधिवासनं चक्रे चेदमन्त्रेण संसदि । सम्पूज्य नानादेवांश्च दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥  
दत्त्वा पञ्चोपचारांश्च भक्त्या षोडशमातृकाः । दत्त्वा च वसुधाराञ्च सतवारान् घृतेन च  
चेदिराजं वसुं नत्वा सम्पूज्य प्रथमो पुनः । वृद्धिधाढं सुनिर्वाप्य यत्किञ्चिद्विकंतथा  
यज्ञं कृत्वा तु वेदोक्तं यज्ञसूत्रं ददौ मुदा । बलदेवाप्रजायैव कृष्णाय परमात्मने ॥१४॥  
गायत्रीञ्च ददौ ताभ्यां मुनिः सांदीपिनिस्तथा ।

भिक्षां ददौ च प्रथमं पार्वतीः परमादरात् ॥ १५ ॥

अमूल्यरत्नपात्रस्थं मुक्तामाणिक्चहीरकम् । हीरसारविानर्माणं वित्रा दत्तञ्च हारकम् ॥  
शुभाशिषञ्च प्रददौ शुक्लपुष्पेण दूर्वया । ततोऽदितिर्दितिश्रैव मुनिपत्न्यश्च देवकी ॥

अनन्त उवाच ।

किंवा जानाम्यहं नाथ ! त्वामन्नोऽनन्तमीश्वरम् ।

अनन्तकोटिप्रज्ञाण्डकारणं कुम्भतारणम् ॥ २१ ॥

महाधिष्णोऽथलोभाश्च विचरेपुजलेपुत्र । सन्तिचिद्रान्यसंख्यानिचित्राणिठुप्रिमात्रि  
न्तिसन्तश्च देवाश्च प्रज्ञधिष्णुशिषात्मकाः । त्वदंशाःप्रतिविम्बेषु तीर्थानि भारतं तथा  
ह्याण्डैकस्थितोऽहञ्च सूक्ष्मनागस्वरूपकः । स्थापितश्चत्पया कूर्मं गजेन्द्रं मशको यथा

परमाणु परं सूक्ष्मं विश्वेषु नास्ति कुत्रचित् ।

महाधिष्णोः परं स्थूलं समो नास्ति च कुत्रचित् ॥ २५ ॥

महाधिष्णोः परस्त्वञ्च तत्परो नास्ति कश्चन ।

स्थूलात् स्थूलतरो देवः सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमो महान् ॥ २६ ॥

भाधारश्च महाधिष्णो जलरूपो भवान् स्वयम् ।

जलाधारो हि गोलोकस्त्वञ्च स्थावररूपधृक् ॥ २७ ॥

र्षाधारोमहान् घायुःश्वासनिःश्वासरूपकः । भक्तानुग्रहदेहस्यनित्यस्य भवतोविमो-  
क्त्रैर्वहुत्तरैर्वाथ त्वया दत्तैः पुरैव च । स्तोतुमिच्छामि त्वद्योगं न दत्तं ज्ञानमीश्वरम्

देवा ऊचुः ।

त्वामनन्तं यदि स्तोतुं देवोऽनन्तो न हीश्वरः ।

न हि स्वयं विधाता च न हि ज्ञानात्मकः शिवः ॥ ३० ॥

सरस्वती जड़ीभूता किं कुर्मः स्तवनं वयम् ॥ ३१ ॥

मुनीन्द्रा ऊचुः ।

दा न शक्ता स्तोतुञ्चेत्वाञ्चैवज्ञातुमीश्वरम् । वयं वैदविदः सन्तः किं कुर्मः स्तवनंत्व  
दंस्तोत्रं महापुण्यं देवैश्च मुनिभिःकृतम् । यः पठेत्संयतः शुद्धः पूजाकाले च भक्तिः  
इलोके सुखंभुक्त्वा दृष्ट्वा ज्ञानं निरञ्जनम् । रत्नयानंसमाह्वय गोलोकं स च गच्छति





यशोदा रोहिणी हृष्टा सावित्री च सरस्वती ।

प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां भणिकाञ्जनभूषिताम् ॥ १८ ॥

देवकन्या नागकन्या राजकन्याः पतिव्रताः ।

कामिन्यो बान्धवानाञ्च सस्मिताः स्निग्धलोचनाः ॥ १९ ॥

इन्द्राणी वरुणानी च पवनानी च रोहिणी ।

कुचेरपत्नी स्वाहा च रतिः कामस्य कामिनी ॥ २० ॥

प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां रत्नभूषणभूषिताम् । भिक्षां गृहीत्वा भगवान् सबलो भक्तिपूर्वकम्  
किञ्चिद्ददौ च गर्गाय किञ्चित् स्वगुरवे तथा ।

वैदिकं कर्म निर्वाप्य गर्गाय दक्षिणां ददौ ॥ २२ ॥

देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणांश्चापि सादरम् ।

ये ये समाययुर्यज्ञे ते च दत्त्वा शुभाशियम् ॥ २३ ॥

कृष्णाय बलदेवाय प्रहृष्टाः प्रययुर्षुहम् । नन्दः सभार्षीं निर्वाप्य शुभकर्म सुतस्य ये  
मोडे कृत्वा बलं कृष्णं चुचुभ्य पदने तयोः । उद्यै कुरोद् नन्दश्च यशोदा च पतिव्रता ॥

धीकृष्णस्तं समाशवास्य बोधयामास यज्ञतः ॥ २५ ॥

धीकृष्ण उशाच ।

सानन्दं गच्छ हे मातर्यशोदे तात ! सत्वरम् ।

त्वमेव माता पोष्ट्री त्वं पिता च परमार्थतः ॥ २६ ॥

भयन्तिनगरं तात ! यास्यामि सखलोऽधुना ।

मुनेः सार्क्षिणिकेः स्थानं यद्दृष्टात्तार्धमीप्सितम् ॥ २७ ॥

तत्र भागवत्य सुचिरं कालं भवति दर्शनम् । कालः करोति फलनं स च भेदं करोति च  
सर्वं कालेन मातर्देवं संमार्जनं नृणाम् । सुखं तु खञ्ज हर्षश्च शोकश्च मङ्गलालयम् ।  
मया दत्तश्च तस्यश्च पांगिनामणि दुर्लभम् । सर्वं नन्दश्च सानन्दं त्वामेव कथयिष्यति  
इत्युक्त्या उगतो नाथो यमुदेयतमो ययौ । तदाश्रया क्षणे प्राप्य ययौ सार्क्षिणिकेः  
यमुदेयं देवकीञ्च सम्भाष्य विनयेन च । नन्दः सनात्यर्थः प्रययौ हृद्येन विदूयता ।

धिकशततमोऽध्यायः ] \* विद्यापठनार्थं सान्दीपिनिगुरुसमीपे गमनम् \* १०६६

मणि सुवर्णञ्च माणिक्नहीरकं तथा । पङ्क्तिशुद्धांशुकं रत्नं नन्दाय देवकी ददौ ॥  
ताश्चञ्च गजेन्द्रञ्च सुवर्णं रथमुत्तमम् । नन्दाय कृष्णः प्रददौ वसुदेवश्च सादरम् ॥  
रेनुवज्रञ्च विप्रा देवकीप्रमुखाः स्त्रियः । वसुदेवस्तथाकूरोऽप्युद्धवश्च ययौ मुदा ॥  
लिन्दीनिकटं गत्वा ते सर्वे रुद्रदुः शुचा । परस्परञ्च सम्भाष्य ते सर्वे स्वालयं ययुः  
ती सपुत्रा विधवा वसुदेवाश्रया मुने । नानारत्नमणिं प्राप्य प्रययौ स्वालयं मुदा ॥  
दुदेवो देवकी च पुत्रकल्याणहेतवे । नानारत्नमणिं वस्त्रं सुवर्णं रजतं तथा ॥ ३८ ॥  
तामणिक्वहारञ्च मिष्टान्नञ्च सुधोपमम् । भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ सादरं मुदा ॥  
तेस्वयं वेदपाठं हरिर्नामैकमङ्गलम् । विप्राणां भोजनञ्चैव कारयामास यत्नतः ॥ ४० ॥

ज्ञातीनां यान्धवानाञ्च पुरस्कारं यथोचितम् ।

चकार मणिमणिक्वपमुक्तायस्त्रैर्मनोहरैः ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
भगवदुपनयनं नामैकशततमोऽध्यायः ।

## द्वयधिकशततमोऽध्यायः

विद्यापठनार्थं सान्दीपिनिगुरुसमीपे श्रीकृष्णस्य गमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कृष्णः सान्दीपिनेर्गेहं गत्वा च सबलो मुदा ।

नमश्चकार स्वगुरुं गुरुपत्नीं पतिव्रताम् ॥ १ ॥

शुभाशिरं गृहीत्वा च दत्त्वा रत्नं मणिं हरिम् ।

गुरवे तस्य भाष्यार्थैः तमुवाच यथोचितम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

त्वंतो विद्यां लभिष्यामि चाच्छ्रितां चाच्छ्रितं मम ।

वृष्ट्या शुभक्षणं विप्र मां पाठय यथोचितम् ॥ ३ ॥

भोमित्युत्तवा मुनिध्रेष्ठः पूजयामास नं मुदा । मधुरकंप्राशनेन गया वस्त्रेण चन्दने ।  
मिष्टान्नं भोजयामास ताम्बूलञ्च सुवासितम् । सुप्रियं कथयामास तुष्टावपरमेस्वरम् ।  
सान्दीपिनित्याच ।

परं ब्रह्म परं धाम परमीश परात्पर । स्वच्छामयं स्वयं ज्योतिर्निलिप्तैकां निरदुःखः ॥१॥  
भक्तैकनाथ भक्तैष्ट भक्तानुग्रहधिग्रह । भक्त्याच्छाक्यतरो भक्तानां प्राणवहम् ॥ २ ॥  
मायया बालरूपोऽसि प्रलेशशेषवन्दितः । मायया भुवि भूपालो भुवो भारक्षयाव च  
योगिनो यं विदन्त्येवं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।

ध्यायन्ते भक्तनिबद्धा ज्योतिरभ्यन्तरे मुदा ॥ ६ ॥

द्विभुजं मुरलीहस्तं सुन्दरं श्यामरूपकम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं भक्तवत्सलम्  
पीताम्बरधरं देयं घनमालाधिभूषितम् । लीलापाङ्गतरेगैश्च निन्दितानङ्गमूर्च्छितम् ॥१॥  
अलकभवनं तद्वत्पादपत्रं सुशोभनम् । कौस्तुभोद्भासिताङ्गञ्च दिव्यमूर्ति मनोहरम् ॥  
इन्द्रास्यप्रसन्नञ्च सुवेशं प्रस्तुतं सुरैः । देवदेवं जगन्नाथं त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥ १२ ॥  
कोटिकन्दर्पलीलाभं कमनीयमनीश्वरम् । अमृत्यवत्ननिर्माणभूषणोद्यै न भूषितम् ॥  
वरं वरेष्यं वरदं वरदानाममीप्सितम् ॥ १४ ॥

चतुर्णामपि चेदानां कारणानाञ्च कारणम् । पाठार्थंमत्प्रियस्यानमागतोऽसि च मायया  
पाठं ते लोकशिक्षार्थं रमणं गमनं रणम् । स्वात्मारामस्य च विभोः परिपूर्णतमस्य च  
गुरुपत्न्युवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम । पातिव्रत्यञ्च सफलं सफलञ्च तपोवनम् ॥  
महद्वहस्तः सफलो दत्तं येनान्नमीप्सितम् । तदाश्रमं तीर्थपरं तीर्थपादपदाङ्कितम् ॥  
तत्पादरजसा पूता गृहाः प्राङ्गणमुत्तमम् ॥ १८ ॥

यस्य त्वत्पादपद्मञ्चैवावयोर्जन्मखण्डनम् । तावद् दुःखञ्च शोकञ्च तावद्दोगञ्च रोगकः  
तावन्नग्मानि कर्माणि ध्रुत्विपासादिकानि च ।  
यावत्त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम् ॥ २० ॥

हे कालकाल भगवन् स्रष्टुः संहर्तुरीश्वर । कृपां कुरु कृपानाथ मायामोहनिवृत्तन ॥२१

इत्युक्त्वा साश्रुनेत्रा सा कोड़े कृत्वा हरिं पुनः ।

स्वस्तनं पापयामास प्रेम्णा च देवकी यथा ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मातस्त्वं मां कथं स्तौषि बालं दुग्धमुखं सुतम् ।

गच्छ गोलोकमिष्टञ्च स्वामिना सह साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

त्यक्त्वा प्राकृतिकं मिथ्या नश्वरञ्च कलेवरम् । विधाय निर्मलं देहं जन्ममृत्युजराहरम्

इत्युक्त्वा चतुरो वेदान् पठित्वा मुनिपुङ्गवात् । भासेन परया भक्त्या दत्त्वा पुत्रं मृतपुरा

रत्नानाञ्च त्रिलक्षञ्च मणीनां पञ्चलक्षकम् । हीरकाणां चतुर्लक्षं मुक्तानां पञ्चलक्षकम्

माणिक्यानां द्विलक्षञ्च पस्त्रं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।

हारञ्च दुर्गाया दत्तं हस्तरत्नाङ्गुलीयकम् ॥ २७ ॥

दशकोटिं सुवर्णानां गुरवे दक्षिणां ददौ । धर्मव्यवहृत्तनिर्माणं नारीसर्पाङ्गभूषणम् ॥

गुरुप्रियायै प्रददौ घट्टिशुखांशुकं धरम् । मुनिर्दत्त्वा च पुत्राय तत्सर्वं प्रियया सह ॥

सद्गुरुरथमारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम् । तमद्दुर्तं हरिं दृष्ट्वा प्रययौ स्वालयं मुदा ॥

एवं ब्रह्मण्यद्रेचस्य चरित्रं शृणु नारदम् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेद्वक्तिपूर्वकम् ॥३१

श्रीकृष्णे निश्चलां भक्तिं लभते नात्र संशयः । अस्पृष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खाभवति पण्डितः

इदं लोके सुखं प्राप्य यातपन्ते धीहरैः पदम् । तत्र नित्यं हरिर्दास्यं लभते नात्र संशयः

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

मुनिपत्नीस्तोत्रं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।

## अधिकशततमोऽध्यायः

### द्वारकानिर्माणवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अध्यागत्य मधुपुरीं प्रणम्य पितरं विभुः । सयलां षट्मूले च सस्मार गरुडं हरिः ॥१॥  
सादरं लपणोदञ्च विश्वकर्माणमीप्सितम् । तत्याज गोपयेशञ्च नृपयेशं दधार सः ॥२॥  
एतस्मिन्नन्तरे चक्रमाजगाम हरिं स्वयम् । परं सुदर्शनं नाम सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥३॥  
तेजसा हरिणा तुल्यं परं वैरिचिमर्दनम् । अव्यर्थमस्त्रमस्त्राणां प्रवरं परमं परम् ॥४॥  
रत्नयानं पुरःकृत्वा गरुडो हरिसन्निधिम् । विश्वकर्मांसशिष्यश्च जलधिः कम्पितस्तथा  
हरिं प्रणेमुस्ते सर्वे मूर्ध्नां च भक्तिपूर्वकम् । सस्मितं सादरं यद्वात्तानुवाच क्रमाद्भिः

श्रीकृष्ण उवाच ।

हे समुद्र महाभाग स्थलञ्च शतयोजनम् ।

देहि मे नगरार्थञ्च पश्चाद्वास्यामि निश्चितम् ॥ ७ ॥

नगरं कुरु हे कारो त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । रमणीयञ्च सर्वेषां कर्मनीयञ्च योपिताम् ।  
वाञ्छितञ्चापि भक्तानां वैकुण्ठसदृशं परम् । सर्वेषामपि स्वर्गाणां परम्पारममीप्सितम्

दिवानिशं स्वगश्रेष्ठ सन्निधौ विश्वकर्माणः ।

स्थितिं कुरु महाभाग यावन्निर्माति द्वारकाम् ॥ १० ॥

दिवानिशञ्च मत्पाश्वे चक्रश्रेष्ठ स्थितिं कुरु ।

ओमित्युक्त्वा तु प्रययुः सर्वे चक्रं चिना मुने ॥ ११ ॥

कंसस्य पितरं भद्रमुग्रसेनं महाबलम् । नृपं चकार नगरे क्षत्रियाणां सतामपि ॥ १२ ॥

विजित्य च जरासन्धं निहत्य यधनं तथा । उपायेन महाभाग निर्माणक्रममीश्वरः ।

श्रीभगवानुवाच ।

शतयोजनपर्यन्तं नगरं सुमनोहरम् । पश्चरार्गैर्मरकतैरिन्द्रनीलैरनुत्तमैः ॥ १४ ॥

स्वकैः पारिभद्रेष्व पलङ्गेष्व स्यमन्तकैः । गन्धकैर्गालिमीश्वैश्च चन्द्रकान्तादिभिस्तथा ॥

सूर्यकान्तादिमिश्रैश्च पुत्रैश्च स्फाटिकाकृतैः ।

हरिद्वर्णैश्च मणिभिः श्यामैर्गौरमुखैश्चपैः ॥ १६ ॥

गोरोचनाभिः पीतैश्च दाडिमीवीजरूपकैः । पद्मवीजनिभैश्चैव नीलैः कमलवर्णकैः ॥

मणिभिः कज्जलाकारैरुज्ज्वलैश्च परिष्कृतैः । श्वेतचम्पकवर्णाभैस्ततकाञ्चनसन्निभैः ॥

स्वर्णमूल्यशतगुणैरीपद्रुकैः सुशोभनैः । गरिष्ठैश्च वरिष्ठैश्च मणिधेष्ठैश्च पूजितैः ॥ १६ ॥

यथाविधानं यद्योगं यत्र यन्मुक्तमीप्सितम् ।

मणीनां हरणञ्चैव यक्षसङ्घाद्द्विमालयात् ॥ २० ॥

दिवानिशं करिष्यन्ति यावन्ननिर्माणपूर्वकम् । यक्षैश्च सप्तभिलंशैः कुबेरैरितैरपि ॥२१॥

वेताललक्षैः कुम्भाण्डलक्षैः शङ्करयोजितैः । दानवैर्ब्रह्मरक्षोभिः शैलकन्यानियोजितैः ॥

कुह दिव्यैश्च पत्नीनां सहस्राणाञ्च षोडश । अन्यपत्नीजनस्यापि चाष्टाधिकशतस्य च

शिविरं परिखामुक्तमुच्चैः प्राकारखेष्टितम् । युक्तद्वादशशालञ्च सिंहद्वारपरिष्कृतम् ॥२४॥

युक्तञ्चित्रैर्विचित्रैश्च कृत्रिमैश्च कपाटकैः । निषिद्धवृक्षरहितं प्रसिद्धैश्च परिष्कृतम् ॥

सुलक्षणं चन्द्रवेधं प्राङ्गणञ्च तथैव च । यदूनामाश्रमं दिव्यं किङ्कराणां तथैव च ॥२६॥

सर्वप्रसिद्धं निलयमुप्रसेतस्य भूभृतः । आश्रमं सर्वतोभद्रं घसुदेवस्य मत्पितुः ॥ २७ ॥

विश्वकर्मावाच ।

के ते वृक्षाः प्रशस्ताश्च निषिद्धाश्चापि केचन ।

भद्राभद्रप्रदाश्चापि तान् घदस्य जगद्गुरो ॥ २८ ॥

केषामस्त्रिनियुक्तञ्च शिपिरञ्च शुभाशुभम् । दिशि कुत्र जलं भद्रमभद्रञ्च घद प्रभो ॥

भद्रप्रदश्च को वृक्षो दिशि कुत्र प्रवर्तते । किं प्रमाणं गृहाणाञ्च प्राङ्गणानां सुरेश्वर ॥

मङ्गलं कुसुमोद्यानं दिशि कुत्र तरोस्तथा । प्राकाराणां किं प्रमाणं परिखानां सुरेश्वर

द्वाराणाञ्च गृहाणाञ्च प्राकाराणां प्रमाणकम् ।

कस्य कस्य तरोः काष्ठं प्रशस्तं शिविरे प्रभो ।

अमङ्गलं वा केशञ्च सर्वं मां वक्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

ध्रीमगवानुवाच ।

धमे नारिकेलश्च गृहिणाञ्च धनप्रदः । शिविरस्य यदीशाने पूर्वं पुनप्रदस्तदु ॥

सर्वत्र मङ्गलार्द्रश्च तदराजो मनोहरः ।

रसालवृक्षः पूर्वंस्मिन् नृणां सम्यग्प्रदस्तथा ॥ ३४ ॥

प्रदश्च सर्वत्र मूरकारो निशामय । विल्वश्च पनसभौव जम्बीरो बदरी तथा ॥३

प्रदश्च पूर्वंस्मिन् दक्षिणे धनदस्तथा । सम्पत्प्रदश्च सर्वत्र यतो हि घटते गृही

वृक्षश्च दक्षिण्यः फदल्याघातकस्तथा । यन्पुप्रदश्च पूर्वंस्मिन् दक्षिणे मित्रदस्त

त्र शुभदश्चैव धनपुप्रशुभप्रदः । हर्षप्रदो सुवाकश्च दक्षिणे वधिमो तथा ॥ ३८ ॥

ने सुखदश्चैव सर्वत्रैव निशामय । सर्वत्र चम्पकः शुद्धो भुवि मद्रप्रदस्तथा ॥३९

अलान्नुश्चापि कृष्माण्डमायाम्बुध सर्किशुकः ।

खजुरी कर्कटी चापि शिविरे मङ्गलप्रदा ॥ ४० ॥

घास्तूककारविल्वश्च घाताकुश्च शुभप्रदः ॥ ४१ ॥

फलञ्च शुभदं सर्वं सर्वत्र निश्चितम् । प्रशस्तं कथितं कारो निषिद्धञ्च निशामय

घन्यवृक्षो निषिद्धश्च शिविरे नगरेऽपि च ॥ ४२ ॥

निषिद्धः शिविरे नित्यं चोरभयं यतः । नगरेषु प्रसिद्धश्च दर्शनात् पुण्यदस्तथा ।

निषिद्धः शाल्मलिश्चैव शिविरे नगरे पुरे ।

दुःखप्रदश्च सततं भूमिपानां सदापि च ॥ ४४ ॥

निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च । विद्यामतिनिषिद्धश्च सततं दुःखदस्तथा ॥

हे कारो तिम्रिङ्गीवृक्षो यत्नात्तं परिषर्जयेत् ।

शतेन धनहानिः स्यात् प्रजाहानिर्मवेद् भुवम् ॥ ४६ ॥

रेऽतिनिषिद्धश्च नगरे किञ्चिदेव च । न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च ॥

मतिनिषिद्धश्च प्राज्ञस्तं परिषर्जयेत् । खजूरश्च गहुश्चैव निषिद्धः शिविरे तथा ॥

निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च । वृक्षश्च चणकादिनां घान्यञ्च मङ्गलप्रदम् ॥

पु नगरे चापि शिविरे च तथैव च । इधुवृक्षश्च शुभदः सन्ततं शुभदस्तथा ॥५०॥



अशोकश्च शिरीषश्च कदम्बश्च शुभप्रदः ।

कश्चित् हस्तिं शुभदा शुभदश्चार्द्रकस्तथा ॥ ५१ ॥

हरीतकी च शुभदा ग्रामेषु नगरेषु च ।

नवाद्या भद्रदा नित्यं तथा चामलकी ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

जानामस्थिशुभद्रमश्वानाञ्च तथैवच । कदराणमुच्चैःश्रवसां वास्तौ स्थापनकारिणाम्  
शुभप्रदमन्येषामुच्छिन्नकारणं परम् । घानराणां नराणाञ्च गर्दभानां गवामपि ॥ ५४ ॥

कुद्रानां शृगालानां मार्जारानामभद्रकम् । भेटकानां शूकराणां सर्वेषाञ्च शुभप्रदम् ॥  
गाने चापि पूर्वस्मिन् पश्चिमे च तथोत्तमे । शिविरस्य जलं भद्रमन्यत्राशुभमेव च ॥

दीर्घे प्रस्थे समानञ्च न कुप्यान्मन्दिरं युधः ।

चतुरस्रे गृहे कारो गृहिणां धननाशनम् ॥ ५७ ॥

दीर्घः प्रस्थः परिमितो नेत्राङ्केनापि संदृढम् ।

शून्येन रहितं भद्रं शून्यं शून्यप्रदं नृणाम् ॥ ५८ ॥

प्रस्थे हस्तद्वयात् पूर्वं दीर्घे हस्तत्रये तथा ।

गृहाणां शुभदं द्वारं प्राकारस्य गृहस्य च ॥ ५९ ॥

मध्यदेशे कर्त्तव्यं किञ्चिन्न्यूनाधिके शुभम् । चतुरस्रं चन्द्रवेधं शिविरं मङ्गलप्रदम् ॥  
भद्रदं सूर्यवेधं शिविरं मङ्गलप्रदम् । भद्रदं सूर्यवेधं प्राङ्गणञ्च तथैव च ॥ ६१ ॥

शिविराभ्यन्तरे भद्रा स्थापिता तुलसी नृणाम् ।

धनपुत्रप्रदाप्रो च पुण्यदा हस्तिभिक्षिदा ॥ ६२ ॥

मनाते तुलसीं दृष्ट्वा स्वर्णदानरुलं लभेत् । मालतीं यूपिकां कुन्दमाधवीं वेतकीं तथा  
नागेभ्वरं महिकाञ्च काञ्चनं पङ्कजं शुभम् ।

अपराजिता च शुभदा तेषामुद्यानमोपिष्ठकम् ॥ ६४ ॥

पूर्वं च दक्षिणेनैव शुभदं नात्र संशयः । ऊर्ध्वं वोद्गृहहस्तेभ्यो नीचं कुप्याद्गु गृहं गृहो  
ऊर्ध्वं विहातिहस्तेभ्यः प्राकारं न शुभप्रदम् ।

पृथ्वात् तैलकारं स्वर्णकारञ्च दारणम् ॥ ६६ ॥

वार्तायुने वाममन्त्रे न दृष्ट्यान् श्यामन्तुः । ब्राह्मणभक्तिर्षेते सन्तुर्गणक्युन  
 मई वेत्तं पुष्करकारं श्यामवेष्टिविराजिह । प्रसंगे न परिश्रामानं शत्रुहर्तं प्राम्पक  
 परितः शिविगनाञ्च तम्भीरं वराहभक्तम् । मङ्कगपूंकञ्चैव परिश्राडागमोपिस्तम् ॥

शत्रोरागर्भं मित्रस्य गन्धमेव गुणं न च ।

शान्मसोनी तिमितीनी दिग्गजानी तमेव च ॥ ३० ॥

निम्बानी शिशुषाराणामु(म)भवराणामभद्रकम् ।

धत्तुराणी पदानाञ्चाप्येष्टदानामपाञ्चिजम् ॥ ३१ ॥

पतेषामतिरिचरनां शिविरे काष्ठमीप्सितम् । वृक्षश्च यज्ञदक्षश्च नृपरां वज्रयेदुपुञ्ज ॥

पुत्रदारधनं हृष्याश्रित्याह फल्गुद्रुपः । कणितं लोकशिक्षार्थं कुरु कारुं विना पुण्ड्रम् ॥

शुभक्षणञ्चाप्यथुना गच्छ परस यथा सुखम् । विदयकर्मा हरिं नभ्या जगामशक्तिपात्त ॥

समुद्रस्य समीपश्च पटमूलं मनोहरम् । सुष्याप तत्र नर्तं च कारुश्च पक्षिना सह ॥

स्वप्ने द्वारपती रम्यां ददर्शं गरुडस्तथा ।

यत्किञ्चिन् फधितं फारुं कृष्णेन परमात्मना ॥ ३६ ॥

तदेव लक्षणां सर्वं ददर्शं नगरे मुने ।

फारुं हसन्ति स्वप्ने च सर्वे तं शिष्यकारिणः ॥ ३७ ॥

गरुडं गरुडाश्याभ्ये बलवन्तश्च पक्षिणः । सुखो ददर्शं गरुडो विभ्वकर्मा च लज्जित ॥

भर्ताप द्वारकां रम्यां शतयोजनविस्तृताम् ।

ब्रह्मादीनाञ्च नगरं विजित्य च विराजिताम् ।

तंजसाच्छादितं सूर्ये रत्नानाञ्च परिष्कृताम् ॥ ३८ ॥

इति धर्मशास्त्रसंस्कृतं महापुराणे नारायणनारदसंवादे धर्मशास्त्रजन्मखण्डे

द्वारकानिर्माणारम्भे श्यधिकशततमोऽध्यायः ।

## चतुरधिकशततमोऽध्यायः

द्वारकादर्शनार्थं देवादीनामागमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या च भवः स्वयम् । अनन्तश्चापि धर्मश्च भास्करश्च गुताशनः  
कुबेरो वरुणश्चैव एवमश्च यमस्तथा । महेंद्रश्चापि चन्द्रश्च शत्राश्चैकादशौ ते ॥ २ ॥

अन्ये देवाश्च मुनयो वसवः सप्त एव च ।

आदित्याश्चापि दैत्याश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥ ३ ॥

भाययुद्धारिकां द्रष्टुं श्रीरुष्णञ्च बलं तथा । भागच्छन्तञ्च सहस्रा घटमूलं मनोहरम् ॥  
दृष्ट्वा च देवताः सर्वास्तुष्टुवुः पुण्योत्तमम् ॥

आकाशाच्च विमानैश्च सम्प्राप्य घटमूलकम् ॥ ५ ॥

इन्द्रयुद्धारिकां रथ्यामतीवसुमनोहराम् । मुक्तामणिवपहरीण रत्नराजिषिराजिताम् ॥६॥  
परितश्चतुरध्वाञ्च शतयोजनसंमिताम् ।

सप्तभिः परिष्कारिभ्यश्च गम्भीराभिश्च घेष्टिताम् ॥ ७ ॥

आकारेणवभिर्युक्तां लक्ष्मीं कीडासरोवरैः । मनोहरैः सपत्नैश्च सहितैश्च मधुपतेः ॥८॥  
शोभितां सर्वतोभद्रैः पुष्पोद्यानत्रिलक्षकैः । प्रफुल्लपुष्पै पवनेः सर्वत्र सुरभीकृताम् ॥

भामोदिताञ्च शोभेन मन्दचन्दनपायुता ।

तरुभिर्नारिकेलानां शोभितां शतकोटिभिः ॥ १० ॥

गुणाकानाञ्च वृक्षैश्च भूषितां लघुगुणैः । चतुर्गुणैर्गुणाकानां युक्तामाश्रमहारीकैः ॥११॥  
पतीतां पनसानाञ्च वृक्षैराश्रसमेमुने । सुशोभिताञ्च तालानां द्रुमैराश्रसमेमुने ॥ १२ ॥

भश्वरथैर्वन्द्योभिश्च चिल्वैराघ्रातकैर्वन्द्यैः ।

शास्मलीभिश्च जम्बूभिः कदम्बैश्चापि शोभिताम् ॥ १३ ॥

वंशीश्च त्रिन्त्रिंशोभिश्च चण्डकैर्वकुलैस्तथा । नागैश्चरेतांगरुद्रैर्जम्बूकैर्दाडिमैर्पुताम् ॥१४॥

खजूरैरजुनैः पिष्टैरिध्रुमिः काञ्चनेरपि ।

हरीतकीभिर्भात्रीभिस्त्रिदुमिः परितः प्लुताम् ॥ १५ ॥

शालैः प्रियालैर्हिन्तालैः शिशिरैःसप्तपर्णकैः । अन्यैर्नानाद्रुमैरिष्टैरिष्टां युक्तां परिप्लुताम्  
असंख्यैर्मन्दिरे रम्यैरत्युच्चैरपि संसृताम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्मुक्तामाणिक्यभूपितैः ॥  
माणिक्यहीरकैश्चित्रैः सद्रत्नफलशान्वितैः । मणिभिर्निर्मितैरिष्टैः सोपाननिकरैर्वरैः ॥  
कपाटैः कठिनैर्दिव्यैर्गालाकीलकैर्युताम् । हरिणमणीनां स्तम्भानां कद्म्यैरपि संयुतैः ॥  
नानाचित्रैर्विचित्रैश्च सुचित्रैश्च परिष्कृतैः । दर्पणैः सूक्ष्मवस्त्रैश्च शोभितैःश्वेतवामनैः  
प्राङ्गणैः पद्मरागाद्यैस्त्रिनीलपरिष्कृताम् । धीधीभीरनखचितै राजमार्गैः समन्विताम्

श्रीष्मध्याह्नसूर्याभां ज्वलितां रत्नतेजसा ।

गवाक्षलक्षैः संयुक्तां वाजिशालोत्परिष्कृताम् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा च द्वारकां रम्यां ते देवा विस्मयं ययुः । प्रसन्नवदनो देवो लाङ्गुली भगवानजः ॥  
सस्मार यदुर्वशानां समूहमुप्रसेनकम् । वसुदेवं देवकीञ्च पाण्डवांश्च समातृकान् ॥  
नन्दं यशोदां गोपालान् राजेन्द्रमुनिपुङ्गवान् ।

गन्धर्वान् किन्नरांश्चैव सहितो यदुपुङ्गवैः ॥ २५ ॥

नन्दोयशोदा गोपाश्च जनन्या सहपाण्डवाः । गन्धर्वाः किन्नराश्चैवविद्याधर्यश्चनारद  
किन्नर्यश्चापि नर्तक्यो गायका पाद्यभाण्डकाः ।

मिश्रुका भाण्डकाश्चैव भट्टाश्च गणकास्तथा ॥ २७ ॥

नानादेशोद्भवा भूषा वैयाख्यान्येवमानवाः । सन्यासिनश्च यतयोऽवधूताग्रहचारिणः ॥  
आययुर्मनयः सर्वे सशिष्याः सिद्धपुङ्गवाः । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥  
सनत्कुमारो भगवान्ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिःसार्द्धं पञ्चदशैः विगम्यत्  
शिष्यैस्त्रिलक्षैःसहितोदुर्घासाभगवानजः । लक्षशिष्यैः कश्यपश्चवाल्मीकश्चत्रिलक्षकैः ॥  
लक्षशिष्यैर्गीतमश्च कोटिभिश्च घृहस्पतिः । शुकस्त्रिकोटिभिःसार्द्धंभरद्वाजश्चलक्षकैः ॥

शिष्यैःस्त्रिकोटिभिः सार्द्धंमङ्गिरा भगवानजः ।

पशिष्टः कोटिभिः शिष्यैः प्रचेताः कोटिभिस्तथा ॥ ३३ ॥

त्रिलक्षैश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यःकोटिमिः सह । पुलहोलक्षशिष्यैश्चक्रतुलंक्षैस्तथैव च  
अत्रिस्त्रिकोटिमिः सार्द्धं भृगुश्च पञ्चकोटिमिः ।

त्रिकोटिमिर्मरीचिश्च शतानन्दः सहस्रकैः ॥ ३५ ॥

सार्द्धं त्रिकोटिमिः शिष्यै ऋष्यशुद्धो विभाण्डकः ।

पाणिनिः कोटिमिःशिष्यैलंक्षैः कात्यायनस्तथा ॥ ३६ ॥

याज्ञवल्क्यः सहस्रैश्च व्यासःशिष्यत्रिकोटिमिः । शिष्यैलंक्षैश्चसहितोगर्गःकुलपुरोहितः  
गालवश्चसहस्रैश्चसहस्रैःसौभरिस्तथा । त्रिकोटिमिलोमशश्चमार्कण्डेयस्त्रिकोटिमिः

सान्दीपिनिर्द्वैषलश्च सच्छिष्यैश्च त्रिकोटिमिः ।

षोडुः शिष्यैः कोटिमिश्च लक्षैः पञ्चशिखस्तथा ॥ ३६ ॥

अहंनारायणश्चैव नरोममसहोदरः । शिष्यैद्विकोटिमिः सार्द्धंविश्वामित्रश्च कोटिमिः  
त्रिकोटिमिर्जरत्कारास्तीक्ष्णश्च त्रिकोटिमिः ।

त्रिकोटिमिःपरशुरामो धरस्रो लक्षैश्च शिष्यकैः ॥ ४१ ॥

दशस्त्रिलक्षैः शिष्यैश्च कपिलः पञ्चकोटिमिः । संवर्तश्चत्रिलक्षैश्चाप्युत्थयश्चतथैवच  
सहस्रैर्जैमिनिश्चैव पैलो लक्षैस्तथैव च । सुवर्णश्च सहस्रैश्च वैशम्पायन एव च ॥

शिष्यैलंक्षैः समेतश्च व्यासशिष्यःपुरीगमः । लक्षैःशिष्यैस्तथाशुद्धीनोपमन्युस्तथैव च  
सहस्रैश्च गौरमुखः कन्दो लक्षैर्गुरोःसुतः । अश्वत्थामातथाद्रोणः कृपान्चार्यःसशिष्यकः

मीमःकर्णश्च शकुनी राजादुर्योधनस्तथा । नृपस्यभ्रातरः सर्वे चान्ये भूपा जगद्गुरुम्  
ध्याभगवानुवाच ।

शुभकर्मणि निष्पन्ने याध्यन्ति वेसमागताः । शिवब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तथापरे ॥  
तत्रापि यादवैः सार्द्धं प्रविशद् द्वारकापुरीम् । मन्विजामानुभिः सार्द्धं माहेन्द्रेवक्षणेनृप

अपरेयदधोऽन्ये चयास्यन्ति मधुरापुरीम् । ध्रुत्वेति विरसो राजा तमुवाच भयाकुलः ॥  
उप्रसेन उवाच ।

वासुदेव न यास्यामि भूमिं तां पैतृकीं पुनः । सर्वतीर्थपरंशुद्धां देवे कर्मणि पैतृके ॥  
पाचकेभूमिदेशेच पितृणां निर्वपेत्तु यः । मद्रुभूमिःस्वामिपितृभिःश्राद्धकर्मणि हन्यते ॥

पितृणां निष्कलं धार्डं देवानामपि पूजनम् ।

किञ्चिद्व्यक्तप्रवक्ष्ये सगुणं वैतृकेस्थने ॥ ५२ ॥

पुत्रपौत्रकलप्रेक्ष्यः प्राणेभ्यःप्रेयसीसदा । दुर्लभा वैतृकी भूमिः पितृमांनुर्गायिनी ॥

तत्रास्यञ्च पवित्रञ्च वैशे कर्मणि वैतृके । फांङ्गाञ्च वरो दानञ्च पावत्तमगुदकम् ॥ ५३ ॥

धियने वैतृकीभूम्यां तीर्थंतुल्यफलं लभेत् । गङ्गाजन्तसमं पूर्णं पितृघातोदकं हरे ॥

तत्रस्नात्वा जलेपूतं गङ्गास्नानफलं लभेत् । पितृणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम् ।

वैतृकी जन्मभूमिश्चेत् फलं तदुत्तिगुणं लभेत् । वैतृकीभूमितुल्या च दानभूमिः सत्तर्पणं

धामुदेष उद्यान ।

भोगास्ते घनं किंवा निष्कः केन धार्यते ।

वैतृकी तीर्थंतुल्या सा कि तीर्थं द्वारकापरम् ॥ ५८ ॥

सर्वतीर्थपराध्रेष्टा द्वारका यदुपुष्यदा । यस्याः प्रवेशमात्रेण नराणां जन्मखण्डनम् ॥

दानञ्च द्वारकायाञ्च धाञ्च देवपूजनम् । चतुर्गुणञ्च तीर्थानां गङ्गादीनाञ्च भूमिप ॥ ६० ॥

गच्छ प्रह्लादिभिः सार्द्धं मुनिभिर्यादवीः सह । राजेन्द्रमयनं तत्र गृह्याणां सादरं पुनः ॥

करोति शश्वन्त्यकारं महेन्द्रस्यामरावतीम् ।

निवस त्वं सुधमायां माहेन्द्रे च क्षणे नृप ॥ ६२ ॥

जम्बूद्वीपस्थिता भूया राजेन्द्रमण्डलेश्वराः । करं दास्यन्ति तुभ्यञ्च महेन्द्राय सुरा यथा

भूयाञ्जितः कुबेरश्च धनेन धनसम्पदा । तेजसा भास्करश्चापि महेन्द्रः सम्पदा तथा ॥

देवाजिता रणेनैव पुण्येन मुनयो जिताः । तपस्विनश्च तपसा व्रतितश्च व्रतेन च ॥

उग्रसेनसमो राजा न भूतो न भविष्यति ।

सभायां यस्य भगवान् बलदेवो महाबलः ॥ ६६ ॥

विश्वञ्च यस्य शिरसां सहस्राणां नरेश्वर । एकस्मिन्शिरसिन्यस्तं शूर्पे च सर्वपोषथा

न हानन्तसमोदेयो बलेन बलवत्तरः । यदुगुणांनाञ्चनास्त्यन्तस्तेनानन्तं जगुर्बुधाः ॥

घसयोऽष्टौ महाभागा रुद्राश्च शङ्करं विना । बलिनोद्वादशादित्यामहेन्द्रश्च सुरैःसमः

नृपेश्वरम् । कृष्णस्य घनं श्रुत्वा प्रसन्नवदनो नृपः ॥ ७० ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः ] \* द्वारकायामुग्रसेनाभिपेकवर्णनम् \*

प्रयथो यादवैःसार्द्धं महेन्द्रभवनात् परम् ।

स्वालयं द्वारकामध्ये ज्वलन्तं मणितेजसा ॥ ७१ ॥

सहस्रैर्द्वारपालैश्च शूलिभिर्दण्डहस्तकैः । नियुक्तै रक्षितं द्वारं ददर्श मानवेश्वरः ॥

अभ्यन्तरे च शिविरं द्वारेभ्यः पद्भ्य एव च ।

मन्दिराणाञ्च शतकै रत्नानां परिभूषणम् ॥ ७३ ॥

कोटिं मत्तगजेन्द्राणां ददर्श गजमन्दिरे ।

चतुर्युगं गजौघञ्च गजानां पद्गुणं तथा ॥ ७४ ॥

महावलांश्च तुणान् सूर्याश्वञ्च हसन्ति च । गजेन्द्रौघञ्च सर्वेषां वाहनानामपीश्वरम् ।

हस्त्यैरावतं शश्वन्महेन्द्रस्य च नारद । अत्युच्चैरश्वैःश्रवसां ददर्श कोटिमीप्सितम् ।

खराणां दशकोटिञ्च पादात् पद्गुणं तथा । निर्माणं रत्नसाराणां रथानां पञ्चलक्षकम् ।

पञ्चलक्षं सारथीनां तत्राश्वं पद्गुणं तथा । अश्ववाटं तत्समञ्च सुधर्माञ्च सतामपि ॥

ददर्शाभ्यन्तरे रम्ये देवाश्च मुनिसंयुताम् । षड्विंशद्वांशुकै रम्यैर्भूषितां रत्नकम्पलैः ॥ ७६ ॥

रत्नसिंहासने रम्यैर्भूषितां रत्नपिङ्गलैः । अमूल्यरत्ननिर्माणधीधीनां तेजसोज्ज्वलाम् ॥

वेष्टिताञ्च महाभीतैः किङ्करैः शतकोटिभिः ।

प्रधिवेश सभां रम्यां श्रुत्वा शङ्कध्वनिं शुभाम् ॥ ८१ ॥

वाद्यञ्च दुन्दुभीनाञ्च मुनीनां वेदमन्त्रकम् ।

द्रष्टा नृपं समुत्तस्थो वेगेन सबलो हरिः ॥ ८२ ॥

इत्या महेश्वरश्चैव शेषश्च देवपुङ्गवाः । समुत्तस्थः सुराः सर्वे मुनयश्च महाप्रताः ॥

जिन्द्राश्चापि सिद्धेन्द्रा वसुदेवपुरोगमाः । रत्नसिंहासने रम्ये चोग्रसेनो महाबलः ॥

सुधास महेन्द्रस्य मुनीनामाश्रया हरेः । देवानाञ्च गुरुणाञ्च गर्गस्यापि तथैव च ॥

सर्वाथोदकेनैव पूर्णकुम्भेन नारद । चकार वेदमन्त्रैश्च नृपस्याप्यभिपेचनम् ॥ ८६ ॥

सौ परत्रयुगं दत्तं षड्विंशद्दं मनोहरम् । वरुणेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने ॥ ८७ ॥

स्यञ्च पारिजातानां चन्दनं रत्नभूषणम् । रत्नच्छत्रं ददौ तस्मै बलदेवो महाबलः ॥

रा कमण्डलुञ्चैव शूलञ्चापि महेश्वरः । पार्यती रत्नमाल्यञ्च हास्य मालती सत

अन्ये देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः ।

कौतुकञ्च ददौ तस्मै क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥ ६० ॥

घसुदेवो ददौ तस्मै शुभद्रं श्वेतचामरम् । पचनेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने ॥ ६१ ॥

नन्दो ददौ च सुरभिं कामधेनुञ्च पूजिताम् ।

यशोदा देषकी तस्मै रत्नश्रेष्ठं ददौ मुदा ॥ ६२ ॥

सप्तभिः किङ्करैश्चापि संवीतः श्वेतचामरैः । दधार छत्रमकूरो भक्त्या चैवाङ्गया हरैः

रत्नसिंहासने रम्ये ददर्श रत्नदर्पणम् । अतीवपुण्यावाप्यञ्च हरिणा च पुरस्कृतः

चक्रुःस्तुतिञ्च भट्टाश्च भिक्षुका ब्राह्मणास्तथा ।

इदुः शुभाशिषं तस्मै देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा रत्नकोटिञ्च भक्तिः ।

भट्टेभ्यो रत्नशतकं भिक्षुकेभ्यस्तथैव च ॥ ६६ ॥

अभिषिच्य नृपेन्द्रञ्च देवाश्च मुनिपुङ्गवान् ।

सम्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भट्टा भिक्षुं द्विजं गुम् ॥ ६७ ॥

स्वालयञ्च ययुः सर्वे यादवाश्च मुदान्विताः । ये ये हरैः पार्षदाश्च ते सर्वे स्वालयं ययुः

प्रभाते चाययुः सर्वे सुधर्माञ्च सभां हरैः । नमस्कृत्य महेन्द्रञ्च चोपुः सर्वे च संसर्जि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

द्वारकाप्रवेश उग्रसेनाभिषेके चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्युद्धाहप्रस्तावार्णनम् ।

ध्रीनारायण उवाच ।

अथ घेर्दभराजेन्द्रो महाकल्पराजसः । विदम्भेदो पुण्यात्मा सत्यशीलश्च भीष्मकः ॥ १ ॥



राजा नारायणाराध दत्ता च सर्वसम्पदाम् । धर्मिष्ठश्च गरीयांश्च परिष्ठश्चापि पूजितः ॥

तस्य कन्या महालक्ष्मी रुक्मिणी योपितां वरा ।

अतीवसुन्दरी रम्या रमा रामासुपूजिता ॥ ३ ॥

नवयौवनसम्पन्ना रत्नाभरणभूयिता । तप्तकाञ्चनवर्णाभा तेजसोऽञ्जलिता सती ॥४॥

शुद्धसत्वस्वरूपा सा सत्यशीला पतिव्रता ।

शान्ता दान्ता नितान्ता चाप्यनन्तगुणशालिनी ॥ ५ ॥

इन्द्राणी वरुणाणी च चन्द्रनारी च रोहिणी ।

कुबेरपत्नी सूर्येखी स्वाहा शान्ता कलावती ॥ ६ ॥

अन्यासु रमणीयासु श्रेष्ठा च सुमनोहरा ।

रुक्मिण्या भीष्मकन्यायाः कलां नार्हन्ति योऽशीम् ॥ ७ ॥

तां दृष्ट्वा राजराजेन्द्रो बालक्रीडावतां पराम् ।

बालां सुशोभां कुर्वन्ती यथाश्रेषु विधीः कलाम् ॥ ८ ॥

शरत्पूर्णेन्दुशोभाकरां शरत्कमललोचनाम् ।

विद्याहयोग्यां युवतीं लज्जानघ्राननां शुभाम् ॥ ९ ॥

सहसा चिन्तितो धर्मो धर्मशीलश्च सुव्रतः ।

सुतां पप्रच्छ पुत्रांश्च ब्राह्मणांश्च पुरोहितान् ॥ १० ॥

भीष्मक उवाच ।

कं वृणोमि सुतार्थञ्च वराहं प्रवरं वरम् । मुनिपुत्रं देवपुत्रं राजेन्द्रसुतमीप्सितम् ॥११॥

विद्याहयोग्या कन्या मे वर्द्धमाना मनोहरा । शीघ्रं पश्य वरं योग्यं नवयौवनसंस्थितम्

धर्मशीलं सत्यसन्धं नारायणपरायणम् । वेदवेदाङ्गविज्ञञ्च पण्डितं सुन्दरं शुभम् ॥

शान्तं दान्तं क्षमाशीलं गुणितं विरज्जीवितम् ।

महाकुलप्रसूतञ्च सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥

करोपि राजपुत्रञ्चेद्रणशास्त्रविशारदम् । महारथं प्रतापार्हं रणमूर्तिं च सुस्थिरम् ॥

करोपि देवपुत्रञ्चेद्देवं गुणयुतं तथा । करोपि मुनिपुत्रञ्चेत्सुर्वेदविशारदम् ॥ १६ ॥

सुधावर्कं विभाज्यं सिद्धाम्नेषु नित्रान्तकम् । नृपेन्द्रवचनं धृत्वा तमुवाच मुनेः सुतः  
 गौतमस्य शतानन्दो वैद्येराङ्गनामाः । भातः प्रयक्ता विद्वच्च धर्मो कुन्तुरोद्विक्तः  
 पृथिव्यां सर्वतरुवर्गो निष्जातः सर्वकर्मसु ॥ १८ ॥

शतानन्द उवाच ।

राजेन्द्र त्वञ्च धर्मज्ञो धर्मशास्त्रविशारद । पूर्वाभयानञ्च येदोक्तं कथयामि त्रिदशानु  
 भुषो भागवतरणे स्वयं नारायणो भुवि । पसुदेवसुतः धीमान् परिपूर्णतमः प्रभुः ।  
 विधातुश्च विधाता स प्रह्लोशदोऽयमिन्दः । इत्योतिःस्वस्वः परवो भक्तानुग्रहविग्रहः ।  
 परमात्मा च सर्वेषां प्राणिनां प्रहृतेः पटः । निर्दितश्च निर्दिहश्च साक्षी च सर्वकर्मणाम् ।  
 राजेन्द्र तस्मै कन्याञ्च परिपूर्णतमाय च । द्रव्या याम्यसि गोलोकं पितृभिः शतकैः सह  
 लम साहस्यमुक्तिञ्च कन्यां द्रव्या परत्र च । इदं सर्वं पूज्यश्च भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥

सर्वस्वं दक्षिणां द्रव्या महालक्ष्मीञ्च रुक्मिणीम् ।

समर्पणं कुरु विभो कुरुष्व जन्मखण्डनम् ॥ २५ ॥

विधात्रा लिखितो राजन् सम्बन्धः सर्वसम्मतः ।

द्वारकानगरे कृष्णं शीघ्रं प्रस्थापय द्विजम् ॥ २६ ॥

कृत्वा शुभक्षणं तूर्णं सर्वेषामपि सम्मतम् । आनीय परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।  
 ध्यानानुरोधहेतुञ्च नित्यदेहमनुत्तमम् । दृष्टिमात्रात् कुरु नृपं स्वजन्मकर्मखण्डनम् ॥

यं न जानन्ति चत्वारो वेदाः सन्तश्च देवताः ।

सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥ २६ ॥

ध्यायन्ते ध्यानपूताश्च योगिनो न विदन्ति थम् ।

सरस्वती जडोभूता वेदाः शास्त्राणि यानि च ॥ ३० ॥

सहस्रवक्त्रः शेषश्च पञ्चवक्त्रः सदाशिवः । चतुर्मुखो जगद्धाता कुमारः कार्तिकस्तथा  
 ऋषयो मुनयश्चैव भक्ताः परमवैष्णवाः । अक्षमास्तवने यस्य ध्यानासाध्यश्च योगिनाम्

यालकोऽहं महाराज तद्गुणं कथयामि किम् ।

शतानन्दवचः धृत्वा प्रफुल्लवदनो नपः ॥ ३३ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ] \* रुक्मिणीविवाहप्रश्ने भीष्मकं प्रतिस्वमेवक्तिः \* १०८५

आलिङ्गनं ददौ तस्मै समुत्थाय जवेन च । नानारत्नं सुवर्णाञ्च वस्त्रञ्च रत्नभूषणम्  
ददौ तस्मै प्रदानञ्च प्रसादसुमुखो नृपः । गजेन्द्रं तुरगं श्रेष्ठं रथञ्च मणिनिर्मितम् ॥  
एतसिद्धासनं रम्यं धनञ्च विपुलं तथा । भूमिञ्च सर्वसस्याद्यो शश्वद्वृष्टिकरीशुभाम  
अकृष्टसाध्यां पूज्याञ्च प्रामं सर्वप्रशंसितम् ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रुक्मिणश्चुकोप नृपनन्दनः । कम्पितो धर्मयुक्तश्च रकास्यो रकलोचनः ॥  
एवाच पितरं चिरं सभायामस्थिरस्तदा । उत्थाय तिष्ठन् पुरतः सर्वपाञ्च सभासदाम्  
रुक्मिण्यवाच ।

शृणु राजेन्द्र घनं हितं तर्ह्यं प्रशंसितम् ।

त्यज घावयं भिक्षुकाणां लोभिनां कोपितामहो ॥ ४० ॥

सकालाञ्च वेश्यानां भट्टानामर्धनामपि । फापस्थानाञ्च भिक्षुणामसत्त्वं घनं सदा  
घटकानां नाटकानां खीलुब्धानाञ्च कामिनाम् ।

दरिद्राणाञ्च मूर्खाणां स्तुतिपूर्वं वचः सदा ॥ ४२ ॥

इत्य कालयवनं राजेन्द्रं पुरतो मिया । उपायेन महाबाहो लब्धं कृष्णेन तद्धनम् ॥

रकायां धनी कृष्णो यवनस्य धनेन च । जरासन्धभयेनैव समुद्राम्यन्तरे शूरी ॥४४

।सन्धशतञ्चैव क्षणेनैव च लीलया । क्षमोऽहं हन्तुमैकांको रामध्यान्यस्य का कथा

सस्रक्ष शिष्योऽहं रणशास्त्रविशारदः । भूयं भीष्मक तेनैव पिदयं संहर्तुमीश्वरः

जमः पशुरामश्च शिशुपालश्च मत्समः । सखा च बलवान् शूरः स्वर्गं जेतुं स च क्षमः

न्द्रं सगणं जेतुमहमीशः क्षणेन च । जित्वा युद्धे जरासन्धं दुर्बलं योगिनं नृप ॥

बहद्धारयुतः कृष्णो धीरं स्वं मन्यते विधा ।

यथापास्यति मद्रामं विषाहं कर्तुमीप्सितम् ॥ ४६ ॥

भूयं प्रस्थापयिष्यामि क्षणेन यममग्निदरम् । महो नन्दस्य वैश्वस्य तस्मै गौरक्षकाय च

साक्षाद्भाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्टभोजिने ।

करोषि कन्यां स्वीकारं देवयोग्याञ्च रुक्मिणीम् ॥ ५१ ॥

शत्रुमिच्छसि घावयेन भिक्षुकस्य द्विनस्य च । राजेन्द्रयुद्धिर्हानोऽतिपचनाद्भटस्यैव

मा राजपुत्रो मा शूरो मा कुलीनश्च मा शुक्तिः ।

मा दाता मा धनाढ्यश्च मा योग्यो मा जितेन्द्रियः ॥ ५३ ॥

कन्यां देहि सुपुत्राय शिशुपालाय भूमिप । वलेन स्त्रतुष्टाय राजेन्द्रतनयाय च ॥ ५४ ॥

निमन्त्रणं कुरु नृप नानादेशभवान् नृपान् । बान्धवांश्च मुनीन्द्रांश्चपत्रद्वारा त्वरान्वित

बङ्गं कलिङ्गं मगधं सौराष्ट्रं चल्कलं घरम् । राटं घरेन्द्रं षड्भञ्जं गुर्जराटिञ्च पेठम्

महाराष्ट्रं विराटञ्च मुद्गलञ्च मुरङ्गकम् । भद्रकं गह्वकं खवं दुर्गं प्रस्थापय द्विजम्

घृतकुल्यासहस्रञ्च मधुकुल्यासहस्रकम् । दधिकुल्यासहस्रञ्च दुग्धकुल्यासहस्रकम्

तैलकुल्यापञ्चशतं गुडकुल्याद्विलक्षकम् । शर्कराणां राशिशतं मिष्टानानां चतुर्गुणम्

यवगोधूमचूर्णानां विष्टराशिशतं शतम् । पृथुकानां राशिलक्षमसानाञ्च चतुर्गुणम् ॥ ६१ ॥

गवां लक्षं छेदनञ्च हरिणानां द्विलक्षकम् । चतुर्लक्षं शशानाञ्च कूर्मानाञ्च तथा कुर

दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम् । पर्वणि प्रामदेव्यै च वलिं देहि च भक्ति

पतेपां पद्ममांसञ्च भोजनार्थञ्च फारय । परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुरु भूमिप ॥

अथ धृत्वा च तद्वापयं राजेन्द्रः सपुरोहितः । चकारामन्त्रणं पूर्णं निर्जने मन्त्रिणा सह

द्विजं प्रस्थापयामास द्वारकां योग्यमीदृशतम् ।

कृत्वा च शुभलग्नाञ्च सर्वेषामभिवाञ्छितम् ॥ ६५ ॥

राजा सम्भृतसम्मारी यभूय सःपरं मुदा । निमन्त्रणञ्च सर्वत्र चकार च सुताड्या ॥

विप्रः सुधर्मां मंत्राप्य नृपेदेवैश्च चेष्टिताम् । प्रदक्षी पत्रिकां भद्रामुपसेनाय भूभृते ॥

प्रफुल्लयदन्तो राजा धृत्वा पत्रं सुमङ्गलम् । सुपर्णानां सहस्रञ्च प्राह्मणेभ्यो दक्षी मुदा ॥

दुन्दुभि पादयामास द्वारकायाञ्च सर्वतः ।

देवान् मुनीन् नृपाद्वैव डातिवर्गांश्च बान्धवान् ॥ ६६ ॥

भद्रांश्चभिभुकांस्त्यैव भोजयामास सादरम् । धीठण्णस्य सुपर्शो न कारयामास भूयति

अर्तावरम्यमतुलं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । वात्राञ्च कारयामास जगतोः परपरं परम् ॥ ७१ ॥

वेदमन्त्रेषु रम्येषु माहेन्द्रे सुमनोहरैः । भारी प्रजा रघुस्थश्च सावित्र्या सहितो ययी

रघुस्थश्च म्हादृष्टो भवान्या च मधःस्वयम् । शेषध्यापि दिनेशश्च गणेशश्चापिर्कीर्तितः

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ] \* रैवतीचलयोर्विवाहवर्णनम् \*

१०८७

महेन्द्रश्च तथा चन्द्रो घृणः पवनस्तथा । कुचेरश्च यमो घट्टिरीशानोऽपि ययौमुदा ॥  
देवानाञ्च त्रिकोट्यश्च मुनीनां पष्टिकोटयः । गजेन्द्राणां त्रिलक्षञ्च श्वेतक्षत्रं त्रिलक्षकम्  
उग्रसेनो बभौ राजा नक्षत्रेषु यथा शशी । ययौ प्रसन्नवदनः कुण्डिनाभिमुखो बली ॥  
रत्ननिर्माणयानेन बलदेवो महाबलः । वसुदेवश्चोद्भयश्च नन्दोऽक्रूरश्च सात्यकिः ॥

गोपाला यादवेन्द्राश्च चन्द्रवंश्याश्च ते ययुः ।

धृतराष्ट्रसुताः सर्वे दुष्येधनपुरोगमाः ॥ ७८ ॥

युधिष्ठिरस्तथा भीमः फाल्गुनो नकुलस्तथा । सहदेवश्च यानैश्च प्रययुः पञ्च पाण्डवाः

भोष्मो द्रोणश्च कर्णश्चाप्यश्वत्थामा महाबलः ।

रुपाचार्यश्च शकुनिः शल्यश्च प्रययौ मुदा ॥ ८० ॥

भटानाञ्च त्रिकोट्यश्च विप्राणां शतकोटयः ।

सन्यासिनां सहस्रञ्च यतीनां प्रह्वारिणाम् ॥ ८१ ॥

द्विसहस्रं जितक्रोधाश्चावधूतास्तथैव च । उत्पलानां सहस्रञ्च सहस्रं पुष्पकारिणाम् ॥

नानाशिल्पकराश्चैव विचित्रं विभ्रमेव च । लक्षञ्च पायभाण्डानां नर्तकानाञ्च लक्षकम्  
गन्धर्वाणां गायकानां लक्षमेव तु नारद । तत्र कल्पे भयत्येव गन्धर्वश्चोपवर्हणः ॥

पञ्चाशत्कामिनीभिश्च त्यमेव तेषु मध्यगः । विद्याधरीणां लक्षञ्च लक्षमप्सरसां तथा

किन्नराणां त्रिलक्षञ्च गन्धर्वाणां त्रिलक्षकम् ॥ ८६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे

रुक्मिण्युद्वाहे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

रैवतीचलयोर्विवाहवर्णनम् ।

ध्यानारायण उपाच ।

तस्मिन्पन्तरे राजा फकुदी च महाबलः । परार्थं कल्पकायाश्च प्रह्वलोकात्समागतः

प्रद्वी रैषतीकन्या शक्रसुस्थिरयोपनाम् । अमृत्यग्नाभूगन्यां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम्  
 यलाय यलदेवाय सम्प्रदानेन कौतुकात् । ययो यस्यागतं सत्यं युगानां सतविशतिः ।  
 द्रवा कन्या विधानेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि । गजेन्द्राणां त्रिलक्षञ्च जामात्रे यानुकं ददा  
 दशलक्षं तुन्द्राणां रथानां लक्षमेव च । रत्नालङ्कारयुक्तानां दासीनाञ्चापि लक्षम् ।  
 मणिलक्षं रत्नलक्षं स्वर्णकोटिञ्च सादरम् ।

पद्मिशुभांशुकं रम्यं मुक्तामार्जास्वहारकम् ॥ ६ ॥

द्रवा कन्याञ्च राजेन्द्रो यलाय यलशालिने । रजेन्द्रसारयानेन तैः साद्रे कुण्डिनं यथा  
 अधान्तरे च निर्धन्वे साद्रे मङ्गलकर्मणि । देवतीं घशयामास योषितां कमलाकलाम् ।  
 देवकीं रोहिणीञ्चैव यशोदा नन्दगेहिना ।

अदितिश्च दितिः शान्तिर्जयं कृत्वा च मन्दिरम् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणान् भोजयामास ददौ तैभ्यो धनं मुदा । मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य बहूनां  
 अध देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः कटकैः सह । सम्प्रापुर्लोकामात्रेण कुण्डिनं नगरं मुदा ।  
 ददृशुर्नगरं सर्वे ह्यतीवसुमनोहरम् । सप्तभिः परिखाभिश्च गभोराभिश्च वैष्टिम् ।  
 प्राकारैः सप्तभिर्युक्तं द्वाराणां शतकैस्तथा ।

नानारत्नैश्च मणिभिर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ १३ ॥

नगरस्य बहिर्द्वारं ददृशुर्वरयात्रिणः । रक्षितं रक्षकैः साद्रे चतुर्भिश्च महारथैः ॥ १४ ॥  
 रुक्मिणश्च शिशुपालश्च दन्तवक्रो महाबलो । शाल्वोमायाचिनां श्रेष्ठो युद्धशास्त्रविशारदः  
 नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्च रथस्थश्चरणोन्मुखः । विलोक्य कृष्णसैन्यञ्च चुकोपनृपनन्दक

उवाच निष्ठुरं वाक्यं श्रुतितीक्ष्णं सुदुष्करम् ।

उपहास्यं मुनीन्द्रांश्च देवांश्च मुनिपुङ्गवान् ॥ १७ ॥

रुक्मिणस्त्वाच ।

अहो कालकृतं कर्म देवञ्च केन वार्यते । किंवाहं कथयिष्यामि देवेन्द्राणाञ्च संसदि ।  
 गृहीतुं रुक्मिणीं कन्यां देवयोग्यां मनोहराम् । आयाति देवैर्मुनिभिर्नन्दस्य पशुरक्षक  
 साक्षाद्भार्यश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टाभोजकः ।

जातेश्च निर्णयो नास्ति मध्यमैधुतयोस्तथा ॥ २० ॥

हन्तु राजेन्द्रपुत्रस्य किन्तु वा मुनिपुत्रकः । वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षणं पेश्यमन्दिरे  
 तशुकाले च स्त्रीहत्यादृष्टानेनदुरात्मना । कुब्जा मृता च सम्भोगात्चासत्साराजकोमृतः  
 राजेन्द्रस्य वधाद्दुष्टो ब्रह्महत्यां लभेद्दु ध्रुवम् ।

मथुरायाञ्च धर्मिष्ठः सद्यः कंसो निपातितः ॥ २१ ॥

शाल्व उवाच ।

गृहं रुक्मिणा देव किमसत्यञ्च तत्र वै । को वायं रुक्मिणीभर्ता नन्दस्य पशुपालकः  
 शिशुपाल उवाच ।

बहो भुवि विमार्शवर्ष्यं देवा ब्रह्मादयस्तथा । मुनीन्द्रा ब्रह्मणः पुत्राञ्चापयुर्मानवाञ्चपा  
 दन्तवक्र उवाच ।

सन्तं ब्राह्मणा लुब्धा देवाश्च भक्तवत्सलाः । आययुर्ब्रह्मपुत्राश्च नन्दपुत्राश्चया कथम्  
 नेराञ्च एवमं ध्रुत्वा चुकीप देवसङ्घकः । मुनिराजेन्द्रसद्गुण्यलाङ्गुलीत्यादिकं तथा ॥

इति धीब्रह्मवैपते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

रुक्मिण्युद्धाहे षष्ठाधिकशततमोऽध्यायः ।

## सत्साधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणीविवाहे युद्धम् ।

धोनारायण उवाच ।

अथ कोपपठेत्स्व बलदेवो महाबलः । हलेन रुक्मिणानञ्च वभञ्च मुनिपुङ्गव ॥ १ ॥  
 तद्वत्स्य सारपिञ्जैर्ष निहत्य जगतीपतिः । भूमिष्ठश्चापि पापिष्ठं रुक्मि हन्तुं जगाम सः  
 र्मो च सारजालेन वारयामास लीलाया । नागास्त्रं योजयामास यजुं हलिनमीभ्यश्च  
 नारद साधुदेव संब्रह्मर हली स्वयम् । गृहाण कोपाद्रुचमी च परं पागुपतं मुने ॥

पथे पीरमर्दस्य शतगुर्यसमप्रभम् । भमितो हलिना स्वप्नो जृम्भवास्त्रेण जृम्भि  
 वेष्टः स्याणुपद्रुनमीनिशास्त्रेणैव निद्रितः । शाल्यस्तं निद्रितं दृष्ट्वा शतवार्णमुमोच त  
 वृष्टिं शिलावृष्टिं जलवृष्टिं चकार सः । ज्वलन्द्वाणवृष्टिञ्च शरवृष्टिं चकार ह ॥  
 आशास्त्रेण सर्वाणि पारयामास लाङ्गली । हलेन तद्रथं चूर्णं चकार रयामध्यतः

घोटकान् सारधिञ्चैव जघान चैव लीलया ।

फोपाद्दृष्टेन तं हन्तुं पाप् यभूवाशरीरिणी ॥ १६ ॥

त्यज शाल्यं कृष्णवध्यं तद्य किं पौरुषं रणे ।

यस्य मूर्ध्नि च प्रह्लापडं शूर्पं च सर्पदं यथा ॥ १० ॥

हृत्वा बलदेवञ्च हलेन तस्य मस्तकम् । चकार चूर्णं व्यधितः पपात रणमूर्धनि ।  
 यस्य पतनं दृष्ट्वा शिशुबालो महाबली । चकार शरवृष्टिञ्च जलवृष्टिं तथा भुवि ।  
 तस्य रथं चूर्णं चकार लाङ्गलेन च । अर्द्धचन्द्रेण तदुवापान् पारयामास लीलया  
 तं हन्तुं शङ्करः साक्षात् निषेधञ्च चकार तम् ।

कृष्णवध्यं त्यज बल पारुदप्रवरं हरेः ॥ १४ ॥

अक्रस्य दन्तञ्च यमञ्च स हलेन च । सुप्रवृत्तस्य युद्धेन ते सर्वे जहसुश्च तम् ॥ १५ ॥  
 बलस्य विक्रमं दृष्ट्वा सर्वे वीराः पलायिताः ।

चक्रुः प्रवेशनं सर्वे कुण्डिनं घरयात्रिकाः ॥ १६ ॥

अग्रन्तरे तत्र शतानन्दो महामुनिः । कोटिभिर्मुनिभिः सार्द्धमाजगाम हरेः पुनः ॥  
 विशयामास शतद्वारञ्च दुर्गमम् । अगम्यञ्चापि शत्रूणां मित्राणाञ्च सुखप्रदम् ॥  
 न्या नामकन्या राजकन्यास्तथैव च । मुनिकन्या घरं द्रष्टुं सस्मिताश्च समाययुः  
 शेषितः सर्वा निमेषरहितेन च । प्रसन्नं कारयामास सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥ २० ॥  
 प्रसारनिर्माणरथस्थं परमेश्वरम् । सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविप्रदम् ॥ २१ ॥  
 जलदश्यामं शोभितं पीतवाससा । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं धनमालाचिभूषितम् ॥ २२ ॥  
 त्पूरुषलपरत्नमालाकुलोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलधिराजितम् ॥ २३ ॥  
 सस्मितं मुरलीहस्तं पश्यन्तं रत्नदर्पणम् ॥



सप्तभिः पार्यदैर्गांपैः सेधितं श्वेतचामटः । नवयौवनसम्पन्नं शरत्कमललोचनम् ॥२५॥

शरत्पूर्वनिदुनिन्दास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।

कोटिकन्दर्पसौन्दर्यं सत्यं नित्यं सनातनम् ॥ २६ ॥

वीर्यपूर्तं कीर्तिपूर्तं ब्रह्मेशोपवन्दितम् । परमाह्लादकं रूपं कोटिचन्द्रसमप्रभम् ॥ २७ ॥

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं परमं प्रकृतैः परम् । दूर्वया पट्टसूत्रञ्च रत्नेन्द्रसारदर्पणम् ॥२८॥

दधानं कर्तृकासाध्यं कदल्याः स्फुटमञ्जरीम् ।

चूडां त्रिविक्रमाकारां मालतोमाल्यभूषिताम् ॥ २९ ॥

पुष्पं तारीप्रदत्तञ्च मुकुटं मस्तकोज्ज्वलम् । दृष्ट्वा परं युपत्यञ्च मूर्च्छां संप्रापुरीश्वरम्

रुक्मिणीजीवनं धन्यं श्लाघ्यमित्यूचुरीप्सितम् ।

जामातरं सा ददर्श राज्ञी भीष्मककामिनी ॥ ३१ ॥

निमेषरहिता तृष्णा प्रसन्नवदनक्षणा । राजा प्रसन्नवदनः सामात्यः सपुरोहितः ॥३२॥

समागत्य सुरान् विप्रान् भूतांश्च प्रणनाम सः । दक्षीयोग्याश्रमं तेभ्यो भक्ष्यपूर्णस्तुधोपमम्

दिवानिशञ्चाप्युवाच दीपतां दीयतामिति । सुखं निनाय रजनीं देवैश्च बान्धवैः सह ॥

पसुदेव. प्रभाते च प्रातःकृत्यं चकार सः ।

ज्वात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा धृत्वा धीते च पाससी ॥ ३५ ॥

चकार वेदमन्त्रेण शुभाधिवासनं हरैः । संपूज्य मातृकाः सर्वाः साक्षाच्च सर्वदेवताः ॥

प्रदाय धनुषाराञ्च वृद्धिधादादिकं तथा ।

ब्राह्मणान् भोजयामास देवांश्च बान्धवांस्तथा ॥ ३७ ॥

पायञ्च वाद्ययामास कारयामास मङ्गलम् । सुवेशं कारयामास वरस्याप्रतिमस्य च ॥

सञ्जञ्च कारयामास वरयानं सुरोभनम् । एवं राजा भीष्मकश्च विवाहाहर्हञ्च मङ्गलम् ॥

पुरोहितैर्वेदमन्त्रैः सर्वं कर्म चकार सः ।

मणिरत्नं धनं वापि मुक्तामाणिक्यहोरकम् ॥ ४० ॥

भक्ष्यद्रव्यञ्च पत्रञ्चाप्युपहारमनुत्तमम् ।

भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि मिश्रुकेभ्यो ददौ मुदा ॥ ४१ ॥

राघञ्च पादयामास कारयामास मङ्गलम् । सुघंशो कारयामास गविमण्याश्च मनोहरम् ।  
 त्रीभिर्मुनिपरनीभिर्विधानञ्च यथोचितम् । ततः गुभे क्षणे प्राप्ते माहेन्द्रे परमादये ॥  
 येपाहोयित्कल्पे न तन्नाश्रियतिमंगुलं । सद्गुह्ये क्षणशुद्धे चाप्यसतां दृष्टिर्वर्जिते ॥  
 भूभक्षणे शुभर्षे च विगुह्ये सन्नृतारयोः । येष्वंशोऽदिरहिते शलाकारिचिर्वर्जिते ॥४३॥  
 उपत्योः शर्मयोग्यं च परिणामसुगमम् । एवम्भूते न समये भीष्मकप्राङ्गुणं दृष्टिः ॥४४॥  
 भाजगाम सुरैः सार्द्धं मुनिविप्रपुरोहितैः ।

प्रातिभिर्यन्धवैः सार्द्धं पित्रा माया नृपेस्तथा ॥ ४३ ॥

तोपालकैः पार्वदैश्च पयस्यैश्च मनोहरैः । भट्टैश्च गणकैश्चैव ज्योतिःशास्त्रविशारदैः ॥  
 रथैर्नानापिधैश्चैव नर्त्तकैर्गायनेस्तथा । नानाशिल्पकरैश्चैव मालाकारैस्तथापरेः ॥४४॥  
 विद्याधर्य्यध्याप्सरोभिः किन्नरीभिश्च सत्वरम् ।

स्थलञ्च दक्षशूर्वेषा मुनयश्च नृपेभ्यराः ॥ ५० ॥

र्वै समागता ये च विद्याददर्शनोत्सुकाः । रम्भास्तम्भसहस्रैश्च पट्टसूत्रपरिष्कृतैः ॥५१॥  
 चम्पकानां चन्दनानां रसालानाञ्च पल्लवैः ।

माल्यैर्नानाविधैश्चैव पीतरकसितान्वितैः ॥ ५२ ॥

रितो मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः । कस्तूरीचन्दनाक्तैश्च कुङ्कुमेन विराजितैः ॥ ५३ ॥

र्जैर्लाजैः फलैः पुष्पैर्दूर्वाभिरुपशोभितैः । मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव राजेन्द्रैरपि वेष्टितम् ॥

नेन्द्रसारनिर्माणवेदीयुक्तं मनोहरम् । चर्चितं चन्दनस्निग्धैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः ॥

गन्धिशांतामन्दैश्च पवनेः सुरभीकृतम् । रत्नानाञ्च सहस्रैश्च ज्वलितं ज्वलदीप्तकैः ॥

नानाप्रकारधूपैश्च गन्धद्रव्यैः सुवासितम् ।

चित्रैर्विचित्रैर्विधिभिः शिल्पिनां पुण्यकारिणाम् ॥ ५७ ॥

रितः परितश्चैव शोभनाहैः सुशोभनैः । गन्धर्वाणाञ्च सङ्कीर्तैर्मधुरैर्मधुरीकृतम् ॥५८॥

विद्याधरीणां नृत्यैश्च नर्त्तकीनाञ्च शिल्पिणाम् ।

तत्र निश्चेष्टचित्रैश्च जनराजिचिराजितम् ॥ ५९ ॥

धीक्षितम् । मङ्गलेन घटैर्नैव विदुषा च पुरोधसा ॥ ६० ॥

न भूयेत दानेन दानवन्नुना । दृष्ट्वा च प्राङ्गणे राज्ञो देवा व्यद्राद्यस्तथा ॥ ६१ ॥

स्थानूर्णे तिष्ठन्ति प्राङ्गणे मुशः । राजेन्द्रा दानवेन्द्राश्च मुनयः सतकादयः ॥

धोऽकृष्णश्चापि भगवान् पार्यदप्रवरेः सह ।

तान् दृष्ट्वा सहस्रांस्थाय जवेन भाष्मकस्तथा ॥ ६३ ॥

पवन्द्रे देवांश्च मुनीन्द्रांश्च नृपांस्तथा । रत्नसिंहासने चैव सुरभ्येषु वृषक् पृथक् ।

पद्मतां पासयामास संपूष्य सादरेण च ॥ ६४ ॥

राजा तुष्टाय भवथा च तान् सर्धान् भक्तिपूर्वकम् ।

पसुदेयं पासुदेयं साधुनेत्रः पुटाञ्जलिः ॥ ६५ ॥

भाष्मक उवाच ।

सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् । यभूय जन्मकौटीनां कर्ममूलनिवृत्तनम् ॥

स्वयं विधाता जगतां प्रदाता सर्वसम्पदाम् ।

स्यन्ने यत्पादपद्मञ्च द्रष्टुं नैव क्षमः प्रभो ॥ ६७ ॥

कालदाता च संच्रष्टा प्राङ्गणे मम । स्वात्मात्प्रेषु पूर्णेषु शुभप्रथमभीषितम् ॥

योगीन्द्रैरपि सिदेन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रकैः ।

ध्यानाद्दृष्टश्च यो देवः स शिषः प्राङ्गणे मम ॥ ६९ ॥

कालस्य कालो भगवान् मृत्योर्मुल्युश्च यः प्रभुः ।

मृत्युञ्जयश्च सर्वेशो नराणां दृष्टिगोचरः ॥ ७० ॥

यस्य मूर्ध्नां सहस्रेषु मूर्ध्नि विश्वं सराचरम् ।

नास्त्वन्तः सर्ववेदेषु सोऽयश्च मम प्राङ्गणे ॥ ७१ ॥

तमप्रणयो हि सर्वाग्नि यस्य पूजनम् । ध्रेष्ठो देवगणानाञ्च स गणेशो ममाङ्गणे ॥

वीष्णवानाञ्च प्रवरो ज्ञानिनां गुरुः । सनत्कुमारो भगवान् प्रत्यक्षः प्राङ्गणे मम

आश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चापि धंशजाः । ते सर्वे मदृष्टहेऽयैव ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा

कल्पान्तपर्यन्तं तीर्थोभूतो ममाश्रयः । येषां पादोदकैस्तीर्थं विशुद्धं तद्गृहं मम

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे ।

सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥ ७६ ॥

विप्रपादोदकस्निग्धा यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावन् पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥

विप्रपादोदकं भुजया दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।

स्नातानां सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ७८ ॥

निवृत्तनञ्च विपदां ध्याधिनिसंलकारणम् । सुध्रवं शुभवं सारं विप्रपादोदकं नृणाम् ॥

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देषो माधवात् परः । सनत्कुमाराद्वक्तो न न हि कल्पतरोस्तरुः ॥

न पुष्पं पारिजाताद्य न व्रतं हरियासरात् । पूजनेन हि पूज्यञ्च न पत्रं तुलसीपत्रम् ॥

न देषी प्रकृतेश्चापि नाधारः पयनात् परः ।

न हि स्थूलो महाविष्णोर्न सूक्ष्मं परमाणुतः ॥ ८२ ॥

न ब्राह्मणात् परः पूतो नाश्रमश्च परः प्रभुः । न देषो न परः कोऽपि इत्याह कमलोद्भवः ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रकृतेश्च परः प्रभुः ।

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो योगिनामपि निश्चितम् ॥ ८४ ॥

नेर्गुणश्च निराकारो भक्तानुग्रहविग्रहः । स एव चक्षुषो नृणां साक्षाद् देवश्च मद्गृहे ॥

वैभ्रंक्षेशोपैश्च ध्यातं यत्पदपङ्कजम् । धमेशेन गणेशेन दिनेशेनापि दुर्लभम् ॥ ८६ ॥

इत्युत्तथा भीष्मकः कृष्णं समानीय स्वयं पुरः ।

तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥ ८७ ॥

भीष्मक उवाच ।

वर्णान्तरात्मा सर्वेषां साक्षी निर्लिप्त एव च । कर्मिणां कर्मणामेव कारणानाञ्चकारणम् ॥

केचिद्ब्रूवन्ति त्यामेकं ज्योतीरूपं सनातनम् ।

केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिविम्बकः ॥ ८९ ॥

चित् प्राकृतिकं जीवं सगुणं भ्रान्तबुद्ध्यः । केचिन्नित्यशरीरञ्च बुद्धाश्च सूक्ष्मबुद्ध्यः ॥

देहरूपं सनातनम् । कस्मात्तेजः प्रभवति साकारमोर्ध्वरं विना ॥

स पाचान्तः स्मरन् विष्णुञ्च नारद ! ।

पद्माचिते पादपत्रे चायं ददौ मुदा ॥ ९२ ॥

भर्ष्यञ्च मदर्शो तत्र दूर्वापुष्पजलान्वितम् । मधुपर्कञ्च सुरभिं सर्षाङ्गे गन्धचन्दनम् ॥  
 यत् मदर्शं महोद्रेण शुभकर्मणि यौतुकम् । पारिजातस्य माल्यञ्च जामातुश्च गले दर्शो  
 कुशेरेण च यद्दत्तममूल्यरत्नभूषणम् । चकार परणो तस्य स राजा भक्तिपूर्वकम् ॥ ६५ ॥  
 पङ्क्तिशुद्धांशुकनुगं यद्दत्तं पङ्क्तिना पुरा । दर्शो तद्रेष कृष्णाय परिपूर्णतमाय च ॥ ६६ ॥  
 ज्वलितं रत्नमुत्कृष्टं यद्दत्तं पितृयकर्मणा । दर्शो तन्मस्तके राजा कृष्णस्य परमात्मनः ॥  
 पूगं रत्नप्रदीपञ्च नैवेद्यं सुमनोहरम् । नातामकापुष्पञ्च रत्नतिहासनं दर्शो ॥ ६८ ॥  
 सप्ततीर्थोदकञ्चैव पुनराचमनोयकम् । ताम्बूलञ्च परं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ६९ ॥

शय्यां रतिकरीं रम्यां पानार्थं वासितं जलम् ।

कृत्वा च परणो राजा पविहारं चकार तम् ॥ १०० ॥

कृताञ्जलिपुटो राजा तस्मै पुष्पाञ्जलिं दर्शो ॥ १०१ ॥

इति धौमद्रव्यवैवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे धौमृष्णजन्मखण्डे

रुक्मिण्युद्धादे सताधिकशततमोऽध्यायः ।

## अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

### कृष्णाय रुक्मिणीसम्प्रदानम् ।

धीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे देधी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी । आजगाम सभामध्ये मुनिदेवादिभिर्युता  
 रत्नसिंहासनस्या च रत्नालङ्कारभूषिता । पङ्क्तिशुद्धांशुकाधाना कवरीभारभूषिता ॥ २ ॥

पश्यन्ती सस्मिता साध्वी ह्यमूल्यरत्नदर्पणम् ।

कस्तूरीचिन्दुभिर्युक्ता स्निग्धचन्दनवर्चिता ॥ ३ ॥

सिन्दूरचिन्दुना शम्भत् भालमध्यस्थलोज्ज्वला । ततकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥  
 चन्दनोक्षितसर्षाङ्गा मालतीमाल्यशोभिता । सप्तभिर्नृपपुत्रैश्च समानीता च बालकैः ॥

देवेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा नृपपुङ्गवाः ।

ददृशु रविमर्षीं देवीं महालक्ष्मीं पतिव्रताम् ॥ ६ ॥

सप्तप्रदक्षिणाः कृत्वा प्रणम्य स्वर्पतिं सती । सिपेच शीततोयेन स्निग्धचन्दनपल्लवैः  
तां सिपेच जगत्कान्तः कान्तां शान्ताञ्च सस्मिताम् ।

ददर्श कान्तः कान्ताञ्च कान्तं कान्ता शुभक्षणे ॥ ८ ॥

अथ देवी पितुः क्रोडे समुयास शुभानना । लज्जया नम्रवदना उचलन्ती च स्वनेत्रसा  
राजा देवेश्वरीं तस्मै परिपूर्णतमाय च । प्रददौ सम्प्रदानेन वेदमन्त्रेण नारद ॥ १० ॥

वसुदेवाग्रया कृष्णः स्वस्त्यायुतया स्थितो मुदा ।

जप्राह देवीं देवश्च भवानीञ्च भवो यथा ॥ ११ ॥

सुवर्णानां पञ्चलक्षं कृष्णाय परमात्मने । दक्षिणां तां ददौ राजा परिपूर्णतमाय च ॥  
शुभकर्मणि निष्पन्ने कृत्वा कन्याञ्च वक्षसि । कुरोद् राजा मोहेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि ॥  
परिहारेण घबसा कृत्वा तस्मै समर्पणम् । सिपेच कन्यां धन्याञ्च नेत्रयुग्मजलेन च ॥

इति धीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

रविमण्युद्वाहे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।

नवाधिकशततमोऽध्यायः

रविमण्युद्वाहवर्णनम् ।

ध्यानारायण उवाच ।

रत्नमिन्नन्तरे रात्री रविमर्षीजननी शुभा । पतिपुत्रयतीभिश्च साध्वीभिः सहिता मु  
रामाख मङ्गलं कृत्वा कत्र निर्मग्ननादिकम् । दम्पती पेशपामास रत्ननिर्माणमन्दि  
नानाविविधचित्राद्यं ह्यङ्गहारेण भूषितम् ।  
मुक्त्यापि क्वयत्तेन सुदीप्तं दर्शनेन च ॥ ३ ॥

।।धिकराततमोऽध्यायः । # कृष्णेन सह पार्वत्यादीनां हास्यालापः # १०

।।शं कृष्णस्तत्रैव दुर्गा दुर्गतिनाशिनीम् । सरस्वतीञ्च सावित्रीं रतिञ्च गेहिणीं सतं  
पत्नीं राजपत्नीं मुनिपत्नीं पतिव्रताम् । रत्नसिंहासनस्थाञ्च रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ।  
तस्थु राराद्गङ्गा च श्रीकृष्णं जगतीपतिम् । रत्नसिंहासने रम्ये वासवामास ता मु  
।।ति चक्रुश्च देवाश्च मुनिपत्नीश्च माधवम् । पुटाञ्जलियुतास्तत्र कमेण च पृथक्पृथ  
।।जयामास राज्ञी च धरेण सह कन्यकाम् । सकपूर्ं सताम्बूलं प्रददौ वासितंजल  
।।र्गां कृष्णाय प्रददौ तत्र मङ्गलपत्रिकाम् । सर्वासामाज्ञया देवी पठेति तमुवाच स  
।।गठ पत्रिकां कृष्णो देवीसंसदि सस्मितः । लक्ष्मीः सरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकासतं  
।।रसी पृथिवी गङ्गाऽरुचती यमुना दितिः । शतरूपा च सीता च देवहूती च मेनक  
।।व्यश्चेताश्च दम्पत्योः कुर्वन्तु मङ्गलं परम् । पपाठ चेति कृष्णश्च शुश्रूवूर्जहसुश्च ताः ॥  
पार्वत्युवाच ।

रुचिमणीं रुचिमणीकान्त त्वां पश्यन्तीञ्च सम्मिताम् ।

पश्य प्रौढां रूपवतीं सुन्दरीं नवयौवनाम् ॥ १३ ॥

सरस्वत्युवाच ।

य योग्या च सुवती रत्नभूषणभूषिता । त्वां प्रार्थयन्ती सुविरमचमन्यान्यमीश्वरम् ॥  
सावित्र्युवाच ।

पा वरस्तथा कन्या विधिना योजिता पुरा । चिदग्धाया विदग्धेन सर्वत्र सङ्गमःशुभः  
रत्युवाच ।

इश्वरेण परीहासं का या कर्तुं क्षमा भुवि ।

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो चावमन्यान्यमीश्वरम् ॥ १६ ॥

मायत्र्युवाच ।

यथा वरस्तथा कन्या चाश्रुयो भैष्मके गृहे ॥ १७ ॥

रोहिण्युवाच ।

सत्यं ब्रूहि जगन्नाथ कामिनीनाञ्च संसदि ।

कीदृशी राधिका रम्या रुचिमणी चापि कीदृशी ॥ १८ ॥

सरस्यरगुगान् ।

राधायां यादृशी प्रीती रुचिमण्या नीव तादृशी । सा सङ्गिनां पूर्णकाले सर्वाकाङ्क्षासुखिनि  
 प्राणाधिष्ठातृदेवी सापञ्चप्राणाधिका सर्ती । रुचिमर्णा कमन्तासाश्चान्सम्भवात्मनिदेवत  
 तयंशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः । बुद्धेरप्याधिदेवी न दुर्गा नारायणी पत्नी ।  
 देवाधिष्ठातृदेवी त्वं साचित्री देवमातृका । विद्याधिदेवता ऽहञ्च ततोऽन्याश्च कलाकलाः  
 न प्राप्नुवि शिष्यं शिष्ये गणेशे न दिनेदपरे । न भक्तं न च पद्मयां न शिवायाञ्च मन्वरी  
 रसावो यादृशास्तस्यामन्येषु च न तादृशः । प्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सुपुण्यं भारतं यत्र  
 तत्र वृन्दापनं धन्यं राधापादास्जनिद्धितम् । सर्वासामपिदेवीनां राधापुण्यवती सर्वो  
 ऽधापादास्जनयरे दशो द्विगन्धमलकफम् । धयमेवमिति धृत्या जहत्तुः सर्वयोपितः ॥  
 यायन्ते दूरतः सर्वा राधापक्षः स्थलस्थिता । तस्माद्वाधां नमस्कृत्य तुलनां मन्यते किल  
 सरस्यतोपवः धृत्या साचित्रीपार्वती सर्ता । धन्याश्चयोपितः सर्वाः साध्वित्पूजुधसंसदि  
 शेषामुद्रानुसूया चाप्यहल्यारुन्धती तथा । सर्वास्ता मुनिपत्न्यश्च रमसं चकुरीश्वर्य  
 त्थदेवांश्च भूपांश्च मुनीन्द्रांश्चापि भीष्मकः । पूजयामास विधिना भोजयामास सादरम्  
 गायतां घ्रायतां लोका दीयतां दीयतामिति । शब्दो बभूव नगरे वाद्यसंगीतमङ्गलैः ॥  
 तथ प्रभाते ब्रह्मेशरीपाद्यास्त्रिदशास्तथा । यानस्यारोहणं भूपाश्चक्रिरे च त्वरान्वितः  
 राजा महोप्रसेनश्च पशुदेवस्त्वरान्वितः ।

कारयामास यात्राञ्च धाकृष्णं रुचिमर्णी सर्तीम् ॥ ३३ ॥

सुभद्रा रुचिमर्णीमाता कन्यां कृत्वा स्वयक्षसि ।

रुदोदोच्चैस्तत्सखीमिर्वान्धवैरित्युघाच सा ॥ ३४ ॥

सुभद्रोवाच ।

क यासि मां पत्नित्यज्य वत्से मातरमीश्वरीम् ।

कथं जीवामि त्वां त्यक्त्वा कथं त्वं घापि जीवसि ॥ ३५ ॥

हालक्ष्मीर्मम गृहात् कन्यारूपा च मायया । पशुदेवालपं यासि पशुदेवप्रिया सर्ता  
 कन्यकां शोकात् सिपेव नेत्रजैर्जलैः । भीष्मकः साधुनेत्रश्च कन्यां कृष्णे समर्पय



अ कृत्वा परीहारं करोदोच्चैरतीव सः । करोद् रुचिमर्णादेयी श्रीकृष्णश्चापि मायया ॥  
यमारोपयामास घसुदेवः सुतं घधूमम् । पतस्मिन्नन्तरे राजा जामात्रे यौतुकं ददौ ॥  
जिन्द्राणां सहस्रञ्च पद्मगुणञ्च तुरङ्गमम् । दासीनाञ्च सहस्रञ्च किकराणां शतं शतम्  
ज्ञानाञ्च सहस्रञ्चैवामूल्यरत्नभूषणम् । स्वर्णानां परिशुद्धानां पञ्चलक्षञ्चसादरम् ॥ ४१  
तोयभोजनयात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा । सौवर्णानि च रम्याणिसुरभीः प्रददौ मुदा  
गन्धपतीधेनूनाञ्च सवत्सानां सहस्रकम् । अमूल्यानि च रम्याणि पद्मिशुद्धानांशुकानि च  
सुदेवश्चोपसेनो देवेश्च मुनिभिः सह । प्रहृष्टचदनः शीघ्रं द्वारकामिमुखं ययौ ॥ ४४  
विश्य स्वपुरीं रम्यां कारयामास मङ्गलम् । घाघञ्च घादयामास सुन्दरं सुमनोहरम् ॥  
विकीं रोहिणीं रम्यां यशोदा नन्दोहिनीं । अदितिश्चदितिश्चैव तथा च घरकामिनीं  
श्रीकृष्णं रुचिमर्णां रम्यां विलोक्य च पुनः पुनः ।

गृहं प्रवेशयामास कारयामास मङ्गलम् ॥ ४३ ॥

स्तुविधिं भोजयित्वा देवांश्च मुनिपुङ्गवान् । नृपांश्च शान्धवांश्चैव परिहारं चकार च  
भट्टैर्म्यो ब्राह्मणैर्म्योऽपि ददौ रत्नादिकं मुदा ।

तांश्चापि भोजयामास परितुष्टांश्च सस्मितान् ॥ ४६ ॥

परं भुक्त्वा धनं कृत्वा ययुः सर्वे गृहमुदा । मङ्गलं कारयामास घसुदेवस्य घहृष्टां ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

रुचिमण्युद्वाहे नवाधिकशततमोऽध्यायः ।

दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

राधायशोदासंवाद्दर्शनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

भागतेषु गतेष्वेवं साङ्गे मङ्गलकर्मणि । नन्दो यशोदया साङ्गे पुत्राभ्यासं समापयौ ॥

यशोदा उवाच ।

ज्ञानञ्चभवता दत्तं पित्रे नन्दाय माधव । माञ्चापि मातरं वत्स कृपां कुरु कृपानिधे ।  
मामुद्धर महाभाग धरोद्धरणकारण । भवाब्धितरणे भामि भीताञ्च पतितामपि ॥ ३ ॥  
मायामयी सा प्रकृतिर्भवाब्धितरणे तरी । त्वमेव कर्णधारश्च भक्तोर्त्तीर्णकृपामय ॥  
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः । उवाच मातरं भक्त्या ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सिद्धियोगात्मकं मातर्प्रानञ्च विषयात्मकम् ।

ज्ञानं भक्त्यात्मकं श्रेष्ठं मदास्यकारणं शुभम् ॥ ६ ॥

ज्ञानंपञ्चविधं प्रोक्तं सर्ववेदेषु सम्मतम् । भक्त्यात्मकं सर्वपरं तेषाञ्च लक्षणं शृणु ॥३॥

ध्रुत्विपासादिकानाञ्च खण्डनं स्वान्तशोधनम् ।

नाडीनां शोधनञ्चैव चक्राणामपि भेदनम् ॥ ८ ॥

शक्तिकुण्डलिनीयुक्तमीश्वरं चिन्तयेत्ततः । इन्द्रियाणाञ्च दमनं लोभादीनाञ्च वर्धनम् ॥

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धञ्च तथाज्ञास्यं चक्रयत्कं प्रकीर्त्तितम्

नारीणामपि दुर्बोधं मूर्खाणाञ्च विशेषतः ।

ज्ञानं योगात्मकं साध्वी सिद्धानां साध्यमीप्सितम् ॥ ११ ॥

जन्तूनामपि सर्वेषां ज्ञानं स्वविषये तथा । सन्तःसर्वे विजानन्ति स्वच्छया च मदीयया

सिद्धयात्मकञ्च सिद्धानां नियुक्तं सर्वकर्मसु ।

चतुस्त्रिंशत्सुसिद्धानां साधनं बोधनं तथा ।

ज्ञानं मोक्षात्मकं सिद्धं परं निर्वाणकारणम् ॥ १३ ॥

निवृत्तिमार्गमारूढं भक्तस्तन्नेप पाण्डुति । भक्तात्मकञ्च यज्ञज्ञानं तुभ्यं राधा प्रदास्यति

तस्याञ्च मानयं भायं त्यक्त्वाज्ञाञ्च करिष्यति ।

नन्दाय दत्तं यज्ञज्ञानं तद्य तुभ्यं प्रदास्यति ॥ १५ ॥

गच्छ नन्द यत्र मातर्नन्देन सह सादरम् ।

इत्युचया विनयं हृत्वा जगामाभ्यन्तरं हरिः ॥ १६ ॥

दया साङ्गं प्रययौ कदलीवनम् । ददर्श राधां तत्रैव निद्रितां त्यक्तभूषणाम् ॥

अस्रञ्च निराहारां कृशोदरीम् । पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते ॥१८॥

शयानां शुष्कितौष्ठोञ्च साश्रुनेत्राञ्च मूर्च्छिताम् ।

ध्यायमानां पद्माम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १९ ॥

याद्वानपरित्यक्तां तन्निविष्टैकमानसाम् ।

पश्यन्तीं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीमुन्मुखाम्बुजम् ॥ २० ॥

दन्तीञ्च स्वप्ने कान्तसमीपतः । सखीभिःपरितः शश्वत् सेवितां श्वेतचामरैः

रक्षिताञ्च गोपीभिः शतकोटिभिः । सावधानपरामिश्च वेत्तहस्तामिरीश्वरीम्

सतद्वारंपु युक्ताभिः परितः प्राङ्गणेषु च ॥ २२ ॥

स्मयं प्राप्य समाध्यायानन्द पव च । ननामपरया भक्तया दण्डघत् प्रणिपत्यच

त्वा च सहसा बुबुधे सेश्वरेच्छया । क्षणेन चेतनां प्राप विषयज्ञानवर्जिता ॥

ती दृष्ट्वा पप्रच्छ सादरं सती । उवाच मधुरञ्चैवं तत्रैव सखिसंसदि ॥ २५ ॥

राधिकोवाच ।

कस्त्वञ्चात्र समायाती ब्रूहि वा किं प्रयोजनम् ।

न च मे विषयज्ञानं न जानामि नरं पशुम् ॥ २६ ॥

किं जलं वा स्थलं किं वा किं वा नक्तं दिनं शृणु ।

स्त्रियं पुमांसं ह्यीयं वा नाहं जानामि भेदकम् ॥ २७ ॥

चनं ध्रुत्वा नन्दञ्च विस्मयं ययौ । भीता यशोदानिकटं गोपीसम्भायिता ययौ

कटे तस्याः समुवाच प्रियं घचः । उवाच तत्र नन्दञ्च गोपीदत्तासनेन च ॥

यशोदोवाच ।

राधे त्वमात्मानं रक्ष यत्नतः । दृश्यसिप्राणनाथञ्च संप्राप्ते मङ्गले दिने ॥३०॥

अयं पवित्रञ्च स्वकुलञ्च सुरेश्वरि । गोप्यञ्च पुण्यवत्यञ्च त्वत्पादाम्बुजसेषया

लोका मास्यन्ति त्वत्कीर्त्तिं तीर्थपूतां सुमङ्गलाम् ।

सन्तो वेदाञ्च चत्वारः पुराणानि पुरातनम् ॥ ३२ ॥

इं यशोदा नन्वोऽयं पुत्रिकये निबोध माम् । वृषभानुसुता त्वञ्च मां निशामय मुनिं  
 रकानगराद्भ्रष्टे श्रीकृष्णसन्निधानतः । तवान्तिकमागताहं प्रेरिता हरिणा सति ॥ ३४ ॥  
 तु मङ्गलवातांश्च मङ्गलञ्च गदाभृतः । आगदु इक्ष्मि कृष्णं न हे देवि चेतनं कुत ।  
 वपारमकं परिग्रामं देहि महाञ्च साम्प्रतम् । स्वद्वन्द्वं गददेशेन त्वत्समीपं समागतौ ।  
 आश्यास्यति हरिस्त्वां मुहूर्तं परानने । भविष्यन्मन्त्रिणेव श्रीदाम्नः शापमोचनम्  
 तीदापचनं भ्रूत्वा वार्तां प्राप्य गदाभृतः । श्रीकृष्णनामस्मरणाद् दूरीभूतमनङ्गलम् ॥  
 संप्राप चेतनं राधा सम्प्राप्य कृष्णमन्तरम् ।

उवाच मधुरं शान्ता लौकिकी भक्तिमुत्तमाम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीप्रह्लादचरितं महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 राधायशोदासंवादे दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

## एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

रामादिशब्दानां न्युत्पत्तिस्तेषाञ्चप्रशंसा ।

राधिकोवाच ।

आत्मकश्च परमो ब्रह्मेशरोपपूजितः । ज्ञानञ्च न ददौ तुभ्यं मन्मूलं प्रेषिता सति ॥  
 तेनैव छद्मना नेतुं भावार्थं बोधयामि किम् ।

वेदाः सन्तश्च भावार्थं नैव जानन्ति तस्य च ॥ २ ॥

जातिरथला मूढा घस्तुतोऽज्ञानतत्परा । ततस्तद्विरहेणैव सन्ततं हतचेतना ॥ ३ ॥  
 आहं कथयिष्यामि ज्ञानं पञ्चविधेषु च । भक्त्यात्मकं सर्वपरं निबोध कथयामि ॥  
 कृष्णस्य चरेणापि त्वं साधो निर्मयोभव । गोलोकेवापि पतनं सम्भवेच्चकुपोषित  
 आत् सर्वं परित्यज्य भजस्व परमेश्वरम् । पुत्रबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मरूपं निशामय ॥  
 यशोदे भवति परित्यज्य च नश्वरम् । गत्वा द्यून्दावनं रम्यं पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम्

इत्वा त्रिकालज्ञानञ्च निर्मले यमुनाजले । इत्वाष्टदलपद्मञ्च स्निग्धेन चन्दनेन च ॥८॥  
 ध्यानेन गर्गाक्षेण शुद्धेन मनसा सति । सम्पूज्य परमात्मन्दं सानन्दं व्रज तत्पदम् ॥९॥  
 इत्वा निवृत्तनं कर्म पितृभिः शतकैः सह । वैष्णवेन सहालपं कुरुष्व सततं सति ॥  
 परं हुतवद्ग्यालां भक्तौ वाञ्छति पञ्चरम् । घरञ्च कण्टके वासं घरञ्च त्रियभक्षणम् ॥  
 हरिमकिचिद्दीनानां न सङ्गं नाशकारणम् । स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च  
 बहुरो भक्तिवृक्षस्य भक्तिसङ्गेन पथंते । परं हरिकपालापवीयूपासेचनेन च ॥ १३ ॥  
 भ्रमकालापदीपाग्निज्वालायाः कलयापि च । भङ्कुरः शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते  
 तस्माद्भक्तसङ्गञ्च सावधानः परित्यज । यथा दृष्ट्वा कालसर्पं नरो भीत्या पलायते ॥  
 यशोदे च प्रयत्नेन स्वात्मनः पुत्रमीश्वरम् । राम नारायणान्त मुकुन्द मधुसूदन ॥१६॥  
 हृष्ण वेश्य कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन । इत्येकादश नामानि पठेद्वा पाठयेदिति ।

जन्मकोटिसहस्राणां पातकादेव मुच्यते ॥ १७ ॥

रामादेशिविषयचनो मध्वापीश्वरपाचकः । विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः  
 रमते रमया सादं तेन रामं विदुर्बुधाः । रमाया रमणस्थानं रामं रामचिदो विदुः ॥  
 रा चेति लक्ष्मीयचनो मध्वापीश्वरपाचकः । लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

नाम्नां सहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत् फलं लभेत् ।

तत् फलं लभते नूनं रामोच्चारणमात्रतः ॥ २१ ॥

सत्कल्पमुक्तिवचनो नारेति च विदुर्बुधाः । यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः  
 शराश्च हृतवापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम् । यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः  
 उरुनारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्  
 नारञ्च मोक्षणं पुण्यमयनं ब्रह्ममीप्सितम् ।

तपोर्ज्ञानं भवेद् यस्मात् सोऽयं नारायणः प्रभुः ॥ २५ ॥

इत्यन्तो यस्य वेदेषु पुराणेषु चतुर्षु च । शास्त्रष्वन्येषु योगेषु तेनानन्तं विदुर्बुधाः  
 कुमध्ययमानञ्च निर्माणं मोक्षवाचकम् । तद्वदति च यो देवो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः  
 कुं भक्तिरसप्रेमघनं वेदसम्मतम् । यस्तं ददाति भक्तैर्भ्यो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः ॥

सूदनं मधुदैत्यस्य यस्मात् स मधुसूदनः । इति सन्तो यदन्तीशं वेदे भिन्नार्थमीषितम्  
मधुक्लीषञ्च माध्वीके कृतकर्मशुभाशुभे । भक्तानां कर्मणाञ्चैव सूदनं मधुसूदनः ॥ ३० ॥  
परिणामाशुभं कर्म भ्रान्तानां मधुरं मधु । करोति सूदनं यो हि स एव मधुसूदनः ॥

कृपिकृष्टवचनो नश्च सद्भक्तियाचकः । अध्यापि दातृवचनः कृष्णंतेन विदुर्बुधाः ॥ ३१ ॥  
कृपिश्च परमानन्दे णश्च तद्दास्यकर्मणि । तयोर्दाता च यो देवस्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥

कोटिजन्मार्जिते पापे कृपिःक्लेशे च वर्तते । भक्तानां नश्च निर्माणे तेन कृष्णःप्रकीर्तितः  
नाम्नां सहस्रं दिव्यानां त्रिरावृत्त्या च यत् फलम् ।

एकावृत्त्या तु कृष्णस्य तत् फलं लभते नरः ॥ ३५ ॥

कृष्णनाम्नः परं नाम न भूतं न भविष्यति । सर्वेभ्यश्च परं नाम कृष्णेति वैदिका विदुः  
कृष्ण कृष्णेति हे गोपी यस्तं स्मरति नित्यशः ।

जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धरेद्य सः ॥ ३७ ॥

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य चाचि प्रवर्तते । भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातककोटयः ।  
अश्वमेधसहस्रेभ्यः फलं कृष्णजपस्य च । परं तेभ्यः पुनर्जन्म नातो भक्तपुनर्भयः ।

सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च । तीर्थस्नानानि सर्वाणि तेषांस्वनशनानि च  
येदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुजः शतम् ।

कृष्णनामजपस्यास्य फलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४१ ॥

तेषां लोभाद्भयेत् स्वर्गफलञ्च सुखिर्नृणाम् । स्वर्गादपश्यं पुंसश्च जपकतुर्द्वैः परम्  
के जले सध्वं देहेऽपि शयन यस्य चात्मनः । पठन्ति वैदिकाः सर्वे तं देवं केशवं परम् ॥

कंसश्च पाण्डके विघ्ने रोगे शोके च क्षमये ।

तेषामरिर्निहन्ता च स कंसारिः प्रकीर्तितः ॥ ४४ ॥

रुद्ररूपेण मंहतां विश्वानामपि नित्यशः । भक्तानां पातकानाञ्च हरिस्तेन प्रकीर्तितः ॥  
माञ्च ब्रह्मस्वरूपा या मूलप्रवृत्तिरिश्वरी । नारायणीति विख्याता विष्णुमाया सनात्मने

महालक्ष्मीस्वरूपा च येदमाता सरस्वती ।

तथा यमुन्धरा गङ्गा तासां स्वामी च माधवः ॥ ४७ ॥

प्रहोराशोपादिभयैश्च घन्यं ध्यानेन किञ्चित् सनकादिभिश्च ।  
 वेदैः पुराणीर्न निरूपितञ्च भजस्य भक्त्या नघनीतचोरम् ॥ ४८ ॥  
 क चापि दुग्धं क दधि घृतं वा नवोद्भूतं वा क च तक्रमीप्सितम् ।  
 तेषां क चोरो भवति क चापि क वन्धनं ते भयमूलमध्ये ॥ ४९ ॥  
 न योगिभिः सिद्धगणैर्मुनीन्द्रैर्न भक्तसङ्घैर्भयपाशशोभैः ।  
 योगेनैव ददो न हि रक्षितुं क्षमैः कथं स बद्धस्तव मूलमध्येतः ॥ ५० ॥  
 प्रेम्णानुभवया स्तवनेन पूजया भजस्य पुत्रं तरसा च भारते ।  
 इत्यग्रमध्ये स्थितमीश्वरं परं ध्यानेन यत्नेन च सन्ततं सति ॥ ५१ ॥  
 घरं वृणुष्व भद्रन्ते यत्ते मनसि वाञ्छितम् ।  
 सर्वं दास्यामि जगति देवानामपि दुर्लभम् ॥ ५२ ॥

यशोदोषाच्च ।

।च निश्चला भक्तिस्तद्दास्यं वाञ्छितंमम । तवनामनश्च व्युत्पत्तिकर्ता धा तद्वक्तुमर्हसि  
 श्रीराधिकोवाच ।

मवेद्भक्तिर्निश्चला ते हरेर्दास्यञ्च दुर्लभम् । लभस्य मद्भरेणापि कथयामि सुनिर्णयम् ॥  
 एष नन्देन दृष्टाहं भाण्डारी घटमूलके । मया च कथितो नन्दो निपिद्धश्च ब्रजेश्वरः ॥  
 शय्येव स्वयं राधा छाया राषाणकामिनी । राषाणः श्रीहरैरंशः पार्षदप्रवरो महान् ॥  
 रा शब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु ।

विश्वप्राणेषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः ॥ ५७ ॥

।त्रोमाताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी । तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः ॥  
 हं सुदामशापेन वृषभानसुताधुना । शतवर्षञ्च विच्छेदो हरिणा सह साम्प्रतम् ॥ ५६ ॥  
 रमानश्च कृष्णस्य पार्षदप्रवरो महान् । पितृणां मानसी कन्या मम माता कलावती  
 गोनिसम्भवाऽहञ्चमममाता च भारते । पुनःसार्धञ्चवृष्णामियस्वामि श्रीहरेःपदम्  
 इति ते कथितं सर्वं ब्रजं ब्रज ब्रजेश्वरि ।

ब्रजेश्वरेण सहिता स्वामिना ज्ञानिना सति ॥ ६२ ॥

ममाधुना च भवती ध्यानस्य ध्यवधारिका । ध्यानमङ्गे महाद्वीपां नराजामपि सुन्दरि  
इति श्रीमहावैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
राधायशोदासंवादे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

## द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नारुयानवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

वासुदेवो द्वारकायां वसुदेवाग्रया मुने । प्रथयां रत्नरचितं रुक्मिणीमन्दिरं वत् ॥१॥  
शुद्धस्फटिकसङ्काशममूल्यरत्ननिर्मितम् । पुरतः परितोरम्यं नाना चित्रेणचित्रितम् ॥२॥  
अमूल्यरत्नकलशं श्वेतचामरदर्पणैः । घङ्गिशुद्धांशुकेः शुद्धैः परितः परिस्रोमितम् ॥ ३ ॥  
ददर्श रुक्मिणीं देवीमतीवनवर्यावनाम् । रत्नार्ण्यङ्कुमारुह्य शयानां सस्मितं मुदा ॥४॥  
अप्रोढाञ्च नयोढाञ्च नयसङ्गमलज्जिताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम् ॥५॥  
सुचारुकवरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । दृष्ट्वा कृष्णं मीप्सुकन्या सहसा प्रपन्नाम सा  
तां सम्भाष्य जगन्नाथो रत्नतल्पे उवाच सः । शुभक्षणे च शुभया स रमे रमया सह  
सुखसम्मोगमात्रेण मूर्च्छामाप मुदासती । तस्यां जङ्घे कामदेवो मस्मीभूतश्च शम्भुना  
स शंवरं निहत्यैव तत्र प्राप रतिं सतीम् । रती मायावतीनाम्ना सङ्केतेन सुरस्य च ।  
छायां दत्त्वा च शयने गृहिणी शंवरालये ॥ ६ ॥

नारद उवाच ।

जह्वार शंवरं कामो दैत्यं केन प्रकारतः । कथयस्व महाभाग विस्तरेण शुभां कथाम् ॥

नारायण उवाच ।

समतीते च सप्ताहे रुक्मिणी सृतिकागृहम् ।

गृहीत्या बालकं दैत्यो जगाम स्वालयं जघात् ॥ ११ ॥



अंपुत्रकश्च दैत्येशः पुत्रं प्राप्य प्रहर्षितः । मायावत्यै ददौ हृष्टो हृष्टा मायावती सती ॥  
अतीवपालनेनैव धर्षयामास बालकम् । सरस्वती तां रहसि कथयामास निर्जने ॥१३॥

सरस्पत्युवाच ।

शिवकीपानले पूर्वं भस्मीभूतः पतिस्तव । स चायं रुक्मिणीपुत्रो दैत्येनेव समाहृतः ॥

माययापि च मायेशो रुक्मिणीसूतिकागृहात् ।

समानीय ददौ तुभ्यं पतिस्तेऽयं न चात्मजः ॥ १५ ॥

कामञ्च कथयामास जगन्माता च सा सती ।

तव पत्नी रतिश्चेयं रमस्य रमया सह ॥ १६ ॥

त्वमेव रुक्मिणीपुत्रो नान्यदैत्यस्य मन्मथः ।

कुरतीव सती नित्यं रोदिति स्म त्वया विना ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा च ययां चाणीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः पदम् ।

स रेमे निर्जने नित्यं रामया सह सुन्दरः ॥ १८ ॥

एकदा मन्मथं दैवो ददर्श रहसि स्थितम् । शृङ्गारं रामया सादं कुर्वन्तं कीतुकेन च ॥

सस्मितं सस्मितायाश्च मध्यवक्षःस्थलस्थितम् ।

रतिं ददर्श कामेन मूर्च्छितां सुरतीत्सुकाम् ॥ २० ॥

दृष्ट्वा चुकोप दैत्यश्च जप्राह खड्गमुत्तमम् । इवाव खड्गहस्तश्च कामदेवं रतिं सतीम्

शंकर उवाच ।

धिक् त्वां महाकामुकश्च मूर्खं पण्डितमानिनम् ।

महापातकिनां श्रेष्ठं प्रमत्तं मातृगामिनम् ॥ २२ ॥

धिक् त्वाञ्च पुञ्जलीं मत्तां कामुकीं हतचेतनाम् ।

पुत्रं गृहीत्वा रहसि करोषि सुरतिं सति ॥ २३ ॥

दैत्यैवमुक्त्वा खड्गञ्च तामेव हन्तुमुद्यतः । जिघांसन्तं रतिं दैत्यं प्रेरयामास मन्मथः ॥

पपात दूरतो ब्रह्मन् मूर्च्छितः स्वाङ्गुपीडितः । पुनश्च चेतनां प्राप्य कोपेन प्रज्वलशिव ॥

शिवदत्तश्च शूलञ्च जप्राह निर्भरेण च । शतसूर्यप्रभं शूलं प्रहयाग्निसमं मुने ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा जगमुश्च देवाश्च ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः । पचनः कथयामास कर्णे कामस्य यत्नतः

स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ।

पचनस्य वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार मन्मथः ॥ २८ ॥

शूलं बभूव तस्याङ्गे रम्यं माल्यं मनोहरम् ।

ब्रह्मास्त्रेण च तं दैत्यं जघान मन्मथो मुदा ॥ २९ ॥

रतिं गृहीत्वा यानेन जगाम द्वारकां पुरीम् । प्रययुर्देवताः सर्वाः स्तुत्वाच पार्वतींस्तत्र  
रुक्मिणीमङ्गलं कृत्वा प्रजग्राह रतिं सुतम् । उत्सवं कारयामास परं स्वस्त्ययनं ह

ब्राह्मणान् भोजयामास पूजयामास पार्वतीम् ।

अथ कृष्णः क्रमेणैव वेदोक्ते मङ्गले दिने ॥ ३२ ॥

सप्तानां रमणीनाञ्च पाणिग्राहञ्चकार ह ।

फाल्गुनीं सत्यभामाञ्च सत्यां नाम्निजितीं सतीम् ॥ ३३ ॥

जाम्बवतीं लक्ष्मणाञ्च समुद्राहं चकार सः । ताभिः सार्द्धं क्रमेणैव पुत्रोत्पत्तिं चका  
एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च । निहत्य नरकं दैत्यं सपुत्रञ्च नृपेभ्यः  
यत्नयन्तं सुरं दैत्यं जघान रणमूर्धनि । इदर्श कन्यास्तत्रस्थाः सहस्राणाञ्च योऽयं  
शताधिका वयस्याश्च शश्वत्सुस्थिरयोधनाः । प्रफुल्लचदनाः सर्वा रत्नभूषणभूषिताः  
शुभश्रुणे च तासाञ्च पाणिं जग्राह माधवः । ताभिः सार्धं स रमे च क्रमेण च शुभश्रु  
एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च । हरेरेतान्यपत्यानि बभूवुश्च पृथक् पृथक्  
एकदा द्वारकारम्यां दुर्वांसा मुनिपुङ्गवः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्द्धंमाजगामाषट्कोत्तरं  
राजा मदोत्प्रेनेन च सपुत्रः सपुरोहितः । पत्तुदेवो पात्तुदेवोऽप्यक्रूरधोऽपस्तथा ॥

नत्था योऽशोपचारं प्रणेमुमुंनिपुङ्गवम् ।

गुनाशिपञ्च प्रददौ तेभ्यो ब्रह्मन् पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥

एकानंशाञ्च कन्यां तां ददौ तस्मै शुभश्रुणे ।

मुक्त्वामाजिष्यहारांश्च रत्नञ्च यौतुर्कं ददौ ॥ ४३ ॥

रमे रामया सार्धं माहेन्द्रे रत्नमन्दिरे । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददौ तस्मै गुणाधमम्

कदा स मुनिधेष्टः समालोच्य स्वचेतसा । शयानं कुत्रचिद्रम्यपर्यङ्के रत्ननिर्मिते ॥  
 तवन्तं पुराणञ्च श्रद्धया कुत्रचिद्विभुः । महोत्सवे नियुक्तञ्च कुत्रचित् प्राङ्गणे शुभे ॥  
 मूलं भुक्तयन्तञ्च भक्त्या दत्तञ्च सत्यया । कुत्रचित्सेवितं तल्पे रुक्मिण्याश्चेतचामरैः  
 लिन्दीसेवितपदं शयानं कुत्रचिन्मुदा । सर्वत्र समसंभावां चकार भगवान् मुनिः ॥  
 त्स्मर्यं प्रथयी विप्रो दृष्ट्वा तत् परमद्भुतम् । तुष्टाच्च जगतीनाथं रुक्मिणीमन्दिरे पुनः ॥

पसन्तञ्च सुधर्मायां सतां संसदि सुन्दरम् ॥ ५० ॥

दुर्वासा उवाच ।

जय जय जगतां नाथ जितसर्वं जनार्दन सर्षारमक सर्वेश सर्वयीज पुरातन  
 गर्गुण निरीह निर्लिप्त निरञ्जन निराकार भक्तानुग्रहविग्रह सत्यस्वरूप सनातन  
 िस्वरूप निरयनूतन ब्रह्मेशशेषधनेशधन्दित पद्मया सेवितपादपद्म प्रह्लादपोतिरनि-  
 चनीय वेदाचिदितगुणरूप महाकाशसमासमानीय परमात्मप्रभोऽस्तु ते ॥ ५१ ॥  
 त्येवमुक्त्वा मनसा हरेरनुमतेन च । प्रणम्य तस्यो विप्रेन्द्रस्तत्रैव पुरतो हरेः ॥५२॥  
 मुवाच जगन्नाथो हितं सत्यं पुरातनम् । ज्ञानञ्च वेदचिदितं सर्वेषाञ्च सतां मतम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मा भैर्विप्र शिवांशस्त्वं किं न जानासि ज्ञानतः ।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥ ५४ ॥

अहमात्मा च सर्वेषां शयाः सर्वे मया विना ।

प्राणिदेवान् मयि गते यान्त्येव सर्वशक्तयः ॥ ५५ ॥

जातावप्येक एवाहं व्यक्ता एव पृथक् पृथक् ।

यो भुङ्क्ते तस्य तृप्तिः स्यान्ताग्येषाञ्च कदाचन ॥ ५६ ॥

पृथक् जीवादिसर्वेषां प्रतिमानञ्च प्राणिनाम् ।

परिपूर्णतमोऽहञ्च गोलोके रासमण्डले ॥ ५७ ॥

श्रीरामशापाद्राधा सा मां द्रष्टुमक्षमाधुना । सर्वे चैवांशरूपेण कलया च तद्दशतः ॥

रुक्मिणीमन्दिरे चांशोऽप्यन्यासां मन्दिरे कलाः ।

ममापि कुत्रचिदारां कुत्रचिच्च कलाकलाः ।

कलाकलांशाः कुत्रापि प्रतिमासु च वेदितु ॥ ५१ ॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो गृहस्याभ्यन्तरं ययौ ।

दुर्वासाश्च प्रियां त्यक्त्वा श्रीहरेस्तपसे गतः ॥ ६० ॥

इति श्रीप्रह्लयेपत्तं महापुराणे नारायणनारदसंघादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

मुनिकृष्णसंघादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

## त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

अकारणात् पत्नीत्यागदोषः ।

श्रीनारायण उवाच ।

सशिष्यश्चापि दुर्वासास्त्यक्त्वा च द्वारकां पुरीम् ।

कैलासं प्रययौ भक्त्या शङ्करं द्रष्टुर्मादवरम् ॥ १ ॥

गत्वा मुनिश्च कैलासं प्रणनाम शिष्यं शिवाम् ।

तुष्टाश्च परया भक्त्या सशिष्यः प्रणतः शुचिः ॥ २ ॥

तत्सर्वं कथयामास वृत्तान्तं श्रीहरेरपि । भात्मनस्तपस्तत्त्वं स्ववैराग्यञ्च वेतसः ॥ ३ ॥

मुनेश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य पार्वती सती । तमुवाच हितं सत्यं साक्षाच्छङ्करसन्निधौ ।

पार्वत्युवाच ।

धर्मतरुं न जानासि धर्मिष्ठं मन्यसे स्वकम् ।

अनपत्यां परित्यज्य क्व यासि तपसे मुने ॥ ५ ॥

अनपत्याञ्च युधतीं कुलजाञ्च पतिव्रताम् ।

त्यक्त्वा भवेयुः सन्न्यासी प्रह्लाचारो यतीति वा ॥ ६ ॥

वाणिज्ये वा प्रयासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः ।

तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम् ॥ ७ ॥

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्थूलनं ध्रुवम् । अभिशापेन भार्याया नरकञ्च परत्र च ।

इहैव च यशोनाश इत्याह कामलोद्भवः ॥ ८ ॥

द्वारकां गच्छ हे विप्र स्वधर्मं रक्ष साम्प्रतम् । एकानंशो मदंशाञ्च धर्मतः परिपालय ॥

पादपद्मार्जितं पादपद्मं सर्वं सुदुर्लभम् । सन्ततं शम्भुना गीतं मुनीन्द्रेः सनकादिभिः ॥

परित्यज्य सुरतयोः कृष्णस्य परमात्मनः । क यासि तपसेवत्स सुधां त्यक्तवामनोहराम्

श्रीकृष्णपादपद्मञ्च स्वप्ने जपति यो मुने । शतजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥

यदुबाल्ये यद्य कौमारे चार्धके यत्नव यौवने ।

कामतोऽकामतो वापि मस्मीभूतञ्च पातकम् ॥ १३ ॥

साक्षाद्यो भारते धर्मे श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ।

दृष्ट्वा सद्यो भवेत् पूज्यो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ १४ ॥

कोटिजन्मार्जितात् सद्यः कृतपापाद्दिमुच्यते ।

सर्वाण्येव हि तीर्थानि यतः पूतानि नित्यशः ॥ १५ ॥

तद् मत्तं तत्तपः सत्यं तत् पुण्यं तच्च पूजनम् ।

सफलं कृष्णसम्बन्धि स्वजन्मखण्डनं यतः ॥ १६ ॥

कृष्णभक्तिविहीनश्च ब्राह्मणो वेदपारगः । तत्सङ्गाच्च तदालापान्मत्तभक्तिः प्रणश्यति ॥

कृष्णस्योच्छिष्टभोजी यः कृष्णश्च ब्राह्मणः स्वयम् ।

भाषद्विषयतात् पूतः पूतं कर्तुं जगत् क्षमः ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णञ्च परित्यज्य क यासि तपसे द्वित्र । तपसां फलप्राप्नोति श्रीकृष्णस्मरणेन च

यतो भक्तिर्न च भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि । स गुरुः परमो वैरी करोति जन्मनिष्फलम्

पार्ष्णीवचनं श्रुत्वा शङ्करः प्रेमविह्वलः । पुष्टकाञ्चित्तसर्पाङ्गस्तुष्टाय परमेश्वरीम् ॥ २१ ॥

दुर्वासः प्रणतिं कृत्वा शिवदुर्गापदाम्बुजे । स्मारं स्मारं कृष्णपदं पुनश्च द्वारकां ययौ

तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा तुष्टाय परमेश्वरम् । एकानंशालयं गत्वा स च रेने तथा सह ॥

कृष्णो युधिष्ठिरान्यानात् प्रययौ हस्तिनापुरम् ।

कुन्ती सम्भाष्य भूयश्च सानुंश्च प्रमुदान्वितः ॥ २५ ॥

उपायेन जरासन्धं निहत्य शान्त्यमेव च ।

कारयामास यत्रश्च विधिषोधितक्षिणाम् ॥ २५ ॥

मुनीन्द्रैश्च नृपेन्द्रैश्च राजगृहमभोषितम् । शिशुपालं दन्तवकं तत्र यत्ने जयान सः  
भर्तापनिव्रां कुर्वन्तं समायां सुरभूषयोः । पपात तच्छरीरश्च जीवो गत्या ह्येः पद्म

न दृष्ट्वा तत्र सर्वेशं तुष्टापागत्य माधवम् ॥ २७ ॥

शिशुपाल उवाच ।

धेदानां जनकोऽसि त्वं धेदाङ्गानाञ्च माधव ।

सुराणामसुराणाञ्च प्राकृतानाञ्च देहिनाम् ॥ २८ ॥

सूक्ष्मां विधाय सृष्टिञ्च कल्पभेदं करोषि च । मायया च स्वयं ब्रह्मा शङ्क्य शेष पव  
मनयो मुनयश्चैव धेदाश्च सृष्टिपालकाः । कलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च प्रहास्य

स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः ।

कारणञ्च स्वयं कार्यं जन्यश्च जनकः स्वयम् ॥ ३१ ॥

यन्त्रस्य च गुणो दोषो यन्त्रिणाश्च श्रुतो श्रुतम् ।

सर्वे यन्त्रा भवान् यन्त्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३२ ॥

मम क्षमस्वापराधं मूढस्य द्वारिणस्तव । ब्रह्मशापात् कुबुद्धेश्च रक्ष रक्ष जगद्गुरो ॥  
इत्येवमुक्त्वा क्रमतो जयो विजय एव च । मुदा तो ययतुः शीघ्रं वैकुण्ठद्वारमाप्सितम् ॥

शिशुपालस्य स्तोत्रेण सर्वे ते विस्मयं ययुः । परिपूर्णतमं कृत्वा मेनिरेकृष्णमीश्वरम् ॥  
कारयित्वा राजसूर्यं भोजयामास ब्राह्मणान् । कुरुपाण्डययुद्धश्च कारयामास भेदतः ॥

भुवो भारावतरणं चकार स कृपानिधिः । पुनर्ययौ द्वारकाञ्च चिरं स्थित्वा नृपान्नया ॥  
विप्राया मृतवत्साया जीषयामास पुत्रकान् ।

मृतस्थानात् समानीय तन्मात्रे प्रददौ सुतान् ॥ ३८ ॥

तद् दृष्ट्वा देवकी तुष्टा ययाचे मृतपुत्रकान् ।

मृतस्थानात् समानीय ददौ मात्रे सहोदरान् ॥ ३९ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ] \* कुण्डान्मुक्तिकामेन साम्येनसूर्यपूजनम् \*

सद्यो जहार दारिद्र्यं सुदाम्नो ब्राह्मणस्य च । समागतस्यस्वगृहाद् द्वारकांशरण  
तस्मै ददौ राजलक्ष्मीं निश्चलां सातपीठगीम् । पृथुकानां कणं भुक्तवाभक्तस्यभक्त्य  
यभूय तस्य राजञ्च यथेन्द्रस्यामरावती । यथा धनेश्वरो देवो धनाढ्यः स यभूय

निश्चलां हरिभक्तिञ्च ददौ दास्यं सुदुर्लभम् ।

अविनाशिनि गोलोके यथेष्टं पदमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

द्वार पारिजातञ्च शक्राहङ्कारमेव च । सत्यां च कारयामास पुण्यकं व्रतमीप्सित  
ध्यामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने । तत्र व्रते कुमाराय स्वात्मानं दक्षिणां स  
ह्यपान् भोजयामास तेभ्यो रत्नं ददौ मुदा । सत्यमानातिमानञ्च धर्षयामास सत्य  
प्रेमण्याव्रतिसौभाग्यमन्यासाञ्च नवनवम् । वैष्णवानां सुराणाञ्च विप्राणामपि पूज  
यामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने । परमाध्यात्मिकं ज्ञानमुद्भवाय ददौ प्रभुः  
निं कथयामास गीतां च रणमूर्धनि । कृत्वा निष्कण्टकञ्चैव कृपया च कृपानिधि

युधिष्ठिराय पृथिवीं राज्यलक्ष्मीं ददौ प्रभुः ।

दुर्गाञ्च कारयामास वैष्णवीं ग्रामदेवताम् ॥ ५० ॥

यञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम् । नानाप्रकारनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः ॥ ५१ ॥  
ब्राह्मणान् भोजयामास पार्वतीप्रोतये तथा । रेषते पर्यंते रम्ये चामूल्यरत्नमन्दिरे ॥ ५२ ॥  
गणेशं पूजयामास देवानामीश्वरं परम् । लङ्कुकानां तिलानाञ्च सुस्यादु सुमनोहराम् ॥ ५३ ॥  
परिवृष्टिं पञ्चलक्षं नैवेद्यञ्च ददौ मुदा । लङ्कुकं स्वस्तिकानाञ्च सप्तलक्षं सुधोपमम् ॥ ५४ ॥  
गणेश्वराय प्रददौ शर्कराशतताशिकम् । पङ्कजम्बा फलानाञ्च दशलक्षमरूपकम् ॥ ५५ ॥  
मिष्टान्नं पायसं रम्यं स्वादु स्वस्तिकविष्टकम् । गृतञ्च नयनीतञ्च दधि दुग्धं सुधोपमम् ॥ ५६ ॥  
धूपं दीपं पारिजातपुष्पमाल्यमभोपितम् । सुगन्धि चन्दनं गन्धं पङ्क्तिशुद्धांशुकं ददौ ॥ ५७ ॥

यञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम् ।

ब्राह्मणान् भोजयामास तुष्टाय स गणेश्वरम् ॥ ५८ ॥

रायं दशविधञ्चैव पाद्यामास तत्र यै । सूर्यञ्च पूजयामास साम्यः कुष्ठक्षपाय च ॥  
विष्यं कारयामास तञ्च साम्यं समातरम् । परिपूर्णं घृतसञ्चान्पुपहारैरनुत्तमैः ॥ ६० ॥

वरं ददौ च साम्बाय स्तोत्रञ्च भास्करः स्वयम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
गणेशपूजा नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धोपाख्यानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कृष्णपुत्रश्च प्रद्युम्नो महाबल पराक्रमः । तत्पुत्रोऽप्यनिरुद्धश्च विधातुरंश एव च ॥  
एकदासाधनिरुद्धो नवयोधनसंयुतः । सुप्तो रहसि पर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते ॥ २ ॥  
स्वप्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । सुगन्धिपुष्पतल्पेमस्त्रिधचन्दनचर्चिते ॥ ३ ॥  
शयानां सुस्मितां रम्यां नवयोधनसंयुताम् । भ्रूल्वरद्वानिर्माण भूपणेनविभूषिताम् ।  
चारुकेयूरवलयशङ्खकङ्कुणशोभिताम् । मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्यलविराजिताम् ॥ ५ ॥  
अर्ताचसूक्ष्मचसनां कण्ठमञ्जोरत्रिताम् । पद्मविभ्याधरींष्टीञ्च शरत्फललोचनाम् ॥ ६ ॥  
शरत्पद्मप्रभामुष्टकोटीन्दुनिन्दिताननाम् । मुक्तापङ्क्तिसमासाद्यदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥  
त्रिषट्कवरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमालकस्निग्धचन्दनकज्जलेः ॥ ८ ॥  
पद्मवलीपिरचितसुकपोलश्लोऽञ्जलाम् । दाडिमकुसुमाकारसिनूरविभूषिताम् ॥  
श्रीरामकदलास्तम्भनिन्दितांश्लोऽञ्जलाम् । भद्रयुधैर्वर्तुंलाकारस्तनयुग्मविभूषिताम्  
नितम्बमाग्नप्राञ्च कामवाणप्रवीडिताम् । कामुकी कामनीयाञ्च पर्यन्तीं परुचक्षुषा ॥  
कुङ्कुमालतरकाकपादपद्मविराजिताम् । पायुप्रेरणपत्रेण व्यग्रगुणश्लोऽञ्जलाम् ॥ १२ ॥  
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथितमानसः । उपाच मधुरं मत्तः काममर्सा तुकामलान्  
वास्त्वभ्यक्षपर्णांभो कामेन पुलकान्विताम् । अतिश्रींदांतयोद्गाञ्चरुद्गारेञ्चासुचक्षुषाम्  
अनिरुद्ध उवाच ।

किं देवा किञ्च गान्धर्वा का त्वं कामिनि कामने ।



चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ] \* अनिरुद्धोपाख्यानम् \*

कस्य स्त्री कस्य कन्या वा कं वा वाञ्छसि सुन्दरि ॥ १५ ॥

त्रैलोक्यातुलसीन्द्रप्यान्मुनिमानसमोहिता । न विभेपि कथं ब्रूहि स्वयमेकाकिनीच  
अहं त्रैलोक्यनाथस्य पौत्रः कामात्मजोऽधुना । कान्तेऽहमनिरुद्धश्च नवीनयौवना  
कमनीयश्च कामी च कामशास्त्रविशारदः । कामुकीकामनां पूर्णां कर्तुमेवेश्वरः स्व  
मां भजस्य सुशीले त्वं सुवेशश्च सुशीलकम् । रतिशूरं रतिरसप्राप्तं रतिरसप्रियम्  
रतिपुत्रं रतिरसं प्रमत्तं रसिकं प्रिये । युवानं व्याधिहीनश्च कामुकं कामुकीच्छति

विदग्धा सुविदग्धश्च कान्तमायाति कामतः ।

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणधान् भवेत् ॥ २१ ॥

प्रच्छाय लोचनास्यश्च नवसङ्गमलज्जिता । विलोकयन्ती वकाक्षिकोणेन तमुयाच स  
कामिन्युयाच ।

कामुकः कामपुत्रोऽसि कामेन व्याकुलोऽधुना ।

भर्षाश्चेत् कामुकीयोग्यो न कामश्चिन्तितः कथम् ॥ २३ ॥

पौत्रस्त्रैलोक्यनाथस्य स्वतः सम्भावितस्य च ।

स्वयं योग्यो योग्यपुत्रो विवाहं न कथं कुरु ॥ २४ ॥

विवाहिता यज्ञपत्नी सा च पुण्यप्रता सती ।

निश्चला सततं साध्या वाधिनी सङ्गिनी सदा ॥ २५ ॥

भयप्रीतिदानसाध्या गुप्तपत्नीत्वनिश्चला ।

नैमिस्तिका न नित्या सा सा च वेदविर्जिता ॥ २६ ॥

रं नरकसोपाना परत्रेहायशस्करा । साधुस्तत्र न हि रतो वंशजो यैष्णवो यदि ॥

दि पूर्वं भवेद् भ्रान्तो निवृत्तः साधुसङ्गतः । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला

याधिस्ती पुनर्लितो निवृत्तः पातकी यदि । उपहास्यो भुवि भवेत्सर्वं कुञ्चर्याचपत्

सुराला सुन्दरी शान्ता धर्मपत्नी प्रशंसिता ।

पतिप्रता सुसाध्या सा शश्वत्सुप्रियवादिनी ॥ ३० ॥

कोमलाङ्गी विदग्धा च श्यामा रतिसुखप्रदा ।

एवम्भूतां परित्यज्य वैष्णवमन्त्रासं यजेत् ॥ ३१ ॥

साचेन् परिणता साध्वी शान्ता पुत्रवती यदा ।

अन्यथा च गृथा सूर्ये तपसः स्मरन्नं भवेत् ॥ ३२ ॥

भसाधुश्च कुप्यंशस्वेन् परनारी प्रयाति चेत् ।

स याति नरकं घोरं पितृभिः सनभिः सह ॥ ३३ ॥

अहमूया वाणकन्या वाणः शङ्करकिङ्करः । वाणस्त्रैलोक्यविजयो शङ्करो जगतां पति

न स्वतन्त्रा परार्थिना त्रिषु कालेषु कामिनी ।

पुंश्चली या स्वतन्त्रा साप्यसद्वंशप्रसूतिका ॥ ३५ ॥

पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च वराय च ।

कन्या वरं न याचेत् धर्म एव सनातनः ॥ ३६ ॥

त्वं च योग्योऽसि योग्याहं मामिच्छसि यदि प्रभो ।

वाणं प्रार्थय शम्भुं वाप्यथवा पार्वतीं सतीम् ॥ ३७ ॥

इत्युक्त्वा सुन्दरो साध्वी सान्तरधाना बभूव ह ।

निद्रां तत्याज सहसा कामी कामात्मजो मुने ॥ ३८ ॥

बुद्ध्या स्वप्नं स विज्ञाय कामेन व्यथितातुरः ।

बभूव व्याकुलो शान्तो न दृष्ट्वा प्राणबल्लभाम् ॥ ३९ ॥

त्यक्त्वाहारमनिद्रश्च प्रमत्तश्च कुरोदरः । क्षणं तिष्ठति रोते च क्षणं खसि रोदिति ॥

पुत्रं दृष्ट्वा तु कन्दन्तं देवकीरुक्मिणी सती । अन्याश्चयोपितः सर्वाः कथयामासुरीश्वर्यम्

तासां च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । उवाच सर्वतत्त्वज्ञः कृष्णश्च पूर्णमातर

श्रीभगवानुवाच ।

कामातुरा वाणकन्या रतिं दृष्ट्वा शिवेशयोः । वरं सम्प्राप दुर्गाया व्याकुला मदता

स्वप्नश्च दर्शयामास सानिहृद्भञ्ज पार्वती । मम पौत्रं प्रमत्तञ्च सुकार कौतुकेन च ।

तत्पुत्रीञ्च प्रमत्तां तां करोमि स्वप्रतोऽधुना ।

स्वच्छन्दं तिष्ठ न चिरं नास्ति चिन्ता मनोव्यथा ॥ ४५ ॥

इति कृष्णः समाश्वस्य सर्वात्मा सर्वसिद्धिवित् ।

स्यप्रञ्च दर्शयामास वाणपुत्रीञ्च कामुकीम् ॥ ४६ ॥

सुता सुतल्पे याला सा पुष्पचन्दनचर्चिते । नवयोधनसंयुक्ता रत्नभूषणभूषिता ॥ ४७ ॥

शयाना रत्नपर्यङ्के ददर्श स्वप्नमीप्सितम् । अतीघनिर्जने देशे रत्ननिर्माणमन्दिरे ॥ ४८ ॥

नवीनितीरदश्याममतीचनवपीवतम् ।

कोटिकन्द्यलीलामं सस्मितं सुमनोहरम् ॥ ४९ ॥

रत्नकेयूरयलयरत्नमञ्जोररञ्जितम् । रत्नकुण्डलपुग्मेन गण्डस्थलचिराजितम् ॥ ५० ॥

चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं भूषितं पीतवाससा । सुचारुमालतीमाल्यचक्षुःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥

शयानं रत्नपर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते । तं दृष्ट्वा सहसा साध्वी तन्मूलं प्रययौ मुदा ॥

उवाच मधुरं साध्वी हृद्येन विदूयता । कामात्मजप्रिया कान्ता कामवाणप्रपीडिता ॥

उपोवाच ।

कस्त्वं कामुक भद्रं ते मां भजस्व स्मरतुराम् ।

अतिप्रौढां . नयोद्गाञ्च नवसङ्गमलालसाम् ॥ ५४ ॥

ज्वानुरक्ता भक्ताञ्च गान्धर्वेण समुदह । विवाहाष्टप्रकारेषु गान्धर्वः सुलभो नृणाम् ॥

धनुरक्ता प्रियां प्राप्य त्यजेयः कपटी पुमान् ।

तस्माद्याति महालक्ष्मीः शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ५६ ॥

पुमातुवाच ।

अहं कृष्णस्य पौत्रश्च कामदेवात्मजः स्थयम् ।

कथं शृणामि त्वां कान्ते तयोरनुमतिं विना ॥ ५७ ॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमातन्तर्धानं चकार सः ।

कामेन ध्याकुला कान्ता न दृष्ट्वा कान्तमीप्सितम् ॥ ५८ ॥

शं त्यक्त्वा समुत्थाय तत्पादैव मनोहरात् । विपसाद् सखीमध्ये प्रमत्ताद्दत्ता भृशम्

पप्रच्छ तां धरालीनां किं किमित्येष निश्चिन्तम् ।

उवाच बोधयामास चित्रलेखा सुयोगिनी ॥ ६० ॥

एवममृतां पमित्याज्य घेष्णयन्तपमं यजेत् ॥ ३१ ॥  
 साधेत् परिणता साध्वी शान्ता पुत्रपती यदा ।  
 अन्यथा च पुत्रा सखं तपसः स्याज्जन् मयेत् ॥ ३२ ॥  
 असाधुश्च कुर्वंशस्त्रेत् परमार्गी प्रयाति चेत् ।  
 स याति नरकं घोरं पिबुभिः सनभिः सह ॥ ३३ ॥

अहमूपा वाणकन्या वाणः शङ्करकिङ्करः । वाणश्चैलोक्यविजयो शङ्करो जगतां पते

न स्वतन्त्रा परार्थीना त्रिषु कालेषु कामिनी ।  
 पुंश्चली या स्वतन्त्रा साप्यसद्वंशप्रमूतिका ॥ ३५ ॥  
 पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च पराय च ।  
 कन्या धरं न याचेत धर्म एव सनातनः ॥ ३६ ॥  
 त्वं च योग्योऽसि योग्याहं मामिच्छसि यदि प्रमो ।  
 वाणं प्रार्थय शम्भुं वाप्यधवा पार्वतीं सर्ताम् ॥ ३७ ॥  
 इत्युक्त्वा सुन्दरी साध्वी सान्तर्धाना बभूव ह ।  
 निद्रां तत्याज सहस्रा कामी कामात्मजो मुने ॥ ३८ ॥  
 बुद्ध्वा स्वप्नं स विहाय कामेन व्यथितानुरः ।  
 बभूव व्याकुलो शान्तो न दृष्ट्वा प्राणबल्लभाम् ॥ ३९ ॥

ःयत्तवाहारमनिद्रश्च प्रमत्तश्च कृशोदरः । क्षणं तिष्ठति शेते च क्षणं रहसि रोदिषि ।  
 पुत्रं दृष्ट्वा तु कन्दन्तं देवकीरुक्मिणी सती । अन्याश्चयोषितः सर्वाः कथयामासुर्पिताम्  
 तासां च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । उवाच सर्वतत्त्वज्ञः कृष्णश्च पूर्णमातरः ।

श्रीभगवानुवाच ।

कामातुरा वाणकन्या रतिं दृष्ट्वा शिवेशयोः । धरं सम्प्राप्य दुर्गाया व्याकुला मदनास्क्त  
 स्वप्नश्च दर्शयामास सानिरुद्धश्च पार्वती । मम पौत्रं प्रमत्तञ्च स्वकार कौतुकेन च ॥ ४० ॥

तत्पुत्रीञ्च प्रमत्तां तां करोमि स्वप्नतोऽधुना ।

स्वच्छन्दं तिष्ठ न चिरं नास्ति चिन्ता मनोव्यथा ॥ ४१ ॥

इति कृष्णः समाश्वास्य सर्वात्मा सर्वसिद्धिषिव् ।

स्वप्रञ्च दर्शयामास वाणपुत्रीञ्च कामुकीम् ॥ ४६ ॥

सुता सुतल्पे बाला सा पुष्पचन्दनचर्चिते । नवपौषनसंयुक्ता रत्नभूषणभूषिता ॥४७॥  
शयाना रत्नपर्यङ्के ददर्श स्वप्नमीप्सितम् । अतीवनिजने देशे रत्ननिर्माणमन्दिरे ॥४८॥

नवीननीरदश्याममतीवनवपौषनम् ।

कोटिकन्दर्पलीलाभं सस्मितं सुमनोहरम् ॥ ४६ ॥

रत्नकेयूरखलयरत्नमञ्जोररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥ ५० ॥  
चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं भूषितं पीतपाससा । मुचास्मालतीमाल्ययक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥

शयानं रत्नपर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते । तं दृष्ट्वा सहसा सार्ध्वा तन्मूलं प्रययौ मुदा ॥  
उवाच मधुरं सार्ध्वा हृदयेन विदूयता । कामात्मजप्रिया कान्ता कामवाणप्रपौडिता ॥  
उपोवाच ।

कस्त्वं कामुक भद्रं ते मां भजस्व स्मरातुराम् ।

अतिप्रौढां नवोदाञ्च नवसङ्गमलालसाम् ॥ ५४ ॥

वानुरक्तां भक्ताञ्च गान्धर्वेण समुद्धह । विवाहाष्टप्रकारेषु गान्धर्वः सुलभो नृणाम् ॥  
धनुरक्तां प्रियां प्राप्य त्यजेयः कपटी पुमान् ।

तस्माद्याति महालक्ष्मीः शापं दत्त्वा सुदाहणम् ॥ ५६ ॥

पुमानुपाच ।

अहं कृष्णस्य पौत्रञ्च कामदेवात्मजः स्वयम् ।

कर्षं गृह्णामि त्वां कान्ते तयोरनुमतिं विना ॥ ५७ ॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमानन्तर्धानं चकार सः ।

कामेन ध्याकुला कान्ता न दृष्ट्वा कान्तर्माप्सितम् ॥ ५८ ॥

निद्रां त्यक्त्वा समुत्थाय तल्पादेव मनोहराम् । पियसाद् सखीमध्ये प्रमत्तारुढता भृशम्  
पश्य ता धरालीनां किं किमित्येव निधितम् ।

उवाच धौधयामास चित्रलेखा सुयोगिनी ॥ ६० ॥

चिप्रलेखोपाच ।

चेतनं कुः कल्याणि कम्मात्ते भातिरुवणा ।

स्वयं शम्भुः शिवासाक्षाद् दुर्लभ्ये नगरे सति ॥ ६१ ॥

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते । शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः

ध्यानाद् दुर्गतिनाशिन्याः सर्वदुर्गं यिनश्यति । ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्ग

चिप्रलेखायचः धृत्या रुरोदोघेभृशं सती । बाणश्च शङ्कराभ्यासे चिप्रसाद् प्रमूर्ति

जहास शङ्करो दुर्गा कार्तिकेयो गणेश्वरः ॥ ६४ ॥

गणेश्वर उवाच ।

यो ददाति ध्रुवं दुःखमन्यस्मै दम्भमोहितः । गृहमघर्मविचारेण स विन्दति चतुर्गु

शिवेशयोश्च कीडाञ्च दृष्ट्वा या काममोहिता ।

परं तस्मै ददौ दुर्गा घर्मेव सुदुर्लभम् ॥ ६६ ॥

स्वप्ने गत्वा स्वयं देवी मत्तं कृत्वा स्मरात्मजम् ।

अधुना कामपार्श्वञ्च शम्भोस्तिष्ठति मूकयत् ॥ ६७ ॥

सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भगवान् हरिरेश्वरः । स्वप्ने सुवेशं पुरुषं दर्शयामासकन्यका

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं युवती सती । परमेष्ठ्या भवेत्तस्या घर्मभीत्या निवर्तते ॥ ६८

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा पुंश्चली पापवंशजा । त्यजेन्नद्राञ्च स्वाहारं पतिं पुत्रं धनं गृहम् ॥ ७०

चेतनं गृहकार्यञ्च कुललज्जां कुलद्वयम् । युवानं रतिशूराञ्चाप्यतिनीचं न हि त्यजेत् ।

त्यजेज्जातिञ्च धर्मञ्च प्राणाञ्च परिणामतः ॥ ७१ ॥

तस्मात्प्राणः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवती सदा । परिरक्षेद्य सततमायायुक्तां न विश्वसेद्

दृश्यं धुरधारामं नारीणां मधुरं वचः । तासां मनो न जानन्ति सन्तो वेदाश्च वैदिका

मयातु द्वारकां सद्यश्चिप्रलेखा सुयोगिनी । अनिरुद्धं समाहृत्य प्रमत्तमवलीलया ॥ ७३

तिध्रुत्वा महादेवो गणेशं तमुवाच ह । न शृणोति यथा बाणः शुभकार्यं तथा कुः

चिप्रलेखा ययी तूर्णं द्वारकामवनं हरेः । सर्वेषामपि दुर्लभ्या लीलया प्रचिवेश सा ॥

७४ । चानिरुद्धञ्च समाहृत्य च योगतः । रथमारोहयामास निद्रितं बालकं मुदा ॥

सा मनोयायिनी भद्रा गृहीत्या बालकं मुने ।

— मुहूर्ताच्छोणितपुरं कृत्वा शङ्खध्वनिं ययौ ॥ ७८ ॥

नपाश्रमाम्बन्तरे च रुद्रदुः सर्वयोपितः । अहो वाणद्वरो घत्सः क गतः प्राणवह्नमः ॥

कृष्णस्ताश्च समाश्वास्य सर्वज्ञः सर्वतत्त्वचित् ।

साम्यः कामचलैः साधं कृष्णः सात्यकिना तथा ॥ ८० ॥

गृहीत्या गृहं धीरे रथमायुहा सत्यतः । सुदर्शनं पाञ्चजन्यं पद्यं कीमोदकीं गदाम् ॥

शशापास्यति देवेशो नगरं शोणितं तथा । सगणैः शङ्करेणैव पार्यत्या परिरक्षितुम् ॥

अथ सा योगिनी धन्या पुण्या मान्वा च योपिताम् ।

शिष्या दुर्वाससः शान्ता सिद्धयोगेन सिद्धिदा ॥ ८३ ॥

बालकं बोधयामास रुदन्तं भातरं स्मरन् । प्रापयित्वा दत्तौ तस्मै माल्यचन्दनभूषणम्

कृत्वा सुवेशं बालस्य कन्यान्तः पुरमोप्सितम् । चक्रे प्रवेशं योगेन रक्षकैश्चापि रक्षितम्

तामुषां रक्षितां दृष्ट्वा निराहारां कृशोदरीम् । शोभञ्जयोधयामास सर्पाभिःपरिवारिताम्

उगं कृत्वा च सुस्नातां घृत्नभूषणभूषिताम् । वस्त्रैर्गाल्यैश्चन्दनैश्च सिन्दूरपत्रकैः शुभैः

द्रव्यैःसम्भाषणं तत्र माहेन्द्रे च शुभशुणे । कारयामास गोप्यया च सत्तानां सङ्गमेन च

पतिप्रतां पतिं दृष्ट्वा सा रमे विगतज्वरा । गान्धर्वेण विवाहेन तामुवाह स्मरात्मजः ॥

रतिर्वभूय सुविग्भुभयोः सुखकारणम् । दिवानिशं न युयुषे स्मरपुत्रः स्मरानुरः ॥ ६० ॥

उपा कामानुरा प्रीदा नयोद्वा तपसङ्गमात् ।

मूर्च्छां सम्प्राप पुंसश्च स्पर्शप्रापेण कामुकी ॥ ६१ ॥

एवं नित्यञ्च रहसि सङ्गमः सुमनोहरः । यभूष सुविरं विन राजा शुभाप रक्षकात् ॥

रति धोद्वयवैषर्त्तं महापुराणे नारायणभारद्वादे धोःकृष्णकर्मखण्डे

बाणयुद्धेऽप्युषानिरुद्धयोःसंवादे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

## पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

वाणागुरयुद्धवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

अथ भीता रक्षकास्ते समूचुर्याणमोश्चरम् । स्कन्दंगणेशं दुर्गाञ्च दण्डयन् प्रणिपत्य  
रक्षका ऊचुः ।

अहो दुष्टश्च कालोऽयमतीवदुरितक्रमः ।

स्यतन्त्रा बालिका प्रौढा पतिमिच्छति साम्प्रतम् ॥ २ ॥

असङ्गसङ्गमनाथ साधूनां दुःखकारणम् । संसर्गजा गुणा दोषा भवन्ति सन्ततं नृणाम्  
चित्रलेखा स्वयं दूता समानीय परं वरम् । रणशूरं महावीरं नृपेन्द्रञ्च महारथम् ॥ ४ ॥

युधानं व्याधिहीनञ्च कन्दर्पादपि सुन्दरम् ।

सम्भोगं कास्यामास युवुधे न दिषानिशम् ॥ ५ ॥

साम्प्रतं तव कन्यास्याप्युपा गर्भवतो सती । कुलजा कुलयोश्चैव तत्ताङ्गारस्वरूपिणी  
दौहित्रो वापि दौहित्री बभूव साम्प्रतं तव ।

कन्यां पश्य महाप्रौढां नगरीं नागरान्विताम् ॥ ७ ॥

नखचिक्षतसर्वाङ्गीं वराधीनाञ्च चञ्चलाम् । पुंसश्च सङ्गिनीं शम्भुद्रहस्ये रतिसङ्गिनीम् ।  
सस्मितां सकटाक्षञ्च चञ्चलेक्षणवीक्षिताम् । एवं श्रुत्वा लज्जितश्च वाणस्तत्र चुकोपह

युद्धाय च मतिं चक्रे धारितः शम्भुना भृशम् ।

धारितञ्च गणेशेन स्कन्देन शिवया तथा ॥ १० ॥

भैरव्या भद्रकाल्या च योगिनीमिश्र सन्ततम् । अष्टभिर्भैरवैश्चैव रुद्रैरेकादशात्मकैः ।  
भूतैः स्याण्डैर्वेतालैर्ग्रेहाराक्षसैः । योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रैरुद्वैश्वण्डादिभिस्तथा ॥

च ग्रामदेव्या च यथा मात्रा हिताय च ।

वाणं मूढं पण्डितमान्जितम् ।



हितं सत्यं नोतिशास्त्रं परिणामसुखावहम् ॥ १३ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

। बाण प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनोम् । भुवो भागवतरणे भारते स्वयमीश्वरः ॥

निहत्य सर्वान् राजेन्द्रान् द्वारकायां विराजने ।

यस्य लोमसु विश्वानि तस्य वासोः सदीश्वरः ॥ १५ ॥

वासुदेव इति ख्यातः कथ्यते तेन कोविदेः ।

धातुर्विधाता भगवान् चक्रपाणिः स्वयं भुवि ॥ १६ ॥

विष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतैः परः । निर्गुणश्च निरीहश्च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ १७ ॥

परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा च देहिनः ।

यस्मिन् गते शवो जीवो संग्रामस्तेन संभवेत् ॥ १८ ॥

अपिदो महाकाले यथा मूढज्जेशस्तथा । तथात्मा च निराकारी देही च भ्रामहेतुता

तस्य पुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः । त्रैलोक्यमपि संहतं क्षणेन च क्षम स्वयम् ॥

सर्वे देवाश्च दैत्याश्च बलवन्तोमहारथाः । ते सर्वे ज्ञानिदृश्य फलां नार्हन्ति पौड्याम्

यपोरेव समं वित्तं यपोरेव समं बलम् । तयोर्षिवाहो मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥

बलिः पिता ते दैत्यानां सारभूतो महारथः । क्षणेन येन नीतश्च सुतलं स हरैः कलय ॥

सर्वे चांशकलाः पुंसः परिपूर्णात्मस्य च । घृन्दावनेश्वरस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥

पार्यत्युवाच ।

ध्यायते ध्याननिष्ठश्च हृत्पद्मे च दिवानिशम् ।

ब्रह्मा महेशः शेषश्च भगवन्तं सनातनम् ॥ २५ ॥

दिनेशश्च गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । ध्यायते परमात्मानं भगवन्तं सनातनम् ॥

सतकुमारः कपिलो नरो नारायणस्तथा । ध्यायते हृद्याम्भोजे भगवन्तं सनातनम् ॥

मनयश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा योगिनां धराः ।

ध्यानासाध्यश्च ध्यायन्ते भगवन्तं सनातनम् ॥ २८ ॥

इवापि सर्वबीजश्च सर्वेशश्च परात्परम् । ध्यायन्ते ज्ञानिनः सर्वे भगवन्तं सनातनम् ॥

गणेश उवाच ।

अभाग्यञ्च बलेक्षापि वैष्णवस्य महात्मनः । मूढोऽयमीदृशः पुत्रः प्रह्लादस्य च धीमतः  
स्कन्द उवाच ।

धये भ्रातर्न ध्रुता च हिरण्यकशिपोः कथा ।

हिरण्याक्षस्य च मधोः कैटभस्य महात्मनः ।

पूर्वजास्तेऽपि ते दैत्या महाबलपराक्रमाः ॥ ३१ ॥

कमेण विष्णुना नीता लीलया यमसादनम् । भगवान्यस्य संहर्ता स्वयं नारायणः  
तस्य को रक्षिता भ्रातर्निबर्तस्व शुभाय च । तेषाञ्च यत्नं ध्रुत्वा तानुवावासुरैः  
कोपरक्तास्यनयनो धनुष्पाणिर्यथान्तकः । शृणु मातः प्रवक्ष्यामि शृणु तात मते  
शृणु भ्रातर्गणपते शृणु भ्रातश्च कार्तिक । शुभाशुभं प्राक्तनेन प्राणिनां कर्मिणां वा  
दृष्टकमांतिरिक्तञ्च काप्यं केवाञ्च पतेते । नाप्राप्तकाले घ्नियते विद्वः शरशतैरपि ।

तुणाप्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ।

यस्माच्च यस्य निर्वाणं विधात्रा लिखितं पुरा ॥ ३७ ॥

तद्रेष नित्यं सरयञ्च निषेकः केन पार्यते ।

संप्राप्ते कातरो यो हि निष्फलं तस्य जीपनम् ॥ ३८ ॥

जयीं यशश्च लभते मृतः स्वर्गञ्च गच्छति । प्रविश्य कन्यां गृह्णाति नगरं शिवरतिः  
पार्यत्या च गणेशेन युद्धेन बलिना तथा ।

को वा गृह्णाति कन्याञ्च कस्य पादुद्वीधितस्य च ॥ ४० ॥

सगर्भा तव कन्येति सभावां रक्षको वदेत् । इति मे वदन्तुल्यञ्च धृतिकोटं परं वक्तुं  
भतोऽनिरुद्धं हृत्वा च घातयिष्यामि कन्यकाम् ।

अन्यथा ज्वलद्ग्रीं च धक्ष्यामि च कलेषाम् ॥ ४२ ॥

कोटयुवाच ।

शृणु वरस प्रवक्ष्यामि माताहं तेऽपि धर्मतः । दुरन्तेनापि पुत्रेण पित्रोक्तुःश्वं वदे परी  
कन्या परगृहीता साप्यन्यस्मै दातुमक्षमा ।

धीहृष्णस्यापि पौत्राय प्रद्युम्नस्य सुताय च ॥ ४४ ॥

अनिरुद्धाय महते स्वेच्छया देहि कन्यकाम् । पूतोऽसि भारतेवर्षे सप्तभिः पितृभिः सह  
यौतुकं देहि सर्वस्वं यशसे महते भुवि । अन्यथा रणमध्ये च त्वां हनिष्यति माधवः  
सुदर्शनेन चक्रेण को वा त्वां रक्षितुं क्षमः । कीटरीवचनं ध्रुत्वा चुकोप दैत्यपुङ्गवः ॥  
प्रययौ रथमाख्या यत्र पौत्रो हरेर्मुने । स्कन्दः सेनापतिर्भूत्वा प्रययौ शङ्कराज्ञया ॥४८॥

बाणस्वस्त्ययनं चक्रे राणेशश्च शिवः स्वयम् ।

बाणं शुभाशिर्यं चक्रे पार्वती कीटरी तथा ॥ ४६ ॥

अष्टौ च भैरवाश्चैव रुद्राश्चैकादर्शव ते । सर्वे युद्धाय हन्तारो बभूवुः शस्त्रपाणयः ॥  
पतस्मिन्नन्तरे दूतोऽप्यनिरुद्धमुवाच ह । पार्वत्या प्रेरितश्चैव बाणपत्न्या च सत्वरम् ॥  
दूत उवाच ।

अनिरुद्धोत्तिष्ठ भद्रं पार्वतीवचनं शृणु । भव साक्षाहिको वरस कुर्व युद्धं बहिर्मेघ ॥५२॥

भीतोपा रुदती व्रस्ता सस्मार पार्वतीं सतीम् ।

रक्ष रक्ष महामाये मत्प्राणेश्वरमीप्सितम् ॥ ५३ ॥

अभयेऽप्यभयं देहि संग्रामे घोरदारुणे । त्वमेव जगतां माता स्नेहस्ते सर्वतः समः ॥  
अघानिरुद्धः सन्नाही शस्त्रपाणिर्बभूव ह । उपादत्तं रथं प्राप्य चकारारोहणं मुदा ॥  
बहिः सम्भूय शिविराहृद्दर्शं बाणमीश्वरः । साक्षाहिकं शस्त्रपाणिं रक्षास्यलोचनं परम्  
इहाऽनिरुद्धं बाणश्च तमुवाच वयान्वितः । घोरसंग्राममध्ये च विपोकं प्रज्वलन्निव ॥

बाण उवाच ।

अये घोर महादुष्ट नीतिशास्त्रविचर्जित । चन्द्रवंशकुलाङ्गार पुण्यक्षेत्रेऽयशास्कर ॥५८॥

पिता ते शंवरं हत्वा जग्राह तस्य कामिनोम् ।

ततो जातो भवानेष निरोधं स्वकुलक्षमम् ॥ ५६ ॥

पितामहो वासुदेवो मथुरायाञ्च क्षत्रियः । गोकुले वैश्यपुत्रश्च नाम्ना च नन्दनन्दनः ॥  
घृन्दाघने च गोपस्य नन्दस्य पशुरक्षकः । साक्षाज्जराश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः ॥

जघान पूतनां सद्यो नारीघाती ह्यधार्मिकः ।

आगत्य मधुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ॥ ६२ ॥

दुर्बलं नरकं हत्वा स्त्रीसमूहं मनोहरम् । जग्राह योनिलुब्धश्च स्वपुत्रमतिनिष्ठुरः ॥ ६३ ॥

भीष्मकं मानवं जित्वा तत्पुत्रश्चापि दुर्बलम् ।

जग्राह कन्यकां तस्य देवयोग्याश्च रुक्मिणीम् ॥ ६४ ॥

सत्राजितः सूर्यभृत्यो देवात् प्राप्य मणीश्वरम् ।

घातयित्वा ह्युपायेन जग्राह मणिकन्यकाम् ॥ ६५ ॥

कुरुपाण्डवयुद्धञ्च कारयित्वा च दारुणम् । युधिष्ठिरस्य यत्ने च शिशुपालं जघान सः

दन्तयक्रञ्च शाल्यञ्च जरासन्धञ्च दारुणः । सञ्जहार भुवो भूपसमूहमतिदारुणम् ॥ ६७ ॥

उपायान्नरकं हत्वा सर्वस्यं तञ्जहार सः । दुर्बलो राजर्भीतश्च समुद्रं शरणं गतः ॥ ६८ ॥

जित्वा च भ्रातरं शक्रं भार्याया वचनेन च । जग्राह पारिजातञ्च पुष्यञ्च स्वर्गदुर्लभम्

कंसं निहत्यार्धमिष्टो भ्रातरं मातुरेव च । जग्राह तस्य सर्वस्वं परं किं कथयामि ते ॥

जित्वा च भद्रकं युद्धे जग्राह तस्य कन्यकाम् ।

तत्पितुर्भगिनी कुन्ती चतुर्णां कामिनी भुवि ॥ ७१ ॥

शौपदीञ्चात्पदी च पञ्चानां कामिनी तथा । गोष्ठीने योनिलुब्धश्च शश्वत् परमलभ्यः

तज्ज्येष्ठो धलदेवश्च शश्वत् पितृति चारुणीम् ।

यमुनां स्यात्पत्नीञ्च करोत्याह्वानमीप्सितम् ॥ ७३ ॥

जग्राह भगिनीं तस्य कान्त्यैः शक्रनन्दनः । सुभद्रां मातुलमुतां सन्नियोध कुलप्रभम्

पाणस्य यचनं ध्रुवा चुकोप कामनन्दनः । उवाच परमार्थञ्च योरयं प्रत्युत्तरं मुने ॥

भनिरुद्ध उवाच ।

पिता मे कामदेवश्च ब्रह्मपुत्रः पुरा शुचिः । यस्यास्त्रेण पशीभूतं त्रैलोक्यं सततं श्लु ॥

शेषकोपानन्तेनैव मस्मीभूतः स्वकर्मतः । कृष्णस्य पुत्रोऽप्यधुना सर्वेषां परमात्मनः ॥

पतिव्रता रतां माता पतिशोकंन साम्प्रतम् ।

शंकरस्य गृहे तस्यो हता तेन यत्नेन च ॥ ७८ ॥

उवाच मायापतीं दृष्ट्वा मायया शयनेन च । रतीं स्वधर्मं संरक्ष्य धर्मसाक्षी च तनुपते

निदित्यशंवरं शत्रुं गृहीत्वा स्वप्रियांसतोम् । आजगाम द्वारकाञ्च चन्द्रसूर्याच्च साक्षिणीं  
पितामहं वासुदेवं त्वं किं जानासि मुदवत् ।

यञ्च सन्तो न जानन्ति वेदाश्चत्वार एव च ॥ ८१ ॥

वासुः सर्वनिवासस्य विश्वानि यस्य लोमसु । तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतिस्मृतः  
शङ्करं पृच्छ साक्षाच्च यस्य भृत्योऽधुना भवान् ।

कृष्णभृत्यस्य च बलेः पुत्रोऽसि किङ्करात्मकः ॥ ८३ ॥

ले वैश्यपुत्र त्वं ब्रूहि त्वं धानदुर्बल । भोजनं वेदविहितं शश्वत् क्षत्रियवैश्ययोः  
ः प्रजापतिः ध्रेष्ठो धरा तस्य प्रिया सती । पुत्रञ्च तपसा लेभे परमात्मानमीश्वरम्  
तेन्द्रोवैश्यराज्ञो यशोदा सा धरासती । बृषभानुसुताराधा सुदान्तःशापकारणात्  
त्कोटिञ्च गोपीनां गृहीत्वामर्चुराज्ञवा । पुण्यञ्च भारतं क्षेत्रं गोलोकादाजगामसा  
ताभिः साधं स रमे च स्वपत्नीभिर्मुदान्वितः ।

पार्ष्णि जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥ ८८ ॥

कोटिञ्च गोलोकादाजगाम मुदान्वितः । तेजसा हरितुल्यास्ते पार्षदप्रधरा हरेः ॥

गोरक्षणं हरेरेव गोपवेशस्य चात्मनः । गोपानां शिशुरक्षार्थं मायेशस्यापि मायया ॥  
पूतना बलिकन्या च भगिनी च तवामुर । दृष्ट्वा च वामनं बन्ध्या चकार पुत्रमानसम्  
एवंभूतो यदि मम पुत्रो भवति सामप्रतम् । स्नानं ददामि ततयं कृत्वा यक्षसि सुन्दरम्  
तस्याः पूर्णं मानसञ्च चकारभगवान्प्रभुः । स्तनन्दत्वा च गोलोकं ययी सा रत्नयानतः  
कुब्जा सा भगिनी पूर्वं राघवस्य दुरात्मनः । श्रीरामञ्चकमे कामान्नाम्ना शूर्पणखासती  
नासां चिच्छेद तस्याश्च लक्ष्मणो धार्मिकेश्वरः ।

तपसा च परं लेभे ब्रह्मणः प्रियमीश्वरम् ॥ ९५ ॥

तेन पुण्येन तं लब्ध्वा गोलोकं सा जगाम ह ।

गोपी बभूव गोलोके कृष्णस्यालिङ्गनेन च ॥ ९६ ॥

नरको हरिपथश्च स्वपूर्वप्राक्तनेन च । पार्ष्णि जग्राह कन्यानां साक्षिणीं शशिभास्करी  
भीष्मकन्या महालक्ष्मीः श्रीकृष्णस्य प्रिया सती । . . .

पैकुण्डावागता साध्वी प्रह्लापोऽनुमतेन च ॥ १८

सत्राजितस्य कन्या सा सत्यमामा पशुन्धरा ।

द्वी कृष्णाय राजा स तौ मणि र्यातुनेन च ॥ १९ ॥

भुयो भागवतरणहेतुनागमनं हरेः । संजहार भुयो भारं कृष्णपण्डवगुदकः ॥ १०० ॥

शिगुपालो दन्तपक्रो जयो विजय पय च । द्वारिणो द्वारि पद्मे च पैकुण्डे श्रीहरेरपि

कुमारशापात् पतिर्तो प्राप्य जन्मत्रयं ध्रुवम् । हिरण्यकशिपुधैव तथैव पूर्वपूरकः ॥

तस्य घ्राता हिरण्याक्षस्नेनेव पशुनो जितः ।

हरिर्नृसिंहरूपेण तं जघानापलांलया ॥ १०३ ॥

शूकरेण हतोऽन्यथ पूर्यजन्मकथां शृणु । द्वितीये जन्मनि पुरा राघवः कुम्भकण्ठकः ॥

धीरामेण हतो तौ द्वौ शेषजन्म कलौ तयोः । श्रीकृष्णेन हतो तौ द्वौ धर्मपुत्राभ्यां तथा

जरासन्धश्चशाल्यश्च दुरात्मा कंस पय च । प्राकजात्तस्यकथ्यास्त्रे भुवो भारजिर्द्वार्या

मांधातुः सुतमध्ये च यवनधापि प्राकजात् ।

लक्ष्मोश्चरस्य कृष्णस्य धनेन किं प्रयोजनम् ॥ १०७ ॥

प्रतिद्वया च सत्यायाः पुण्यकथतकारणात् । पारिजातंसमानाय चकार स्वात्मनोत्रत्न

स्वयंजाम्यवती देवी दुर्गांशा भद्रकात्मजा । पाणि जप्राह तस्याश्च तपसा भारते इति

कुन्त्याश्च क्षेत्रजाः पुत्राः केवलं भर्तुराज्ञया ।

कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम् ॥ ११० ॥

सुधिष्ठिरो धर्मपुत्रो भीमश्च पवनात्मजः । महेन्द्रपुत्रो धर्मिष्ठः फाल्गुनो विजयी भुवि

यस्मै पाशुपतं शम्भुः प्रददौ च स्वयं पुरा ।

अश्वमेधं गवालम्बं सन्न्यासं पलपैतृकम् ॥ ११२ ॥

द्वेषेण सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विचर्जयेत् । द्रौपद्याः पञ्च भर्तारो शाङ्करेण धरेण च ॥

बलदेवः पुष्यमधु पूतं पिबति नित्यशः । चकार यमुनाह्वानं स्नानार्थं धार्मिकः शुचिः ॥

सुभद्राञ्च ददौ कृष्णः फाल्गुनाय महात्मने ।

मातुलानाञ्च दाक्षिणात्यः परिग्रहात् ॥ ११५ ॥

देशेभ्यन्वेषु दोषोऽयमित्याह कमलोद्भवः ॥ ११६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

बाणानिरुद्धसंवादे षडशधिकशततमोऽध्यायः ।

## षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

### बाणानिरुद्धसंवादवर्णनम् ।

बाण उवाच ।

अनिरुद्ध बुधोऽसि त्वं त्वयोक्तं सत्यमेष च । शम्भुना चैवमुक्तञ्च सर्वबुद्धं स्वचेतसा ॥

त्वयोक्तं शङ्करवचत् पञ्चानां स्वाग्निनां प्रिया ।

द्रौपदी च महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

शंपरेण हता पूर्वं तव माता कथं रती । देवैरपि कथं वृत्ता देवास्तेन जिताः कथम् ॥

अनिरुद्ध उवाच ।

एकदा रघुनाथश्च सीतया लक्ष्मणेन च । स्नातः सरसि तत्रस्थो रम्ये पञ्चवटीतटे ॥४॥

उवाच सीतां हेमन्ते जलं मुस्वानु निर्मलम् ।

तथाग्रं ध्यञ्जनं रम्यं सर्वं वस्तु सुशीतलम् ॥ ५ ॥

पलायचयनञ्चो सीतायै प्रददौ मुदा । ततो ददौ लक्ष्मणाय पद्माद्भुङ्क्ते स्वर्यं प्रभुः ॥

लक्ष्मणस्तदु गृहीत्या च नैव भुङ्क्ते फलं जलम् ।

मेघनादपधार्थञ्च सीतोद्धारणकारणात् ॥ ७ ॥

निद्रां न याति नो भुङ्क्ते पर्याजान् चतुर्दश ।

य एवं पुरुषो योगी तदुपध्यो रावणात्मजः ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामं द्रष्टुं कमललोचनम् । पङ्क्तिस्तत्र समायातो द्विजकृपां हृगानिधिः ॥

अधिष्यत् कथयामास श्रुतिकौटपरं वचः ॥ ९ ॥

घह्निहवाच ।

शृणु राम महाभाग सीतासङ्गोपनं कुरु । सप्ताहाभ्यन्तरे चैव रावणो, दुष्टराक्षसः ।

दुर्निवार्यः प्राक्तनेन जानकीञ्च हरिष्यति ॥ १० ॥

विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन धार्यते ।

देवैश्चतुर्भिः कथितं न च देवात् परं परम् ॥ ११ ॥

श्रीराम उवाच ।

सीतां गृहीत्वा त्वं गच्छ छायात्रैव तु तिष्ठतु । कलत्रवर्जनं कर्म सर्वेषाञ्च जुगुप्सितम्

सीतां गृहीत्वा प्रययौ रुदन्तीञ्च हुताशनः । सीतया सद्रुशीछायायातस्थौ रामसन्निधौ

सा च छाया हुता पूर्वं रावणेनाघलीलया । समुद्धार तां रामो निहत्य तं सवान्धवम्

घह्नी परीक्षाकाले च छाया घह्नी विवेश या ।

अग्निश्छायाञ्च संरक्ष्य ददौ रामाय जानकीम् ॥ १५ ॥

रामस्ताञ्च गृहीत्वा च प्रययौ स्वाधमं मुदा । छाया तस्थौ घह्निपार्श्वे हृदयेन विदूयता

सा च छाया तपश्चक्रे नारायणसरोधरे । तपश्चकार दिव्यञ्च शतवर्षञ्च शूलिनः ॥ १७ ॥

वरं वृणुष्य भद्रे त्वमुवाच शङ्करश्च ताम् । उवाच सा शिवं ध्यया भर्तुं दुःखेन दुःखित

पतिं देहि पञ्चधा सा वरं धमे त्रिलोचनम् । सर्वसम्पत्प्रदस्तुष्टस्तस्यै शर्वो वरं वरं

श्रीमहावैष उवाच ।

साध्वि त्वं पञ्चधा ब्रूहि पतिं देहीति व्याकुला ।

पञ्चेन्द्राश्च हरेरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव ॥ २० ॥

ते च सर्वे च पञ्चेन्द्राभ्याधुना पञ्च पाण्डवाः ।

सा च छाया द्रौपदी च यज्ञकुण्डसमुद्रया ॥ २१ ॥

एते युगे वेदपती प्रेतायां जनकात्मजा । द्वापरे द्रौपदी छाया तेन कृष्णा त्रिहायणी ।

वैष्णवी कृष्णभक्ता च तेन कृष्णा प्रकीर्तिता । स्वर्गलक्ष्मीमहेन्द्राणां साव्यपश्चाद्भविष्यति

राजा द्दौ फाल्गुनाय कन्यायाश्च स्वयंघरे ।

पञ्चञ्च मातरं धीरो यस्तु प्रातं मयाधुना ॥ २४ ॥



तमुवाच स्वयं माता गृहाण भ्रातृभिः सह ।

शम्भोर्वरेण पूर्वञ्च परत्र मातुराह्वया ॥ २५ ॥

श्रीपद्याः स्वामिदस्तेन हेतुना पञ्च पाण्डयाः ।

चतुर्दशानामिन्द्राणां पञ्चैन्द्राः पञ्च पाण्डयाः ॥ २६ ॥

शङ्करेणामिसंशप्ता सा मात्रा भर्त्सितेन च । भर्ता ते भस्मसाद्भूतो हरकोपानलेन च  
हे रतित्वं महाशप्ता द्रैत्यप्रस्ता भवाधुना । विजित्यदेवान् सेन्द्रांश्च शंवरस्त्वां हरिष्यति  
पुनरुक्तं धरं प्रादात्सतोत्वं ते न यास्पति । छायां दत्त्वा तिष्ठ गेहे यावज्जीवति ते पतिः  
इति ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् । देवानां गुप्तचरितं शृणु दैत्येन्द्र साम्प्रतम् ॥  
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुभद्रश्च महाबलः । कुम्भाण्डभ्राता बलवान् वाणसेनापतीश्वरः ॥  
निर्मतस्यै वाणसमरे शस्त्रपाणिमहारथः । श्रीकृष्णपीत्रं शूलञ्च चिक्षेप प्रलयान्निवत् ॥  
अर्धचन्द्रेण तत्कूलं चिच्छेद् कामपुत्रकः । शक्तिं चिक्षेप भद्रश्च शतसूर्यसमप्रभाम् ॥  
वैष्णवास्त्रेण चिच्छेद् तां शक्तिं कामपुत्रकः । नारायणास्त्रं चिक्षेप सुभद्रो रणमूर्धनि  
प्रणम्य शेते निर्भोतो मदनस्य सुतो बली । ऊर्ध्वमखञ्च यन्नाम शतसूर्यसमप्रभम् ॥  
प्रलीनमस्त्रमाकाशे विश्वसंहारकारणम् । अस्त्रे गते सोऽनिरुद्धो गृहीत्वाच महानसिम्  
प्रथमञ्च भद्ररथं जघानाश्वंश्च सारथिम् । जघान तं सुभद्रञ्च लीलया रणमूर्धनि ॥ ३७ ॥  
इते सुभद्रे वाणश्च महाबलपराक्रमः । वाणानां शतकञ्चापि चिक्षेप रणमूर्धनि ॥ ३८ ॥

कामात्मजोऽग्निबाणेन वाणौघं प्रदाह सः ।

वाणश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सृष्टिसंहारकारणम् ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा कामात्मजः शीघ्रं सधीजं मन्त्रपूर्वकम् ।

ब्रह्मास्त्रेणैव सहसा संजहारावलीलया ॥ ४० ॥

वाणः पाशुपतं क्षेमं समारंभे च कोपतः । निषिद्धश्च गणेशेन स्कन्देन शम्भुना तथा ॥  
तद् दृष्ट्वा सोऽनिरुद्धस्तं धनुर्बाणौघसंयुतम् । मुमोच जम्भणं युद्धे शीघ्रं तश्च महारथम्  
जहौ बभूव वाणश्च निश्चेष्टो रणमूर्धनि । पुनश्चिक्षेप निद्रास्त्रं निद्रितं तं चकार सः ॥

वाणं तं निद्रितं दृष्ट्वा गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् ।

सप्तदशाभिरुदात्तमोऽभ्यायः

शिवलम्बोदरगं गदरुग्निम् ।

भोगरापण उवाच ।

गणेशस्तु शिवस्थानं गत्वा कथा महेश्वरम् ।

सर्वं विज्ञापयामास कथ्येण च तृणम् तृणम् ॥ १ ॥

बाणानिह्ययोपुंश्च सुभद्रनिधनं तथा । स्कन्दानिह्ययोपुंश्चमनिह्यस्य विक्रमम् ॥  
गणेशपवनं धृत्वा महस्य भगवान् भयः । उवाच शुक्यया पाचा मुगुतं वेदसम्मत

धामहादेश उवाच ।

गणेश्वर महाभाग ध्रुवतां वचनं मम । हितं तप्यं नीतिसारं परिणामसुखापहम् ॥४

एकीन्द्रो गच्छः साक्षाभिर्वाणञ्च चकार सः । मर्णान्द्रसारनिर्माणं प्राकारान्नंलिहं पुर  
 यमञ्च लक्षं महानां बलदेवञ्च लाङ्गलैः । उद्यानानां त्रिलक्षञ्च प्राकारोत्पाटनं प्रभोः  
 प्रविवेश महाद्वारं द्वारपालान्निहत्य च । एषं ध्रुत्वा महादेशश्चोपाच सुरसंसादि  
 शर्यती भद्रकालीञ्च स्कन्दं गणपतिं तथा । अष्टौ च भैरवांश्चैव रद्रांश्च घोरभद्रक  
 महाकालं नन्दिनञ्च सर्वान् सेनापतीन्प्रय ॥ १६ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

गोलोकनाथो भगवांश्चक्रपाणिः समागतः ।

विश्यांघं भङ्क्तुर्माशो यः क्षणेन नगरञ्च किम् ॥ २० ॥

परापायैश्च सर्वे ते वाणं रक्षन्तु यततः । वाणो गच्छतु संप्रामं स्मृत्या लम्बोदरं परम्  
 णस्य दक्षिणे स्कन्दः पुरतश्च गणेश्वरः । वामे च भैरवा रद्राः स्वयं नन्दी महात्माः  
 महाकालो घोरभद्रो ये चान्ये सैनिकास्तथा । ऊर्ध्वे दुर्गा भद्रकाली त्प्रचण्डाचकोटरी  
 वाणं रक्ष महामागे दुर्गे दुर्गतिनाशिनि । कृष्णस्य भवती शक्तिस्तेन नागयणी स्मृता  
 रेणुमाये जगन्मातः सर्वमङ्गलमंगले । अव्यर्थाञ्चक्रसारञ्च रक्ष वाणं सुदर्शनाम् ॥  
 वाणप्रियो मे सर्वभ्यो गणेशात् कारिकादपि ।

वाणमूर्ध्नि करं धेहि पादाब्जरजसा सह ॥ २६ ॥

शिवस्य पचनं ध्रुत्वा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । प्रहस्योपाच मधुरं वाथाप्यं समयोनितम्  
 पार्वत्युपाच ।

विश्वाम्नादिकं यद्यन्मुक्तामणिस्वर्हारकम् । सर्वस्वं कन्दकामूर्तं त्वभूयणभूषिताम् ॥  
 प्रभूयणभूषाद्यमनिहृदं परं परम् । पुरस्त्वस्य देहि वाण कृष्णाय परमात्मने ॥ २६ ॥

राज्यं कुरुष्व निर्विघ्नं किं युद्धमात्मता सह ।

यस्मिन् गते गताः प्राणाः स जीवश्चेन्द्रियैः सह ॥ ३० ॥

प्रज्ञा स्वयं वानात्मकः शिवः ।

पतति देहद्वयं शिवं त्यक्त्वा शयो भवेत् ॥ ३१ ॥

या तिष्ठति संप्रामे चक्रस्य तत्रसा शिव ।

## अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

बाणागुग्गुद्रवर्णनम् ।

धोनागवत् उवाच ।

गणेशं योऽप्यित्या तु राम्भुज्यन्तरं गयी । तत्र सिंहासने स्थे दुर्गा दुर्गास्त्रिादिनी ॥  
मैरथी भद्रकाली च उपमण्डा च कांटी । ताः समुत्थाय सहसा प्रणमुज्जगदंभ्र  
सप्रायणो गणेशश्च कारिणिक्यश्च पापंयान् । बाणश्च पाग्नद्रश्च स्वयं नन्दी मुत्तन्

महाकालो महामन्त्री त्रिपाथी भैरवास्तथा ।

सिद्धेन्द्राभापि योगीन्द्रा रुद्राद्वैकादशैव ते ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र मणिभद्रः समाचर्यो ।

सिद्धद्वारे स्वयं द्वारी तमोऽयमुवाच सः ॥ ५ ॥

मणिभद्र उवाच ।

असंख्यानं च सैन्यानि यादयानां महेश्वर । बलदेवश्च प्रद्युम्नःसाम्यश्च सात्यकिस्  
राजा महोदरसेनश्च भीमश्च स्वयमर्जुनः । अक्रूरश्चोद्दयश्चैव जयन्तः शक्रन्द  
रजेन्द्रसारनिर्माणस्थेन्द्रे सुमनोहरे । विधेर्विधाता भगवान् धोहृष्यः परमेश्वरः ।  
सप्तभिः पापं देवैर्गोपैः सेवितः श्वेतचामरेः । कन्दर्पं कोटिलीलामो वनमालाविभूषित  
वधार चक्रमनुलं कोटिसूर्पसमप्रभम् । गदां कामोदकीं शूलमव्ययं सञ्चिधाय च ॥  
रथमध्ये महाशङ्खं चिश्चसंहारकारणम् । महारथानां लक्षैश्च रथानाञ्च त्रिकोटिभिः ॥

त्रिकोटिभिर्गजेन्द्राणां महानाञ्च त्रिकोटिभिः ।

शतकोटिभिरश्वानां चर्मिणां तच्चतुर्गुणैः ॥ १२ ॥

इग्निनां तत्सप्तगुणैर्द्विगुणैस्तदनुपमताम् । पभिः सार्धञ्च त्वरितमाययौ शोभितं पु  
लङ्कां दाशरथिर्यथा । सहस्रतालमानाञ्च ज्वलद्ग्निसिखोऽम्बला  
च परिखायुक्तां दुर्लङ्घ्यामसुरैः सुरैः । स्वर्गो गङ्गाम्बुपारीनां समूहैर्षुष्टिभिस्त्व

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ] \* शिवपार्यंतीसंवादर्घर्णनम् \*

११३३

पत्नीन्द्रो गरुडः साक्षाभिर्वाणञ्च चकार सः । मणीन्द्रसारनिर्माणं प्राकाराभ्रंलिहं पुरम्  
बभ्रु लक्षं महानां बलदेधश्च लाङ्गलैः । उद्यानानां त्रिलक्षञ्च प्राकारोत्पाटनं प्रभोः ॥  
प्रविवेश महाद्वारं द्वारपालान्निहत्य च । एवं ध्रुत्वा महादेवश्चोवाच सुरसंसदि ॥  
पार्वती भद्रकालीञ्च स्कन्दं गणपतिं तथा । अष्टौ च भैरवांश्चैव रुद्रांश्च धीरभद्रकम्

महाकालं नन्दिनञ्च सर्वान् सेनापतीन्च ॥ १६ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

गोलोकनाथो भगवांश्चक्रपाणिः समागतः ।

विश्वार्घ्यं भङ्क्तुमीशो यः क्षणेन नगरञ्च किम् ॥ २० ॥

वापायैश्च सर्वे ते वाणं रक्षन्तु यत्नतः । वाणो गच्छतु संग्रामं स्मृत्वा लम्बोदरं पुरम्  
णस्य दक्षिणे स्कन्दः पुरतश्च गणेश्वरः । वामे च भैरवा रुद्राः स्वयं नन्दी महारथः  
कालो धीरभद्रो ये चान्ये सैनिकास्तथा । ऊर्ध्वे दुर्गा भद्रकाली ह्युग्रचण्डाचकोटरी  
णं रक्ष महाभागे दुर्गे दुर्गतिनाशिनि । कृष्णस्य भवती शक्तिस्तेन नारायणी स्मृता  
विष्णुमाये जगन्मातः सर्वमङ्गलमंगले । अव्यर्थाच्चक्रसाराच्च रक्ष वाणं सुदर्शनात् ॥  
वाणप्रियो मे सर्वेभ्यो गणेशात् कार्तिकादपि ।

वाणमूर्ध्नि करं धेहि पादाब्जरजसा सह ॥ २६ ॥

शिवस्य षवर्नं ध्रुत्वा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । प्रहस्योवाच मधुरं याथार्थ्यं समयोचितम्  
पार्वत्युवाच ।

मणिरत्नादिकं यद्यन्मुक्तामाणिक्यहीरकम् । सर्वस्य कन्यकामूयां रत्नभूषणभूषिताम् ॥  
रत्नभूषणभूषाढ्यमनिरुद्धं परं धरम् । पुरस्कृत्य देहि वाण कृष्णाय परमात्मने ॥ २६ ॥

राज्यं कुरुष्व निर्विघ्नं किं युद्धमात्मना सह ।

यस्मिन् गते गताः प्राणाः स जीवश्चेन्द्रियैः सह ॥ ३० ॥

शक्तिश्चाहं मनो ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकः शिवः ।

सद्यः पतति देहश्च शिवं त्यक्त्वा शपो भवेत् ॥ ३१ ॥

को वा तिष्ठति संग्रामे चक्रस्य तेजसा शिव ।



वाणा ददातु कन्यां तां स्वर्णभूषणभूषिताम् ।

सामञ्जस्यं यशस्यञ्च शुभदं सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥

न ददाति यदावाणो हिरण्यकशिपोःप्रजाः । युद्धे पराङ्मुखो भीतो भगवत्ययशस्करः  
वाणो गच्छतु सप्राही रणशास्त्रविशारदः । पश्चान्चागमनं कुर्मो वयं साध्नाहिकाःशिवे  
उवाचवाणं तां दातुं स च न स्वीचकार ह । दुर्गा तं बोधयामास न बुबोध च सद्रवः  
पतस्मिन्नन्तरे ताञ्च सभामध्ये मनोरमाम् । आजगाम महाधर्मो बलिश्च वैष्णवाग्रणीः  
रथं रत्नेन्द्रनिर्माणं समारूढ्य महावलः । प्रततैः सप्तभिर्दैत्यैः सेवितः श्वेतचामरैः ॥ १० ॥  
दैत्येन्द्राणां सप्तलक्षैरावृत्तः परमास्त्रवित् । अपरूढ्य रथात्तूर्णं गणेशञ्च शिवां शिवम् ॥  
प्रणम्य कार्तिकेयश्च स उवाच च संसदि । उतस्थुरारात्तं दृष्ट्वा ते सर्वे शङ्करं घिना ॥

तमुवाच महादेवः सम्भाष्य प्रियभाषणम् ॥ ११ ॥

ध्रीमहादेव उवाच ।

भगवन्धनुरस्त्वञ्च प्रदाता सर्वं सम्पदाम् । अयं हि परमो लाभो वैष्णवां समागमः ॥  
तीर्थान्यपि च पूतानि वैष्णवस्पर्शमात्रतः । सर्वेषामाश्रमाणाञ्च पूजितो ब्राह्मणःशुचिः  
ततोऽधिकः पूजितोऽपि ब्राह्मणो यदि वैष्णवः ।

न हि पूतञ्च पश्यामि वैष्णवब्राह्मणात् परम् ॥ १४ ॥

स पूतः पचनादेव स पूतश्च हुताशनात् । तीर्थेभ्योऽपि च सर्वेभ्यो विभेति च ततःसुरः  
न हि पापानि तद्देहे वह्नों शुष्कतृणादिवत् ॥ १६ ॥

बलिस्त्वाच ।

कथं स्तोपि जगन्नाथ भृत्यस्तव महेश्वर । प्रदत्तं परमैश्वर्यं त्ययानाथ सुदुर्लभम् ॥  
अधुनास्थापितो दैवात्सर्गाधःसुतलेऽपि च । इन्द्रायदत्तमैश्वर्यं मत्तो भक्तात् सुरेश्वर  
त्वया वामनरूपेण सर्वरूपोऽसि सर्वतः । वाणं बोधयभद्रञ्च मम प्राणात्मजं परम् ॥  
आत्मनासह युद्धञ्च देवेष्वपिषिगर्हितम् । इत्युक्त्वा च शिवं नत्वा शिरसा प्रणनामतम्  
सामयेदोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साधुनेत्रोऽतिविह्वलः ॥  
ध्यायमानश्च नित्यं यो हृत्पद्मे सुमनोहरः । शुक्लेन दत्तं मन्त्रञ्च जप्त्या चैकादशाक्षरम्





बाणो ददातु कन्यां तां स्वर्णभूषणभूषिताम् ।

" ... सामञ्जस्यं यशस्यञ्च शुभदं सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥

न ददाति यदाबाणो हिरण्यकशिपोःप्रजाः । युद्धे पराङ्मुखो भीतो भगवत्ययशस्करः  
बाणो गच्छतु सन्नाहीरणशास्त्रविशारदः । पश्चाच्चागमनं कुर्मो धर्यं साक्षाहिकाःशिवे  
उवाचबाणं तां दातुं स च न स्वीचकार ह । दुर्गा तं बोधयामास न युबोध च सद्भवः  
पतस्मिन्नन्तरे ताञ्च सभामध्ये मनोरमाम् । आजगाम महाधर्मो बलिश्च वैष्णवाग्रणीः  
एवं रत्नेन्द्रनिर्माणं समारूढा महाबलः । प्रततैः सप्तभिर्देवैः सेवितः श्वेतचामरैः ॥ ६ ॥  
ऐत्येन्द्राणां ससलक्षैरावृतः परमास्त्रवित् । अवरूढा रथात्पूर्णां गणेशञ्च शिवां शिवम् ॥  
अगम्य कार्तिकेयश्च स उयास च संसदि । उतस्थुरारात्तं दृष्ट्वा ते सर्वे शङ्करं विना ॥  
तमुवाच महादेवः सम्भाष्य प्रियभाषणम् ॥ ११ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

गवंश्चतुरस्त्वञ्च प्रदाता सर्वं सम्पदाम् । अयं हि परमो लाभो वैष्णनां समागमः ॥  
ध्यान्यपि च पूतानि वैष्णवस्पर्शमात्रतः । सर्वेषामाश्रमाणाञ्च पूजितो ब्राह्मणःशुचिः  
ततोऽधिकः पूजितोऽपि ब्राह्मणो यदि वैष्णवः ।

न हि पूनञ्च पश्यामि वैष्णवब्राह्मणात् परम् ॥ १४ ॥

पूतः पवनादेव स पूतश्च हुताशनात् । तीर्थेभ्योऽपि च सर्वेभ्यो विभेति च ततःसुरः  
न हि पापानि तद्देहे षट्ठीं शुष्कवृणादिवत् ॥ १६ ॥

बलिरुवाच ।

कयं स्तोपि जगन्नाथ भृत्यस्तव महेश्वर । प्रदत्तं परमेश्वर्यं त्वयानाथ सुदुर्लभम् ॥  
अपुनास्थापितो देवात्सर्गाधःसुतलेऽपि च । इन्द्रायदत्तमेश्वर्यं मत्तो भक्तात् सुरेश्वर  
त्वया धामनरूपेण सर्वरूपोऽसि सर्वतः । बाणं बोधयमद्रञ्च मम प्राणात्मजं परम् ॥  
भास्मनासह युद्धञ्च देवेष्वपिबिगर्हितम् । इत्युक्त्वा च शिवं नत्या शिरसा प्रणनामतम्  
सामवेदोक्तस्तोत्रेण तुष्टाय परमेश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साधुनेत्रोऽतिविह्वलः ॥  
ध्यायमानश्च नित्यं यो हृत्पद्मे सुमनोहरः । शुक्लेण दत्तं मन्त्रञ्च जप्त्या चैकादशाक्षरम्

बलिस्थान् ।

भद्रित्या प्रार्थनेनेव मात्रा देव्या प्रतेन च । पुरा वामनरूपेण त्वयाहं घञ्जितः प्रमं  
सभ्यदृष्ट्या महालक्ष्मीर्दत्ता भक्त्याय भक्तितः ।

शक्ताय मत्तो भक्त्याय न्नात्रे पुण्यवने ध्रुवम् ॥ २४ ॥

अधुना मम पुत्रोऽयं याणः शङ्करकिङ्कुरः । आराध्य रक्षितः सोऽपि तेनेव भक्तकन्युना  
परिपुष्टश्च पार्यटया यथा मात्रा सुतमन्तथा । गृहीतयांश्च तत्कन्यां बलेन युवतो सर्वं  
समुद्यतश्च तं हन्तुं कार्त्तिकेनापि धारितः ।

भागतोऽसि पुनर्हन्तुं पात्रस्य दमने क्षमम् ॥ २७ ॥

सर्वात्मनश्च सर्वत्र समभावः धूर्तो धृतः । करोषि जगतो नाथ कथमेवं व्यतिक्रमन्  
त्वया च निहतो यो हि तस्य को रक्षिता भुवि ।

सुदर्शनस्य तेजो हि सूर्य्यकोटिनिभं परम् ॥ २६ ॥

केयां सुराणामस्त्रेण तदेवमनिवारितम् । यथा सुदर्शनञ्चैवमस्त्राणां प्रवरं वरम् ॥ ३० ॥  
तथा भवांश्च देवानां सर्वेषामीश्वरः परः । तथा भवांस्तथा कृष्णो विधातावेधसाम्नि

विष्णुः सत्यगुणाधारः शिवः सत्याश्रयस्तथा ।

स्वयं विधाता रजसः सृष्टिकर्ता पितामहः ॥ ३२ ॥

कालाग्निरुद्रो भगवान् विश्वसंहारकारकः । तमसश्चाश्रयः सोऽपि रुद्राणां प्रवरो महान्  
स एव शङ्करांशश्चाप्यन्ये रुद्राश्च तत्कलाः । भवांश्च निर्गुणस्तेषां प्रकृतेश्च परस्तथा ॥

सर्वेषां परमात्मा वै प्राणा विष्णुस्वरूपिणः ।

मानसञ्च स्वयं ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकः शिवः ॥ ३५ ॥

प्रवरा सर्वशक्तीनां बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी । स्वात्मनः प्रतिविम्बस्ते जीवः सर्वेषु देहिषु ॥  
जीवः स्वकर्मणां भोगी स्वयं साक्षी भवांस्तथा । सर्वयान्ति त्वयि गते नरदेवेयथानुगा

सत्यः पतति देहश्च शबोऽस्पृश्यस्त्वया विना ।

बुद्धाः सन्तो न जानन्ति घञ्जितास्तव मायया ॥ ३८ ॥

स्यामजन्त्येव ये सन्तो मायामेतांतरन्ति ते । त्रिगुणाप्रकृतिर्दुर्गा वैष्णवी च सनातनी

नारायणीशानी तद्य माया दुस्त्यया । त्वदंशाः प्रतिचिश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः  
सर्वेषामपि विश्वेषामाश्रयो यो महान् चिराद् ।

स शेते च जले योगाद्विश्वेशो गोकुले यथा ॥ ४१ ॥

एष वासुभंगयान् तस्य देवो भवान्परः । वासुदेव इति ख्यातः पुराचिद्विःप्रकीर्तितः  
तेषु कलया सूर्यस्त्वमेव कलया शशी । कलया च हुताप्राश्च कलया पवनः स्वयम्  
प्रा पदणश्चैव कुबेरश्च यमस्तथा । कलया त्वं महेंद्रश्च कलया धर्म एष च ॥ ४२ ॥  
तेषु कलया शेष ईशानो नैर्ऋतिस्तथा । मुनयो मनवश्चैव ब्रह्माश्च फलदायकाः ॥

कलाकलायाश्चांशेन सर्वे जीवाश्चरानराः ।

त्वं ब्रह्म परमं ज्योतिर्ध्यायन्ते योगिनस्तथा ॥ ४३ ॥

वाद्रिपन्ते भक्तास्ते ध्यायन्ते च तदन्तरे । नवीननोरदश्यामं पीतकीशेषवाससम् ॥  
दास्यप्रसन्नास्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम् । चन्द्रनोक्षितसर्वाङ्गं द्विभुजं मुखोदधरम् ॥ ४४ ॥  
रूपिच्छत्रूहञ्ज मालतीमाह्वयभूषितम् । शमूल्यरत्ननिर्माणकेतूरं बलयान्वितम् ॥ ४५ ॥  
गोकुण्डलसुमेत गण्डस्थलविराजितम् । रत्नसाराङ्गुलीयञ्च कण्ठमञ्जोररञ्जितम् ॥ ५० ॥  
टिकन्दर्पलीलामं शरत्कमललोचनम् । शरत्पूर्णेन्दुनिन्दास्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥

धीक्षितं सस्मित्वाभिश्च गोपीनां कोटिकोटिभिः ।

पयस्यैः पार्वदैर्गोपैः सेषितं श्वेतचामरैः ॥ ५२ ॥

गोपशालकपेशश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् । ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मेशशेषवन्दितम्  
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च योगीन्द्रैः प्रणतंस्तुतम् । वेदानिर्वचनीयञ्च परस्वेच्छामयं विभुम्  
सूयात्स्थूलतमंरूपं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमं परम् । सत्यं नित्यं प्रशस्तञ्च प्रकृतेः परमीश्वरम्  
निर्लिप्तञ्च निरीहञ्च भगवन्तं सनातनम् ।

एवं ध्यात्वा च ते पूताः क्षिण्णदूर्वाक्षताचलम् ॥ ५३ ॥

पादपञ्चिते पादपद्मे च दातुमुत्सुकाः । वेदाःस्तोतुमशक्तास्त्वामशक्ता सा सरस्वती  
शेषःस्तोतुमशक्ताश्च स्थयमभुः शम्भुरीश्वरम् । गणेशश्च विनेशश्च महेंद्रश्चन्द्र एष च ॥

स्तोतुं कालं धनेशश्च किमन्ये जडबुद्धयः ।

गुणातीतमनीहृञ्च किं स्तोमि निर्गुणं परम् ॥ ५१ ॥

अपण्डितोऽयमसुरो न सुरः क्षन्तुमर्हति । बलेस्तु पचनं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः ।  
परिपूर्णात्मः श्रोमान् भक्तञ्च भक्तवत्सलः ॥ ६० ॥

श्रीमगवानुवाच ।

मा भैर्धरस गृहं गच्छ सुतलं रक्षितं मया । मद्दरेण प्रसादेन त्वत्पुत्रोऽप्यज्जराय ॥  
दर्पहानि करिष्यामि तस्य मूर्धस्य दर्पिणः ।

प्रहादाय धरो दत्तो भक्ताय च तपस्विने ॥ ६२ ॥

ममावध्यध्व त्वद्वंशध्वेति प्रीतेन चेतसा । तव पुत्राय दास्यामि भ्रानं मृत्युत्रयं परम् ॥

त्वया कृतमित्रं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीप्सितम् । पुरा सनत्कुमाराय प्रदत्तं ब्रह्मणा तथा

सिद्धाश्रमे पुण्यतमे प्रशस्ते सूर्य्यपर्वणि । गौतमाय प्रदत्तञ्च गौर्ष्यां मन्दाकिर्नातटे ।

शङ्करेण च शिष्याय भक्ताय च दयालुना । ब्रह्मणे च मया दत्तं शिष्याय विरज्जालटे ।

भृगवे च पुरा दत्तं कुमारेण च धीमता । त्वञ्चदास्यसिवाणाय यावत्स्तोष्यत्यनेनमान्

इदं स्तोत्रं महापुण्यमुपदिश्य गुरोर्मुखात् । वृत्तस्य पूजितस्यापि वस्त्रभूषणचन्दनैः ।

सुस्नातो यः पठेन्नित्यं पूजाकाले च भक्तिः ।

फोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६६ ॥

विपदां खण्डनं स्तोत्रं कारणं सर्वसम्पदाम् ।

धारणं दुःखशोकानां भवाब्धिघोरतरणम् ॥ ७० ॥

खण्डनं गर्भवासानां जरामृत्युहरं परम् । बन्धनानाञ्च रोगाणां खण्डनं भक्तप्रण्डनम्

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । व्रताव्रतेषु सर्वेषु तपस्वी च तपःसु च ॥ ७४ ॥

स सत्यं सर्वदानानां फलञ्च लभते ध्रुवम् । लक्षधास्तोत्रपाठेन स्तोत्रसिद्धिर्मवेष्टयाम्

सर्वसिद्धिञ्च लभते सिद्धस्तोत्रो भवेद्दु यदि ।

इह लोके देवतुल्योऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥ ७४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

वाणयुद्धे बलिहृतश्रीकृष्णस्तोत्रं नामोत्तमविंशतितमोऽध्यायः ।

## विंशाधिकशततमोऽध्यायः

वाणासुरयुद्धवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ कृष्णश्च भगवानुद्धवेन वलेन च । दूतं प्रस्थापयामास विधाय मन्त्रिणं शुभम् ॥  
शियो गणपतिर्यत्र दुर्गा दुर्मतिनाशिनी । कार्तिकेयो भद्रकाली चोप्रचण्डा च कोटरी  
शागत्यनत्या दूतश्चगणेशश्च शिवंशिवाम् । मानवांश्चापि पूज्यांश्च समुवाचयथोचितम्  
दूत उवाच ।

वाणमाह्वयते कृष्णः संप्रामार्थं महेश्वर । कियानिरुद्धमूपाञ्च गृहीत्वा शरणं व्रज ॥४॥  
रणे निमन्त्रितो यो हि न याति भयकातरः ।  
परत्र निरकं याति सप्तभिः पितृभिः सह ॥ ५ ॥  
तस्य वचनं श्रुत्वा समामध्ये यथोचितम् । उवाच पार्वती देवी स्वयं शङ्करसन्निधौ  
पार्वत्युवाच ।

गच्छ वाण महाभाग गृहीत्वा यद् कन्यकाम् ।

सर्वस्वं यौतुकं दत्त्वा श्रीकृष्णं शरणं व्रज ॥ ७ ॥

सर्वेयामोक्षयं वीजं दातारं सर्वसम्पदाम् । परं परेण्यं शरणं कृपालुं भक्तवत्सलम् ॥  
पार्वतीवचनं श्रुत्वा तमूचुस्ते सुरेश्वराः । प्रशशांसुः सभामध्ये धन्यधन्येति सर्वदा ॥  
कोपाविष्टश्च वाणोऽयमुत्तस्थासहसाऽसुरः । सान्नाहिकोधनुष्पाणिःप्रणम्य शङ्करं वपी  
सर्वैर्निपिध्यमानश्च कम्पितो रत्नलोचनः ।

साल्नाहिकश्च दैत्यानां त्रिकोट्या च महाबलः ॥ ११ ॥

कुम्भाण्डःकुरकर्णश्च निकुम्भःकुम्भ एव च । सेनापतीश्वराश्चैते ययुः साप्राहिकास्तथा  
उग्रसभैरवश्चैव संहारभैरवस्तथा । अक्षिताङ्गो भैरवश्च रुद्रभैरव एव च ॥ १३ ॥  
महाभैरवसंज्ञश्च कालभैरव एव च । प्रचण्डभैरवश्चैव क्रोधभैरव एव च ॥ १४ ॥

प्रययुः शक्तिभिः सार्धं सर्वे सान्नाहिकाश्च तं ।

फालामिरुद्रो भगवान् रुद्रैः सान्नाहिको ययौ ॥ १५ ॥

उप्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डिका चण्डनायिका ।

चण्डेश्वरी च नामुण्डा चण्डा चण्डकपालिका ॥ १६ ॥

अष्टौ च नायिकाः सर्वाः प्रययुः स्वंपरान्विताः । कौटलीरनयानस्था शोणितप्रानदेवत

प्रययौ सा प्रकृष्टास्या मद्गर्भरधारिणी । चन्द्राणोषैष्णवी शान्ता ब्रह्मार्णवप्रवादिनि

कौमारी नारसिंही च पारादी विकटाकृतिः । माहेश्वरी महामाया भैरवी भोरूपिणी

अष्टौ च शक्तयः सर्वा रक्षसाः प्रययुर्नन्दा । रत्नेन्द्रसारयानस्थाः प्रययुर्भद्रकालिका ॥ २० ॥

रक्तवर्णा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा । शूलशक्तिगदाहस्ता स्वर्गन्वर्धधारिणी ॥ २१ ॥

प्रययौ शूलहस्तश्च वृषभस्थो महेश्वरः । स्कन्दश्च शिखियानस्यः शस्त्रपाणिर्धनुर्धरः

एवञ्च प्रययुः सर्वे गणेशं पार्वतीं चिना ॥ २२ ॥

पभिर्युक्तं महादेवं दृष्ट्वा च भद्रकालिकाम् ।

प्रचके चक्रपाणिश्च सम्भाषाञ्च यथोचिताम् ॥ २३ ॥

वाणःशङ्खध्वनिं कृत्वा प्रणम्यपार्वतींश्वाम् । धनुर्द्धधार सगुणं दिव्यास्त्रेणनियोजितम्

वाणं समुद्यतं दृष्ट्वा सात्यकिः परधीरहा ।

निपिध्यमानस्तेः सर्वैः सन्नाहो प्रययौ मुदा ॥ २५ ॥

वाणश्चिक्षेपद्विष्णवास्त्रमाञ्जलं नामनाम् । भव्यं प्रोप्समध्याह्नमार्तण्डाभंसुतीक्ष्णकम्

दृष्ट्वाऽस्त्रं सात्यकिः साक्षात् किञ्चिन्नम्रो यभूथ ह ।

किंवा न दग्धः प्रययौ नभोऽर्धं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

घर्हि चिक्षेप वाणञ्च सात्यकिर्वाहणेन च । प्रज्वलन्तं तालमानं निर्वाणञ्च चकारतः

चिक्षेप पावनं वाणःप्रचण्डघोरमुल्वणम् । विच्छेद्सात्यकिश्चैव पार्वतास्त्रेण लीलया

नारायणास्त्रं चिक्षेप वाणश्च रणभूर्धनि ।

सात्यकिर्दण्डवद् भूर्मा पपातार्जुनशिक्षया ॥ ३० ॥

प्रचिक्षेप वाणः शस्त्रचिदां वः । सात्यकिर्वैष्णवास्त्रेण प्रचिच्छेदापललाया

विशाधिकराततमोऽध्यायः ] \* यादवशैवयोर्युद्धवर्णनम् \*

११४१

ब्रह्मास्त्रञ्चापि विश्लेष बाणश्च रणमूर्धनि । क्षणचकार निर्वाणं ब्रह्मास्त्रेणच सात्यकिः  
नागास्त्रञ्चापि विश्लेष बाणो रणविशारदः । सात्यकिर्गुरुदेवैव सञ्जहार क्षणेन च ॥  
जप्राह शूलमव्यर्थं शङ्करस्य सुदारुणम् । तुष्टाव सात्यकिर्दुर्गो गले माल्यं बभूव ह ॥

जप्राह धनुषा बाणो बाणं पाशुपतं तथा ।

बाणं स बाणं जृम्भञ्च सात्यकिश्च चकार ह ॥ ३५ ॥

बाणं तं जृम्भितं दृष्ट्वा कार्तिकेयोमहाबलः । धर्धचन्द्रश्च विश्लेष कामश्चिच्छेदलीलया  
शंविश्लेष च स्कन्दः प्रातःसूर्यसमप्रभाम् । वैष्णवास्त्रेणकामश्च निर्वाणञ्च चकारसः  
रायणास्त्रं स्कन्दश्च प्राक्षिपच्च त्वरान्वितः । पपातदण्डवद्भूमौ प्रद्युम्नःरुष्णशिक्षया  
स्कन्दः शक्तिञ्च विश्लेष प्रलयान्निसमप्रभाम् ।

कामो नारायणास्त्रेण निर्वाणञ्च चकार ताम् ॥ ३६ ॥

नास्त्रञ्च प्रविश्लेष कार्तिको रणमूर्धनि । ब्रह्मास्त्रेणापि कामश्च निर्वाणञ्च चकार सः  
प्राह कार्तिकः कोपाद्दिव्यं पाशुपतं तथा । निद्रास्त्रेणापि मदतो निद्रितश्च चकार तम्  
तिर्कनिद्रितं दृष्ट्वा बाणञ्च जृम्भितं तथा । कोपात्कामश्च सरथं जप्राहभद्रकालिका  
हे कृत्वा च बाणञ्च स्कन्दश्च जगतां प्रसूः । रणस्थलाच्च प्रययौ यत्रैव पार्यतीसती

कार्तिकं बोधयामास बाणं सुस्थं चकार सा ।

सहसा सरथः कामो नासारन्ध्रेण धर्मेना ॥ ४४ ॥

वर्धिवंभूय सन्त्रस्तो प्रययौ च रणस्थलम् । दृष्ट्वा कामश्च सरथं जहसुर्याद्यास्तदा

सर्वे शैवाश्च तत्रस्थाः शुष्ककण्ठा भयाकुलाः ।

अथ बाणः पुनः क्रुद्धो रथमारुह्य कोपतः ॥ ४६ ॥

कार्तिकेयश्च भगवान् युद्धाय पुनरागतः । बाणः पञ्चशरांश्चैव विश्लेष रणमूर्धनि ॥  
धर्धचन्द्रेण विच्छेद बलदेवो महाबलः । रथं यमञ्च बाणस्य लाङ्गलेन च लाङ्गली ॥४८॥  
जघान सूतमश्यांश्च मुपलेनावलीलया । छेतुमुद्यमं कुर्वन्तं हालितश्च महाबलम् ॥४९॥  
कालान्निह्यो भगवान् धारयामास लीलया । रथं कालान्निह्यस्य यमञ्च लाङ्गली रया  
हलेन सूतमश्यांश्च जघान रणमूर्धनि । कालान्निह्यः कोपेन विश्लेष ज्वरमुत्थणम् ॥५१॥

शुभ्रुवांरवाः सर्वे उवराकान्ता हरि विना ।

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः ससर्ज वैष्णवं उवरम् ॥ ५२ ॥

तं किरितं ज्वरं हन्तुं माहेरो रणमूर्धनि । कनू उवरयोयंर्जं मुहूर्तमतिश्रावणम् ॥ ५३ ॥  
 वैष्णवश्चरनिष्कान्तो रणमूर्धनि पपात सः । परं कभूष निश्चेष्टन्पुष्टाय माधवं पुनः

ज्वर उपाय ।

प्राणान् १११ जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह । त्वमात्मा पुरुषः पूर्णः सर्वत्र समता तव

उवरस्य वननं धृत्या सप्रहार स्वकं ज्वरम् ।

माहेरपरो ज्वरो भीतो रणादेव हि निर्ययो ॥ ५६ ॥

बाणश्च पुनरागत्य बाणानाञ्च सहस्रकम् । विशेप मन्त्रपूतञ्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।

फाल्गुनः शरजालेन पारयामास तांतया । विशेप शक्तिबाणश्च श्रीपुष्पसूर्यसमप्रभम् ।

विच्छेद् सीतया ताञ्च सम्यसाद्यो महापतः । स जप्राह पाशुपतं शतसूर्यसमप्रभम् ।

भस्वर्धमतिघोरञ्च विश्वसंहारकारकम् । तद्गृह्णा चक्रपाणिश्च चक्रं विशेप दारुणम् ।

हस्तानाञ्च सहस्रञ्च स पाशुपतभुज्यपम् । विच्छेद् रणमध्ये च पपाताचलसिंहवत् ।

शस्त्रं पाशुपतस्योपे धर्मो पशुपतेः करम् । भव्यर्धं दारुणलोके प्रलयाग्नि शिखोपमम् ।

बाणसकससुहेन कभूष च महानरः । बाणः पपात निश्चेष्टो व्यथितो हतचेतनः ॥ ६३ ॥

तत्राजगाम भगवान् महादेवो जगद्गुरुः ।

होवागत्य मोहेन बाणं हृत्या स्वपक्षसि ॥ ६४ ॥

सिधाभुपतनेनेष संकभूष सरोवरम् । चेतनं कारयामास करुणासागरः प्रभुः ॥ ६५ ॥

बाधं पुरीतया प्रथमो यत्र देवो जनार्दनः । चक्रे पद्मार्चिते पादपद्मे बाणसमर्पणम् ।

सुहृत्सु सपतो नाथं शक्तीरं चन्द्रशेखरम् । पतिना च स्तुतं येन वेदोक्तेन च तेन च ।

देविभूतेषु ॥ ६६ ॥ दशौषाण्य धीमते । करपद्मं ववौ गात्रे तं चकाराजरागरम् ॥ ६७ ॥

च । परां कन्यां समानीय रत्नभूषणभूषिताम् ।

देवसंसदि । गजेन्द्राणां पञ्चलक्षमश्वानाञ्च चतुर्गुणम् ॥ ७० ॥

॥ ७१ ॥ सवर्षं कामधेनूनां वत्सयुक्तञ्च सर्वदम् ॥ ७१ ॥



माणिक्यानाञ्च मुक्तानां रत्नानां शतलक्षकम् ।  
 मणीन्द्राणां हीरकार्णां शतलक्षं मनोहरम् ॥ ७२ ॥  
 लभाजनपात्राणि सुवर्णनिर्मितानि च । सहस्राणि ददौ तस्मै भक्तिप्रदात्मकन्धरः ॥  
 घराणि सूक्ष्मवस्त्राणि वह्निरुद्धांशुकानि च ।  
 ददौ वाणञ्च सर्वाणि स्वभक्त्या शङ्कराक्षया ॥ ७३ ॥  
 ताम्बूलानाञ्च चूर्णानां पूर्णपात्राणि नारद ।  
 सहस्राणि ददौभक्त्या घराणि विविधानि च ॥ ७४ ॥  
 यां समर्पयामास पादपद्मे हरेरपि । दरोदोच्चैः स्वभक्त्या च परिहारं चकार सः  
 जस्तस्मै धरं दत्त्वा वेदोक्तञ्च सुभाषितम् । शङ्करानुमतेनैव प्रययौ द्वारकापुरंग्म् ॥  
 मत्वा कन्यां नघोढां तां वाणस्यापि महात्मनः ।  
 दक्षिणपथे प्रददौ शीघ्रं देवक्यै च हरिः स्वयम् ॥ ७८ ॥  
 तस्यै मङ्गलञ्च कारयामास यत्नतः । ब्राह्मणान् भोजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ  
 इति धीमहावैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीरुष्णजन्मखण्डे  
 वाणयुद्धं नाम विंशतिशततमोऽध्यायः ।

### एकविंशतिशततमोऽध्यायः ।

शृगालोपाख्यानम् ।

धीनारायण उवाच ।

अधकृष्णः सुघर्माया निषसन् सगणस्तथा । तत्राजगाम पियञ्च प्रज्वलन् द्रह्मतेजसा  
 भागत्य दृष्ट्वा नृशयं भक्त्या च पुरुषोत्तमम् । उवाच मधुरं शान्तो भीठोपिनपपूर्वकम्  
 ब्राह्मण उवाच ।  
 शृगालो वामुदेवश्च राजेशो मण्डलेश्वर । तमुवाच स यद्वाक्यं साधधानं निरामय

शृगाल उवाच ।

वैकुण्ठे वासुदेवोऽहं देवेशश्च चतुर्भुजः । लक्ष्मीपतिश्च जगतां घाता घातुश्च पालकः  
ब्रह्मणा प्रार्थितोऽहञ्च भारवतारणाय च । भुवो भारतवर्षञ्च तदर्थं गमने मम ॥ ५ ॥  
वासुदेवसुतः कृष्णः क्षत्रियध्याप्यहङ्कृतः । जनं जनेन निर्जित्य दुर्बलं बलिना सह ।

बोधयित्वा महाभूर्तो घातयामास भूपतीन् ॥ ६ ॥

दुर्योधनं जरासन्धं भूपमन्यञ्च दुर्बलम् । भीमेन घातयामास बलिनाल्पेन भूतले ॥ ७ ॥

द्रोणं भीष्मञ्च कर्णाञ्च यं यमन्यञ्च भूतले । बलीयसाजुनेनैव घातयामास लीलया ॥ ८ ॥

यं यमन्यं दुर्बलञ्च प्रसिद्धमप्रसिद्धकम् । प्रसिद्धेन बलवता घातयामास लीलया ॥ ९ ॥

शिशुपालं दन्तवक्रं कंसञ्च चिररोगिणम् । मत्पुत्रं नरकञ्चैव दुर्बलंनरकं मुग्धम् ॥ १० ॥

स्वयं जघान सङ्केताच्छलेन सहसा घत । न धर्मयुद्धेकपटी स च बालो ह्यधार्मिकः ॥

जघान पूतनां कुम्भं स्त्रीघाती पस्त्रहेतुना । जघान रजकं शिष्टमशिष्टञ्च प्रतारकः ॥

हिरण्यकशिपुं दैत्यं हिरण्याशुं महाबलम् ।

मधुञ्च कौटभञ्चैव हत्वाऽहं सृष्टिरक्षकः ॥ १३ ॥

अहमेव स्वयंप्रज्ञा ह्यहमेव स्वयं शिवः । अहं विष्णुश्च जगतां पाता दुष्टायहारकः ॥ १४ ॥

अंदोन फलया सर्वे मनवो मुनयस्तथा । स्वयं नारायणोऽहञ्च निर्गणः प्रकृतेः पदः ॥

लज्जया कृपया चैव मित्रबुद्ध्या क्षमाकृता । यद्गतं तद्गतं भद्रं युद्धं कुरु मया सह ॥

शृणोमि दूतद्वारेण हर्तावीञ्चैरहङ्कृतम् । उचितं दमनं तस्याप्युन्नतानां निपातनम् ॥

राजश्च परमो धर्मोऽप्यहं शास्ता भुवोषुना ।

शङ्खं चक्रं तदां पद्मं गृहीत्वाऽहं चतुर्भुजः ॥ १८ ॥

द्वारकां तां गमिष्यामि युद्धाय सगणः स्वयम् ।

युद्धं कुरु यदीच्छास्ति मा माञ्च शरणं यत्र ॥ १९ ॥

यदि मा यास्यति मम शरणं शरणागतः । अहर्माभूत् करिष्यामि द्वारकाञ्च क्षणेन च

सकृदञ्च सपुत्रं त्वां सगणञ्च सवान्धयम् । क्षणेन दग्धुं शक्तोऽहमसहायश्च मीढया ॥

बुद्धञ्च त्रित्या युद्धे च शङ्कुम् । शकं मप्रायं त्रित्या च रोगिणां प्रज्ञाशायनः

मत्तोऽसिबीरमात्मानं मन्यमानस्त्वमेव च । स्वीजितो हि वृथार्यञ्च पारिजातस्यहेतुना  
 लम्पटो योनिलुब्धश्च राधाधीनश्च गोकुले । अधुना किङ्करसमः सत्यादीनाञ्चयोपिताम्  
 श्लेष्यमुत्तवा विप्रश्च तूष्णीम्भूय स्थितो मुने । धीरूष्णः सगणः ध्रुत्वा भृशमुच्चैर्जहाससः

भोजयित्वा च सम्पूज्य ब्राह्मणञ्च चतुर्विधम् ।

निनाय रजनीं दुःखात् वाक्शलयमानसञ्चरात् ॥ २६ ॥

प्रमते रथमाह्वय सगणः सत्वरं मुदा । लोलामात्रेण प्रपयो शृगालो नृपतिर्षथा ॥ २७

ध्रुत्वा शृगालो वार्त्तां तां कृत्रिमश्च चतुर्भुजः ।

ब्राजगाम हरेः स्थानं युद्धाय सगणः स्वयम् ॥ २८ ॥

कृष्णश्चक्रो च सम्भाषां मित्रवृत्तुभ्या च लौकिकीम् ।

भाश्लेषं मधुरालापं क्लिग्धनेत्रश्च सस्मितः ॥ २९ ॥

राजा निमन्त्रणं चक्रे कृष्णो न स्वीचकार तत् ।

उवाच कृष्णभीतश्च त्यक्तवा दम्भञ्च दर्शनात् ॥ ३० ॥

शृगाल उवाच ।

चक्रेण मच्छिरं छित्त्वा सुशीघ्रं द्वारकां व्रज ।

पापः पततु देहोऽयमनित्यो नश्वरस्तथा ॥ ३१ ॥

भहं सुभद्रो ते द्वारि जयश्च विजयो यथा । सर्वं जानासि सर्वज्ञ मा विलम्बं कुकप्रभो  
 लक्ष्मीशपेन ध्रष्टोऽहं कालः पूर्णो बभूव मे । शतवर्षेण शापान्ते यास्यामि भवनं तव ॥

धीरूष्ण उवाच ।

पूर्वं मां मित्र प्रहर पश्चात्तुद्धं करोम्यहम् ।

सर्वं जानामि वैकुण्ठं गच्छ पत्स यथास्तुत्तम् ॥ ३४ ॥

शृगालो दशधापांश्च विश्लेष माधवं प्रति ।

ते प्रणम्य ययुः शीघ्रमाकाशां कालरूपिणः ॥ ३५ ॥

गदां विश्लेष राजा स प्रलपाम्निशिषोपनाम् ।

कृष्णाङ्गस्पर्शनात्रेण यमञ्च च क्षणेन च ॥ ३६ ॥

धनुश्चिक्षेप खड्गाञ्च कालरूपं सुदारुणम् । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण यमञ्च च क्षणेन च ॥  
दृष्ट्वा निरस्तं राजानमित्युवाच कृपानिधिः । गृहं गत्वा सुतीक्ष्णञ्च मित्रास्त्रप्रानयेति च ॥

शृगाल उवाच ।

नात्माकाशोऽस्त्रचिद्धश्च किं युद्धमात्मना सह ।

मामुद्धर भवाब्धेश्च धरोद्धारणकारण ॥ ३६ ॥

भवाब्धिबिभ्रमं नाथ विषयञ्च विषाधिकम् ।

छिन्धि मे निगडं मायां मोहजालं स्वकर्मणः ॥ ४० ॥

कर्मणामीश्वरस्त्वञ्च विधाता धातुरेष च । दाता शुभफलानाञ्च प्रदाता सर्वसम्पदान् ॥  
कारणं प्राक्तनानाञ्च तेषां च खण्डने क्षमः । यामि रोहञ्च वैकुण्ठं तवैव द्वारसप्तमम् ॥  
त्यक्त्वा च नश्वरं देहं प्राकृतं पाञ्चर्भातिकम् । मित्रस्य स्तवनं श्रुत्वा वचनं च सुयोपमम् ॥  
रुरोद समरे तत्र कृपया च कृपानिधिः । यभूव तत्र सहसा कृष्णनेत्राश्रुविन्दुना ॥४३॥  
दिव्यं विन्दुसरो नाम तीर्थानां प्रवरं परम् । तत्तोयस्पर्शमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥

सप्तजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कथमेतादृशी युद्धिर्मित्र ते निर्मलं मनः । दूतद्वारा च यञ्चोक्तं निष्ठुरं दारुणं वचः ॥४६॥

नारद उवाच ।

गणेशपूजनाख्यानं पुराणेषु च दुर्लभम् ।

श्रुतं तद् ब्रह्मणो वक्त्रात् सामान्यञ्च समासतः ॥ ४७ ॥

महिमानं गणपतेः सर्वपूज्येश्वरस्य च । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि योगीन्द्राणां गुतेर्गुरु ॥  
सिद्धाश्रमे महापूजा दिधीकोभिः कृता पुरा । राधामाधवयोस्तत्र पुनः संमीलनं पुन ॥  
अतीते वर्षशतके श्रीदाम्नः शापमोक्षणे । आदौ चकार पूजाञ्च सा च राधा कथं मुने ॥  
स्थितेषु च सुरेन्द्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु । नागेन्द्रे च स्थिते शेषे नागेषु च महत्सु च ॥

॥ ४८ ॥ च भूमौ च बलिष्ठेष्वसुरेषु च । गन्धर्षेषु च रक्षःसु चान्येषु बलवत्सु च ॥

विस्तरण महाभाग तन्मा व्याख्यातुमर्हसि ॥ ५२ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

श्रेलोक्ये पृथिवी धन्या मान्या पुण्यवती सती ।

तत्र भारतवर्षञ्च कर्मणां फलं शुभम् ॥ ५३ ॥

धन्यं यशस्यं पूज्यञ्च पुण्यक्षेत्रं च भारते ।

सिद्धाधर्मं महापुण्यक्षेत्रं मोक्षप्रदं शुभम् ॥ ५४ ॥

सनत्कुमारो भगवान् तत्र सिद्धो बभूव ह । स्वयं विधाता तत्रैव तप्त्वा सिद्धो बभूव ह  
योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः । शतक्रतुर्महेन्द्रश्च तत्र वृत्त्या बभूव ह  
तेन सिद्धाधर्मं नाम सर्वेषामपि दुर्लभम् । अविष्टानं गणेशस्य तत्रैव सततं मुने ॥ ५७ ॥  
अमूल्यरत्ननिर्माणगणेशप्रतिमां शुभाम् । वैशाखीपूर्णिमायाञ्च पूजां कुर्वन्ति देवताः ॥

नागाश्च मानवाश्चैव दैत्या गन्धर्वराक्षसाः ।

सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च योगीन्द्राः सनकादयः ॥ ५६ ॥

तत्राजगाम शम्भुश्च पार्वत्या सह शङ्करः । सगणः कार्तिकेयश्च स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः  
तत्राजगाम शेषश्च नागेन्द्रैः सह सत्त्वत् । तत्राजगाम सुराः सर्वे मनवो मुनयस्तथा ॥  
आजगमुस्ते नृपाः सर्वे पूजायं हृष्टमानसाः । श्राययी भगवान् कृष्णो द्वारकावासिभिः सह  
आजगाम तथा नन्दः सार्द्धं गोकुलवासिभिः ।

गोपीनां त्रिंशत्कोटीभिर्गोलोकवासिभिः सह ॥ ६३ ॥

गजेन्द्रकोटितुल्याभिर्वलिष्ठाभिः सहालिभिः ।

आययी सुन्दरी राधा कृष्णप्राणाधिदेवता ॥ ६४ ॥

राशेश्वरी सुरभिश्च शतवर्षे गते सती । सुस्नात्वा सुदती शुद्धा धृत्वा धीते च वाससी  
संयता सा निराहारा गत्वा च भणिमण्डपम् ।

सुप्रक्षालितपादाब्जा कान्ता भुषनपावनी ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्णप्राप्तिकामञ्च सुसङ्कल्पं विधाय च । गङ्गौदकेन हेरम्बं कृष्णयामास भक्तिः ॥  
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं चकार शुक्लपुष्पतः । माता चतुर्णां देवानां पसोश्च जगतामपि ॥  
बुद्धिरूपा भगवती भ्रानिनां जननी परा । ध्यानात्मकं स्वपुत्रं तं परध्यानं चकार सा ॥

खर्वं लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । गजवचनं पद्मिपणंमिकदन्तमनन्तकम् ॥१०॥  
 सिद्धानां योगिनामेव शानिनाञ्च गुरोर्गुणम् । ध्यानं मुनिन्द्रेर्वेन्द्रेर्ब्रह्मेशोपमं ब्रह्मैः  
 सिद्धेन्द्रैर्मुनिभिः सद्भिर्गवन्तं सनातनम् । ब्रह्मन्म्यरूपं परमं मङ्गलं मङ्गलालयम् ॥११॥  
 सर्वधिप्रहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम् । भवाधिभमायागोतेन कर्णधारञ्च कर्मवन्तं  
 शरणागतदर्शनार्तपरित्राणपरायणम् । ध्यायेदुध्यानात्मकं साध्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम् ।

इति ध्यात्या स्वशिंगसि दर्या पुण्यं पुनः सर्ता ।

सर्वाङ्गसोपधनं न्यासं चैदोक्तञ्च चकार सा ॥ ७५ ॥

पुनश्च ध्यात्या ध्यानेन तेनैव शुभदायिना । दशौ पुण्यं पादपद्मे राधा लम्बोदरस्य च ।  
 सप्ततीर्थोदकेनैव शीतेन घासिनेन च । दशौ पाद्यं पादपद्मे तैः पद्मादिभिरचितं ॥७६॥  
 दूर्वाक्षतैः शुक्लपुष्पैः सुगन्धिचन्दनोदकैः । अर्घ्यं दशौ तच्छिरसि स्वयं गोलोकवासिनीं  
 सचन्दनस्निग्धमाल्यं पारिजातस्य सुन्दरम् ।

दशौ गले गणेशस्य स्वयं रासेश्वरी मुदा ॥ ७६ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाकञ्च सुगन्धि स्निग्धचन्दनम् । सर्वाङ्गे प्रदर्शौ तस्य वृन्दावनविनोदिनीं  
 सुगन्धिशुक्लपुष्पञ्च सुगन्धिचन्दनार्चितम् । दशौ तस्य पदान्मोजे महापद्मालया सर्ता  
 सुगन्धियुक्तं धूपञ्च पूतैर्वस्तुभिरन्वितम् । दशौ कृष्णप्रिया तस्मै जगतामीश्वराय च ।  
 दीपं घृतरदीप्तञ्च ध्वान्तचिध्वसकारणम् । दशौ तस्मै सुरेशाय परमाया सनातनीं ।  
 नैवेद्यं विविधं रम्यं सुस्वादुं सुमनोहरम् । चोष्यं चर्ष्यं लेह्यपेयं सुधातुल्यं चतुर्विधम् ।

फलानि च सुपक्वानि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च ।

मधुराणि च मूलानि प्राभ्यारण्यानि नारद ॥ ८५ ॥

तानि त्वानन्त्यसंस्थानि तिलानां लड्डुकानि च ॥

सुपक्वानि सुरम्याणि स्वादूनि सुरसानि च ॥ ८६ ॥

यवगोधूमचूर्णानां पक्वानि पिष्टकानि च ।

पूताकानि च रम्याणि शर्करासहितानि च ॥ ८७ ॥

स्वस्तिकानां लड्डुकानि स्थूलानि सुन्दराणि च ।

अष्टद्रव्यञ्च विविधमक्षतं शर्करान्वितम् ॥ ८८ ॥

घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां मधुकुल्यां मनोहराम् ।

गुडस्य दध्नः कुल्याञ्च पायसानां तथैव च ॥ ८९ ॥

पिष्टकानां स्वस्तिकानां रम्भाणां राशिरैव च ।

मिष्टव्यञ्जनयुक्तानि शाल्यन्नानि शुभानि च ॥ ९० ॥

दशौ तस्मै सुरेशाय कृष्णप्राणाधिदेवता । अमूल्यरत्ननिर्माणं रम्यं सिंहासनं वरम् ॥ ९१ ॥

दशौ विभ्रविनाशाय विरजातटयासिनी । सूक्ष्मवस्त्रयुगं रम्यममूल्यं घट्टिशुद्धकम् ॥ ९२ ॥

दशौ शैलात्मजायैव शतशृङ्गनिवासिनी । ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ९३ ॥

सर्वसंपत्प्रदात्रे च कृपमानुसुता दशौ । सप्ततीर्थोदकं शुद्धं सुपूतञ्च सुपासितम् ॥ ९४ ॥

पानार्थञ्च जलं तस्मै दशौ गोपीध्वरी मुदा । अमूल्यं दुर्लभञ्चैव विशुद्धं श्वेतचामरम् ॥ ९५ ॥

दशौ तस्मै परेशाय मूलप्रहृतिरीश्वरी । अमूल्यरत्ननिर्माणं मुक्तामाणिचर्हीरकैः ॥ ९६ ॥

परिष्कृतं सुतल्पञ्च पुष्पवन्दनचर्चितम् । सितसूक्ष्मांशुकेनेव परितश्च परिष्कृतम् ॥ ९७ ॥

दशौ शिवात्मजायैव कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।

दत्त्वा च कामधेनुञ्च सघत्सरां वाञ्छितप्रदाम् ॥ ९८ ॥

धृत्वाऽतीवपरीहारं वृन्दा पुष्पाञ्जलिं दशौ । दिव्येनानेन मनुता सर्वाङ्गेनोऽञ्जलेन च ॥

दशौ योऽशोपचारं कालिन्दीकुलयासिनी । श्रौं गङ्गां गणपतये विभ्रविनाशिने स्थाहा

स्तपेवमेव मन्त्रञ्च गणेशं योऽशोपचारम् । सा जजाप सहस्रञ्च परं कल्पवृक्षं परम् ॥

तुष्टाव परया भक्त्या भक्तिव्रतमकन्धरा । साधुनेत्रा पुलकिता स्तोत्रेण कान्तुषेन च

धीराधिकोपाच ।

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमाद्वयम् । विभ्रनिम्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम् ॥

सुरासुरेन्द्रेः सिद्धेन्द्रेः स्तुतं स्तोमि परात्परम् ।

सुरपद्मदिनेशञ्च गणेशं महत्लायनम् ॥ १०४ ॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं विभ्रशोकहरं परम् ।

यः पठेत् प्रातःकाले सर्वविघ्नान् प्रमुच्यते ॥ १०५ ॥  
 इति श्रीब्रह्मवेवर्त महापुराणे नारायणनाम्नंवादे श्रीकृष्णजन्मजन्ते  
 गणेशपूजननामैकविंशत्पञ्चविंशततमोऽध्यायः ।

## द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाम्प्रतिगणेशोक्तिः ।

श्रीनारायण उवाच ।

राधा संपूज्य विधिना स्तुत्या लम्बोदरं सती ।

अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वाङ्गभूषणं ददाी ॥ १ ॥

राधायाः स्तवनं श्रुत्या पूजां दृष्ट्वा च वस्तु च ।

उपाच मधुरं शान्तः शान्तां त्रैलोक्यमातरम् ॥ २ ॥

श्रीगणेश उवाच ।

तव पूजा जगन्मातलोकशिक्षाकरी शुभे । ब्रह्मस्वरूपा भवती कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।  
 यत्पादपद्ममनुलं ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम् । सुरा प्रलेशरोषाद्या मुनीन्द्राः सतकादयः ।

जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः ।

तस्य प्राणाधिदेवी त्वं प्रिया प्राणाधिका परा ॥ ५ ॥

धामाङ्गनिर्मिता राधा दक्षिणाङ्गश्च माधवः । महालक्ष्मीर्जगन्माता तव धामाङ्गनिर्मिता  
 वसोः सर्वनिवासस्य प्रसूस्त्वं परमेश्वरी । वेदानां जगतामेव मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ १ ॥

सर्वाः प्रकृतिका मातः सृष्ट्याञ्चेत्स्वद्विभूतयः ।

विश्वानि कार्यरूपाणि त्वं च कारणरूपिणी ॥ ८ ॥

प्रलये ब्रह्मणः पाते तन्निमेषो हरेरपि । आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं परात्पद्म  
 पण्डितो योगी गोलोकं याति लीलया । न्यतिक्रमे महापापी ब्रह्महत्यांलभेद्बुधम्



द्वाविंशधिकशततमोऽध्यायः ] \* राधाग्रति गणेशोक्तिः \*

जगतां भवती माता परमात्मा पिताहरिः । पितुरेव गुरुर्माता पूज्या पन्थापरात्परा ॥  
भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम् ।

पुण्यक्षेत्रे महामूढो यदि निन्दन्ति राधिकाम् ॥ १२ ॥

वंशहानिर्भवेत्तस्य दुःखशोकमिहैष च । पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ १३ ॥  
गुरुश्च हानोन्निरणाज्ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः ।

स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं भक्तिः स्याद् युवयोर्यतः ॥ १४ ॥

निषेव्य मन्त्रं देवानां जीवी जन्मनि जन्मनि । भक्तिर्भयति दुर्गायाः पादपद्मे सुदुर्लभे  
निषेव्य मन्त्रं शम्भोश्च जगतां कारणस्य च । तदा प्राप्नोति युवयोः पादपद्मं सुदुर्लभम् ॥  
युवयोः पादपद्मञ्च दुर्लभं प्राप्य पुण्ययान् । क्षणाद्वं षोडशांशञ्च न हि मुञ्चति दैवतः  
भक्त्या च युवयोर्मन्त्रं गृह्णित्वा वैष्णवादिपि । स्तवं वा कथंचं वापि कर्ममूलनिवृन्तनम्  
यो जपेत् परया भक्त्या पुण्यक्षेत्रे च भारते । पुरुषाणां सहस्रञ्च स्वात्मना सार्द्धमुद्धरेत्  
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्ब्रह्मालङ्कारचन्दनैः । कथंचं धारयेद् यो हि विष्णुतुल्यो भवेत्पुष्पम्  
यत्तं यस्तु मे मातस्तत् सर्वं सार्धकं कुरु ।

देहि विप्राय मत्प्रीत्या तदा भोक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ २१ ॥

देवे देयानि दानानि देवे देया च दक्षिणा । तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्तद्दानन्त्याय कल्पते  
ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम् ।

विप्रभुक्तञ्च यद्द्रव्यं प्राप्नुयन्त्येव देयताः ॥ २३ ॥

विप्रांश्च भोजयामास तत् सर्वं राधिका सती । यभूष तत्क्षणादेव प्रीतोऽत्रघोदरो मुने  
एतस्मिन्नन्तरे देवा प्रक्षेशोपसंभवाः ।

भायसुर्यं तमूलञ्च देवपूजार्थमेव च ॥ २५ ॥

तत्र गत्वा शिवचरो देवान् देवीद्याव सः । धीकृष्णं शुष्ककण्ठश्च भयभीतश्च रक्षकः  
रक्षक उवाच ।

गणेशं पूजयामास सर्पादी च शुभक्षणे । वृषभानुपुता राधा प्रष्टव्य स्वस्तिपावनम्  
सहितासा बलवती गोपीप्रियतकोटिभिः । वारितोऽई बलिष्ठाभिर्युष्पांश्च कथयामित्

सर्वादीं पूजयेद् यो हि सोऽनन्तं फलमालमेत् ।

मध्ये मध्यविभ्रं पुण्यं शोषे स्वल्पमिति स्मृतम् २६ ॥

देवेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवलीषु स्थितास्तु च । गोपामिश्च सह तथा राधाया पूजितः परः  
दूतवाक्यं समाकर्ण्य जहसुः सर्वदेवताः । मुनयो मनवश्चैव राजानो देवयोपितः ।  
रुविमण्याद्या रमण्यश्च या देव्यो विस्मयं ययुः । सरस्वतीचसावित्री पार्वतीपरमेश्वरी  
रोहिणी च सतीसंज्ञा स्वाहाद्या देवयोपितः ।

मुदिताः प्रययुः सर्वा मुनिपत्न्यः पतिव्रताः ॥ ३३ ॥

मुनयो मनवः सर्वे देवाश्चापि नरास्तथा । श्रीकृष्णः सगणैः सार्द्धं ये चान्येप्रययुर्मदा  
तेसर्वे विचिधैर्द्रव्यैः पूजां चक्रुः शुभक्षणे । बलिष्ठा दुर्बलाश्चैवं क्रमेण च पृथक् पृथक्  
लङ्कुडुकानाञ्च राशीनां शतकोटिर्यभूच ह । शर्कराणां तदर्द्धञ्च स्वस्तिकानां तथैव च ।  
अन्नानां भव्यवस्तूनां शतकोटिर्यभूच ह । असंख्यानि फलान्येव स्वादूनिमधुरानि च  
मधुकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या घृतस्य च । बभूवुः शतसंख्याञ्च त्रीलोकानाञ्च पूजने  
पूजां कृत्वा तु ते सर्वे समूपुश्च सुखासने । पार्वती परमा प्रीत्या राधास्थानंसमाकर्ण्य  
सा राधा पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय जवेन च ।

यथायोग्याञ्च सम्भाषां चकार सादरं मुदा ॥ ४० ॥

आश्लेषणं चूम्यनञ्च बभूव च परस्परम् । उवाच मधुरं दुर्गा राधां कृत्वा स्ववक्षसि ॥

पार्वत्युवाच ।

किंवा प्रश्नं करिष्यामि त्वां राधां मङ्गलाख्याम् ।

गता ते विरहज्वाला श्रोदाग््नः शापमोक्षणे ॥ ४२ ॥

सततं मन्मनः प्राणास्त्वप्येव मयि ते तथा । नह्येषमाधयोर्भेदः शक्तिपुरुषयोस्तथा ॥  
येत्यां निन्दन्ति मद्भक्तस्त्वद्भक्ताश्चापिमामपि । कुम्भीपाकेचपच्यन्तेयाचमन्द्रदिपाकरी  
राधामाधयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमाः । यंशहानिर्भयत्तेषां पच्यन्ते नरकेचिरम् ॥ ४१ ॥  
यान्ति शूकरयोनिञ्च पितृभिः शतकेः सह । यद्विषर्षहाहम्राणि विष्ठायां कृमयस्तथा ॥  
त्पदैव पूजितः पुत्रो न मया च गणेभ्यः । सर्वादीं सर्वपूज्योऽयं यथा तव तथामम ॥

यावज्जीवनपर्यन्तं न विच्छेदो भविष्यति ।

राधामाधवयोर्द्वेषि दुग्धधाचलययोर्यथा ॥ ४८ ॥

सिद्धाश्रमे महातीर्थे पुण्यक्षेत्रे च भारते । निविष्टं लभ गोविन्दं सम्पूज्यविप्रखण्डनम्  
पसेश्वरी त्वं रसिकाश्रीकृष्णोरसिकेश्वरः । विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमोगुणघान्भवेत्  
श्रीदासः शापनिर्मुक्ता शतवर्षान्तरे सती । कुरुष्व महरेणाद्य कृष्णेन सह सङ्गमः ॥ ५१  
प्रमादया दुर्लभया सुवेशं कुक् सुन्दरि । सुदुर्लभः कामिनीनां सत्पुंसा सह सङ्गमः ॥  
वक्त्रुः सुवेशं राधायाः प्रियाल्पश्चशिवाज्ञया । रत्नसिंहासने रम्ये घासयामासुरीश्वरीम्  
दुरतो रत्नमाला सा रत्नमालां गले ददौ । राधाया दक्षिणे हस्ते क्रीडापद्मं मनोहरम्  
ददौ पद्ममुखी पादपद्मयुग्मेऽप्यलक्तकम् । प्रददौ सुन्दरी गोपी सिन्दूरं सुन्दरं परम् ॥  
चन्दनेन समायुक्तं सीमन्ताघस्यलोज्ज्वलम् । सुनारकचरी रम्यां चकार मालती सती  
मनोहरां मुनीनाञ्च मालतीमाल्यभूषिताम् ॥ ५६

कस्त्रीकुङ्कुमाकञ्च चारुचन्दनपत्रकम् । स्तनयुग्मे सुकठिने चकार चन्दनं सती ॥ ५७  
चारुचम्पकपुष्पाणां मालां गन्धमनोहराम् । मालायतो ददौ तस्यै प्रकुङ्कान्वमल्लिकाम्  
रतीषु रसिका गोपी रत्नभूषणभूषिताम् ।

तां चकारातिरसिकां धरां रतिरसोत्सुकाम् ॥ ५६ ॥

शरत्पद्मदलाभञ्च लोचनं कञ्जलोज्ज्वलम् । कृत्वा ददौ सुललितं वल्लञ्च ललिता सती  
महेन्द्रेण प्रदत्तञ्च पारिजातप्रसूनकम् । सुगन्धियुक्तं तस्याश्च पारिजातं करे ददौ ॥ ६१  
सुशीलं मधुरोकञ्च भर्तुः पार्श्वं यथोचितम् । शिक्षांचकारनीतिञ्चसुशीलागोपिकासती  
स्त्रीणाञ्च पोद्मशकलां विपत्तौ विस्मृतांतयोः । स्मरणं कारयामास राधामाताकलापती  
शृङ्गारविषयोक्तञ्च धवनञ्च सुधोपमम् । स्मरणं कारयामास भगिनी च सुधामुखी ॥  
कमलानांचम्पकानां दले चन्दनवर्षिते । चकार रतितल्पञ्च कमला चाशु कोमलम् ॥  
चारुचम्पकपुष्पञ्च कृष्णार्थं पुटकस्थितम् । चकार चन्दनाकञ्च स्वयं चम्पापती सती  
पुष्पं केलिकदम्बानां स्तवकञ्च मनोहरम् । फदम्बमालां कृष्णार्थं विद्यमानं चकार सा  
ताम्बूलञ्च परं रम्यं कर्पूरदिसुवासितम् । कृष्णप्रिया च कृष्णार्थं चकारवासितं जलम्

पतस्मिन्नन्तरे सर्वमाधर्मं सज्जनस्यञ्चम् । साक्षाद्गोरोन्मत्स्यञ्च ददृग्मुंनयः सुराः ॥६॥  
ने सव विस्मयं गत्वा पप्रच्छुः कृष्णमांश्वाम् । उवाच भगवांस्तोभ्यसर्वद्वैतसर्वकारणः  
धीमगवानुवाच ।

भमिशाना न श्रीशाम्ना भ्रष्टशोभा च राधिका ।

सर्वे धानं विसम्भार मद्रिच्छंदंदावरातुरा ॥ ७१ ॥

विमुक्तं पपंशतंके धानं सम्भार सा सती । सिद्धाधमञ्च पीतानं रासेभ्यर्व्याञ्चतेजसा ॥  
परमाद्वाक्कं तेजश्चन्द्रकोटितमप्रभम् । सुन्दरश्च सुन्दरं चतुर्ग प्राणिनामपि ॥७२॥  
तच्छ्रुत्वा परमाभ्यर्ष्यं मुनयो मनवस्तया । देव्यञ्च सर्वदेवास्तं ब्रह्मेशानादपस्तया ॥  
जयेन गत्वा तस्स्थानं भक्तिघातमकण्धराः ।

सर्वे जनास्तं ददृशुस्त्रैलोक्यस्याञ्च राधिकाम् ॥ ७१ ॥

श्वेतचम्पकपर्णाभामनुलां सुमनोहराम् । मोहिनीं मानसानाञ्च मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥  
सुकेशीं सुन्दरीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् ।  
नितम्यकठिनध्रोगोस्तनयुगमोभ्रताननाम् ॥ ७३ ॥  
कोटीन्दुनिन्दितास्यां तां सस्मितां सुदर्तां सतीम् ।  
फञ्जलोज्ज्वलरूपाञ्च शरत्कमललोचनाम् ॥ ७८ ॥  
महालक्ष्मीं धोजरूपां परमाद्यां सनातनीम् ।  
परमात्मस्वरूपस्य प्राणाधिष्ठातृदेवताम् ॥ ७६ ॥

स्तुताञ्च पूजिताञ्चैव पराञ्च परमात्मने । ब्रह्मस्वरूपां निर्लिप्तां नित्यरूपाञ्च निर्गुणाम् ॥  
विश्वानुरोधात् प्रकृतिं भकानुप्रहविप्रदाम् । सत्यस्वरूपां शुद्धाञ्च पूतां पक्तिपावर्तनीं  
सुतीर्थपूतां सत्कीर्तिं विधात्रीं वेधसामपि ।  
महाप्रियाञ्च महतीं महाविष्णोञ्च मातरम् ॥ ८२ ॥  
रासेश्वरेश्वरीं रम्यां रसिकां रसिकेश्वरीम् ।  
बह्विशुद्धाशुकाधानां स्वेच्छारूपां शुभालयाम् ॥ ८३ ॥  
गोपीभिः सप्तभिः शश्वत् सेयितां श्वेतवामरैः ।

चतसृभिः प्रियालीभिः पादपद्मोपसेविताम् ॥ ८४ ॥

भमूलपरत्ननिर्माणभूषणोद्योर्विभूषिताम् । चारुगुण्डलयुगेन धृतिगण्डस्थलोऽञ्जलाम् ॥

सुनासां गजमुक्ताह्रां खगेन्द्रचञ्चुनिन्दिताम् ।

कुङ्कुमालवकस्तूरीस्निग्धचन्दनचर्चिताम् ॥ ८६ ॥

दधानां सुकपोलाञ्च फोमलाङ्गी सुकामुकीम् ।

गजेन्द्रगामिनी रामां कमनायां सुकामिनीम् ॥ ८७ ॥

कामास्त्रजयरूपाञ्च कामकाम्यलयां वराम् । कीडाकमलमम्लानं पारिजातप्रसूतकम् ॥

भमूल्यरत्ननिर्माणं दधानां दृषणोऽञ्जलम् । नानारत्नविचित्राढ्यरत्नासिंहासनस्थिताम्

पादपद्मार्चितं कृष्णपादपद्मञ्च मङ्गलम् । इत्येते ध्यायमानाञ्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥

कर्मणा मनसा वावा स्वप्ने जागरणेऽपि च ।

उत्प्रीतिं प्रेमसौभाग्यं स्मरन्तीं नित्यनूतनम् ॥ ९१ ॥

मावानुरक्तसंसिकां शुद्धभक्तां पतिव्रताम् ।

धन्यां मान्यां गौरवर्णां शश्वद्वक्षःस्थलस्थिताम् ॥ ९२ ॥

प्रियासुप्रियभक्तेषु सुप्रियां प्रियवादिनीम् । कृष्णवामाङ्गसम्भूतामभेदां गुणरूपयोः ॥

गोलोकवासिनीं देवदेवीं सर्वोपरिस्थिताम् । वृन्मानुसुताख्यां तां पुण्यक्षेत्रे च भारते

गोपीश्वरीं गुतिरूपां सिद्धिदां सिद्धिरूषिणीम् ।

ध्यानासाध्यां दुराराध्यां घन्दे सद्भक्तवन्दिताम् ॥ ९५ ॥

ध्याने ध्यानेन राधाया ध्यायन्ते ध्यायन्तत्पराः ।

इदिव जीवन्मुक्तास्ते परत्र कृष्णपार्षदाः ॥ ९६ ॥

दृष्ट्वा प्रह्ला च सर्वादीं तुष्टाव परमेश्वरीम् । स्वयं विधाता जगतां मातरं वेधसामपि ॥

प्रह्लोपाच ।

पृथ्विर्षंसहस्राणि दिव्यानि परमेश्वरि । पुष्करे च तपस्तप्तं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ९८ ॥

स्वत्पादपद्मधुरमधुलुब्धेन चेतसा । मधुव्रतेन लोभेन प्रेरितेन मया सति ॥ ९९ ॥

तथापि न मया लभ्यं त्वत्पादपद्मोपस्थितम् ।

न दृष्टमपि स्वप्नेऽपि जाता घागशरीरिणी ॥ १०० ॥

पाराहे भारते पर्वे पुण्ये गृन्दावने घने । सिद्धाश्रमे गणेशस्य पादपद्मञ्च द्रक्ष्यसि ।  
राधामाधवयोर्वास्यं कुतो चिपयिणस्तव । निघर्त्तंस्य महाभाग परमेत्स्व सुदुर्लभम् ।  
इति श्रुत्वा निवृत्तोऽहं तपसे मग्नमानसः । परिपूर्णं तद्भुजा पाञ्चितं तपसः फलम् ।

श्रीमहादेश उवाच ।

पादपद्मार्चितं पादपद्मं यस्य सुदुर्लभम् ।

ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाश्च शत्रुवदु ब्रह्मादयः सुराः ॥ १०४ ॥

मुनयो मनवश्चैव सिद्धाः सन्तश्च योगिनः । द्रष्टुं नैव क्षमाः स्वप्ने भवती तस्य वक्षति  
अनन्त उवाच ।

वेदाश्च वेदमाता च पुराणानि च सुव्रते । अहं सरस्वती सन्तः स्तोतुं नालञ्च सन्तः  
अस्माकं स्तवने यस्य भ्रूभङ्गञ्च सुदुर्लभम् । तवैव भर्त्सने भीतश्चावयोरन्तरं हरिः ॥  
एवं देवाश्च देव्यश्च चान्ये ये च समागताः । प्रणतास्तुष्टुबुः सर्वे मुनिमन्वाद्यस्तथा  
लज्जया नम्रवक्त्राश्च रुक्मिण्याद्याश्च योपितः । मलीमसञ्च चक्रस्ताः श्यासेन रत्नदर्पणम्  
मृततुल्या सत्यभामा निराहारा कृशोदरी । मनसोऽप्यभिमानञ्च सर्वं तत्याज नारद ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे सिद्धाश्रमतीर्थयात्राप्रसङ्गे  
गणेशपूजनेब्रह्मेशशेषादिकृतं राधिकास्तोत्रं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः

वसुदेवम्प्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः ।

नारद उवाच ।

गणेशपूजनादेश राधास्तोत्रात् परं विभो । वभूव किं रहस्यं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

श्रीभगवानुवाच ।

ॐ जने तीर्थे ये देवाश्च समाययुः । मुनयश्चापि योगीन्द्रा वसन्तो वष्टमूलके ॥२॥

त्रयोविंशतिः अधिकाः ततोऽध्यायः ] \* वसुदेवप्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः \* ११५७.

वसुदेवो देवकी च परमादरपूर्वकम् । पप्रच्छ शम्भुं ब्रह्माणमनन्तं मुनिपुङ्गवान् ॥ ३ ॥  
भवे भवान्धितरणमावयोरुत्तमा गतिः । शीघ्रं प्रूत महाभागा दीनयोर्दीनवान्धवाः ॥

भवान्धितरणे तर्प्यां तत्र यूयञ्च नाविकाः ।

न ह्यम्भयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ५ ॥

यद्गुणाणि पुण्यानि द्रतान्यनशानानि च । तेषांसि नानादानानि विप्रदेवार्चनानि च ॥  
चिरं पुनन्ति सर्वाणि दर्शनादेव वैष्णवाः । सताञ्च विष्णुभक्तानां रजसां स्पर्शमात्रतः  
पूतानां पादपद्मानां सद्यःपूता वसुन्धरा । तीर्थानि च पवित्राणि समुद्राः पर्वतास्तथा  
सुगुण दर्शनमिच्छन्ति पातकेन्धनपातकम् । सोऽज्ञानी नैव बुयुधे ज्ञानञ्च ज्ञानिना सह  
परमं स्वादुरूपञ्च दधि दुग्धं रसं यथा । यथा कृष्णस्य तातोऽहं सङ्गी सुखिरमेव च  
तथैव देवकी माता ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरो ! ॥ १० ॥

वसुदेववचः श्रुत्वा प्रहस्य शङ्करः स्वयम् । चतुर्णामपि वेदानामुवाच जनको गुरुः ॥  
महादेव उवाच ।

सत्रिकार्योऽज्ञानिनाञ्चाप्यनादरणकारणम् । यान्ति गङ्गाभ्रसापूतास्तीर्थान्पन्यानि सिद्धये  
वासुदेवस्य तातोऽयं वसुदेवश्च पण्डितः ।

ज्ञानिनः कश्यपस्यांशो घसोस्तातस्य चात्मनः ॥ १३ ॥

पृच्छति ज्ञानमस्मांश्च कृष्णाङ्गान् पुत्रबुद्धितः ।

अहो दुर्गा महामाया ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥ १४ ॥

विष्णुमापादुराराध्या न साध्या जगतामपि । धयञ्च मोहिताः शश्वद्वेदानां जनकास्तथा  
ब्रह्माविष्णुं परीक्षेत मोहितस्तस्य मायया । ध्यायते यत्पदाम्भोजं तपसा जीवनावधि  
स्त्रेषु दशलक्षेभ्यधिकारशतैषु च । पातेषु ब्रह्मणः पाते निमेषो माधवस्य च ॥ १७ ॥  
सह तेनेन्द्रयुद्धञ्च पारिजातस्य हेतुना । पारिजाततर्कं द्रवा मायाशकश्च रक्षितः ॥  
यद्ज्ञानमज्ञानमेव तत्त्वं वा विपयत्तमकम् । न हि किञ्चित्तद्ज्ञानं तत्साध्यानां सदैव हि  
प्राणिनामात्मनो ज्ञानमस्माकं ज्ञानमस्ति च । तदूर्ध्वं तत्समनैव कृष्णं पृच्छशुभाशुभम्  
ब्रह्मणश्च चतुर्यामं कल्पं कल्पविदो विदुः । सतकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयो महामुनिः

भयं नपति शक्रोऽपि पातेषु तपनं मुनेः । ततः प्राप्तं हरेर्दाम्भ्यं मुनिना तपसः फलान् ॥  
 प्रलये ब्रह्मणः पाते पतनं लोमशस्य च । त्रिकपालानो ब्रह्माणाञ्च तदागुच्छिरजीविनाम्  
 अन्येषामपि देवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । तत्रैवागुच्छ रत्नानां मात्रं मृत्युञ्जयं विन्द ॥

प्रलये च विभेः पातो शिष्योऽप्यहं शिवः ।

ब्रह्मभालोद्भवः शम्भुः सर्वादिगर्गभाषणम् ॥ २५ ॥

कृष्णवामाङ्गसम्भूता यथा राधा तथैव च ।

तथैव दुर्गा लक्ष्मीश्च सावित्री च सरस्वती ॥ २६ ॥

आदित्योऽप्यदितेः पुत्रः फायव्यूहेन द्वादश ।

तथैव च महेन्द्रश्च फायव्यूहाश्चतुर्दश ॥ २७ ॥

तथैव षडवध्याष्टौ रत्नादचैकादशैव ते । मनुपाते चेन्द्रपातो विषयात् पतनं भवेत् ॥२८  
 समाययुश्च सर्वेषां निधनं प्रलयेऽपि च । प्रलये दर्शयामास ब्रह्माण्डे च जलप्लुते ॥२९

ब्रह्माण्डञ्च स्वलोकञ्च स्यात्मानं शक्तिमिश्च माम् ।

सर्वेषां मूलरूपश्च सर्वेशः कृष्ण एव च ॥ ३० ॥

भज पुत्रं राजसूये यज्ञेशं यज्ञकारणम् ।

विधिचदक्षिणां दत्त्वा भवार्द्धि तर यादव ॥ ३१ ॥

मुक्तिस्तेनास्ति निर्वाणं विषयी कश्यपो भवान् ।

न ते दास्यं भक्तधनमदितिर्देवकी तथा ॥ ३२ ॥

भज सर्गं भोगवीजं स्वस्थानममरालयम् ॥ ३३ ॥

शिवस्य घचनं श्रुत्वा संयतश्च शुभक्षणे । तत्र संभृतसम्भारो राजसूयञ्चकार सः ॥३४  
 धसुदेवस्य हव्यञ्च साक्षाच्च जगृहः सुराः । यत्र साक्षाच्च यज्ञेशो यज्ञोऽयं दक्षिणासह  
 पूर्णाहुतिं दत्तघनतं धसुदेवमुवाच सः । सन्तकुमारो भगवान् पामुदेवाज्ञया मुने ॥३५

सन्तकुमार उवाच ।

सर्वस्वं दक्षिणां देहि तूर्णं लक्ष्मीपतेः पितः । सार्थकं कुरु कर्मदं वेदोक्तं घचनं शृणु ॥  
 दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालञ्चेन दीयते । मुहूर्त्तं तु व्यतीते सा दक्षिणा द्विगुणाभवेत्



।सरे च बहिर्भूने भयेत्सापि चतुर्गुणा । त्रिरात्रे समतीते तु षड्गुणा दक्षिणा भवेत्  
 क्षान्ते तु शतगुणा मासान्ते तु चतुर्गुणा । वण्मासेऽप्यधिके न्यूनै साहस्रञ्चगुणीतथा  
 र्शन्ते सा लक्षगुणा ब्रह्मणोक्तञ्च यादय । उभौ च नरकं यातः कर्मकर्तृपुरोहितौ ॥

पसुदेवश्च तच्छ्रुत्वा सर्वस्वमुत्ससजं सः ।

अधिकारांश्च साहादौ पासुदेवाजया तथा ॥ ४२ ॥

मूल्यानाञ्च रत्नानां दशकोटिमनुत्तमाम् । ददौ गमाय सर्वाद्दौ स्वयं लक्ष्मीपतेः पिता  
 शतकोटिं मणीन्द्राणां स्वर्णानां तद्यतुर्गुणम् ।

माणिक्यानाञ्च मुक्तानां हीरकाणां तथैव च ॥ ४४ ॥

प्यं प्रवालं परमं स्वर्णपात्राणि यानि च । स्वस्त्रीणां स्वयंभूनाञ्चाप्यमूल्यरत्नभूषणम्  
 श्वेतचामरलक्षञ्च लक्षञ्च रत्नदर्पणम् । कामधेनुगणं सर्वशतकोटिं गजानपि ॥ ४६ ॥  
 तकोटिर्गजेन्द्राणामश्वानां तद्यतुर्गुणम् । यद्धनं यादवानाञ्च राज्ञो राजानुमोदनात्  
 म्नाणां शतलक्षञ्च सशस्यं फलितं तद्यम् । धान्याचलानां लक्षञ्च शाल्यघानां तथैव च

पायसं पिष्टकञ्चैव मिष्टान्नञ्च सुधोपमम् ।

स्वस्तिकानां तिलानाञ्च रम्याणि लङ्कुकानि च ॥ ४६ ॥

धनां मधूनां दुग्धानां गुडानां हविषामपि । कुल्यानां शतकं दत्त्वा परिहारं चकार सः  
 सकर्पूरञ्च ताम्बूलं सुशीतं घासितं जलम् ।

सुगन्धिसन्धनञ्चैव पारिजातस्य मालिकाम् ॥ ५१ ॥

वासनानि च रम्याणि घट्टिशुद्धांशुकानि च । रत्ननिर्माणतल्पानि पुष्पाणि च फलानि च  
 प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च प्रफुल्लयदनेक्षणः । देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणानां मुखैः शुभैः ॥  
 देवाश्च मुनयो रात्रीः स्वराभामिश्रै रैमिरै । प्रभाते प्रथयुः सर्वे श्रीकृष्णानुमतेन च ॥  
 यादवा प्रथयुः सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् । अमूल्यरत्नपूर्णाञ्च कश्मिणीदर्शनेन च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे .

## चतुर्विंशधिकशततमोऽध्यायः

शधाकृष्णयोः पुनर्मेलनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गणेशपूजनं कृत्वा माधवो यादवेः सह । देवैर्मुनिभिरन्यैश्च देवीभिः सह नारद ॥ १ ॥

अंशेन देवां देवीर्मा रुक्मिण्याद्याभिरेष च ।

प्रययो द्वारकां रम्यां तस्यां सिद्धाश्रमे स्वयम् ॥ २ ॥

कृत्वा सुप्रीतिसम्भाषां सादं गोलोकयासिभिः ।

गोपैः सुहृद्भिर्नन्देन मात्रा गोप्या यशोदया ॥ ३ ॥

उवाच मातरं तातं सुनीतञ्च यथोचितम् । गोपांश्चगोकुलस्यांश्च बन्धुवर्गांश्च साम्प्रतम्

श्रीमगवानुवाच ।

गच्छ नन्दयजं नन्द तातप्राणस्य वल्लभ । मातर्यंशोदे त्वमपि परमार्ये यशस्विनी ॥ ५ ॥

भुक्त्वा कालावशेषञ्च गच्छ गोकुलमुत्तमम् ।

सालोक्यमुक्तिं दास्यामि सादं गोकुलयासिभिः ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः पित्रोरनुमतेन च । जगाम राधिकास्थानंनन्दश्च गाकुलंतथा

ददर्श राधां रुबिरां मुक्ताहाराञ्च सस्मिताम् ।

यथा द्वादशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयोवताम् ॥ ८ ॥

रत्नोच्चैरासनस्थाञ्च गोपीत्रिशतकोटिभिः ।

आवृतां वेत्रहस्ताभिः सस्मितामिश्च साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा च दूरतो राधा श्रीकृष्णं प्राणवल्लभा । शिशुवेशं सुवेषाञ्च सुन्दरेशञ्च सस्मिताम् ॥

नवीनजलदृश्यामं पीतकौशेययाससम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ११ ॥

प्रयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यशोभितम् । ईदृक्षास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ १२ ॥

नं ८ ३ मनोहरम् । मुरलीहस्तविन्द्यस्तं सुप्रशास्तञ्च दर्पणम् ॥ १३ ॥

जनेन च समुत्थाय गोपीभिः सह सादरम् । प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव परमेश्वरम्  
राधिकोवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।

यद् दृष्ट्वा मुखचन्द्रं ते सुस्निग्धं लोचनं मनः ॥ १५ ॥

पञ्च प्राणाश्च स्निग्धाश्च परमात्मा च सुप्रियः । उभयोर्हर्षयोजञ्च दुर्लभं यन्धुदर्शनम्  
शोकाण्ये निमग्राहं प्रदग्धाचिरहानलैः । तां दृष्ट्वामृतदृष्ट्या च सुपिकाद्य सुरीतला  
प्रिया शिवप्रदाहञ्च शिषयोजा त्वया सह । शिवस्वरूपा निष्प्रेष्टाप्यदृष्टा च त्वया विना

। त्वयि तिष्ठति देहे च देही श्रीमान् शुचिः स्वयम् ।

सर्वशक्तित्वरूपा च शिवरूपो गते त्वयि ॥ १६ ॥

स्त्रीपुंसोर्विरहो नाथ सामान्यश्च सुदाहणः ।

यान्त्वेव शक्तिमिः प्राणा विच्छेदात् परमात्मनः ॥ २० ॥

सुकवाराधिका देवी परमात्मानमीश्वरम् । स्वासने वासयामास कृत्वा पादाचनंमुदा  
एजसिहासने श्रीमानुवास राधाया सह । गोपीभिः सहितः शयत्सेवितः श्वेतचामरैः  
चन्दना सा ददौ मात्रे सुगन्धिचन्दनं हरैः । सस्मितास्तमाला सा रत्नमालां गलेददौ  
पादपर्याबिभे पादपद्मे पद्मावती सती । अर्घ्यं ददौ सा सत्रलं दूर्वापुष्पञ्च चन्दनम् ॥  
मालती मालतीमाल्यं चूडायाञ्च हरेर्ददौ । चम्पा पुष्पस्य पुटकं ददौ च पार्यती सती ॥  
पारिजातञ्च हरये पारिजातं ददौ मुदा । सकर्पूरञ्च ताम्बूलं वासितं शीतलं जलम् ॥

ददौ कदम्बमाला सा कदम्बमालिकां शुभाम् ।

पीडाकमलममृगानममूल्यं रत्नदर्पणम् ॥ २७ ॥

ददौ हस्ते हरेरेव कमला सा सुकोमला । घर्णेन पुरादत्तं घञ्जगुग्मञ्च सुन्दरम् ॥ २८ ॥

साक्षाद्गोपीवनामञ्च सुन्दरो हरये ददौ । मधुपात्रं धधूस्तस्मै मधुरं मधुपूर्णकम् ॥ २९ ॥

सुधापूर्णां सुधापात्रं ददौ भक्त्या सुधामुषो ।

चकार पुष्पशल्याञ्च गीरी चन्दनवर्चिताम् ॥ ३० ॥

मृगामालतीपुष्पमालाजालविभूषिताम् । खनेन्द्रसारनिर्माषमन्दिरे सुमनोहरे ॥ ३१ ॥

मणीन्द्रमुक्तामाणिवयहीरहारविभूषिते । कस्तूरीकुङ्कुमात्केन वायुना सुरभोग्ने ॥ ३२ ॥  
 रत्नप्रदीपघटकैर्ज्वलद्विध सुदीपिते । भूषितैः सततं भूमेर्नानावस्तुसमन्वितैः ॥ ३३ ॥  
 वृत्रघा शय्यां रतिकरीं ययुर्गांघ्यसस्मिताः । दृष्ट्वापारहसि कल्पञ्च सुरम्यं मुमनोहरम्  
 माधवो राधया सार्धं विवेश रतिमन्दिरम् ।

नानाप्रकारहास्यञ्च परिहारं स्मरोञ्चितम् ॥ ३५ ॥

द्वयोर्यंभूय तल्पे च मदनानुरयोस्तथा । माल्यं ददौ च कृष्णाय ताम्बूलञ्च सुवासितम्  
 कस्तूरीकुङ्कुमात्कञ्च चन्दनं श्यामवक्षसि । चात्कम्पकपुण्यञ्च सूडायां प्रददौ सती ॥  
 सहस्रदलसंस्तम्बीडापत्रं करे ददौ । प्रक्षिप्य मुरलीं हस्तात् प्रददौ रत्नदर्पणम् ।

पारिजातस्य कुसुममम्लानं पुरतो ददौ ॥ ३८ ॥

उवाच मधुरं राधा रहस्यं मधुरं घचः ।

सस्मिता सस्मितं शान्तं कान्तं कान्तामनोहरम् ॥ ३६ ॥

श्रीराधिका उवाच ।

निष्फलं मङ्गलप्रश्नं मङ्गलं मङ्गलालये । सर्वमङ्गलर्वाजे च माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे ॥ ४० ॥

तथापि कुशलप्रश्नं साम्प्रतं समयोचितम् ।

लौकिको व्यवहारोऽपि वेदेभ्यो बलवांस्तथा ॥ ४१ ॥

कुशलं रुक्मिणीकान्त सत्यमामेश साम्प्रतम् । महेन्द्रेण समं युद्धं लीलया च यदाह्वय

पारिजातरुं स्वर्गादुत्पाट्य चामरावतीम् ।

गत्वा विजित्य देवांश्च तस्यै दत्तमिति श्रुतम् ॥ ४३ ॥

पुण्यकञ्च वृत्तनेन पारिजातेन सुव्रतम् । त्वामेव साध्यं कान्तञ्च सम्पूर्णं दक्षिणां ददौ

प्रह्लेशशोषासाध्यस्त्वं तथासाध्यः वृत्तः कथम् ।

सर्वाभ्यः कामिनीभ्यश्च सत्यमामां विभर्षि च ॥ ४५ ॥

रुक्मिण्याः प्रेमसौभाग्यमतिरिक्तञ्चगौरवम् । भयमानञ्च धन्यायां सत्यायां सततं ध्रुवम्

सत्यं जाम्बवतीकान्त घट् माञ्च मुनिश्चितम् ।

वासु सर्वासु कान्तासु कस्यास्ते प्रेम चाधिकम् ॥ ४७ ॥

बनुर्दिशाधिकरात्तयोऽध्यायः ] • कृष्णप्रतिराधोक्तिः •

शुद्धारे सर्वमाये वा तामु का रसिका परा ।

त्वयि स्निग्धा विदग्धाःका तामु धन्यातिमुपता ॥ ४८ ॥

सा स्त्री भाषानुरक्ता वा भार्यां पाति पतिश्च सः ।

प्रेमातिरिक्तं स्त्रीणांसांस्त्रैलोक्येषु सुदुर्लभम् ॥ ४९ ॥

सिका स्त्री विजानाति सती गुणवती पतिम् । गुणवं रसिकं शूरं सुरीलं सुरतीसदृशं

गदावति पद्मार्थं मधुलोभान्मधुपतः । भेकस्तत्र हि जानाति तन्मूर्ध्नि पादमुत्सृजेत्

त्रीजानाति सर्द्वीतरसं यन्त्रञ्च नैव च । दृग्भ्रम्वद्विदग्धश्च न द्यौं नैव च भाजनम्

परिपक्वफलास्याहं जानन्ति भोगिनः सुखम् ।

एकप्रापस्थिताः सद्यश्च किञ्चित् फलिनो यथा ॥ ५३ ॥

गितलजलास्याहं विजानन्तिनृपालयः । न च पापी न च घटश्चेत् कुत्रापिस्थितोयथा

भोगिनो हि विजानन्ति शालिभ्यादुरसं परम् ।

एकप्रापस्थितेषु न क्षेत्रं भाजनं यथा ॥ ५५ ॥

ये चन्दनाप्राणं चन्दनार्थो च भोगपितृ । न गर्भो भारवाही न तस्य वाचिवापथा

यं न जानन्ति वेदाश्च ब्रह्मोद्यानादयस्तथा ।

योगिनो मुनयः सिद्धास्तं किं जानन्ति योचितः ॥ ५७ ॥

तस्य गौरवं प्रेम दुर्लभं निरवनूतनम् । योचिताश्च परं नैव सृजन्तिं शलोक च ॥

भरयुश्चित्तो निपतनं प्राप्नोत्येष भुवं प्रभो ।

भाराद्विपसिपोद्भव येष्पञ्चानां विदंसनम् ॥ ५९ ॥

धीशमा च मया शनस्त्यद्वृत्तो भक्त्यगमनः ।

एतादृशी विपत्तिर्मे पुत्र धीशमसापनः ॥ ६० ॥

विपत्तस्य वा बन्धु त्रियो वा विप्रियस्तथा । सतर्पभनिरात्पथयो भक्त्यनसंशयः

वेदाश्च वेदिकाः सन्तः पुतापानि वरन्ति च ।

साधापा साधवः साध्वो भगवानिति निष्पन्नम् ॥ ६२ ॥

विद्याश्च सगर्वास्तुं वापस्यनुजहन्तवन् । इत्यावद्विद्वन्सांश्रितः सत्यावज्जसापंक्तः

भहोत्वयि समायाते क्वचिर्मर्णाकिमुवाच ह । प्रेमस्थितं समानं ते किं विवृडञ्चर्गाख्यम्  
 कुरुपाण्डवमुद्रेन कुर्यां निहतास्त्वया । पाण्डवार्थं तथा मूयाः क साम्यं परमात्मनः  
 साक्षात्सहोद्रेज्जातस्य कान्तेयस्यार्जुनस्य च । राजमण्डलमध्यस्थो भवानेव हि सारथिः  
 तेन भक्तेन शुद्धेन भीष्मेण च महात्मना । लज्जितेन किमुक्तं ते महर्तुषु सनासु च ॥  
 देवैरपि कथं दृष्टो प्रहोराशंसद्रकैः । मत्सिद्धेर्भूतेः सर्वेन चोक्तं किञ्चिदेव सः ॥  
 यद्धानिर्वचनीयश्च येशु च नतुर्गुं च । पुराणेष्वितिहासेषु प्रकृतेः पर ईश्वरः ॥ ६६ ॥  
 निर्गुणश्च निर्दोहश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मणाम् । कर्मणां साक्षिरप्यश्च मत्तानुग्रहप्रदः ॥  
 परं ब्रह्म परं ज्योतिः परमेशः परात् परः । परमात्मा च सर्वेषां सृजो नरत्थस्थितः ॥

त्वया कुरुजा च सम्भुक्ता वृद्धा क्षत्रियकामिनो ।

अपुत्रिणी चाधिकार्ह्णा मूलास्पृश्या च प्राक्तनात् ॥ ७२ ॥

त्वया च निहतः कंसो मानुलः केन हेतुना ।

धायस्यतीति वृत्त्या च गतं न पुनरागतम् ॥ ७३ ॥

निहत्य यादवान् सर्वान् विभज्य द्वारकां पुरीम् ।

त्वां निवध्य समानेतुमोश्वरो धारिता जनैः ॥ ७४ ॥

इत्युत्त्वा राधिकादेवी भृशमुच्चै रुरोद सा । मूर्छां सम्प्राप सहसा निर्निश्वासा यभूवद्  
 गोप्योगवाक्षजालस्थाः शुश्रुवुर्दृष्टुस्तथा । दृष्ट्वा तामाययुः सर्वा ऊचु राधा मृतेतिव

उच्चैस्ता रुदुः सर्वाः क्रोडे वृत्वा च राधिकाम् ।

ऊचुस्ता रक्ष रक्षेति हरे नरहरे प्रभो ॥ ७७ ॥

गोप्य ऊचुः ।

किं कृतं किं कृतं कृष्ण त्वया राधा मृता च नः ।

राधां जीवय भद्रं ते यास्यामः काननं धयम् ।

अन्यथा स्त्रीवधं तुभ्यं दास्यामः सर्वयोपितः ॥ ७८ ॥

गोपीनां वचनं श्रुत्वा राधिकायाश्च माधवः । उवाच जीवयामास सुधादृष्ट्यावनाम्  
 उत्तस्थौ राधिका देवी रूदन्ती मानिना सती ।

गोप्यस्तां बोधयामासुः क्रोड्ये कृत्वा पुनः पुनः ॥ ८० ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राधे प्रवक्ष्यामि ज्ञानमाध्यात्मिकं परम् ।

यच्छ्रुत्वा हालिको मूर्खः सद्यो भवति पण्डितः ॥ ८१ ॥

जात्याहं जगतां स्वामी किं रुक्मिण्यादियोषिताम् ।

कार्यकारणरूपोऽहं व्यक्तो राधे पृथक् पृथक् ॥ ८२ ॥

एकात्माहञ्च विश्वेषां जात्या ज्योतिर्मयः स्वयम् ।

सर्वप्राणिषु उपस्था चाप्याब्रह्मादितृणादिषु ॥ ८३ ॥

एकस्मिन् भुक्तवति न तृष्टोऽन्यो जनस्तथा ।

मप्यात्मनि गतेऽप्येको मृतोऽप्यन्यः सुजीवति ॥ ८४ ॥

जात्याहं कृष्णरूपश्च परिपूर्णतमः स्वयम् । गोलोके गोकुले रभ्ये क्षेत्रे वृन्दावने वने ॥

द्विभुजो गोपवेशश्च स्वयं राधापतिःशिशुः । गोपालेगोपिकाभिश्च सहितकामधेनुभिः

चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे द्विधारूपः सनातनः । लक्ष्मीसरस्वतीकान्तः सततं शान्तचिह्नः

यन्मानसीसिन्धुकन्यामल्यलक्ष्मीपतिर्भुवि । श्वेतद्रोणे च क्षीरोदे तत्रापि च चतुर्भुजः

अहं नारायणपिश्च नरो धर्मः सनातनः । धर्मवक्ता च धर्मिष्ठो धर्मवत्तं प्रवर्तकः ॥ ८६ ॥

शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपा च धर्मिष्ठा च पतिव्रता । अत्र तस्याः पतिरहं पुण्यक्षेत्रे च भारते

सिद्धेशः सिद्धिदः साक्षात् फणिलोऽहं सतोपतिः ।

नानारूपधरोऽहञ्च व्यक्तिभेदेन सुन्दरि ॥ ६१ ॥

अहंचतुर्भुजः शश्वद् द्वार्वत्पत्न्यां रुक्मिणीपतिः । अहंक्षीरोदघापी च सरयुभामा शृदेशुभे

अन्यासां मन्दिरेऽहञ्च कायब्यूहान् पृथक् पृथक् ।

अहं नारायणपिश्च काङ्गुनस्यास्य सारथिः ॥ ६३ ॥

स नरपिर्धर्मपुत्रो मद्रंशो चलचान् भुवि । तपसारापितस्तेन सारथ्येऽहञ्च युष्करे ॥

पथा त्वं राधिकादेवी गोलोके गोकुले तथा ।

वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ॥ ६५ ॥

भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशाग्निःप्रिया । धर्मपुत्रकभूस्त्वञ्च शान्तिर्लक्ष्मीस्वर्गनि  
कणिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती ।

स्य सीता मिथिलायाञ्च त्यञ्छाया द्रौपदी सती ॥ १३ ॥

द्वारपत्यामहालक्ष्मीर्भवती रश्मिर्णी सती । पञ्चानां पाण्डवानाञ्च भवती कल्याणिय  
राघणेनृता त्यञ्चत्यञ्च रामस्य कामिनी । नानारूपाय्या त्यञ्च छाप्याकल्यासर्ति  
नानारूपस्तथाहृष्य स्वोशन कन्या तथा । परिपूर्णतमोऽहञ्च परमात्मा परात् पर  
इति ते कथितं सर्वमाध्यात्मिकमिदं सति । राधे सर्वापराधं मे क्षमस्य परमेश्वरि ।  
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा परितुष्टा च राधिका । परितुष्टाश्च गोप्यश्च प्रणोमुः परमेश्वरम् ।

इति श्रीमहाभयवचनं महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
राधाकृष्णसंवादे चतुर्विंशधिकशततमोऽध्यायः ।

## पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा प्रहृष्टा गोपिका मुदा । मन्दिरंप्रययुः सर्वाः प्रणम्य राधिकांप्रभुम्

राधा शृङ्गारभावञ्च कलापोद्देशपूर्वकम् ।

चकार सस्मिता साध्वी वक्रचञ्चललोचना ॥ २ ॥

दत्त्वा च चन्दनं माल्यं स्वामिने पुनरेव च । रहस्यञ्च परीहास्यं पुनरेव चकार सः ॥  
भारुष्य राधिकां कृष्णः समानीयस्ववक्षसि । ओष्ठाधरं कपोलञ्च गण्डयुग्मं बुबुभुष्व

राधा बुबुभुष्य कृष्णस्य मुखचन्द्रं मनोहरम् ।

चकार कृष्णं प्राणेशं दाहृभ्याश्च स्ववक्षसि ॥ ५ ॥

। ह्रीं पुंस्त्रीस्तोषजनकं चकार भगवाद्भुः



विधुतसर्वाङ्गा दसनेनाधरक्षता । पुलकाञ्चितदेहा सा तन्द्रिता धामनस्तनी ॥ ७ ॥  
 च्युता सुखसम्मोगाद्विलम्बा हतचेतना । श्वासमात्रावशेषा च निद्रामुद्रितलोचना ॥

रक्षिरा कोमलाङ्गी कान्तवक्षःस्थलस्थिता ।

शांते सुखोष्णसर्वाङ्गी श्रोत्रे सा सुखशीतला ॥ ६ ॥

द्वारकाले सुखदा सान्द्रधोणोपयोधरा । नितम्बभारनम्रा च प्रसङ्गसुखदायिका ॥  
 श्वासरसिकाध्रेष्ठा कामुकी च पराङ्गना । सहसाचेतनंप्राप्य शुश्राव कोकिलध्वनिम्  
 ध्रुत्वा परमभीता सा शीता दानविशङ्कया ॥

राध परमा सा च परमेशं परात् परम् । प्रादुधोणीयुगाम्पाञ्च निवध्य च पुनः पुनः  
 राधिकोपाच ।

सं गच्छ महाभाग पुण्यं वृन्दावनं धनम् । तत्रक्रीडां करिष्यामि जलेन च स्थलेनच  
 त्वास्यामि मलयं सुन्दरं मणिमन्दिरम् । अपरं यद्रहस्यं वा जन्मना न धृतं मया ॥  
 तद्यामि त्वया सार्द्धमिति मे लालसा परा । परस्परैकालापेन प्रययौ रजनी शुभा ॥

अरुणोदयकालेऽपि न त्यजेन्म्राधर्यं सती ।

माधयः प्रीतिवचसा योधयामास साधनात् ॥ १६ ॥

तःकृत्यं ततः कृत्वा स्वाहरोह रथं हरिः । गोपीभी राधया सार्धं शरत्कमललोचनः  
 योजनायतविस्तीर्णं गृहैस्त्रिशतकोटिभिः । मणीन्द्रसारनिर्माणैर्ज्वलद्विरुपशोभितम्  
 गोलोकादागतं तत्र मनोयायि मनोहरम् । सहस्रचक्रसंयुक्तं सहस्राश्वैः प्रचालितम् ॥  
 मणिस्तम्भैस्त्रिकोटीभी रत्नराजिविराजितम् । मुक्तामाणिव्ययपवनैर्होर्ध्वारैःसुशोभितम्  
 नानाचित्रैर्विचित्रैश्च श्वेतवामरदर्पणैः । घट्टिशुद्धांशुकैर्दत्तिमालाजालैर्धिभूषिताम् ॥२१॥  
 रत्ननिर्माणतल्पैश्च पुष्पचन्दनचचितम् । समानरूपवेशैश्च गोपीलक्षैः समावृतम् ॥२२॥  
 स्थेन तेन भगवान् पुनर्वृन्दावनं ययौ । तत्र गत्वा निशाकाले घिञ्जहार जले स्थले ॥  
 शृङ्गारं सुचिरं कृत्वा धनेयूपवनेषु च । राधिकां दर्शयामास यथा सर्वञ्च नूतनम् ॥  
 विष्णुके सुरसने माहेन्द्रे नन्दने धने । सुमेरुशिखरे रम्ये पर्वते गन्धमादने ॥ २५ ॥  
 तिले शैले सुन्दरे च कन्दरे कन्दरे धने । पुष्पोद्याने सुरहसि नद्यां नद्यां नदे नदे ॥२६॥

समुद्रपुल्लिने रभ्ये पारिजातवने वने । सुमद्रे पुण्यमद्रे च नारायणसरोवरे ॥ २३ ॥  
 पवनस्यैष निलयं मलये च सुरालये । त्रिकूटे भद्रकूटे च पञ्चकूटे सुकुमुटे ॥ २८ ॥  
 देवानां कमनीयायां काञ्चनायाञ्च तथैव च । समुद्रे च समुद्रे च द्वीपे द्वीपे मनोहरे ॥ २९ ॥  
 स्वर्गरे प्रवरे रभ्ये पुण्यचन्द्रसरोवरे । सुपार्श्वे मुनिपार्श्वे च स रेमे रामया सह ॥ ३० ॥  
 शीघ्रञ्च पुनरागत्य जम्बूद्वीपञ्च पुण्यदम् । द्वारकां दर्शयामास पर्वतं रैवते तथा ॥ ३१ ॥  
 गोकुलं पुनरागत्य गोपगोकुलसङ्कुलम् । तत्र दृष्ट्वा च भाण्डीरं पुण्यं वृन्दावनं ।  
 श्रीकृष्णममनं धृत्या यशोदा नन्द एव च ।

गोपीगोप्यश्च वृद्धाश्चाप्यधुनेश्च निराकुलाः ॥ ३३ ॥

पारणेन्द्रं पुरस्त्वस्य चेशयाञ्च नटनर्तकाः । पतिपुत्रपतीं सार्ध्यां ब्राह्मणीं ब्राह्मणं तथा  
 यथा देवाश्च घृहिञ्च दृष्ट्वा नन्दञ्च मातरम् ।

आपयुर्वालकृष्णश्च राधया सह माधवः ॥ ३५ ॥

मानुः क्रीडमाद्यरोह प्रहस्य मधुसूदनः । नन्दं यशोदाया साद्धं चुचुष्व मुक्षपङ्कजम्  
 आश्लिष्य भृशमुच्चैश्च सिपेचनेत्रजैर्जलैः । स्वयं च भगवान् कृष्णो यशोदायास्तनयं  
 तादृशं ददृशुः सर्वे यादृशो मथुरां यथा । मुरलीहस्ताचिन्यस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ३८ ॥  
 यथैकादशवर्षीयं शोभितं पीतवाससा । मयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यमण्डितम् ॥ ३९ ॥

मन्दिरं वेपयामास राधया सह माधवम् ।

यशोदा मङ्गलं कृत्वा भोजयामास ब्राह्मणान् ॥ ४० ॥

पूजां चकार गोपीनां मुनीनाञ्च यथा जनः ।

मणिरत्नं प्रवालञ्च सुचर्णं परमं तथा ॥ ४१ ॥

मुक्तामाणिक्यहीरञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । गजरत्नं गवां रत्नमश्वरत्नं मनोहयम् ॥  
 आसनानि च पात्राणि भूषणानि तथैव च ।

धान्यान्यपि च शस्यानि घस्त्राणि च तथा ददौ ॥ ४३ ॥

अपूर्वं दर्शयामास राधया सह माधवम् । गोपीगणञ्च मिष्टान्नं सादरेणापि नाद ॥  
 दुन्दुभीन् वादयामास कारयामास मङ्गलम् ।

देषाश्च भोजयामास स्नानन्द्रव्य मनोहरम् ॥ ५५ ॥  
इति धोमद्वयैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीरुष्णजन्मखण्डे  
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

## षड्विंशतिशततमोऽध्यायः ।

### कलिधर्मवर्णनम् ।

धोनारायण उवाच ।

धोष्णश्च समाह्वानं गोपांश्चापि चकार सः । भाण्डीरे घटमूले च तत्र स्वयमुवाच ह  
गुणैश्च दर्शो तस्मै यत्रैव प्राद्वर्णागणः । उवाच राधिकादेवी वामपार्श्वे हरेरपि ॥२॥  
शिये नन्दगोपश्च यशोदासहितस्तथा । तद्दक्षिणे घृषभानुस्तद्वामे सा कलायती ॥३॥

भन्ये गोपाश्च गोप्यश्च घान्धयाः सुहृदस्तथा ।

तानुवाच स गोपिन्दो याधार्थ्यं समयोचितम् ॥ ४ ॥

ध्रीभगवानुवाच ।

शु नन्द प्रवक्ष्यामि साग्रतं समयोचितम् । सत्यञ्च परमार्थञ्च परलोकमुखावहम् ॥  
आश्रयस्तम्मपर्यन्तं भ्रमं सर्वं निरामय । विद्युद्दीप्तिः जले रेखा यथा तोयस्य बुद्बुदम्  
मधुरायां सर्वमुक्तं नापशोपञ्च किञ्चन । यशोदां बोधयामास राधिका कदलीवने ॥७॥  
तद्देव सत्यं परमं भ्रमध्वान्तप्रदोपकम् । विहाय मिथ्यामायाञ्च स्मर तत् परमं पदम् ॥  
जन्ममृत्युजराव्याधिहरं हर्षकरं परम् । शोकसन्तापहरणं कर्ममूलनिवृत्तनम् ॥ ६ ॥  
मोक्षं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । ध्यायं ध्यायं पुत्रबुद्धिं त्यक्त्वा लभ परं पदम् ॥  
गोलोकं गच्छ शीघ्रं त्वं साद्धं गोकुलवासिनिः । आरात्कलेरागमनं कर्ममूलनिवृत्तनम्

स्त्रीपुंलौनिपमो नास्ति जातीनाञ्च तथैव च ।

विने सन्ध्यादिकं नास्ति चिह्नं यक्षोपवीतकम् ॥ १२ ॥

यज्ञसूत्रञ्च तिलकं शेषं लुप्तं सुनिश्चितम् । दिवान्यवावनिरतं चिरतं धर्मकर्मणि ॥ १३ ॥  
 यज्ञानाञ्च व्रतानाञ्च तपसां लुप्तमेव च । केदारकन्यारापेन धर्मो नास्त्येव केवलम् ॥  
 स्वच्छन्दगामिनीस्त्रीणां पतिश्च सततं वशे । ताडयेत् सततं तञ्च भर्तस्येव दिवानिराम  
 प्राधान्यं स्त्रीकुटुम्बानां स्त्रीणाञ्च सततं वशे ।

स्वामी च भक्तस्तासाञ्च पराभूतो निरन्तरम् ॥ १६ ॥

कलौ च योषितः सर्वा जारसेवासु तत्पराः । शतपुत्रसमस्नेहस्तासां जारं भविष्यति  
 ददाति तस्मै भक्ष्यञ्च यथा भृत्याय कोपतः ।

सस्मिता सकटाक्ष सामृतदृष्ट्या निरन्तरम् ॥ १८ ॥

जारं पश्यति कामेन विषदृष्ट्या पतिं सदा । सततं गौरवं तासां स्नेहञ्च जारबान्धवे ।  
 पत्यौ कप्रहारञ्च नित्यं नित्यं करोति च । मिष्टान्नं श्रद्धया भक्त्या जारायप्रददाति च  
 वेश्युक्ता च सततं जारसेवनतत्परा । प्राणा बन्धुर्गतिश्चात्मा कलौ जारश्च योषिताम्  
 लुप्ता चातिथिसेवा च प्रलुप्तं विष्णुसेवनम् । पितृणामचंनञ्चैव देवानाञ्च तथैव च ।  
 विष्णुवैष्णवयोर्द्वेषो सततञ्च नरो भवेत् । वाममन्त्रोपासकाश्च चतुर्वर्णाश्चतत्पराः ॥  
 शाळग्रामञ्च तुलसीं कुशं गङ्गोदकं तथा । नस्पृशेन्मानवो धूर्तो भ्लेच्छाचाररतः सदा ॥  
 कारणं फारणानाञ्च सर्वेषां सर्वयीजकम् । सुखदं मोक्षदं शश्वहातारं सर्वसम्पदम् ॥

त्यक्तवा मां परया भक्त्या क्षुद्रसम्प्रत्प्रदायिनम् ।

पेदनिन्दां वाममन्त्रं जपेद् विप्रश्च मायया ॥ २६ ॥

सनातनो विष्णुमाया घञ्जितं तं करिष्यति । ममाज्ञया भगवती जगताश्च पुरस्वया ॥  
 कलेर्दशसहस्राणि मर्त्या भुवि तिष्ठति । तदर्धानि च पर्षाणां गङ्गा भुवनपापनी ॥ २६  
 तुलसीं विष्णुभक्ताश्च यावद्गङ्गा च कीर्तनम् । पुराणानि च स्वल्पानि तापदेवमर्हात्मने  
 मम चोत्कीर्तनं नास्ति पृथग्दन्ते कलौ प्रज ।

एकवर्णा भविष्यन्ति किराता यन्तिनः शठा ॥ ३० ॥

पित्रोः सेवा गुरोः सेवा सेवा च देवविप्रयोः । विपजिता नराः सर्वैवातिथीनात्प्रेष्य  
 शन्यहोना भवेन् पृथ्या सा चावृष्ट्या निरुतत् ॥

फलहीनोऽपि पूषाश्च जलहीना सारिता ॥ ३२ ॥

वेदरंभो ब्रह्मवधश्चलहानश्च भूरातिः । ज्ञानिहीना जनाःसर्वेस्तेऽप्यो भूतो भविष्यति ॥  
भूतपरादाइपेक्षालं पुत्रः शिष्यभक्तधाम्नुम् । फान्तश्चादाइपेक्षान्तात्सुम्भुव कुटवदुगृही  
नश्यन्ति सचन्नालोकाः कलौ शोभे च पापिनः ।

गूर्वाणामातराण् केचिज्जनोंपेनापि केचन ॥ ३५ ॥

हेवेदंभेद्र गलि कनौ न नश्यन्ति सारुग्यस । पुनः सृष्टिमंयेत् सत्यं सत्यपीजंनिस्तम्  
एतन्मिन्नन्तरे पितृ सधमेव मनोहसम् । चतुर्धाजनविस्तोषे मूर्खे च पञ्चपीजनम् ॥  
गूढमन्त्रिकसद्व्यायं श्येन्द्रसारनिमित्तम् । भ्रमूनागराजिजानानी मालाजालविराजितम् ॥  
मर्षीनां कौम्भुमानाश्च भूषणेन विभूषितम् । अमूढयरत्नकलशो हीरहारविलम्बितम् ॥  
मनोहरेः परित्यक्तं सहस्रकोटिमन्दिरेः । सहस्रप्रपञ्चकञ्च सहस्रहृदयपोटकम् ॥ ४० ॥

सूक्ष्मपद्माच्छाशितम्भ गोपीकोटोभिरावृतम् ।

गोलोकादागतं नृणं वदन्तुः सहसा मजे ॥ ४१ ॥

छन्नात्रया तमाप्यत्र यगुगोलोकमुत्तमम् । राधा कलावतोदेयी धन्या चायोनिसम्भवा  
गोलोकादागता गोप्यध्यायोनिसम्भवाश्च ताः । धूमिपत्न्यधस्ताःसर्वाःस्वशरीरेणनात्  
सर्वे स्वपत्या शरीराणि नश्यराणि मुनिश्चितम् ।

गोलोकम्भ ययो राधा सार्धं गोबुलरासिभिः ॥ ४४ ॥

दस्यं पितृजातोर्दं नानाएतनविभूषितम् । सद्गुसीर्यं ययो वित्र शतशृङ्गञ्च पर्वतम् ॥ ४५ ॥  
नानामणिगणकाकोषं रासमण्डलमण्डितम् । ततो ययो किण्वदुर्दं पुण्यं वृन्दापनं वनम्  
सा दूरसांश्रयवटमूर्खे त्रिशतधोजनम् । शतधोजनविस्तोषे शापाकोटिसमावृतम् ॥  
रक्षणेः फलोपेक्ष स्मृतीरेषि विभूषितम् । गोपीकोटिसहस्रीश्च सार्धं वृन्दा मनोहरा ॥  
वनयुग्मं खादुरद्वयं सस्मिता सा समापयो । भवच्छ त्थातूर्णं राधां सा प्रणवाम च  
रासेश्वर्यं तां स्यामाप्य प्रविशेश स्वमालयम् । रत्नसिंहासने रभ्ये हीरहारसमन्वितम्  
वृन्दा तो वासयामास वादसेवनशृपरा । सप्तभिश्च सप्तोभिश्च सेषिता श्येत्माचरैः ॥  
यापुगुणाविकाः सर्वा द्रुं तां परयेष्यतेम् । नन्शक्तिं प्रकल्पयेत्प्राधावासं पृथक्पृथक्

परमानन्दरूपा सा परमानन्दपूर्वकम् । स्वर्गमनि महाशब्दे प्रतप्ते गोपिकासह ११३१

इति श्रीकृष्णवर्णने महापुराणे नारायणनाम्नसंवादे श्रीकृष्णकर्मवर्णने

कलिधर्मवर्णने नाम ऋषिशापिक्रान्तप्रमोऽध्यायः

सप्तविंशधिकशततमोऽध्यायः ।

श्रीकृष्णस्य गौलीकगमनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णो भगवांस्तत्र परिपूर्णतमः प्रभुः ।

दृष्ट्वा सालोक्यमोक्षञ्च सद्यो गोकुल्यासिनाम् ॥ १ ॥

उवाच पञ्चभिर्गोपैर्भाण्डीरे षट्मूलके । ददर्श गोकुलं सर्वं गोकुलं व्याकुलं तथा ॥२॥

अरक्षकञ्च व्यस्तञ्च शून्यं वृन्दावनं घनम् । योगीनामृतवृष्ट्या च कृपयाचक्रुपानिधिः

गोपीभिश्च तथा गोपैः परिपूर्णं चकार सः । तथावृन्दावनञ्चैव सुरभ्यञ्च मनोहरम्

गोकुलस्थांश्च गोपांश्च समाद्वासं चकार सः ।

उवाच मधुरं वाक्यं हितं नीतञ्च दुर्लभम् ॥ ५

श्रीभगवानुवाच ।

हे गोपगण हेवन्द्यो सुखं तिष्ठन् स्थितो भव ।

रमणं प्रियया साल्ढं सुरभ्यं रासमण्डलम् ॥ ६ ॥

तावत्प्रभृति कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने घने । अधिष्ठानञ्च सततं यावच्चन्द्रद्विवाकरो ॥

तथा जगाम भाण्डीरं विधाता जगतामपि ।

स्वयं शेषश्च धर्मश्च भवान्यां च भवः स्वयम् ॥ ८ ॥

सूर्यश्चापि महेन्द्रश्च चन्द्रश्चापि हुताशनः ।

कुवेरो घटणश्चैव पवनश्च यमस्तथा ॥ ९ ॥

रसानश्वापि देवाश्च वसवोऽष्टौ तथैव च । सर्वे ब्रह्माश्च छद्माश्च मुनयो मनवस्तथा ॥  
त्वयिताश्चाप्ययुः सर्वे यथास्ते भगवान् प्रभुः ।  
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तमुवाच विधिः स्वयम् ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच ।

परिपूर्णतम ब्रह्मस्वरूप नित्यविग्रह । ज्योतिःस्वरूप परम नमोऽस्तु प्रकृतेः पर ॥१२॥  
सुनिर्लिप्त निराकार साकार ध्यानहेतुना । स्वेच्छामय परं धाम परमात्मब्रह्मोऽस्तु ते  
सर्वकार्यस्वरूपेश कारणानां च कारण । ब्रह्मेशरीपदेवेश सर्वेश ते नमो नमः ॥ १४ ॥  
सरस्वतीश पद्मेश पार्वतीश परात्पर । हे सावित्रीश राधेश रासेश्वर नमोऽस्तु ते ॥  
सर्वेगामादिभूतस्त्वं सर्वः सर्वेश्वरस्तथा । सर्वपाता च संहर्ता सृष्टिरूप नमोऽस्तु ते ॥  
त्वत्पादपद्मरजसा धन्या पूता वसुन्धरा । शून्यरूपा त्वयि गते हे नाथ परमं पदम् ॥  
यत् पञ्चविंशत्यधिकं वर्षाणां शतकं गतम् ।

त्यक्तवेमां स्वपदं यासि रुदन्तीं विरहानुराम् ॥ १८ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

श्लेषा प्रार्थितस्त्वञ्च समागत्य वसुन्धराम् । भूभास्वरुणं कृत्वा प्रयासि स्वपदं विभो  
श्रेलोक्ये वृषिषी धन्या सद्यःपूता पदाङ्किता ।

वयञ्च मुनयो धन्याः साक्षाद् दृश्या पद्माम्बुजम् ॥ २० ॥

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो मुनीनामूर्ध्वरैतसाम् ।

अस्माकमनघब्रेशः सोऽधुना बाधुषो भुषि ॥ २१ ॥

पातुः सर्वनिघातञ्च विश्वानि यस्य लोमसु । देवस्तस्य महाविष्णोर्षामुदेयो महीतले  
सुचिरं तपसा लभ्यं सिद्धेन्द्राणां सुदुर्लभम् । यत्पादपद्ममनुलं बाधुषे सर्वजीविनाम्

अनञ्ज उवाच ।

स्मर्तन्तो हि भगवाद्ब्राह्मेव कलांशकः । विश्वैकस्थे क्षुद्रकूर्मे मशकोऽहं गजे यथा ॥

असंख्यशेषाः कूर्माश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।

असंख्यान्यनि च विश्वानि तेषामीशः स्पर्शं भवान् ॥ २५ ॥

अस्माकमीदृशं नाथ सुदिनं क्व भविष्यति । स्वप्नादृष्टञ्च यश्चेशः स दृष्टःसर्वजीविनाम्  
नाथ प्रयासि गोलोकं पूर्तां हृत्वा वसुन्धराम् ।

तामनाथां रदन्तीञ्च निमग्रां शोकसागरे ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः ।

वेदास्तोतुं न शक्ता यं ब्रह्मेशानादयस्तथा । तमेव स्तवनं किंवा धयं कुर्मो नमोऽस्तु ते  
इत्येवमुक्त्वा देवास्ते प्रययुर्द्वारकां पुरीम् । तत्रस्थं भगवन्तञ्च द्रष्टुं शीघ्रं मुदान्विताः ॥

अथ तेषाञ्च गोपाला ययुर्गोलोकमुत्तमम् । पृथिवी कम्पिता भीता चलन्तःसप्तसागरः  
हृत्त्रियं द्वारकाञ्च त्यक्त्वा च ब्रह्मशापतः । मूर्तिं कदम्बमूलस्थां विवेश राघिकेश्वरः ॥

ते सर्वे चैरकायुजे निपेतुर्वादधास्तथा । चितामारुह्य देव्यञ्च प्रययुः स्वामिभिः सह ॥  
धर्जुनःस्वपुरं गत्वा तमुवाच युधिष्ठिरम् । स राजा भ्रातृभिःसाधं ययौ स्वर्गञ्चभार्यया

दृष्ट्वा कदम्बमूलस्थं तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । देवा ब्रह्मादयस्ते च प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम् ॥  
तुष्टुवुः परमारमानं देवं नारायणं प्रभुम् । श्यामं किशोरघयसं भूपितं रत्नभूषणैः ॥ ३५ ॥

बहिर्द्वारंशुकाधानं शोभितं घनमालया । अतीघमुन्दरं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥  
ध्याधास्त्रसंयुतं पादपद्मं पद्मादिचन्द्रितम् । दृष्ट्वा ब्रह्मादिदेवांस्तानभयं सस्मितं ददौ ॥

पृथिवीं तां समाश्वास्य रदन्तीं प्रेमचिह्नलाम् । व्याघ्रं प्रस्थापयामास परंस्वपद्मुत्तमम्  
चलस्य तेजः शेषे च विवेश परमाद्भुतम् । प्रद्युम्नस्य च कामिके घानिकृद्स्य ब्रह्मणि ॥

अयोनिसम्मया देयी महालक्ष्मीञ्च रुक्मिणी । वैकुण्ठं प्रययौ साक्षात् स्वशरीरेनारव  
सत्यभामा पृथिव्याञ्च विवेश कमलालया । स्वयं जाम्बवतीदेवी पार्वत्यां विदपमाती

या या देव्यञ्च यासाञ्चाप्यंशरूपाञ्च भूतले ।

तस्यां तस्यां प्रविशिशुता एष च पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥

साम्बस्य तेजः स्वन्दे च विवेश परमाद्भुतम् । कश्यपे घमुदेषभाप्यदित्यां देवकी तथा  
रुक्मिणी मन्दिरं त्यक्त्वा समस्तां द्वारकां पुरीम् । सा जग्राह समुद्रञ्च प्रपुरुषवनेक्षणः

लवणोद्ः समागत्य तुष्टाय पुरयोत्तमम् । दतोऽ तद्वियोगेन साधूनेत्रञ्च पिङ्गलः ॥  
सरस्वती पद्मापती च यमुना तथा । गोदापरी रवणरेखा कावेरी नर्मदा मुने ॥



रायती बाहुदा च कृतमाला च पुण्यदा । समाययुश्च ताः सर्वाः प्रणेभुः परमेश्वरम् ॥  
वाच जाह्नवी देवी रुदन्ती परमेश्वरम् । साधुनेत्रातिदीना सा घिरहउवरकातरा ॥४८

भागीरथ्युवाच ।

नाथ रमणश्रेष्ठ यासिगोलोकमुत्तमम् । अस्माकं का गतिश्चात्र भविष्यति फलोत्तुगे  
धीभगवानुवाच ।

कलेः पञ्चसहस्राणि वर्षाणि तिष्ठ भूतले ।

पापानि पापिनो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः ॥ ५० ॥

मन्त्रोपासकस्पर्शाद्दस्मीभूतानितःक्षणात् । भविष्यन्तिदर्शनाच्च स्नानादेव हि जाह्नपि  
तेर्नामानि यत्रैव पुराणानि भवन्ति हि । तत्र गत्वा सावधानमाभिःसार्द्धञ्च धोष्यसि  
राणधवणाद्यैव हरेर्नामानुकीर्तनात् । मस्मीभूतानि पापानि प्रहृहल्यादिकानि च ॥  
।स्मीभूतानि तान्येव धोष्यवाल्लिङ्गनेन च । तृणानि शुष्ककाष्ठानि दहन्ति पापका यथा  
तथापि वैष्णवा लोके पापानि पापिनामपि ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि ॥ ५५ ॥

द्विकानां शरीरेषु सन्ति पूनेषु सन्ततम् । मद्भक्तगदरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा ॥५६॥  
सद्यःपूतानि तीर्थानि सद्यःपूतं जगत्तथा । मन्मन्त्रोपासका विप्रा ये मदुच्छिष्टभोजिनः  
मामेव नित्यं ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिकाः प्रियाः ।

तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पापकः ॥ ५८ ॥

कलेर्दशसहस्राणि मद्भक्ताः सन्ति भूतले । एकवर्णा भविष्यन्ति मद्भक्तेषु गतेषु च ॥  
मद्भक्तान्या पृथिवी कलिप्रस्ता भविष्यति । एतस्मिन्धन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्भिर्गन्तः ॥  
वसुर्भुजश्च पुरुषः शतचन्द्रसमप्रभः । शङ्खचक्रगदापद्मधरः धीपरसलाभ्रुतः ॥ ६१ ॥  
सुन्दरं रथमादह्य क्षीरोर्ध्वं स जगत्ततः । सिन्धुकन्या च प्रपयो स्पर्धं मूर्त्तिप्रती सती  
धौठम्भमानसा जाता मर्त्यलक्ष्मीर्मनीहरा । श्वेतद्वीपं गते विष्णोर् जगत्पात्नकर्त्तरि  
शुद्धसत्त्वस्वरूपे च द्विधारायुो यभूय ह । दक्षिणाङ्गश्च द्विभुजो गोपवाटरकरूपकः ॥६४  
नवानजलदृश्यामः शोभितः पीतवाससा । धीयंशवदनः धीमान् सस्मितः पद्मलोचकः

शतकोटिगुणैर्नित्यैः शतकोटिस्मरप्रभाम् । वृथातः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः ६६

परं धाम परप्रह्लादस्वरूपो निर्गुणः स्वयम् ।

परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ ६७ ॥

नित्यदेही च भगवानाश्चरः प्रकृतेः परः ।

योगिनो यं चिदन्त्येवं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥ ६८ ॥

ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यरूपं मतया विदन्ति यम् ।

वेदा घदन्ति सत्यं यं नित्यमाद्यं चिन्मक्षणाः ॥ ६९ ॥

यं घदन्ति सुराः सर्वे परं स्वेच्छामयं प्रभुम् ।

सिद्धेन्द्रमुनयः सर्वे सर्वरूपं घदन्ति यम् ॥ ७० ॥

यमनिर्वचनीयञ्च योगीन्द्रः शङ्करो घदेत् । स्वयं विधाता प्रवदेत् कारणानाञ्च कारणम्

शेषो घदेदनन्तं यं नवधारूपमीश्वरम् । धर्माणामेव यज्ज्वाञ्च यद्द्विधं रूपमीप्सितम्

वैष्णवानामेकरूपं वेदानामेकमेव च । पुराणानामेकरूपं तस्मान्नवविधं स्मृतम् ॥ ७१ ॥

न्यायोऽनिर्वचनीयञ्च यं मतं शङ्करो घदेत् । नित्यं वैशेषिकाध्यायं तं घदन्तिविचक्षणाः

सांख्यो घदति तं देवं ज्योतीरूपं सनातनम् ।

ममांशः सर्वरूपञ्च वेदान्तः सर्वकारणम् ॥ ७२ ॥

पातञ्जलोऽप्यनन्तञ्च वेदाः सत्यस्वरूपकम् ।

स्वेच्छामयं पुराणञ्च भक्ताश्च नित्यविग्रहम् ॥ ७३ ॥

सोऽयं गोलोकनाथश्च राधेशो नन्दनन्दनः ।

गोकुले गोपवेशश्च पुण्ये वृन्दाघने घने ॥ ७४ ॥

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम् ।

नारायणश्च भगवान् यन्नाम मुक्तिकारणम् ॥ ७५ ॥

सहस्रनारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतेश्रयम् । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति नारद ॥

सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्यदैः परिवारितः । शङ्खचक्रगदापद्मधरः धीवत्सलाञ्छनः ॥ ८० ॥

मणीन्द्रेण भूपितो घनमालया । वेदैः स्तुतश्च यानेन वैकुण्ठं स्वपदं यया

गते वैकुण्ठनाथे च राधेश्च स्वयं प्रभुः । चकार वंशीशब्दञ्च त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥  
 मूर्च्छां प्रापुर्देवगणा मुनयश्चापि नात् । अचेतना चमबुद्धिमायया पार्वतीं विना ॥  
 उवाच पार्वती देवी भगवन्तं सनातनम् । विष्णुमाया भगवती सर्वरूपा सनातनी ॥  
 परब्रह्मस्वरूपा या परमात्मस्वरूपिणी । सगुणा निर्गुणा सा च परा स्वेच्छामयी सती  
 पार्यत्युवाच ।

एकाहं राधिकारूपा गोलोके रासमण्डले । रासशून्यञ्च गोलोकं परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥  
 गच्छ त्वं रथमारहा मुक्ताम्राजिक्यभूषितम् । परिपूर्णतमाहञ्च तव धक्षःस्थलस्थिता ॥  
 त्वाज्ञया महालक्ष्मीरहं वैकुण्ठगामिनी । सरस्वती च तत्रैव धामे पार्श्वे हरेरपि ॥८८॥  
 तवाहं मानसा जाता सित्युकन्या तवाज्ञया ।

साचित्री वेदमाताहं कल्या विधिसन्निधौ ॥ ८९ ॥

ऋसु सर्वदेवानां पुरा सत्ये तवाज्ञया । अधिष्ठानं कृतं तत्र धृतं देव्या शरीरकम् ॥  
 म्नाद्यश्च दैत्याश्च निहताश्चावलोलया । दुर्गं निहत्य दुर्गाहं त्रिपुरा त्रिपुरे हते ॥९१॥  
 इत्य रक्तवीजञ्च रक्तवीजविनाशिनी । तवाज्ञया दक्षकन्या सती सत्यस्वरूपिणी ॥  
 येन त्यक्त्या देहञ्च शैलजाहं तवाज्ञया । त्वया दत्त्वा शङ्कराय गोलोके रासमण्डले

विष्णुभक्तिरता तेन विष्णुमाया च वैष्णवी ।

नारायणस्य मायाहं तेन नारायणी स्मृता ॥ ९४ ॥

कृष्णप्राणाधिकाहञ्च प्राणाधिप्रातृदेवता ।

महाविष्णोश्च घासोश्च जननी राधिका स्वयम् ॥ ९५ ॥

तवाज्ञया पञ्चधाहं पञ्चप्रकृतिरूपिणी । कलाकलाशयाहञ्च वेदपत्न्यो गृहे गृहे ॥ ९६ ॥  
 शीघ्रं गच्छ महाभाग तत्राहं विरहातुरा । गोपीभिः सहितावासं भ्रमन्ती परितः सदा  
 पार्यतीवचनं ध्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः । रत्नयानं समाह्वय ययौ गोलोकमुत्तमम् ॥  
 पार्यती घोषयामास स्वयं देवगणं तथा । मायावंशीस्वाच्छ्रं विष्णुमाया सनातनी  
 इत्या ते हरिशब्दञ्च स्वगृहं विस्मयं ययुः । शिवेन साधे दुर्गा सा प्रहृष्टा स्वपुरं ययौ  
 अथ कृष्णं समायान्तं राधा गोपीगणैः सह । अनु व्रजं ययौ हृष्टा सर्वज्ञा प्राणवत्प्रभम्

दृष्ट्वा समीपमायान्तमचरह्य रथात् सर्ती । प्रणनाम जगन्नाथं शिरसा सखीभिः सह ।  
गोपा गोप्यश्च मुदिताः प्रफुल्लवदनेक्षणाः । दुन्दुभि घादयासुरीश्वरागमनोत्सुकाः ।  
धिरजाश्च समुत्तीर्य दृष्ट्वा राधां जगत्पतिः ।

अचरह्य रथात् तूर्णं गृहीत्वा राधिकाकरम् ॥ १०४ ॥

शतशृङ्गे च वध्नाम सुरभ्यं रासमण्डलम् । दृष्ट्वा क्षयवटं पुण्यं पुण्यं नृन्दावनं वनम् ।  
तुलसीकाननं दृष्ट्वा प्रययौ मालतीघनम् । घामे कृत्वा कुन्दवनं माधवीकाननं तथा ।  
चकार दक्षिणे कृष्णक्षम्यकारण्यमीप्सितम् । चकार पश्चान्तूर्णञ्च चारुचन्दनकाननम्  
ददर्श पुरतो रम्यं राधिकाभवनं परम् । उवास राधया सार्धं रत्नसिंहासने वरे ॥ १०८

सकर्णूरञ्च ताम्बूलं बुभुजे वासितं जलम् । सुध्याय पुण्यतल्पे च सुगन्धिचन्दनार्चिते ।  
स रेमे रामया सार्धं निमग्नो रससागरे । इत्येवं कथितं सर्वं धर्मवत्तत्राद्यच्छुक्लम्  
गोलोकारोहणं रम्यं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १११ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रोत्रहृत्पञ्चमखण्डे

गोलोकारोहणं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टाविंशदधिकशततमोऽध्यायः

नारदाख्यानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

सर्वं श्रुतं महाभाग नावशेषमभीप्सितम् । किमपूर्वं पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमिष्टम् ॥ १ ॥

अधुना किं करिष्यामि तन्मां ब्रूहि जगद्गुरो ।

आह्वां कुरु तपस्याञ्च कर्तुं यामि हिमालयम् ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

पञ्चाशत्कामिनीपतिः । जन्मान्तरे भवानासीद्भुना ब्रह्मपुत्रकः ॥ १ ॥

प्रविशाधिकशततमोऽध्यायः ] \* नारदाख्यानवर्णनम् \*

तास्यैका च सती रम्या तपसा शङ्करं परम् ।  
 भाराध्य च धरं लेभे वाञ्छितं नारदं पतिम् ॥ ४ ॥  
 सा च सृञ्जयकन्या च स्वर्णवीच्छासहोदरा ।  
 तां विवाहं कुरुष्वेति शङ्कराज्ञा कथं वृथा ॥ ५ ॥  
 सुन्दरीं सुन्दरोष्वेव कोमलां कमलाकलाम् ।  
 पतिव्रतां महाभागां रम्यां सुप्रियवादिनीम् ॥ ६ ॥  
 कामुकीं कमनोयाञ्च शश्वतसुस्थिरयौवनाम् ।  
 विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन वार्यते ॥ ७ ॥  
 नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।  
 अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ८ ॥

सूत उवाच ।

नारायणपत्न्यः श्रुत्वा हृदयेन चिदूयता । प्रणम्य प्रययौ शीघ्रं नारदः सृञ्जयालयम् ॥  
 शौनक उवाच ।

अहो सूत महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम् । किमपूर्वं रहस्यञ्च सरसञ्च पुरातनम् ॥१०॥  
 मधुना धोतुमिच्छामि विवाहं नारदस्य च । अतीन्द्रियस्य च मुनेर्ब्रह्मपुत्रस्य साम्प्रतम्  
 सूत उवाच ।

नारदो मूढरूपश्च द्रष्ट्वा सृञ्जयकन्यकाम् । तपस्विनीं महाभागां विष्णुव्रतपरायणाम्  
 ययां प्रह्लासतां रम्यां सर्वदेवैः समानृताम् । प्रणम्य पितरं शान्तः सर्वं तत्त्वमुवाच तम्  
 प्रह्ला प्रहृष्टवदनः श्रुत्वा घातां शुभाचहाम् । तपस्विनञ्च पुत्रञ्च सम्भाष्य जगतां पतिः  
 रत्ननिर्माणयानेन साधं देवैः शुभे क्षणे । पुत्रं कृत्वा च पुरतो ययां सृञ्जयमन्दिरम् ॥  
 तच्छ्रुत्वा सृञ्जयो राजा रत्नभूषणभूषिताम् । गृहीत्वा कन्यकां रम्यां नारदाय ददौ मुदा  
 सर्वस्यं दक्षिणां दत्त्वा मणिमुक्तादिकं तथा । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा परिहारं चकार सः  
 कन्यां समर्प्य प्रह्लापां राजा च योगिनां परः ।

ररोद् भृशमुच्चैश्च घत्से घत्स इतीरितम् ॥ १८ ॥

क यासि त्यक्त्वा मदुगोहं शून्यं कमललोचने ।  
 भहं यामि घनं घोरं त्वां त्यक्त्वा जीवितो मृतः ॥ १६ ॥  
 प्रणम्य पितरं कन्या रुदन्तं मातरं तथा ।  
 रुदन्तीं तां रुदन्ती साप्यारुरोह रथं विधेः ॥ २० ॥  
 गृहीत्वा च समार्यञ्च पुत्रं घाता मुदान्वितः ।  
 प्रययां ब्रह्मलोकञ्च देवेन्द्रेर्मुनिभिः सह ॥ २१ ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयामास साङ्गे मङ्गलकर्मणि ।  
 देवानपि च सिद्धांश्च पादयामास दुन्दुमिन् ॥ २२ ॥  
 नारदस्तु मुनिश्रेष्ठो राधितः पुण्यकर्मणा ।  
 यस्य यत् प्राक्तनं विप्र दुर्लङ्घ्यं केन चार्यते ॥ २३ ॥  
 सुरम्ये पुष्पतल्पे च सुगन्धिचन्द्रनार्चिते ।  
 स रेमे रामया सार्धं वुवुधे न दिवानिशम् ॥ २४ ॥

पर्व कृत्वा विवाहञ्च विरतो मुनिसत्तमः । उवास ब्रह्मलोकेषु घटमूले मनोहरे ॥ २५ ॥  
 तत्राजगाम नग्नश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । सनत्कुमारो भगवान् साक्षाच्च बालको यय  
 सृष्टेः पूर्यञ्च घयसा यथैव पञ्चहायनः । अचूडोऽनुपनीतश्च वेदसन्ध्याविहीनकः ॥ २६ ॥  
 कृष्णेति मन्त्रं जपति यस्य नारायणो गुरुः ।

अनन्तकालकल्पञ्च भ्रातृभिश्च त्रिभिः सह ॥ २८ ॥

वैष्णवानामग्रणीशो ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः । आराद् दृष्ट्वा नारदस्तं भ्रातरञ्च सतां वरम् ।  
 सहसा शिरसा भूमी दण्डयत् प्रणनाम तम् । उवाच नारदं बालः प्रहस्य परमार्थकम् ।

सनत्कुमार उवाच ।

अये भ्रातः किं करोषि कुशलं युवतीपते ।

स्त्रीपुंसोर्बद्धते प्रेम नित्यं तन्नित्यनूतनम् ॥ ३१ ॥

भर्गलं ज्ञानमार्गस्य भक्तिद्वारकपाटकम् । मोक्षमार्गव्यवहितं चिरं बन्धनकारणम् ।

पीठप्रयत्नया गरलं भङ्गके पापी नराधमः ॥ ३२ ॥

परंनारायणं त्यक्तवायस्यास्ते विषयेमनः । सचञ्चितोमायया चामृतं त्यक्तवाविषंभजेत् ।

सर्वेषां कामभोगोऽस्ति कर्मिणामीश्वरं विना ।

धर्मं विधातुः पुत्राश्च सा बुद्धिरिति देहिनाम् ॥ ३४ ॥

यदिते नास्ति भोगश्च कथं गन्धर्वजन्म च । कथंदासीमुतस्त्वञ्च मुक्तश्चभक्तसङ्गतः ॥

निर्गच्छ तपसे भ्रातस्त्यज मायामयी प्रियाम् ।

सुपुण्ये भारते धर्मे तपसा भज माधवम् ॥ ३६ ॥

स्यतो नारायणे स्वेशे परे स्वपदातरि । विषयी विषयान्धश्च चञ्चितो माययाध्रुवम् ।

हाण मम मन्त्रञ्च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । सर्वेषामेव मन्त्राणां सारात्सारं परात्परम् ॥

विष्णु च पुराणेषु वेदेषु च चतुर्षु च । धर्मशास्त्रेषु तन्त्रेषु नास्त्येवास्मात्परो मनुः ॥

रायणेन दत्तो मे पुष्करे सूर्यपर्वणि । असंख्यकल्पं जप्त्वाहं भ्रमामि सर्वपूजितः ।

इत्यववा स्नापयित्वा त ददौ तस्मै परं मनुम् ।

विधानिशं स जपति पूतया मणिमालया ॥ ४१ ॥

श्रीशुभाशिरं दत्त्वा मन्त्रञ्च वैष्णवाग्रणीः । गोलोकं प्रययौ द्रष्टुं भगवन्त सनातनम् ।

दत्स्तु मनुं प्राप्य सर्वसिद्धिप्रदं वरम् । श्रीकृष्णे निश्चलाभक्तिप्रदं कर्मनिवृन्तनम् ॥

त्वा मायामयीं भार्यां भारतं तपसे ययौ । कृतमालानदीतीरे ददर्श शङ्करं परम् ॥

दृष्ट्वा च सहस्रा मूर्ध्ना प्रणनाम शिवं मुनिः । तमुवाच जगन्नाथो भक्तञ्च भक्तवत्सलः ।

श्रीमहादेव उवाच ।

अहो नारद दृष्ट्वा त्वां प्रसन्नोऽहं स्वतेजसा ।

भक्तानां दर्शनं यत्र सुदिनं तच्छरीरिणाम् ॥ ४६ ॥

अयं हि परमो लाभो देहिनांभक्तसङ्गमः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु यो ददर्श च वैष्णवम् ।

अपि प्राप्तो महामन्त्रः सर्वतन्त्रसुदुर्लभः ।

मया दत्तो गणेशाय स्कन्दाय स्वात्मजाय च ॥ ४८ ॥

मह्यं दत्तञ्च कृष्णेन गोलोके रासमण्डले । ब्रह्मणे चापि धर्माय धर्मो नारायणाय च ॥

दृष्ट्वा सनत्कुमाराय तुभ्यं दत्तश्च तेन वै । मन्त्रग्रहणमात्रेण जनो नारायणो भवेत् ॥

विचारणञ्च नाम्न्यत्र कालाकालं शुभाशुभम् । पञ्चमसत्रेभ्योप पुण्यव्ययम् च ॥५॥  
 ध्यानञ्च सामये शौकं तेन ध्यायेच्च वैष्णवः । ध्यानञ्च पापहरं कर्मभूतजिह्वन्तम् ।  
 कृष्णं नवमदयार्थं किशोरं पीतवामनम् । शतकोटीं गृहीन्दीप्यं द्यान्मनुजं परम् ।  
 भूमिं भूपतीं गेष्ठीं गन्धर्वनिर्मितेः । गन्धर्वोद्भितसर्वाङ्गं कौस्तुभं विगजित्म् ॥  
 मातृपितृभ्यश्च मातृतामात्यमण्डितम् ।

इन्द्रास्यप्रस्रास्यं निर्गोपास्यं शिवादिभिः ॥ ५२ ॥

ध्यानासाध्यं सुराराध्यं निर्गुणं प्रकृतैः परम् । सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।

ध्यानियं नवीयं तं परं सर्वेश्वरं भजे ॥ ५३ ॥

ध्यामेतानेन तं ध्यात्वा भगवन्तं सनातनम् ।

भक्तं परमानन्दं सत्यं नित्यं परावरम् ॥ ५३ ॥

इत्युक्त्वा स्वपदं शम्भुर्जगाम परमेश्वरः । तं प्रणम्य जगन्नाथं नारदस्तपसे ययौ ॥५४॥

नारदः श्रीहरिं स्मृत्या योगात् त्यक्त्वा कन्देश्वरम् ।

विलीनः पादपद्मे च पादपद्माश्रिते हरेः ॥ ५४ ॥

इति श्रोत्रोपनिषत्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रोत्रोपनिषत्प्रश्ने

नारदप्रकरणं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

अत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

बह्विसुवर्णयोरुत्पत्तिः ।

शौनक उवाच ।

अत्यपूर्वमुपाख्यानं श्रुतं परममद्भुतम् । सुगोप्यञ्च सुगोप्यञ्च रस्यं रस्यं नवं नवम् ॥१॥  
 किमनिर्वचनीयञ्च कमनीयं मनोहरम् । सुदुर्लभा कथा प्रोक्ता पुराणेषु पुरातनी ॥२॥  
 पर्वभूतञ्च सुदिनं कदास्माकं भविष्यति । तज्जन्म सफलं धन्यं यत्र वैष्णवसङ्गम् ॥



वासोच्छेदनञ्च फर्ममूलनिवृत्तनम् । हृदिास्यप्रदं शुद्धं भक्तानां भक्तिपथंनम् ॥४॥

शुसङ्गदुर्बुद्धिपापोन्मूलनकारणम् । गणेशजन्मोपाख्यातं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥५॥

सीपधिकाख्यातं किमपूर्वं धृतं परम् । नवं यद्यज्ञोपनीषं व्यक्तमव्यक्तमाप्सितम् ॥

सर्वं धृतं महाभाग परिपूर्णं मनोरमम् ।

अधुना ध्योतुमिच्छामि घट्टे स्वपत्तिर्माप्सिताम् ।

स्वर्णस्य च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥

सुत उवाच ।

अप्रीकरणं सृष्टेर्जलमेव हुताशनः । यथैव प्रकृतिर्नित्या महानेव तथैव च ॥ ८ ॥

१ दिशो महाकाशो यथैव सृष्टिगोलकम् । प्रकृतेर्महत्तथ स्यादहङ्कारस्तथैव च ॥९॥

य शब्दस्तन्मात्रं तथैव च हुताशनः । तथापि तत्समुत्पत्तिं कथयामि तिस्रामय ।

ता सृष्टिकाले च ब्रह्मानन्तमद्देश्वराः । श्वेतश्रीपं ययुः सर्वे शृष्टुं विष्णुं जगत्पत्तिम्

स्वराञ्च सम्भाषां कृत्वा सिंहासनेषु च । ऊचुः सर्वे सभामध्ये सुरभ्ये पुरतो विभोः

विष्णुगात्रोद्ग्यास्तत्र कामिन्यः कमलाकटाः ।

तत्र नृत्यन्ति गावन्ति विष्णुगात्राश्च सुस्वयम् ॥ १३ ॥

वासाञ्च कठिनां ध्योनिं कठिनं स्तनमण्डलम् ।

सस्मितं मुखपत्रञ्च दृष्ट्वा प्रह्ला सुकामुकः ॥ १४ ॥

मनोनिवारणं कर्तुं न शक्यात् पितामहः । पाप्यं पपात् चच्छाद् लज्जया पातसापिभुः

स्वर्ग्यं पस्त्रसहितं प्रतनं कामशायतः । क्षीरादे प्रेरयामास सङ्गतिं चिरतं द्विज ॥ १६ ॥

अलादुत्थाय पुरयः प्राच्यलन् प्रह्लनेजसा । उपास प्रह्लणः प्रोडे लज्जितस्य च संसदि

पतस्मिन्नन्तरे कथो अलादुत्थाय सरथः । प्रणम्य परयो देवान् बालं नेतुं समुद्यतः ॥

वातो ह्याह प्रह्लाणं बाहुभ्याञ्च भयाद्बुद्धम् ।

किञ्चिन्नोपाच जगतोऽपिधाता लज्जया द्विज ॥ १९ ॥

बाह्वस्व करे भूत्वा चकाराकार्यं दया । परमश्च सभामध्ये नं चिक्षेप प्रजापतिः ॥

पपात् हुतो देवो परयो दुर्बलस्ततः । मूर्च्छां सम्भाष मृतपत् फोपदृष्ट्या विवेकशो ॥

चेतनं कारयामास मृतद्रष्ट्या च शङ्करः । सम्प्राप्य चेतनं तत्र तमुवाच जलेखरः ॥२२॥  
घरुण उवाच ।

बालो जले समुद्भूतो मम पुत्रोऽयमीप्सितः ।

अहं गृहीत्वा यास्यामि ब्रह्मा मां ताडयेत् कथम् ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

बालकः शरणापन्नो मयि विष्णो महेश्वर । कथं दास्यामि भीतञ्च रुदन्तं शरणागत  
शरणागतदीनार्तं यो न रक्षेदपण्डितः । पच्यते निरये तावद्गु यावच्चन्द्रदियाकरी ॥२४॥  
उभयोर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मस्य मधुसूदनः । उवाच तत्र सर्वज्ञः सर्वेशश्च यथोचितम् ॥२६॥

श्रोमगवानुवाच ।

दृष्ट्वा तु कामिनीधोर्णीं घोर्यं धातुःपपात तत् । लज्जया प्रेरयामास क्षोरोदे निर्मलेजले  
ततो बभूव बालश्च धर्मतो विधिपुत्रकः । क्षेत्रज्ञश्च सुतः शास्त्रे घरुणस्यापि गौपतः  
श्रोमहादेव उवाच ।

योऽविद्या योनिसम्बन्धो वेदेषु च निरूपितः ।

शिष्ये पुत्रे च समता चेति वेदविदो विदुः ॥ २६ ॥

मन्त्रं ददातु घरुणो विद्याञ्च बालकाय च । पुत्रो विधातुर्वेद्विश्च शिष्यश्च घरुणस्य च

विष्णुर्ददातु बालाय दाहिकां शक्तिमुञ्ज्वलाम् ।

सर्वदग्धो हुताशश्च निर्वाणो घरुणेन च ॥ ३१ ॥

विष्णुश्च दाहिकां शक्तिं ददौ तस्मै शिवाश्रया ।

मन्त्रविद्याञ्च घरुणो रत्नमालां मनोहराम् ॥ ३२ ॥

मतेऽं हृत्वा च तं बालं चुचुभ्य मायया सुरः । ब्रह्मणे च ददौ साक्षाद्विष्णुशङ्करयोरपि

प्रणम्य विष्णुं ब्रह्मा च यथा शम्भुः स्वमन्दिरम् ।

अग्न्युत्पत्तिश्च कथिता स्वर्णोत्पत्तिं निशामय ॥ ३४ ॥

एकदा सर्वदेवाश्च समूयुः स्वर्गसंसदि । तत्र हृत्वा च नित्यञ्च गायन्त्यप्सरसां गणम्

पिलोक्य रत्नां सुधोर्णां सकामो यद्विरेव च ।

त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ] \* अस्यपुराणस्य विषयानुक्रमणिकावर्णनम् \* ११८५

पपात वीर्यं चच्छाद लज्जया वाससा तथा ॥ ३६ ॥

वत्सस्यो स्वर्णपुञ्जश्च घस्त्रं क्षिप्त्वा ज्वलत्प्रभम् । क्षणेन घर्षयामास स सुमेख्यभूषढ

हिरण्यरेतसं घट्टिं प्रषदन्ति मनीषिणः । इति ते कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

षड्विंशोऽध्यायः ।

## त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

अस्य पुराणस्य विषयानुक्रमणिकावर्णनम् ।

शौनक उवाच ।

सर्वं नाधरोपं घर्षेश ब्राह्मणञ्च माम् । कथयस्य महाभाग पुराणं पुनरेव हि ॥ १ ॥

विषं पुराणञ्च जन्मनैव न हि श्रुतम् । न दृष्टं न श्रुतं तात तादृशं वाचकं तथा ॥

सूत उवाच ।

श्री भो महाभाग सायधानञ्च संयतम् । अध्यायध्रवणेनैव पुराणफलमालभेत् ॥ २ ॥

खण्डे च कथितं परं ब्रह्मनिरूपणम् । तदनिर्वचनीयञ्च येषामपि यथागमम् ॥ ४ ॥

साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं पृथक् ।

येषामपि यथा शक्तिस्तथैव ध्यानमेव च ॥ ५ ॥

गोलोकादेर्वर्णनञ्च क्रमेण च पृथक् पृथक् ।

यत्रोपर्युक्तोपाख्यानं यद्यत् प्राप्तद्विकं विभो ॥ ६ ॥

शार्ङ्गनां निर्णयश्चैव सद्गुराणां तथैव च । यद्यद्विशिष्टोपाख्यानं तत्तत् प्रभानुरोधतः ॥

पथामाधययोः क्रीडा महाविष्णोः समुद्रयः । निरूपणञ्च विश्वेषां समासेन द्विजोत्तम

शारदयोश्चैव संवादः परमार्थतः । विवेको नारदस्यैव मुनिन्द्रस्य तथैव च ॥ ६ ॥

भाषया ब्रह्मणश्चैव नरनारायणाध्रमः । गमनं नारदस्यैव तेन सार्धं च दर्शनम् ॥ १० ॥

तयोः सम्भाषणञ्च नागदासं निवेदनम् । तत्र देवब्रह्मण्डकर्मणोक्तं द्वित्रोत्तरम् ॥ ११ ॥  
ध्रुवतां प्रह्वनेः खण्डं सुधाखण्डसमं मुने । प्रह्वनेर्लक्षणं प्रोक्तं प्रह्वतोनाञ्च वर्णनम् ॥

उपाख्यानञ्च सासाञ्च वर्णनं पूजनादिकम् ।

लक्ष्मीः सरस्यतो दुर्गा सावित्री राधिका तथा ॥ १३ ॥

पतासांचरितञ्चैवमन्यासाञ्च पृथक्पृथक् । उपाख्यानंमहालक्ष्म्याः सरस्यत्याम्तथैव  
भर्ष्यंराधिकाख्यानं सावित्र्याश्च तथैवच । संवाद्योयमसावित्र्योः सत्यवज्जीवदानक  
कुण्डानां वर्णनं प्रोक्तं तेषाञ्च लक्षणं तथा । जांचिकर्मविपाकश्च भोगनिर्णय एव  
अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुगोप्यकम् । सुयज्ञस्य नृपेन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम् ।  
प्रोक्तं तुलस्युपाख्यानं परमाद्भुतमप्य च । महायुद्धञ्च संवादे महेशशङ्खचूडयोः ॥ १८ ॥  
तुलसीहृण्णसंवादेस्तयोः सम्भोग एव च । निधनं शङ्खचूडस्यथ्रीदानः शायमोक्षणम्

पद्प्राप्तिः सुराणाञ्च विपदां खण्डनं तथा ।

जीविनां मोक्षवोज्ज्वलं गङ्गोपाख्यानमीप्सितम् ॥ २० ॥

तथैव मनसाख्यानं परं ह्यंविवर्धनम् । स्वाहास्वधाकथानमेवमन्यासाञ्च निरूपणम् ॥  
यद्यत् प्रासङ्गिकाख्यानं यत्तुः प्रश्नानुरोधतः ।

प्रोक्तं तत् प्रह्वनेः खण्डं खण्डं गणपतेः शृणु ॥ २२ ॥

अतीवमधुरं रम्यं स्वादु स्वादु पदे पदे । सुगोप्यं तत् पुराणेषु रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥  
सुदुर्लभमुपाख्यानं श्रोतृप्रीतिकरं परम् । प्रोक्ता क्रीडा च परमा पार्वतीपरमेशयोः ॥

स्कन्दोत्पत्तिः प्रथमतः क्रीडाभङ्गस्तयोस्तथा ।

पार्वतीतोषणञ्चैवमभिमानविमोक्षणम् ॥ २५ ॥

पुण्यकञ्च व्रतं विष्णोर्देव्याश्चरितमुत्तमम् । वरदानं हरेरेव सुवतां पार्वतीं प्रति ॥ २६ ॥  
हरेश्च दर्शनञ्चैव ब्राह्मणातिथिरुपिणः । आविर्भावो गणेशस्य कृपया शिवमन्दिरे ॥  
दर्शनं पुत्रवक्त्रस्य पार्वतीपरमेशयोः । परमानन्दरूपञ्च शिवगेहे महोत्सवम् ॥ २८ ॥  
देवाद्या ददृशुः सर्वे बालं नित्यमजं विभुम् । सत्यस्वरूपं परमं परम्यत्स्वरूपिणम् ॥

सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम् ।

तपसां जपयद्धानां प्रतानां फलदं विभुम् ॥ ३० ॥

कर्तावकमनीयश्च रमणीयश्च योषिताम् । प्राणाधिकं प्रियतमं पार्यतीपरमेशयो ॥ ३१ ॥  
परमात्मस्वरूपज्ञो भगवन्तं सनातनम् । सर्वेशं सर्ववीजश्च साक्षान्नासायणात्मकम् ॥

यद्दर्शनाञ्च स्तवनात् प्रणामात् पूजनात्तथा ।

ध्यानासाध्यं दुरासाध्यं जन्मकोट्यघनाशनम् ॥ ३३ ॥

कार्तिकोद्दरणं प्रोक्तं तस्याभिषेक एव च । गणेशपूजनञ्चैव सर्वविप्रविनाशनम् ॥

जमशनेश्च युद्धश्च कार्तवीर्याजुनेन च । सुरभिहरणञ्चैव निघनश्च मुनेस्तथा ॥ ३५ ॥

पतिप्रतारैणुकायाश्चितारोहणमेव च ।

प्रतिज्ञातं भृगोश्चैव दारुणञ्च सुदारुणम् ॥ ३६ ॥

ने क्षत्रोत्तरणञ्चैवमेकं पितृशक्तिकं द्विज । संवासी धानलाभश्च गणेशपशुं रामयोः ॥ ३७ ॥

योर्पुंसं दारुणञ्च द्वैरभ्यं दन्तमञ्जनम् । दुर्गायाश्च पिलापद्माभिद्यायो मार्गं च प्रति ॥

मरणे पशुं रामस्याप्याविर्भाषो हरेरपि । पार्यती योधयामास स्वयं नागपत्नः प्रभुः ॥

घर्णनं शिपलोकस्य परमाश्चर्यमपूषितम् ।

प्रदत्तं पशुं रामाय महास्त्रं शङ्कुरेण च ॥ ४० ॥

अस्य कपचञ्चैव कृष्णस्य परमात्मनः । परदानञ्चामपश्च प्रज्ञाता सर्वसम्पत् ॥

ः सनत्सो भूपानां निघनञ्च चकार सः । बभूव भृगुणा विप्र भुषश्च भागहाणम् ॥

प्रधानुरोधकमतः पूर्वाशाकदानमेव च ।

प्रोक्तं गणपतेः घण्डं समासेन द्वित्रोत्तम ॥ ४३ ॥

धोहृष्णद्वन्द्वदण्डञ्च धूयतां सापधानतः ।

जन्ममृत्युद्वराप्यापिहरं मोक्षकरं परम् ॥ ४४ ॥

हरिदास्यमर्षं गुप्तं सुधयश्च सुधोपमम् । अत्यपूर्वंमुपाकदानं रम्यं रम्यं सर्वकथम् ॥ ४५ ॥

व धूर्तं जन्मना यद्यत् स्वादु स्वादु पदे पदे । प्रदीपं सर्वसत्त्वानां अवाप्तिशरत्वं परम् ॥

कर्मोपमो गरीगापी मर्दनञ्च रसादकम् । धोहृष्णद्वन्द्वदण्डादिद्विघ्नोपानकृत्तम् ॥

धोहृष्णद्वन्द्वदण्डादिद्विघ्नं दारुणं द्विज । तयोः सापनकपचं तन्मनेषां विनाशकम् ॥ ४८ ॥

प्रह्लाणा प्रार्थितस्यैव हरेर्जंगम महीतले । प्रोक्तञ्च जन्मगण्डञ्च परमाद्भुतमेव च ॥५१॥  
 आधिर्भाषो हरेरेव पशुवेषस्य मन्दिरे । कंसासुरभयनेव गोकुले गभनं हरेः ॥ ५० ॥  
 वृषभानुसुता राधा श्रीधाम्नः शापहेतुना । बालक्रीडावर्णनञ्च गोकुले परमात्मनः ॥५१॥  
 वैत्यादिनिधनञ्चैव कीर्तिनं हरिणा तथा । गर्गस्यागमनं प्रोक्तं शुभान्तप्राशनं हरेः ॥  
 निधनं वृत्तनायाश्च सयःशकटभञ्जनम् । श्रीकृष्णवन्धमोक्षश्च यमलार्जुनमञ्जनम् ॥५२॥  
 त्रैलोक्यदर्शनं वषट्ते गौघटसाहरणं तथा । कृष्णा गोवत्सनिर्माणं प्रह्लाणः स्तरनं हरेः

सहसा गोकुलं त्यक्त्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ।

भयाद्भ्रमणं नन्दश्च सार्धञ्च नन्दनेन च ॥ ५१ ॥

वृन्दावनस्य निर्माणं प्रोक्तञ्च परमाद्भुतम् ।

सार्धञ्च बालकैः सार्धं तत्र संकीर्णं हरेः ॥ ५२ ॥

सदन्नं प्राह्वणीनाञ्च भोजनं कथितं हरेः । घरदानञ्च तासाञ्च प्राकनेन निरुपणम् ॥  
 कतूनां वर्णनञ्चैव घस्त्रापहरणं तथा । घरदानञ्च गोपीनां कृष्णेनैव कृतं द्विज ॥५३॥

कात्यायनीव्रतं प्रोक्तं श्रीदुर्गापूजनं तथा ।

पार्वत्या च घरो दत्तो गोपीभ्यो यमुनातटे ॥ ५३ ॥

तालानां भक्षणं प्रोक्तं शक्यागधिमर्दनम् ।

राधया सह कृष्णस्य विरहो मेलनं तथा ॥ ६० ॥

गोपीक्रीडा च संप्रोक्ता कृष्णकोडे च राधिका ।

छाया रायाणगेहे च संप्रोक्ता मायया हरेः ॥ ६१ ॥

शृङ्गारं षोडशविधं कृत्वा तं रासमण्डले । अन्तर्धानं हरेरेव राधया सह कानने ॥६२॥

मलयागमनञ्चैव तथा सार्धं द्विजोत्तम । राधामाधवयोश्चैव संवादस्तत्र निर्व्रजे ॥६३॥

कैवल्यमपि गोपीनां प्रोक्तं नानाविधं मुने । पुनरागमनञ्चैव पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥

श्रीकृष्णदर्शनञ्चैव गोपीनां हर्षवर्धनम् । नानाप्रकारक्रीडा च प्रोक्ता तस्य जले स्थले

गोपीनामपि सौभाग्यं राधायाश्च विशेषतः ।

प्रोक्तं व्यासेन सौन्दर्यं रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥ ६६ ॥

त्रिधाधिकशततमोऽध्यायः ] \* विषयानुक्रमणिकावर्णनम् \*

११८६

नमःस्थितानां देवानां दर्शनं प्रोक्तमेव च । मनसः स्पलनञ्चैव देवीनां रासमण्डले ॥  
अंशेन लेभिरे जन्म देवश्लोकमिदं द्विज । अक्रूरागमनञ्चैव गोपीनाञ्च विलापनम् ॥

प्रोक्तं सर्वं क्रमेणैव चाक्रूरभर्त्सनं तथा ।

मथुरागमनं विष्णोः शोको गोकुलवासिनाम् ॥ ६६ ॥

राधिकाधिरहञ्चालाजालं प्रोक्तं यथोचितम् ।

स्वभूर्त्तिदर्शनञ्चैवमक्रूरं यमुनातटे ॥ ७० ॥

मथुरावेशनं प्रोक्तं निधनं रजकस्य च । कुञ्जया सह सम्भोगस्तस्य मोक्षणमेव च ॥

प्रसादनं कुचिदस्य मालाकारस्य मोक्षणम् । धनुषो भञ्जनं शम्भोर्हस्तिनो निधनं तथा

समाप्रवेशनं प्रोक्तं नानारूपप्रदर्शनम् । कंसस्य निधनं प्रोक्तं तद्दुष्यभूतां विलापनम् ॥

सत्कारस्तस्य विधिपद्मजत्वं तत्पितुस्तथा । विलापनञ्च नन्दस्य स्तयनं परमाद्भुतम्

प्रोक्तस्तयोश्च संवादो निर्जने तातपुत्रयोः । परमाध्यात्मिकं ज्ञानं नन्दाय च दर्शो विभुः

मुनीनां गमने चैवं धन्योपाख्यानमेव च । कथितञ्च कुमारेण प्रोक्तमेव सुदुर्लभम् ॥

उदवागमनं प्रोक्तं राधास्थानञ्च निर्जनम् ।

ज्ञानं तयोश्च संवादे प्रोक्तमेव शुभावहम् ॥ ७७ ॥

यज्ञोपवीतं कृष्णस्य विद्यादानं गुरोर्गृहे । मृतपुत्रप्रदानञ्च प्रोक्तं तद्गुरवे पुरा ॥ ७८ ॥

जरासन्धस्य दमनं निधनं यवनस्य च । द्वारकायाश्च निर्माणं विध्वकारोद्यमं तथा ॥ ८० ॥

द्वारकावेशनं प्रोक्तमुपसेनविलापनम् । रुचिमणीहरणञ्चैव नृपाणां दमनं तथा ॥ ८० ॥

सर्पांसां कामिनीनाञ्च प्रोक्तमुद्धवनं तथा । मायापतीमोक्षणञ्च निधनं शंकरस्य च ॥

धर्मपुत्रराजस्यै शिशुपालस्य मोक्षणम् । दन्तपद्मस्य च मुने शाल्यस्य निधनं तथा ॥

मणोश्च हरणञ्चैव पारिजातस्य स्वर्गतः । कुरुपाण्डवयुद्धे च भुयश्च भारमोक्षणम् ॥

उग्राया हरणं प्रोक्तं घाणस्य भुजहन्तनम् । बलेश्च स्तयनं प्रोक्तमनिकटस्य विषमः ॥

तापापशोदासंवाद् प्रोक्तः परमदुर्लभः । मोक्षणञ्च शृगालस्य प्रोक्तञ्च परमाद्भुतम् ॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गणेशपूजनं तथा । दर्शनं राधिकासाधुं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ८६ ॥

राधाया दर्शनं देव्या राधातेजःप्रकाशनम् । राधाया रमणं तीर्थं ज्ञमणं रहसि स्मृतम्

निधनं यदुच्यते शानं ब्रह्मशापेन शौनक । मोक्षणं पाण्डवानाञ्च स्वपदे गमनं इतः ।  
 विधाहो नारदस्यैवोत्पत्तिर्ब्रह्मसुवर्णयोः । प्रोक्तं सर्वं महाभाग पुनरेव समासतः ।  
 चतुःखण्डैः पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमेव च । अतः परं मुनिश्रेष्ठ किम्भूयः धोतुमिच्छसि ।  
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे  
 चानुक्रमणिकं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

## एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

पुराणपठनश्रवणादिमाहात्म्यम् ।

शौनक उवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।  
 यत् फलं ब्रह्मवैवर्ते निर्विघ्नं मोक्षकारणम् ॥ १ ॥  
 अमयं देहि हे पत्स हे तात महामेघ च ।  
 तदा निवेदनं किञ्चिदस्तीति च करोम्यहम् ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

त्यज भीतिं महाभाग प्रश्नं कुरु यद्विच्छसि ।  
 सर्वं ते कथयिष्यामि यद्यद्गोप्यं मनोहरम् ॥ ३ ॥

शौनक उवाच ।

अधुना धोतुमिच्छामि पुराणानाञ्च लक्षणम् ।  
 संख्यानमपि तेषाञ्च फलमस्यैव पुत्रक ! ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

यिस्तद्यपि पुराणानि चेतिहासांश्च शौनक ।  
 संहितां पञ्चरात्राणि कथयामि यथागतम् ॥ ५ ॥



सर्गाश्च प्रतिसर्गाश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चिप्रं पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥  
 पतदुपपुराणानां लक्षणञ्च विदुर्वुधाः । महताञ्च पुराणानां लक्षणं कथयामि ते ॥ ७ ॥

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्चेत् स्थितिस्तेषाञ्च पालनम् ।

कर्मणां धासनाघातां चामूनाञ्च क्रमेण च ॥ ८ ॥

वर्षानं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम् ।

उत्कीर्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥

दशाधिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम् ।

संख्यातञ्च पुराणानां निबोध कथयामि ते ॥ १० ॥

ः ब्रह्म पुराणञ्च सहस्राणां दशैव तु । पञ्चोनपष्टिसाहस्रं पाञ्चमेव प्रकीर्तितम् ॥ ११ ॥

तेविंशतिसाहस्रं वैष्णवञ्च विदुर्वुधाः । चतुर्विंशतिसाहस्रं शैवञ्चैव निरूपितम् ॥ १२ ॥

शाष्टादशसाहस्रं श्रीमद्भागवतं विदुः । पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदीयं प्रकीर्तितम् ॥ १३ ॥

ः षण्डं नवसाहस्रं पुराणं पण्डिता विदुः । चतुःशताधिकं पञ्चदशसाहस्रमेव च ॥ १५ ॥

ः त्रिपुराणञ्च रुचिरं परिकीर्तितम् । चतुर्दशसहस्रञ्च परं पञ्चशताधिकम् ॥ १५ ॥

ः शतपञ्चैव भविष्यं परिकीर्तितम् । अष्टादशसहस्रञ्च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ॥ १६ ॥

सर्वेषाञ्च पुराणानां सारमेव विदुर्वुधाः ।

एकादशसहस्रं तु परं लिङ्गं पुराणकम् ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतिसाहस्रं धाराहं परिकीर्तितम् । एकादश(शोति)सहस्रञ्च परमेव शताधिकम् ॥

परं स्कन्दपुराणञ्च सद्भिरेव निरूपितम् । वामनं दशसाहस्रं कौमं सप्तदशैव तु ॥ १९ ॥

ः मातस्यं चतुर्वंशं प्रोक्तं पुराणं पण्डितैस्तथा । ऊनविंशतिसाहस्रं गार्हङ्गं परिकीर्तितम्

परं द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् । एवं पुराणसंख्यातं चतुर्लक्षमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

ः शाष्टादशपुराणानामेवमेव विदुर्वुधाः । एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥

ः तिहासो भारतञ्च धार्मिकं काव्यमेव च । पञ्चकं पञ्चरात्राणां कृष्णमाहात्म्यपूर्वकम्

ः षिष्टं नारदीयञ्च कपिलं गौतमीयकम् । परं सप्तकुमारीयं पञ्चरात्रञ्च पञ्चकम् ॥ २४ ॥

ः षकं संहितानाञ्च कृष्णभक्तिसमन्वितम् । ब्रह्मणश्च शिवस्यापि ब्रह्मादस्य तथैव च ॥

गौतमस्य कुमारस्य संहिताः परिकीर्तिताः । इति ते कथितं सर्वं क्रमेण च पूजयित्वा  
 भस्त्रेण विपुलं शास्त्रं ममापि च यथागमम् । उवाचेऽं पुराणञ्च गोलोके गसमण्डले

धातृष्णुर्मगवात् साक्षाद् ब्रह्माणञ्च स्वमन्त्रकम् ।

ब्रह्मा धर्मञ्च धर्मिणुं धर्मानारायणं मुनिम् ॥ २८ ॥

नारायणो नारदञ्च नारदो मां च मन्त्रकम् ।

भहं त्वाञ्च मुनिभ्यो वरिष्ठं कथयामि तम् ॥ २९ ॥

सुदुर्लभं पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ।

यद्बृणोत्येव विश्वोऽयं जीविनां परमात्मकम् ॥ ३० ॥

तद्ब्रह्म साक्षिरूपञ्च फर्मणामेव फर्मिणाम् ।

तद्ब्रह्म विदुतं यत्र तद्विभूतिमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥

तेनेदं ब्रह्मवैवर्तमित्येवञ्च विदुर्बुधाः । पुण्यप्रदं पुराणञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥ ३२ ॥

सुगोप्यञ्च रहस्यञ्च यत्र रम्यं नवं नयम् । हरिमक्तिप्रदञ्चैव दुर्लभं हरिदास्यदम् ॥ ३३ ॥

सुखदं ब्रह्मदं सारं शोकसन्तापनाशनम् । सरिताञ्च यथा गङ्गा सद्योमुक्तिप्रदा शुभा ॥

तीर्थानां पुष्करं शुद्धं यथा काशीपुरीषु च । सर्वेषु भारतं परं सद्योमुक्तिप्रदं शुभम् ॥

यथा सुमेधः शीलेषु पारिजातञ्च पुष्पतः । पत्रेषु तुलसीपत्रं व्रतेष्वेकादशीप्रतम् ॥

वृक्षेषु कल्पवृक्षश्च धातृष्णञ्च सुरेषु च । ज्ञानान्द्रेषु महादेवो योगीन्द्रेषु गणेश्वरः ॥

सिद्धेन्द्रेष्वेकफिलो सूर्यस्तेजस्विनां यथा । सन्तकुमारो भगवात् वैष्णवेषु यथाप्रणीः

भूपेषु च यथा रामो लक्ष्मणश्च धनुष्मताम् ।

देवीषु च यथा दुर्गा महापुण्यती सती ॥ ३६ ॥

प्राणाधिका यथा राधा कृष्णस्य प्रेयसीषु च ।

ईश्वरीषु यथा लक्ष्मीः पण्डितेषु सरस्वती ॥ ४० ॥

अथा सर्वपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमेव च । नातो विशिष्टं सुखदं मधुरञ्च सुपुण्यदम् ॥ ४१ ॥

उन्देश्चभङ्गनञ्चैव पुराणं परिकीर्तितम् । इहलोके च सुखदं सुप्रदं सर्वसम्पदाम् ॥ ४२ ॥

पुण्यदं पुण्यदञ्चैव विन्ननिष्पन्नकरं परम् । हरिदास्यप्रदञ्चैव परलोके प्रहर्षदम् ॥ ४३ ॥

यज्ञानामपि तीर्थानां व्रतानां तपसां तथा ।

भुवः प्रदक्षिणस्यापि फलं नास्य समानकम् ॥ ४४ ॥

वनुर्नामपि वेदानां पाठादपि घरं फलम् । शृणोतीदं पुराणञ्च संघतद्वेदं पुत्रकम् ॥ ४५ ॥

गुणघन्तञ्च विद्वांसं वैष्णवं पुत्रमालभेत् ।

शृणोति दुर्भगा चेत्तु सौभाग्यं स्वामिनो लभेत् ॥ ४६ ॥

मृतपत्न्या काकपन्ध्या महाघन्ध्या च पापिनो ।

पुराणश्रवणाल्लभे पुत्रञ्च चिरजीविनम् ॥ ४७ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् । अस्पृष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भयति पण्डितः

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्यते बन्धनात् ।

भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न भापदः ॥ ४८ ॥

भरण्ये प्रान्तरे भीतो दाघाग्नौ मुच्यते ध्रुवम् ।

भयं कुण्डञ्च दारिद्र्यं रोगं शोकञ्च दारुणम् ॥ ५० ॥

पुण्यवान् श्रवणादेष नैव जानात्यपुण्यवान् ।

श्लोकार्थं श्लोकपादं वा यः शृणोति सुसंयुक्तः ॥ ५१ ॥

गोलक्षदानपुण्यञ्च लभते नात्र संशयः ।

चतुःषण्डं पुराणञ्च शुद्धकाले जितेन्द्रियः ॥ ५२ ॥

संकल्पितो यः शृणोति भक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम् ।

यद् बाल्ये यद्य कौमारे पार्थके यच्च यौवने ॥ ५३ ॥

कोटिजन्माजितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।

एतन्निर्माणयानेन धृत्वा धीरुष्णरूपकम् ॥ ५४ ॥

नित्यं गत्वा च गोलोकं कृष्णदास्यं लभेद् ध्रुवम् ।

असंख्यब्रह्मणः पाते न भयेत्तस्य पातनम् ॥ ५५ ॥

सर्मापि पार्षदो भूत्वा सेवाञ्च कुर्यात् चिरम् ।

धृत्वा च ब्रह्मघण्टञ्च सुखातः संघतः शुक्तिः ॥ ५६ ॥

पायसं पिष्टकञ्चैव फलं ताम्बूलमेव च ।

भोजयित्वा वाचकञ्च तस्मै दद्यात् सुवर्णकम् ॥ ५७ ॥

चन्दनं शुक्लमाल्यञ्च सूक्ष्मवस्त्रं मनोहरम् । निवेद्य घासुदेवञ्च वाचकाय प्रदीयते  
श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुध्रुवञ्च सुधोषमम् ।

भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ॥ ५८ ॥

सघटसां सुरभीं रम्यां दद्याद्भक्तिपूर्वकम् । श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय संयत  
स्वर्णयज्ञोपवीतञ्च श्वेताश्वच्छत्रमाल्यकम् ।

प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललङ्कुम् ॥ ६१ ॥

परिपक्वफलान्येव कालदेशोद्भवानि च । श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च श्रुत्वा भक्तश्च भक्तिः ।  
वाचकाय प्रदद्याच्च परं रत्नाङ्गुलीयकम् ।

सूक्ष्मचक्रञ्च माल्यञ्च स्वर्णकुण्डलमुत्तमम् ॥ ६३ ॥

माल्यञ्च घादोलाञ्च सुपकं क्षीमेव च । सर्वस्वं दक्षिणां दद्यात् स्तवनं कुर्वते ध्रुवम्  
शतकं ब्राह्मणानाञ्च भोजयेत्परमादरम् ।

ब्राह्मणं वैष्णवं शास्त्रनिष्णातं पण्डितं परम् ॥ ६५ ॥

कुर्वते वाचकं शुद्धमन्यथा निष्फलं भवेत् ।

श्रीकृष्णविमुखान् दुष्टाघोपदेष्टा च ब्राह्मणः ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्णभक्तियुक्तञ्च पुराणं यः शृणोति च ।

भक्तिं पुण्यञ्च लभते हन्ति पापं पुराकृतम् ॥ ६७ ॥

एतत्ते कथितं सर्वं यच्छ्रुतं मुख्यव्रततः ।

विदायं देहि विघ्नेन्द्र यामि नारायणाश्रमम् ॥ ६८ ॥

दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कृतुं समागतः । कथितं ब्रह्मवैवर्तं भयतामाश्रया परम् ॥ ६९ ॥  
नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च कृष्णाय परमात्मने । शिष्याय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः

कायेन मनसा वाचा परं भवथा दिवान्निगमम् ।

मत्र सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्पण्यम् ॥ ७१ ॥

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ] \* पुराणपठनश्रवणादिमाहात्म्यम् \*

११६५

नमो देव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरवे नमः । सर्वविघ्नविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥

युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक ।

अद्य सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः ॥ ७३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीठुष्णजन्मखण्डे  
स्तौनिकसंवादे पुराणपठनश्रवणमाहात्म्यं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

॥ ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

द्वैवैवर्तमहापुराणस्थ श्रीकृष्णजन्मखण्डस्य शुद्धिपत्रम्

पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०	विजहार	विजहार
१०	द्वाञ्छितश्च	द्वाञ्छितश्च
२३	द्वयस्य	द्वयस्या
१६	सद्रज	सद्रज
२०	पारिजाता	पारिजात
२४	चञ्चुरां	चञ्चुरां
६	परमाश्रयं	परमाश्रयं
२१	सर्वबाज	सर्वबीज
१३	ध्यानानुरूच्य	ध्यानानुरूच्य
२०	रसोत्सुकम्	रसोत्सुकम्
११	स्यलु	स्यलु
२१	कीर्त्तिः	कीर्त्तिः
२२	यभूष	यभूष
३	वे	ते
६	हन्तव्यं पस्थिते	हन्तव्यं पस्थिते
८	श्वेचामर	श्वेतचामर
१७	रत्नलङ्कार	रत्नलङ्कार
३	चञ्चु	चञ्चु
८	अनुक्षणं	अनुक्षणं

६४४	२३	वृन्दयात्र	वृन्दयाऽत्र
६४४	२५	वेदपता	वेदपती
६४८	३	ध्राग्रह	ध्रीग्रह
६४९	५	ब्रह्मणा	ब्राह्मणा
६४९	१७	क्षुत्पीडिता	क्षुत्पीडिता
६५१	१०	यस्यामो	यास्यामो
६५४	१९	रक्षतु	रक्षितु
६६०	४	तूष्णाम्भूताञ्च	तूष्णाभूताञ्च
"	"	समुपाच	त्सुपाच
६६१	१४	गर्गचरः	गर्गचरः
६६२	३	विमर्त्ति	विमर्त्ति
६६४	७	मङ्गलम्	मङ्गलम्
"	२०	त्वा	श्रुत्वा
"	२२	ध्वय	श्चय
६६५	२०	श्रुत्वा	श्रुत्वा
६६८	५	बहिरेव	बहिरेव
६७०	१९	घालकाः	घालकाः
६७६	१६	व्येस्त्येव	व्येऽस्त्येव
"	२५	नणाम्	नणाम्
६७९	१९	पवत	पवत
६८२	४	मक्षो	मक्षो
"	९	करुणसिन्धो	करुणसिन्धो
	१२	फलाधिः	फलाधिः
	२५	रीश्वरात्	रीश्वरात्



६८८	५	यथेक्ष	यथेक्षु
६९७	३	तस्मात्त्वं	तस्मात्त्वं
६९८	६	सांसर्गिको	सांसर्गिको
६९९	३	चक्षुषा	चक्षुषा
"	१९	स्थितां	स्थितां
७०१	४	क्षमसंस्था	क्षमासंस्था
"	२०	नियतं	नियतं
७०३	१६	तूष्णं	तूष्णं
७०४	६	शिष्यस्तस्य	शिष्यस्तस्य
७०६	२५	दग्धं	दग्धुं
७०८	२३	वीज	वीज
७१०	१३	ब्राह्मणा	ब्राह्मणो
७१२	१६	महात्म्यं	महात्म्यं
७१३	६	ध्रष्टं	ध्रष्टं
"	१६	सहिष्णुनां	सहिष्णुनां
७१५	१७	दातृणां	दातृणां
७१६	२२	कथिनं	कथितं
७२३	१२	गृह्यतां	गृह्यतां
७२६	३	गोपिका	गोपिका
७२९	२०	भवया	भवया
७३३	२	वृद्धयः	वृद्धयः
७३६	२३	तच्छ्रुत्वा	तच्छ्रुत्वा
"	१५	अन्दिनाकाभा	अन्दिनाकाभि
	१६	चायत	चायित

७३८	७	श्रोणिदेशे	श्रोणिदेशे
"	२६	नावी	नीवी
७४०	२०	मालतील्यै	मालतीमाल्यै
७४१	१८	एवं	एवं
७४३	३	सुखु	सुख
७४४	२	ज्वलन्तं	ज्वलन्तं
"	३	परम	परम्
"	२४	मुमुक्षुणां	मुमुक्षूणां
७४७	२३	सन्निधम्	सन्निधिम्
७४८	११	परस्तमै	परस्तस्मै
७५३	२	चिन्दं	चिन्दुं
"	२२	प्रियाऽस्ति	प्रियोऽस्ति
७५५	४	क्षणं	क्षणां
"	२५	नमोऽस्तुते	नमोऽस्तुते
७५६	१८	विह्वलः	विह्वलः
७५८	१५	तथा	तथा
"	१७	त्यद्वक्	त्यद्वक्त्र
७५९	१६	निन्दिताऽ'	निन्दिताऽहं
७६०	६	युयुधे	युयुधे
"	१३	रसापान	रसोपानं
७६१	१	ब्रह्माणं	ब्रह्माणं
७६२	४	पियूष	पीयूष
"	१९	मंनय	मंनय
"	२४	तत्रोपास	तत्रोपास

	२५	कण्ठोष्ठ	कण्ठीष्ठ
	२	पट्टिशकरो	पट्टिशधरो
	५	सर्वाङ्गा	सर्वाङ्गा
	६	कण्ठैकतानेत्र	कण्ठैकतानेत्र
	१८	स्पर्शवायोध	स्पर्शवायोध
	२	माहिनी	मोहिनी
	८	छप्ठं	छप्ठुं
	१०	प्रज्ञोपाच	प्रज्ञोपाच
	२४	कुर्मा	कुर्मो
	२५	गुरा	गुरो
	२	कार्तियां	कार्तियां
	२५	बाह्ये	बाह्ये
	२३	कण्ठोष्ठ	कण्ठीष्ठ
	६	धीहृत्प	धीहृत्प
	८	पूर्वां	पूर्वो
	१२	जडा	तेजडा
	११	प्रतिविम्बध	प्रतिविम्बध
	१४	भताष	भर्ताष
	१०	लॉवने	लॉवने
	२३	बर्हिंवि	बर्हिंवि
	११	स्तोत्रेध	स्तोत्रेध
	०	खसमत्र	खसमत्र
	२	मुर्क	मुर्के
	"	उर्क	सुर्क

७८२	२३	साकार	साकारे
७८३	१३	वाञ्छितम्	वाञ्छितम्
७८४	८	तञ्जालयिन्तुं	तञ्जालयितुं
"	१४	जगाद्	जगद्
"	२१	विभक्ति	विभक्ति
७८७	४	पुलकाञ्चित	पुलकाञ्चित
७८८	११	महाविष्णुं	महाविष्णुं
७८९	८	प्रविशामो	प्रविशामो
७९०	२१	घूर्णन्	घूर्णन्
७९३	१२	अद्वा	अद्वा
"	२३	नारायण	नारायणे
७९४	१६	तद्द्	तद्द् (यं देवमित्यपि पा)
७९६	५	वृद्धा	वृद्धा
"	१२	नृत्य	नृत्य
"	२१	मिक्षकम्	मिक्षकम्
७९९	६	सुरांस्तस्था	सुरांस्तथा
८०२	४	मद्वाक्यं	मद्वाक्यं
८०३	२	देवेशं	देवेशं
८०४	१९	स्वरूपिणा	स्वरूपिणी
८०६	१८	सावणि	सावणि
"	२०	"	"
८१०	१६	सर्वेषां	सर्वेषां
"	"	सर्वेषु	सर्वेषु
"	२०	विचजिते	विचजिते



[ ६ ]

८१४	६	त्यागान्तरं	त्यागान्तरं
८१५	११	बध्नामं	बध्नाम
८१६	६	वं	हं
८२४	११	षड्भि	षड्भि
८२७	२५	केलासञ्च	केलासञ्च
८२६	२	कर्तुं	कर्तुं
"	१८	निमग्न.नन्दऽऽसागरे	निमग्राऽऽनन्दसागरे
८३०	१२	इत्युत्वा	इत्युत्वा
"	२०	पुष्य	पुष्य
३१	६	सर्व	सर्व
"	७	सामदाय	सामदाय
"	२०	चन्दनागुरु	चन्दनागुरु
"	२३	कीडा	कीडां
"	१४	दिव्य	दिव्य
"	१६	मद्भृत्यानाञ्च	मद्भृत्यानाञ्च
"	१६	लेभे	लेभे
८३७	६	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठो
८३६	१६	कतिचित्तां	कति चित्रं
८४०	२५	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठो
८४६	१२	"	"
८४६	२	परं	परं
८५०	२१	जगद्गौरि	जगद्गौरि
८५५	८	प्रेमणा	प्रेमणा
८५७	२१	जगाम्	जगाम

८५६	२२	वङ्	वङ्
८६२	२३	वल्लष्ट	विलष्ट
८६३	२१	पुत्रनस्तः	पुत्रस्ततः
८६४	२	ब्रह्मणशापेन	ब्रह्मशापेन
"	१७	वंभूव	वंभूव
८६७	५	निष्ठरं	निष्ठुरं
८७१	६	चन्द्र	चन्द्रे
"	१८	धिवजितम्	धिवर्जितम्
"	२१	दृष्टा	दृष्टा
८७२	४	दुर्लभम्	दुर्लभम्
८७५	७	घरर्षणिनी	घरर्षणिनी
८७६	१७	गृह्णिष्यसि	गृह्णीष्यसि
८८५	१०	गजखञ्जन	गजखञ्जन
८८६	२३	त्वक्ष्यामि	त्वक्ष्यामि
८८७	१५	प्रकारेण	प्रकारेण
८८८	१८	घर्मा	घर्मो
८८९	३	जटांम्	जटाम्
"	६	भत्रा	भर्त्रा
"	२१	तालुका	तालुका
८९२	२	जानका	जानकी
"	८	करिष्यामि	करिष्यामि
"	१७	प्रययी	प्रययी
"	१६	शीघ्रं	शीघ्रं
"	१५	मह्य भूयायां	मह्यभूयायां

६८	२२
८६६	७
९००	६
"	१३
९०१	११
९०२	१२
९०५	१४
९०५	१६
९०८	१०
९०९	७
९१०	१८
९१२	१०
"	१५
"	१७
९१४	२०
"	२३
९१५	७
९१६	१२
९१९	१७
२०	"
"	२०
"	२२
"	"
९२१	१९

सोऽकरो	सोऽकूरो
समाहृतं	समाहृतुं
दक्ष्याम्यद्य	द्रक्ष्याम्यद्य
धमिर्णा सर्वकर्मिणाम्	धर्मिणां सर्वकर्मिणा
रत्नसिंहासन	रत्नसिंहासने
शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठौ
केचिद्देवाः	केचिद्देवाः
मूर्ति	मूर्ति
रमणध्रेष्ट	रमणध्रेष्ट
शुचिस्मता	शुचिस्मिता
मंनीन्द्रैः	मुंनीन्द्रैः
कुत्वा	कृत्वा
तासां	तासां
गोपीभिः	गोपीभिः
बोधयामासुः	बोधयामासुः
मातृसमापतः	मातृसमीपतः
विचर्जितः	विचर्जितः
सिद्धान्	सिद्धान्नं
भातृ	घ्रातृ
विप्रहम्	विप्रहम्
नित्यविप्रहः	नित्यविप्रहः
रूपञ्च	रूपञ्च
वेशञ्च	वेशञ्च
सहाकूरगणौ	सहाकूरगणः

६२२	३	रत्नलङ्कार	रत्नालङ्कार
"	२०	प्रणम्य	प्रणम्य
६२३	५	प्रशस्ता	प्रशस्ता
"	१८	गच्छतं	गच्छन्तं
६२७	१५	या	यो
६२६	१४	मसन्वितः	समन्वितः
६३०	७	सुशामितं	सुशोमितं
६३१	२	चतुर्मुञ्जा	चतुर्मुञ्जो
"	२२	कपिला	कपिलो
६३२	२०	शस्त्राणां	शस्त्राणां
६३३	४	काननेषु	काननेषु च
"	७	मत्कारण	मत्कारणं
६३७	६	वैष्णवाणां	वैष्णवानां
"	२५	लभेच्छुचम्	लभेच्छुचम्
६४२	६	खञ्जनाञ्च	खञ्जनानां
६४३	४	पूर्णिमा	पूर्णिमा
"	१५	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
"	१७	क्षयोध्या	अयोध्या
"	१६	प्रयोगे	प्रयोगे
"	२३	दोलयामान	दोलायमानं
६४५	२	परमात्मन	परमात्मनः
६४६	६	पतत्	पतत्ते
"	१३	सुस्वप्नदर्शने	सुस्वप्नदर्शने
"	१६	ब्रह्मवैषत्त	ब्रह्मवैषत्तं



२०	वैदिकरूपा	वैदिकरूपा
८	सर्वासिद्धश्वर.	सर्वसिद्धश्वर.
५	जमप्रिध	जमदप्रिध
७	भगवात्	भगवान्
८	केशवेणा	केशवेणा
२५	भर्त्त	भर्त्र
२५	नरबुद्धिञ्च	नरबुद्धिञ्च
२१	चन्द्रमाचितम्	चन्द्रमाचितम्
१३	बुद्ध्या	बुद्ध्या
११	मक्ष्यं	मभक्ष्य
१४	अहङ्कर्त्ता	अहङ्कर्त्ता
१७	द्विभ्राणञ्च	द्विभ्राणाञ्च
१८	क्षतुर्घर्णा	क्षतुर्घर्णा
६	वर्षणाञ्च	वर्षणाञ्च
२४	पापं	पापं
५	जन्सु	जन्मसु
१२	लोलाम	लालामं
१४	द्वन्द्वे	द्वन्द्व
१४	प्रतापवतः	प्रतापतः
१६	केतन	केनन
४	रहस्थलम्	रह स्थलम्
२३	प्राहाहत्या	प्राहाहत्या
२५	क्षणं	क्षण
११	गून्वे	गून्वे

१००८	२०	धर्माऽयं	धर्माऽयं
१०१४	३	व्याधिगुह्य	व्याधिगुह्य
"	४	गृहीत्रा	प्रहीत्रा
१०१५	४	निर्गणध	निर्गुणध
"	१५	जेतुमाश्वरः	जेतुमीश्वरः
१०२०	२०	चतुर्युगानां	चतुर्युगानां
१०२८	१८	कणिकानां	कर्णिकानां
१०३१	१८	लोले	लोके
१०४२	१०	प्रह्न	प्रह्ने
१०४३	४	माप्सितम्	मोप्सितम्
"	१३	कुमाध	कुमारध
१०४५	२	चक्षपो	चक्षुपो
"	२१	नारायण	नारायण
१०४७	२५	गंरुः	गंरुः
१०४८	१३	माधवा	माधवी
१०५०	२३	जन्मृत्यु	जन्ममृत्यु
१०५२	२	मसपदकं	मासपदकं
"	३	पूर्णिमा	पूर्णिमा
"	७	दशम्येकादशी	दशम्येकादशी
१०५३	२५	नृमाणां	नृमानं
१०५४	३	नृणां	नृणां
"	६	चतुर्युगम्	चतुर्युगम्
१०५८	४	मस्मीभृतं	मस्मीभृतं
"	१८	कातरम्	कातरम्

१०५६	५	कीडा	कीडा
१०६०	१५	श्वयं	श्वयं
१०६३	२४	चाभिभूता	चाभिभूता
१०६८	१६	उशाच	उषाच
१०७१	१८	पदम्	पदम्
१०७२	१५	स्वगश्रेष्ठ	खगश्रेष्ठ
१०७३	१६	प्रसिद्धश्च	प्रसिद्धश्च
"	२४	चणकादीनां	चणकादीनां
१०७७	१५	प्रफुल्लपुष्पैः	प्रफुल्लपुष्पैः
०७८	१०	प्रीप्पमध्याह्न	प्रीप्पमध्याह्न
०७९	११	स्त्रिकोटिभिः	स्त्रिकोटिभिः
"	२०	याप्यन्ति	यास्यन्ति
"	२१	प्रविशद्	प्राविशद्
१०८०	१५	न्यकारं	न्यकारं
"	२३	गुणां	गुणा
१०८१	२५	सत	सती
०८४	२३	योगिनाम्	योगिनाम्
"	२५	नपः	नृपः
१०८५	४	शस्याढ्यां	शस्याढ्यां
"	११	भिक्षणा	भिक्षूणा
८६	२१	नृपाश्चैष	नृपाश्चैष
८७	३	श्वेतच्छत्रं	श्वेतच्छत्रं
८८	७	माप्तीक्ष्व	माजिक्व
	२४	गृहीतुं	प्रहीतुं

१०६१	२५	मिशुकैर्म्यो	मिशुकैर्म्यो
१०६७	१२	रुषिमर्षी	रुषिमर्षी
"	"	सम्मिताम्	सम्मिताम्
१०६८	२५	समर्प्य	समर्प्य च
११००	१८	सिद्ध्यात्मकञ्च	सिद्ध्यात्मकञ्च
११०५	२	पदन्ता	पदन्ती
११०६	११	मारुह्य	मारुह्य
१११३	४	यभूव तस्य राजञ्च	यभूव तस्य राजञ्च
१११४	१०	पुष्पतत	पुष्पित
१११५	२३	सुशाला	सुशीला
१११७	२०	गृहामि	गृहामि
"	२३	रुदता	रुदती
१११६	१४	चन्दने	चन्दने
११२०	८	दुःस्व	दुःस्व
११२२	१७	कन्या	कन्यां
११२४	१६	वचनं	वचनं
११२५	३	मुद्वत्	मुद्वत्
११२६	१६	भल्लूकात्मजा	भल्लूकात्मजा
११२६	२१	गघालम्बं	गघालम्बं
११३०	६	चन्द्रेण	चन्द्रेण
११३३	१०	सर्षोपायैश्च	सर्षोपायैश्च
"	१५	कातिकादपि	कातिकादपि
११३५	१३	घैष्णनां	घैष्णघानां
"	१६	घैष्णघ	घैष्णघ

१८	तद्देहे	तद्देहे
५	भ्रात्र	भ्रात्रे
१०	कृतमिदं	कृतमिदं
२३	रण भूर्धनि	रणमूर्धनि
१७	घर्मना	घर्मना
१६	निर्गणः	निर्गुणः
१६	भुवोधुना	भुवोऽधुना
१०	पूर्णिमायाञ्च	पूर्णिमायाञ्च
४	निर्विघ्नं	निर्विघ्नं
७	दुर्लभया	दुर्लभया
१३	सुकाठने	सुकाठिने
३	सर्व	सर्वे
८	परमाहादकं	परमाहादकं
८	प्रसूनकम्	प्रसूनकम्
१४	गोकुलं	गोकुलं
१४	राधया	राधया
१०	शश्वन्न	शश्वन्न
१७	चूर्णाभूतं	चूर्णाभूतं
२५	मानिना	मानिनो
१४	त्यज्येन्	त्यजेन्
२०	दीप्ति	दीप्ति
६	तस्मै	तस्मै
१४	मुत्तमम्	मुत्तमम्
२२	रघात्पुं	रघात्पुं

११७३	७	सुनिन्दित	सुनिन्दित
११७३	१६	त्रैलोक्ये	त्रैलोक्ये
११७७	७	परिपूर्ण	परिपूर्ण
११७८	६	दृष्टा	दृष्टाऽ
११८७	७	कार्तिकोद्धरणं	कार्तिको
११९१	१८	चतुर्विंशति	चतुर्विंशति
११ २	५	नारायणं	नारायणं
"	२०	महापुण्यती	महापुण्य

समाप्तमिदं श्रीमहावैवर्तमहापुराणस्य श्रीकृष्णजन्मखण्डस्य शुद्धिपत्रम्

ॐ सत्सद् ग्रहार्पणमस्तु

